काश्मीर
समस्या और विश्लेषण

जगमोहन
भूतपूर्व राज्यपाल, जम्मू-काश्मीर



राजपाल एण्ड सन्ज़

मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी ?

मैं जम्मू-काश्मीर राज्य का दो बार राज्यपाल बना; अप्रैल, 1984 से जून, 1989 तक और जनवरी, 1990 से मई, 1990 तक। राज्यपाल होने के नाते मैं उस समय की कुछ सबसे निर्णायक घटनाओं से जुड़ा था। राष्ट्र और इतिहास के प्रति मेरा यह कर्तव्य है कि उन घटनाओं का वर्णन और सही परिप्रेक्ष्य में उनका विश्लेषण करूं तथा यह भी बताऊं कि मैंने उनके सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से क्या अनुभव किया।

अपने राज्यपाल-काल की अवधि में मुझे भारतीय राजनीति के पाखंड और उथलेपन को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला। इसमें मुझे घोर निराशा हुई। मेरे अन्दर क्षुब्ध भावनाओं का प्रवाह जमता गया और उसने शीघ्र ही एक आक्रोश की तेजी प्राप्त कर ली। अपने पद की विवशताओं के कारण वह मेरे अन्दर जमकर रह गया। अब मैं अनुभव करता हूं कि उसे व्यक्त करने और खुलकर बात करने का समय आ गया है।

यह सामान्य रूप से जनहित और विशेष रूप से राष्ट्रीय हित की माग है कि इस पुस्तक को प्रकाशित किया जाए। जान-बूझकर या अज्ञान के कारण काश्मीर-समस्या के सम्बन्ध मे एक झूठी तस्वीर पेश की जाती रही है। दूसरी बार राज्यपाल बनने के पहले दिन से ही मुझे न केवल आतंकवाद के खिलाफ एक बहुत गंभीर तथा निर्णायक मोर्चा लेना पड़ा, साथ ही गलत सूचनाएं फैलाने की मुहिम के विरुद्ध भी संघर्ष करना पड़ा।

इस पुस्तक मे मैंने ऐसा कोई भी दावा नही किया है जिसकी पुष्टि मे ठोस सबूत न दिया हो। झूठी खबरें और अफवाहें फैलाने वाले, सुनी-सुनाई बातों को तोड़-मरोड़कर या गढ़कर अपने विवरण बना लेते हैं। खेद है कि सत्ता की कुर्सी पर बैठे कुछ लोगों ने सोचा कि वे भी तथ्यों को झुठला सकते हैं और जब मैंने उनका पर्दाफाश करने के लिए ठोस सबूत दिए, उन्होंने मुझ पर अनुचित व्यवहार का आरोप लगाया। 'औचित्य' का निश्चित मानदण्ड तो होता नही, केवल एक ही पक्ष को किसी विषय पर बोलने की छूट नही रहनी चाहिए वरन् उससे प्रभावित व्यक्ति को भी अपनी सफाई में सबूत देने और जन-हित की रक्षा के लिए पूरा सत्य उद्घाटित करने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए। उदाहरणार्थ, कुछ उच्च सत्ताधारियों द्वारा

यह कहा गया कि राज्य-विधानसभा भंग करने के सम्बन्ध में मैंने उन्हें अज्ञान में रखा। लेकिन लिखित सबूत इस दावे के आधार को ही झूठा सिद्ध कर देते हैं। क्या मुझे इस वास्तविकता की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने का अधिकार नहीं? उसी भांति जब मेरी गलत आलोचना की जाती है तो मेरे लिए चेतावनी के उन संकेतों को उद्धृत करना, जो मैंने समय-समय पर भारत सरकार को भेजे, किसी भी तरह अनुचित नहीं। किसी को भी गलत सूचना फैलाने और दूसरे पक्ष को खामोश रहने के लिए कहने का अधिकार नहीं है।

व्यक्तिगत रूप से मैंने इन घोर अपमानजनक गलत सूचनाओं के आघातों को चुपचाप सहन कर लिया होता, किन्तु न्याय तथा सत्य की मांग है और भावी गलतियों को रोकने के लिए भी आवश्यक है कि वास्तविक तथ्यों और प्रमाणों को खुलकर रखा जाए। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि डॉ० कर्णसिंह ने अपनी पुस्तकों 'हेयर-अपेरेण्ट' और 'सदरे-रियासत' तथा बी० एन० मलिक ने अपनी पुस्तक 'माई डेज़ विद नेहरू' में अपने पक्ष के प्रमाण में इसी प्रकार के उद्धरण दिए हैं।

काश्मीर समस्या का वास्तविक हल उन कमजोरियों और नकारात्मक कारणों को दूर करके ही सम्भव है जिनका वर्णन मैंने इस पुस्तक में किया है। इसके लिए नई दृष्टि और नया उत्साह लिए नए भारत की आवश्यकता है। यह कार्य आज के भारत द्वारा सम्भव नहीं जो तात्कालिक छोटे राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए देश का अहित कर रहा है; काश्मीर में जिसकी छिछली और पाखण्डी नीति अपनी सभी सीमाएं तोड़ चुकी है; आज भारत के नेताओं ने सुलगती सच्चाइयों का सामना करने के बजाय भ्रमों की छाया में रहने की प्रवृत्ति अपना रखी है।

सम्भव है कि मैं कुछ लोगों के प्रति थोड़ा आलोचनात्मक हो गया हूं। मैं ऐसा नहीं होना चाहता था लेकिन इतिहास के सत्य और साक्ष्य ने मेरे लिए कोई और रास्ता नहीं छोड़ा। फिर भी, यह आलोचना व्यक्तिगत नहीं है। वस्तुत: यह उन नकारात्मक शक्तियों की आलोचना है, जिन्होंने देश को अपनी कोई भी समस्या तत्काल ठीक मौके पर, थोड़ी 'कीमत' में ही हल करने के अयोग्य बना दिया है।

—जगमोहन

क्रम

राधिका, सोनालिका और देविका—
तीन बच्चों के नाम
जिन्हें भविष्य का सामना करना है

काश्मीर : समस्या और विश्लेषण

पहला अध्याय

पृष्ठभूमि

"ऐसा हो गया
और ऐसा बार-बार होता है
और ऐसा फिर होगा"

अचानक विमान झटके के साथ नीचे झुका। ऐसा बाहरी हवा के दबाव में अन्तर के कारण हुआ। सीमा सुरक्षा बल का वह छोटा-सा विमान उसे आसानी से झेल नहीं सकता था। पूरा विमान कांप उठा और उसके साथ ही मेरी विचार-धारा भी। शायद इसने मुझे यह स्मरण दिलाया कि मैं ऐसे राज्य में जा रहा हूं जो अशांति और दहशत में फंसा है। यह 19 जनवरी 1990 की दोपहर थी। मैं विमान द्वारा दूसरी बार जम्मू-काश्मीर जा रहा था।

छह वर्ष पूर्व 26 अप्रैल, 1984 को मैं विमान द्वारा जम्मू-काश्मीर गया था। उस समय भी वहां के हालात खराब थे। लेकिन तब इन्डियन एयरलाइन्स के बोइंग विमान की सुन्दर खिड़की से दिखता आकाश का सूरज चमकीला और विश्वसनीय लगा था। शुभेच्छुओं की एक बड़ी भीड़ मुझे विदाई देने के लिए हवाई अड्डे पर आयी थी। पर इस बार पहले से बहुत अन्तर था। मुझे आधी रात को विदेश मन्त्री आई० के० गुजराल ने टेलीफोन किया। उन्होंने मुझसे गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद के घर पर होने वाली एक आपात्कालीन बैठक में शामिल होने को कहा। वहां मुझे काश्मीर की गम्भीर स्थिति के बारे में बताया गया और कहा गया कि मैं तत्काल विशेष विमान द्वारा वहां जाऊं। जाने की हड़बड़ी और यात्रा का लगभग अकेलापन मुझे कुछ कष्टकर लगा। बी० एस० एफ० विमान की संकरी खिड़की में मेरी थकी आंखें आकाश में एक ओर से दूसरी ओर तक फैली धुंध के सिवाय मुश्किल से ही और कुछ देख सकती थीं।

मुझे स्मरण आया कि 1984 के प्रारम्भ में भी यह राज्य उपद्रवों के अटूट दौर से गुज़र रहा था। उस वर्ष 3 फरवरी को बर्मिंघम में नियुक्त एक भारतीय राजनयिक रवीन्द्र म्हात्रे का जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट की सहायक ज० क० लिबरेशन आर्मी के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने अपहरण कर लिया था और 5 फरवरी को उनकी निर्मम हत्या कर दी गई थी।

छह दिन बाद जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट (जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा) के संस्थापक प्रेसीडेण्ट मकबूल बट्ट को जिसे 17 वर्ष पूर्व की गई हत्याओं के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया था, तिहाड़ जेल, दिल्ली में फांसी पर चढ़ा दिया गया।

इन दोनों घटनाओं का अनिष्ट प्रभाव दिल्ली और श्री नगर पर अभी बरकरार था।

कुछ दिन बाद तीन केन्द्रीय मन्त्री राष्ट्रपति से मिले और शिकायत की कि विघटनकारी शक्तियां मुख्यमन्त्री डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकारी छत्रछाया में पनप रही हैं और ये राष्ट्र विरोधी तत्त्व घाटी पर अपना आतंक जमाए हैं। दूसरी ओर डॉ० फारूख अब्दुल्ला धमकी दे रहे थे कि अगर कांग्रेसी बाज न आये तो खून की नदी बह जायेगी।

इससे पूर्व 5 जून, 1983 के राज्य विधान सभा चुनावों में राज्य का वातावरण इस सीमा तक बिगड़ चुका था कि इकबाल पार्क, श्रीनगर में श्रीमती इन्दिरा गांधी का भाषण सुनने के लिए एकत्रित भीड़ में बहुत से नंगे आदमी भेजे गये। चुनावों के बाद हुए आन्दोलन में सार्वजनिक व्यवस्था लगातार खराब होती गई। 15 जनवरी, 1984 को कांग्रेस पार्टी के चार समर्थक अनन्तनाग में पुलिस द्वारा चलाई गोलियों से मारे गये। घाटी में बम विस्फोटों का आतंकित कर देने वाला तांता लग गया। स्वतंत्रता दिवस परेड के अवसर पर, श्रीनगर इंडियन कॉफी हाउस में, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश डॉ० ए० आनन्द की कोठी में, नागवल के पालाडियम सिनेमा में, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय वाले हिस्से और सेवा-निवृत्त सेशन जज एन० के० गंजू की कोठी में, बम विस्फोट हुए। इससे पहले 19 अक्तूबर, 1983 को श्रीनगर में वेस्ट इंडीज और भारत के बीच खेले गये क्रिकेट मैच के दौरान देश की छवि को बुरी तरह बिगाड़ा गया। लाखों टेलीवीजन देखने वालों, राज्यपाल बी० के० नेहरू और डॉ० फारूख अब्दुल्ला की उपस्थिति में भारत विरोधी और पाकिस्तान समर्थक नारे लगाये गये। राष्ट्रीय ध्वज का अपमान किया गया। भारतीय खिलाड़ियों की खिल्ली उड़ाई गई और उन पर पत्थर तथा गंदगी फेंकी गयी।

उन दिनों बार-बार जुलूस भी निकाले गये। इन जुलूसों में लोग ऐसे नारे लगाते थे—'पाकिस्तान—जिन्दाबाद !, खालिस्तान—जिन्दाबाद', "नूरे चश्म, नूरे हक, जियाउलहक, जियाउलहक, जियाउलहक !" एक नया नारा—"मुस्लिम सिख—भाई-भाई, हिन्दू कौम कहां से आई," विशेष रूप से खतरनाक था। पंजाब पहले से ही कट्टर साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता की आग में घिरा हुआ था। आतंकवाद की लपटें जम्मू और काश्मीर तक अपना आतंक फैला रही थीं। घाटी सूखे और शीघ्र जल उठने वाले भूसे के ढेर की तरह थी जिसमें जरा सी एक चिंगारी पड़ते ही आग भभक सकती थी। सियाचिन से लेकर सारी सीमा के अस्थिर होने का खतरा पैदा हो गया था।

चाय का एक प्याला छोटी-सी मेज पर रखते हुए उत्साही कर्मचारी ने आदरसूचक मुस्कान के साथ कहा—"श्रीमान् ! यह आप में नयी ताजगी ला देगा।" और सचमुच में उससे मुझे कुछ राहत मिली। मैंने अपने ब्रीफकेस में से एक फाइल निकाली जो मुझे जम्मू-काश्मीर के रेजीडेन्ट कमिश्नर कार्यालय के एक कर्मचारी ने हवाई अड्डे पर दी थी। उसमें 12 जुलाई, 1989 जब मैंने राज्यपाल का पद छोड़ा था, से आगे तक की अखबारों की कतरनें थीं। मैंने उन पर दृष्टि डालनी शुरू की। पाकिस्तान का स्वतन्त्रता दिवस 14 अगस्त शान से मनाया गया था जबकि भारतीय स्वतन्त्रता दिवस 15 अगस्त को हड़ताल और

ब्लेकआउट रखा गया। एक समाचार था कि राष्ट्रीय ध्वज को जला दिया गया और चारों ओर खड़ी भीड़ तालियां बजाती रहीं। 'द स्टेट्समन' की नवम्बर 6, 1989 की रिपोर्ट—राष्ट्र ने काश्मीर को लगभग खो दिया। 'पेट्रियाट' का दुखद समाचार—श्रीनगर में रोज बम विस्फोट। 23 नवम्बर के टाइम्स ऑफ इंडिया की टिप्पणी—असहाय काश्मीर घाटी में आतंकवाद के दबदबे के बारे में एक विचित्र मौन षड्यन्त्र प्रतीत होता है। दूसरे समाचारों के भयानक शीर्षक थे—"भारतीय जनता पार्टी के उपाध्यक्ष टिक्कालाल टपलू को श्रीनगर में उनके घर के सामने गोली मार दी गई।।" "न्यायाधीश गंजू की हरीसिंह स्ट्रीट में निर्मम हत्या।" 'प्रसिद्ध पत्रकार पी० एन० भट की अनन्तनाग मे हत्या', 'मेसुमा-बाजार पुलिस स्टेशन के एस० एच० ओ० को मुख्य बाजार मे गोली से मार दिया गया', 'शासन प्रबन्ध पूरी तरह ठप्प', 'राज्य में आतंकवादियों का दबदबा', 'केन्द्रीय गृहमन्त्री की बेटी का अपहरण।" इसी तरह और भी घटनाओं के शीर्षक थे—घृणा से भरकर मैंने पढ़ना बन्द कर दिया। मैं इससे पूर्व भी इन समाचारो को दैनिक समाचार पत्रों मे पढ चुका था। लेकिन उस दिन ऐसे सभी समाचारों को एक साथ देखना वास्तव मे विषादपूर्ण था। मैंने अपनी आखें बन्द कर लीं और फिर विचारो मे डूब गया।

यह राज्य बार-बार भयकर संकटों के दौरे से क्यो गुजर रहा है? संकट बार-बार क्यो आते हैं? और वर्तमान उपद्रवो के मूल कारण पहले के उपद्रवों जैसे क्यो हैं? एक कोमल और गम्भीर कविता 'तैरते संगीत की स्मृति' की तरह मेरे दिमाग मे घूमती हुई, मेरे मौन अधरो पर उतर आई—

ऐसा हो गया
और ऐसा बार-बार होता है
और ऐसा फिर होगा
यदि कुछ नहीं होता
उसे रोकने के लिए!
भोले-भाले लोग कुछ नही जानते
क्योंकि वे भी दोषी हैं
गरीबों को कुछ पता नही चलता
क्योंकि वे हैं अति गरीब।
और धनी नही देखते
क्योंकि वे हैं अति धनी।
मूर्ख अपने कंधे झाड़ बरी हो जाते हैं,
क्योंकि वे हैं अति मूर्ख।
और चतुर अपने कधे झाड़ बरी हो जाते हैं
क्योंकि वे हैं अति चतुर।
जवान नही करते परवाह
क्योंकि वे हैं अति युवा।
और वृद्ध करते नही चिन्ता
क्योंकि वे हैं अति वृद्ध।
इसीलिए नही होता

लिखा गया अपना पत्र जिसमें मैंने लिखा था : आज कोई कदम उठाना समय पर किया गया काम हो सकता है, कल बहुत देर हो जाएगी।" लेकिन कल को परसों में बदलने दिया गया और परसों को फिर अगले दिन पर टाल दिया गया और फिर अगले दिन पर। अब जबकि ढांचा पूरी तरह ढह चुका है फिर एक बार हवाई जहाज में अपनी छोटी-सी सीट में बैठकर अतीत की अनुत्तरित मृत समस्याओं का सिर पर भार लादे मुझे इस अशांत और संतप्त राज्य में आना पड़ा। मेरे सामने थे हिलते हुए कप-प्लेट और बाहर बस एक भूरी उदास धुंध। इतना ही नहीं बल्कि जैसे ही मेरे छोटे-से जहाज ने अपनी मुश्किल भरी यात्रा शुरू की आलोचनाएं शुरू हो गईं।

जब मेरा जहाज पठानकोट से गुजरते हुए जम्मू की ओर मुड़ा, उसकी खिड़कियों से आती चमकती सूरज की किरणों ने भीतर छाई उदासी को खत्म करने का प्रयास किया। मैंने एक नया निश्चय किया। हो सकता है मुझे अकेले ही मार्ग खोजना पड़े, लेकिन तूफान अवश्य समाप्त होना चाहिए और अपनी अनेक सीमाओं के बावजूद, मुझे अपने मार्ग पर चलना है। मैंने शांतिपूर्वक अपनी योजना निर्धारित की और अपना नीति सम्बन्धी बयान देने के लिए कुछ एक बातें लिखीं।

उस छोटे वायुयान की अपनी ही सौम्यता और सुन्दरता थी। बिना किसी बोइंग जैसी गरज के, वह धीरे से नीचे उतरा। मैंने अपने पैर फैलाए, शरीर सीधा किया और जम्मू हवाई अड्डे पर उतरा। धूप चमक रही थी। ठण्डी हवा बहुत ताज़गी देने वाली थी। मैंने अपने बालों पर हाथ फिराया और उनके नीचे दबे तनाव को शांत किया। रिसेप्शन पर औपचारिकताओं के खत्म होने के बाद, उन सड़कों से गुज़रते हुए मैं कार में राजभवन की ओर चल पड़ा, तो मुझे लगा जैसे मुझे ये चीजें नम्रता से उस थोड़े-से काम के लिए धन्यवाद दे रही थीं जो मैंने पहले किया था।

रास्ते में बहुत से लोग इकट्ठे थे। मुस्कराकर उन्होंने मेरा अभिवादन किया। वे हाथ हिला रहे थे, तालियां बजा रहे थे। स्थानीय अखबारों को पढ़कर मुझे पता चला कि मेरी नियुक्ति की खबर से लोगों को काफी खुशी हुई थी। समारोह किए गए। पटाखे चलाए गए, रोशनी की गई और भांगड़ा भी। अखबारों में खुशी से नाचते हुए लोगों के चित्र भी छपे।

मैंने सोचा, आखिर जम्मूवासी इतने खुश और उत्साहपूर्ण क्यों थे? मेरी एक झलक पाने के लिए क्यों वे खिड़कियों से, छतों से, दुकान के कोनों से झांक-झांककर देख रहे थे? उन्हें क्या मिला? उन्हें इसमें क्या फायदा समझ आया? पूरा माहौल सम्भावनाओं और उम्मीदों से क्यों भरा हुआ था?

मुझे लगा कि भारत के लोगों में सामान्यतः न्याय, सत्य और ईमानदारी की एक सहज इच्छा है। मेरे पहले कार्यकाल में जम्मू के लोगों ने ये सब बातें कार्य में परिणति होते देखी थीं। आज उनकी खुशी, शायद इसी छिपी हुई इच्छा की अभिव्यक्ति थी। क्या इससे यह अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता कि भारतीय लोग केवल शोषक लोकतंत्र और निर्जीव राजनैतिक व्यवस्था में ही निन्दनीय प्रवृत्तियां प्रकट करते रहे हैं और जो निन्दनीय भी है?

मैंने यह सब विचार कुछ और शांतिपूर्ण समय में सोचने के लिए छोड़ दिए।

फिलहाल मुझे शपथ लेनी थी, पद संभालना था, अव्यवस्था और विध्वंस की सीमाओं का अनुमान लगाना था और पुनर्निर्माण तथा पुनरुद्धार की नीति को निर्धारित करना था। यह काम चुनौतीपूर्ण था। इस राजनीतिक और प्रशासनिक दलदल को पार करना कठिन था जिसे अवसरवादी राजनीतिज्ञों ने और भी गन्दा कर रखा था।

मैंने पद की शपथ शाम को ली। समारोह शीघ्रता से निपटाया जाना था। जितना स्थान प्रबन्ध का था उससे कही अधिक लोग आये। नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस (इ) ने समारोह का बहिष्कार किया। मैं उनका उद्देश्य समझ न सका। यह पार्टी को बचाने का समय था या मेरी परेशानियो मे एक और अड़ंगा लगा राजनैतिक फायदा उठाने का?

शपथ लेने के बाद मैंने एक भाषण दिया जो पूर्व लिखित था। मेरे लिए ऐसा करना सामान्य बात नहीं थी। लेकिन मैंने पहले से लिखा हुआ भाषण इसलिए पढ़ा क्योंकि मैं अपना रवैया बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता था। मैंने कहा :

"1986 मे मुझे आप लोगों की सेवा करने का अवसर मिला था। आप मेरा दृष्टिकोण जानते हैं और मैं आपकी अनेक समस्याएं समझता हूं। मैंने हमेशा सत्ता को सेवा करने का एक साधन माना है। मैं और अधिक लगन से आपकी सेवा करना अपना सौभाग्य मानूंगा। इस काल को राज्यपाल शासन न कहकर राज्यपाल द्वारा सेवा का काल कहा जाय संवैधानिक रूप से मैं राज्यपाल हूंगा परन्तु क्रियात्मक रूप से एक सेवक की तरह कार्य करूंगा—एक नर्स सेवक की भांति जो मरीज को प्यार, दुलार और सेवा से स्वस्थ और उत्साहपूर्ण बनाने मे मदद दे और वह शांति और रचनात्मक जीवन जी सके!

गरीब, बीमार और जरूरतमंदों की समस्याएं हल करने के लिए एक-एक पैसा बचाया जाएगा। वर्तमान स्थिति को देखते हुए मैं जम्मू, काश्मीर मे संविधान में स्वीकृत 11000 रुपये मे से केवल 1000 रुपये अपने और अपने परिवार के भोजन के लिए लूंगा। कोई भोज समारोह नहीं होगा। सरकारी यातायात, टेलीफोन और दूसरे कामो मे खर्चे को कम किया जाएगा। प्रशासन व्यय में भी कमी की जाएगी। आम आदमी की जरूरतो को पूरा करने के लिए विकास की नीति का पुनर्गठन किया जाएगा।

राज्य मे सही सोचने वाले सभी लोगों को गहरा क्षोभ है। चाहे मौत किसी की हो—हम ही लोगो का खून बहता है—हमारे ही भाई-बहनो, बेटे-बेटियो का खून बहता है। हमे यह सब खत्म करना होगा। मैं सभी को पूर्ण न्याय का विश्वास दिलाता हू। कोई भी व्यक्ति समस्या लेकर मेरे पास आ सकता है।

दोस्तो, लगता है जैसे हम अपनी प्रेरणात्मक बातो को भूल गए हैं, लेकिन मैं आपको इन पंक्तियो की याद दिलाना चाहूंगा :

जहा कारवां भूल जाते है रस्ते वहीं से निकलती है मंजिल की राहे।

"आईए, हम ईमानदारी और न्यायपूर्ण साधनों द्वारा एक स्वस्थ तथा न्यायपूर्ण समाज स्थापित करने के लिए नया मार्ग बनाए और इसके लिए अपने आपको संगठित करें। आइए हम अपनी सारी ऊर्जा सारे साधन केवल एक उद्देश्य की प्राप्ति पर केन्द्रित कर दें जिससे गरीबी और बेरोजगारी का समूल अंत हो। हमें सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धांत को याद रखना है कि निर्धन की सेवा ही परम पिता परमात्मा

की सेवा है। मैं सभी का सहयोग चाहता हूं। एक बार फिर मैं आपको एक न्यायपूर्ण, समर्पित और दृढ़ सेवा का आश्वासन देता हूं।"

रात की परेशानी और दिन की यात्रा के कारण मैं थक गया था। बोलते वक्त, मेरी आवाज बार-बार रुंध जाती। बाद में, मैंने सोचा पता नहीं, जो कुछ भी हुआ वह सही था या नहीं। सत्ता के क्षेत्र में भावना की कोई जगह नहीं। लेकिन इस तरह से मेरी बुद्धि काम नहीं करती। मेरा मानना है कि भावनाओं की गहराई ही विचारों में जान डालती है और शब्दों को कार्यान्वित करने के लिए प्रेरित करती है।

कुछ ही समय बाद मैं इस समारोह से विदा हुआ। उत्तरी कमांड के आर्मी कमांडर, लेफ्टिनेंट जनरल गोविंदर सिंह अपने हेड क्वार्टर ऊधमपुर जाने से पहले मुझसे बात करना चाहते थे। उन्होंने मुझे घाटी की अत्यधिक गम्भीर स्थिति से अवगत कराया। उन्होंने बताया कि पूर्व अधिकारियों से जितनी बार उन्होंने इस बिगड़ती स्थिति के बारे में बात की, उतनी बार उन्हें उचित कदम उठाने का आश्वासन दिया गया। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। मैंने उन्हें भरोसा दिलाया कि अब ऐसा नहीं होगा।

अभिवादन और शुभकामनाओं का तांता लगा हुआ था। बहुत से लोग मुझसे मिलना चाहते थे और बात करना चाहते थे। पर मेरा दिमाग़ तो कहीं और लगा था। फारूक अब्दुल्ला ने इस्तीफ़ा क्यों दिया? उन्हें ऐसा करने के लिए किसने बाध्य किया? मुझे याद आया 7 नवंबर 1986 को उन्हे मुख्यमंत्री की शपथ दिलवाए जाने के बाद फारुख अब्दुल्ला का वह सार्वजनिक और रिकार्ड किया हुआ वक्तव्य—

"गवर्नर साहब, हमें आपकी बहुत जरूरत है। यह वाकई हैरानी की बात है कि आपने इतने कम समय में इस कमज़ोर और गुटों में बंटी नौकरशाही द्वारा इतना विशिष्ट काम करवा दिया। अगर आज तीन चुनाव पेटियां रखी जाएं—एक नेशनल कान्फ्रेंस की, एक कांग्रेस के लिए और एक आपके लिए तो आपकी चुनाव पेटी बिल्कुल भरी होगी और बाकी दो खाली रह जाएंगी। अगर मैं कहीं भी गलत काम करूं तो कृपया मेरे कान खींचने में जरा भी संकोच मत कीजिएगा।"

मैंने मन-ही-मन सोचा, "मेरी प्रशासनिक कुशलता पहले जैसी ही है; विकास के प्रति मेरा रुख भी बदला नही है, और मेरे उत्साह की परीक्षा भी नहीं ली गई है। तब फिर इस कलाबाजी का क्या औचित्य हो सकता है? अव्यवस्था फैलाने के बाद भी जानबूझ कर अनैतिक बाधाएं मेरे लिए क्यों खड़ी की जा रही है। एक राष्ट्रीय समस्या सुलझाने के लिए क्या एक छोटे से विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी?"

अगले दिन मैं श्रीनगर जाना चाहता था लेकिन बानिहाल दर्रे पर घने बादल होने के कारण हेलीकॉप्टर वहां से नहीं निकल सकता था। भाग्य, संयोग, नियति—चाहें इसे जो भी नाम दें—इंसानी कामों में ज़रूर कहीं-न-कहीं इनका हाथ होता है। अगर मैं उस दिन श्रीनगर पहुंच जाता, तो शायद उसी दिन कुछ क्षति का निवारण किया जा सकता था।

मैं जम्मू सचिवालय गया और वहां बहुत से लोगों और प्रतिनिधि मण्डलों से

मिला। उनमें से ज्यादातर के पास पूर्व सरकार के बारे में कुछ शिकायतें थं.। जब मैं उनकी ये सब शिकायतें सुन रहा था तो मेरे पास श्रीनगर से उत्तेजित फोन आने लगे कि छोटा बाज़ार और गुरु बाजार क्षेत्र में सुबह-सवेरे पुलिस द्वारा बड़े पैमाने पर तलाशी ली गई और लगभग 250 नौजवानों को पकड़ लिया गया। क्योंकि मुझे पता नहीं था बात क्या है, मैंने पुलिस के डायरेक्टर-जनरल एन० एस० सक्सेना से सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने बताया कि इस तरह की भयभीत कर देने वाली खबरें जानबूझ कर फैलाई जा रही थीं। उन्होंने बताया कि जांच के बाद 200 युवकों को छोड़ा जा चुका है और जिन पर गम्भीर अपराधों का संदेह था केवल उन्हें ही और पूछताछ करने के लिए रोका गया है। सक्सेना ने यह भी बताया कि गुरु बाजार में कुछ ही दिनों पहले तीन केन्द्रीय रिजर्व पुलिस अधिकारियों को गोली से भून दिया गया था। ये तलाशी उन्हीं अपराधियों को पकड़ने के लिए ली जा रही थीं।

सुबह मैंने पुलिस के रिटायर्ड डायरेक्टर जनरल पीर गुलाम हसन शाह से बात की थी और उन्हें अपना सलाहकार भी नियुक्त किया था। शाह ने पद-स्वीकार कर लिया। उनके सुझाव पर मैंने उन्हें कैबिनेट मंत्री का पद भी दे दिया। एक विज्ञप्ति जारी की गई। स्थानीय रेडियो से शाह के पद संभालने का समाचार दिया गया। बहरहाल दोपहर, होते होते, शाह का मन बदलने लगा। उन्होंने मुझे बताया कि वह यह पद नहीं संभाल सकते क्योंकि इसकी वजह से उनका और उनके परिवार का जीवन खतरे में पड़ जाएगा। उस समय मुझे लगा कि आतंकवादियों की पकड़ कितनी शक्तिशाली हो चुकी है। यहां तक कि पीर-गुलाम हसन शाह जैसी पृष्ठभूमि के अनुभव और प्रतिष्ठा वाले अधिकारी को भी इतना प्रतिष्ठित पद छोड़ना पड़ा।

मैं सचिवालय में काम करता रहा और देर शाम को राजभवन लौटा। वह रात मेरे जीवन की सबसे अजीब रात थी। मैं सोने वाला ही था कि मेरे बिस्तर के दोनों ओर रखे टेलीफोन एक साथ लगातार बजने लगे। टेलीफोन के दूसरी ओर से भय और आतंक से ग्रस्त आवाजें आ रही थी, कभी-कभी ऐसे आदमियों की दबी आवाजें भी जो आतंक से कांप रहे थे। "आज की रात हमारी आखिरी रात है" किसी ने कराहते हुए कहा। दूसरी आवाज ने बताया, "सुबह तक हम सारे कश्मीरी पंडितों को मार दिया जाएगा।" अन्य आदमी बोला, "हमारे लिए विमान भेजिए, हमें घाटी से बाहर ले चलिये।" "यदि आप सुबह हमारी लाशें नहीं देखना चाहते, हमें रात में ही यहां से बाहर भेज दीजिए।" दूसरी आवाज चीखी "हमारी औरतों, हमारी बहनों हमारी माताओं का अपहरण कर लिया जाएगा और हम सब आदमियों की हत्या।" टेलीफोन करने वाले कुछ लोगों ने बताया कि वे केवल अपना टेलीफोन पकड़े रहते हैं ताकि मैं मस्जिदों में लगे सैंकड़ों लाउडस्पीकरों से आने वाले भयानक नारों और धमकियों को सुन सकूं। उन्होंने कहा कि इतना शोर हो रहा है कि कान बहरे हो जाएं और ऐसा लगता है कि अनेकों रिकार्ड किए गए टेप एक साथ बहुत ऊंचे स्वर में बजाए जा रहे हैं जिनकी गूंज का भयानक प्रभाव पड़ रहा है जिससे वातावरण मौत के भय और आतंक से भर उठा है।

यह सब किस लिए था? इतनी बड़ी संख्या में लाउडस्पीकरों का लगाया

जाना और उनसे एक ही तरह के नारे लगाना कैसे सम्भव हुआ ? जानोन्माद उभारने की यह तकनीक कैसे प्राप्त की गयी ? इन सबको संगठित करने के पीछे किसका दिमाग काम कर रहा है ? इतने बड़े कार्य के संगठन का पता क्यों नहीं चला ? क्या यह मिली भगत थी या कर्त्तव्य के प्रति कोताही या दोनों ही।

कुछ कठिनाई के बाद मैंने श्रीनगर डिवीजनल कमिश्नर, जलील खान और डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस, एस० एस० अली से सम्पर्क किया। मैंने उन्हें तत्काल कार्यवाही करने के लिए सख्त आदेश दिए। मैंने उन्हें सलाह दी कि वे जिम्मेदार अधिकारियों को झगड़ों की सम्भावना वाले स्थानों पर भेजें और स्वयं पुलिस कंट्रोल रूम में रहें। सेना को कार्यवाही के लिए तैयार रखें। मैंने व्यक्तिगत रूप से एस० एस० पी० अल्लाह बख्श से बात की और उन्हें अपने सभी साधनों का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया। मैं जानता था कि उस परिस्थिति में वही प्रमुख व्यक्ति थे। मैंने सेना के उच्च अधिकारियों से भी सम्पर्क किया।

इस दौरान केन्द्रीय गृह मंत्रालय से भी फोन आये। चिन्तित स्वर में कहा गया "श्रीमान ! इस ओर से अतिरिक्त गृहसचिव बोल रहा हूं। हमें श्रीनगर के हिन्दुओं से आतंक भरे फोन मिल रहे हैं। ऐसा लगता है कि उन पर यंत्रणा का पहाड़ टूट पड़ा है। कश्मीरी पंडित बुरी तरह आतंकित हैं। हमें श्रीनगर का कोई अधिकारी फोन पर नहीं मिल रहा है।" नई दिल्ली से अनेक और आतंक भरे फोन आए। मैंने सभी को आश्वस्त किया कि मैं कार्यवाही कर रहा हूं।

उसी समय हमारे टेलीविजन द्वारा प्रसारित अजरबेजान में होने वाली 'जातीय क्रांति' और 'रूमानिया की मुक्ति' कार्यक्रमों ने मुझे सबसे अधिक बेचैन कर दिया। विशाल भीड़ चिल्लाते हुए दिखाई जा रही थी—"हम स्वतन्त्रता चाहते हैं ; हमें खून बहा देने की परवाह नहीं ; हमें परतंत्रता में रखने वाले दमनकारियों का नाश हो !" यह सरकार की कल्पनाहीनता और कार्य करने के विकृत तरीके का स्पष्ट प्रमाण था। काश्मीर और अजरबेजान या रूमानियों की परिस्थितियों में किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा सकती। लेकिन इस तथ्य को समझना चाहिए था कि उस समय की परिस्थितियों में काश्मीरी युवक कार्यक्रम के संदेश को गलत रूप में समझेंगे। हमारे अपने टेलीविजन कार्यक्रम द्वारा वास्तव में उन्हें उत्तेजना दी गयी। कार्यक्रम प्रसारित करने के समय ने मेरी इस धारणा की पुष्टि कर दी कि नई दिल्ली के राजनैतिक और सरकारी दफ्तर-शाहों को स्थितियों की ऊपरी और वास्तविक सच्चाइयों का कितना कम ज्ञान है।

पूरी रात मैं श्रीनगर के अधिकारियों से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क बनाए रहा ताकि स्थिति का पता चलता रहे और ठीक समय पर संगठित कार्यवाही की जा सके। मैं राज्य शासन द्वारा प्रभावपूर्ण और तत्काल कार्यवाही करने के बारे में विश्वस्त नहीं था। मुझे इस वास्तविकता का ध्यान था कि यही शासन-व्यवस्था जनवरी, 1989 को गुरू गोविन्दसिंह के जन्म दिवस पर बुरी तरह असफल रही थी और उस समय डा० फारूखअब्दुल्ला के कार्यालय से कुछ ही दूरी पर लगभग एक घंटे के अन्दर 15 लोग जम्मू में मार डाले गये थे। यह एक ऐसी घटना थी जिसका आसानी से पूर्वानुमान लगाकर उसकी रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाये जा सकते थे। करीब 4 बजे सुबह जाकर यह संकट कम हुआ। मैंने श्रीनगर के लिए उड़ान भरने से पूर्व थोड़ी नींद लेने की कोशिश की।

मैं श्रीनगर एयरपोर्ट पर जो मेरे लिए काफी परिचित था, उतरा। लेकिन वह कुछ भिन्न लगा। हवा मे वह स्फूर्ति नही थी। लगता था हवा मे एक भूखा ठंडापन घुला हुआ है। अधिकारियों में वह उल्लास कही नही था, जिसे देखने का मैं अभ्यस्त हो चुका था। अनजानी घटनाओं का सामना करने से उनमे अपने पर विश्वास कम होता जा रहा था। उनके हाव भाव तक को काठ-सा मार गया था। यह पिछले आतकवाद और दिशाहीन शासन प्रबन्ध का परिणाम ही था। अपने चारों ओर की हर चीज मुझे दुख और विषाद में डूबी मालूम पडी। काश्मीर पर जो त्रासदी छा चुकी थी उसका अनुभव वहा के पत्तों मे रहित, गतिहीन, आतक से जमे, मृतप्राय वृक्षों की भयानक शान्ति से हो रहा था।

शीघ्र कारों का काफिला शहर से होता हुआ राजभवन की ओर चल दिया। सडक के दोनो ओर लोगों की भीड़ कम थी और एयरपोर्ट सडक पर खुली कुछ दुकानों पर भी अधिक लोग नही थे। कुछ अधिकारियों ने मुझे एयरपोर्ट पर *बताया था कि मैं रास्ते के एक-दो स्थानों पर रुक सकता हू, जहा कुछ लोग मुझे* अपनी मागो के सम्बन्ध मे स्मरण-पत्र देना चाहते हैं। सन् 86 मे ऐसी प्रथा बन गयी थी कि ग्रामीण और गरीब लोग अपनी आवश्यक मांगों को लिखकर मुझे इस विश्वास के साथ दे देते थे कि वे स्वीकार कर ली जाएगी और उनको पूरा करने के लिए शीघ्र निर्णय लिये जाएंगे।

मेरी भी इच्छा थी कि मैं किसी व्यस्त सडक के एक ओर से दूसरी ओर तक जाऊ। इस सम्बन्ध मे मेरी आदत जानने और मेरी कार्य शैली को विशेष रूप से पसन्द करने वाले कुछ स्थानीय पुलिस के उत्साही अधिकारियों ने एम० एस० अस्पताल के निकट मेरे द्वारा सड़क पार करने की व्यवस्था कर रखी थी। उन्होंने सोचा था कि पहले की तरह अपने दूसरे कार्यकाल मे भी मैं वही कार्यप्रणाली अपनाऊगा—नगर के हृदय से घूमते हुए जाना और इस प्रकार लोगों के दिलो पर अपना असर डालना। लेकिन मेरी अन्तर्चेतना ने मुझे सावधान कर दिया कि परिस्थितियां बदल चुकी हैं और ऐसा करना बहुत दुस्साहसपूर्ण तथा लगभग आत्मघाती होगा। काश्मीर को जिस क्रूर आतकवाद ने जकड लिया था वह इसके विरुद्ध था। उसके सरक्षक यह जानते थे कि तोड-फोड़ और हिंसा के जो गढ उन्होने बनाए हैं, वे मेरी इस प्रकार की कार्यप्रणाली से टूट सकते हैं। वे ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि मेरा इस प्रकार से जनता मे पहली बार घूमना, मेरा अन्तिम घूमना हो। बाद मे मुझे यह पता चला कि अगर मैं गाडी से उतरकर जहा मैंने अपनी प्रतीक्षा करती भीड़ को देखा था, जाता तो सडक की दूसरी ओर स्थित आधी खुली दुकान से मेरे ऊपर गोलियो की बौछार कर दी जाती।

पहले ही दिन से आतंकवादियों, पाकिस्तानी समर्थक तत्त्वो, कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक तत्त्वों तथा राजनीतिक और शासकीय निहित तत्त्वो ने, जिन्हे अपने *द्वारा जाने-अनजाने किये गलत कार्यों के पता चल जाने का भय था, अपने-अपने* तरीके से मुझे अशक्त और पगु बनाने का निर्णय कर लिया था। वे जानते थे कि अगर मुझे अपने-आपको जमाने के लिए कुछ दिन मिल गए, बुद्धिमान तत्त्व सहायता देने के लिए मेरे चारो ओर जुट आएगे और मैं उचित तरीको से एक सही एव न्यायपूर्ण शासन व्यवस्था स्थापित करने मे सभी का सहयोग पाने मे सफल हो जाऊंगा। फिर मैं भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम चलाने और विकास

कार्यों को नये ढंग से प्रारम्भ करने में कामयाब हो जाऊंगा जिससे तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्वों का सामाजिक और आर्थिक आधार समाप्त हो जायेगा।

मुझे विश्वास था कि घाटी के निष्पक्ष लोग अन्दर से मेरी नियुक्ति पर प्रसन्न हैं। वे सोचते थे कि सन् 1986 के पुराने अच्छे दिन फिर वापिस आ जायेंगे। वे दिन ऐसे थे जब न्याय, नियम पालन और सामान्य जनों के विकास कार्यों को कार्यान्वित होते देखा गया था और भारत का उज्जवल पक्ष स्पष्ट दिखाई देता था। उस समय लोगों ने देखा था शानदार विकास कार्यों को—साफ रेशम सी चिकनी सड़कों, झील में मोती से चमकते स्वच्छ जल को, नगर के हरे-भरे वनों को, उदार नागरिक सुविधाओं को, गांवों, शहरों और सुदूर क्षेत्रों में स्कूल की बढ़ती हुई संख्या को और इस प्रकार समझा था कि यदि केन्द्र से मिलने वाली सहायता का सही उपयोग किया जाय तो बहुत कुछ किया जा सकता है। जनता वास्तव में पूछने लगी थी कि शेख अब्दुल्ला ने उनके लिए क्या किया? वे समझने लगे थे कि उनकी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का मूल कारण भ्रष्टाचार तथा गलत शासन व्यवस्था है, केन्द्रीय सरकार से मिलने वाली सहायता की कमी नहीं।

लेकिन पाकिस्तान का पक्ष लेने वाली और हिंसक शक्तियों के खेल की योजना इससे अलग थी। उनकी रुचि न्याय, विकास या भारत के स्वस्थ पक्ष में नहीं थी। इसके विपरीत वे शक्तियां चाहती थीं कि जो आदमी इन पक्षों का प्रतीक है या जो 1986 के तौर तरीकों को दोबारा ला सकता है, उसे जमने ही नहीं दिया जाए। उसकी प्रतिष्ठा को समाप्त करने के लिए हर प्रकार के तरीकों का इस्तेमाल किया जाये। वास्तव में ये तत्व रात-दिन इस जोड़-तोड़ में लगे थे कि किसी भी प्रकार राज्यपाल या राष्ट्रपति शासन राज्य पर लागू नहीं किया जाय। वे चाहते थे कि राज्य शासन उदासीनता और अनिर्णय की स्थिति में बना रहे। वास्तव में इस सम्बन्ध में (TOPAK*) टोपक योजना में इसी रण नीति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है—"शासन व्यवस्था में घुस-पैठ करो, उसका हौसला तोड़ दो और राज्य की शक्ति के सभी साधनों को कमजोर कर दो लेकिन उस सीमा तक नहीं कि केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करना पड़े।" दुर्भाग्यवश केन्द्रीय सरकार ने टोपक योजना को अनजाने ही अपनी सहायता और सहयोग दिया। उसने हस्तक्षेप नहीं किया और इस प्रकार शासन-व्यवस्था के हर अंग में तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्वों को प्रवेश कर जाने दिया।

इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह थी कि काश्मीर की संकटपूर्ण स्थिति को न समझते हुए, प्रत्येक राजनीतिक दल बजाय समस्या को सुलझाने में अपना सहयोग देने के, उसे अपने निहित स्वार्थ के लिए उपयोग करने को उत्सुक था। मेरी नियुक्ति तक को विवाद का विषय बना दिया गया। वामपंथी पार्टियों ने उसका विरोध किया, कांग्रेस (इ) और नेशनल कांफ्रेंस (फा) ने उसका विरोध किया और जनता दल के कुछ तत्त्वों ने भी उसका विरोध किया। सबने भिन्न-भिन्न कारण बताये। लेकिन सबमें समान कारण था राजनैतिक लाभ उठाना, न कि गुण-दोष पर जाना। मुझे आश्चर्य होता है उनकी उत्तरदायित्वहीन सूझ पर,

*आतंकवाद और विघटन की प्रकृति तथा स्वरूप अध्याय देखिये

राष्ट्र के कल्याण के प्रति उनकी वचनबद्धता पर और काश्मीर के बारे में एक आम राष्ट्रीय सहमति का विकास करने के उनके इरादे पर। जब मैं राष्ट्र विरोधी तत्त्वो से भयकर सघर्ष कर रहा था, वे मुझे कचोटने मे जुटे थे।

मेरे वहा पहुंचने से पूर्व हुई एक महत्त्वपूर्ण घटना ने स्थिति को और अधिक जटिल बना दिया था। डॉ० फारूख अब्दुल्ला 16 जनवरी को श्रीनगर आये। उन्होंने पुलिस हेडक्वार्टर मे एक बैठक की। इसमें उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा पुलिस की अकर्मण्यता को गम्भीरता से लिया जा रहा है और उन पर कुछ अच्छे नतीजे दिखाने पर दबाव डाला जा रहा है। जब कुछ अधिकारियो ने कहा कि उन्हे कुछ कामों को करने की इजाजत नही तो डॉ० फारूख अब्दुल्ला को क्रोध आ गया। उन्होंने स्थानीय पुलिस को पूरी तरह भ्रष्ट बताते हुए पुलिस के नये डायरेक्टर जनरल एन० एस० सक्सेना और सी० आर० पी० के इन्सपेक्टर जनरल जोगिन्दर सिंह को इस दिशा में पहल करने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि वे उस क्षेत्र की तलाशी लेना चाहते हैं, जहा आतंकवादियो द्वारा सैनिको पर गोलियां चलाई जाती हैं। डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने अपनी स्वाभाविक भडकीली शैली में क्रोध से कहा, "तुम जो चाहो करो।" उन्होंने ऐसा स्पष्ट रूप से स्थिति पर बिना गहराई से विचारे, बिना विस्तार मे जाये और कार्यवाही के नतीजो का बिना अनुमान लगाये कह दिया।

इसी विचार-विनिमय के आधार पर पुलिस के डायरेक्टर जनरल, सी० आर० पी० इन्सपेक्टर जनरल, एस० एस० पी० श्रीनगर ने जनवरी 19-20 की रात्रि को छोटा बाजार, गुरुबाजार क्षेत्र मे सी० आर० पी० को लगा दिया। मैंने अपने पद की शपथ 19 जनवरी को जम्मू मे ली। मुझे इस विषय में किसी प्रकार की सूचना नही दी गई।

जब तलाशियां ली गईं, उनकी प्रतिक्रिया हुई। डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने, जिन्होंने स्वय तलाशियां लेने का निर्णय लिया था, अपनी पार्टी के सदस्यों से गुप्त रूप से कहा कि वे जनता को तलाशियो के विरुद्ध भडकायें। उनका एकमात्र लक्ष्य पूर्व संध्या को कार्यभार सभालने वाले शासन के लिए समस्याएं उत्पन्न करना था। उनके अनेकों निम्न स्तर के समर्थक मस्जिदो में तोड-फोड करने वालो से मित्रवत व्यवहार करते तथा उत्तेजनापूर्ण भूमिका निभाते देखे गये।

'ऑपरेशन सर्च' (जनवरी 19-20) की प्रकृति ही ऐसी थी जिससे पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि राज्यपाल वैसे आदेश नही दे सकता था और न उसे कुछ ही घटों मे सगठित कर सकता था। जब एक समाचार संवाददाता द्वारा यह प्रश्न डॉ० फारूख अब्दुल्ला से पूछा गया, वे तकनीकी बातो का सहारा लेने लगे। उन्होंने संवाददाता से कहा कि वह उन्हे उनके लिखित आदेश दिखाये। इस प्रकार उन्होंने बेचारे डायरेक्टर जनरल, पुलिस और इन्स्पेक्टर जनरल सी० आर० पी० की प्रतिष्ठा पर पानी फेर दिया।

19 जनवरी को ही डॉ० फारूख अब्दुल्ला की पार्टी, 'नेशनल कांफ्रेंस' ने एक उत्तेजक बयान जारी किया। उनकी योजना जो की कांग्रेस (इ) के साथ विचार-विमर्श के बाद बनी थी, नयी शासन व्यवस्था मे अधिक-से-अधिक सम्भावित बाधाएं डालने की थी।

पड़ताल करने के लिए कहा। मरवाह ने अपनी रिपोर्ट में लिखा :

"पुलिस के डायरेक्टर जनरल ने मुझे मौखिक रूप से बताया है कि ये तलाशियां तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ० फारूख अब्दुल्ला के आदेश पर की गई थीं। स्पष्ट रूप से ये तलाशियां उन आतंकवादियों को पकड़ने के लिए की गई थीं, जो पुलिस अधिकारी की सूचना के अनुसार उस क्षेत्र में छिपे हुए थे।

सभी विवरणों से ऐसा लगता है कि आतंकवादी राज्य सरकार को मुगालते में डालकर, भारतीय संघ से अलग स्वतन्त्र होने की घोषणा करने वाले थे। ऐसे आन्दोलन के लिए पहले से ही तैयार थे। यह तथ्य कि आन्दोलन के नेताओं ने इन तलाशियों की जांच करवाने की मांग को आगे नहीं बढ़ाया, केवल इसी धारणा की पुष्टि करता है।"

देश की दुखद और भयंकर राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति मेरा मन आवेश से भरा हुआ था, इसीलिए राजभवन खामोश और अकेला लग रहा था, एक ऐसे प्रहरी की भांति जो डल झील की उदासी और उसकी तहों में जमे हुए विद्रोह का प्रतीक हो।

कार्यालय का कमरा उजाड़ दिख रहा था। ऐसा लगता था कि वह अकर्मयता में जम गया हो। उसके कोने से एक छोटा, पुराना सोफा मेरी ओर ताक रहा लगता था मानो कह रहा हो कि इतिहास का अपना तर्क होता है, वह अपने अवसर देता है और जो राष्ट्र दिये गये अवसरों का लाभ नहीं उठाते, उन्हें अपनी अकर्मण्यता का कुफल और कष्ट भुगतना पड़ता है। मैंने स्कूल में सीखा था कि इतिहास की देवी अंधी नहीं है और वह दूसरे के अंधेपन को भी माफ नहीं करती। उस दिन विशाल इमारत जिसे राजभवन कहते हैं, में अकेला खड़ा मैं अनुभव कर रहा था कि वह बात कितनी सच है। खेद की बात यह थी कि दूसरों के अंधेपन के कारण मुझे टटोलने पड़ रहे थे, जिससे उसे छुटकारा दिलाया जा सके।

कार्यालय की मेज भयानक रूप से सुस्त थी। उसकी अनुपात से अधिक लम्बी सतह मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। उसके ऊपर मेरी छोटी-सी डायरी का अस्तित्व ही नहीं लग रहा था। प्रयत्न करके मैं उस कुर्सी की ओर बढ़ा जिस पर पहले बैठा करता था। वह सदैव सीधी और दृढ़ दीखती थी। लेकिन उस दिन वह बहुत ठंडी और उदास-सी थी। कम वोल्टेज के कारण बल्बों की धुंधली रोशनी राज्य में फैली शक्ति-शून्यता का प्रतीक लग रही थी और विषाद को बढ़ा रही थी।

बाहर घटनाएं पिछली रात की तरह ही बहुत तेजी से घटित हो रही थीं। आतंक और भय उत्पन्न करने वाली आवाजें और इस्लामी साम्प्रदायिकता की शब्दावली से भरे भाषणों से वातावरण भरा हुआ था। गांवों से, शहरों के केन्द्र से और बाहरी क्षेत्रों से लोगों को इकट्ठा करके लाया जा रहा था। भीड़ पर मस्जिदों में एकत्रित होने के लिए जोर डाला जा रहा था। लगता था कि नागरिक प्रशासन नाम की कोई चीज ही नहीं रह गई है। नागरिक प्रशासन की अकर्मण्यता असहनीय थी। पुलिस के डायरेक्टर जनरल ने बाद में मुझे बताया कि उसे डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल को घर से बाहर ड्यूटी पर लानेमें छःघंटे से अधिक लग गये थे।

मैंने अपने को जानी-पहचानी भूमि पर बिलकुल अकेला और साधनहीन-सा पाया। यद्यपि हवाई अड्डा, वृक्ष, पहाड़ियां, झीलें, सड़कें, कार्यालय और राजभवन सब कुछ वही थे, फिर भी वे बहुत भिन्न थे। उनमें से कोई शक्ति चली गई थी—ऐसी शक्ति जो चीजों को उनके अर्थ, रंग-रूप और जीवन देती है। भावनाएं और अभिव्यक्तियां बदल चुकी थीं। सभी लोग डरी हुई फुसफुसाहटों और सहमे हुए संकेतों में बात करते हुए लग रहे थे। मैंने सोचा, पहले जैसी स्थिति फिर कभी नहीं हो पायेगी। लेकिन जीवन तो आगे बढ़ता रहता है और पतझड़ के बाद वृक्षों पर ताजी कोंपलें आती ही हैं।

अचानक मेरी काव्यात्मक मनोदशा एक यथार्थवादी और व्यावहारिक प्रशासक के रूप में परिवर्तित हो गई। कमरे की नमी मेरी मनोदशा को और अधिक निराश नहीं कर सकी। अब समय तैयार हो जाने का था। मैं अपनी कुर्सी से फुर्ती से उठा। अपने छोटे-से कमरे में चहलकदमी करते हुए मैंने अपने-आप में कहा, "मुझे कार्यवाही करनी ही चाहिए। काश्मीर को बिना संघर्ष के समाप्त नहीं होने दिया जायेगा।" सुरक्षा का प्रबंध करना होगा। रक्षा की कार्यवाही अपनानी ही होगी। संकट मोल लेकर संघर्ष करना होगा। राज्य की सत्ता को फिर से स्थापित करना होगा। श्रीनगर को आतंकवादियों, इस्लामी कठमुल्लों और उनके अनुयायियों के सुपुर्द नहीं किया जा सकता। अल्पसंख्यकों का कत्ले-आम होने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता। मैंने विचारा कि आतंकजनित प्रतिक्रिया को केन्द्र सरकार के लिए छोड़ देना चाहिए जहां सत्ता में बैठे लोगों को शायद ही कभी गहराई से यह विचार करने का समय मिलता हो कि यथार्थ में क्या हो रहा है। उनकी सूचना के स्रोत सदैव अफवाहें और निहित स्वार्थों द्वारा विकृत वर्णन ही रहते हैं। अब इस संकट की घड़ी में निर्णय लेकर उन्हें तत्काल कार्यान्वित करना होगा।

मैंने अपने सलाहकार वेद मरवाह से बात की और उत्तरी कमांड के कोर कमाण्डर लेफ्टीनेन्ट जनरल एम० ए० जकी को बुलवाया। मैं दोनों के साथ अपने कार्यालय में बैठा। मैंने कहा, "हमारे पास विचार-विनिमय का समय नहीं है। कुछ ही मिनटों में हमें कार्यवाही करनी होगी अथवा हमें कष्ट सहन करना होगा।" वे मुझसे सहमत थे। शीघ्र ही कार्यवाही शुरू हो गई। कर्फ्यू जो कि केवल नाम के लिए लगा था, उसको सख्ती से लागू करना शुरू किया गया। भीड़, जो आपे से बाहर हो गई थी और सार्वजनिक इमारतों को—नरौपुरा के एस० आई० डी० सी० कार्यालय काम्पलैक्स, वीमन पॉलीटेक्नीक, साईदा कदल, लाल बाजार, मेहजूर पुल आदि को जला रही थी, को तितर-बितर कर दिया गया। हब्बा, तुलसीबाग, गोवा कदल, लाल बाजार, सफा कदल आदि में सुरक्षा बल को गोली चलानी पड़ी। बारह उपद्रवी मारे गये और अनेकों घायल हुए। आतंकवादी, उनकी प्रचार प्रणाली और काश्मीर में रात-दिन लगातार चलने वाली अफवाहों की चक्की जनता पर अत्याचार और ज्यादतियां करने और सैंकड़ों आदमियों के मरने की अफवाहें बनाने तथा फैलाने में फौरन जुट गई कि सैंकड़ों आदमी मारे जा रहे हैं।

मुझे लोगों के मरने से दुःख होता है। मैं अपने पहले भाषण में ही कह चुका था कि कोई भी मरे, यह खून हम सभी का है।

दुर्भाग्यवश सार्वजनिक कार्यों में, आपको बड़ी बुराई को समाप्त करने लिए छोटी बुराई का आश्रय लेना पड़ता है और घटनाएं सदैव वैसी ही दिशा में नहीं होतीं जैसा आप चाहते हैं। अपने कार्यालय में बैठे हुए आप निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि अधिक ज्यादती की गई। ऐसे विषयों में जस का तस न्याय करना कठिन है। आपके सामने सदैव दो प्रकार के विवरण होते हैं। जो स्थिति काश्मीर में हो गई थी जनता में से कोई भी उसके अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकता था जो कि आतंकवादी कहलवाना चाहते थे। उनके खिलाफ जरा-सी फुसफुसाहट भी मौत को न्योता दे सकती थी।

अत्यधिक जागरूक और उदारवादी प्रशासन को भी कभी-कभी कड़े कदम उठाने पड़ते हैं। किसी विशेष स्थिति में किस रीति से निपटा जायेगा, यह निर्णय मौके पर उपस्थित अधिकारी को ही लेना पड़ता है। जब तक वह न्यायसंगत रूप से कार्य करता है, उसके निर्णय पर साधारणतया शंका नहीं की जाती।

शाम तक नगर में शान्ति हो गई। कानून और व्यवस्था फिर से लागू हो गई। कर्फ्यू की मर्यादाओं का पालन होने लगा। आगजनी की घटनाएं रुक गईं। काश्मीर को पाकिस्तान के पक्षधरों और उसकी स्वतन्त्रता चाहने वाले आतंकवादियों के पंजों से मुक्त करने की पहली प्रभावपूर्ण कार्यवाही पूरी हो गई। जिस नाटक का अन्तिम दृश्य 26 जनवरी को होना था, उसके एक महत्त्वपूर्ण अंक को घटित होने से रोक दिया गया।

रात्रि में अपने बिस्तर पर लेटा हुआ मैं दिन की घटनाओं और उनकी पृष्ठभूमि पर विचार करता रहा। मानव जीवन की हानि मुझे सदैव बेचैन कर देती है। मानवीय पीड़ा और कष्ट के बारे में सोचते हुए मैं दुःख अनुभव कर रहा था।

संवेदनाहीन मस्तिष्क वाले लोगों पर मुझे दया आती है। मुझे अच्छी तरह याद है जब मैं एक दिन पहलगांव के निकट एक 'रेस्ट हाउस' में बैठा था और उछलती, फैन उगलती, फिर और ऊंची उछलती और तब अपनी गरजती यात्रा के नये दौर के लिए कूदती हुई लिदर झील की लहरों का सुन्दर नाटक देख रहा था—उस समय सेवा-निवृत्त आर्मी अफसरों का एक छोटा-सा दल ट्राउट मछलियों का शिकार करने में सहायता मांगने आया। मैंने अपने कार्यालय को उन्हें सहायता देने का आदेश दे दिया। वे आफिसर अच्छी मछलियों का शिकार पाने की आशा में खुशी-खुशी चले गये। यद्यपि उसके बाद भी मैं लहरों को देखता रहा, पर उनसे मिलने वाला पहले जैसा रोमांच विदा हो चुका था। मेरा मन वहां से हट चुका था। मैं मछलियों के बारे में अफसोस करने लगा। मैंने विचारा कि मछली मारने के खेल से उन्हें क्या खुशी मिलेगी? क्यों वे उस पीड़ा के बारे में नहीं विचारते जो बेचारी ट्राउट को अपने कोमल मांस में कांटा फंसने पर होती होगी।

वह गरम गहरा लाल खून जो उसके शरीर से निकलकर उस साफ धवल धारा में घुल जायेगा—क्या उन्होंने इसके बारे में नहीं सोचा? क्या उन्हें उस ट्राउट की पीड़ा जरा भी महसूस नहीं होती, जो पानी से जबरन बाहर निकाले जाने पर मर जाती है? क्या वे मरने से पहले उसकी अन्तिम छटपटाहट को देखकर भी द्रवित नहीं होते?

लेकिन उस समय माहौल अलग था। वह धारा, वह ट्राउट मछली, उसका मुलायम मांस, उस साफ पानी में यूं ही बहता उसका गर्म गहरे रंग का खून, ठण्डा पड़ता उसका दर्द, सांस के लिए उसकी अन्तिम छटपटाहट—कुछ भी मायने नहीं रखता था। आज अहमियत थी व्यवस्था, सत्ता का प्रभाव और राष्ट्र की एकता बनाए रखने की। मेरे भीतर जो भी संदेह थे, सब खत्म हो गए। किसी-न-किसी को तो इससे भी गम्भीर क्षतियों की रोक-थाम करनी ही थी, खुद लिदर की रक्षा करनी होगी।

और जाहिर है, कलाश्निकोव और बमों से लैस ये लोग ट्राउट नहीं थे जिन्हें कोई मछुआरा फांसने की ताक में था। वे तो इन्सानी खून के प्यासे भेड़िये थे और दरअसल दोषी वे लोग थे, जिन्होंने स्पष्ट और समय पर दी गई चेतावनी के बावजूद इस दुःखपूर्ण स्थिति को और अधिक उलझने दिया।

बहुत देर हो रही थी। 'मुझे थोड़ा सो लेना चाहिए' मैंने खुद से तर्क किया, 'इन पीड़ादायक विचारों से अपनी उलझनें और बढ़ा लेने का कोई फायदा नहीं है। ऐसी चीजें कभी काम नहीं आतीं।'

मैंने सोचा कि ताजी हवा से शायद नींद आ जाए। मैं अपने बिस्तर से उठा और वह खिड़की खोल दी, जो मेरे ए० डी० सी० ने सुरक्षा के ख्याल से बन्द कर दी थी। उस रात बिलकुल हवा नहीं चल रही थी। फिर भी मैंने अपने चेहरे में सरसराकर गुजरता हुवा सा एक झोंका महसूस किया। वह झोंका भी अपना एक संदेश दे गया।

रात बिलकुल शान्त थी, भयावह रूप से शान्त। लेकिन यह एक ऐसा मौन था, जो मेरे कानों में गरज रहा था। झील के उस पार, कुछ ही दूरी पर थी शंकराचार्य पहाड़ी, जो हमारे आंतरिक ओज, कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक हमारी आधारभूत परम्परा का प्रतीक है। इस पूरे हिंसात्मक वातावरण में वह कितनी असहाय और उदास लग रही थी? क्या हमारे नेताओं के लिए उसकी कोई अहमियत रह गई थी? क्या उनको यह एहसास था कि आज भारत को एक नयी शक्ति की जरूरत है, जो सबको जोड़े—एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सामाजिक और नैतिक दर्शन की जरूरत है जो पतन और विघटनकारी शक्तियों के सामने शंकराचार्य चट्टान की तरह खड़ा हो सके?

लगा, जैसे चारों ओर की पहाड़ियां, पेड़ों के झुंड मुझे अपनी दुःख भरी, पथराई नजरों से देख रहे हैं। भ्रष्टाचार ने उनकी ताजगी भरी प्रफुल्लता को लूट लिया था और लूट-पाट करने वाले लोगों के नये गुट ने अपने कामुक हाथों से उनके लम्बे, घने बाल नोंच डाले थे। दूसरे कोने में अपने कूड़े को डल झील के किनारे को सुपुर्द करती हुई एक होटल की इमारत के भारी-भरकम खम्भे थे। यह इमारत अभी बन रही थी। ये जैसे मेरी आत्मा पर लगे घाव थे। हमारी परम्परा और विरासत में जो भी कुछ दिव्य था, उसे पैशाचिक रूप दिया जा रहा था।

मानों खिड़की ने मुझसे छल किया हो। शांत करने की बजाए उसने मेरे अंतर्तम को झकझोर दिया। मैं एक बार फिर अपने इस अवरुद्ध विक्षोभ से अशांत हो गया। खिड़की बन्द करते हुए मैंने झील पर एक उड़ती नजर डाली। वह मौन थी, बिल्कुल मौन। ऊपरी तौर पर लगभग असाध्य लगने वाली इस

स्थिति से निकलने का उपाय क्या था ? जाहिर है—मैं बिच्छुओं से भरी घाटी में नंगे पैर नहीं चल सकता था—उस घाटी में जहां आतंकवाद के भीतरी और वाह्य बलों ने संघ को तोड़ने और सत्ता हासिल करने का षड्यन्त्र रचा था। मैं छोटी से छोटी वात भी अवसर पर नहीं छोड़ सकता था। एक छोटी-सी गलती का नतीजा एक ओर चीन का नियामिन चौक या दूसरा ब्लू स्टार या फिर एक तानाशाही राज्य की औपचारिक घोषणा हो सकती थी। इस परिणाम पर हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शर्मिंदगी उठानी पड़ती।

इससे पहले शाम को मैंने छोटा बाजार क्षेत्र से कुछ प्रतिनिधियों को बुलाया था। लगभग बीस लोग आए। उनमें से आधी महिलाएं थीं। उन सबने चद्दरें ओढ़ रखी थीं और वस्त्रों का सामान्य तरीका नये नियमों के अनुसार था। ज्यादातर बात एक अधेड़ महिला ने की जो सम्भवत: एक अध्यापिका थी। वह काफी स्पष्टवक्ता थी। उसने अंग्रेजी और उर्दू में, नपी-तुली आवाज़ में बात की। उसने मुझे याद दिलाया कि 1986 में मैं इन प्रतिनिधियों के भीड़ भरे और वदबूदार मुहल्लों में गया था और वहां के निवासियों को अब भी मुझ पर विश्वास है। उसने शिकायत की कि पुलिस का रवैया गलत और अन्यायपूर्ण है।

प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों को मैंने विश्वास दिलाया कि मुझे इस बात का जरा भी इल्म नहीं था कि दरअसल क्या हुआ और तलाशी लेने का निर्णय मुझसे पहले ही लिया जा चुका था। उनसे मिलने से पहले मैंने इस केस के तथ्यों के बारे में पुलिस के डायरेक्टर जनरल और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल से पता लगा लिया था और उन छ: लोगों को छोड़कर जिनके विरुद्ध पुलिस के पास कुछ महत्त्वपूर्ण सबूत थे, बाकी सबको छोड़ देने का आदेश भी दे दिया था। मैंने इन प्रतिनिधियों को इस स्थिति के बारे में बताया और उन्हें भरोसा दिलाया कि अगले कुछ घंटों में बाकी छ: लोगों का केस भी निश्चित हो जाएगा। वे लोग संतुष्ट होकर गए, हालांकि वे स्थानीय एस० एस० पी० और सी० आर० पी० स्टाफ का साफ और दृढ़ शब्दों में विरोध करते रहे। फिर भी मुझे लगा, कि लोगों से अब भी एक संवाद, एक समझ स्थापित की जा सकती है।

मैं उन छ: नौजवानों से खुद मिला। मैंने एक भाई की तरह सहानुभूति पूर्ण रवैया अपनाया। उन्हें गलत रास्ता छोड़ देने की सलाह दी। उनमें से दो ज़ोर-ज़ोर से रोए। उनका कहना था कि पुलिस और आतंकवादी दोनों उन्हें परेशान कर रहे थे। वे गरीब थे और उनकी आय पर इसका बहुत बुरा असर पड़ता था। मैंने तुरन्त उन्हें छोड़ देने का आदेश दिया और उनके लिए कुछ गर्म कपड़े भी मंगवाए।

मुझे लगा कि व्यक्तिगत स्तर पर जो सहानुभूति मैंने इन छ: नौजवानों के प्रति दिखलाई थी उससे छोटा बाजार और उसके आसपास के क्षेत्रों में प्यार और मैत्री का मेरा संदेश पहुंच जाएगा। वैसा ही हुआ जैसा मैंने सोचा था। लेकिन ऐसा बहुत थोड़े समय के लिए हुआ। मैंने जिस चीज का ध्यान नहीं रखा था, वह थी गलत सूचना देने का अभियान, जिसे आतंकवादी और उनके सहायकों ने अपनी नीति का एक हिस्सा बना लिया था। उन्होंने उन सभी लोगों को धमकाया जो भी मेरे पक्ष में बोला, जिसने भी शहर में विकास और सफाई को लेकर

किये गए मेरे पिछले कामों की बड़ाई की। डॉ॰ फारूख के शासन काल में फायदा उठाने वाले लोगों ने अपने कुशल और चालाक तरीके से झूठी अफवाहें उड़ानी शुरू कर दीं। मुझे अनुभव हुआ कि मेरा सामना एक विशाल पत्थर की दीवार से है जिसकी नींव आतंकवाद और गलत सूचना में कहीं गहरे पैठी है।

26 जनवरी को या इसके आसपास क्या होगा—यह जानकर मैंने अपने काम की गति तेज कर दी। जितने लोगों से मैं मिल सका, मिला। स्थानीय अधिकारियों से जितनी बातचीत हो सकती थी, मैंने की। मैंने ईमानदार लोगों के लिए सारे दरवाजे खोल दिए और देशद्रोहियों को दूर ही रखा।

मुझे इस बात का कोई संदेह नहीं रहा था कि विनाश की एक योजना बनाई गई थी। 26 जनवरी को अंतिम प्रहार होना था। यह संयोगवश जुमे का दिन भी था। ईदगाह पर लगभग 10 लाख लोगों का इकट्ठा होना निश्चित किया गया था। शहर में, मस्जिदों के लाउड-स्पीकरों पर लोगों को छोटे-छोटे समूह में ईदगाह की ओर बढ़ने के लिए उकसाया जा रहा था। साथ-साथ बाहरी क्षेत्रों से भी लोग आने वाले थे। पड़ोस के गांवों और छोटे कस्बों से इस अभियान में बसों और व्यक्तिगत वाहनों की मदद ली जाएगी। पूरे धार्मिक उत्साह के साथ 'नमाज़' अदा की जाएगी। आज़ादी के नारे लगाए जाएंगे। आतंकवादियों द्वारा हवा में गोलियां चलाई जायेंगी। तब अचानक देश का राष्ट्रीय झंडा प्रतीकात्मक रूप से जलाया जाएगा और इस्लामी गणतंत्र का झंडा फहराया जाएगा। विदेशी संवाददाता और फोटोग्राफर्स इस घटना की रिपोर्ट करने और फोटो लेने के लिए तो वहां होंगे ही।

षड्यन्त्रकारियों ने यह अनुमान लगाया था कि गणतंत्र दिवस होने की वजह से सरकार इधर-उधर आने-जाने पर तो कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाएगी। और पूर्व अकर्मण्यता से अंदाज़ा लगाते हुए, उन्हें विश्वास था कि सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। नेता और प्रशासनिक अधिकारी जम्मू में, सलामी लेने में व्यस्त होंगे और स्थानीय अधिकारी कोई काम नहीं करेंगे। जैसे ही इस्लामी झण्डा फहराया जाएगा, उन अधिकारियों से आत्म-समर्पण तक करा लिया जायेगा। और अगर ज़रूरत हुई तो पुलिस अधिकारी भी मदद करेंगे।

षड्यन्त्रकारियों ने सारी तैयारियां कर ली थीं। उन्होंने इस योजना को बिल्कुल गुप्त रखा था और ऐन मौके पर वे लोगों को हैरानी में डाल देना चाहते थे। केवल एक अनुमान वे नहीं लगा पाए थे कि अब फारूख सरकार सत्ता में नहीं है। 14 अगस्त 1989 को पिछली सरकार ने इस्लामिया कॉलेज में आतंकवादियों को परेड में सलामी लेने की लगभग इजाजत दे दी थी। लेकिन अब एक नई बात हो चुकी थी। और यह थी मेरी नियुक्ति। प्रबन्धकर्ताओं ने इस बात पर ज़रा देर से ध्यान दिया और बाद में स्पष्ट भी हो गया कि वे पूरी तरह से इस तरफ गौर नहीं कर पाए थे। उन्होंने सोचा कि पहले तो मुझे इस पूरे खेल का अंदाज़ा ही नहीं होगा और अगर मुझे इसकी भनक मिल भी गई तो मेरे पास एक जवाबी नीति बनाने और उसे लागू करने का वक्त नहीं होगा। किसी भी स्थिति में मैं क्या कर सकता था? नया झण्डा फहराए जाने के बाद दस लाख लोगों की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सेना या अर्द्धसैनिक बल बुलवाता और परिणाम में एक और टिनामन चौक या ब्लू स्टार की पुनरावृत्ति? इस

स्थिति से निकलने का उपाय क्या था ? जाहिर है—मैं बिच्छुओं से भरी घाटी में नंगे पैर नहीं चल सकता था—उस घाटी में जहां आतंकवाद के भीतरी और वाह्य बलों ने संघ को तोड़ने और सत्ता हासिल करने का षड्यन्त्र रचा था। मैं छोटी से छोटी बात भी अवसर पर नहीं छोड़ सकता था। एक छोटी-सी गलती का नतीजा एक और चीन का तियानमिन चौक या दूसरा ब्लू स्टार या फिर एक तानाशाही राज्य की औपचारिक घोषणा हो सकती थी। इस परिणाम पर हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शर्मिंदगी उठानी पड़ती।

इससे पहले शाम को मैंने छोटा बाजार क्षेत्र से कुछ प्रतिनिधियों को बुलाया था। लगभग बीस लोग आए। उनमे से आधी महिलाएं थीं। उन सबने चद्दरें ओढ़ रखी थीं और वस्त्रों का सामान्य तरीका नये नियमों के अनुसार था। ज्यादातर बात एक अधेड़ महिला ने की जो सम्भवत: एक अध्यापिका थी। वह काफी स्पष्टवक्ता थी। उसने अंग्रेजी और उर्दू में, नपी-तुली आवाज़ में बात की। उसने मुझे याद दिलाया कि 1986 में मैं इन प्रतिनिधियों के भीड़ भरे और बदबूदार मुहल्लों में गया था और वहां के निवासियों को अब भी मुझ पर विश्वास है। उसने शिकायत की कि पुलिस का रवैया गलत और अन्यायपूर्ण है।

प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों को मैंने विश्वास दिलाया कि मुझे इस बात का जरा भी इल्म नहीं था कि दरअसल क्या हुआ और तलाशी लेने का निर्णय मुझसे पहले ही लिया जा चुका था। उनसे मिलने से पहले मैंने इस केस के तथ्यों के बारे में पुलिस के डायरेक्टर जनरल और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल से पता लगा लिया था और उन छः लोगों को छोड़कर जिनके विरुद्ध पुलिस के पास कुछ महत्त्वपूर्ण सबूत थे, बाकी सबको छोड़ देने का आदेश भी दे दिया था। मैंने इन प्रतिनिधियों को इस स्थिति के बारे में बताया और उन्हें भरोसा दिलाया कि अगले कुछ घंटों में बाकी छः लोगों का केस भी निश्चित हो जाएगा। वे लोग संतुष्ट होकर गए, हालांकि वे स्थानीय एस० एस० पी० और सी० आर० पी० स्टाफ का साफ और दृढ़ शब्दों में विरोध करते रहे। फिर भी मुझे लगा, कि लोगों से अब भी एक संवाद, एक समझ स्थापित की जा सकती है।

मैं उन छः नौजवानों से खुद मिला। मैंने एक भाई की तरह सहानुभूति पूर्ण रवैया अपनाया। उन्हें गलत रास्ता छोड़ देने की सलाह दी। उनमें से दो ज़ोर-ज़ोर से रोए। उनका कहना था कि पुलिस और आतंकवादी दोनों उन्हें परेशान कर रहे थे। वे गरीब थे और उनकी आय पर इसका बहुत बुरा असर पड़ता था। मैंने तुरन्त उन्हें छोड़ देने का आदेश दिया और उनके लिए कुछ गर्म कपड़े भी मंगवाए।

मुझे लगा कि व्यक्तिगत स्तर पर जो सहानुभूति मैंने इन छः नौजवानों के प्रति दिखलाई थी उससे छोटा बाजार और उसके आसपास के क्षेत्रों में प्यार और मैत्री का मेरा संदेश पहुंच जाएगा। वैसा ही हुआ जैसा मैंने सोचा था। लेकिन ऐसा बहुत थोड़े समय के लिए हुआ। मैंने जिस चीज़ का ध्यान नहीं रखा था, वह थी गलत सूचना देने का अभियान, जिसे आतंकवादी और उनके सहायकों ने अपनी नीति का एक हिस्सा बना लिया था। उन्होंने उन सभी लोगों को धमकाया जो भी मेरे पक्ष में बोला, जिसने भी शहर में विकास और सफाई को लेकर

किये गए मेरे पिछले कामो की बड़ाई की। डॉ० फारूख के शासन काल में फायदा उठाने वाले लोगों ने अपने कुशल और चालाक तरीके से झूठी अफवाहें उड़ानी शुरू कर दी। मुझे अनुभव हुआ कि मेरा सामना एक विशाल पत्थर की दीवार से है जिसकी नीव आतंकवाद और गलत सूचना मे कही गहरे पैठी है।

26 जनवरी को या इसके आसपास क्या होगा—यह जानकर मैंने अपने काम की गति तेज कर दी। जितने लोगो से मैं मिल सका, मिला। स्थानीय अधिकारियो से जितनी बातचीत हो सकती थी, मैंने की। मैंने ईमानदार लोगों के लिए सारे दरवाजे खोल दिए और देशद्रोहियो को दूर ही रखा।

मुझे इस बात का कोई संदेह नही रहा था कि विनाश की एक योजना बनाई गई थी। 26 जनवरी को अंतिम प्रहार होना था। यह सयोगवश जुमे का दिन भी था। ईदगाह पर लगभग 10 लाख लोगों का इकट्ठा होना निश्चित किया गया था। शहर मे, मस्जिदो के लाउड-स्पीकरो पर लोगो को छोटे-छोटे समूह मे ईदगाह की ओर बढने के लिए उकसाया जा रहा था। साथ-साथ बाहरी क्षेत्रो से भी लोग आने वाले थे। पडोस के गावो और छोटे कस्बो से इस अभियान में बसो और व्यक्तिगत वाहनो की मदद ली जाएगी। पूरे धार्मिक उत्साह के साथ 'नमाज' अदा की जाएगी। आजादी के नारे लगाए जाएगे। आतंकवादियो द्वारा हवा में गोलिया चलाई जायेंगी। तब अचानक देश का राष्ट्रीय झंडा प्रतीकात्मक रूप से जलाया जाएगा और इस्लामी गणतन्त्र का झंडा फहराया जाएगा। विदेशी संवाददाता और फोटोग्राफर्स इस घटना की रिपोर्ट करने और फोटो लेने के लिए तो वहां होगे ही।

षड्यन्त्रकारियो ने यह अनुमान लगाया था कि गणतंत्र दिवस होने की वजह से सरकार इधर-उधर आने-जाने पर तो कोई प्रतिबन्ध नही लगाएगी। और पूर्व अकर्मण्यता से अदाजा लगाते हुए, उन्हे विश्वास था कि सरकार कोई हस्तक्षेप नही करेगी। नेता और प्रशासनिक अधिकारी जम्मू मे, सलामी लेने मे व्यस्त होंगे और स्थानीय अधिकारी कोई काम नही करेंगे। जैसे ही इस्लामी झण्डा फहराया जाएगा, उन अधिकारियो से आत्म-समर्पण तक करा लिया जायेगा। और अगर ज़रूरत हुई तो पुलिस अधिकारी भी मदद करेंगे।

षड्यन्त्रकारियो ने सारी तैयारिया कर ली थी। उन्होने इस योजना को बिल्कुल गुप्त रखा था और ऐन मौके पर वे लोगो को हैरानी मे डाल देना चाहते थे। केवल एक अनुमान वे नही लगा पाए थे कि अब फारूख सरकार सत्ता मे नही है। 14 अगस्त 1989 को पिछली सरकार ने इस्लामिया कॉलेज मे आतंकवादियो को परेड मे सलामी लेने की लगभग इजाजत दे दी थी। लेकिन अब एक नई बात हो चुकी थी। और यह थी मेरी नियुक्ति। प्रबन्धकर्त्ताओ ने इस बात पर जरा देर से ध्यान दिया और बाद मे स्पष्ट भी हो गया कि वे पूरी तरह से इस तरफ गौर नही कर पाए थे। उन्होने सोचा कि पहले तो मुझे इस पूरे खेल का अदाजा ही नही होगा और अगर मुझे इसकी भनक मिल भी गई तो मेरे पास एक जवाबी नीति बनाने और उसे लागू करने का वक्त नही होगा। किसी भी स्थिति मे मैं क्या कर सकता था? नया झण्डा फहराए जाने के बाद दस लाख लोगो की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सेना या अर्द्ध सैनिक बल बुलवाता और परिणाम मे एक और टिनामन चौक या ब्लू स्टार की पुनरावृत्ति? इस

तरह तो मैं केवल आतंकवादियों और सीमा पार के उनके समर्थकों के उद्देश्य को ही पूरा करता। और सेना क्या कर सकती है अगर दस लाख लोग ईदगाह पर बैठने का निश्चय कर लें और वहां से हटने के लिए इंकार कर दें ?

इस दौरान मैंने जल्दी-जल्दी प्रशासन के टूटे सूत्रों को जोड़ा और इस चुनौती का सामना करने के लिए कुछ नई नीति, नए कदम भी उठाए। मैंने एक सामान्य युद्ध नीति सोच ली थी। और इसका उद्देश्य था कम-से-कम समय में, कम-से-कम जान माल की हानि के साथ ज्यादा अच्छे नतीजे हासिल किए जाएं।

26 जनवरी से एक या दो दिन पहले स्थिति को और भी गम्भीर बनाने के लिए एक बिल्कुल ग़लत अफवाह फैलाई गई कि पूर्व नियोजित योजना के अनुसार काश्मीर आर्म्ड फोर्सेस के 4 'जवान' अर्द्धसैनिक बल द्वारा मारे गए हैं। अफवाह फैलाने वाले दलाल सशस्त्र पुलिस और स्थानीय पुलिस स्टेशनों पर एक साथ काम कर रहे थे। पुलिस के कुछ लोगों ने अपनी नौकरी छोड़ना शुरू कर दी और काश्मीर आर्म्ड पुलिस के एक गुट ने डायरेक्टर जनरल के आफिस को घेर कर अपमानजनक नारे लगाए, 'खून का बदला खून' का आह्वान किया। यह लगभग एक विद्रोह था। 26 जनवरी की पूर्व सन्ध्या या फिर 26 जनवरी को ही पूर्ण विद्रोह करने का षड्यन्त्र था। विदेशी पत्रकार भी वहां पहुंच गए थे और उन्होंने नारों को रिकार्ड करने का प्रयास भी किया। लेकिन हमने अपने होशो-हवास नहीं खोए। मैंने बिना समय खोए सलाहकार कुरैशी को डायरेक्टर जनरल नियुक्त किया ताकि वह इस स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए पुलिस के लोगों से कोई संवाद स्थापित कर सके और यह सलाह भी दे सके कि अगर उन्हें कोई शिकायत है तो वे गवर्नर से भी मिल सकते हैं। साथ-ही-साथ सेना का एक दस्ता गड़बड़ी वाले क्षेत्र के निकट भेजा गया जिससे अशान्ति फैलाने वालों पर यह स्पष्ट हो जाए कि जम्मू काश्मीर आर्म्ड पुलिस को निरस्त्र करने के लिए प्रशासन जल्दी ही कार्यवाही करेगा। और पुलिस स्टेशनों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के लोग भेज दिये गए। इसका काफ़ी प्रभावपूर्ण असर हुआ और षड्यन्त्रकारियों व विघटनकारियों के सभी मनसूबे मिट्टी में मिल गए।

24 जनवरी की शाम को प्रभागीय कमिश्नर जलीलखान ने मुझे सूचना दी कि अकाली नेता सिमरनजीत सिंह मान राज्य के गेस्ट हाउस में आए हैं और अपने लिए रहने की जगह चाहते हैं तथा अपने अंगरक्षक को भी साथ रखना चाहते हैं। रहने की जगह तो निस्संदेह देनी ही थी। यह तो तहजीब का सवाल था। जलील ने मुझे यह भी बताया कि मान मुझसे मिलना चाहते हैं। मान ने अपने आने की पूर्व सूचना किसी को नहीं दी थी, न ही कोई गुप्तचर विभाग उनके आने की इच्छा के बारे में बता पाया था। मैं मान के आने पर हैरान था।

मान को इस तरह बिना किसी पूर्व सूचना के श्रीनगर क्यों आना चाहिए ? उनके इस मिशन का क्या उद्देश्य था ? जब मैं इन सभी आशंकाओं से अन्दर-ही-अन्दर जूझ रहा था और सम्बन्धित अधिकारियों से इस सन्दर्भ में बात कर रहा था तो पुलिस (सी० आई० डी०) के इंस्पेक्टर जनरल, अमर कपूर ने मुझे फोन पर बताया कि ब्रॉडवे होटल में मान अनेक विदेशी पत्रकारों से मिले हैं और उन्हें बताया है कि वह चाहते हैं कि सरकार राज्य में दूसरा 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' न करे। इस कथन से मान की यात्रा का रहस्य और बढ़

गया।

लगभग इसी समय सूचना मिली कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला जम्मू से श्रीनगर आ रहे हैं, और वे हवाई अड्डे पर तथा अपने घर में कुछ विशेष सुविधाएं चाहते हैं। ये सुविधाएं देनी ही थी। लेकिन उस समय और उन परिस्थितियों में उनके आने की ऐसी कोई जरूरत या विवशता नहीं थी। क्या उन्हें यह एहसास नहीं था कि उनके आने से सुरक्षा प्रबन्धों में कुछ तनाव आ सकता है? या उनका उद्देश्य अलग था? उन्होंने आने के लिए यही समय क्यों चुना? वे पहले क्यों नहीं आए? वास्तव में उन पर यह दोष लगाया जाता था कि जब वे सत्ता में थे तो वे खुद सुरक्षापूर्वक जम्मू में रहते थे।

अगली सुबह सिमरनजीत सिंह मान मुझसे मिलने आए। मुझसे उनकी बातचीत कुछ अनियमित और असम्बद्ध थी। जब मान मुझसे बात कर रहे थे तो मेरे लिए एक आवश्यक वायरलेस संदेश आया। स्क्वाड्रन लीडर रवि खन्ना सहित चार आई० ए० एफ० अधिकारी रावलपुरा बस स्टेंड पर इन्तजार करते हुये, आतंकवादियों की गोली का निशाना बन गए। इस बर्बर अपराध ने मुझे हिला दिया। मैंने फोन पर उस क्षेत्र की गम्भीर तलाशी के निर्देश दिए। मान ने लगातार मुझे सलाह दी कि मुझे तलाशी के आदेश नहीं देने चाहिए। उन्होंने कहा, "इससे कोई फायदा नहीं होगा।"

पाँच मिनट बाद मान चले गए। उन्होंने बताया था कि अपने गेस्ट हाउस से होते हुए वे वापिस पंजाब चले जाएंगे। जाने से पहले उन्होंने प्रेस में यह बयान जारी किया कि उन्होंने गवर्नर को सलाह दी है कि श्रीनगर में कोई 'ब्लू स्टार' नहीं होना चाहिए। मेरे साथ बातचीत में उन्होंने इस शब्द 'ब्लू स्टार' का कोई वर्णन नहीं किया था। फिर अपने प्रेस के बयान में यह क्यों इस्तेमाल किया गया? यह एक भूल थी या और कुछ? क्या उन्हें 26 जनवरी को ईदगाह पर इकट्ठी होने वाली विशाल भीड़ का अनुमान था? अगर उनका उद्देश्य मुझसे मिलने के बाद प्रेस में अपना यह विचार देना ही था तो उन्होंने चण्डीगढ़ या अमृतसर से ही मुझसे फोन पर सम्पर्क क्यों स्थापित नहीं किया।

बहरहाल, उस समय तक मैं 26 जनवरी के बारे में अपनी नीति तय कर चुका था। लेकिन मैंने अपने विचार अपने तक ही सीमित रखे, मैंने सोचा कि अगर मैंने पहले ही इस बात का आभास दे दिया तो आतंकवादियों पर यह बात खुल सकती है और वे अपनी योजना बदलकर और भी गम्भीर स्थिति पैदा कर सकते हैं।

25 जनवरी की शाम को मैंने अपने कुछ विश्वस्त सहायकों को यह बता दिया कि मैं शीत कालीन राजधानी जम्मू गणतंत्र दिवस की सलामी लेने नहीं जाऊंगा। श्रीनगर शहर छोड़ने का खतरा बहुत था। कुछ भी हो सकता था। जल्दी निर्णय लेने के लिए, अचानक पैदा हुई किसी स्थिति से निबटने के लिए, या फिर आतंकवादी ऐन मौके पर अपनी योजना बदल दें तो उसके अनुसार अपनी नीति बदलने के लिए मेरा वहां ठहरना बेहद जरूरी था।

चार आई० ए० एफ० अफसरों की बर्बर हत्या और मान तथा डॉ० अब्दुल्ला की अकस्मात यात्रा के बाद नए तनाव, नए संदेह पैदा हो गए थे। वायुसेना हैरान और क्षुब्ध थी। वायुसेना के जवानों की आंखों में एक सवाल था: "क्या

अपने बहादुर अधिकारियों को धोखेबाजी से चिड़ियों की तरह मरता देखने के लिए ही हमने 27 अक्टूबर से 17 नवंबर 1947 तक काश्मीर घाटी को लूट-मारों के विनाश से बचाने के लिए 704 उड़ानें भरी थीं ? 11, 578 फीट की ऊंचाई तक बर्फ से ढके जोजीला दर्रे तक टैंक ले जाने के मेजर जनरल थिमैया के ऐतिहासिक काम का यही परिणाम था, बिना किसी ऑक्सीजन के समुद्र तट से 23,000 फीट ऊपर एयर कमांडर मोहन सिंह द्वारा हवाई जहाज उड़ाकर ले जाने और फिर उसे 11,500 फीट की ऊंचाई पर जल्दी से बिछाई गई हवाई पट्टी पर उतारने के जोखिम का यही नतीजा था ?

मैं लेफ्टिनेंट जनरल ज़की के साथ एयर फोर्स कालोनी गया और खुद जाकर शोक ग्रस्त परिवारों को सांत्वना दी। स्क्वॉड्रन लीडर रवि खन्ना की विधवा श्रीमती रवि ने असाधारण विनम्रता और साहस का परिचय दिया। उनका दुःख बहुत बड़ा था, उनके पीले चेहरे पर वह बिल्कुल स्पष्ट था। लेकिन उन्होंने मुसलमानों या काश्मीरियों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने मुझसे सिर्फ यह प्रार्थना की कि भविष्य में किसी और परिवार के साथ ऐसा न हो पाए इसकी मैं पूरी कोशिश करूं। लेफ्टिनेंट जनरल ज़की और मैं सेना के अस्पताल में वायुसेना के घायल जवानों को भी देखने गए।

चार आई० ए० एफ० अधिकारियों की क्रूर हत्या से इस बात की पुष्टि हो गई थी कि पुलिस का एक अहम् भाग या तो आतंकवादियों में मिल गया था या फिर इस नतीजे पर पहुंच गया था कि आतंकवादियों ने इतनी शक्ति हथिया ली है कि अब प्रत्यक्ष रूप से न सही तो अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें मदद करना ही लाभ-प्रद होगा। मेरे सलाहकार कुरेशी, जिनसे मैंने तुरंत जहां हत्या हुई थी उसी घटनास्थल पर पूछताछ करने के लिए कहा था, रिपोर्ट दी—

"25 जनवरी 1990 को रावलपुरा में हत्या की जो घटना हुई, जिसमें उग्रवादियों द्वारा सुबह लगभग 0730 बजे स्क्वाड्रन लीडर रवि खन्ना और तीन अन्य ऑफीसर मारे गए और 10 लोग घायल हुए, वह जम्मू काश्मीर सशस्त्र पुलिस की अकर्मण्यता का नतीजा थी जिसकी चौकी उन तीनों स्थानों के करीब थी जहां गोलीबारी की घटना हुई। कुल मिलाकर उग्रवादियों द्वारा 2 या 3 स्वचालित हथियारों और एक एस० ए० पिस्तौल द्वारा लगभग 40 राउंड फायर किए गए। आक्रमणकारी घटनास्थल तक हांडा मोटर साइकिल और मारुति जिप्सी में पहुंचे और अपना काम करके घड़ी की सुइयों के अनुकूल एक पूरा चक्कर काट कर 'बाई पास' से गायब हो गए।

घटनास्थल के निकट पक्की बिल्डिंग में स्थित सशस्त्र जम्मू काश्मीर पुलिस चौकी पर 8 × 303 राइफल और हर राइफल पर 50 राउंड कारतूस के साथ एक हेड कांस्टेबल और 7 कांस्टेबल थे, और घटना के समय हेड कांस्टेबल सहित पांच कांस्टेबल वहां थे। उन्होंने कोई जवाबी कार्यवाही नहीं की।"

आतंकवादियों की नीति को विफल करने के लिए और उनकी योजना को समूल समाप्त करने के लिए मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि 25 जनवरी को दोपहर से कर्फ्यु लगा दिया जाएगा और गलियों और नुक्कड़ों तक में इसे सख्ती से लागू किया जाएगा। इसलिए कर्फ्यू लगाने का मुख्य उद्देश्य ईदगाह पर भीड़ को इकट्ठा होने से रोकना था। मुझे विश्वास था कि अगर ईदगाह पर भीड़

इकट्ठी हो गई तो ब्लू स्टार और निजामन चौक जैसी स्थिति को टालना असम्भव हो जाएगा। भीड़ को उकसाने के लिए उत्तेजक भाषण दिए जाएंगे और इस्लाम के नाम पर जेहाद और स्वतन्त्रता के नारे लगाए जाएंगे। सशस्त्र आतंकवादी भीड़ को यह भरोसा तो दिलाएंगे ही कि यदि पुलिस या सेना ने कोई कदम उठाया तो वे भी प्रहार करने से नहीं चूकेंगे। लोगों का विशाल समूह आराम से बैठकर सेना और अर्द्धसैनिक बल को कुछ भी कर लेने की चुनौती दे सकता था।

लेकिन खाड़कू कर्फ्यू की स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। उनका विश्वास था कि गणतंत्र दिवस पर कर्फ्यू लगाने की बात तो कोई सोच भी नहीं सकता और यदि कर्फ्यू लगा भी दिया गया तो उसे सख्ती से लागू करना असम्भव होगा। पर हर उस गली और चौराहे पर जहां से एक जत्थे को निकल कर दूसरे जत्थे में मिलकर भीड़ के एक प्रवाह को बनाना था, वहां पर पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों के तैनात होने से विद्रोहियों और उनके समर्थकों के अनुमान गलत साबित हो गए।

प्रशासन का मतलब था कार्य की पूर्ति। लोगों को संदेश मिल गया। लाउड-स्पीकर्स से ज़हर उगला गया, लोगों को बाहर आने के लिए उकसाया गया। लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अब स्थिति बदल गई थी। आतंकवादियों को अपने निष्क्रिय समर्थकों से पता चल गया कि वे अब कुछ नहीं कर सकते। उन्हें विध्वंसक कार्यों के लिए खमियाजा उठाना पड़ेगा।

यह व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर हमारी पहली विजय थी। धारा को बहने ही नहीं दिया गया। छोटी-छोटी धाराओं को उनके मूल स्थान पर ही सुखा दिया गया था।

रात में, सरकारी इमारतों पर रोशनी करने के लिए मैंने विशेष कदम उठाए और सड़क के किनारे भी रोशनी करने का निश्चय किया। आतंकवादियों ने लोगों को 'ब्लैक आउट' करने का और किसी भी इमारत में रोशनी करने या सड़क के किनारे की लाइट भी न जलने देने का निर्देश दिया था। उन्होंने पावर हाउस और विद्युत सबस्टेशनों को भी उड़ा देने की धमकी दी थी। लेकिन वे कोई भी काम करने में सफल नहीं हो सके।

शाम को, मैं शहर का जायजा लेने के लिए अपने ऑफिस से बाहर आया। ज्यादातर बत्तियां जली हुई थीं। सड़कों के किनारे बत्तियां जल रही थीं। सरकारी इमारतों पर रोशनी की गई थी। वास्तव में, श्रीनगर में कभी भी इतनी अच्छी तरह रोशनी नहीं की गई थी जितनी उस रात। रिकॉर्ड रखने के लिए मैंने कुछ महत्त्वपूर्ण जगहों की फोटो भी लेने के लिए कहा। मुझे लगा कि जैसे मेरे भीतर आशा की एक नई किरण जगी थी। विद्युत विभाग, श्रीनगर नगरपालिका, पुलिस और जन निर्माण विभाग तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में मेरे निर्देशों का पालन किया गया था। सत्ता के लिए आदर, या भय ने अपना प्रभाव डालना शुरू कर दिया।

मैंने इस घटना की तुलना पिछले गणतन्त्र दिवसों और स्वतंत्रता दिवसों पर हुए ब्लैक आउट से की, जब कि तथाकथित लोकप्रिय सरकार सत्ता में थी। शरारती तत्त्वों द्वारा मजे के लिए कुछ रोमांच पैदा करने के लिए ब्लैक आउट

अपने बहादुर अधिकारियों को धोखेबाजी से चिड़ियों की तरह मरता देखने के लिए ही हमने 27 अक्टूबर से 17 नवंबर 1947 तक काश्मीर घाटी को लूट-मारों के विनाश से बचाने के लिए 704 उड़ानें भरी थीं ? 11, 578 फीट की ऊंचाई तक बर्फ से ढके जोजीला दर्रे तक टैंक ले जाने के मेजर जनरल थिमैया के ऐतिहासिक काम का यही परिणाम था, बिना किसी ऑक्सीजन के समुद्र तट से 23,000 फीट ऊपर एयर कमांडर मोहन सिंह द्वारा हवाई जहाज उड़ाकर ले जाने और फिर उसे 11,500 फीट की ऊंचाई पर जल्दी से बिछाई गई हवाई पट्टी पर उतारने के जोखिम का यही नतीजा था ?

मैं लेफ्टिनेंट जनरल ज़की के साथ एयर फोर्स कालोनी गया और खुद जाकर शोक ग्रस्त परिवारों को सांत्वना दी। स्क्वॉड्रन लीडर रवि खन्ना की विधवा श्रीमती रवि ने असाधारण विनम्रता और साहस का परिचय दिया। उनका दुःख बहुत बड़ा था, उनके पीले चेहरे पर वह बिल्कुल स्पष्ट था। लेकिन उन्होंने मुसलमानों या काश्मीरियों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने मुझसे सिर्फ यह प्रार्थना की कि भविष्य में किसी और परिवार के साथ ऐसा न हो पाए इसकी मैं पूरी कोशिश करूं। लेफ्टिनेंट जनरल ज़की और मैं सेना के अस्पताल में वायुसेना के घायल जवानों को भी देखने गए।

चार आई० ए० एफ० अधिकारियों की क्रूर हत्या से इस बात की पुष्टि हो गई थी कि पुलिस का एक अहम् भाग या तो आतंकवादियों में मिल गया था या फिर इस नतीजे पर पहुंच गया था कि आतंकवादियों ने इतनी शक्ति हथिया ली है कि अब प्रत्यक्ष रूप से न सही तो अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें मदद करना ही लाभ-प्रद होगा। मेरे सलाहकार कुरेशी, जिनसे मैंने तुरंत जहां हत्या हुई थी उसी घटनास्थल पर पूछताछ करने के लिए कहा था, रिपोर्ट दी—

"25 जनवरी 1990 को रावलपुरा में हत्या की जो घटना हुई, जिसमें उग्रवादियों द्वारा सुबह लगभग 0730 बजे स्क्वाड्रन लीडर रवि खन्ना और तीन अन्य ऑफीसर मारे गए और 10 लोग घायल हुए, वह जम्मू काश्मीर सशस्त्र पुलिस की अकर्मण्यता का नतीजा थी जिसकी चौकी उन तीनों स्थानों के करीब थी जहां गोलीबारी की घटना हुई। कुल मिलाकर उग्रवादियों द्वारा 2 या 3 स्वचालित हथियारों और एक एस० ए० पिस्तौल द्वारा लगभग 40 राउंड फायर किए गए। आक्रमणकारी घटनास्थल तक हांडा मोटर साइकिल और मारुति जिप्सी में पहुंचे और अपना काम करके घड़ी की सुइयों के अनुकूल एक पूरा चक्कर काट कर 'बाई पास' से गायब हो गए।

घटनास्थल के निकट पक्की बिल्डिंग में स्थित सशस्त्र जम्मू काश्मीर पुलिस चौकी पर 8 × 303 राइफल और हर राइफल पर 50 राउंड कारतूस के साथ एक हेड कांस्टेबल और 7 कांस्टेबल थे, और घटना के समय हेड कांस्टेबल सहित पांच कांस्टेबल वहां थे। उन्होंने कोई जवाबी कार्यवाही नहीं की।"

आतंकवादियों की नीति को विफल करने के लिए और उनकी योजना को समूल समाप्त करने के लिए मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि 25 जनवरी की दोपहर से कर्फ्यु लगा दिया जाएगा और गलियों और नुक्कड़ों तक में इसे सख्ती से लागू किया जाएगा। इसलिए कर्फ्यू लगाने का मुख्य उद्देश्य ईदगाह पर भीड़ को इकट्ठा होने से रोकना था। मुझे विश्वास था कि अगर ईदगाह पर भीड़

इकट्ठीहो गई तो ब्लू स्टार और निजामन चौक जैसी स्थिति को टालना असंम्भव हो जाएगा। भीड़ को उकसाने के लिए उत्तेजक भाषण दिए जाएंगे और इस्लाम के नाम पर जेहाद और स्वतन्त्रता के नारे लगाए जाएंगे। सशस्त्र आतंकवादी भीड़ को यह भरोसा तो दिलाएगे ही कि यदि पुलिस या सेना ने कोई कदम उठाया तो वे भी प्रहार करने से नही चूकेंगे। लोगो का विशाल समूह आराम से बैठकर सेना और अर्द्धसैनिक बल को कुछ भी कर लेने की चुनौती दे सकता था।

लेकिन खाड़कू कर्फ्यू की स्थिति के लिए तैयार नही थे। उनका विश्वास था कि गणतंत्र दिवस पर कर्फ्यू लगाने की बात तो कोई सोच भी नही सकता और यदि कर्फ्यू लगा भी दिया गया तो उसे सख्ती से लागू करना असम्भव होगा। पर हर उस गली और चौराहे पर जहा से एक जत्थे को निकल कर दूसरे जत्थे मे मिलकर भीड़ के एक प्रवाह को बनाना था, वहां पर पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों के तैनात होने से विद्रोहियों और उनके समर्थको के अनुमान गलत साबित हो गए।

प्रशासन का मतलब था कार्य की पूर्ति। लोगो को संदेश मिल गया। लाउड-स्पीकर्स से जहर उगला गया, लोगों को बाहर आने के लिए उकसाया गया। लेकिन इसका कोई असर नही हुआ। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अब स्थिति बदल गई थी। आतंकवादियों को अपने निष्क्रिय समर्थकों से पता चल गया कि वे अब कुछ नही कर सकते। उन्हे विध्वंसक कार्यों के लिए खमियाजा उठाना पड़ेगा।

यह व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर हमारी पहली विजय थी। धारा को बहने ही नही दिया गया। छोटी-छोटी धाराओ को उनके मूल स्थान पर ही सुखा दिया गया था।

रात मे, सरकारी इमारतो पर रोशनी करने के लिए मैंने विशेष कदम उठाए और सडक के किनारे भी रोशनी करने का निश्चय किया। आतंकवादियों ने लोगों को 'ब्लैक आउट' करने का और किसी भी इमारत मे रोशनी करने या सडक के किनारे की लाइट भी न जलने देने का निर्देश दिया था। उन्होंने पावर हाउस और विद्युत सबस्टेशनों को भी उड़ा देने की धमकी दी थी। लेकिन वे कोई भी काम करने मे सफल नही हो सके।

शाम को, मैं शहर का जायजा लेने के लिए अपने ऑफिस से बाहर आया। ज्यादातर बत्तियां जली हुई थी। सडको के किनारे बत्तियां जल रही थी। सरकारी इमारतो पर रोशनी की गई थी। वास्तव मे, श्रीनगर मे कभी भी इतनी अच्छी तरह रोशनी नही की गई थी जितनी उस रात। रिकॉर्ड रखने के लिए मैंने कुछ महत्वपूर्ण जगहो की फोटो भी लेने के लिए कहा। मुझे लगा कि जैसे मेरे भीतर आशा की एक नई किरण जगी थी। विद्युत विभाग, श्रीनगर नगरपालिका, पुलिस और जन निर्माण विभाग तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओ मे मेरे निर्देशो का पालन किया गया था। सत्ता के लिए आदर, या भय ने अपना प्रभाव डालना शुरू कर दिया।

मैंने इस घटना की तुलना पिछले गणतन्त्र दिवसों और स्वतन्त्रता दिवसो पर हुए ब्लैक आउट से की, जब कि तथा कथित लोकप्रिय सरकार सत्ता मे थी। शरारती तत्त्वो द्वारा मजे के लिए कुछ रोमाच पैदा करने के लिए ब्लैक आउट

किया जाना, और उस समय की सरकार का इन सभी चीजों को गम्भीरता से न लेना—मुझे परेशान किया करता था। यहां तक कि प्रशासन के ही कुछ अधिकारी इन घटनाओं का मजा उठाते थे। नतीजन, समय के साथ-साथ नौजवानों का यह स्वभाव हो गया था कि वे भारत के पक्ष में रहने वाले दलों को शर्मिंदा करें और इससे काफ़ी प्रचार प्रसिद्धि पा लें। सहिष्णुता को कायरता समझ लिया गया था, अकर्मण्यता को सहमति और प्रशासन के अंधे रवैये को प्रोत्साहन की दृष्टि समझ लिया जाता था। इसी तरह आदतें बनती आई थीं। अधिकारियों और सत्ता को गम्भीरता से न लेने के रवैये ने गहरी चोट पहुंचाई थी।

17 जनवरी 1990 के बाद से वह पहली रात थी जब मैं शान्ति से सोया। मुझे उस ठण्डे बिस्तर में भी कुछ गर्माहट का एहसास हुआ। लेकिन यह नवजागृत उम्मीद बहुत अल्पकालीन सिद्ध हुई। 28 जनवरी की सुबह जब मैं एक सप्ताह से ज्यादा के तनाव और भय के बाद कुछ आराम महसूस कर रहा था, मुझे लगा कि किसी ने मेरी पीठ पर छुरा मार दिया है। मुझे स्थानीय अखबारों से मालूम हुआ कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला को बातचीत के लिए दिल्ली ले जाया गया है। स्पष्टत: उच्चाधिकारियों के निर्देशानुसार गुप्तचर विभाग के डायरेक्टर, जोशी, विशेष वायुयान में श्रीनगर आए, घाटी के मौजूदा हालत की जानकारी मुझसे ली और अगली सुबह जम्मू चले गए। उन्होंने मुझे श्रीनगर और जम्मू के अपने उद्देश्य के बारे में कुछ नहीं बताया—नहीं फारूख और मुहम्मद शफी से सम्पर्क स्थापित करने और उन दोनों को अखबारों के अनुसार—दिल्ली 'केन्द्रीय सरकार से बातचीत के लिए' ले जाने के बारे में कुछ कहा।

मुझे यह सब क्यों नहीं बताया जा सकता था ? मुझसे इस बारे में सलाह क्यों नहीं की गई ? क्या उच्च राजनैतिक अधिकारियों को मुझ पर कोई विश्वास नहीं था या मेरा या मेरे तर्क का सामना करने से डरते थे ? या फिर वे किसी मानसिक रोग से पीड़ित थे ? मैं बहुत परेशान और व्यग्र हो उठा। उनकी क्या मंशा थी। क्या वे प्रशासनिक संकट पर काबू पाने के लिए मेरा इस्तेमाल करके फिर अपने राजनैतिक स्वार्थों के लिए मुझे निकाल बाहर करना चाहते थे ? क्षण भर के लिए लगा जैसे मैं सनकी हो गया हूं। यह तो नहीं हो सकता। लेकिन आने वाली घटनाओं से जाहिर हो गया कि सत्ता में कुछ लोग कितने स्वार्थी हो सकते हैं। मैं बिना किसी वेतन के, अपने और अपने प्रियजनों के जीवन को जोखिम में डालकर भी, राष्ट्रीय संकट को सुलझाने के लिए तैयार था। लेकिन वे हमेशा की तरह अपनी राजनैतिक बिसात पर धोखाधड़ी के खेल खेलने के लिए तैयार बैठे थे। नितांत क्षोभ की स्थिति में, मैं अपने आप से चिल्लाया, "ये क्षुद्र लोग हैं, इस उथले और बनावटी युग की उपज ! उन्हें स्वार्थी और तंग विचार-धारा की इतनी आदत हो गई है कि वे अपने कामों में स्पष्ट त्रासदी को भी नहीं देख सकते।"

अब जिस मुख्य समस्या का सामना करना था वह थी अपने अधिकारियों की वफादारी, समर्थन और उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त करना। परन्तु अगर उन पर यह प्रभाव पड़ा कि मैं कुछ दिनों का ही मेहमान हूं तो मुझे कौन सहयोग देगा ? इस कदम को उठाने वाले व्यक्तियों को एहसास भी नहीं होगा कि वे जो

कर रहे थे उसका आशय क्या लिया जाएगा? सबसे ज्यादा मुझे अब यह विश्वास हो गया कि निर्णय लेने वाले लोग वास्तविक सच्चाईयों से वाकई अनभिज्ञ थे, ना ही वे समस्याओं के मूल की ओर उन शक्तियों को जानने थे जिनकी वजह से कश्मीरियों की समकालीन मन. स्थिति ऐसी हो गई थी। ऐसी परिस्थिति में, बहादुरी दिखाना मूर्खता थी, देश प्रेमी होना एक स्वामी विहीन कुत्ते की तरह होना था जिस पर कुछ लोग दया तो करेंगे लेकिन ज्यादातर लोग उसे नगरपालिका के श्वग्रह को सुपुर्द कर भूल जाएंगे। हमारे इतिहास के कुछ दुखात अध्याय इस बात के गवाह हैं। मुझे लगा, कि समकालीन लोकाधार तो यही चाहता था कि इतिहास में एक और दु.खपूर्ण अध्याय जोड़ा जाए।

30 जनवरी को, दिल्ली से लौटने के बाद डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने प्रेस में एक बयान दिया। उन्होंने गवर्नर प्रशासन पर हत्या और अघोषित मार्शल लॉ लगाने का दोष लगाया। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से 'आतंक का साम्राज्य' फैलाने के लिए मेरी आलोचना की। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि लोगों को वास्तविक घटनाओं से अनजान रखने के लिए प्रेस पर भी पाबंदी लगाई गई है।

यह वह नेता था जो उस प्रशासन पर गैर जिम्मेदाराना आरोप लगा रहा था जो एक गम्भीर राष्ट्रीय संकट से बचने की कोशिश कर रहा था। यह नेता था जो लोगों को अधिकारियों से नफरत करने के लिए उकसा रहा था। इसी नेता ने यह जानते हुए कि यह सच नहीं है, प्रचार किया कि एक जाति के रूप में काश्मीरी मुस्लिमों का विलोप हो रहा है। फिर भी यही वह व्यक्ति था जिसे मेरी उपेक्षा करके केन्द्रीय सरकार ने बातचीत करने के लिए बुलाया और जिसे केन्द्रीय सरकार राज्य सत्ता देना चाहती थी। एक सकट से जूझने का इससे अधिक अपरिष्कृत, अस्तव्यस्त और अनैतिक व अन्यायपूर्ण तरीका और क्या हो सकता था? भारतीय मस्तिष्क की अवरुद्धता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता था? जो कुछ गले सड़े विचारों और व्यक्तियों से अधिक कुछ नहीं सोच सकता था। वह कोई नए आयाम नहीं खोज सकता था। वह अपनी अवरुद्धता के अन्तिम छोर तक पहुच चुका था।

मैं इस अनिश्चित सी स्थिति में निराश हो गया था। मैंने त्यागपत्र देने के बारे में विचार किया। लेकिन पाकिस्तान या एकतन्त्र तानाशाही मुझे सामने दिखाई दी। मैंने अपना निश्चय बदल दिया। मैंने खुद को विश्वास दिलाया कि ऐसा करना राष्ट्र के हित में नहीं होगा। मैंने स्वयं से तर्क किया कि कोई भी प्रशासनिक अधिकारी मुझ जैसी भीतरी क्रोधाग्नि में नहीं जला होगा, न ही कोई और काश्मीर को बचाने के लिए उस गहरी प्रेरणा को पा सका होगा जो मुझमें थी। मुझे मालूम था कि राष्ट्र इस बारे में नहीं जानता कि विनाश का कैंसर किस सीमा तक घाटी में फैल चुका है। इसलिए मैंने स्वयं को शांत किया और राष्ट्रपति को पत्र लिखने का फैसला किया जिसकी एक-एक प्रति प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और उपराष्ट्रपति को भी भेजने का निश्चय किया। 30 जनवरी का पत्र अधोलिखित था :

"आदरणीय राष्ट्रपति जी,

ठीक दस दिन पहले मैंने अपना कार्यभार संभाला था। तब से अब तक मैं एक छोटी रिपोर्ट लिखने के लिए दस मिनट भी नहीं निकाल सका। स्थिति इतनी

गम्भीर और संकटपूर्ण थीं।

पूर्ण अकर्मण्यता, अविश्वसनीय अयोग्यता, भ्रष्टाचार और मौन सहमति की वजह से प्रशासनिक मशीनरी और सत्ता पर विघटनकारियों और उनके समर्थकों का अधिकार हो चुका है। ज्यादातर अधिकारी उनके तत्त्वों के कार्यशील या मूक समर्थक है, शेष नैतिक रूप से भयभीत।

दुर्भाग्य से, हमारे देश में, लोग जीतते हुए पक्ष का ही साथ देते हैं। क्योंकि विनाशकारी ताकतें लगभग छ: महीने से एक के बाद एक विजय हासिल करती जा रही हैं, तो लोग भी उनके समर्थक हो गए हैं। मशहूर आतंकवादियों को पैसा, भोजन और वाहन की हर सुविधा दी जाती है। कुछ अधिकारी तो उनके हाथ भी जोड़ते हैं, और उच्च अधिकारी उस समय मुंह दूसरी ओर फेर लेते हैं। जेलर और डॉक्टर कैदी लोगों को भगाने में सहायता करते हैं। राजनैतिक कार्यकर्ताओं को दी गई पिस्तौलें अपराध करने के लिए प्रयोग की जा रही हैं। जब मैंने पद संभाला तो काश्मीर लगभग उस मुकाम पर था जहां से वापिस नहीं लौटा जा सकता।

यह वाकई, एक चमत्कार था कि 26 जनवरी को काश्मीर बचा लिया गया और हम राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शर्मिंदगी उठाने से बच गए। इस दिन की कहानी लम्बी है और यह बाद में पूरे ब्यौरे के साथ बताई जानी चाहिए।

अधिकारियों और लोगों से स्थापित मेरे पिछले सम्बन्धों के आधार पर मैं राज्य की सत्ता और शक्ति को फिर से स्थापित करने की कोशिश कर रहा हूं। सत्ता के इस ढांचे की कुछ शाखाएं मेरी ओर झुकी भी हैं। लेकिन इस संदर्भ में मेरे मिशन को डॉक्टर अब्दुल्ला द्वारा प्रचारित इस प्रभाव से क्षति पहुंची है कि वह फिर सत्ता में आ रहे हैं। अधिकारी और राज्य व्यवस्था के दूसरे अंग ऐसा प्रभाव बनने पर मेरी सहायता कैसे करेंगे?

मुझे लगता है कि अभी राष्ट्र को काश्मीर की गम्भीर स्थिति का आभास नहीं हुआ है। आधारभूत मुद्दा यह है कि क्या राष्ट्र काश्मीर को रखना चाहता है, या पाकिस्तान को दे देना चाहता है या फिर उसे एक निरंकुश धर्म तन्त्र के रूप में स्वीकार करने को तैयार है। मैं आप से गुजारिश करता हूं कि हमारे आलोचकों को काश्मीर भेजें। उन्हें तब वास्तविकता का पता चलेगा। वे तब यह पाएंगे कि अनजाने में वे देश द्रोही की भूमिका अदा कर रहे हैं। और यह तो गम्भीर दुःख का विषय होगा यदि इस स्थिति में सत्ता उन्हीं तत्त्वों को सौंप दी जाए जिनकी वजह से आज राज्य विनाश की कगार तक पहुंच चुका है।

मैंने देश के प्रमुख पत्रकारों को खुद स्थिति का जायजा लेने के लिए यहां बुलाया है जिनमें निखिल चक्रवर्ती, अरुण शौरी, इन्द्र मल्होत्रा, आर० के० मिश्र, कुलदीप नायर, प्राण चोपड़ा और एच० के० दुआ प्रमुख है।

मैंने यह पद केवल इसी उद्देश्य से संभालना स्वीकार किया था कि मैं एक राष्ट्रीय संकट को सुलझाने में सहायक सिद्ध होऊंगा। मैंने स्वयं और अपने परिवार के लिए भयानक खतरा मोल लिया है। यहां तक कि मैं अपना वेतन भी नहीं ले रहा। पद संभालने के तुरन्त बाद मैंने अपना रवैया स्पष्ट कर दिया था।

मैंने 26 जनवरी को हुई घटनाओं में अपनी भूमिका पूरी तरह अदा की है और मुझे इसका गर्व है। लेकिन अपना काम जारी रखना मेरे लिए कठिन हो

जाएगा यदि यह प्रभाव बना रहा कि जनता में मुझे पूरा समर्थन नही प्राप्त है। पहले से ही मुझे एक टूटा और बिखरा प्रशासन मिला है। यदि कमांडर पर ही हर रोज छिप कर वार किया जाए तो सफलता का क्या अवसर रह जाता है इसकी कल्पना की जा सकती है।

मेरे विचार में काश्मीर समस्या को सुलझाने के निम्नलिखित तरीके हैं—

(i) सरकार के प्रभुत्व को दृढतापूर्वक स्थापित करके जनता मे यह भावना जगाना कि किसी भी कीमत पर विनाशकारी ताकतो और उनके सहायक तत्वो से दृढतापूर्वक निपटा जाएगा और उन्हे समाप्त कर दिया जाएगा।

(ii) मजबूत, अच्छे और स्वस्थ संस्थात्मक ढाचे की रचना करके।

(iii) रोजमर्रा के प्रशासनिक कार्यों मे लोगो के प्रति एक न्यायपूर्ण और अच्छा रुख अपना कर और पिछली शिकायतो का शीघ्र निवटारा करके।

(iv) राज्य मे बडी मात्रा मे हो रहे नुकसान को खत्म करने के लिए विकास के ढाँचे को परिस्थिति के अनुसार पुर्नस्थापित करना।

(v) 7000 सीमा सुरक्षा बलो और 3000 अध्यापको की भरती जैसी आर्थिक योजनाओ को दृढ़तापूर्वक लागू करना।

(vi) राज्य विधान सभा को तत्काल भग करके लगभग छ महीनों बाद चुनाव करवा कर। तब तक कुछ विनाशकारी तत्त्वो को समाप्त कर दिया जाएगा और उनमे से कुछ चुनाव में भाग लेना चाहेंगे। विभिन्न दल एक-दूसरे की शक्ति को सतुलित कर सकेंगे। इसमे एक नया नेतृत्व उभर सकता है जो संघ का ध्यान रखने के साथ-साथ लोगो का विशेषकर युवावर्ग का समर्थन भी प्राप्त कर सके और पिछली राज्य सरकार जितना भ्रष्ट और निष्प्रभावी भी न हो।

काम चलाऊ समाधानों या सुगम रास्तों का सहारा लेना आत्मघाती नही तो गलत जरूर होगा। विष महत्वपूर्ण अंशो तक पहुच चुका है। जब तक कि उसे पूरी तरह समाप्त नहीं किया जाता, हम एक सकटपूर्ण स्थिति से दूसरी में ही लडखडाते रहेंगे।

आपका

—जगमोहन

क्या मैं अपना मत इससे ज्यादा सीधे और स्पष्ट रूप मे जाहिर कर सकता था ? लेकिन दिल्ली मे बैठे निर्णय लेने वाले लोग स्थिति के बारे मे बिल्कुल स्पष्ट नही थे। वे न तो एक मूल नीति का गठन कर सके और ना ही उस पर दृढ रह सके। वे तो अपने बिम्बों और सीमित विचारो के ही बन्दी रहे। उन्हें केवल पैबन्दनुमा समाधानो की ही आदत थी। उन्हें यह एहसास नही था कि काश्मीर मे आतंकवाद का समूल अत भद्दे विनाशकारी बलों के तुष्टीकरण पर, आतंकवादियों से बातचीत करने के सुगम रास्तों पर, मृत और अविश्वासयुक्त नेतृत्व को वापिस लाने और नए भ्रमो को पालने पर या फिर पगु, और प्राण विहीन संस्थाओ पर काम करने पर निर्भर नही करता बल्कि एक नए दौर की रूपरेखा तैयार करने, एक नई प्रेरणा की रचना करने, शब्दो को कार्यान्वित करने की नई वचन बद्धता और एक नई प्रकृति का विकास करने पर निर्भर करता है जो इस काम मे एक नए दर्शन, नई समझ और नए उत्साह को ला सके।

आतंकवाद एकाएक किसी दुर्घटना या बाहरी प्रेरणा से ही नहीं पैदा होता। इसके पनपने की एक लम्बी प्रक्रिया होती है। यह धीरे-धीरे अपने रास्ते बनाता चला जाता है। यदि आरम्भिक अवस्था में न रोका जाए, तो यह जल्दी ही मार्ग ढूंढ़ लेता और फैल कर अपने शिकार को निर्दयतापूर्वक नष्ट कर देता हैं। खून के प्यासे भेड़िए की तरह यह दिन ब दिन भयावह होता जाता है और अधिक-से-अधिक मासूम लोगों को निगलता जाता है। यही कुछ काश्मीर में हुआ है। आज की इस महामारी की जड़े बहुत गहरी हैं। और इसका संक्रमण बिना किसी रोकथाम के बढ़ता जा रहा है। अब यह शरीर के प्राणभूत अंगों तक पहुंच गया है जहां से इसे खत्म करना लगभग असम्भव है।

इतने गम्भीर रोग का ऐसा अधूरा और अनिश्चित इलाज का दुखद दृश्य देखना मेरे प्रथम दस दिन के कार्यकाल का बहुत निराशापूर्ण अनुभव था।

अब आतंकवादियों की बन्दूक का निशाना मैं था। दूसरी तरफ से बेनज़ीर भुट्टो, अमानुल्लाह खान और उनके कार्यकर्ता प्रचार के बाण छोड़ रहे थे। डॉ० फारूख अब्दुल्ला अपनी निकृष्टतम भर्त्सना का प्रयोग काश्मीरी मुसलमानों को मेरे विरुद्ध उकसाने में कर रहे थे। नई दिल्ली से अस्पष्ट संकेत आ रहे थे। अधिकतर राजनैतिक दल जानबूझ कर झूठ का सहारा लेकर मुझे मुस्लिम विरोधी सिद्ध कर रहे थे, और मुस्लिम अधिकारियों और नौजवानों सेसम्पर्क स्थापित करने की मेरी कोशिश जो मैंने 1988 में की थी, उसे नाकाम किया जा रहा था।

अब मेरे सामने यह स्पष्ट होता जा रहा था कि वर्तमान राजनैतिक प्रवृति और सत्ता में उथलेपन तथा बनावटीपन के दुष्ट पंजे में फंसा हमारा देश किसी भी संकट को हल नहीं कर सकता, तो फिर काश्मीर जैसे उलझे संकट की तो बात ही क्या। फिर भी मैंने खुद को इस बात के लिए राजी किया कि यह काम करना मेरा राष्ट्रीय और नैतिक कर्तव्य है। इस प्रकार मानसिक व्यग्रता, अनेक बोझिल उत्तरदायित्वों और पीठ में छुरा भोंक देने की स्थिति में भी मैं आगे बढ़ा।

दूसरा अध्याय

इतिहास का सर्वेक्षण

"पिछली पीढ़ियों और वर्तमान पीढ़ी के बीच एक गुप्त सहमति है।"

—वाल्टर बेंजामिन

इतिहास क्यों ?

काश्मीर काफी अर्से से समाचारों का विषय बना आ रहा है तथापि इसके भूत और वर्तमान के बारे मे आश्चर्यजनक अज्ञानता है। जानकार लोग तक जब काश्मीर के सम्बन्ध मे वार्तालाप करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे केवल घाटी तथा कुछ व्यक्ति ही महत्त्व रखते हैं। राज्य के दूसरे क्षेत्र तथा उनका एक-दूसरे पर प्रभाव और अनेक बहुत से मूल महत्त्व के विचार-विषय जिनकी जड़ें उसके इतिहास, संस्कृति एवं लोकाचार मे हैं, की उपेक्षा कर दी जाती है या उन पर पूरा ध्यान नही दिया जाता। अतः आगे बढ़ने से पूर्व उसके इतिहास का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण करना उचित होगा।

घटनाएं, व्यवहार, विशिष्ट गुण और विश्वास शून्य से नही उत्पन्न होते। उनकी जड़ें गहरी होती हैं और इन जड़ों के बीज अतीत मे डाले जाते हैं। कुछ पौधे उम्र के साथ झुक जाते है और समय के साथ समाप्त हो जाते हैं, कुछ की पत्तियां समय के साथ झड़ जाती हैं, लेकिन अनुकूल स्थितियों मे फिर से अंकुरित हो उठती हैं और कुछ इतिहास की आंधियों तथा झंझावातों से पूरी तरह समूल उखड़ जाते हैं। लेकिन कुछ दूसरे जीवित बने रहते हैं और अनजाने, चुपचाप सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित करते रहते हैं। हम सभी अतीत मे बनाये गये सामाजिक और सांस्कृतिक पिंजड़े मे रहते हैं, यद्यपि वर्तमान की ताजी हवा और रोशनी पिंजड़े की सलाखों के बीच मे से हम तक निरन्तर पहुंचती रहती है।

यह कहना यथार्थ को संकुचित रूप मे लेना होगा कि केवल वर्तमान दृश्य ही हमारा है और हमें अतीत से कुछ लेना-देना नही। क्योंकि विगत को बिना जाने, वर्तमान के प्रति जागरूक होना चीजों के प्रति भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण होगा। सिसरो ने ठीक कहा है, "यह न जानना कि आपके जन्म होने से पहले क्या हुआ, हमेशा शिशु बना रहना है।"

अपने प्रथम कार्यकाल की अवधि में जब मैं काश्मीर घाटी में अप्रैल 1984 को उतरा, मैं उसकी दृश्यावली में लगाये गये स्पष्ट घावों के बावजूद उसकी बहती धाराओं, झरनों, उसके चरागाहों और पर्वतों पर मुग्ध हो गया। परन्तु उसके दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास की पृष्ठभूमि में देखने पर मुझे आश्चर्य हुआ कि उन पर्वतों के कठोर स्तरों में कितनी हृदयहीनता छिपी है, उन चरागाहों में कितने विश्वासघात बिखरे हैं और उन बहती धाराओं पर से कितनी कठिनाइयां तथा परेशानियां गुजर चुकी हैं। काश्मीर का इतिहास उसके राजाओं और उनके दरबारियों के कारनामों की पृष्ठभूमि में देखने पर कुछ अपवादों को छोड़कर कुचक्रों, षड्यंत्रों और दुरभिसंधियों की निरन्तर होती उठा-पटक, क्षुद्रताओं, घोर वासनाओं, पापों और घृणित अपराधों की एक लम्बी विलासपूर्ण कथा है। प्रायः यह कहा जाता है कि इतिहास अपने को दोहराता है। लेकिन काश्मीर के संबंध में लगता है कि इतिहास ने अपने को दुखांत और प्रहसन दोनों रूप में बार-बार दोहराया है। विन्सेन्ट ए० स्मिथ ने उचित ही टिप्पणी की है, "विश्व के कुछ क्षेत्र ही शायद शासन के विषय में काश्मीर से अधिक अभागे हों।"

लेकिन इतिहास केवल राजाओं और सुलतानों द्वारा चले गये मार्गों पर ही नहीं चलता। वह अन्य छोटी-छोटी राहों पर भी गलियों और गली-कूचों से होता हुआ पदार्थों और मस्तिष्क के बन्द दरवाजों से झांकता हुआ गुजरता है। इतिहास केवल शासकों की ही नहीं शासितों की भी आत्मकथा है और जिस भी क्षेत्र से वह गुजरता है उसकी दिशा वहां के जनसमुदाय की आध्यात्मिकता, उसका धर्म, संस्कृति और परम्पराओं के विचारों से प्रभावित होती है।

विचारों के स्तर से देखने में काश्मीर का इतिहास प्रकट करता है कि वह अर्वाचीन संस्कृति का कितना सुन्दर पालना रहा है। "अर्वाचीन भारत अपनी प्रारम्भिक सभ्यता में काश्मीर के भव्य ध्वंसावशेषों से अधिक उपयोगी कुछ नहीं रखता है।" सैकड़ों मन्दिरों, स्तूपों, विहारों और अनेकों विचार शालाओं के अवशेष प्रकट करते हैं कि किस प्रकार अर्वाचीन काल में यह भारत के दो प्रमुख धर्मों—हिन्दूवाद और बौद्धवाद का संवर्धन स्थान रहा है तथा किस प्रकार ये धर्म लोगों की मानसिकता में मिले और मिश्रित हो गये। काश्मीर द्वारा हिन्दू विचार को अपनी रचनात्मक ऐतिहासिक देन, विशेष रूप से शैववाद के अद्वैतवादी दर्शन का विकास है जो कि 'त्रिक शास्त्र' के नाम से जाना जाता है।

और जब चौदहवीं शताब्दी के मध्य में इस्लाम आया, इसने घाटी में अपना एक विशिष्ट रंग प्राप्त कर लिया।

काश्मीर की वर्तमान समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और उनके मूल कारणों को जानने के लिए, वहां के इतिहास को सही और साफ नजरिये से देखना आवश्यक है, साथ ही वहां के शासकों और जनता की सामाजिक और धार्मिक मानसिकता को भी।

हिन्दू और बौद्ध राजाओं का काल

काश्मीर का प्रथम ज्ञात राजा गोनन्द मगध सम्राट जरासंध का सम्बन्धी और मित्र था। जरासंध मथुरा के राजा कृष्ण का पितृ तुल्य था। गोनन्द जरासंध

की सहायता के लिए गया पर वह कृष्ण द्वारा पराजित कर दिया गया और मार डाला गया। तब जरासंध का पुत्र दामोदर काश्मीर का राजा बना। अपनी पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए वह कृष्ण से युद्ध करने गया। परन्तु वह भी मार डाला गया। दामोदर की विधवा यशोवती जो कि अपने पति की मृत्यु के समय गर्भवती थी, कृष्ण की सहायता में सिंहासनासीन हुई। जब उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे औपचारिक रूप से गोनन्द द्वितीय के नाम से राजा बनाया गया। शिशु होने के कारण महाभारत युद्ध में कौरवों और पाण्डवों में से किसी ने उससे सहायता नहीं ली।

ये.घटनाएं केवल यही नहीं बताती कि काश्मीर के राजाओं और उत्तर भारत के विभिन्न भागों के राजाओं के मध्य एक-दूसरे से मजबूत सम्बन्ध थे वरन् यह भी संकेत करती हैं कि काश्मीर में जनजातीय संगठन के दिन समाप्त हो हो चुके थे और पैतृक राजतंत्र की स्थापना हो चुकी थी।

गोनन्द द्वितीय के बाद काश्मीर पर कम-से-कम 43 राजाओं ने राज्य किया। वे सभी कमजोर और महत्त्वहीन थे। उसके बाद अशोक (273-232 ईसा पूर्व) ने काश्मीर पर अपना नियन्त्रण कर लिया। उसने घाटी में बौद्ध धर्म को उत्साहित किया। अशोक ने वर्तमान नगर से पांच किलोमीटर दूर प्राचीन राजधानी श्रीनगरी की स्थापना की।

अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य खंडित होने लगा और उसके तीन *शताब्दी पश्चात् कुषाणों के नियन्त्रण में आ गया। कुषाण शासकों में तीन प्रसिद्ध* राजा हुए—कनिष्क, हुष्क और जुष्क। कनिष्क सबमें शक्तिशाली सम्राट था, जिसका राज्य उत्तरी पश्चिमी भारत और मध्य एशिया तक फैला था। उसने बाद में बौद्ध धर्म अपना लिया। बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए उसने अपनी गतिविधियों का केन्द्र काश्मीर को बनाया। बौद्ध धर्म राज्य का धर्म बन गया और काश्मीरी धर्म प्रचारक उसके संदेश को चीन तथा दक्षिणी मध्य एशिया के सुदूर स्थानों तक ले गये। कनिष्क द्वारा काश्मीर में बौद्धों का चतुर्थ सम्मेलन कुंडलवर नामक स्थान पर किया गया। कुषाणों के बाद स्थानीय शासकों ने राज्य चलाया।

छठी शताब्दी के प्रथमार्द्ध में मिहिर-कुल, एक हूण सेनापति ने आकर यहां आकर राज्य किया। मिहिर-कुल के बाद कुछ समय तक हूणों ने शासन किया। परन्तु स्थानीय शासकों ने शीघ्रातिशीघ्र सत्ता प्राप्त कर ली। ह्येनसांग, प्रसिद्ध चीनी यात्री सन् 631 में काश्मीर आया। उस समय काश्मीर पर कार्कोटा वंश का राज्य था और उसका संस्थापक दुर्लभवर्धन राजा था। ह्वेनसांग का भली प्रकार स्वागत किया गया। वह घाटी में लगभग दो वर्ष ठहरा और उसने बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों के दर्शन किये।

ह्वेनसांग के अनुसार काश्मीर के राजा का तक्षशिला, हजारा, पुंछ और राजौरी जैसे दूरस्थ स्थानों तक प्रभाव था। वह एक शक्तिशाली राजा था और एक विस्तृत राज्य पर शासन करता था। काश्मीर से काबुल तक के मार्ग पर उसका नियन्त्रण था। किन्तु वह पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं था। सम्राट हर्षवर्धन जिसकी राजधानी कन्नौज थी, वह काश्मीर पर साधारण रूप में सत्ता रखता था। काश्मीर की आर्थिक अवस्था अच्छी थी। घाटी फलों और फूलों से भरी

थी। बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार-प्रसार था। वहां 5000 बौद्ध भिक्षु और एक सौ से अधिक बौद्ध विहार थे। चार अशोक निर्मित 'चैत्य' थे, प्रत्येक में बुद्ध के शरीर का बहुत छोटा-सा अंश रखा था। बुद्ध का पवित्र दंत अवशेष भी काश्मीर के राजा के पास था। परन्तु हर्षवर्धन उसे ले गया।

ह्वेनसांग के विचार तत्कालीन काश्मीरियों के सम्बन्ध में अच्छे नहीं थे। उसने लिखा था—"वे चंचल और भीरु हैं। वे देखने में सुन्दर पर धोखेबाज हैं। वे ज्ञान पाने के शौकीन हैं और बौद्ध तथा हिन्दू दोनों धर्मों का पालन करते हैं।"

कार्कोटा वंश का सबसे शक्तिशाली राजा ललितादित्य था। उसने सन् 724 से 761 तक 37 वर्ष राज्य किया। उसमें महान् सिकन्दर जैसी महत्त्वाकांक्षा की प्रेरणाशक्ति था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसने दक्षिण भारत में कोंकण व काठियावाड़ तक सैन्य अभियान चलाया था। पूर्व में उसने बंगाल तक अपना राज्य विस्तार कर लिया था। घाटी के उत्तर पश्चिम में उसने लद्दाख और पश्चिमी तिब्बत तक अपना प्रभाव जमा रखा था। उसकी सेवा में चीन का एक बहुत कुशल सेनापति कनकुन्या था। ललितादित्य का चीन के सम्राट से भी कुछ संपर्क था। सम्भवतया उसने और चीन शासक ने तिब्बत की शक्ति को रोकने में एक-दूसरे की सहायता की थी।

ललितादित्य के द्वारा किये गये कुछ अभियानों के दावे विशेष रूप से दक्षिण के सम्बन्ध में गलत लगते हैं, तथापि यह एक वास्तविकता है कि काश्मीर द्वारा जन्म दिये गये महानतम विजेताओं और वीरों में वह श्रेष्ठ था।

ललितादित्य का सबसे स्मरणीय कार्य सूर्य देव के सम्मान में वैभवशाली मार्तण्ड मन्दिर का निर्माण करना था। इस स्थान को अब मातन नाम से जाना जाता है। इस प्रसिद्ध निर्माण के सम्बन्ध में स्टेन ने कहा था, "इस शानदार मंदिर के अवशेष अब भी घाटी में हिन्दू वास्तुशिल्प की सबसे आकर्षक वस्तु है।" इसी स्वर में यंगहसबैन्ड ने लिखा है—"यह मन्दिर संसार की किसी भी इमारत से अधिक सुन्दर स्थान पर स्थित है—पारथेनन और ताज या सेंट पीटर के स्थानों से भी कहीं अधिक सुन्दर। विशालता और मजबूती में मिश्रवासियों से तथा सुरुचिपूर्णता एवम् मनोहरता में ग्रीस से यह दूसरे नम्बर पर है। केवल प्राकृतिक सौन्दर्य को पहचानने वाला ही इस विशेष स्थान को मन्दिर के लिए चुन सकता था और क्षणभंगुरता तथा अस्थायित्व का बोध न रखने वाला कभी भी इसे इतने विशाल और मजबूत स्तर पर नहीं बना सकता था।

इसी प्रकार के प्रभावपूर्ण परिमाण और वैचारिक वैभव पुरिहासपुर के ध्वंसावशेषों में दृष्टिगोचर होते हैं, जिसका अभी हाल में उत्खनन द्वारा पता लगाया गया है। सन् 1986 के राज्यपाल शासनकाल में मैंने उसके खोये वैभव का फिर से निर्माण कर उसे एक आकर्षक पर्यटन स्थल बनाने का प्रयत्न किया था। लेकिन समय तथा अवसर मेरे अनुकूल नहीं थे।

ललितादित्य हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी था। वह भगवान विष्णु की बहुत श्रद्धा से पूजा करता था। लेकिन समान रूप से वह बौद्ध धर्म के प्रति भी उदार था। वास्तव में उसका शासनकाल 'काश्मीर बौद्ध धर्म का स्वर्णकाल' माना जाता है। केवल एक विहार—राजा विहार पर उसने ऐसा विश्वास किया जाता है करीब 84,000 हजार तोला सोना खर्च कर दिया था। उसने धर्म

और क्षेत्रीय स्वामिभक्त का बिना भेद किये विद्वान लोगों को संरक्षण दिया। वह कन्नोज से दो महान कवि—भवभूति और वाकपतिराज को अपने राजदरबार में लाया।

ललितादित्य के उत्तराधिकारियों के कुशासन के कारण उसका साम्राज्य नवीं शताब्दी में समाप्त हो गया।

आगे के डेढ़ सौ वर्षों का काश्मीरी इतिहास दो नारियों के सौन्दर्य और प्रकृति से प्रभावित हुआ। पहली, जयदेवी ने नये राजवंश उत्पल को जन्म दिया जिसमे अवन्तिवर्मन काश्मीर के श्रेष्ठ राजाओं में से एक हुआ। दूसरी, दिद्दा ने पचास वर्ष तक अपना आधिपत्य रखा और उसने ऐसी शक्तियों को सक्रिय कर दिया जिसने अन्त में काश्मीर में हिन्दू शासन का अन्त कर डाला। दोनों ही नारियां मोहक, सुन्दर और आकर्षक थीं।

काश्मीरी पहले कभी इतने सुखी और सम्पन्न नहीं हुए थे, जितने अवन्तिवर्मन के (855-883 ईसवी) 28 वर्ष के शासनकाल में रहे। उसके उदार शासन में काश्मीर दया, शान्ति और प्रचुरता की भूमि बन गया। अवन्तिवर्मन ने कोई युद्ध नहीं छेड़ा और अपनी शक्ति तथा साधनों को विकास तथा कल्याण-कार्यों में केन्द्रित किया। एक स्थानीय प्रतिभा सुय्या की सहायता से वह अनेकों सिंचाई, जल-निकास और कृषि-सुधार की योजनाओं को पूरा करने में सफल हुआ। खाद्य उत्पादन बढ़ गया और मूल्यों में गिरावट आई। सुय्या अपने काल से सौ वर्ष आगे था। झेलम के बहाव को मोड़ने की उसकी योजना आज की बहूद्देश्यीय नदी घाटी योजना की अग्रदूत थी।

अवन्तिवर्मन ने प्रकृति संरक्षण की ओर ध्यान दिया और इस सम्बन्ध में उसे आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत कहा जा सकता है। उसने जीवधारियों को मारने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कल्हन के शब्दों में, "उस समय 'शाड' मछली बिना डर के ठंडे पानी को छोड़कर नदी तट पर आकर अपनी पीठ पर सूरज की धूप ले लिया करती थी।" राजा के सिंचाई सलाहकार सुय्य ने वूलर झील में पशुओं तथा पक्षियों को मारने पर पाबन्दी लगा दी थी।

अवन्तिवर्मन के समय में विशाल स्तर पर निर्माण कार्य हुआ। राज्य की सम्पन्नता और स्थायित्व ने अवन्तिवर्मन, उसके मन्त्रियों और सम्बन्धियों को नये नगरों को स्थापित करने तथा नये मन्दिरों और मठों का निर्माण करने का अवसर दिया। राजा ने स्वयं अवन्तिपुर नगर की स्थापना की और वहां दो वैभव-पूर्ण मन्दिर 'अवन्तिस्वामिन' और 'अवन्तीश्वर' नाम से निर्मित करवाये। इनके ध्वसावशेष तक पर्यटकों के बहुत बड़े आकर्षण केन्द्र हैं। वास्तव में हर व्यक्ति जो पहलगाम जाता है, अवन्तिपुर में इन मन्दिरों को देखने के लिए रुकता है। पर्सी ब्राउन ने कहा था—'जबकि मार्तण्ड उस आकस्मिक वैभव की अभिव्यक्ति था, जब काश्मीर ने अपनी शक्ति की चेतना को पुनर्स्थापित कर लिया था, अवन्ति-स्वामिन मन्दिर परिष्कृत और अधिक सुरुचिपूर्ण भवन है जोकि समय बीतने के साथ अनुभव की परिपक्वता द्वारा निर्मित हुआ है।"

सभी दृष्टिकोणों से अवन्तिवर्मन का काल काश्मीर के इतिहास का वैभवपूर्ण समय था। वहां तब शान्ति, विकास और न्याय था। राजा और उसके मन्त्रियों में आपसी समझदारी थी। वहां धर्म परायणता और प्रकृति के संरक्षण के प्रति

जागरूकता थी और था धर्म, कला तथा संस्कृति के उच्च आदर्शों के प्रति लगाव। राजा की धार्मिक प्रवृत्ति इस तथ्य से ज्ञात होती है कि वह अपनी रोग-शय्या पर पड़ा भगवद्गीता का पाठ सुना करता था और इस पवित्र पुस्तक के श्लोकों को सुनते हुए उसने अपना शरीर त्यागा।

अवन्तिवर्मन के उत्तराधिकारी समकारवर्मन ने राज्य की शान्ति और सम्पन्नता को अनावश्यक सैन्य अभियानों द्वारा भंग कर दिया। समकार-वर्मन के उत्तराधिकारी राजाओं में सभी अयोग्य थे। उत्पल राजवंश का 939 ईसवी में अन्त हो गया। 949 ईसवी में पर्वगुप्त जोकि ब्राह्मण राज्य का मुख्य-मन्त्री था, ने विद्रोह कर दिया, राजा की हत्या कर दी और स्वयं राजगद्दी पर आसीन हो गया।

गुप्त राजवंश के काल में, लोहरिन के राजा की पुत्री दिद्दा सबसे आगे आई। आज लोहरिन पुंछ जिले में स्थित है। दिद्दा का विवाह द्वितीय गुप्त सम्राट क्षेमगुप्त (950-958 ईसवी) से हुआ था। वह काश्मीर पर 50 वर्षों तक आधिपत्य जमाये रही, पहले महारानी के रूप में, फिर पुत्र और पौत्र की संरक्षिका और अन्त में प्रत्यक्ष शासिका के रूप में।

दिद्दा इतिहास के उन रहस्यपूर्ण चरित्रों में से है जिनकी निन्दा भी की जाती है और प्रशंसा भी। वह षड्यन्त्रों, हत्याओं और लम्पटता की राजनीति पर 50 वर्षों तक विजय पाती रही और कठिनाइयों से ग्रस्त राज्य को अपनी योग्यता तथा साहस से संगठित रखा। परन्तु उसने अपने धूर्ततापूर्ण कार्यों और पापों से चारों ओर अनैतिकता फैलाकर असीमित हानि की।

नैतिक पतन, आर्थिक गिरावट और सामाजिक तथा राजनैतिक अव्यवस्था की इन परिस्थितियों में विदेशी लुटेरों ने घाटी में आना आरम्भ कर दिया। ऐसे दो विदेशी थे शाहमीर और रिंचाना। शाहमीर बारामूला के निकट एक गांव में रहने लगा और रिंचाना लार में। इन दोनों को दामरा राजा सुहदेव ने जागीर देकर उनकी सहायता की। इन दोनों ने काश्मीर के भावी इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिकायें अदा कीं।

तुर्किस्तान से आने वाले मंगोल सेनापति दुलूचा ने सन् 1320 में काश्मीर के हिन्दू राज्य पर आक्रमण कर अपार हानि पहुंचाई। उस समय चूंकि दर्रों पर कोई निगरानी नहीं रखी जाती थी, दुलूचा के सामने जो भी पड़ा वह उसे नष्ट करता चला गया। राजा सुहदेव ने लज्जापूर्ण कायरता का परिचय दिया। दुलूचा "घाटी में इस प्रकार प्रवेश कर गया जैसे कोई सिंह हिरनों की गुफा में जाता है।" काश्मीर की जनता को 'आग में जलने वाले कीड़े-पतंगों' की तरह मार डाला गया। पुरुषों को तलवार के घाट उतार दिया गया, स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बनाकर ले जाया गया। आक्रमणकारियों ने अपने मार्ग में पड़ने वाले नगरों और गांवों को जला दिया। जोनाजी के शब्दों में "काश्मीर लगभग ऐसा हो गया जैसा कोई क्षेत्र सृष्टि के पूर्व रहा होगा।"

रिंचाना जो लद्दाख से अपने पिता के बाल्टिसों द्वारा सत्ता संघर्ष में मारे जाने के बाद काश्मीर आया था, उसने इस दुर्व्यवस्था का लाभ उठाया। राजा सुहदेव के उपकारों को भूलकर उसने लार घाटी के चारों ओर के क्षेत्र को लूट लिया। रिंचाना के रास्ते का कांटा केवल मुख्यमन्त्री रामचन्द्र बचा था। उसने

दुलचा के आक्रमण से भयभीत होकर सुहदेव के भाग जाने के बाद अपने को राजा घोषित कर दिया था। रिंचाना ने धूर्तता से रामचन्द्र की हत्या करवा दी और सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार काश्मीर राज्य पर एक लद्दाखी बौद्ध का शासन हो गया।

मुसलमान सुलतान

जनता की भावनाओं को शान्त करने के लिए रिंचाना ने रामचन्द्र की पुत्री कोटारानी से विवाह कर लिया। उसने शासन को व्यवस्थित किया और शाहमीर के द्वारा कुशल तथा न्यायपूर्ण प्रशासन की स्थापना करवाई। जनता से एकात्मकता स्थापित करने के लिए वह हिन्दू धर्म स्वीकार करना चाहता था, लेकिन काश्मीरी ब्राह्मणों द्वारा उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया। तब उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसकी प्रजा का एक भाग पहले से ही इस धर्म को अपना चुका था। उसने सुलतान सद्-उद्-दीन की पदवी धारण की। इस प्रकार काश्मीर प्रथम मुसलमान राजा का राज्य प्रारम्भ हुआ।

प्रथम मुसलमान राज्य तथापि अल्प काल के लिए ही रहा। रिंचाना की सन् 1323 में मृत्यु हो गई। उसका पुत्र हैदर अल्पवयस्क था। दरबारियों ने पिछले राजा सुहदेव के भाई उदयनदेव को राजगद्दी सभालने के लिए आमन्त्रित किया। उसने इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया।

राजा उदयनदेव एक कमजोर और सुस्त शासक था। राज्य की वास्तविक शक्ति शाहमीर के हाथों में आ गई। उसने सन् 1339 में अपने को राजा घोषित कर दिया और शम्स-उद्-दीन की पदवी धारण की। शाहमीर का शासन-काल (1339-42) यद्यपि थोड़े समय रहा, पर उसने जनता के जख्मों पर मरहम की तरह काम किया। सुलतान ने जनता के प्रति मानवोचित और न्याय-पूर्ण व्यवहार अपनाया। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों के साथ समान व्यवहार करता था। उसने टैक्सों को कम कर दिया।

दूसरा महत्वपूर्ण सुलतान शाहमीर का पौत्र शिहाब-उद्-दीन (1354-73 ईसवी) था। उसके बाद उसका छोटा भाई हिन्दल सिंहासन पर बैठा। उसने कुतुब-उद्-दीन की पदवी धारण की (1373-89 ईसवी)। उसके शासनकाल में सईद अली हमदानी काश्मीर आया और इस्लाम के नियमों का कठोरता से पालन करने की शुरुआत हुई।

इसके बाद दूसरा शासक सुलतान सिकन्दर (1389-1413 ईसवी) 'बुत शिकन' अर्थात् 'मूर्ति-भंजक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके शासनकाल में इस्लाम का धार्मिक जोश पागलपन की हद तक पहुंच गया। "कोई भी ऐसा नगर, कस्बा, गांव, वन नहीं बचा जहां देवताओं के मन्दिर टूटे न बचे हों।" सुलतान ने प्रसिद्ध मार्तण्ड मन्दिर तक को गिराने का प्रयत्न किया, पर बाद में यह कार्य छोड़ दिया। बाइहकी सईदियों के प्रभाव में आकर सुलतान ने इस्लाम में वर्जित व्यवहार जैसे मदिरापान, जुआ खेलना, नाचना, बजाना आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हिन्दुओं पर 'जजिया' टैक्स लगाया गया और उन्हें माथे पर तिलक लगाने

से मना कर दिया गया। सिकन्दर ने 'शेख-उद-इस्लाम' संस्था की स्थापना की ताकि वह इस्लाम के नियमों का पूरी तरह पालन करवा सके।

सुलतान के मुख्यमन्त्री मलिक सेफ-उद्-दीन के नेतृत्व में लोगों को इस्लाम धर्म स्वीकारने के लिए जबर्दस्त अभियान छेड़ दिया गया। मुख्यमन्त्री का वास्तविक मूल नाम सुहा भट्ट था। उसने इस्लाम धर्म स्वीकारने के लिए अपना हिन्दू धर्म त्याग दिया। इस नव धर्म परिवर्तित मन्त्री के जोश की कोई हद नहीं थी। उसने अपना धर्म परिवर्तन न करने वालों के विरुद्ध आतंक फैला दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सुलतान और उसके मुख्यमन्त्री हिन्दुओं के जितने पवित्र ग्रन्थ पा सकते थे उन सबको उन्होंने डल झील में फिकवा दिया। हत्या किये गये ब्राह्मणों के सात मन जनेऊ आग में जलवा दिये गये। यही वह काल है जब से घाटी में मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि शुरू हुई।

सुलतान सिकन्दर के शासनकाल में परशिया और मध्य एशिया से बड़ी संख्या में सूफी सन्त और इस्लाम धर्म के विद्वान काश्मीर आये। अली हमदानी के पुत्र मोहम्मद हमदानी के साथ 700 सईदी आये। इन लोगों के माध्यम से काश्मीर में इस्लाम धर्म का प्रभाव और बढ़ा। उस काल में श्रीनगर की प्रसिद्ध बिजब्रेहरा मस्जिद, जामा मस्जिद के अतिरिक्त बहुत-सी मस्जिदों का निर्माण हुआ।

दूसरा सुलतान जैन-उल-अबिदीन (1420-70 ईसवी) काश्मीर का सबसे अधिक सहनशील और उदार राजा सिद्ध हुआ। उसके बारे में सही कहा जाता है कि "इतिहास में ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जिनमें पुत्र ने पिता की नीति को पूरी तरह उलट दिया हो। सिकन्दर ने जहां विध्वंस किया, जैन-उल-अबिदीन ने वहां पुनर्निर्माण किया, जिसको उसके पिता ने निकाल दिया, उसने उसे बुला लिया।" सिकन्दर और अली शाह के बाद जैन-उल-अबिदीन का शासनकाल, इतिहासकार श्रीवर के अनुसार "ऐसा था जैसे रेगिस्तान की गर्मी के विदा हो जाने के बाद किसी ने चन्दन का शीतल लेप लगा दिया हो।"

हिन्दुओं पर लगाये गये सभी प्रतिबन्ध हटा लिये गये। गऊ-वध पर पाबन्दी लग गई। हिन्दुओं द्वारा पवित्र समझी जाने वाली मछलियों को नदियों में मारना बन्द करवा दिया गया। उसने ध्वस्त मन्दिरों के पुनर्निर्माण की आज्ञा दे दी। उसने स्वयं कुछ मन्दिरों का पुनर्निर्माण करवाया। दंड पाने के भय से जो पंडित घाटी छोड़कर भाग गये थे, उसने उनको दोबारा बुलवाया। उनके गुणों के आधार पर उन्हें जिम्मेदारी के पद दिये। उसने हिन्दू शास्त्रों और महाभारत का फारसी में अनुवाद करवाया।

सुलतान जैन-उल-अबिदीन अद्‌भुत प्रतिभा का धनी था। धर्म के क्षेत्र में वह अकबर का अग्रगामी था, पुनर्निर्माण के कार्यों में वह काश्मीर का शाहजहां सिद्ध हुआ। उसने ज्ञान, कला और संस्कृति के क्षेत्रों में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया। वह रचनात्मक मस्तिष्क का व्यक्ति था। उसने उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में अनेकों नयी चीजें शुरू कीं। प्रजा के कल्याण और विकास के लिए अनेकों नहरें बनवाईं। ये नहरें निचले और दलदली इलाकों से पानी निकालकर उन्हें कृषि योग्य बनाने का काम ही नहीं करती थीं वरन् खेतों को सिंचाई की सुविधा भी देती थीं।

जैन-उल-अबिदीन ने सही अर्थों में काश्मीर का महानतम सुलतान होने की प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसने आधी शताब्दी तक राज्य किया। इतिहासकार श्रीवर ने ठीक ही कहा है—"राजा द्वारा कलियुग मे सद्गुणो से शासन करने की रीति सतयुग की तरह उज्ज्वल थी।"

सुलतान जैन-उल-आबिदीन के पुत्र अपने योग्य पिता से कही अधिक अयोग्य सिद्ध हुए और काश्मीरी सल्तनत की उपलब्धियों का तेजी से पतन होने लगा। इसके बाद आने वाले 120 वर्षों का इतिहास षडयंत्रो और कुचक्रो से भरा है। एक कमजोर सुलतान के बाद दूसरा कमजोर सुलतान आता गया। दूसरी ओर दरबारियो के विभिन्न दल—सईदी, मगरी, चक और दर शक्तिशाली बनने के खेल मे बेशर्मी के साथ जुटे रहे। चक लोग शिया विश्वास से जुडे थे और सईदी वा मगरी सुन्नी विश्वास के अंध अनुयायी थे और उनके आपसी संघर्ष के परिणाम-स्वरूप जनता को कष्ट भोगने पड़े।

इन अनिश्चित परिस्थितियो मे मुगल सेनापति मिर्जा हैदर दुगहलत ने घाटी में प्रवेश किया। वह हुमायू की सेवा मे था। जब शेरशाह ने हुमायू को सन् 1540 में कन्नोज के युद्ध मे हरा दिया, और हुमायू की सेना पीछे हटने लगी, मिर्जा हैदर ने नवम्बर, 1540 मे केवल 400 सिपाहियो के साथ घाटी मे प्रवेश किया। मगरियो और सईदियो ने उसकी हर प्रकार से सहायता की। उसने शीघ्र ही पूरी घाटी पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया और अगले ग्यारह वर्षों तक (1541-51) हुमायू के नाम पर घाटी पर शासन किया।

मिर्जा हैदर की मृत्यु के बाद स्थानीय दलो ने शक्ति पाने के लिए फिर से आपस में लड़ना शुरू कर दिया। इस संघर्ष में चक विजयी हुए। हालात इतने खराब हो गये थे कि सन् 1561 में, खुले दरबार में अली चक ने सुलतान से मुकुट छीनकर अपने भाई गाजी चक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार चक राज्य की स्थापना हुई। लेकिन इससे वास्तविक स्थिति मे कोई परिवर्तन नही आया। संघर्ष और षड्यंत्र चलते रहे। काश्मीरी दरबारियो के एक दल ने अकबर के पास पहुचकर उससे प्रार्थना की कि वह काश्मीर को अपने राज्य मे मिला लें।

मुगलो ने काश्मीर को लगभग पूर्ण अराजकता की स्थिति से मुक्त कर वहां अपना पूरा आधिपत्य 1589 मे स्थापित किया और अकबर स्वय वहा पहुचा। इस प्रकार काश्मीर मुगल साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया। इसका शासन-प्रबन्ध एक गवर्नर द्वारा किया जाता था जिसे सूबेदार कहते थे। यद्यपि मुगल शासक काश्मीर को वहां आने वाली बाढ़ो और अकाल से नही बचा सके, तथापि उन्होंने वहा एक अच्छा शासन-प्रबन्ध स्थापित किया। वहां शांति बनी रही। काश्मीर मध्य एशिया के व्यापार की धुरी बन गया। अकबर स्वय वहा सन् 1589, 1598 और फिर 1601 मे गया। वहा मुगल शासन-प्रणाली तथा संस्थायें स्थापित की गईं। इस प्रकार काश्मीर का मुख्य भूमि से अलगाव समाप्त हुआ। पहले जब घाटी मे बाढ या अकाल का प्रकोप होता था, बहुत बडी सख्या मे लोग मर जाते थे। लेकिन अब मुख्य भूमि से दो सडको द्वारा जिन्हें मुगलों ने पीर पंजाल और झेलम घाटी के दर्रो में बनाया था, खाद्यान्न शीघ्र पहुचाया जा सकता था। इस प्रकार घाटी का मुख्य भूमि से भली प्रकार सम्बन्ध जुड चुका था।

अकबर का उत्तराधिकारी जहांगीर काश्मीर से बहुत प्रेम करता था। वह

घाटी में छः बार गया। अपने संस्मरणों में उसने काश्मीर के सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसने लिखा है—"काश्मीर एक अनन्त वसन्त का उपवन, खुशियों से भरी फूलों की सेज और दरवेशों के लिए हृदय को प्रसन्नता देने वाली पैतृक भूमि है। उसके सुखद चराराह और मोहक झरनों का सौन्दर्य वर्णनातीत है। वहां अनगिनत झरने और जलधारायें हैं।"

जहांगीर का पुत्र शाहजहां (1627-58) भी उसी के समान काश्मीर पर मुग्ध था। उसने भी घाटी की कई बार यात्रायें कीं। जहांगीर और शाहजहां के समय में ही विश्वप्रसिद्ध शालीमार, निशात, अच्छवल, चश्मे शाही और पर-पंजाल जैसे मुगल शैली के अनेकों बागों का विकास किया गया। इन सबसे काश्मीर की शान्ति और उसके सौन्दर्य में वृद्धि हुई।

औरंगजेब ने काश्मीर का शासन-प्रबन्ध (1658-1707) कुशलता से किया। परन्तु उसका धार्मिक स्वभाव काश्मीर से मेल नहीं खाता था। उसने काश्मीर घाटी की केवल एक बार सन् 1665 में यात्रा की। औरंगजेब के शाही दल में एक फ्रांसीसी डाक्टर बर्नियर शामिल था। उसने उस समय के काश्मीर के बारे में लिखा है—"काश्मीरी अपनी हाजिरजवाबी के लिए प्रसिद्ध हैं और अन्य भारतीयों से अधिक बुद्धिमान समझे जाते हैं। कविता और विज्ञान में वे फारसी लोगों से कम नहीं। वे बहुत सक्रिय और परिश्रमी भी हैं। लेकिन उनके सम्बन्ध में जो विशेष बात मानी जा सकती है और जो उनके व्यापार में बढ़ोतरी कर उन्हें सम्पन्नता देती है, वह है उनके द्वारा बड़ी संख्या में बनाये गये शाल।"

औरंगजेब के 49 वर्षों के लम्बे शासनकाल में काश्मीर में 14 गवर्नर (सूबेदार) हुए। उन्होंने सही ढंग से शासन किया। लेकिन उनमें से एक इफ्तिकार खान (1671-75) ने ब्राह्मणों पर अत्याचार किये और उन्होंने नवम गुरु तेग बहादुर के पास जाकर शिकायत की—"हम बड़े-बड़े अत्याचार सहते हैं। पवित्र जनेऊ हमसे बलपूर्वक छीन लिया जाता है। गउओं का वध किया जाता है। एक दिन में सवा मन जनेऊ तोड़ डाले जाते हैं।" गुरुजी ने उनको सांत्वना देते हुए कहा—"जाओ! और मुगल शासकों से कह दो कि यदि वे तेग बहादुर का धर्म परिवर्तन कर देंगे तो हम सब स्वयं इस्लाम स्वीकार कर लेंगे।"

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शासन का पतन प्रारम्भ हो गया। काश्मीर के ऊपर केन्द्रीय सत्ता का अधिकार जाता रहा। घाटी में फिर से कुचक्रों, हिंसा और खून-खराबे का आतंक छा गया। शाही दरबार से नियुक्त किये गये सूबेदार शायद ही कभी काश्मीर आया करते थे। सत्ता पाने के लिए बराबर होने वाले संघर्षों के कारण वे दिल्ली में ठहरना आवश्यक समझते थे। वे काश्मीर का शासन प्रबन्ध नायब सूबेदारों द्वारा करवाते थे, जो अपने कामों के लिए किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

सन् 1746-47 में आने वाली विनाशकारी बाढ़ और उसके बाद पड़ने वाले अकाल ने काश्मीर राज्य को पूरी तरह कमजोर कर दिया। काश्मीर की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या समाप्त हो गई।

इन संकटपूर्ण परिस्थितियों में दो प्रभावशाली स्थानीय नेताओं ने अहमदशाह अब्दाली को काश्मीर पर आक्रमण करके वहां अपना राज्य स्थापित करने के लिए आमंत्रित किया। उसने इस अवसर का लाभ उठाया और 1753 में अब्दुल

खा इश्क अब्बासी के सेनापतित्व में एक शक्तिशाली सेना भेजी। अन्तिम मुगल सूबेदार अलाकुली खान को इस बीच हटाकर एक स्थानीय सरदार अब्दुल कासिम खान ने नेतृत्व संभाल लिया था। अफगान सेनापति ने कासिम को हराकर काश्मीर पर अफगान शासन स्थापित किया।

अफगान

काश्मीर को अपने राज्य में मिलाने की प्रार्थना लेकर जो दरबारी अकबर के पास गये थे, उन्होंने एक अच्छा निर्णय लिया था। काश्मीर को 120 वर्षों तक शान्ति और न्याय मिलता रहा। काश्मीर में मुगल शासन के विघटन के बाद ही कुशासन और कुप्रबन्ध फैला। लेकिन जिन लोगों ने अहमदशाह अब्दाली को आमन्त्रित किया था, वह नहीं समझ सके कि वे वास्तव में अपने हरे-भरे प्राकृतिक उपवन में लुटेरों को बुला रहे हैं। दुर्भाग्य के मारे वे लोग खंदक से निकलकर कुएं में कूद पड़े। उस समय के काश्मीरी लोगों की भावनाओं को वहां का एक पद्याश प्रकट करता है, जिसका अर्थ है—"मैंने माली से बाग की बर्बादी की वजह पूछी, उसने उसास भरते हुए जवाब दिया कि अफगानों ने यह सब किया है।"

अब्दाली द्वारा नियुक्त पहले अफगान सरदार अब्दुल्ला खान इश्क अब्बासी ने ही स्थानीय व्यापारियों से एक करोड़ रुपये वसूल किये। वह जिन काश्मीरियों को धनवान समझता था, उन सबको एक पंक्ति में खड़ा करवा दिया, फिर आदेश दिया कि वे अपनी सारी सम्पत्ति दे दें नहीं तो उन्हें मार डाला जायेगा। वह इतना क्रूर और अत्याचारी था कि कुछ व्यापारियों ने डल झील में कूदकर आत्महत्या कर ली। अफगान सेना ने साधारण जनता के घरों में मनमानी लूट-पाट की। काश्मीरियों को कभी इतने बुरे दिन देखने नहीं पड़े थे।

काश्मीर में अफगानी कुशासन का सबसे अधिक पतन सूबेदार हाजी करीम दाद खान और असद खान के शासनकाल में हुआ। सन् 1783 में ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक अफसर जार्ज फार्सटर[1] काश्मीर गया था। करीम दाद खान की क्रूरताओं का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि किस प्रकार छोटे-छोटे अपराधों पर तथाकथित दोषी अपराधियों को एक-दूसरे से बांधकर नदी में फेंक दिया जाता था और किस प्रकार स्त्रियों को वासना का शिकार बनाया जाता था। असद खान के बारे में उस समय प्रचलित एक कथा का फार्सटर ने वर्णन किया है —"अनेकों शल्य चिकित्सकों को असद खान की एक आंख में पड़े जाले ने संकट में डाल दिया था। अपनी आंख ठीक न होने की वजह से वह बहुत बेचैन हो चुका था। अन्तिम शल्य चिकित्सक से उसने कहा था कि अगर कुछ दिनों में ही आंख ठीक नहीं हुई तो उसके पेट को काट दिया जायेगा। शल्य चिकित्सक अपनी चिकित्सा में असफल रहा और असद खान ने अपनी धमकी पूरी करके दिखा दी।"

फार्सटर के विचार काश्मीरियों के सम्बन्ध में अच्छे नहीं थे। शुरू में उसे उन लोगों के कष्टों को देखकर सहानुभूति होती थी, लेकिन बाद में उसने लिखा था —"अपने अनुभवों से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि दुर्गुणों से भरे काश्मीरियों

---

1. फार्सटर के अनुभव उसके द्वारा लिखे खतों में दर्ज है।

जैसे लोग मेरी जानकारी में कभी नहीं आये।" इससे पहले काश्मीरियों के बारे में इसी स्वर में कहा था —"इस देश के विनाश का कारण यहां के निवासी हैं।"

दूसरा अफगान सूबेदार अता मोहम्मद खान सुन्दर काश्मीरी नारियों को पाने की अदम्य वासना के लिए बदनाम था। उसके भय से हिन्दू माता-पिता अपनी सुन्दर बेटियों का रूप बिगाड़ देते थे ताकि वे सूबेदार के दलालों से बच सकें।

अन्तिम अफगान सूबेदार जब्बर खान ने हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार किये। काश्मीरियों पर बराबर किये जाने वाले अत्याचारों को और अधिक सह न सकने के कारण अभिजात्य वर्ग का एक पंडित बीरबल धर महाराज रणजीत सिंह के पास सहायता के लिए पहुंचा और उन्हें जब्बर खान की सेना की शक्ति तथा स्थानों के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें दीं। रणजीत सिंह इससे पहले दो बार सन् 1812 और 1814 में काश्मीर पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न कर चुके थे। इस बार रणजीत सिंह को सफलता मिली। मिसर दीवान चन्द के योग्य सेनापतित्व में सिख सेनाओं ने जब्बर खान को 15 जुलाई 1819 को शोपियान में पराजित किया और दूसरे दिन विजयोल्लास के साथ राजधानी में प्रवेश किया।

सिख

महाराज रणजीत सिंह को काश्मीर-विजय से इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने लाहौर और अमृतसर में तीन रात तक विशेष रूप से दीपमालायें जलाने का आदेश दिया। उन्हें काश्मीर देखने की हार्दिक इच्छा थी। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था —"क्या अपने जीवन में एक बार भी मैं काश्मीर के बादामों से लदे सुगन्धित बगीचों में घूमने और ताजा हरी घास पर बैठने की खुशी पा सकूंगा?" लेकिन उनके भाग्य में अपनी इच्छा की पूर्ति करना नहीं लिखा था। यद्यपि उन्होंने काश्मीर पर 17 वर्ष तक राज्य किया, परन्तु एक बार भी वहां नहीं जा सके।

काश्मीर में सिख शासन 27 वर्षों (1819-46) तक चला, लेकिन वहां इस अवधि में दस सूबेदार नियुक्त हुए। तीसरा सूबेदार कृपाराम लोकप्रिय था। उसने विकास के अनेकों कार्य किये जिनमें से एक रामबाग का विकास भी था। वह सम्राट जहांगीर की तरह एक रंगीन मिजाज आदमी था। उसे संगीत, नृत्य और प्रकृति से प्यार था और काश्मीर के लोकाचार से उसका तादात्म्य था। उसका अधिकांश समय डल झील की एक विलास-नौका में व्यतीत होता था। उसकी नौका तक नर्तकियों और गायिकाओं द्वारा खेयी जाती थी। उसका उपनाम तक 'किरपा श्रोइन' पड़ गया था अर्थात् किरपा-नाव के पतवार की आवाज।

सन् 1839 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के साथ ही उनके पूरे राज्य में अस्थिरता और अनुशासनहीनता फैल गई। 17 अप्रैल, 1841 को काश्मीर की सिख सेना ने विद्रोह कर दिया और सूबेदार की हत्या कर दी। इसके बाद अनेकों प्रभावहीन सूबेदार हुए। सन् 1846 में अमृतसर सन्धि के अनुसार काश्मीर के आखिरी सूबेदार इमाम-उद्-दीन को अपना आधिपत्य राजा गुलाब-

सिह को देना पडा।

कृपाराम की सूबेदारी के थोड़े-से वर्षों को छोड़कर काश्मीर में सिख [illegible]

[illegible]

भी नमाज नही पढ़ी जा सकती थी। सिख शासन की शुरुआत में एक स्थानीय सेनापति ने प्रसिद्ध शाहहमदान मस्जिद को उड़ाने के लिए तोप लगा दी थी, क्योंकि उसका कहना था कि वह एक हिन्दू मन्दिर के ऊपर बनाई गई है। लेकिन वीरबल धर ने हस्तक्षेप करके मस्जिद को बचा लिया। मुल्लाओं को अजान देने की इजाजत नही थी। लेकिन काश्मीरियों से एक वर्ग के रूप में घृणा की जाती थी। एक सिख द्वारा एक हिन्दू की हत्या करने पर मुआवजे की रकम चार रुपये थी और मुसलमान की हत्या होने पर दो रुपये।

यंगहस्बैंड ने ठीक ही लिखा था —"सिख अफगानियों की तरह जगली बर्बर नहीं थे, परन्तु वे एक कठोर और कसकर काम लेने वाले मालिक थे।"

मूरकाफ्ट[1] और विग्ने[2] के विवरणों से सिख शासन के बारे में एक विस्तृत तथा सही विचार मिल जाता है। मूरकाफ्ट ने लिखा था —"सिख सरकार द्वारा काश्मीरियों पर अत्यधिक टैक्स लगा दिये गये थे। सिख अधिकारी उन पर हर प्रकार की जबरन वसूली तथा अत्याचार करते थे।" सिख सिपाहियों द्वारा पकड़े गये बिना वेतन के मजदूरों(बन्धक मजदूरों)का वर्णन करते हुए मूरकाफ्ट ने लिखा— "उनके हाथों को एक रस्सी से बांध दिया जाता था और सड़क पर दौड़ाया जाता था। रात में उनके पैरों को रस्सी से बांध दिया जाता था ताकि वे भाग नहीं सकें।" घाटी के पूर्वी भाग में विग्ने ने अनेकों उजड़े गांव देखे। अधिकाश घर उजड़े और सुनसान थे, पेड़ों से फल टपक रहे थे, पर उन्हे उठाने वाला कोई नही था। फलों के बागों मे जंगली भाग और नील की ऊंची-ऊंची झाड़ियां उग आई थी।

जम्मू का इतिहास : डोगरों का उदय

डोगरा राजवंश का संस्थापक गुलाबसिंह असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। उसका जन्म 1792 में एक ऐसे परिवार मे हुआ जो जम्मू क्षेत्र के प्रसिद्ध शासक राजा रणजीत देव (1742 से 1780) के वश से था।

लोक स्मृति के अनुसार जम्मू की स्थापना तीन हजार वर्ष पूर्व राजा जम्भुलोचन द्वारा हुई थी। जम्भुलोचन, बाहुलोचन का भाई था जिसने तवी नदी तट पर बाहु का किला बनाया था। अखनूर के निकट हाल ही में हुए उत्खनन से पता चलता है कि जम्मू हड़प्पा सभ्यता का एक क्षेत्र था। मौर्य, कुषाण और

1. मूरक्राफ्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना मे पशु चिकित्सक था। उसने मानसरोवर, कुलू, लद्दाख, काश्मीर की यात्रायें कीं।
2. विग्ने काश्मीर में सन् 1835 में आया। वह वनस्पतिशास्त्र और भूगर्भशास्त्र मे विशेष रुचि रखता था।

गुप्त काल के भी अवशेष मिले हैं। उसकी प्राचीनता और विशिष्टता धीरे-धीरे प्रकाश में आ रही हैं। तथापि वर्तमान काल में हमें जम्मू के बारे में लगभग 900वीं ईसवी में पता चलता है। तैमूर के संस्मरणों में जम्मू का विध्वंस 1398-99 ईसवी में करने का जिक्र मिलता है। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद रणजीत देव ने डोगरों के 22 छोटे सेनानायकों को अपने अधीन किया। उसके शासनकाल में दुगर क्षेत्र सम्पन्न बना और जम्मू अपने वैभव की सर्वोच्च सीमा पर पहुंच गया। यह नगर व्यापार और वाणिज्य का सक्रिय केन्द्र बन गया। हुगेला ने, जिसने उस काल में यहां की यात्रा की थी, "जम्मू को भारत के सबसे धनवान नगरों में से एक बताया है।"

दुगर क्षेत्र डोगरा राजवंश के अन्तिम काल में सिखों की उदय होती शक्ति के प्रभाव में आ गया। सिख सेनाओं द्वारा जम्मू पर आक्रमण किया गया। इस गुमट युद्ध में जम्मू की रक्षा करते हुए गुलाबसिंह ने अपनी 16 वर्ष की आयु में विशेष वीरता दिखाई। जब महाराजा रणजीत सिंह को इस वीरता के बारे में पता चला, उन्होंने गुलाबसिंह को अपनी सेवा में ले लिया। महाराजा ने उनके दो भाइयों ध्यानसिंह और सुचेतसिंह को भी अपने यहां नियुक्त कर लिया।

रणजीत सिंह के अनेकों सैन्य अभियानों में गुलाबसिंह ने अतुलनीय कुशलता, साहस, वफादारी और संगठनात्मक योग्यता प्रदर्शित की। उसने विशेष रूप से मुलतान और जालन्धर की घेराबन्दी करने, सन् 1819 यूसफजयी की जन-जातियों को पराधीन करने में जिस चतुरतापूर्ण वीरता का परिचय दिया उससे महाराजा को पेशावर पर अधिकार पाने में सफलता मिली। गुलाबसिंह की सेवाओं को मान्यता देने तथा सिखों और अफगानी राज्यों के बीच एक अधीनस्थ सैनिक शक्ति बनाने की नीति के अनुसार रणजीत सिंह ने गुलाबसिंह को जम्मू सहित कई राज्य प्रदान किये। राजा की पदवी तथा अपनी सेना संगठित करने की अनुमति भी उन्हें दी गई।

राज्य कर वसूल करने के लिए रणजीत सिंह अलग-अलग प्रान्त बनाने की मध्ययुगीन प्रणाली अपनाते थे। गुलाबसिंह को राजा की पदवी और इस प्रणाली ने रेआसी, किश्तवार, राजौरी, चेनानी और दूसरी छोटी-छोटी रियासतों को अपने आधिपत्य में लाने के लिए सैन्य अभियान संगठित करने के अवसर प्रदान किये। सन् 1831 में गुलाबसिंह के क्षेत्र से यात्रा करने वाले जेक्यूमोन्ट ने लिखा है—"रणजीत सिंह के सुदूरस्थित आधिपत्य की तुलना में गुलाबसिंह का अपने घर पर अधिक स्वामित्व है।"

उसके दूसरे दो भाइयों ध्यानसिंह और सुचेतसिंह ने लाहौर दरबार में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त कर लिये। ध्यानसिंह मुख्यमन्त्री बन गया। इस प्रकार डोगरों ने जम्मू क्षेत्र में अपना अधिकार जमा लिया और साथ ही महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में अपना प्रभाव।

लद्दाख का इतिहास और उसका डोगरा राज्य में विलय

राजा गुलाबसिंह की सबसे शानदार सैनिक उपलब्धि लद्दाख को अपने प्रान्त में मिलाने की थी। रणजीत सिंह और ईस्ट इंडिया कम्पनी की निहित

सहमति से सन् 1834 में गुलाबसिंह ने अपने सबसे प्रतिभाशाली सेनापति जोरावरसिंह को लद्दाख पर विजय पाने के लिए भेजा। लद्दाख सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसकी सीमायें चीन और तिब्बत में मिलती हैं और यह मध्य एशिया से ऊन का व्यापार करने का केन्द्र था। तिब्बत के महालामा की सत्ता के अन्तर्गत लद्दाख एक स्वतन्त्र राज्य था।

'दुनिया की छत' और 'भारत का छोटा सा तिब्बत' लद्दाख एक ठंडा रेगिस्तान है। यह काश्मीर घाटी के पूर्व में स्थित है। इसकी समुद्र सतह से 2,440 से 4,570 मीटर तक ऊंचाई है। इसमें जनसंख्या दूर-दूर पर स्थित है। इसकी जनसंख्या का घनापन प्रति वर्ग किलोमीटर पर 2 है। लेकिन सैनिक दृष्टि से यह *अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।*

जोरावरसिंह ने जानसकर और बाल्टिस्तान सहित लद्दाख पर अनेक शानदार सैनिक आक्रमणों द्वारा विजय प्राप्त कर ली। इन सैनिक अभियानों की समानता भारतीय इतिहास के कुछ एक अभियानों से ही की जा सकती है। जनरल जोरावरसिंह ने सन् 1841 में एक दूसरे साहसी और अत्यन्त जोखिम भरे अभियान में तिब्बत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। के० एम० पन्निकर ने लिखा है—"जोरावरसिंह से पहले हिन्दुस्तान से किसी भी सेना ने तिब्बत पर आक्रमण नहीं किया था। किसी भी भारतीय सेनापति ने, जो मैदानी गर्मी का अभ्यस्त रहा है, तिब्बत की कठिन जलवायु का सामना करने का साहस नहीं किया था और न किसी भारतीय शासक ने तिब्बत पर विजय पाने का विचार किया था।" जोरावरसिंह ने रडोक, गारो और तकलाना कोटें पर अधिकार कर लिया। वहां वह दुर्भाग्यवश तिब्बतियों द्वारा घेर लिया गया और एक बर्फानी तूफान में फंस गया। वह 15,000 फुट की ऊंचाई पर वीरता से लड़ा; लेकिन उसके भाग्य में वहां पराजित होना लिखा था और वह वहीं मारा गया।

के० एम० पन्निकर के शब्दों में "इस प्रकार एक योद्धा जोरावरसिंह, जिसकी उपलब्धियों पर भारत उचित गर्व कर सकता है, मारा गया। समुद्र तल से 15,000 फुट की ऊंचाई पर लद्दाख और बाल्टिस्तान की बर्फ से ढकी पर्वत, श्रेणियों पर, जहां वायु इतनी पतली होती है कि मैदानी आदमी कठिनाई से जीवित रह सकता है, एक-दो नहीं, छ-छ बार पूरी सेना ले जाना एक आश्चर्य-जनक उपलब्धि है। एक के बाद दूसरे लगातार आक्रमणों से उस देश को जीत *लेना और उसे एक शान्तिपूर्ण प्रदेश बना देना* एक ऐसा *अद्भुत कार्य है* जिसकी समानता भारतीय इतिहास के पृष्ठों में कोई नहीं मिलती। भारतीय इतिहास के पृष्ठों में उसकी महानता एक महान योद्धा के रूप में चमकती रहेगी।

जोरावरसिंह की मृत्यु के बाद दूसरी सेना दीवान हरीचन्द के सेनापतित्व में भेजी गई। तीनों पक्षों—डोगरा, लद्दाखी और तिब्बत के मध्य एक औपचारिक संधि हुई। लद्दाख और तिब्बत के बीच सीमा निश्चित की गई और लद्दाख गुलाबसिंह को मिल गया। इस भांति लद्दाख पर जोरावरसिंह के अद्भुत सैनिक अभियान के परिणामस्वरूप वह डोगरा राज्य का अंग बना और फल-स्वरूप भारतीय गणराज्य का। यदि ऐसा नहीं होता तो चीनियों का तिब्बत पर अपनी सत्ता का दावा लद्दाख तक विस्तार पा जाता।

जनरल जोरावरसिंह एक जन्मजात सैन्य प्रतिभा था—"भारत द्वारा 19वीं शताब्दी में जन्म दिये गये सैनिकों में सर्वश्रेष्ठ।" सन् 1984-85 में अपनी किश्तवार, लेह, कारगिल, दाराम, प्यूगांग झील, चुशूल और लद्दाख के सुदूर कठिन क्षेत्रों की यात्रा के दौरान मुझे आश्चर्य हुआ कि जनरल जोरावरसिंह और उसकी सेना ने किस प्रकार इतनी कठोर जलवायु और स्थलाकृति का सामना किया होगा और कैसे वे इतनी गति से ठीक मार्ग पर आगे बढ़े होंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि उसके उल्लेखनीय अभियान को पूरी मान्यता नहीं मिली। मुझे उसके सम्मान योग्य कोई उचित स्मारक नहीं मिला। इसने मुझे माता वैष्णव देवी मन्दिर बोर्ड के माध्यम से, यह कार्य प्रारम्भ करने को प्रेरित किया क्योंकि उसका मैं सभापति था। इस बोर्ड के फण्ड से मैंने रेसाई किले के ध्वंसावशेषों का, जिससे जोरावरसिंह का सम्बन्ध था, पुनर्निर्माण शुरू किया और उसके चारों ओर एक बहुत बड़ा बाग विकसित करवाया। इस स्मारक का नाम जोरावरसिंह पर रखा गया। सेनापति जोरावरसिंह भी माता वैष्णव देवी का भक्त था इसीलिए मैंने यह किया। मैंने निश्चय किया कि माता के सभी महान भक्तों का अलग से सम्मान किया जाये।

सन् 1839 में रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद और एंग्लो-सिख युद्धों के पश्चात् जिसमें से 1845 में सोब्रान में हुए युद्ध में सिखों की पूरी तरह पराजय हुई, सिखों का राज्य समाप्त हो गया। इससे पूर्व 15 सितम्बर, 1843 में विभिन्न दलों के बीच होने वाले सत्ता संघर्ष और दरबारी कुचक्रों के कारण शक्तिशाली डोगरा मन्त्री ध्यानसिंह की क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गई थी। इससे लाहौर दरबार में डोगरा प्रभाव बहुत कम हो गया था। गुलाबसिंह को उसके क्षेत्र से हटाने की भी कोशिशें की गईं। लेकिन इस गम्भीर संकट में भी गुलाबसिंह अपने स्वभाव के अनुसार शान्त रणनीतिज्ञ बना रहा। वास्तव में उसने आपत्ति को अवसर में बदल दिया।

जब अंग्रेजों और सिखों का संघर्ष अपने चरम बिन्दु पर पहुंचा, गुलाबसिंह ने चतुरतापूर्वक स्थितियों को अपने अनुकूल बना लिया। वह सिखों का सबसे आवश्यक सामंत सेनापति था इसलिए वे उसकी सहायता पाना चाहते थे, दूसरी ओर अंग्रेजों का हित इसमें था कि सिखों और डोगरों की शक्तियों को आपस में मिलने नहीं दिया जाय। गुलाबसिंह चतुरतापूर्वक दोनों विरोधी शत्रु पक्षों की मध्यस्थता करता रहा। एक ओर उसने लाहौर दरबार के प्रति मित्रता और वफादारी की बातें कीं, लेकिन दूसरी ओर वह अंग्रेजों से गुप्त सम्बन्ध बनाये रहा। सिख सेनाओं की शक्ति टूट जाने के बाद ही वह अपनी तुरुप चाल चलना चाहता था।

सन् 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उत्तरी-पश्चिमी भारत में तीन मुख्य शक्तियां थीं—अंग्रेज, डोगरा और सिख। इनमें सत्ता पाने के लिए सात वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। अंग्रेज आधुनिक, वैज्ञानिक रूप से संगठित, दूरदर्शी और अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों के प्रति स्पष्ट थे। डोगरा लोग परिश्रमी, महत्त्वाकांक्षी और सामन्ती थे और सैन्य दृष्टि से भली प्रकार सुसज्जित नहीं थे। लेकिन सौभाग्यवश उन्हें उस समय एक दूरदर्शी, बुद्धिमान और सन्तुलित नेता प्राप्त था। सिख जुझारू, वीर और शक्तिशाली सेना से युक्त थे, परन्तु वे

अनुशासनहीन, लापरवाह, ईर्ष्या और द्वेष में आपस में बंटे हुए और वास्तव में नेतृत्वहीन थे। इन परिस्थितियों में अंग्रेजों द्वारा अपने उद्देश्य को पाने में पूर्ण सफलता होना आश्चर्यजनक नहीं था। गुलाबसिंह ने वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों के अधीन सहयोगी की स्थिति को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार लाहौर दरबार की सनकों से मुक्त एक विशाल राज्य प्राप्त कर लिया। सिखों ने पिछले पचास वर्षों में जिस शक्ति और प्रतिष्ठा को बनाया था वह सब खो दिया।

जम्मू और काश्मीर का रियासती राज्य

सिखों की पराजय के बाद दो अलग-अलग सन्धियां की गईं। लाहौर की सन्धि में सिखों और अंग्रेजों के बीच निश्चित हुई शर्तें थीं। इस पर 9 मार्च 1846 को हस्ताक्षर हुए। एक सप्ताह पश्चात् दूसरी सन्धि 16 मार्च 1846 को राजा गुलाबसिंह और अंग्रेजों के बीच हुई। इसे अमृतसर की सन्धि के नाम से जाना जाता है।

अंग्रेजों ने सिखों से क्षतिपूर्ति राशि के रूप में डेढ़ करोड़ रुपये मांगे; परन्तु वे इसे देने की स्थिति में नहीं थे, इसलिए उन्होंने अपने कुछ क्षेत्र अंग्रेजों को प्रथम संधि के अन्तर्गत दे दिये। दूसरी सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने गुलाबसिंह द्वारा क्षतिपूर्ति की पूरी राशि में से 75 लाख रुपये स्वेच्छा से देने के बदले में काश्मीर सहित सिखों से प्राप्त अन्य क्षेत्र उसे हमेशा के लिए स्वतन्त्र अधिकार में दे दिये। इस प्रकार डोगराओं को काश्मीर किसी 'विक्रय पत्र' के अन्तर्गत नहीं वरन् संधि के फलस्वरूप प्राप्त हुआ।

डोगरा राजवंश लगभग सौ वर्ष से अधिक समय तक चला। इस काल में चार महाराजा हुए—गुलाबसिंह (1846-57) रणबीरसिंह (1857-85), प्रतापसिंह (1885-1925), और हरीसिंह (1952-55)[1] लेकिन यह राजवंश सदैव अंग्रेजों की कृपा पर आधारित रहा। महाराजा गुलाबसिंह को भी इस बारे में कोई भ्रम नहीं था। उसने गवर्नर जनरल को लिखा था—"महामहिम के प्रति अपने आज्ञापालन को सिद्ध करने के लिए मैं अपनी संपत्ति तथा जीवन तक त्यागने को तत्पर हूं। जो भी महामहिम कम्पनी के प्रति वफादार है, उसे पूरे हृदय और आत्मा से वफादार रहना होगा।"

काश्मीर में डोगरा शासन के प्रारम्भ में हालात बहुत खराब थे। बेरन स्कोनबर्ग ने, जिसने इस समय घाटी की यात्रा की थी, लिखा है—"मैं कई देशों में गया हूं पर कहीं भी जनता की इतनी दुर्दशापूर्ण स्थिति नहीं दिखी जितनी काश्मीर में। इसे देखकर मिस्रवासियों के शासन में रहने वाले इजरायलियों की यादें ताजा हो उठती हैं, जब उन्हें प्रतिदिन परिश्रम करते हुए उनके दयाहीन मालिक कोड़े मारा करते थे।" लेफ्टीनेन्ट आर० जी० टेलर ने, जिसने 1846 में श्रीनगर की यात्रा की थी, लिखा है—"श्रीनगर शहर बहुत दयनीय स्थिति में दिखता है। घर

---

1. 26 अक्टूबर, 1947 को वह राज्य भारत में मिल गया, लेकिन डोगराओं का आनुवांशिक शासन 1952 में समाप्त किया गया।

ढह रहे थे। नालियां न होने के कारण गलियां गन्दी थीं। कोई भी बाजार पूरी तरह नहीं भरा था। बंधक मजदूरी की प्रथा थी और कारीगरों की मजदूरी बहुत कम थी।" अधिकांश लोग मुट्ठी भर चावल खाकर रह जाते थे। बोम्बा और खाका जनजातियां तथा गलवान डाकू जनता को परेशान किये रहते थे। गुलाबसिंह ने व्यवस्था लाने के लिए कठोर कदम, कभी-कभी अमानवीय उपाय तक अपनाये। क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए राज्य के बड़े-बड़े क्षेत्र लोगों को उपहार दे दिये गये थे। घाटी का शासक बनने के बाद गुलाबसिंह को पता चला कि 3,100 से अधिक भूमि-अनुदान दिये जा चुके हैं। उसने दुःख से कहा था कि एक ऐसे क्षेत्र के लिए जिसके तीन चौथाई भाग में पहाड़ और पानी है और शेष चौथाई जागीर के रूप में दिया जा चुका है, उसने 70 लाख रुपये चुकाये हैं।

डोगरा शासन अधिकांश रूप में सामंती और व्यक्तिगत था, उसे शासन के उच्च सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं था। लेकिन हालातों में काफी सुधार हुआ। शान्ति और स्थिरता अपने आपमें एक वरदान थी। कुछ कल्याणकारी योजनायें भी कार्यान्वित की गईं। इस सम्बन्ध में भारत की ब्रिटिश सरकार का महाराजा पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

उस समय जम्मू और काश्मीर के सम्बन्ध में भारत की ब्रिटिश सरकार की नीति के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथम, विशेष रूप से लद्दाख और गिलगिट जैसे सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों पर महाराजा के प्रभाव को देखते हुए उन पर कड़ा नियन्त्रण रखना; दूसरा, ऐसा मजबूत और न्यायपूर्ण प्रशासन स्थापित करना जो कानून और व्यवस्था बनाये रख सके, असन्तोष को रोक सके और विकास के प्राथमिक कार्य जैसे सड़कों का निर्माण करना जिससे उसके सैनिक तथा व्यापारिक स्वार्थ पूरे हो सकें।

1857 के विद्रोह में डोगराओं ने ब्रिटिश हुकूमत का साथ दिया। इससे यद्यपि अंग्रेज खुश हुए और गुलाबसिंह द्वारा अपना उत्तराधिकारी रणबीरसिंह को बनाने के सुझाव को मान गये तथापि तत्कालीन भारत सरकार ने अपना आक्रामक रवैया ढीला नहीं किया। इससे पहले सन् 1852 में महाराजा को अंग्रेजों का एक 'ऑफीसर ऑन स्पेशल ड्यूटी' रखने को विवश किया गया था। सन् 1867 में लेह में ब्रिटिश ट्रेड एजेन्सी स्थापित कर दी गई और मध्य एशिया से व्यापार करने के मार्ग का नियन्त्रण भारत की ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ गया। सन् 1884 में एक रेजीडेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट राजधानी में नियुक्त कर दिया गया।

रेजीडेन्ट की नियुक्ति के साथ ही अंग्रेजों का राज-काज पर नियन्त्रण बढ़ गया। भूमि-अनुदान जैसे महत्त्वहीन प्रशासनिक विषय में रेजीडेन्ट की मर्जी चलती थी। विलियम डिगबी[1] ने रेजीडेन्ट की शक्तियों और तथाकथित काश्मीर प्रशासन के सुधारों (जिनके द्वारा महाराजा के कुछ कार्य काश्मीर काउन्सिल को

1. विलियम डिगबी ब्रिटिश संसद के उदार दल का सदस्य था। उसने अपने विवरण 'कंडेम्ड अनहर्ड' में ब्रिटिश प्रशासन द्वारा महाराजा प्रतापसिंह के कुशासन के दोषारोपण की आलोचना करते हुए उसे झूठा प्रमाणित किया है।

सौंप दिये गये थे।) के बारे में कहा था—

"सभी वास्तविक विषयों में रेजीडेन्ट की शक्ति ही केवल सर्वोपरि है। सच्चाई यह है कि उस देश में कोई उसकी लिखित आज्ञा के बिना अपना पैर तक नहीं रख सकता। उसकी इच्छा ही कानून है, वह राजा है। उसने अपने को चारों ओर से अपने दोस्तों और जीहुजूरियों से घेर रखा है तथा राज्य के अनेकों पुराने और वफादार सेवकों को बाहर निकाल दिया है। उस देश में कोई अपना मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकता और यदि कोई कमजोर विरोध की आवाज तक उठाने का साहस करता है, उसे गम्भीर परिणामों को भुगतने की चेतावनी दे दी जाती है।"

काश्मीर के विषयों में ब्रिटिश सरकार के व्यापक और निर्णायक हस्तक्षेप को दृष्टि में रखते हुए यह कहना अधिक उचित होगा कि 1846 से 1947 तक का काल डोगरा शासन का न होकर डोगरा-ब्रिटिश शासन का था।

महाराजा ने अपनी पहल पर और ब्रिटिश सरकार के दबाव में कुछ संवैधानिक सुधार किये। यह सन् 1924 और 1927 के अधिनियमों द्वारा किये गये। 13 जुलाई, 1931 को श्रीनगर जेल के बाहर गम्भीर दंगे हुए जिनमें 21 लोग मारे गये। दंगों का कारण मुसलमानों में आम असन्तोष बताया गया। ब्रिटिश रेजीडेन्ट के आग्रह पर बर्टरेन्ड जे० ग्लेनसी नामक अंग्रेज अफसर की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त की गई। ग्लेनसी समिति की रिपोर्ट ने महाराजा पर सुधार करने के लिए और दबाव डाला। सन् 1934 में उसने दूसरे संवैधानिक अधिनियम को जारी किया जिसके द्वारा द्विशासन प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। प्रजा को दो समूहों में बांट दिया गया। प्रथम समूह में 'सरक्षित प्रजा जन' थे। वे पूरी तरह महाराजा के अधीन रहे। द्वितीय समूह में 'स्थानान्तरित प्रजा जन' थे जिनका प्रशासन मन्त्रियों को सौंप दिया गया। इस अधिनियम में 75 सदस्यीय प्रजा सभा की भी व्यवस्था की गई थी। इसके 37 सदस्य निर्वाचन द्वारा नियुक्त होते थे।

राजनैतिक जागरण

महाराजा जिस समय सीमित संवैधानिक सुधारों को कर रहे थे, भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में जोर पकड़ रहा था। मुस्लिम लीग भी सामने आ गई थी। इन आन्दोलनों का जम्मू और काश्मीर की घटनाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अनेकों नौजवान लाहौर और अलीगढ़ में उच्च शिक्षा प्राप्त कर नई राजनैतिक तथा सामाजिक चेतना से युक्त होकर राज्य में वापस आये थे। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला उनमें से एक था।

सन् 1932 में जम्मू और काश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस के नाम से एक राजनैतिक संगठन की स्थापना हुई। अब्दुल्ला को उसका प्रेसीडेण्ट नियुक्त किया गया। प्रारम्भ में मुस्लिम कांफ्रेंस ने सामान्य मांगें आगे रखीं। उसका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बेहतरी के लिए कार्य करना तथा नागरिक और सैनिक सेवाओं में मुसलमानों को अधिक पद दिलवाना था।

भारत की दूसरी रियासतों पर भी स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रभाव पड़ रहा

था। इन सबके पीछे इंडियन नेशनल कांफ्रेंस की प्रेरणा शक्ति थी। जम्मू और काश्मीर की घटनाओं में भी इसने गहरी दिलचस्पी ली। स्थानीय नेताओं ने शीघ्र राष्ट्रीय नेताओं की सहायता पाने और महाराजा की सरकार के विरुद्ध अपने आधार को विस्तृत करने के लाभों को पहचान लिया। सन् 1938-39 में मुस्लिम कांफ्रेंस का नाम बदलकर 'ऑल जम्मू एण्ड काश्मीर नेशनल कांफ्रेंस' रख दिया गया। उसकी सदस्यता सभी धर्मों के लोगों के लिए खोल दी गई। इस संबंध में मौलाना सईद मसूदी और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने पहल की। शेख अब्दुल्ला ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था—"उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम हिन्दुओं, सिखों, बौद्धों और हरिजनों को अपने में शामिल करने के लिए आमंत्रित करें। वे भी अज्ञान में पड़े हुए हैं। वे भी टैक्स देते हैं। वे भी भूख का सामना करते हैं। उनके लिए भी उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार उतनी ही जरूरी है जितनी हमारे लिए।"

सन् 1944 में नेशनल कांफ्रेंस ने 'नया काश्मीर' नाम से एक कार्यक्रम अपने घोषणा-पत्र के रूप में स्वीकार किया। इसके अन्तर्गत संसदात्मक प्रजातंत्र, स्वतंत्र न्यायपालिका और सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक सुधारों की व्यवस्था प्रस्तुत की गई थी।

सन् 1944 में एम० ए० जिन्ना जम्मू और काश्मीर में अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न करने के लिए आये। वह विश्राम करने के बहाने आये थे लेकिन अपने सम्मान में दिये गये स्वागत समारोहों को स्वीकार कर लिया। नेशनल कांफ्रेंस द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में शेख अब्दुल्ला और जिन्ना वाद-विवाद में उलझ गये। तथापि मुस्लिम कांफ्रेंस के स्वागत समारोह में जिन्ना ने खुलकर उसका पक्ष लिया। उसने कहा—"मुसलमानों का एक मंच है, एक 'कलमा' और एक खुदा है। मैं मुसलमानों से दरख्वास्त करूंगा कि वे मुस्लिम कांफ्रेंस के झंडे के नीचे आयें और अपने हकों के लिए लड़ें।"

मुस्लिम कांफ्रेंस के वार्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता भी जिन्ना ने की। अपने भाषण में उसने नेशनल कांफ्रेंस को 'बदमाशों का दल' बतलाया। बाद में, जब नेशनल कांफ्रेंस ने 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलन शुरू किया, जिन्ना ने उसे "ऐसे असन्तुष्टों का उपद्रव बताया जो राज्य में अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं।" स्पष्ट है कि जिन्ना और मुस्लिम लीग ने शेख अब्दुल्ला को कोई महत्त्व न देकर मुस्लिम कांफ्रेंस और गुलाम अब्बास को पसन्द किया। इससे शेख अब्दुल्ला अवश्य समझ गये होंगे कि अगर राज्य पाकिस्तान में मिलता है तो उनका राजनैतिक भविष्य अच्छा नहीं रहेगा। अपनी आत्मकथा 'आतिशे चिनार' में शेख अब्दुल्ला ने स्वयं उस शत्रुतापूर्ण व्यवहार को स्वीकार किया है जो जिन्ना ने उनके प्रति दिखलाई थी। वह लिखते हैं—"उस समय जिन्ना सत्ता के नशे में था। उसने एक गरीब और साधनहीन राष्ट्र से बात करना अपने सम्मान के विरुद्ध समझा। जब शक्ति का संतुलन उसके विरुद्ध चला गया, वह अपने सपने से घबराकर जाग उठा। लेकिन उस समय तक सांप जा चुका था केवल उसकी लकीर रह गई थी।"

जिन्ना से मिलने मौलवी युसुफ शाह भी आये थे। जिन्ना ने मौलवी को 'सड़ा अण्डा' कहा। इसने मौलवी से कहा—"मेरी सलाह है कि तुम राजनीति से अलग रहो। काश्मीर में हमें एक नेता चाहिए, मुल्ला नहीं।"

इस समय तक नेशनल कांफ्रेंस द्विशासन-प्रणाली से निराश हो चुकी थी। उसने अनुभव किया कि यह शासन प्रणाली एक 'संगठित कठपुतली नृत्य' के अतिरिक्त कुछ नहीं है। शेख अब्दुल्ला ने जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, अब्दुल गफ्फार खां आदि राष्ट्रीय नेताओं से अपने घनिष्ठ संबंध बना लिये थे और इससे उनका और उनके साथियों का विश्वास बहुत बढ चुका था। उस समय आने वाले 'क्रिप्स मिशन' ने भी नई आशायें जगा दी थीं।

शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 10 मई 1946 को नेशनल कांफ्रेंस ने 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलन शुरू किया। 20 मई को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। नेशनल कांफ्रेंस के अन्य प्रमुख नेतागण भी बन्दी बना लिये गये। नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को फौरन रिहा कर देने की मांग की और स्वयं शेख की पैरवी का प्रबन्ध करने के लिए काश्मीर चल दिये। महाराजा ने अपने प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक की सलाह पर नेहरू के काश्मीर आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। नेहरू ने प्रतिबन्ध का उल्लंघन किया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना से न केवल जनता में बहुत बेचैनी फैला दी वरन् महाराजा हरीसिंह और नेहरू जी के बीच संबंधों को हमेशा के लिए बिगाड दिया। जैसा कि बाद की घटनाओं से पता चलता है, नेहरू महाराजा के प्रति अपने विद्वेष पर कभी विजय नहीं पा सके और शेख अब्दुल्ला ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाया। तथापि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने नेहरू को दिल्ली वापस आने के लिए सहमत कर लिया। कुछ लोगों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि शेख अब्दुल्ला द्वारा माफी मांगने पर उन्हें छोड़ दिया गया।

चौधरी गुलाम अब्बास सहित नेशनल कांफ्रेंस के कुछ प्रमुख नेता मुस्लिम कांफ्रेंस में शामिल हो गये। अक्तूबर, 1946 में मुस्लिम कांफ्रेंस ने मीरवाइज मौलवी युसुफ शाह के नेतृत्व में सीधी कार्यवाही की मुहिम छेड़ दी। चौधरी गुलाम अब्बास और मुस्लिम कांफ्रेंस के कुछ और नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे जम्मू और काश्मीर के मुसलमानों पर मुस्लिम लीग के बढ़ते हुए प्रभाव का पता चलता है।

मीरवाइज मौलवी युसुफ शाह ने इंडियन नेशनल कांग्रेस और नेशनल कांफ्रेंस के प्रति अत्यधिक शत्रुता का भाव प्रकट किया। उसने 25 सितम्बर, 1946 के अपने बयान में कांग्रेस के हस्तक्षेप की निन्दा करते हुए कहा—

"हिन्दू पूंजीपति राज्य को अपनी मुट्ठी में करना चाहते हैं, लेकिन मैं चेतावनी देता हूं कि अगर जम्मू और काश्मीर सरकार कांग्रेस की ताक़त से डर गई और उसने नेशनल कांफ्रेंस के फासिस्टों से कोई नापाक समझौता किया, उसे मुसलमानों के भीषण विरोध का सामना करना पड़ेगा और इस नापाक समझौते के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायेंगे।"

एक दूसरे रोचक और भाव प्रदर्शित करने वाले बयान में मुस्लिम कांफ्रेंस के प्रेसीडेण्ट चौधरी हमीदुल्लाह खान ने 10 मई, 1947 को महाराजा से अपने आपको स्वतंत्र घोषित करने के लिए कहा था—

"अगर काश्मीर अपने को खून खराबे और हत्याओं से दूर रखना चाहता है, उसे एक मजबूत और साहसी नीति अपनाने में जरा भी देर नहीं करनी चाहिए। महाराजा बहादुर को चाहिए कि वे काश्मीर को फौरन स्वतंत्र घोषित कर दें।"

भारतीय स्वतंत्रता के समय राजनैतिक शक्तियां और नेता

इस भांति देश की स्वतंत्रता के अवसर पर राज्य के राजनैतिक क्षेत्र में अनेकों शक्तियां कार्य कर रही थीं। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस थी। घाटी में उसका बोल-बाला था लेकिन जम्मू और लद्दाख में सीमित प्रभाव था। उसने इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेताओं, विशेष रूप से जवाहर लाल नेहरू से घनिष्ठ तालमेल बना लिया था, लेकिन मुस्लिम लीग से उसके संबंध शत्रुतापूर्ण थे। मीरवाइज मौलवी युसुफ शाह का श्रीनगर के निचले भाग में जबर्दस्त असर था, वह नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस दोनों के विरोधी थे। घाटी में मुस्लिम कांफ्रेंस के समर्थक कम थे लेकिन पिछले दो वर्षों में मुस्लिम लीग से विचारधारा मिलने के कारण उसने जम्मू क्षेत्र के मुसलमानों में तेजी से अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। घाटी में अपना प्रभाव बढ़ाने की क्षमता भी उसमें थी। जहां कहीं स्वतंत्र काश्मीर की आवाज भी उठाई जाती थी। महाराजा की भी अपनी एक अलग शक्ति थी। जम्मू के डोगरा राजपूत उन्हें अपने ही परिवार का समझते थे। महाराज शेख अब्दुल्ला और नेहरू को नापसन्द करते थे और न उन पर विश्वास ही। यही भाव इन दोनों का महाराजा के प्रति था। राज्य के बारे में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भावी निर्णय लेते समय ये तीनों नेता अपने व्यक्तिगत द्वेषों से ऊपर नहीं उठ सके।

ये सभी शक्तियां काश्मीर के दुखांत राजनैतिक नाटक के प्रथम अंक में अपनी भूमिकायें निभाने वाली थीं। महाराज अनिर्णय की स्थिति में थे। जिन्ना अधीर थे। पंडित नेहरू अपने आदर्शवाद और स्थितियों की नग्न सच्चाइयों के बीच जकड़े थे। शेख अब्दुल्ला के मन की गहराइयों में महत्त्वोन्माद और कपट-चाल भरी थी। जिन्ना ने अपना दरवाजा उनके लिए बन्द कर दिया था। इन परिस्थितियों में वह अपने और निकट सहयोगियों के लिए एक शेख राज्य बनाने की गुप्त महत्त्वाकांक्षा पाल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी अभिनेता अपने-अपने भ्रमों के साथ रंगमंच पर ढकेल दिये गये। उनमें से प्रत्येक कथानक की भिन्न-भिन्न रूपरेखा की कल्पना करते हुए यह विश्वास कर रहा था कि नाटक का अन्त उसकी इच्छा के अनुसार ही होगा। फलस्वरूप मंच पर अस्त-व्यस्तता और सामंजस्यहीनता छाई थी। गलतियों पर गलतियां की जा रही थीं। एक कर्कश स्वर के बाद दूसरा कर्कश स्वर सुनाई दे रहा था। एक गलत गणना दूसरी को जन्म देती थी, फलस्वरूप शीघ्र ही काश्मीर ने अपने को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों तथा अन्तर्विरोधों की भंवर में फंसा पाया।

प्रथम गलती—स्वतंत्र सत्ता के विचार का मोह

पहली गम्भीर गलती उस समय हुई जब महाराजा हरीसिंह ने स्वतंत्र सत्ता पाने के विचार से मोह पालना शुरू किया। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (1947) के पारित हो जाने और फलस्वरूप सर्वोच्च सत्ता समाप्त हो जाने के बाद तकनीकी रूप से देशी रियासतें स्वतंत्र हो गई थीं। लेकिन क्रियात्मक रूप में उनके सामने एक ही उपाय शेष था कि वे भारत में विलय हों या पाकिस्तान में। जून, 1947 में लार्ड माउन्टबेटन चार दिन के लिए काश्मीर गये थे। उन्होंने

महाराजा को एक निश्चित निर्णय लेने की सलाह दी। लेकिन महाराजा उनको चकमा दे गये। माउन्टबेटन की विदाई के समय जो मीटिंग होनी थी, उसमे इस विचार पर अन्तिम निर्णय लिया जाना था। महाराजा द्वारा उदरशूल उठने का बहाना बनाने के कारण यह मीटिंग नहीं हो सकी। इस विषय में माउन्टबेटन ने बाद में याद करते हुए कहा था, "उन चार दिनो मे हर दिन मैं एक ही सलाह देता रहा—किसी भी तरीके से अपनी जनता की इच्छा का पता लगाइये और उसके अनुसार इस वर्ष के 14 अगस्त तक किसी भी स्वतन्त्र उपनिवेश के साथ मिल जाइये। उन्होंने वैसा नही किया और उसके बाद जो कुछ हुआ वह सामने है। अगर 14 अगस्त से पहले वह पाकिस्तान में शामिल हो जाते, भारत की भावी सरकार मुझे महाराजा को यह आश्वासन देने की इजाजत दे देती कि उनकी ओर से कोई आपत्ति नहीं उठाई जायेगी। अगर महाराजा 14 अगस्त तक भारत से मिल जाते, जबकि पाकिस्तान बना ही नहीं था तो वह हस्तक्षेप भी नहीं कर सकता था। किसी में भी शामिल न होने से ही कठिनाई उत्पन्न हो सकती थी और दुर्भाग्यवश महाराजा ने यही किया।"[1]

महात्मा गांधी भी 1947 के जुलाई अगस्त मे काश्मीर गये थे। पहली अगस्त को उनकी महाराजा के साथ भेंट हुई। इस बात के अलावा और कोई बात सामने नही आ पाई कि महात्मा गांधी ने महाराजा को यह सलाह दी थी कि वे अपना जनता की इच्छाओं के विपरीत कुछ भी न करें। उन दोनों के बीच क्या वार्तालाप हुआ, इसका भी पता नहीं चल पाया। लेकिन यदि गाधीजी का उद्देश्य महाराजा का किसी भी ओर दो टूक निर्णय लेने के लिए मनाना था तो निश्चित रूप से वे अपनी इस कोशिश में असफल रहे। उनकी यात्रा का एकमात्र प्रत्यक्ष परिणाम केवल प्रधानमंत्री आर० सी० काक के पद पर 10 अगस्त को मेजर जनरल जनकसिंह की नियुक्ति का था। 10 अगस्त को आर० सी० काक को प्रधानमत्री पद से हटाना, 26 सितम्बर को शेख अब्दुल्ला के द्वारा क्षमा पत्र देने पर 29 सितम्बर को उसे छोड़ देना, पठानकोट और जम्मू के बीच की सड़क को मजबूत करना और रावी नदी पर नौका-पुल निर्माण करने की योजना, इन सभी से ऐसा लगता था कि राज्य को भारत के साथ मिलाने की पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी, या कम से कम इसकी सभावना को नकारा नही जा सकता था। तथापि ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता जो पाकिस्तान के इस आरोप को सिद्ध कर सके कि राज्य को भारत मे मिलाने की नापाक तैयारी की जा रही थी। यह आरोप न केवल लार्ड माउन्टबेटन के कथन से वरन् भारत की तीनों सेनाओं के अंग्रेज सेनापतियों के स्पष्ट बयान से भी गलत सिद्ध होता है। वे तीन सेनापति थे—भारतीय सेना के चीफ, जनरल आर० एम० लाकहार्ट, एयर मार्शल टी० डब्लू० एमहिर्स्ट, जो कि रॉयल इंडियन एयर फोर्स के कमांडर थे, और रियर एडमिरल जे० टी० एस० हाल जो कि रॉयल इंडियन नेवी के चीफ थे। अपने संयुक्त वक्तव्य में उन्होंने[2] कहा था—

"भारतीय सेना के कमांडर-इन-चीफ को 24 अक्तूबर को सूचना मिली कि

1. टाइम ऑनली टु लुक फारवर्ड : माउन्टबेटन के भाषण
2. डेंजर इन काश्मीर : जोसेफ कारबेल

कवाइलियों ने मुजफ्फराबाद पर कब्जा कर लिया है। यह हमले की पहली सूचना थी। इस तारीख से पहले भारतीय सेना को काश्मीर के अन्दर भेजने की किसी प्रकार की कोई योजना न तो बनाई गई और न ही उस पर विचार किया गया।"

किसी भी स्थिति में यदि काश्मीर के भारत में विलय होने के विकल्प को बनाये रखा गया तो उसमें कोई गलत बात नहीं थी। भारत ने तो दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया था। इस बात पर विश्वास करना उचित था कि महाराजा और शेख अब्दुल्ला जिन्हें कि उस समय घाटी के निवासियों का समर्थन प्राप्त था, अगर भारत में जम्मू और काश्मीर के विलय को स्वीकार कर लेते तो यह दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का खोखलापन व व्यर्थता सिद्ध कर देता। वस्तुतः काश्मीर का मामला भारतीयता और सैद्धान्तिक विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण बन गया था। उस समय उसका क्षेत्र सम्बन्धी महत्त्व उतना नहीं था। इस सारी भारतीय विचारधारा में कोई व्यवस्थागत दोष नहीं था वरन् इसके कार्यान्वियन में खराबी थी।

अगस्त 14-15 को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में जब दुनिया सो रही होगी, भारत स्वतंत्रता के आलोक में जागेगा। परन्तु काश्मीर में महाराजा अपनी स्वतंत्रता के सपने ले रहे थे। उनके दिमाग में यह बात उनके महत्त्वाकांक्षी सलाहकारों और चाटुकारों ने भर दी थी। उस दिन जो विशेष बात दिखाई दी वह श्रीनगर, जम्मू तथा लेह में विशेष रूप से की गई दीपमाला थी। यह भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों के गठन तथा अपनी संप्रभुता को बनाये रखने की खुशी को मनाने के लिए किया गया था।

स्पष्ट रूप से महाराजा हरीसिंह को गलत सलाह दी गई थी। प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक तथा राजगुरु स्वामी संतदेव ने ही उनके मन में रियायत की स्वतंत्रता की बात भरी थी। स्वामी संतदेव उन आधुनिक स्वामियों की तरह थे जिनकी गलत सलाहों के कारण आज देश इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पहुंचा हुआ है तथा जिन्होंने देश के ऊंचे राजनीतिज्ञों के मन में अपना व्यापक प्रभाव बना रखा है। मुझे इन स्वामी जी के बारे में अनेकों बातें सुनने को मिली थीं। वह उसी भवन में रहते थे जो वर्तमान श्रीनगर का राजभवन है। इस महल को महाराजा ने वास्तव में अपनी चौथी रानी, डॉ० कर्णसिंह की माता जी के लिए बनवाया था। बाद में इसमें तेज बहादुर सप्रू तथा गोपालास्वामी आयंगर जैसे महान् व्यक्ति रहे। बाद में इसे एक सरकारी अतिथि भवन बना दिया गया। जब भी जवाहरलाल नेहरू श्रीनगर आते थे, तो यह उनका सबसे प्रिय निवास-स्थान होता था। यहां से डल झील के पार सूर्यास्त का अत्यन्त मनोरम दृश्य दिखाई देता था। हरि पर्वत और शंकराचार्य की पहाड़ी के ऊपर पड़ने वाली सूर्य की किरणें किसी का भी मन मोह लेती थीं। यह आकर्षक महल अन्य कई सुविधाओं तथा कार सहित संतदेव को उपलब्ध करवाया गया था। इससे पता चलता है कि उनका महाराजा पर कितना प्रभाव था। यही स्वामी थे जिन्होंने महाराजा हरीसिंह के लिए यह भविष्यवाणी की थी कि उनका भविष्य पहले से उज्ज्वल होगा, जिसका अर्थ था कि वह संप्रभुता बीतने के बाद स्वतंत्र हो

जायेंगे। मैकबैथ की 'तांत्रिक बहनों' की भांति ही ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी संतदेव ने महाराजा को एक गलत धारणा का शिकार बनाकर संकटपूर्ण मार्ग पर ढकेल दिया। बेचारे महाराजा वह सब खो बैठे जो अगस्त 1947 से पहले उनके पास था। यह एक रोचक बात है कि जब महाराजा 27 अक्तूबर को बहुत जल्दी में अपराह्न 2 बजे श्रीनगर से जम्मू जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि वह स्वामी जी जो उन्हें श्रीनगर में डटे रहने की सलाह दे रहे थे, श्रीनगर से जाने वाले लोगों की पंक्ति में सबसे आगे थे।

जम्मू-काश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा 12 अगस्त को भेजे गये तार के उत्तर में पाकिस्तान *यथास्थिति* रखने के समझौते पर सहमत हो गया था। यह समझौता 15 अगस्त, 1947 से लागू किये जाने की बात मानी गई थी। इसी प्रकार का आग्रह भारत से भी किया गया था, परन्तु भारत ने इस बारे में कुछ स्पष्टीकरण तथा कुछ समय मांगा था। लेकिन पाकिस्तान में तो जम्मू और काश्मीर पर आक्रमण करके उस पर बलपूर्वक अधिकार करने की योजनायें पहले से ही बनाई जाने लगी थीं। *'यथास्थिति समझौते'* का उल्लंघन किया गया। राज्य का प्रभावपूर्ण आर्थिक घेराव किया गया जिससे आवश्यक वस्तुओं की बेहद कमी हो गई। काश्मीर की उस समय की स्थिति क्या थी इसका अनुमान 23 अक्तूबर, 1947 को 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित इस रिपोर्ट से लग सकता है—

"पाकिस्तान द्वारा हिटलरी तौर-तरीका व ताकत का इस्तेमाल करने की तैयारियां की जा रही थीं। कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता जबकि इस प्रकार के समाचार नहीं आते हैं कि पाकिस्तान का रुख *आक्रामक होता जा रहा है।* वह आक्रमण की योजना बना रहा है। पश्चिमी पंजाब और सीमा प्रांत के मुजाहिद सैर-सपाटे के लिए घूमने-फिरने वाले लोगों के रूप में बड़ी संख्या में घाटी के अन्दर जा रहे हैं। वे इन क्षेत्रों में भारत-विरोधी जहरीला प्रचार कर रहे हैं। छुरे चलाने वाले और आग लगाने वाले दल तैयार किये जा रहे हैं। हर ओर *अचानक जिन्ना टोपियां दिखाई देने लगी हैं।"* इसके अलावा गिलगिट से लेकर मीरपुर तक छिट-पुट सैनिक मुठभेड़ें शुरू कर दी गई थीं ताकि राज्य की सेना इधर-उधर बंट जाये। राज्य की अपनी सेना में 9 पैदल बटालियन 2 माउन्टेन बैट्री थीं। 22 अक्तूबर को पाकिस्तान ने पूरी शक्ति से कबायलियों द्वारा जम्मू-काश्मीर पर आक्रमण करवा दिया। पाकिस्तान की नियमित सेना इनकी पीठ से सहायता कर रही थी। इन कबायलियों में अफ्रीदी और मसूद (संसार में ये सबसे अधिक खूंखार और लड़ाकू माने जाते हैं।) कबीले के लोग शामिल थे। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान के नियमित सैनिक और मुजाहिद व स्वतंत्रता सैनिक इस आक्रमण में शामिल थे। इन सबकी कमान पाकिस्तानी सेना के मेजर जनरल अकबर खान के हाथों में थी। इस मेजर जनरल का कूट नाम 'जनरल *तारिक'* रखा गया था।

जम्मू-काश्मीर प्रशासन का हाल यह था कि पाकिस्तान के इस आक्रमण को रोकने के लिए वह मुजफ्फराबाद के अत्यन्त महत्वपूर्ण पुल कृष्ण-गंगा पुल को डायनामाइट के अभाव में तोड़ नहीं पाया। 23 अक्तूबर को मुजफ्फराबाद पर हमलावरों का कब्जा हो गया। जब महाराजा को स्थिति की गम्भीरता का

अनुभव हुआ। उन्होंने 24 अक्तूबर को भारत सरकार से सहायता पाने के लिए सम्पर्क किया। उसी दिन मोहरा बिजली उत्पादन केन्द्र हर हमलावरों का अधिकार हो गया और श्रीनगर शहर अंधकार में डूब गया। अगले दिन राज्यों के मंत्रालय के सचिव वी० पी० मेनन स्थिति का आकलन करने के लिए श्रीनगर गये। मेनन ने 'चारों ओर मरघट की शांति' देखी।

अधिमिलन

वी० पी० मेनन से वार्ता में महाराजा ने भारत सरकार द्वारा तत्काल सहायता देने और उसके विलय का आग्रह किया। महाराजा हरीसिंह ने अपने 26 अक्तूबर के पत्र में लार्ड माउन्टबेटन को लिखा—

"मेरे राज्य की इस समय जो स्थिति है और जैसा संकट उपस्थित है, उसमें मेरे पास भारत, स्वतंत्र उपनिवेश से सहायता मांगने के अलावा कोई विकल्प नहीं। यह स्वाभाविक है कि जब तक मैं अपने राज्य का विलय करता, वे मेरे द्वारा मांगी गई सहायता नहीं भेज सकते। अतः मैंने वैसा ही करने का निर्णय लिया है और आपकी सरकार की स्वीकृति के लिए मैंने अधिमिलन-पत्र संलग्न कर दिया है।"

अधिमिलन को स्वीकार करते हुए लार्ड माउन्टबेटन ने महाराजा को 27 अक्तूबर को लिखा—

"महामहिम द्वारा उल्लिखित विशेष परिस्थितियों में मेरी सरकार ने काश्मीर का भारत उपनिवेश में अधिमिलन स्वीकार कर लिया है। मेरी सरकार की यह इच्छा है कि जैसे ही काश्मीर में कानून और व्यवस्था की स्थापना हो जाये तथा हमलावरों को भगा दिया जाये, राज्य के अधिमिलन का प्रश्न जनमत द्वारा तय किया जाना चाहिए। इस बीच सैनिक सहायता की आपकी अपील मानकर, भारतीय सेना के सिपाहियों को आपके प्रदेश की रक्षा करने और आपकी जनता की सम्पत्ति, जीवन और सम्मान की रक्षा करने के वास्ते आपकी फौज की सहायतार्थ भेजे जाने की आज कार्यवाही की गई है।"

राज्य की रक्षा

22 अक्तूबर से बाद के घटनाक्रम विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व समय था। हर एक मिनट का महत्त्व था। ऊरी में ब्रिगेडियर राजिन्द्रसिंह के कमांड में राज्य की सेना ने, मुसलमान सिपाहियों के बड़ी संख्या में चले जाने के बाद भी, आखिरी आदमी और आखिरी गोली तक युद्ध किया और इस प्रकार हमलावरों के मुख्य दस्ते को दो दिनों तक रोके रखा। पीछे लौटती सेना ने यूरी पुल को भी नष्ट कर दिया, इस प्रकार एक दिन और मिल गया। ब्रिगेडियर राजिन्द्रसिंह एक शूरवीर की तरह मरे और राज्य की रक्षा में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

बारामूला पर हमलावरों का 24-26 अक्तूबर को अधिकार हो गया था। अपनी पुरानी आदतों के वशीभूत होकर उन्होंने बड़े स्तर पर लूट-मार, आगजनी, बलात्कार और हत्याएं कीं। जैसा कि फादर शेंक्स द्वारा लिखा गया है—काले, जंगली और विशाल जानवरों की तरह कबाइली घाटी से शहर में दो दिशाओं से

गोलियां चलाते हुए नीचे आये। एक मुसलमान मरीज की, जिसका बच्चा उसी वक्त पैदा हुआ था, एक बीस वर्षीय भारतीय नर्स फिलोमेना ने रक्षा करने की कोशिश की। उसको गोली से पहले मार दिया गया और उसके बाद मरीज को। सेंट जोसेफ कान्वेन्ट तक को नष्ट कर दिया और असिस्टेन्ट मदर सुपीरियर तथा तीन 'नन्स' की बर्बरतापूर्वक हत्या कर दी गई। बारामूला की स्थिति देखने के बाद न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता ने लिखा—"जीवित बचे हुए निवासियों का अनुमान है कि चार यूरोपियनों और एक सेवा निवृत्त ब्रिटिश अधिकारी और उसकी गर्भवती पत्नी सहित शहर के तीन हजार लोगों की हत्याएं कर दी गईं।" हमलावर शायद यह अनुभव नहीं कर सके कि उनके द्वारा अमानवीय अपराधों मे लगा समय ही उनको दण्ड देगा, क्योंकि इससे 27 अक्तूबर को श्रीनगर हवाई अड्डे पर भारतीय सेना उतरने में कामयाब रही और उसने हमलावरो को भारी संख्या में हताहत करते हुए उन्हें अन्त में पीछे खदेड़ दिया।

27 अक्तूबर को लेफ्टीनेन्ट कर्नल रणजीत राय के नेतृत्व मे भारतीत वायु सेना के कुछ विमान श्रीनगर हवाई अड्डे पर मंडराते रहे। यह निश्चित नहीं था कि हवाई अड्डे पर राज्य की सेना का अधिकार है या नहीं। वहा उतरने के बाद लेफ्टीनेन्ट कर्नल राय के अपने नेतृत्व में सेना की एक छोटी टुकड़ी को बारामूला की ओर ले गये। उन्होंने पत्तन मे अपना मोर्चा बनाया और बारामूला के निकट हमलावरों का सामना किया। इस साहसी अभियान में उन्होंने अपना जीवन बलिदान कर दिया। लेकिन इससे हमलावरो का हौसला पस्त हो गया। उन्होंने सोचा कि भारतीय सेना बड़ी संख्या में आ पहुंची है।

दूसरी साहसपूर्ण पहल मे मेजर सोमनाथ शर्मा ने (3 नवम्बर) हमलावरो को हवाई अड्डे के निकट आते देखकर उनसे मुठभेड़ की। वे हमलावरो से 7 और 1 के अनुपात में कम थे। परन्तु उन्होंने असीमित साहस का परिचय दिया और दुश्मनों को बड़ी संख्या में हताहत किया। इस युद्ध मे वे मारे गये और उन्हे मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्रदान किया गया। देश का प्रथम सबसे बड़ा सैनिक सम्मान पाने वाले वे प्रथम भारतीय थे। इसी बीच और सेनाए आ गई और हवाई अड्डे को सुरक्षित बना लिया गया। लेफ्टी० कर्नल रणजीत राय, मेजर सोमनाथ शर्मा और ब्रिगेडियर राजिन्द्रसिंह, इन तीन वीर सैनिकों के बलिदान ने काश्मीर को बचाने मे अविस्मरणीय योगदान किया।

एक भली प्रकार नियोजित सैनिक अभियान में ब्रिगेडियर सेन हमलावरों को शालटग के निकट भारतीय सेना के व्यूह के अन्दर ले आये और 5 नवम्बर को उन पर तीन तरफ से हमला किया। वायु सेना ने उनको ऊपर से मदद दी। हमलावरो को हटा दिया गया। उनमें से तीन सौ मारे गये। वे डरकर भाग खड़े हुए। शालटग का युद्ध (7 नवम्बर) निर्णायक सिद्ध हुआ। इसने श्रीनगर के सभी खतरों को खत्म कर दिया। इसके तीन दिन बाद आगे बढ़ने वाली भारतीय सेना ने बारामूला पर पुन. अधिकार कर लिया। यदि पेट्रोल की कमी के कारण उनके आगे बढ़ने में रुकावट नही आती तो मीरपुर और मुजफ्फराबाद भी उनके अधिकार में आ जाते। दुश्मन का लगभग सभी मोर्चों से पीछे भागना शुरू हो चुका था।

घाटी के उत्तर मे स्थित सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गिलगिट पर, जो कि चारो

ओर से हिमालय और कराकोरम से घिरा है, पाकिस्तान ने अधिकार कर लिया था। भारत की अंग्रेजी सरकार ने मार्च सन् 1935 में महाराजा को सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस स्थान को 60 वर्षों के लिए पट्टे पर देने को विवश कर दिया था। सर्वोच्च प्रभुता समाप्त हो जाने के बाद ब्रिटेन ने इसे महाराजा को वापस देने की घोषणा कर दी थी। महाराजा ने ब्रिगेडियर घनशारासिंह को गिलगिट का गवर्नर बनाकर भेजा था। 31 अक्तूबर को पाकिस्तान के भड़काने पर सेना के मुसलमान अधिकारियों ने विद्रोह कर दिया और गवर्नर को बंदी बना लिया। 4 नवम्बर को गैरज़िन कमांडर एक ब्रिटिश अधिकारी मेजर ब्राउन ने औपचारिक रूप से पाकिस्तानी झण्डा फहराया।

अनेकों डोगरा अधिकारी नई वास्तविकताओं को नहीं समझ पाये। मुस्लिम लीग के प्रचार ने उनके मुसलमान सिपाहियों की वफादारी और अनुशासन को खत्म कर दिया है यह वे समझ नहीं सके। उदाहरण के लिए हरीसिंह को आज्ञा दी गई थी कि वे अपने मुसलमान सिपाहियों को निशस्त्र कर दें। उन्हें इस विचार मात्र पर आपत्ति हुई। वह कल्पना नहीं कर सकते थे कि उनके जो सशस्त्र साथी द्वितीय विश्वयुद्ध में कंधा से कंधा मिलाकर लड़े हैं, उन्हें धोखा दे सकते हैं। लेकिन उन्होंने ऐसा ही किया। हरीसिंह को स्थिति की सही समझ न होने के कारण उसका मूल्य अपने जीवन से चुकाना पड़ा। जिस समय वह सो रहे थे, उनकी हत्या कर दी गई।

पाकिस्तानी हमलावरों ने लद्दाख पर अधिकार करने की जबर्दस्त कोशिश की; लेकिन भारतीय स्थल और वायु सेना की बेहतर सैन्य कुशलता और साहस के कारण उसे बचा लिया गया। इस सम्बन्ध में दो साहसिक कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहला साहसिक कार्य एयर कमान्डोर मेहरसिंह द्वारा 24 मई 1948 को अपने विमान को बिना ऑक्सीजन के समुद्र तल से 23,000 फुट की ऊंचाई पर उस समय तक अज्ञात हवाई मार्ग से ले जाकर लेह हवाई अड्डे की ऊबड़-खाबड़ हवाई पट्टी पर 11,555 फुट की ऊंचाई पर उतारना था। इससे भारतीय सेना को विमान द्वारा लेह पहुंचकर शत्रु की दया पर पड़े लद्दाख की रक्षा के लिए सुरक्षा व्यवस्था करने का अवसर मिल गया। दूसरा अद्भुत कार्य मेजर जनरल थिमैया का था, जो पहली नवम्बर, 1948 को अपने टैंकों को बर्फ से ढके जोजिला दर्रे पर 11,578 फुट की ऊंचाई पर ले गये। उनके अधिकारियों ने हमलावरों को आश्चर्य में डाल दिया और उनके 25 बंकरों को नष्ट कर दिया। हमलावरों के हौसले पस्त हो गये और वे भाग गये। जनरल थिमैया के कार्य की तुलना हनीबाल से की जाती है, जिसने आल्पस पर्वत को हाथियों से पार किया था। इतिहास में उस समय तक ऐसे कठिन स्थान और ऊंचाई पर कोई भी अपने टैंक नहीं ले जा सका था।

संयुक्त राष्ट्र संघ में जाना—दूसरी गलती

पहली जनवरी, 1948 को भारत इस मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गया। आजाद काश्मीर के प्रेसीडेण्ट सरदार इब्राहीम खान ने 12 जनवरी को पाकिस्तानी हमले पर परदा डालने के लिए यह घोषणा कर दी कि 99,000

स्वयंसेवकों को कश्मीर आज़ाद कराने की ट्रेनिंग दी जाती रही थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ में इस मसले को ले जाना दूसरी गलती थी। यह मसला अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की राजनीति में फंस गया। हर स्तर पर भारत ने विरोध का सामना किया और कश्मीर संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यसूची का एक स्थायी विषय बन गया।

पाकिस्तान ने भारतीय आरोपों का खण्डन किया। सुरक्षा परिषद के सामने उसके विदेश मंत्री जफरुल्लाह खान ने कहा—"पाकिस्तान सरकार पुरजोर इन्कार करती है कि वह तथाकथित हमलावरों की सहायता कर रही है या उसने भारत के विरुद्ध कोई आक्रमण किया है।" लेकिन जब संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के 17 अप्रैल के प्रस्ताव पर बना भारत-पाकिस्तान आयोग 17 अप्रैल, 1948 को कराची पहुंचा, पाकिस्तान ने 'आत्मरक्षा' के लिए पाकिस्तानी सेना की उपस्थिति को मई से मान लिया। सर ओवेन डिक्सन (जोकि बाद में भारत-पाकिस्तान के लिए बने आयोग के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि बने) ने कहा था—"जब जम्मू और कश्मीर की सीमाओं का हमलावरों ने उल्लंघन किया, वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध था और पाकिस्तान के नियमित सैनिकों का कश्मीर के क्षेत्र में मई, 1948 में प्रवेश करना भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विपरीत था।"

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने कश्मीर पर चार प्रस्ताव पारित किये। जनवरी, 1948 के प्रथम प्रस्ताव में केवल दोनों सरकारों से स्थिति सुधारने के लिए कदम उठाने का आग्रह किया गया था। सत्तरह अप्रैल, 1948 के दूसरे प्रस्ताव ने 5 सदस्यीय आयोग बनाने की सिफारिश की जो कि "उपमहाद्वीप में जाकर अपने कार्यालय द्वारा दोनों पक्षों में मध्यस्थता करे।" 13 अप्रैल, 1948 का प्रस्ताव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस प्रस्ताव के तीन भाग थे। प्रथम भाग युद्ध को बन्द करने से सम्बन्धित था। द्वितीय भाग में पाकिस्तान के लिए आवश्यक कर दिया गया था कि वह अपने सभी नियमित और अनियमित सैनिकों को वापस कर ले। इसके साथ ही हिन्दुस्तान से अपनी सेना घटाने हेतु कहा गया था। तीसरे भाग में कहा गया था— 'भारत सरकार तथा पाकिस्तान की सरकार अपनी इस इच्छा की पुष्टि करती है कि कश्मीर का भावी दर्जा जनता की इच्छा के अनुसार निश्चित किया जायेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु समझौता-संधि को स्वीकार करने के बाद दोनों सरकारें आयोग से ऐसी सही और समान परिस्थितियां निश्चित करने के लिए सलाह मशविरा करेंगी जिनमें जनता की स्वतन्त्र इच्छा की अभिव्यक्ति हो सके।" चौथा प्रस्ताव केवल तीसरे का सहायक अंग था।

इसके बारे में भारत सरकार का दृष्टिकोण यह था कि पहले और दूसरे भाग को क्रियान्वित करने के बाद ही तीसरे भाग को क्रियान्वित करने का प्रश्न उठता है।

सुरक्षा परिषद ने 14 मार्च, 1950 को आयोग का एक प्रतिनिधि उसका कार्य करने के हेतु नियुक्त करने का निर्णय लिया। इस कार्य को करने वाले प्रथम पदाधिकारी सर ओवेन डिक्सन थे। उन्होंने सम्बन्धित पक्षों से विचार-विनिमय करने के बाद एक योजना बनाई, जिसे 'डिक्सन योजना' के रूप से जाना जाता

है। डिक्सन के विचार से पूरा क्षेत्र तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है—(i) ऐसा क्षेत्र जिसके बारे में कोई संदेह नहीं कि वह भारत से विलय चाहता है। (ii) वह क्षेत्र जो निस्संदेह रूप से पाकिस्तान से विलय चाहता है। (iii) वह क्षेत्र जिसकी इच्छा के बारे में संदेह हो सकता है। उन्होंने सिफारिश की कि जनमत-संग्रह केवल उस क्षेत्र में हो जो तीसरी श्रेणी में आता है।

'डिक्सन योजना' भारत और पाकिस्तान दोनों द्वारा अस्वीकृत कर दी गई। सुरक्षा परिषद ने अप्रैल, 1951 में ग्राहम [illegible] को दूसरे प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया। उन्होंने दो वर्ष तक समस्या समाधान के लिए परिश्रम किया। परन्तु उनकी सिफारिशें भी दोनों देशों द्वारा ठुकरा दी गईं और गतिरोध जारी रहा।

सन् 1954 के बाद से भारत विश्व के देशों का ध्यान निरन्तर पाकिस्तान द्वारा अमरीकी सैनिक सहायता स्वीकार करने और पश्चिमी गुट का सदस्य बन जाने के फलस्वरूप परिस्थितियों में हो जाने वाले मौलिक परिवर्तनों की ओर दिलाता रहा। संयुक्त राष्ट्र में होने वाले प्रारम्भिक वाद-विवादों में सोवियत रूस का रुख कुछ नरम-गरम रहा। यह वह समय था, जब जवाहरलाल नेहरू को 'पश्चिमी साम्राज्यवाद का पालतू कुत्ता' कहा जाता था। तथापि बाद में जब दो प्रमुख शक्तियों में शीत युद्ध बढ़ गया, पाकिस्तान पश्चिमी प्रभाव-क्षेत्र में चला गया, भारत को सोवियत रूस का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। जनवरी, 1952 में सोवियत रूस के सुरक्षा परिषद के प्रतिनिधि ने अमरीका और इंग्लैंड पर काश्मीर के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया और घोषणा की कि राज्य की संविधान सभा समस्या का समाधान करेगी। दिसम्बर, 1955 में बुलगानिन और ख्रुश्चेव की काश्मीर यात्रा से सोवियत रूस का समर्थन स्पष्ट और मजबूत हो गया। ख्रुश्चेव ने घोषणा की—"काश्मीर की समस्या का निर्णय कि वह भारत का एक राज्य है, वहां की जनता द्वारा पहले से ही किया जा चुका है।"

राजनैतिक घटनाओं का विकास

एक ओर जहां अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह मसला सम्भवतः सिमट रहा था, दूसरी ओर जम्मू और काश्मीर में घटनाओं का चक्र तेजी से घूम रहा था और एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो चुका था। राज्य के भारत में विलय होने के बाद शेख अब्दुल्ला को महाराजा ने आपात्कालीन प्रशासन का प्रमुख नियुक्त किया। मार्च 4, 1948 को उन्हें मंत्रिपरिषद से युक्त प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। उन्हें वस्तुतः सरकार की सारी कार्यकारी शक्तियां मिल गईं। जैसा कि एक राजनीति के विश्लेषक ने लिखा है—"जिन मसलों पर महाराजा से सलाह लेने की आवश्यकता होती थी, उनकी उपेक्षा कर दी जाती थी और जिनकी सूचना देना उनको आवश्यक होता था, उनसे उन्हें अनजान रखा जाता था।" उन्होंने जो भी तर्कसंगत या असंगत किया, जवाहरलाल नेहरू ने सरदार पटेल की उद्विग्नता के बावजूद उनका समर्थन किया। महाराजा केवल संयुक्त राष्ट्र की कार्यवाहियों से ही नहीं वरन् शेख अब्दुल्ला के आक्रामक रवैये से भी क्षुब्ध हो उठे।

उन्होंने 31 जनवरी, 1948 को एक पत्र गृहमंत्री को भेजा, जिसमें उन्होंने अपनी निराशा का इन शब्दों में वर्णन किया था—

"मेरे लिए एक विकल्प सम्भव है और वह है विलय को वापस ले लेना। उससे संयुक्त राष्ट्र का संदर्भ समाप्त हो जायेगा, क्योंकि विलय को वापस ले लेने के बाद भारत को सुरक्षा परिषद में कार्यवाही जारी रखने का कोई अधिकार नहीं रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि राज्य विलय से पूर्व की स्थिति में वापस आ जायेगा।"

शेख अब्दुल्ला के अपमानजनक रवैये की शिकायत करते हुए महाराजा ने अपने 20 अप्रैल, 1948 के पत्र में लिखा—

"मैं यहां अपने विरुद्ध लगाये जाने वाले आधारहीन और अज्ञानपूर्ण आरोपों का कि मैं आधी रात को राजधानी छोड़कर गया और फर्नीचर तथा अन्य सामानों को ट्रकों में भरकर हटवा दिया का संदर्भ दे रहा हूं। साधारण स्थिति में इन आरोपों पर मैं कोई ध्यान नहीं देता, लेकिन इस बात से मुझे बहुत दुःख और सदमा पहुंचा है कि इनकी अभिव्यक्ति मेरे वर्तमान प्रधानमंत्री के कथनों में हुई है।"

अपने 6 मई, 1949 के सरदार पटेल को लिखे पत्र में महाराजा ने लिखा था—

"मेरे लिए आपसे इस सम्बन्ध में अपनी भावनाएं छिपाना उचित नहीं होगा कि शेख अब्दुल्ला को अपनी मनमर्जी के मुताबिक समय-समय पर अपने वायदों और लिखित शब्दों के विपरीत कार्य करने दिया जाता है। वे राज्य के अन्दर और बाहर खुले आम अपने साथियों सहित मेरी झूठी निन्दा करने और मुझे बदनाम करने का अभियान चलाने के लिए स्वतन्त्र हैं। यह सब उनके द्वारा मेरे प्रति राजभक्ति की उस शपथ के विरुद्ध है, जो उन्होंने पद-ग्रहण से पूर्व ली थी और उस वफादारी के भी खिलाफ है, जो उन्होंने जेल से छूटने से पूर्व मेरे लिए प्रकट की थी।"

महाराजा को अन्त में राज्य त्यागना पड़ा। वस्तुतः यह बलपूर्वक सिंहासन-च्युत कर देने के समान था। 9 जून, 1949 को महाराजा ने एक उद्घोषणा जारी की, जिसके अनुसार उन्होंने अपनी समस्त शक्तियां युवराज कर्णसिंह को प्रदान कर दीं। शेख अब्दुल्ला ने कर्णसिंह पर कोई ध्यान नहीं दिया और जबकि कोई निर्वाचित प्रतिनिधि सभा ऐसी नहीं थी, जिसके प्रति वह उत्तरदायी हों, हर प्रकार के निर्णय लेते रहे।

संवैधानिक सम्बन्ध

राज्य को धारा 370 द्वारा एक विशेष दर्जा दिया गया—यह धारा तब से निरन्तर विवाद का विषय बनी हुई है। राज्य का अपना संविधान भी बनना था। युवराज ने 1 मई, 1951 को एक उद्घोषणा जारी कर संविधान निर्मात्री सभा की स्थापना की। इसके अनुसार 40,000 की जनसंख्या का एक चुनावी जिला बनना था। हर जिले से इस सभा के लिए प्रतिनिधि चुना जाना था। अक्तूबर, 1951 के मध्य में चुनाव हुए। सभी 75 सीटें नेशनल कांफ्रेंस द्वारा

जीत ली गई—73 पर वह निर्विरोध पहुंची और दो में चुनाव जीतने के बाद। जम्मू प्रजा परिषद ने इन चुनावों का बहिष्कार कर दिया। मौलाना मसूदी की अध्यक्षता में 31 अक्तूबर को इस संविधान निर्मात्री सभा की बैठक और कार्य-वाही शुरू हुई।

तीन नये विकास

27 अक्तूबर, 1947 को विलय संधि के क्रियान्वित हो जाने तथा 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हो जाने के बाद, जम्मू और काश्मीर राज्य पूरी तरह भारतीय क्षेत्र और संविधान के अन्तर्गत लाया जा चुका था। महाराजा की शक्तियां समाप्त हो चुकी थीं।

उस समय बिन्दु पर तीन नये विकास एक साथ हो रहे थे। एक का राज-नैतिक और संवैधानिक विषय से सम्बन्ध था, दूसरे का प्रजा परिषद के आन्दोलन से और तीसरे का शेख अब्दुल्ला की स्वतंत्र काश्मीर का सर्वेसर्वा बनने की आन्तरिक महत्त्वाकांक्षा से।

दिल्ली समझौता

राजनैतिक और संवैधानिक विषय में मूल प्रश्न यह था कि—राज्य का संवैधानिक ढांचा क्या होगा और वह किस प्रकार भारतीय संविधान में दी गई पूरी राजनैतिक, कानूनी और आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप बनेगा। शेख अब्दुल्ला की अपने और अपने पिछलग्गुओं के लिए वस्तुत. एक शेखशाही बनाने की छिपी हुई महत्त्वाकांक्षा और उनके द्वारा भारत की जनमत-संग्रह कराने की कठिनाइयों का कपट नीति से शोषण करने के कारण उनके और केन्द्रीय सरकार के नेताओं के बीच कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर मतभेद हो गये। ये मतभेद विशेष रूप से मौलिक अधिकारों, नागरिकता, सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्र, चुनाव आयोग, कम्पट्रोलर और आडीटर जनरल आदि से सम्बन्धित प्रावधानों से थे। काफी वाद-विवादों और झुंझलाहट अनुभव तथा खुले आम प्रकट करने के बाद एक विस्तृत समझौता हुआ, जो दिल्ली समझौता के नाम से जाना जाता है। इसकी घोषणा नेहरू ने 24 जुलाई, 1952 को केन्द्रीय संसद में की। 19 अगस्त को राज्य की संविधान सभा ने भी इसकी स्वीकृति कर दी।

दिल्ली समझौते में सम्मिलित प्रावधान थे—पैतृक शासनतंत्र की समाप्ति, अवशिष्ट शक्तियों का राज्य में निहित होना, 'राज्य की प्रजा' के लिए विशेष नागरिकता का जारी रहना, राष्ट्रीय ध्वज को अलग और विशिष्ट स्थान देते हुए राज्यकीय ध्वज को फहराना तथा कुछ प्रतिबन्धों व सीमाओं के अन्दर मौलिक अधिकारों, राष्ट्रपति की आपात्कालीन शक्तियों, सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्र से सम्बन्धित प्रावधानों का राज्य पर लागू होना।

दिल्ली समझौते की घोषणा के बाद राज्य की संविधान सभा ने तत्काल पैतृक राजतंत्र को समाप्त करने के लिए कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। 21 अगस्त, 1952 को औपचारिक रूप से प्रस्ताव पारित कर दिया गया। राज्याध्यक्ष को सदरे-रियासत की पदवी दी गयी। उसका चुनाव राज्य विधान सभा द्वारा 5 वर्ष के

लिए उन लोगों में से किया जाना था, जो "प्रथम श्रेणी के राज्य के निवासी थे।" उसके लिए भारत के राष्ट्रपति का अनुमोदन पाना आवश्यक था और वह उसकी इच्छा तक ही पद पर रह सकता था।

प्रजा-परिषद का आन्दोलन

भारतीय मत का एक बड़ा भाग ऐसा भी था, जिसका विचार था कि शेख अब्दुल्ला को अनुचित सीमा तक खुश किया जा रहा है और राष्ट्रीय हितों की बलि दी जा रही है। विशेष रूप से जम्मू-निवासी अप्रसन्न थे। वे शेख अब्दुल्ला द्वारा डोगरा राजवंश के विरुद्ध अक्सर अपमानजनक टिप्पणियां किये जाने से नाराज थे।

जम्मू में आन्दोलन का नेतृत्व प्रजा-परिषद कर रही थी। आन्दोलन के मुख्य मुद्दे थे—एक देश में दो विधान, एक देश में दो निशान, एक देश में दो प्रधान—नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर जनसंघ जो दिल्ली समझौते के विरुद्ध था, प्रजा-परिषद के आन्दोलन को पूरी सहायता दे रहा था। जनसंघ ने दिल्ली समझौते की प्रतिक्रिया में कहा था—"शेख अब्दुल्ला ने बिना कोई महत्त्वपूर्ण बात माने अपनी सबमे अनुचित मांगों को प्राप्त कर लिया है। नेहरू द्वारा प्राप्त की गई हर सुविधा ऐसी शर्त से जुड़ी है, जो उसको लगभग प्रभावहीन कर देती है। इसमे निश्चित रूप से जम्मू और काश्मीर की सुरक्षा और विकास सकट में पड़ जाएंगे और भारत को काश्मीर में कोई उपलब्धि होने वाली नहीं है।" भारतीय जनसघ के अध्यक्ष श्यामाप्रसाद स्वयं जम्मू गये। लेकिन उन्हे 11 मई, 1953 को बन्दी बना लिया गया। उनका पुलिस हिरासत में ही 23 जून को स्वर्गवास हो गया। शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध पूरे राष्ट्र में क्रोध की एक लहर उठ खड़ी हुई। जनता मे नेहरू की अपनी प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचा। मुकर्जी के शव को कलकत्ता ले जाया गया, जहा उनका अन्तिम सस्कार इतने विशाल रूप में किया गया जो नगर के इतिहास में किसी का नहीं हुआ था।

प्रजा-परिषद ने नेहरू जी की जिस दिल्ली समझौते को लेकर कठोर आलोचना की थी, उसके पालन तक में शेख अब्दुल्ला ने सच्चाई नहीं दिखाई। वास्तव में उन्हें पैतृक शासनतन्त्र को पहले समाप्त करने तथा बाद में दिल्ली समझौते के शेष प्रावधानों को लागू करने की अनुमति देना एक दूसरी गलती थी।

यदि इस समझौते के सभी प्रावधानों को एक साथ लागू किये जाने का आग्रह किया जाता तो बाद में आने वाली अनेकों कठिनाइयों से बचा जा सकता था। शेख अब्दुल्ला के हित में जो बातें थीं उन्हें लागू करवाने के बाद उन्होंने समझौते के शेष प्रावधानों को जानबूझकर देरी करने के लिए सविधान सभा की उपसमितियों को सौंप दिया। नेहरू जी तक को उनकी कपटपूर्ण चालों के कारण निराशा होने लगी थी। 6 और 7 अगस्त, 1952 को शेख अब्दुल्ला को अपने पत्रों में नेहरू जी ने दुख प्रकट करते हुए लिखा था कि यदि काश्मीरी नेताओं द्वारा दिल्ली समझौते में परिवर्तन किये गये तो संसद में उनकी प्रतिष्ठा पर आंच आयेगी। दोबारा नेहरू ने 28 जून, 1953 को शेख अब्दुल्ला को लिखा—

"हमारे बीच जो समझौता हुआ था उसको नज़रअन्दाज़ करना या तोड़ना मेरे लिए बड़े आश्चर्य का विषय है। वह हमारे सारे विश्वास की जड़ों को धक्का पहुंचाता है। मेरे शब्दों से मेरी प्रतिष्ठा बंधी है।" लेकिन अब्दुल्ला पर कोई असर नहीं पड़ा। यद्यपि नेहरू ने स्वयं उन्हें दिल्ली आमंत्रित किया था, पर वे विचार-विमर्श के लिए दिल्ली जाना भी टालने लगे। सत्ता के अहंकार और एक स्वतंत्र शेखशाही की महत्वाकांक्षा ने उन पर पूरा अधिकार जमा लिया था।

स्वतंत्र शेखशाही

इसी समय के आस-पास नेहरू जी को छोड़कर जो भी केन्द्रीय नेता शेख अब्दुल्ला के संपर्क में आया उसे उनके भारत और नेहरूपक्ष के नीचे दूसरे रंग छिपे दिखाई दिये। 10 अप्रैल, 1952 को उन्होंने रनबीरसिंह पुरा में एक आक्रामक भाषण दिया जिसमें भारत सरकार और भारतीय प्रेस की कटु आलोचना ही नहीं की गई वरन् उन पर साम्प्रदायिक होने का भी आरोप लगाया। 22 जून को उन्होंने टिप्पणी की कि भारत-काश्मीर संबंध एक निर्णायक स्थिति में आ गये हैं। दोबारा 13 जुलाई, 1952 को शहीद दिवस के अपने भाषण के दौरान उन्होंने घोषणा की कि राज्य के कामों में केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप को सहन नहीं किया जायेगा। 3 मई, 1953 को अमरीकी राजदूत एडलायी स्टीवेन्सन श्रीनगर आये और शेख अब्दुल्ला के साथ उनकी लम्बी मुलाकात हुई, जिसके कारण शेख अब्दुल्ला के इरादों के बारे में गलतफहमी होने लगी। न्यूयार्क टाइम्स ने 5 जुलाई के अंक में एक नक्शा छापा जिससे काश्मीर का एक स्वतंत्र राज्य होने का संकेत मिलता था। शेख अब्दुल्ला ने 10 जुलाई को मुजाहिद मंजिल में अपना भाषण देते हुए कहा—"इसलिए एक ऐसा समय आयेगा जब मैं उनको विदा कर दूंगा।" 13 जुलाई, 1953 को शहीद दिवस पर बोलते हुए उन्होंने दोबारा कहा—"यह जरूरी नहीं है कि हमारा राज्य भारत या पाकिस्तान का एक अतिरिक्त अंग बने।"

यदि इन सभी घटनाओं और वक्तव्यों को एक साथ रखा जाये तो कोई संदेह नहीं रहता कि शेख अब्दुल्ला काश्मीर का स्वतंत्र शासक होने का सपना देख रहे थे। उस समय बिन्दु पर आंग्ल-अमरीकी गठबन्धन उनको ऐसे सपने लेने के लिए उत्साहित कर रहा था। क्लीमेन्ट एटली ने 11 नवम्बर, 1953 को लन्दन में एक बयान दिया था—"काश्मीर को न भारत का होना चाहिए न पाकिस्तान का वरन् स्वतंत्र होना चाहिए।" इससे पहले कही गई बात की ही पुष्टि होती है।

शेख अब्दुल्ला के रुख से केन्द्रीय नेताओं को गम्भीर चिन्ता हुई। इससे राज्य के मंत्रिमंडल में भी फूट पड़ गई। 7 अगस्त, 1953 को मन्त्रिमंडल के उपमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद सहित अधिकांश मंत्रियों ने उन पर जनता के मन में अनिश्चितता और आश्चर्य का भाव पैदा करने का आरोप लगाया। सदरे-रियासत ने सुझाव दिया कि राज्य के मंत्रिमंडल की बैठक तत्काल बुलाई जाए, लेकिन शेख ने इसकी उपेक्षा कर दी। वह गुलमर्ग चले गये। शेख अब्दुल्ला के नापाक इरादों की जानकारी पाते ही सदरे-रियासत ने उनको तत्काल मंत्री-पद

से हटा दिया और उन्हें गुलमर्ग में गिरफ्तार कर लिया गया।

प्रात:काल 9 अगस्त को बख्शी गुलाम मोहम्मद को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलवाई गई।

पद ग्रहण करने के बाद बख्शी गुलाम मोहम्मद ने अपने रेडियो भाषण में शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध की गई कार्यवाही को उचित ठहराते हुए कहा—"देश के हितों के साथ विश्वासघात होने वाला था। आजादी का नारा खतरनाक था। एक साम्राज्यवादी शक्ति के प्रभाव के अन्तर्गत स्वतंत्र काश्मीर भारत तथा पाकिस्तान दोनों की जनता के लिए एक गम्भीर खतरा होगा। वहां एक दूसरे कोरिया जैसे हालात पैदा किये जा सकते हैं।"

बख्शी गुलाम मोहम्मद एक प्रभावशाली प्रशासक थे। शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के कारण होने वाले दंगों से वे दृढ़तापूर्वक निपटे। इन दंगों में 70 लोग मारे गये। अपनी आत्मकथा आतिशे-चिनार[1] में शेख अब्दुल्ला ने हताहतों की संख्या 2,000 और 3,000 के बीच बताई है। वह लिखते हैं—'मेरी *गिरफ्तारी की खबर सुनकर बख्शी गुलाम मोहम्मद के खिलाफ ज्वालामुखीय* प्रदर्शनों का विस्फोट हुआ। पुलिस की गोलियों से करीब 2,000 से 3,000 लोग मारे गये।" लेकिन यह कथन गलत है और अफवाहों पर आधारित है।

बख्शी गुलाम मोहम्मद समझ गये थे कि राज्य और केन्द्र के बीच कार्य चलाने योग्य सम्बन्ध बनाने के लिए दोनों को घनिष्ठ संवैधानिक कड़ियों से जोड़ना होगा। उन्होंने दिल्ली समझौते को कार्यान्वित करवाने के लिए राज्य सरकार के रुकावट डालने वाले रुख को खत्म कर दिया। राष्ट्रपति द्वारा 14 मई, 1954 को प्रथम संवैधानिक आदेश जारी हुआ जिसमें भारतीय संविधान के कुछ प्रावधान राज्य पर लागू हो गये। धारा 370 से संबंधित अन्य प्रावधानों को बनाया गया। 1 अप्रैल, 1959 को राज्य में प्रवेश करने के लिए बनाये गये 'परमिट सिस्टम' को समाप्त कर दिया गया।

राजनीति, कानून तथा व्यवस्था के बारे में बख्शी का दृष्टिकोण व्यावहारिक था। जब 9 अगस्त, 1955 को मिर्जा अफजल बेग द्वारा शेख अब्दुल्ला के *अनुमन्त्रण पर जनमत संग्रह मोर्चा (प्लेबिसाइट फ्रंट) की स्थापना की गई,* उन्होंने आयोजकों को अपनी सभा आयोजित करने और अपने उद्गारों को प्रकट करने की अनुमति दे दी।

शेख अब्दुल्ला 8 जनवरी, 1958 को छोड़ दिये गये। तथापि जब हजरतबल में 21 फरवरी को शेख अब्दुल्ला के भाषण के बाद उनके समर्थकों ने दंगा कर दिया और जिसमें एक आदमी मर गया व 21 घायल हुए, बख्शी ने दंगाइयों को गिरफ्तार कर और उन पर मुकदमा चलाकर कड़ा रुख अपनाया। 20 अक्तूबर, 1958 को हजरतबल हत्या और दंगा काण्ड के 80 में से 68 अपराधी जिनमें तीन भूतपूर्व संसद सदस्य और भूतपूर्व उपमंत्री शामिल थे, को सेशन कोर्ट के सुपुर्द कर दिया गया।

इससे पूर्व 29, अप्रैल, 1958 को शेख अब्दुल्ला को दोबारा गिरफ्तार कर

---

1. 'आतिशे-चिनार' कई दृष्टियों से गलत है और इसमें जो विभिन्न दावे किये *गये हैं उनसे संबंधित आंकड़ों का स्रोत नहीं दिया गया।*

लिया गया था। उन्हें मिर्जा अफजल बेग और 22 अन्य लोगों को पाकिस्तान द्वारा राज्य को अपने में जबर्दस्ती मिलाये जाने का षड्यंत्र रचने के आरोप में 'काश्मीर कान्सीप्रेसी केस' के अन्तर्गत बन्दी बनाया गया था।

बख्शी गुलाम मोहम्मद का दृष्टिकोण रचनात्मक और विकास आधारित था। उनके प्रधानमंत्रित्व में राज्य के तीनों क्षेत्रों में पर्याप्त विकास कार्य हुए।

तथापि बख्शी गुलाम मोहम्मद में तीन कमियां थीं। पहली, जनमत संग्रह मोर्चा द्वारा उनके विरुद्ध किया जाने वाला विषैला प्रचार जो उन्हें काश्मीर के हितों के साथ विश्वासघात करने वाला बताता था। दूसरे, नेशनल कांफ्रेंस के अन्दर उनके राजनैतिक विरोधी लगातार उनकी काट किया करते थे और नई दिल्ली के सत्ताधारियों को उनके विरुद्ध झूठी कहानियां सुनाया करते थे। तीसरे, बख्शी गुलाम मोहम्मद के निकटवर्ती गुट ने व्यक्तिगत और राजनैतिक संरक्षण पाने की व्यवस्था कर ली थी और घोर भ्रष्टाचार तथा भाई-भतीजेवाद में पड़ गये थे।

इन सब कमियों का मिला-जुला असर यह हुआ कि बख्शी गुलाम मोहम्मद के विरुद्ध एक अत्यन्त शत्रुता और संदेह से पूर्ण वातावरण बन गया। बख्शी गुलाम मोहम्मद ने बहादुरी के जोश में कामराज योजना के अन्तर्गत अपना इस्तीफा दे देने का प्रस्ताव कर दिया, हालांकि इस योजना से बख्शी का कोई संबंध नहीं था क्योंकि वे कांग्रेस संगठन के सदस्य नही थे। जवाहर लाल नेहरू द्वारा उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने 4 अक्तूबर, 1963 को अपना इस्तीफा दे दिया। लेकिन बख्शी का अपनी पार्टी पर पूरा प्रभाव था। केन्द्रीय नेताओं की इच्छाओं के विरुद्ध, वह अपने कट्टर समर्थक शमशुद्दीन को विधान सभा की पार्टी का नेता निर्वाचित करवाने में सफल रहे। शमशुद्दीन प्रधानमंत्री बन गये और बख्शी पीछे से उनका नेतृत्व करते रहे।

तथापि साधारण जनता और बख्शी के विरोधी यह समझ चुके थे कि केन्द्रीय नेता उनसे खुश नहीं हैं। उनके और उनके समर्थकों के विरुद्ध शत्रुता का भाव बढ़ता गया। यह शत्रुता भाव 'मोये-ये मुकद्दस' केस के रूप में प्रकट हुआ। यह केस पैगम्बर मोहम्मद के बाल—पवित्र अवशेष चोरी चले जाने का था।

27 दिसम्बर, 1963 को हजरबल मकबरे से पवित्र अवशेष गुम पाये गये। खिड़की तोड़ दी गई थी और अवशेष को निकालकर ले जाया गया था। यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। भीड़ एकत्रित हो गई। ऐसा लगा जैसे आकाश से नरक टूट पड़ा हो। दुकानें बन्द कर दी गई। बख्शी गुलाम मोहम्मद के भाई का एक होटल और सिनेमा घर तथा कोठीबाग पुलिस स्टेशन को आग लगा दी गई। प्रशासन व्यवस्था ठप्प हो गई। भारत सरकार के अनेकों उच्च अधिकारी, इंटेलीजेंस ब्योरो के निदेशक बी० एन० मुलिक सहित श्रीनगर पहुंचे और व्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्न किये।

बी० एन० मुलिक ने घोषणा की कि जांच करने से पता चला है कि यह किसी अन्दरूनी आदमी का ही काम है। उन्होंने उद्घोषणा की कि मकबरे पर कुछ समय के लिए निगरानी नहीं रखी जायेगी, ताकि जो आदमी पवित्र अवशेष ले गया है, वह उन्हें सुरक्षापूर्वक वापस रख सके। 4 जनवरी, 1964 को ठीक यही हुआ। पवित्र अवशेष को गुप्त रूप से वापस रख दिया गया। लेकिन इससे

जनता संतुष्ट नहीं हुई। आन्दोलन जारी रहा। तथापि 3 फरवरी, 1964 को सईद मिराक शाह के नेतृत्व में 15 मुसलमान धर्मगुरुओं ने पवित्र अवशेष को पहचानकर घोषणा की कि वह मोहम्मद साहब का ही बाल है। आन्दोलन खत्म हो गया।

इस घटना से संबधित सभी मूल प्रश्न अभी तक अनुत्तरित ही रहे हैं। चोरी किसने की? क्या वह किसी पाकिस्तानी एजेंट का या 'जनमत संग्रह मोर्चा' के किसी तत्त्व का काम था? या वह बख्शी गुलाम मोहम्मद के कहने से ले जाये गये थे ताकि वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी अपनी बीमार मां को उन्हें दिखा सकें?

कुछ भी हो, इस घटना ने काश्मीर के राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था के घातक दोषों को दिखा दिया। दुर्भाग्यवश इससे कोई वास्तविक सीख नहीं ली गई और संस्थागत ढांचे में कोई मौलिक सुधार नहीं किये गये। केवल ऊपरी सुधार कर दिये गये। शमशुद्दीन को इस्तीफा देना पड़ा।

गुलाम मोहम्मद सादिक 29 फरवरी, 1964 को प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। 'प्रधानमंत्री' और 'सदरे-रियासत' की पदवी बदलकर क्रमश: 'मुख्यमंत्री' तथा 'राज्यपाल' (गवर्नर) कर दी गई। यह जम्मू और काश्मीर के संविधान में एक संशोधन द्वारा 30 मई, 1965 से किया गया। इस तारीख के बाद से जी० एम० सादिक अपनी मृत्यु 12 दिसम्बर, 1971 तक मुख्यमंत्री रहे।

सादिक ने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के प्रति नरम रुख अपनाया। जवाहरलाल नेहरू शुरु से शेख अब्दुल्ला पर 'काश्मीर कान्सीप्रेंसी' केस में मुकदमा चलने से बेचैनी अनुभव कर रहे थे। यह मुकदमा उन पर 21 मई, 1958 से चल रहा था। कानूनी कार्यवाही में यह लम्बा समय अपराधियों द्वारा देर करने की नीति के कारण लगा था और यद्यपि न्यायाधीश ने सभी अपराधियों के विरुद्ध षड्यंत्र करने का स्पष्ट मामला पाया था और उन्हें जनवरी 25, 1962 को सेशन कोर्ट के सुपुर्द कर दिया था, नेहरू और सादिक दोनों ने उस केस के वापस लेने का निर्णय किया। इस सम्बन्ध में औपचारिक आदेश 8 अप्रेल, 1964 को जारी किये गये और शेख अब्दुला को रिहा कर दिया गया।

अपनी रिहाई के बाद शेख अब्दुल्ला काश्मीर राज्य में जहां भी गये, उनका शानदार स्वागत किया गया। दिल्ली में नेहरू के साथ उनकी भावनापूर्ण भेंट हुई और वह उनके अतिथि की तरह ठहरे।

शेख अब्दुल्ला मई, 1964 में पाकिस्तान गये। 25 मई को वह अयूब खां से मिले। दूसरे दिन वह 'आजाद काश्मीर' की राजधानी मुजफ्फराबाद गये। वहां मई, 27 को उन्हें जवाहरलाल नेहरू के स्वर्गवास का समाचार मिला और वह तत्काल दिल्ली वापस आ गये। अयूब से हुई अपनी वार्ता में शेख अब्दुल्ला ने भारत और पाकिस्तान का एक परिसंघ बनाने के प्रस्ताव की चर्चा की थी। अपनी पुस्तक *'फ्रेंड्स एण्ड नाट मास्टर्स'* में इस भेंट को याद करते हुए अयूब ने लिखा है—"अब शेख अब्दुल्ला और मिर्जा अफजल बेग 1964 में पाकिस्तान आये, वे भी भारत, पाकिस्तान और काश्मीर का एक परिसंघ बनाने का बेतुका प्रस्ताव लाये थे। मैंने उन्हें साफ-साफ बता दिया, हम उससे राजी नहीं हैं। यह ताज्जुब की बात है कि जहां हम काश्मीर को आजाद करने की कोशिश कर रहे

हैं, उन्हें एक ऐसा ख्याल रखने के लिए मजबूर किया गया, कि अगर उसके मुताबिक चला जाये तो वह हमें गुलामी की ओर ले जायेगा।"

उसके बाद शेख घाटी में आये। उन्होंने फिर से अपना रुख बदल दिया और घोर भारत-विरोधी भाषण देने शुरू कर दिये।

फरवरी, 1965 में शेख अब्दुल्ला अपनी पत्नी के साथ हज करने के लिए गये। लेकिन अपनी यात्रा के दौरान वे ऐसा राजनैतिक प्रचार करने लगे जो भारत के लिए बहुत आपत्तिजनक था। मार्च 28, 1965 को वह चीन के प्रधानमन्त्री चाऊ-एन लाई तक से मिले। इसलिए उनका पासपोर्ट रद्द कर दिया गया। जब वे 9 मई, 1965 को वापस आये, उन्हें दिल्ली हवाई अड्डे पर गिरफ्तार कर लिया गया।

इस बीच पाकिस्तान ने अन्दरूनी तोड़-फोड़ और अगस्त, 1965 में अचानक आक्रमण करके काश्मीर पर अपना अधिकार करने की योजना तैयार कर ली थी। जनरल मलिक के नेतृत्व में तीस हजार 'मुजाहिदों', 'रज़ाकारों' और नियमित सैनिकों की एक सेना बड़े स्तर पर तोड़-फोड़ की कार्यवाही के लिए तैयार की गई थी। जैसे ही बर्फ पिघला, हजारों घुसपैठिये स्थानीय काश्मीरियों की वेश-भूषा में घाटी में 5 अगस्त, 1965 को घुस गये। भारतीय अधिकारियों को इस बारे में उस समय सूचना मिली जब घुसपैठिये श्रीनगर की बाहरी सीमा तक पहुंच चुके थे। उसी समय पाकिस्तान ने सीमा पर गोलीबारी शुरू कर दी। पाकिस्तानी सेना ने 1 सितम्बर, 1965 को छम्ब जोरियां क्षेत्र मे 50 टैंकों के साथ एक बड़ा हमला बोला। इसका उद्देश्य तूफानी तेजी से काश्मीर पर कब्जा कर लेना था। अमरीका द्वारा पाकिस्तान को मिलने वाली सैनिक सहायता ने उसके शासकों को आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास से भर दिया था। अयूब खां ने तो यहां तक शेखी बघारी कि वह सुबह हमला शुरू करके दूसरे दिन का नाश्ता नई दिल्ली में कर सकता है। लेकिन आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास से भरे सेनापतियों को शीघ्र ही अपनी सीमाओं का पता चल गया।

घुसपैठिये ज्यादा आगे नहीं बढ़ सके। बोल-चाल की भिन्नता और गलत ट्रेनिंग के कारण वे अपना मकसद पूरा नहीं कर सके। उनका पीछा किया गया और वे एक के बाद एक पकड़े गये। पाकिस्तानी अधिकारियों द्वारा जैसी आशा की जा रही थी, स्थानीय जनता विद्रोह के लिए नहीं उठी। भारत ने इसके विपरीत 5 सितम्बर, 1965 को लाहौर सीमा पर हमला करके जवाबी कार्यवाही की। उसने सियालकोट की ओर भी अपनी सेनायें बढ़ा दीं। फलस्वरूप छंब जोरियां क्षेत्र पर पाकिस्तानी सेना का दबाव हल्का पड़ गया। राज्य पर सैन्य बल से अधिकार करने की पाकिस्तानी योजना दोबारा असफल हो गई। प्रारम्भिक असफलता के बाद सुरक्षा परिषद ने 22 सितम्बर, 1965 को दोनों पक्षों को युद्ध बन्द कर देने के लिए सहमत कर लिया।

सोवियत रूस ने एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभाई। भारत और पाकिस्तान के बीच शान्ति करवाने में उसकी विशेष रुचि थी, क्योंकि वह इस क्षेत्र में चीन के बढ़ते हुए प्रभाव से चिन्तित था। चीन ने युद्ध के दौरान भारत के प्रति आक्रामक रवैया अपनाया था। 16 सितम्बर को चीन ने भारत को तीन दिन की अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा था कि "भारत चीन-सिक्किम सीमा पर अपनी

सैनिक चौकियों को हटा ले।" दोबारा 19 सितम्बर को चीन ने काश्मीरी जनता के 'आत्मनिर्णय के अधिकार की लड़ाई' में अपना पूरा समर्थन देने की घोषणा कर दी थी। उसी समय चीन ने यह भी कहा था कि वह चुपचाप नही बैठा रहेगा।

सन् 1962 के युद्ध के उपरान्त चीन ने काश्मीर के प्रति अपने रवैये मे परिवर्तन कर दिया। इससे पूर्व चीन ने तटस्थ या भारत के अनुकूल मत अपनाया था। उदाहरण के लिए 16 मार्च, 1956 को चाऊ-एन-लाई ने भारतीय दूत से कहा था—"काश्मीर की जनता भारत में विलय होने के लिए पहले से ही अपनी इच्छा प्रकट कर चुकी है।" दोबारा चीन ने भारत को बताया था कि उसका "काश्मीर विवाद में कभी भी उलझने का इरादा नही है" और पूरी दुनिया यह भली प्रकार जानती है।

सोवियत रूस के प्रयत्न सफल हुए। कोसीजिन और बुलगानिन की उपस्थिति मे भारत की ओर से प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री और पाकिस्तान की ओर मे राष्ट्रपति अयूब खा ने 10 जनवरी, 1966 को ताशकन्द घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। दोनो पक्ष अपनी सेनाओ को 5 अगस्त, 1965 की स्थिति में वापस लाने के लिए सहमत हो गये।

अनेकों पर्यवेक्षकों द्वारा सन् 1965 का भारत-पाक युद्ध दोनों देशो के लिए सबसे अधिक व्यर्थ और फलहीन कहा गया है। इसमे दोनो पक्षो की आर्थिक ही नही वरन् मनुष्यों और साजसमान की भी अपार क्षति हुई। ताशकन्द घोषणा के बाद विश्व के अन्य देशों की काश्मीर समस्या के प्रति रुचि कम हो गई। पाकिस्तान को भी भारी मूल्य चुकाकर यह सबक मिल गया कि काश्मीर मे किया गया उसका कोई भी भावी हस्तक्षेप केवल काश्मीर तक ही सीमित नही रहेगा वरन् भारत-पाकिस्तान के बीच पूर्ण युद्ध सिद्ध होगा।

ताशकन्द घोषणा के बाद घाटी का राजनैतिक वातावरण ठंडा पड़ गया। 8 दिसम्बर, 1967 को शेख अब्दुल्ला को मुक्त कर दिया गया। यद्यपि जनमत सग्रह मोर्चा की गतिविधिया लगातार उसी तेजी से जारी थी, जनता ने समय बीतने के साथ शेख अब्दुल्ला पर ध्यान देना कम कर दिया था। जनवरी 8, 1971 को शेख अब्दुल्ला, मिर्जा अफजल बेग और जी० एम० सादिक को काश्मीर से निकाल दिया गया। 12 जनवरी को जनमत सग्रह मोर्चा पार्टी पर प्रतिबन्ध लागू हो गया।

सन् 1971 के अन्त में बगला देश मे मुक्ति आन्दोलन जोर पकड गया था। शेख मुजीबुर रेहमान की प्रार्थना पर भारतीय सेना ने बगला देश मे प्रवेश किया। दिसम्बर, 1971 में नियमित युद्ध शुरू हो गया। 3 दिसम्बर को पाकिस्तान ने उत्तरी सीमा पर जम्मू-काश्मीर के ऊपर आक्रमण कर दिया। पन्द्रह दिन तक घोर स्थल और वायु युद्ध हुआ। 16 दिसम्बर को बंगला देश मे पाकिस्तानी सेना ने समर्पण कर दिया। भारत ने एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा कर दी। 17 दिसम्बर को पाकिस्तान ने भी युद्ध विराम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारत की शानदार विजय और एक राष्ट्र बगला देश के जन्म के साथ यह युद्ध समाप्त हुआ।

युद्ध के बाद भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और पाकिस्तान

के राष्ट्रपति जेड० एम० भुट्टो के साथ द्विपक्षीय वार्ता हुई। इसके फलस्वरूप शिमला समझौता हुआ, जिस पर दोनों देशों ने 3 जुलाई, 1972 को हस्ताक्षर किये। यह समझौता परिशिष्ट 8 में दिया गया है।

जुलाई, 1972 के बाद से शिमला समझौता भारत-पाक सम्बन्धों की आधारशिला बन गया। यद्यपि कभी-कभी इस समझौते की दोनों पक्षों द्वारा भिन्न-भिन्न व्याख्या की जाती हैं, फिर भी यह एक सफल समझौता सिद्ध हुआ है।

बंगला देश युद्ध, 90,000 सैनिकों के समर्पण के साथ होने वाली पाकिस्तान की पराजय और शिमला समझौते द्वारा काश्मीर की समस्या के द्विपक्षीय बन जाने के बाद काश्मीर के शेख अब्दुल्ला और मिर्जा अफजल बेग जैसे हठी नेताओं में एक परिवर्तन आया। उनकी स्वतन्त्र काश्मीर या पाकिस्तान के प्रति महत्त्वाकांक्षा कम हो गई। वे अपने भाषणों में समझौते की बातें करने लगे। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने शेख अब्दुल्ला के साथ समझौता कर लेना उचित समझा। सन् 1972 में दोनों पार्टियों के बीच वार्ता शुरू हुई। जी० पार्थसारथी और मिर्जा अफजल बेग के बीच तीन वर्ष तक चलने वाली लम्बी बातचीत के बाद काश्मीर सहमति के नाम से एक समझौता हुआ, जिस पर 24 फरवरी, 1975 को हस्ताक्षर किये गये। इस समझौते को परिशिष्ट 2 में दिया गया है।

काश्मीर सहमति की भावना के अनुसार मुख्यमन्त्री सय्यद मीर कासिम ने, जिन्होंने इस सहमति के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और जो जी० एम० सादिक के बाद मुख्यमन्त्री बने थे, त्याग-पत्र दे दिया। कांग्रेस की विधान सभा पार्टी ने शेख अब्दुल्ला को अपना नेता निर्वाचित किया। फरवरी 25, 1975 को उन्हें मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलवाई गई। तीन गैर कांग्रेसी भी इस मन्त्रिमण्डल में शामिल हुए।

कांग्रेस और शेख अब्दुल्ला के बीच आपसी समझदारी ज्यादा दिनों तक नहीं चली। यह एक घृणा-प्रेम सम्बन्ध साबित हुई। एक ओर शेख अब्दुल्ला "इन्दिरा जी के साहस और निर्णय-कुशलता के साथ उन्हें नेहरू जी से मिली दृष्टि और राजनैतिक कुशलता की सराहना करते थे," दूसरी ओर उन्होंने कांग्रेस पार्टी में शामिल होने के सुझाव को ठुकरा दिया था। इसके बजाय उन्होंने नेशनल कान्फ्रेंस की स्थापना फिर से की और 13 अप्रैल, 1975 को उसके अध्यक्ष बन गये। इससे एक ऐसी विचित्र स्थिति पैदा हो गई जिसमें वह विधान सभा की एक राजनैतिक पार्टी के समर्थन से मुख्यमन्त्री पद पर थे और साथ ही दूसरी राजनैतिक पार्टी के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे।

5 जुलाई, 1975 को शेख अब्दुल्ला ने जनमत संग्रह मोर्चा पार्टी को भंग कर उसे नेशनल कांफ्रेंस में मिला लिया। अगस्त 15 को उन्होंने खुले आम अब्दुल गनी लोन सहित उन दस कांग्रेसी सदस्यों का स्वागत किया जो नेशनल कांफ्रेंस में शामिल हो गये थे। इससे कांग्रेस पार्टी में तहलका मच गया। तथापि मतभेदों को दूर कर दिया गया और एक तालमेल समिति बना दी गई जिसमें दोनों पार्टियों के दो-दो प्रतिनिधि थे। शेख अब्दुल्ला ने 21 अक्तूबर को अपने मन्त्रिमण्डल का विस्तार करने की घोषणा की और श्रीमती इन्दिरा गांधी से बिना सहमति लिए चार कांग्रेसियों को अपनी मर्जी से मन्त्रिमण्डल में ले लिया। इसके उत्तर में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उन चार कांग्रेसियों को निर्देश दिया कि

वे मन्त्रिमण्डल में शामिल न हों। शपथ ग्रहण समारोह को रद्द करना पड़ा।

इस प्रकार आठ महीने से भी कम समय में फरवरी, 1975 में हुए इन्दिरा-अब्दुल्ला सहमति की नींव पर बने भवन में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गईं। इस भवन में अन्य अनेकों बड़ी कमियां थीं जिससे यह अस्थिर सिद्ध हुआ।

अन्त में, मार्च, 1977 के संसद चुनावों में जब उत्तरी भारत से कांग्रेस का प्राय: सफाया हो गया था, यह कमजोर भवन टूटकर गिर गया। कांग्रेस के उस समय विधान सभा के 73 स्थानों में से 45 सदस्य थे (उस समय दो स्थान रिक्त थे)। कांग्रेस पार्टी ने पूर्वानुमान लगाया कि ऐसी स्थिति में शेख अब्दुल्ला उससे अपने सम्बन्ध तोड़कर जनता पार्टी के साथ समझौता कर लेंगे, इसलिए उसने 25 मार्च, 1977 को उनको दिया जाने वाला अपना समर्थन वापस ले लिया और अपना मन्त्रिमण्डल बनाने का दावा किया। लेकिन शेख अब्दुल्ला गवर्नर एल० के० झा से विधान सभा भंग करवाने में सफल रहे। कांग्रेसी इससे बहुत उत्तेजित हो उठे। उन्होंने शेख अब्दुल्ला के कार्य को "राजनैतिक विश्वासघात का एक अधम कार्य" और 'केवल तीन सदस्यों का समर्थन प्राप्त मुख्यमन्त्री की धृष्टता" कहा। राज्यपाल के निर्णय को भी "गैर जनतांत्रिक, नैतिक रूप से अरक्षणीय और संवैधानिक रूप से अनुचित" कहा गया। लेकिन मोहरा चला जा चुका था और शेख अब्दुल्ला ने कांग्रेसियों को मात देने में कामयाबी पा ली थी।

यह 'जनता' लहर का जमाना था। राज्य में जनता पार्टी शाखा की स्थापना की गई और मौलाना मसूदी को उसका संयोजक बनाया गया। मौलवी फारूक की अवामी एक्शन कमेटी सहित अनेकों निराश पार्टियां और दल उसकी छत्रछाया में एकत्रित हो गये। इसके कारण नेशनल कांफ्रेंस की चिन्ता बढ़ गई। लेकिन शेख अब्दुल्ला ने काश्मीरियों के मन में पक्षपातपूर्ण भावनायें उभारने और धारा 370 को रद्द किए जाने का भय दिखाने की अपनी आजमाई हुई तरकीबें अपनायीं।

शेख अब्दुल्ला का फासिस्टों सरीखा प्रचार सफल रहा। 30 जून, 1977 को हुए चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस ने घाटी के 42 स्थानों में से 39 स्थानों पर विजय प्राप्त की। उसे जम्मू क्षेत्र में 32 स्थानों में से मुसलिम बहुल जिलों में 7 स्थान तथा लद्दाख के दोनों स्थान प्राप्त हो गये। जनता पार्टी को घाटी में केवल दो स्थान और जम्मू में 11 स्थान मिले। कांग्रेस का घाटी में पूरी तरह सफाया हो गया, जम्मू में उसे जनता पार्टी की अन्दरूनी फूट के कारण 10 स्थान मिल गये।

चुनावों में जनता पार्टी के खराब नतीजों का कारण उसके पास कोई स्पष्ट नीति या कार्यक्रम का न होना था। उसके नेता परस्पर विरोधी बातें करते थे। उदाहरण के लिए सुब्रमनियम स्वामी ने जम्मू में घोषणा की थी कि वे धारा 370 को हटवा देंगे। इसके ठीक विपरीत ए० जी० लोन ने कहा कि वे धारा 370 को मजबूत बनवायेंगे। अशोक मेहता जवाहरलाल नेहरू की काश्मीरी नीति को बदलने से सम्बन्धित जनता पार्टी के अस्पष्ट इरादों की बात किया करते थे।

शेख अब्दुल्ला को 9 जुलाई, 1977 को मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलवाई गई। उनकी शानदार विजय ने उनके व्यक्तित्व के अधिनायकवादी तत्व को और मजबूत किया। उनके चारों ओर शक्ति का घेरा और छोटा हो गया। प्रशासन

और राजनैतिक कार्यक्षेत्र में छोटे-छोटे चौगुट अधिकार जमाने लगे। पूर्ण शक्ति अपने साथ भ्रष्टाचार तथा पतनकारी प्रभाव लाई। उनके प्रशासन ने भ्रष्टाचार और क्षेत्रीय पक्षपात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

काश्मीरियों की भावनाओं को उत्तेजित और अपने पक्ष में रखने के लिए शेख अब्दुल्ला ने पुनर्वास विधेयक और अल फतह के 30 कट्टर समर्थकों के खिलाफ दायर केसों को वापस लेने जैसे विवादास्पद उपायों को अपनाया। उन्होंने चुपचाप चतुरतापूर्वक डा० फारूक अब्दुल्ला को अपने मुख्यमन्त्री पद का उत्तराधिकारी बनाने की पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी। सम्भावित प्रतियोगियों को नेशनल कांफ्रेंस से निकाल दिया गया अथवा उनके पंख काट दिये गये। उदाहरणार्थ मिर्जा अफजल बेग से 25 सितम्बर, 1978 को अपना त्यागपत्र देने के लिए कहा गया और चार दिन बाद उन्हें पार्टी से निकाल दिया गया। स्थानीय दल-बदल विरोधी कानून को भी इस प्रकार बनाया गया था जिससे राज्य की शक्ति के ढांचे पर शेख अब्दुल्ला के अन्तर्गुट का अधिकार मजबूत होता था।

एक तूफानी और घटनाओं से भरे जीवन के बाद 8 सितम्बर, 1982 को शेख अब्दुल्ला का स्वर्गवास हो गया। उनका जिस विशाल स्तर पर अन्तिम संस्कार किया गया वैसा देश के इतिहास में कम लोगों को मिला है। जैसी कि आशा थी, उनके बाद डॉ० फारूक अब्दुल्ला मुख्यमन्त्री बने। श्रीमती इन्दिरा गांधी और राज्यपाल बी० के० नेहरू की पृष्ठभूमि से दी गई सहायता के कारण यह परिवर्तन सरलता से हो गया। लेकिन डा० फारूक अब्दुल्ला और श्रीमती इन्दिरा गांधी के सम्बन्ध शीघ्र खराब हो गये। राज्य विधान सभा के जून, 1983 के चुनावों के दौरान कांग्रेस (ई) और नेशनल कांफ्रेंस के बीच गम्भीर संघर्ष उभर उठे। इसके साथ ही राष्ट्र-विरोधी कार्यवाहियों में बहुत वृद्धि हो गई। केन्द्र और राज्य के बीच सम्बन्धों में तनाव आ गया। पंजाब की घटनाओं का जम्मू-काश्मीर पर भी दुष्प्रभाव पड़ने लगा। हिंसक घटनायें बढ़ गईं।

जब मैंने 26 अप्रेल, 1984 को राज्यपाल का पद ग्रहण किया तो जैसा कि अध्याय 7 में दिया गया है, राज्य में उथल-पुथल मची हुई थी। मेरे द्वारा उस अध्याय में वर्णित परिस्थितियों में मैंने डा० फारूक अब्दुल्ला के मन्त्रिमण्डल को 2 जुलाई, 1984 को हटा दिया और जी० एम० शाह मुख्यमन्त्री बने। उनके मन्त्रिमण्डल को भी मैंने 7 मार्च, 1986 को पदच्युत कर दिया। जम्मू और काश्मीर के संविधान की धारा 92 के अन्तर्गत मेरे द्वारा राज्यपाल का शासन आरोपित कर दिया गया। यह छै महीने तक जारी रहा। इसके पश्चात् भारतीय संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत राज्य पर राष्ट्रपति शासन लागू हो गया और राष्ट्रपति की ओर से मैं दो माह की अवधि तक प्रशासन चलाता रहा।

राजीव-फारूक सहमति के बाद 7 नवम्बर, 1986 को फारूक अब्दुल्ला के मुख्यमन्त्रित्व में नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) का संयुक्त मन्त्रिमण्डल बना। मार्च, 1987 में राज्य विधान सभा के लिए नये चुनाव हुए। इन संयुक्त दलों ने भारी विजय पाई। लेकिन जनता के एक बड़े भाग द्वारा इन चुनावों के सही होने पर सन्देह प्रकट किया गया। इसके तथा अन्य दूसरे कारणों से, जिनका

'मूल कारण' शीर्षक से तीन अध्यायों में विश्लेषण किया गया है, घाटी में हिंसा का तूफान बढ़ना शुरू हो गया और उसने 1989 के अन्तिम भाग में घाटी को पूरी तरह अपनी चपेट में ले लिया।

मैंने 12 जुलाई, 1989 को अपने कार्यालय का कार्यभार छोड़ा। मेरे द्वारा प्रथम अध्याय पृष्ठभूमि में वर्णित परिस्थितियों में दूसरी बार मेरी नियुक्ति राज्यपाल पद पर 19 जनवरी, 1990 में हुई। मैंने 26 मई, 1990 को त्यागपत्र दे दिया।

मैंने बाद के अध्यायों में जनमत संग्रह मोर्चा, अल फतह, जम्मू और काश्मीर लिब्रेशन फ्रण्ट, और दूसरे उन जैसे विघटनकारी संगठनों की गतिविधियों, काश्मीर सहमति (फरवरी, 1975), राज्य विधान सभा के जून, 1977, जून, 1983 और मार्च, 19·7 के चुनावों और संसद के दिसम्बर, 1984, नवम्बर, 1989 के चुनावों जैसी मुख्य घटनाओं, पुनर्वास अधिनियम जैसे विवादास्पद उपायों, मेरे द्वारा फारूक अब्दुल्ला के मन्त्रिमण्डल को 2 जुलाई, 1984 को भंग करना, जी० एम० शाह के मन्त्रिमण्डल को 7 मार्च, 1986 को भग करना, डा० फारूक अब्दुल्ला का 18 जनवरी, 1990 को त्यागपत्र देना जिसमें महत्त्वपूर्ण सवैधानिक व राजनैतिक मुद्दे शामिल थे तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों का वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में वर्णन किया है। इसलिए इस अध्याय में इन विषयों का विस्तृत वर्णन करना आवश्यक नहीं समझता। इसी प्रकार यहां प्रवृत्तियों, सामाजिक धाराओं और अन्तर्धाराओं का भी वर्णन नहीं किया है, क्योंकि इन सभी पर सही पृष्ठभूमि में अगले अध्याय 'चेतावनी के संकेत' में प्रकाश डाला गया है।

आज जो काश्मीर है वह अपने इतिहास की दो हजार वर्षों की लम्बी यात्रा के दौरान घटित होने वाली सभी घटनाओं, विकासों जिनको मैंने प्रस्तुत किया है, जानबूझकर या अनजाने की जाने वाली भूलों की सूची—जिन्हें मैंने दिखाया है, विश्वासघात और षड्यन्त्रों का मलबा जिसे मैंने नापा है, तथा अनेकों दुखान्तों और विजयों के नाटकों जिनको मैंने अनावृत किया है, का प्रतिफल है। इतिहास द्वारा उसे मारे गये अनेकों घाव अब भी ताजा बने हुए हैं और कुछ दूसरे अपने गहरे दाग छोड़ गये हैं।

सन् 1947 के मध्य में अपने इतिहास के सबसे निर्णायक मोड़ पर उसे एक ऐसे चिकित्सक की, एक ऐसे महान मस्तिष्क की आवश्यकता थी जो उसके पुराने घावों को सिल सके और पुराने दागों पर मलहम लगा सके। दुर्भाग्यवश वैसा नहीं हुआ। केवल ऊपरी साज-सज्जा पर ध्यान दिया गया। नये अभिनेताओं ने बाहरी सतह पर पॉलिश लगा दी जो जल्दी ही धूमिल पड़ गई। जड़ों के महत्त्व को नहीं समझा गया जैसा कि अध्याय 4, 5 और 6 में ज्ञात होता है। सुधार के नये बीज नहीं बोये गये और एकीकरण के नये साँचे नहीं ढाले गये।

तीसरा अध्याय

चेतावनी के संकेत

इतिहास एक अंधी देवी नहीं है
और वह दूसरों के अंधेपन को माफ नहीं करती।

सन् 1988 के आरम्भ से ही, इस उठने वाले तूफान की चेतावनी में केन्द्रीय सरकार को भेजने लगा। परन्तु ऊपर बैठे हुए लोगों के पास इन संकेतों को देखने-समझने की न तो इच्छा थी, न समय और ना ही अन्तर्दृष्टि। इस उद्देश्य से कि देश के सामने सच्चाई प्रकट हो, भ्रान्तियां दूर हों, मिथ्या वातों, अर्धसत्यों और अफवाहों को दबाया जा सके तथा जाने-अनजाने की जाने वाली पिछली गलतियों से सबक लिया जा सके, मैं आपके सामने अपने द्वारा बराबर भेजी गई कुछ पूर्व सूचनाओं को प्रस्तुत कर रहा हूं। ये चेतावनियां इतनी स्पष्ट थीं, इतनी सीधी और उपयुक्त कि इन्हें नजरअन्दाज करना एक वास्तविक ऐतिहासिक आयाम का पाप करना था।

मैं अपनी डायरी के कुछ अंश नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं। ये अंश उन विवरणों के भाग हैं, जो मैं हर महीने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को भेजता रहा।

मेरी डायरी में 1988 के विवरण निम्नलिखित थे—

"बड़े पैमाने पर हिंसा और सर्वव्यापी अव्यवस्था जिसमें नौ जानें गईं और कम-से-कम एक दर्जन मौकों पर पुलिस फायरिंग, सीमा पार से घटनाओं का संचालित होना, विनाशकारी दलों का समर्थन करने वाले नौजवानों द्वारा हथियार चलाने की ट्रेनिंग पाने के लिए पाकिस्तान जाना, ताकि उस राज्य में भी पंजाब जैसे हालात पैदा हो सकें, कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो इस महीने की घटनाओं के आपसी सम्बन्ध और प्रवृत्तियों को बताती हैं।

राज्य में सामाजिक तथा राजनैतिक ढांचे की दुर्बलता और प्रशासनिक व्यवस्था की कमजोरी एक बार फिर उद्‌घाटित हुई है। इन घटनाओं में कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक दलों का प्रभाव भी प्रकट होता है।

'रियासी उपक्षेत्र' को एक स्वतन्त्र जिले का दर्जा देने के लिए किया गया 'रियासी आन्दोलन' राज्य की एक और कमजोरी पर ध्यान दिलाता है—यह है क्षेत्रीय ईर्ष्या।

जुलाई के अपने विवरण में, मैंने संकेत दिया था कि बम विस्फोट, पेट्रोल

पम्प की लूट, पुंछ में हुई गड़बड़ी, मौलवी फारूख और उसके समर्थकों द्वारा अपनाया हुआ आक्रामक रुख, पाकिस्तान समर्थक गतिविधियों की बढ़ती तेजी, जमात-ए-इस्लामी के धमकाने और परेशान करने वाले दांव-पेंच, प्रशासन के एक वर्ग की उन तत्वों से गुप्त सहानुभूति और प्रान्तीयतावादी वफादारी, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष बलों की बढ़ती हुई तटस्थता और शासन करने वाले लोगों की अपने पार्टी कार्यकर्ताओं में उत्साह जगाने की असफलता, कुछ ऐसी बातें हैं जिनमें आने वाले तूफान की पूर्व सूचना मिलती है। यह तूफान उठा और महीने भर इस तूफान ने पूरी घाटी को अनेक तरह से नुकसान पहुंचाने की कोशिश भी की। जनरल जिया उल हक की आकस्मिक मौत जैसी घटनाओं ने इस तूफान की प्रचंडता को और बढ़ा दिया।

इन सभी गतिविधियों के समांतर चल रहा था काश्मीरी युवकों द्वारा पाकिस्तान जाकर हथियार लेने और आतंकवादी कार्यवाही के लिए ट्रेनिंग पाने का आंदोलन।

मुख्य घटनाओं को गिना जाए तो : 31 जुलाई की रात दो बम विस्फोट और एक डकैती हुई। 4 अगस्त को लक्ष्मिपुर में एक इलेक्ट्रॉनिक घड़ी के रूप में टाइम-बम पाया गया, जिसे समय से पहले ही निष्क्रिय कर दिया गया। 12 अगस्त को जम्मू के मुख्य बाजार में एक ऑटो रिक्शा में विस्फोट हुआ। 14 अगस्त, पाकिस्तान के स्वतन्त्रता दिवस पर श्रीनगर के भीतरी हिस्से और घाटी के दूसरे कस्बों में हरे झण्डे फहराये गये। भारतीय स्वतन्त्रता दिवस, 15 अगस्त को अनेक जगहों पर काले झण्डे फहराये गये। 16 अगस्त को नल्लाह-मार मार्ग पर पुलिस और पाकिस्तान समर्थक आंदोलनकारियों की मुठभेड़ हुई। जुलूस में लोग भारत-विरोधी नारे लगा रहे थे और रावलपिंडी सड़क को खोल देने की माग कर रहे थे—यह वह माग थी जो कुछ ही दिन पहले मौलवी फारूख ने उठाई थी। बाद में जो मुठभेड़ हुई, उसमें पुलिस फायरिंग के दौरान एक व्यक्ति मारा गया और 50 अन्य घायल हो गये। एक पुलिस जीप जला दी गई और कुछ दुकानों को नुकसान भी पहुंचाया गया। 16 अगस्त की रात को ही श्रीनगर में ऋषि पीर मन्दिर को जला देने की कोशिश भी की गई।

17 अगस्त की देर शाम को जब जनरल जिया की मौत की खबर मिली तो श्रीनगर के निचले क्षेत्र में बड़ी मात्रा में इकट्ठे होकर लोगों ने भारत और रूस विरोधी नारे लगाये। हालांकि कर्फ्यू लगा दिया गया फिर भी श्रीनगर, बारामूला, पुलवामा और अदरवाह के कुछ क्षेत्रों में दंगे हुए। चार दिन तक लड़ाई-झगड़ा चलता रहा और पुलिस को गोली चलानी पड़ी, जिसकी वजह से 18 अगस्त और 21 अगस्त को चार लोगों की मृत्यु हुई।

23 अगस्त को शिया-प्रधान मुहल्लों में कुछ मुठभेड़ें हुई और कर्फ्यू लगा दिया गया। 24 अगस्त को, जब लगभग 50 शिया मुसलमान मुहर्रम के जुलूस में अब्नगुजर जा रहे थे, तो उन पर हमला हुआ और पत्थर फेंके गये। शिया और सुन्नियों में तनाव को देखते हुए मुहर्रम का जुलूस रोक दिया गया। श्रीनगर में फिर कर्फ्यू लगा दिया गया। 26 अगस्त को जामा मस्जिद में जुमे की नमाज के बाद जिसमें जनरल जिया की 'फतह' की कामना की गई, मस्जिद से बाहर आती भीड़ हिंसात्मक हो उठी। पुलिस को फिर फायरिंग का सहारा लेना पड़ा, जिसमें

तीन लोग मरे और पांच अन्य घायल हुए।

31 अगस्त को अनन्तनाग में एक खाली और खड़ी हुई बस में विस्फोट हुआ। बस के पास खड़ा एक व्यक्ति मारा गया।

31 जुलाई और 1 अगस्त की रात को हुए बम विस्फोटों की जिम्मेवारी जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चे ने ली है। इस संदर्भ में कुछ पोस्टर और प्रेस विज्ञप्तियां भी जारी की गई।

हालांकि इन घटनाओं का प्रत्यक्ष कारण कोई घटना हो सकती है, परन्तु इनका मूल कारण काश्मीर की शासन-व्यवस्था, प्रशासन, इसके समाज के आर्थिक और सामाजिक सूत्र तथा वर्तमान सांस्कृतिक प्रकृति में खोजा जा सकता है।

इस अशांति के संदर्भ में कुछ आधारभूत सवाल उठते हैं। पाकिस्तानी स्वतन्त्रता दिवस पर हरे झण्डे और भारतीय स्वतन्त्रता दिवस पर काले झण्डे कैसे फहराये गये ? जनरल जिया की मौत श्रीनगर, बारामूला और दूसरे कस्बों में बड़े पैमाने पर हुई हिंसा का अवसर क्यों बन गई, जबकि पाकिस्तान में ऐसा कोई दंगा-फसाद नहीं हुआ ? दंगाइयों के इस व्यवहार का क्या ब्यौरा दिया जा सकता है, जबकि 1979, अप्रेल में जुल्फिकार अली भुट्टो के प्राणदण्ड के विरोध में बड़े पैमाने पर जिया-विरोधी प्रदर्शन हुए थे और जमात-ए-इस्लामी के कार्य-कर्त्ताओं की सम्पत्ति इसलिए लूट और जला दी गई थी क्योंकि यह शक था कि यह संस्था जनरल जिया को समर्थन दे रही है ?

मोटे तौर पर इन सभी सवालों का जवाब स्थानीय नेतृत्व में पैठी हुई धर्म की दुहाई देकर लाभ उठाने और पाकिस्तान-समर्थक भावनाओं को प्रोत्साहित करने की प्रवृत्ति है। जो भी सत्ता से बाहर हुआ है उसे 'रावलपिंडी सड़क को खोलना', 'पाकिस्तान की ओर बहती सभी नदियों को खोलना' और 'जो भाई दूसरी ओर चले गये हैं उनके पुनर्स्थापन' की मांग बहुत ही समयोचित और न्यायपूर्ण लगती रही हैं। सत्ता पाने के लिए, जनमत बनाने के लिए या अखबार की सुर्खियों में आने के लिए ये सबसे बढ़िया नारे हैं। यह दुर्भाग्य है कि किसी ने इस प्रवृत्ति को दण्डित करना तो दूर, हतोत्साहित भी नहीं किया।

युवा लोग, वह तत्त्व जो वास्तव में हिंसा में भाग लेते हैं, या तो अनपढ़ हैं अथवा साम्प्रदायिक और कट्टरपंथी नेताओं द्वारा आसानी से बहकाये जाते हैं। शिक्षित युवा अन्यायपूर्ण व्यवस्था से क्षुब्ध हैं, उन्हें रोजगार के सीमित अवसर और नौकरी के लिए बेईमानी से लोगों का चुनाव करके उनकी योग्यता को नकार दिया जाता रहा है। कुंठाएं और धर्मान्धता, मध्ययुगीनता और 'संतवाद' साथ-साथ पनप रहे हैं। इन्हीं कारणों से यह सब चलता रहा है। जब भी कभी कोई बाहरी प्रेरणा मिलती है तो यह बाहर प्रकट हो जाता है। इन्हें न तो मध्ययुगीन परम्पराएं और न ही न्याय और ईमानदारी के आधुनिक मानदण्ड उपलब्ध हैं। काश्मीर के युवकों को दोनों युगों की खराब बातें मिल रही हैं।

सभी स्थानीय दल और क्षेत्रीय पार्टियां काश्मीरी लोगों का दिल जीतने के लिए ईमानदारी से किये गये परिश्रम पर नहीं, बल्कि अपने राजनैतिक स्तर को बढ़ाने के लिए भावात्मक और अतीत के सवालों का सहारा लेती हैं। इसी रुख में काश्मीर की व्यवस्था और प्रशासन को लगे रोग का मूलभूत कारण निहित है।

वास्तविकता से जूझने और समस्या को उसकी जड़ों से मिटाने की बजाय सरल उपायों और व्यक्तिवादी राजनीति का सहारा लिया जाता है। इससे व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएं जन्म लेती हैं और सत्ता हथियाना सर्वोपरि उद्देश्य बन जाता है। इसके लिए किये गये कपट से अशांति फैलती है। प्रशासनिक शक्ति और साधनों का एक अहम् भाग इसी गडबड़ी को शांत करने मे चला जाता है और इन साधनों का दूसरा मुख्य हिस्सा उन सामाजिक और आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग पर व्यय कर दिया जाता है, जिनके कंधों पर वर्तमान व्यवस्था टिकी हुई है।

वास्तविकताओं के इस संदर्भ मे वर्तमान विकास का असंतुलन कोई हैरानी की बात नही है। लगभग 90% शहरी और शहर योग्य भूमि का स्वामी नया कुलीन वर्ग है। बड़े पैमाने पर सट्टेबाजी, धोखाधड़ी और मुनाफाखोरी मे उन्ही लोगों की जेबें भर रही है जो पहले से ही धनी और प्रभावशाली हैं। अत्यधिक प्रचारित किये गये ग्रामीण भूमि-सुधार के पुनर्वितरणात्मक भाग को भी 1978 के संशोधन से खत्म कर दिया गया जिसके अनुसार बागों को भूमि सीमा से मुक्त कर दिया गया और इस तरह 'नव जमींदारवाद' के दरवाजे खोल दिये गये। और भी विकास की रूपरेखा और प्राथमिकता वास्तविक विकास के लिए बहुत कम साधन छोड़ती है। नतीजन-शिक्षा मे नुकसान होता है, नागरिक सेवाओं पर ध्यान नही दिया जा सकता, जन-स्वास्थ्य को नकार दिया जाता है और पर्यावरण की परिस्थितियों पर गम्भीर दबाव पड़ता है।

इन परिस्थितियों मे अन्याय और कुंठाएं बनी रहती हैं, अज्ञानता और निरक्षरता है, और इसलिए शोषण व चालबाजी के अवसर भी है। आज सभी एक दिशा में सोचते हैं, किसी को गरीब और शोषित लोगो के कल्याण की कुछ भी परवाह नहीं है, सभी एक ही स्वर मे पाकिस्तान के गीत, आर्टिकल 370 और काश्मीरी पहचान बनाये रखने का राग अलाप रहे हैं।

नेशनल कान्फ्रेंस के एक दल ने फिर से 'पुनर्स्थापन' जैसे मुद्दों के गड़े मुर्दे निकालने शुरू कर दिये हैं, क्योंकि वे जान गये थे कि भावनात्मक मोर्चे पर उनके पाव उखड चुके है। 12 अगस्त, 1988 को नेशनल कान्फ्रेंस के युवा दल ने एक ज्ञापन दिया, जिसमे मुझसे कहा है कि मै राष्ट्रपति से 'पुनर्स्थापन बिल' पर सहमति देने की प्रार्थना करूं जो कि 'राज्य के साठ लाख लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले' राज्य संविधान ने पारित किया है। ज्ञापन के अनुसार: "जम्मू-काश्मीर के हम लोग यह महसूस करते है कि पुनर्स्थापन एक्ट को लागू न करने की वजह से भारत मे विलय की जड़ें उखड़ रही हैं। हम उम्मीद करते हैं कि जम्मू और काश्मीर के लोगों को निकट भविष्य मे पुनर्स्थापन एक्ट को सहमति न देकर 'अन्यथा' सोचने पर विवश नही किया जायेगा, जो भारतीय सरकार को भी अच्छा नही लगेगा।" इन शब्दों मे धमकी स्पष्ट थी। इन शब्दों मे शोषण करने वाले प्रजातन्त्रात्मक तरीकों का सहारा लेने की और उन मुद्दों को उठाने की इच्छा भी स्पष्ट थी, जिन मुद्दों ने अतीत मे नेशनल कान्फ्रेंस के चुनावी उद्देश्यों को इतनी अच्छी तरह से पूरा किया था। काश्मीरी मानसिकता को एक लम्बे समय तक जो क्षति पहुंची और राज्य की केन्द्र से भावनात्मक एकता को जो नुकसान पहुंचा, उससे उनका कोई मतलब नही है।

राज्य मे अशांति और राज्य सरकार द्वारा स्थिति से निपटने की रीति पर

विभिन्न पार्टियों की प्रतिक्रिया भी अलग-अलग थी। भारतीय जनता पार्टी ने संयुक्त सरकार द्वारा राज्य की स्थिति से प्रभावपूर्ण रीति से न निपट पाने की निंदा की और गवर्नर शासन की मांग की। जी० एम० शाह की अवामी नेशनल कांफ्रेंस ने भी गवर्नर शासन लागू करने की मांग की। श्री जी० एम० शाह ने जोर-दार शब्दों में उस "लापरवाहीपूर्ण और निष्क्रिय तरीके" की निन्दा की "जिसे राज्य सरकार एक विस्फोटक स्थिति से निपटने के लिए अपना रही थी।" और उन्होंने केन्द्रीय सरकार और गवर्नर से मांग की कि वे हस्तक्षेप करें और अयोग्य संयुक्त सरकार को बरखास्त कर दें। उन्होंने पुलिस अधिकारियों को फायरिंग के आदेश न मानने तक की सलाह दी। ए० जी० लोन की पीपल्स कांफ्रेंस ने जनता को ऐसे मुख्यमंत्री को बरखास्त करने के लिए आंदोलन छेड़ने के लिए प्रेरित किया जो कि "केन्द्र से मिलकर अत्याचारों को बढ़ावा दे रहा था।" मुस्लिम युनाइटेड फ्रण्ट (जमात-ए-इस्लामी दल) ने भी बार-बार कर्फ्यू लगाने और फायरिंग का आदेश देने के लिए राज्य सरकार की भर्त्सना की। मुस्लिम युनाइटेड फ्रण्ट (अब्बास अंसारी दल) ने राज्य सरकार द्वारा मुहर्रम के जुलूस की रक्षा न कर पाने पर राज्य सरकार से इस्तीफे की मांग की। अवामी एक्शन कमेटी ने मासूम लोगों के अंधाधुंध और निर्दयी तरीके से मारे जाने की निंदा की। पार्टी के अध्यक्ष मौलवी फारुख ने उन 16 नौजवानों की एक सूची प्रकाशित की जो पिछले तीन महीनों में पुलिस के फायरिंग के दौरान मारे गये थे। उन्होंने मुख्य-मंत्री के इस्तीफे की मांग की। जन मोर्चा के मुफ्ती मोहम्मद सईद ने भी मुख्य-मंत्री, पुलिस, अर्द्धसैनिक बल और उनके दिल्ली में बैठे तथाकथित 'हिमायतियों' की आलोचना की जो राज्य में ऐसी खतरनाक स्थिति पैदा करने के लिए जिम्मे-वार थे।

पार्टी के स्तर पर कांग्रेस (ई) और नेशनल कांफ्रेंस (फा०) ने सामान्यतः निष्क्रिय भूमिका अदा की। राष्ट्रविरोधी और साम्प्रदायिक दलों के विरुद्ध नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) की राजनैतिक लड़ाई जिसकी चर्चा आम थी—अब कहीं नजर नहीं आई। जब श्रीनगर और घाटी के दूसरे कस्बों में कट्टरपंथी और पाकिस्तान-समर्थक तत्त्व कार्यशील थे, तो इन पार्टियों के कार्यकर्ताओं और नेताओं की अनुपस्थिति रहस्यमय बन गई थी। प्रशासनिक तंत्र को असहाय छोड़ दिया गया था और राजनैतिक शून्य में इसका प्रभाव केवल सीमित ही हो गया था। यह सब एक क्षुब्ध करने वाली प्रवृत्ति व्यक्त करता है।

अब यह मालूम हुआ कि लगभग 50 काश्मीरी युवक पाकिस्तान में आतंक-वादी गतिविधियों की ट्रेनिंग लेने गये थे। उनमें से कुछ चाइनीज राइफल जैसे भयानक हथियारों के साथ लौटे थे।

ऐसा जान पड़ता है कि 'जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चे' का प्रमुख अमानुल्ला खान, पाकिस्तानी अधिकारियों की सांठ-गांठ से सभी विनाशकारी गतिविधियों का संचालन करता है। अमानुल्ला खान को ज्यादातर उन काश्मीरी युवकों का समर्थन प्राप्त है जो पाकिस्तान-समर्थक दलों जैसे पीपल्स लीग, इस्लामिक स्टूडेंट्स लीग, महाज-ए-आजादी और जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा से सम्बन्ध रखते हैं। इन युवकों को ट्रेण्ड करके इनसे पंजाब के आतंकवादियों की तरह काम करवाना ही अमानुल्ला का उद्देश्य है।

31 जुलाई को हुए दो बम विस्फोट और 31 अगस्त को अनंतनाग बस स्टैंड पर हुए बम विस्फोट नये ट्रेनिंग प्राप्त आतंकवादी दल का काम लगता है।

दुर्भाग्यवश, गुप्तचर एजेंसियां काश्मीरी युवकों के पाकिस्तान जाने का समय पर पता नहीं लगा सकी। इन एजेंसियों को इन गतिविधियों का तभी पता चला, जब ये युवक ट्रेनिंग लेने के बाद सशस्त्र होकर पाकिस्तान से लौटे।

राज्य प्रभावशील और कुशल प्रशासन चलाने और विनाशकारी तत्त्वों की चुनौती का सामना करने की स्थिति मे नही है। दूसरे राज्यो मे अधिकतर डिप्टी कमिश्नर और सुपरिन्टेंडेंट आई० ए० एस० और आई० पी० एस० वर्ग से होते हैं, जबकि इस राज्य मे 75% ऐसे पद पर वे अधिकारी हैं, जो इस वर्ग से नही हैं। सुधार की बेहद जरूरत है। एक नई दृष्टि और नई प्रेरणा की आवश्यकता है। अब से समय पर गुप्त खबरें मिलने के प्रबन्ध होने चाहिए। हड़बड़ाई हुई प्रतिक्रिया से अस्तव्यस्तता होनी है जो जनमानस मे कई घाव और कटु स्मृतियां छोड़ जाती है।

जन-जीवन मे ईमानदारी पर विश्वास कम रह गया है। बहुत-सी ऐसी घटनाएं, जो अनैतिकता की दुर्गन्ध से बोझिल हैं, अब रोशनी मे आ रही है और भ्रष्टाचार की अन्तर्धारा अब भी मौजूद है। राजशासन और प्रशासनिक अन्तर्धारा से यह स्पष्ट है कि राज्य मे स्वस्थ हालात नही हैं। कांग्रेस (ई) अस्तव्यस्त स्थिति मे है। नेशनल कांफ्रेंस मे कोई उम्मीद की किरण, कोई उत्साह नही दिखता। सकीर्णता और कट्टरपंथी का ढिंढोरा पीटने वाले कार्यशील हैं और धर्मनिरपेक्ष लोगों में आगे आकर काम आरम्भ करने की प्रवृत्ति समाप्त हो चुकी है। घातक हथियारो का प्रयोग शुरू हो गया है और इससे भी अधिक भविष्य में कुछ हो सकता है। गुप्त एजेंसी कसौटी पर खरी नही उतरी हैं। सुरक्षा व्यवस्था की कमी सीमा पार की अज्ञात गतिविधियो से ही जाहिर हो जाती है। इन परेशानियों और समस्याओ मे जो कोई कमी थी, सो उसे क्षेत्रीय आंदोलनों ने पूरा कर दिया। प्रजातंत्र का चेहरा दिन-ब-दिन शोषण के मुहांसो से बिगड़ता जा रहा है। राज्य की पूरी व्यवस्था मे बहुत जगह बिखराव आने लगा है और उसका संगठन कच्चा है।"

हालांकि मैंने ऐसे ही विवरण अप्रेल और जून, 1988 मे भी लिखे थे, पर अगस्त, 1988 को लिखे गये इन शब्दो का यहां वर्णन करना मैंने जरूरी समझा। यह विवरण न केवल यह दिखाता है कि मैं कुछ घटनाओ के बाद अधिक समझदार हो गया था, बल्कि यह केन्द्रीय स्तर पर जिन लोगो का कर्तव्य था कि वे कोई कदम उठाएं, उनके गैरजिम्मेदाराना रवैये को भी जाहिर करता है।

सितम्बर के महीने मे मेरे विवरण कुछ इस तरह थे—

"सितम्बर महीने में भी विनाशकारी गतिविधियो में कोई कमी नही आई, बल्कि ये गतिविधियां बढी ही हैं।

दस सितम्बर को श्रीनगर के रानीबाग मन्दिर मे, देर शाम को कुछ अनजाने लोगों ने अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी। 17 सितम्बर की रात को, घातक हथियारो से लैस 4 युवकों द्वारा काश्मीर रेंज के डी० आई० जी०, अली मुहम्मद वातल और उनके परिवार के सदस्यो पर हमला किया गया। इस सशस्त्र मुठभेड़ में एक आतंकवादी मारा गया और उसकी रशियन गन कब्जे मे कर ली गई।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि आक्रमणकारी जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा के सदस्य थे और पाकिस्तान में उन्हें ट्रेनिंग दी गई थी। 22 सितम्बर की रात, अवकाश प्राप्त जज एन० के० गंजू, जिन्होंने मकबूल बट को मृत्युदण्ड दिया था, पर गोली चलाई गई। 23 सितम्बर रात 8 बजे काश्मीर डी० आई० जी०, आई० जी० और सी० आई० डी० के दफ्तरों के बीच की सड़क पर अंधाधुंध गोलियां चलाई गई। 24 सितम्बर की रात, श्रीनगर म्यूजियम पर तैनात सिपाही पर मोटर साइकिल पर आये आतंकवादियों ने गोली चलाई।

पकड़े गये कुछ लोगों से पूछताछ करने पर पता चला कि हथियारों का प्रशिक्षण पाने के लिए बहुत-से युवकों ने सीमा पार की थी और अब वे आतंकवादी गतिविधियों और योजनाओं को पूरा करने के लिए वापस आ चुके हैं। इस पूरी स्थिति का दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि पाकिस्तान आने-जाने वाले लोगों में से एक को भी नहीं पकड़ा गया, न ही एक भी हथियार बरामद किया जा सका और न ही इसके लिए उत्साहित करने वाला कोई भी व्यक्ति पकड़ा जा सका। पूरा मामला तब जाहिर हुआ, जब गोलियां चलनी शुरू हो गई और बम विस्फोट होने लगे।

धार्मिक मंच से, मौलवी हमेशा राजनैतिक सलाह देते हैं। उनका ध्यान धर्म से अधिक राजनीति में होता है। इन धार्मिक तानाशाहों में से कुछ ने तो अपने-अपने क्षेत्रों में जुमे की सभा में भाषण देकर अपने राजनैतिक अनुयायी भी बना लिये हैं। यहां तक कि बड़े-बड़े प्रभावशाली राजनैतिक नेता भी हजरतबल मजार से महत्त्वपूर्ण राजनीतिक वक्तव्य देने लगे हैं।

जमाते-इस्लामी, उमत-ए-इस्लाम, इस्लामिक स्टूडेंट्स लीग और अहल-ए-हदीस जैसे दल स्थानीय रीति-रिवाजों पर लगातार हमला कर रहे हैं और पाकिस्तान तथा बांगला देश के इस्लामीकरण से प्रेरणा ले रहे हैं। वे शैक्षिक संस्थान, जो अविकसित दिमागों में संकीर्ण विचारधारा को भरते हैं, बन्द हो जाने चाहिए थे। पर निश्चयों को कार्यान्वित नहीं किया गया। पुराने और संजोकर रखे जाने वाले मूल्यों के किले को जड़ से उखाड़ डालने की कोशिश जारी है।"

अक्तूबर, 10 और 11 को होने वाली गवर्नर कांफ्रेंस में, जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रपति ने की और जिसमें उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सहित केन्द्र सरकार के मंत्री भी थे, मैंने अपनी डायरी के उपरिलिखित विवरण के आधार पर अपने विचार प्रकट किये। लगा कि सभी लोग मेरे विश्लेषण से सहमत हैं। फिर भी कोई कदम नहीं उठाया गया।

जनवरी, 1989 को लिखे गये अपने विवरण में मैंने फिर स्पष्ट किया कि किस तरह से आतंकवादी और अधिक निर्भीक होते जा रहे हैं, किस तरह उनकी घोषणाएं और भी तीव्र होती जा रही हैं और किस तरह डॉ० फारूख अब्दुल्ला आश्चर्यजनक रूप से अपना हलकापन व्यक्त कर रहे हैं।

फरवरी, 1989 में एक बार फिर मैंने अपनी टिप्पणी में कम्पास के उन बिंदुओं के बारे में विस्तार से लिखा, जो एक तूफान की पूर्व सुचना देते थे। मैंने दर्ज किया—

"विनाशकारी और आतंकवादी गतिविधियां बेरोक-टोक जारी हैं। इस

महीने में ग्यारह हड़तालें हुई, दर्जनों बम विस्फोट हुए, सैकड़ों लोग घायल हुए और दो की मृत्यु हो गई।

'शहीद मकबूल बट दिवस' और 'सेटेनिक वर्सेस' के प्रकाशन के पर्दे में विनाशकारियों को हिंसात्मक भावनाएं भड़काने, 'बन्द' और आंदोलनों का आह्वान करने का अवसर मिल गया।

ग्यारह फरवरी, 'मकबूल बट दिवस' को घाटी को बड़े पैमाने पर संकट का सामना करना पड़ा। इस तथाकथित शहीद दिवस के दो दिन पहले ही पूर्वाभ्यास के तौर पर बम विस्फोट होने शुरू हो गये थे। और इस 'दिवस' पर श्रीनगर और दूसरे मुख्य शहरों में सभी दुकानें बन्द रहीं और बड़े पैमाने पर हिंसा हुई।

11 फरवरी को होने वाली गड़बड़ी से राजनैतिक और प्रशासनिक तौर पर सरकार की छवि सामने आई।

राजनैतिक स्तर पर नेशनल कान्फ्रेंस (फा) और कांग्रेस (ई) के कार्यकर्त्ताओं में कोई गतिविधि नहीं दिखाई दी। हैरानी की बात है कि राज्य असेम्बली में श्रीनगर शहर का प्रतिनिधित्व नेशनल कार्फ्रेंस (फा) के एम० एल० ए० ही करते है, फिर भी कोई भी दुकान खुलवाई न जा सकी। सत्ता में संयुक्त भागीदारी रखने वाले राजनैतिक नेताओं ने जो अकर्मण्यता दिखाई, वह या तो सोच-समझकर दिखाई गई तटस्थता या अत्यधिक गैरजिम्मेदाराना रवैया ही समझा जा सकता है। लगता है ये नेता आत्मघाती मार्ग अपना रहे हैं, ऐसा मार्ग जो जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा, काश्मीर मुक्ति मोर्चा, पीपुल्स लीग, जमात-ए-तुल्बा, मुस्लिम स्टूडेंट्स फेडरेशन, अल जंग, जिया टाइगर्स वगैरह जैसे विनाशकारी तत्त्वों के लिए सारे दरवाजे खुले छोड़ रहा है। दुर्भाग्यवश, मुख्यमंत्री ने ऑस्ट्रेलिया और सिंगापुर जाने का फैसला किया। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को नेताविहीन छोड़ने के साथ-साथ, इस फैसले का आम जनता में भी काफी विरोध हुआ और गुस्सा फैला।

अभी 'मकबूल बट दिवस' का संकट समाप्त भी नहीं हुआ था कि इस्लामाबाद में अमेरिकन सांस्कृतिक केन्द्र के सामने 'सेटेनिक वर्सेस' के प्रकाशन का विरोध करती भीड़ पर पुलिस फायरिंग से यहां भी गड़बड़ी पैदा हुई। 12 फरवरी के 'बन्द' और उसके साथ हुए उपद्रव में एक व्यक्ति पुलिस फायरिंग में मारा गया। 13, 14, 16, और 26 फरवरी को भी ऐसी ही बन्द और उपद्रवों की घटनाएं हुईं। इन घटनाओं में सामान्यतः जुमे की प्रार्थना और भाषणों के बाद सरकारी वाहनों पर पत्थर फेंकना और पुलिस पर हमला करना शामिल था। और वक्तव्यों में बार-बार इस्लाम के विरुद्ध षड्यन्त्र करने की चर्चा और उनकी भर्त्सना की जाती है।

राजनैतिक माहौल में उत्तेजना फैलाने के उद्देश्य में विनाशकारी लोग सफल हो रहे हैं। पोस्टर अभियान जारी है। 'अल जंग' और 'जिया टाइगर्स' जैसे नये आतंकवादी दल उभर रहे हैं। आक्रमणशीलता बढ़ रही है। 'मारो और भागो' वाले तरीके ज्यादा-से-ज्यादा अपनाये जा रहे हैं। शबीर शाह जैसे आतंकवादी नेता पुलिस को धता बताने में सफल हो रहे हैं।

राज्य सरकार द्वारा लोगों की शिकायतों को दूर करने और विकास के क्षेत्र में कुछ परिणाम दिखाने की लगातार असफलता तनाव को और भी बढ़ा रही है

तथा कट्टरपंथी और विघटनकारियों को धार्मिक उत्तेजना बढ़ाने और 'सेटेनिक वर्सेस' के प्रकाशन जैसी घटनाओं से मिले अवसर का लाभ उठाने का मौका दे रही है। वास्तव में एक हद तक राज्य की वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति सरकार के कमजोर प्रशासन के विरुद्ध जमा होते जाने वाले क्रोध का परिणाम है।

वे दल, जो प्रत्यक्ष रूप से आतंकवाद का सहारा लेते हैं, उनके साथ कुछ ऐसे भी दल हैं, जो विनाशकारी बलों को प्रोत्साहन देते हैं और ऐसा वातावरण बना देते हैं, जिससे ऐसी घटनाओं को बढ़ावा मिले। इन दलों का काम तो अप्रत्यक्ष है, लेकिन स्पष्ट रूप से घातक है क्योंकि यह ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार बना देता है, जिस पर विनाश और आतंक पनपे।

26 जनवरी 1984 को काला दिवस मनाने की घोषणा का पूरा पालन हुआ और हड़ताल पूर्ण रूप से की गई। साम्प्रदायिक, संकीर्ण और विनाशकारी तत्त्व ज्यादा क्रियाशील हो रहे हैं और प्रशासन दिन-ब-दिन अलग-थलग पड़ता जा रहा है। राजनैतिक स्तर पर न तो नेशनल कांफ्रेंस (फा) और न ही कांग्रेस (ई) की इस चुनौती का सामना करने में कोई रुचि है। सीमा पार से भारी मात्रा में लाया गया गोला-बारूद अभी खोज निकालना बाकी है। स्थानीय गुप्तचर तंत्र उतना कुशल नहीं सिद्ध हो रहा है, जितना कि ऐसे अवसर के लिए जरूरी है और भी, विनाशकारी तत्त्वों को राजनीतिज्ञों के एक बड़े समूह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त है विशेषकर उन तत्त्वों को जो जमात-ए- इस्लामी, पीपुल्स कांफ्रेंस, पीपल्स लीग और महज-ए-आजादी से सम्बन्ध रखते हैं। जमात-ए-इस्लामी के कार्यकर्त्ताओं द्वारा, युवकों को भारत के विरुद्ध हथियार उठा लेने के लिए काश्मीर मुक्ति मोर्चा के मकबूल बट्ट और सैयद अली शाह गिलानी के उकसाने वाले भाषणों के कैसेट लोगों में बांटना भी इसी बात को प्रदर्शित करता है। मुहम्मद अलताफ खान उर्फ आज़म इन्कलाबी, जो सीमा के पार चला गया है, अभी तक वहां से काम कर रहा है। उसे और उसके समर्थकों को अब भी काश्मीर मुक्ति मोर्चा उर्फ 'हमहज' के अमानुल्ला खान की पूरी सहायता मिल रही है।

काश्मीर का राजनैतिक माहौल लगातार पाकिस्तान में हो रही घटनाओं से प्रभावित होता है। हाल ही में काश्मीर के मुद्दे और 'सियाचिन समस्या' को सुलझाने के लिए श्रीमती बेनजीर भुट्टो द्वारा जारी बयान से यही समझा जा रहा है कि वह भी राष्ट्रपति जिया जैसा ही दृष्टिकोण रखती हैं। 7 फरवरी को श्रीमती भुट्टो ने मांग की कि भारत को सियाचिन ग्लेशियर से अपनी फौजें हटा लेना चाहिए। काश्मीर के सवाल पर उन्होंने कहा—"हमारा दृष्टिकोण राष्ट्र संघ के प्रस्ताव पर आधारित है, जिसके द्वारा जम्मू-काश्मीर का पाकिस्तान या भारत में जाना स्वतंत्र और निष्पक्ष जनमत से निश्चित होना चाहिए। शिमला समझौते में जब हम कहते हैं कि हम द्विपक्षीय बातचीत पर सहमत हो गये हैं, तो यह राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के आधार पर ही होना है।" हालांकि काश्मीर के कट्टरपंथी तत्त्व आज भी श्रीमती भुट्टो को अपना समर्थक नहीं मानते, लेकिन अब वे इतने निराश नहीं हैं, जितना कि वे बेनजीर भुट्टो की जम्हूरी इत्तेहाद पर विजय और उनके प्रधानमंत्री बनने पर थे। उनका विश्वास है कि पाकिस्तान की भीतरी राजनीति से विवश होकर देर-सवेर श्रीमती भुट्टो भी काश्मीर के मुद्दे पर भारत के विरुद्ध कठोर रवैया अपनाने के लिए विवश होंगी। यह उन मूलभूत

कारणों में से एक है, जिसकी वजह से वे विनाशकारी गतिविधियों को तेज करके कश्मीर के मुद्दे को तूल देने का प्रयत्न कर रहे हैं। 'रुददी मामला' तो इन तत्त्वों के लिए वरदान की तरह आया है। किसी को इस बात की परवाह नहीं है कि भारत और पाकिस्तान में जो लोग 'सैटेनिक वर्सेस' का विरोध कर रहे हैं, वे शिक्षित भी नहीं हैं। वे तो केवल उन मुल्लाओं के हाथों खिलौना मात्र हैं जो धार्मिक उत्तेजना फैलाने में निपुण हैं।

यह तो सर्वविदित है कि कश्मीर में धर्म राजनीति के लिए एक हथियार रहा है। शेख अब्दुल्ला से लेकर वर्तमान् राजनेताओं तक सभी ने धर्म को राजनैतिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया है। यह बात घाटी में विशेषकर सच है, जहां हर शुक्रवार धार्मिक प्रवचन और राजनैतिक वक्तव्यों को मिला दिया जाता है। इसलिए यह हैरानी की बात नहीं है कि इन महीने उपद्रवों की जितनी वारदातें हुईं वे शुक्रवार की प्रार्थना के बाद हुईं, जब भीड़ मस्जिद से बाहर आ रही थी।"

मई, 1989 को मैंने लिखा—

"युवक उदास और उग्र है। वे अब धर्म की शरण ले रहे हैं, जिससे उन्हें साधारण लोगों की सहानुभूति और समर्थन पाने में मदद मिलती है। मुख्य विघटनकारी दल—जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा ने पहले ही दस घातक दस्ते बनाने की घोषणा कर दी है। यह भी जाहिर किया है कि इसे पाकिस्तान की जम्हूरी इत्तेहाद का समर्थन प्राप्त है। अपने ज्ञापन में मोर्चे ने यह भी घोषणा की है कि 'अल जेहाद' हमलावर दस्ते का नेतृत्व अब्दुल गफ्फार, 'विक्टरी कमांडो' का नेतृत्व मुजफ्फर शाह, 'आजाद आवाज कमांडो फोर्स' का गुलाम हसन, 'शहीद जिया टाइगर्स' का मुहम्मद असरफ, 'अल फतह' दस्ते का जावेद अहमद, 'अल सदाए आवाज' का अब्दुल हमीद, 'मुस्लिमीन कमांडो फोर्स' का सफीद रसूल अक्राधन, 'अल मकबूल' का मुश्ताक अहमद और 'पाक कमांडो फोर्स' का नेतृत्व रूफी इस्लाम के हाथों होगा।"

अप्रैल और मई 1989 में मैंने श्री राजीव गांधी का इन संकटपूर्ण स्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए दो व्यक्तिगत पत्र लिखे। 8 अप्रैल को लिखा गया मेरा पत्र इस प्रकार था—

"प्रिय प्रधानमंत्री जी,

स्थिति तेजी से खराब होती जा रही है। यह लगभग वहां पहुंच गई है जहां से लौटना असंभव है। पिछले पांच दिनों से बड़े पैमाने पर हिंसा, लूटपाट, फायरिंग, हड़ताल और हत्याओं का ताना-सा लगा है। सब कुछ टूटकर बिखर रहा है। आइरिश समस्या की बात करते हुए ब्रिटिश प्रधानमंत्री डिजरायली ने कहा था, "यह एक दिन आलू की तरह होती है तो दूसरे दिन इसका स्वरूप बदला हुआ होता है," कश्मीर की भी यही स्थिति है। कल मकबूल बट्ट दिवस था, आज 'सैटेनिक वर्सेस' है, कल 'दमन दिवस' होगा और परसों कुछ और। मुख्यमंत्री अलग-थलग पड़ गये हैं। राजनैतिक और प्रशासनिक तौर पर वे पहले ही सत्ता से अलग-थलग पड़ चुके हैं, केवल संवैधानिक रीति का पूरा होना बाकी है। उनकी पकड़ इतनी जर्जर है कि उससे लाभ नहीं। उनके कामों ने उनकी सार्व-

जनिक छवि भी नष्ट कर दी है। इस स्थिति में प्रभावशाली हस्तक्षेप की आवश्यकता है। अभी समय है। कल बहुत देर हो जायेगी।

आपका

(जगमोहन)"

14 मई को लिखा गया मेरा पत्र अधोलिखित था—

"प्रिय प्रधानमंत्री जी,

आठ मई से 13 मई तक 14 बम विस्फोट और छः गोलीबारी की घटनाएं हुई हैं। 4 लोग मारे गये हैं और लगभग 20 घायल हुए हैं। गुलमर्ग से श्रीनगर जाती हुई यात्रियों की बस पर भी गोलियां चलाई गईं, जिसमें चार पर्यटक घायल हो गये। वर्तमान राजनैतिक और प्रशासनिक ढांचा एक बार फिर स्थिति को नियन्त्रित करने में असफल रहा है। 'हड़ताल' के दौरान, राजनैतिक स्तर पर आतंकवादियों की गतिविधियों का सामना करने के लिए कोई भी काम नहीं हुआ। इससे भी ज्यादा परेशानी की बात यह है कि विनाशकारी तत्त्वों की हर सफलता उनके साहस को बढ़ा रही है और अब उनका निशाना केंद्रीय अधिकारी बन रहे हैं। मैंने अपनी यह परेशानी मुख्यमंत्री को भी व्यक्त की है।

आपका

(जगमोहन)"

दुर्भाग्यवश इतनी स्पष्ट चेतावनियों पर भी ध्यान नहीं दिया गया। हर चीज का एक वक्त होता है। इससे पहले कि रोग का निदान असम्भव हो जाये, संक्रमण करना जरूरी होता है। यदि लापरवाही बरती जाये तो परिणाम भुगतना पड़ता है और अतीत की लापरवाही का आज राष्ट्र एक भारी मूल्य चुका रहा है।

चौथा अध्याय

मूल कारण

"इस कूड़े-करकट के ढेर में
कैसे जड़ें बैठेंगी
और कैसे शाखाएं फूटेंगी!"

—टी० एस० इलियट

इससे पूर्व के अध्याय में उस चेतावनी का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है जिसका संकेत राज्य के प्रमुख अधिकारी राज्यपाल ने दिया था—किसी साधारण व्यक्ति ने नहीं। परन्तु उन चेतावनियों के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया गया। दूर के तूफान की तो क्या कहें, उन्हें अपने घर के चारों ओर उठते तूफान का भी पता नहीं चला। वे सत्ता के झूठे मद में इतने मस्त थे कि उन्हें अपने घर के टूटते दरवाजों के शोर से भी होश न आया।

इस और आगामी दो अध्यायों में मैं उन मूल कारणों पर प्रकाश डालूंगा, जिससे देश से अलगाव और राज्य में तोड़-फोड़ की लहर चली। इसका कारण यह था कि काश्मीरी विचारधारा में विषैली बातें बहुत अरसे से ठूंसी जा रही थीं। इस विचारधारा को खुले दिल से पाला-पोसा गया। जिन लोगों पर इन्हें रोकने की जिम्मेदारी थी उन्हें इतिहास के इस प्रारम्भिक तथ्य का भी ज्ञान नहीं था कि बुराई से समझौता करने से अधिक बड़ी बुराई का जन्म होता है। इस दुखद सत्य की अवहेलना से इसमें और विस्तार हुआ। इसके सामने घुटने टेक देने का मतलब हत्यारों को आमन्त्रण देना था।

नरम और स्वीकारात्मक रुख का परिणाम

दो अक्तूबर, 1988 को महात्मा गांधी का जन्मदिन होता है। इस दिन श्रीनगर हाई कोर्ट में गांधी जी की प्रतिमा की स्थापना की जानी थी। भारत के प्रमुख न्यायाधीश श्री आर० एस० पाठक को विधिवत् प्रतिमा स्थापित करनी थी। परन्तु कुछ थोड़े-से मुस्लिम वकीलों ने इस पर आपत्ति की। उन्होंने इस समारोह में अव्यवस्था फैलाने की धमकी दी। मुख्यमंत्री उनकी धमकी के आगे झुक गये और यह समारोह स्थगित कर दिया गया।

इस घटना के परिणाम क्या हुए ? धर्मनिरपेक्ष भारत के धर्मनिरपेक्ष राज्य काश्मीर के उच्च न्यायालय में राष्ट्रपिता की प्रतिमा स्थापित न हो सकी—जिस महात्मा ने साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी और जिसके सम्बन्ध में आइन्स्टाइन जैसे महान् वैज्ञानिक ने कहा था कि "भावी संतानों को इस बात पर विश्वास ही नहीं होगा कि किसी ऐसे महापुरुष ने इस धरती पर जन्म भी लिया था।"

इस आन्दोलन की अगुआई कौन कर रहा था ? यह जम्मू-काश्मीर उच्च न्यायालय का वकील मुहम्मद शफी बट्ट था—जो नेशनल कांफ्रेंस का सक्रिय सदस्य था और जिसे बाद में श्रीनगर से लोकसभा की सदस्यता के लिए 1989 के चुनावों में टिकट दिया गया।

उस समय राज्य में नेशनल कांफ्रेंस (फारुख) और कांग्रेस (ई) की सरकार थी। कितनी बड़ी आदर्शों की उपेक्षा थी और सत्ता से चिपके रहने का मोह और ऐसा था कांग्रेसियों का मोह कि इनमें से किसी ने भी इस आयोजन के स्थगित किये जाने पर आपत्ति नहीं की।

आततायियों को इससे बढ़िया शह और कैसे मिल सकती थी ! धमकियों का इससे बढ़िया परिणाम और क्या हो सकता था ! गड़बड़ी फैलाने वालों को इनके सिद्धान्तविहीन और उपेक्षापूर्ण इस रवैये के संबंध में ख्याल भी नहीं था—उन्होंने सोचा भी नहीं था कि ऐसा होगा। क्या ऐसी स्थिति में उनमें इस भावना का विकास होना स्वाभाविक था कि आक्रामक और धमकियों से पूर्ण नीति अपनाने से कुछ और बड़े स्पष्ट परिणाम निकल सकते हैं ? केवल बहुत ही सभ्य और शरीफ व्यक्ति ही यह सोच सकते हैं कि काश्मीर की स्थिति के सन्दर्भ में कमी और मौलिक आदर्शों को दरकिनार कर देने से ही आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।

यह विचारणीय बात है कि राज्य में उच्च महत्त्वपूर्ण पदों पर बैठे लोग जिन्हें भारतीय कोश से बड़ी-बड़ी तनखाहें मिलती हैं, पेंशन आदि की सुविधा है तथा अन्य सभी लाभ मिलते हैं, वे क्या सोचते हैं, उनकी मानसिकता क्या है ? देखिये जम्मू-काश्मीर उच्च न्यायालय के पूर्व प्रधान न्यायाधीश मुफ्ती बहाउद्दीन फारुकी अपनी विचारार्थ याचिका में क्या कहते हैं—

"बयालीस वर्ष पूर्व जम्मू-काश्मीर राज्य के लोगों की इच्छा के विरुद्ध भारत ने चालबाजी, धोखे और जबरदस्ती अपने में विलय कर लिया।"

क्या यह विश्वासघात नहीं है ? क्या यह देशद्रोह नहीं ? क्या यह कृतघ्नता नहीं ? यह मैं आप पर ही छोड़ता हूं, आप इसे जो समझें। परन्तु इससे एक बात स्पष्ट है कि इसकी गलत प्रतिक्रिया होती है, उसी रिट याचिका की मुफ्ती बहाउद्दीन और पुष्टि करते हैं—

"राज्य के लोगों को इस दुष्टता की भनक मिल गई थी, इसलिए उन्होंने अधिक दृढ़ इरादे से अपनी आजादी के आन्दोलन को जारी रखा···भारतीय सेना ने काश्मीर में आते ही आजादी की लड़ाई लड़ने वालों को कुचलना शुरू कर दिया और राज्य-भर में भय का वातावरण फैला दिया।"

इस पूर्व न्यायाधीश नेशनल कांफ्रेंस के भूतपूर्व सदस्य की सोच यह है कि पाकिस्तानी हमलावर तो आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं और भारतीय सेना राज्य

की सुरक्षा के लिए न जाकर वहां आतंक का वातावरण फैला रही है। देखिये आगे वह क्या कहता है—

"भारत सरकार पाकिस्तान को कमज़ोर करने और उसे समाप्त करने तथा काश्मीर पर शक्ति की धौंस पट्टी से एकाधिकार रखने की योजना पर काम कर रही है।"

क्या विश्वास किया जा सकता है यह बात कहकर भारत को क्रुद्ध करने वाला कोई पगला, पाकिस्तानी एजेण्ट या किसी तोड़-फोड़ करने वाले संगठन का मुखिया नहीं—यह भूतपूर्व न्यायाधीश है जिसने यह शपथ लेकर यह बात कही है। परन्तु ऐसी स्थिति के लिए किसे दोषी ठहराया जा सकता है? क्या ये कुछ शैतान लोग हैं या वे लोग हैं जो इस तरह की बातें कहने वालो को उन्हे मूर्ख बनाने की छूट दे रहे है? क्या यह भारत की कमी नही जिसके कारण उसे मूर्ख बनाने और गैर वफादारी को जन्म दिया?

अखिल भारतीय सेना (आई० ए० एस०, आई० पी० एस० और आई० एफ० एस० आदि) के कुछ सदस्यों ने अपने लिए आवास की मौलिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक कोआपरेटिव सोसाइटी बनाई। 1985 मे राजतरंगिणी नाम से इस सोसाइटी का पंजीकरण भी हो गया।

इस सोसाइटी के सम्बन्ध में इस आधार पर भयंकर वितंडा खड़ा किया गया कि राज्य से बाहर के लोग सोसाइटी सदस्य होने पर भी मकान बनाने के लिए जमीन नही ले सकते। अब्दुल रशीद और शरीफुद्दीन शारिक आदि नेशनल कान्फ्रेंस के महत्वपूर्ण सदस्यों ने मार्च, 1988 मे राज्य विधान सभा मे यह मामला उठाया और कड़े शब्दों मे सोसाइटी के पंजीकरण की आलोचना की। यह जानते हुए भी इस सोसाइटी के कुल 32 सदस्य है और उन्हे आयु भर यही रहना है, आलोचना की गई। उन आई० ए० एस० और आई० पी० एस० सदस्यों को औपनिवेशिक राज्य का एजेण्ट कहा गया। उनकी तुलना ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अफसरों से की गई। उन्हें लगा कि धारा 370 समाप्त होने जा रही है। इसे आबादी के सतुलन को पलटने का षड्यन्त्र बनाया गया। इस 'षड्यन्त्र मे शामिल' लोगो पर मुकदमा चलाने की माग की गई। अंतत इन अधिकारियों ने पूर्ण निराश होकर सोसाइटी को भग कर दिया। किसी को भी जमीन का टुकड़ा नही मिला।

इस मामले मे सोसाइटी के पंजीकरण को लेकर जो हंगामा हुआ, परेशानी उस बात की नहीं, परेशानी और दुख की बात यह है कि राष्ट्र और उनके प्रतिनिधियो के प्रति जो रवैया दिखाया गया और जो अपमानजनक शब्द उनके प्रति इस्तेमाल किये गये और जो भावनाएं काश्मीरियों के दिमाग में भरी गईं। काश्मीरी राजनीतिज्ञ अपने लिए सदा वह हीरो कहते हैं कि जो उन साम्राज्यवादियो से संघर्ष कर रहे है जो गरीब स्थानीय लोगो को अपने चगुल में फसाना चाहते हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नही कि आज के यह छोटे हीरो राष्ट्र के प्रतीकों का अपमान करके खुश होते हैं और साम्राज्यवादियों का बुरा-भला कर अपना राजनीतिक आधार बना रहे है, क्या इनका अनुकरण आने वाले कल के हीरो अधिक कठोरता और बेरहमी से राइफलों आदि का प्रयोग नहीं करेंगे और 'जुल्म के शिकार' लोगो के समर्थन मे और खुश न होंगे? घृणा के इस वातावरण

का परिणाम हिंसा और खूनखराबा है।

नेशनल कांफ्रेंस के स्थानीय नेताओं ने इतना हो-हल्ला मचाया कि पाकिस्तानी प्रचार माध्यम ने उसे और हवा दी। एक प्रमुख पाकिस्तानी अखबार ने सोसाइटी के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए लिखा था—

"काश्मीर के भारतीय अफसरों ने राजतरंगिणी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी इसलिए बनाई कि वे अपने रहने के लिए मकान बनाकर काश्मीर की नागरिकता हासिल कर लें। इस काम की तुलना फिलस्तीन में बेघर शरणार्थी के रूप में बसने वाले यहूदियों से की जा सकती है, अन्ततः जिन्होंने अरब लोगों को उनके अपने घर से बाहर कर दिया। एक षड्यन्त्र के तहत भारतीय अफसरों ने सोसाइटी बनाई, उसे रजिस्टर्ड करवाया, सरकार से आर्थिक सहायता ली, जमीन खरीदी और सदस्यों के मकान बनना निश्चित थे कि बात फूट पड़ी। अखबारों में शोर मचा, मस्जिदों में हल्ला हुआ और काश्मीर विधान सभा में भी आलोचना हुई। नेशनल कांफ्रेंस के सदस्यों ने भी तूफान मचाया। इससे काश्मीर की फिजा बिगड़ी।

परिणाम यह हुआ कि भारत के हिन्दुओं ने अपने आप सोसाइटी भंग कर दी और यह कह दिया कि सोसाइटी नाकामयाब रही और काश्मीर के लोगों ने इसकी आलोचना की।

भारतीय अफसरों की सोसाइटी का यह हाल हुआ। और अंततः यही कुछ भारतीय साम्राज्यवादियों के मन्सूबों से होगा। इस घटना से भारतीय शासकों को सबक लेना चाहिए। विपक्ष और सरकार के सभी सदस्य इस औपनिवेशिक आवास समिति के विरोध में एक जुट हो गये। काश्मीर के भारत में जबरदस्ती मिलाने के सम्बन्ध में सभी काश्मीरी मुसलमानों की यही राय है। भारत को सारे मामले पर विचार करना चाहिए।"

अनुमान लगाइये कि केवल 32 अधिकारियों की आवास समिति को काश्मीर उपनिवेश बनाने की झलक दिखाई दी। 32 अफसरों की यह सोसाइटी जब बनी थी उस समय काश्मीर की आबादी सत्तर लाख थी। यह भी देखने की बात है कि कुछ थोड़े-से अफसरों द्वारा अपने देश में रहने के लिए थोड़ी-सी जमीन प्राप्त करने की सीधी-सादी इच्छा की तुलना फिलस्तीन में यहूदियों की बस्ती से की गई। पर इस विषैले प्रचार के लिए उत्तरदायी कौन है? इसके लिए नेशनल कांफ्रेंस, राज्य में उस सरकार के मुख्य सहयोगी दल तथा केन्द्र में सरकार के सहयोगी दल ही उत्तरदायी हैं। इस प्रकार के विकृत सहयोग से और क्या आशा की जा सकती है? इस प्रकार की बेमेल राजनीति के लिए मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा। क्या लोगों के मनों में घृणा का वातावरण पैदा करने से हिंसा नहीं फैलेगी?

केन्द्र सरकार ने 1988 में धार्मिक संस्थाओं (का दुरुपयोग रोकने) के लिए एक बिल पास किया। 370 धारा के कारण काश्मीर को छोड़कर इसे सारे भारत में लागू किया गया, पर उक्त धारा के कारण काश्मीर में लागू करने के लिए उसकी स्वीकृति आवश्यक थी—परन्तु राज्य सरकार से स्वीकृति नहीं मिली। क्यों? क्योंकि इसे विभिन्न प्रकार का राज्य माना जाता है, इसका स्वरूप भिन्न समझा जाता है। इस राज्य में राजनीतिक ध्येय के लिए धार्मिक स्थानों के दुरुपयोग का नियम यहां लागू न किये जाने का यह तो कोई तर्क नहीं।

वस्तुत: जम्मू-काश्मीर के अतिरिक्त इस कानून को और कहीं लागू करने की उनकी आवश्यकता ही नहीं थी। धार्मिक स्थलों का यहां जितना दुरुपयोग होता है, देश के अन्य भागों में कहीं नहीं होता। जुमे की नमाज के बाद से जिस चातुर्यपूर्ण योजनाबद्ध तरीके से धर्मान्धता और कठमुल्लापन का प्रचार किया जाता है वैसा और कहीं नहीं। यहां के अतिरिक्त और कहीं में यह प्रचार नहीं किया जाता कि भारतीय लोकतंत्र, यहां की धर्मनिरपेक्षता और यहां का समाजवाद इस्लाम-विरोधी है। उसके बावजूद आज तक यहां का शासन तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों और केन्द्र सरकार ने इस संबंध में गम्भीरतापूर्वक सोचा ही नहीं। केन्द्र सरकार ने राज्य को देश की मुख्य धारा में सम्मिलित होने के लिए बाध्य करने का दायित्व निभाया ही नहीं। मेरे लिए आश्चर्य की बात यह है कि जो कानून भारत के अन्य भागों के 12 करोड़ मुसलमानों के लिए उचित समझा गया, वह यहां की 40 लाख मुस्लिम जनता के लिए उचित क्यों नहीं माना गया — जबकि देश में राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर काम नहीं किया जाता, जबकि वे स्वयं साम्प्रदायिक मानसिकता के गुलाम हैं, जबकि वे केवल कामों की बजाय बातों पर भरोसा कर लेते हैं, जबकि वे नेतृत्व देने की बजाय स्वयं पिछलग्गू बन जाते हैं, जबकि वे स्वयं अलगाववादी तत्वों का विरोध करने की बजाय उन्हें प्रोत्साहित करते हैं, जबकि वे मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यों के सुदृढ़ आधार पर समाज के नव-निर्माण की बजाय पुराने सड़े-गले पोंगापंथी विचारों की जाने-अनजाने पुनर्स्थापना का प्रयत्न कर रहे हैं, जब वे देश के संविधान के ध्येय और सिद्धांतों की बजाय स्थिति को अधिक वरीयता देते हैं तो देश में राष्ट्रवादी तत्वों की सरकार के शासन का क्या महत्त्व रह जाता है? इन सब बातों का परिणाम क्या होगा? इसे समझने के लिए क्या किसी असाधारण आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है कि यह राष्ट्रीयता का ढोंग करने वाली नकली शक्तियां हमें कहां ले जाएगी?

शुक्रवार 8 अप्रैल, 1988 को अनन्तनाग की नमाज के बाद दिल्ली जामा मस्जिद के इमाम ने बहुत उत्तेजक भाषण दिया। उसने पाक-समर्थक भावनाओं को पुष्ट करते हुए अलगाववाद धार्मिक कठमुल्लापन का जहर उगला। काश्मीर के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव को पूरी तरह लागू करने पर जोर दिया। इस प्रस्ताव का उल्लेख करने के पीछे उसकी मंशा स्पष्ट थी। उसके भाषण के दो दिन बाद रावलपिण्डी के निकट पाकिस्तानी गोला-बारूद के भण्डार में जबरदस्त विस्फोट हुआ। उसमें लोग मरे भी और सम्पत्ति की भी हानि हुई। इस घटना के अगले ही दिन काश्मीर के श्रीनगर, अनन्तनाग तथा अन्य नगरों में व्यापक अशान्ति रही।

इमाम ने यहां आकर अपनी हरकतों से यहां के वातावरण को और भड़काया —दूषित किया। पाकिस्तानी गोला-बारूद के भण्डार के विस्फोट ने चिन्गारी का काम किया, भारी अशान्ति फैली जिसमें एक आदमी मरा और सौ के लगभग घायल हुए। तीन मोटर वाहनों, जिनमें एक सेना की जीप भी थी, को फूंक डाला गया और सात दुकानें लूट ली गईं। यह हिंसापूर्ण घटनाएं उसी दिन श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री प्रेमदास के श्रीनगर पहुंचने पर हुईं। आन्दोलनकारियों ने भारत-विरोधी नारे लगाये और श्रीलंका में सिंहली मुस्लिमों की हत्याओं के संबंध में भी नारे लगाये।

इमाम ने इस तरह का काम क्यों किया ? जो काम एक निष्पक्ष व्यक्ति की दृष्टि में तोड़-फोड़ और साम्प्रदायिकतापूर्ण हैं, इमाम ने क्यों किये ? पाकिस्तानी डिपो में मरने वालों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए हड़तालें क्यों की गईं, जबकि भोपाल गैस काण्ड में मरने वालों के लिए कहीं सहानुभूति का प्रदर्शन नहीं किया गया जिसके शिकार मुसलमान ही थे ? श्री प्रेमदास के दौरे से इन वारदातों का क्या सम्बन्ध था ? पाकिस्तान के प्रति खुल्लमखुल्ला वफादारी दिखाने में आन्दोलनकारियों को जरा भी भय क्यों अनुभव नहीं हुआ ?

इन सभी और इससे सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर यही है कि हम बुराई की ओर से आंख मूंद लेते हैं, और समस्याओं के प्रति अल्पकालीन लाभ के काम करने और जहां-तहां लीपापोती और पैवन्द लगाकर काम निकालने और आशा कर लेते हैं कि आंखें मूंद लेने से काश्मीर की राजनीति में जो विषैली धारा वह रही है वह जैसे-तैसे समाप्त हो जायेगी। यह न तो जीवन का नियम है और न प्रकृति इसकी आज्ञा देती है। विषैली धारा सरलता से समाप्त नहीं होती। ऐसी धाराएं बढ़ती और गहरी होती रहती हैं और जब कभी उनमें सैलाब आता है तो उनकी गाद ऐसे क्षेत्रों में भी जगा हो जाती है, जहां उनका बहाव नहीं होता।

मैंने यहां थोड़े-से काल से जो उदाहरण दिये हैं, केवल उन्हीं के प्रति नरम दृष्टिकोण अपनाया गया हो, ऐसी बात नहीं। यह तो बहुत आरम्भ से ही रहा है। एक-दो प्रमाण लीजिये—

काश्मीरी जनता में अपनी नेतागिरी को और पक्का करने तथा 13 जुलाई, 1949 के 'शहीदी दिन' को कुछ नाटकीय काम करने के विचार से शेख अब्दुल्ला ने युवराज कर्णसिंह को 182 नहरों के अतिरिक्त उनकी दस हजार जागीरों और सम्पत्तियों के अधिग्रहण के लिए कानून का मसौदा दस्तखतों के लिए भेजा। चूंकि इस कानून में बहुत-से लोग सम्मिलित होते थे, युवराज ने काश्मीरी मामलों के प्रभारी सचिव विष्णुसहाय को वह मसौदा दिया और सरकार की राय जाननी चाही। शेख अब्दुल्ला को जब पता चला तो वह गुस्से से लाल-पीला हो गया और बोला कि इस मामले में उन्हें सरकार से परामर्श का अधिकार नहीं, तुम्हें तो रियासत के संवैधानिक मुखिया के नाते इस पर हस्ताक्षर करने ही होंगे। शेख अब्दुल्ला ने जो कुछ कहा था, युवराज ने फिर विष्णु सहाय को बताया। भारत सरकार ने उन्हें परामर्श दिया कि वे उस मसौदे पर यह लिखकर लौटा दें कि इस कानून का प्रभाव दूरगामी होगा और अभी राज्य में विधान सभा भी नहीं है, इसलिए इस पर भारत सरकार के परामर्श के बाद ही कुछ किया जाएगा।

केन्द्र सरकार के स्पष्ट रुख के बावजूद 'शहीदी दिवस' पर श्रीनगर के लाल चौक की सभा में इस कानून के लागू करने की नाटकीय घोषणा अपनी ओर से कर दी। गोपालास्वामी आयंगार चाहते थे कि भारत सरकार शेख अब्दुल्ला के 'कानून' को अवैध करार दे, परन्तु जवाहरलाल नेहरू ने ऐसा नहीं होने दिया और शेख की मनमानी चलती रही।

यहां विशेष बात विचारणीय यह नहीं कि यह कानून प्रगतिशील था या नहीं, या इसमें साम्प्रदायिक गंध थी या नहीं, विचारणीय यह है क्या भारत सरकार को अपना पंगुपन दिखाना चाहिए था ? और इस तरह शेख को एक सुलतान के रूप में केन्द्र की अवहेलना करने और मनमानी करने का हौसला बढ़ा। भारत सरकार

उस समय यह अनुमान नहीं कर पाई कि शेख अब्दुल्ला को लगातार खुश करते रहने के कारण सभी संबद्ध व्यक्तियों को कष्ट होगा, ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी कि जब उसे रियासत के उच्च पद से बरखास्त करके गिरफ्तार करना भी पड़ेगा।

पिछले 43 वर्ष के मध्य काश्मीर के प्रति भारत सरकार का रवैया तुष्टिकरण की नीति से प्रभावित रहा। वे लोग यह गलत आशा लगाये रहे कि कुछ पक्षों की बात आने वाले दिनों में सब अपने-आप ठीक हो जाएगी। परन्तु यह तो ऐसा मामला है जो कभी भी ठीक नहीं होगा—क्योंकि इतिहास के दृष्टिकोण से यह गलत है, न्याय के दृष्टिकोण के भी यह विपरीत है और दुष्टता के आगे न झुकने की नैतिकता के भी यह कार्य विपरीत है।

सज्जनता और सद्भावना और चीज है परन्तु दब्बूपन, गलत समर्थन बिल्कुल अलग चीज है। खोखली और ढोंगपूर्ण मान्यताएं तथा नरम और दिखावटी रवैया कभी भी सहायक नहीं हो सकता। इनसे आक्रामक भावनाओं को बढ़ावा मिलता है, वे शान्त नहीं होतीं। मौलिक सिद्धान्तों की बलि देकर अस्थायी या कुछ थोड़ी-सी देर के लिए शान्ति हासिल करना भविष्य के लिए कांटे बोना है। इसके साथ ही इस नीति के कारण मर्यादाओं के नष्ट होने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और व्यक्ति इन भावनाओं के प्रति अत्यधिक आश्वस्त हो जाता है। यदि उचित अवसर पर दृढ़ता का संकेत दिया जाय तो डराने-धमकाने—आंखें दिखाने की प्रवृत्ति की तेजी कम हो जाती है। यह उसके लिए लगाम का काम करती है। इससे सन्तुलन प्राप्त करने में सहायता मिलती है। गलत बातों के समर्थन की नीति की चरम परिणति दोनों पक्षों, वरन् सभी के लिए भयंकर विनाशक होती है—इसमें उन लोगों की भी हानि होती है जो केवल तमाशबीन की तरह एक तरफ खड़े सब कुछ देख रहे होते हैं। इस समय काश्मीर में जो कुछ हो रहा है क्या वह सब कुछ इस बात का मुंह बोलता प्रमाण नहीं?

कपट-छल की राजनीति

गलती और गलत बातों के समर्थन में जो दोष होते हैं वे छल और कपट की राजनीति में मिलकर जम्मू-काश्मीर के पर्याय बन गये हैं—यहां की हर बात में बेईमानी और गलत तालमेल मिला रहता है। चाहे धर्मनिरपेक्षता की बात हो चाहे स्वायत्तता या लोकतन्त्र की बात हो, एक ही नेता विभिन्न अवसरों और विभिन्न स्थानों पर दो तरह की बात करता है—हर समय उसका रवैया भिन्न होता है। उदाहरण के तौर पर शेख अब्दुल्ला के सम्बन्ध में ये कहा जाता है—"वह काश्मीर में साम्प्रदायिक, जम्मू में साम्यवादी और नई दिल्ली में राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाता था।"

अधिकांश काश्मीरी राजनीतिज्ञ दो तरह की बोलियां बोलते हैं। वे अपने आपको धर्मनिरपेक्ष और साम्प्रदायिक, लोकतन्त्र में विश्वास करने वाला और तानाशाह, अलगाववादी और पाकिस्तान-समर्थक होना प्रकट कर देते हैं। यह धारणा किन्हीं सिद्धान्तों की बजाय किसी एक व्यक्ति अथवा उसके गुट के सत्ता में बने रहने के लिए है। भारत सरकार ने काश्मीरी नेताओं को वहां मनमाने ढंग से हुकूमत चलाने की—चाहे उनके सरकार चलाने से न तो देश को कोई लाभ या

और न इस राज्य को—जबकि वे लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता और काश्मीर के भारत में विलय को अन्तिम मानने की कसमें खाते थे। इसके विपरीत उनके द्वारा अधिकारों के प्रयोग पर कोई आपत्ति की जाती है अथवा उनकी किसी व्यक्तिगत उच्चाकांक्षा को रोक लगाने की कोशिश की गई तो उन्होंने रियासत के भारत में विलय, उसके स्वरूप को बरकरार रखने के सवाल उठाने आरम्भ कर दिये और साम्प्रदायिक भावनाएं भड़कानी आरम्भ कर दीं।

अगस्त 1953 में गिरफ्तारी से पूर्व शेख अब्दुल्ला आम तौर पर धर्मनिरपेक्षता का राग अलपता था। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने जम्मू-काश्मीर में अपना अलग वजूद कायम कर लिया तो शेख अब्दुल्ला ने एक 'फतवा', धार्मिक आदेश जारी किया और उसमें कांग्रेस पार्टी को 'काफिर' और नास्तिक करार दिया गया। उसने एक असली कठमुल्ला तानाशाह की तरह यह घोषणा की कि इस पार्टी यानी कांग्रेस के किसी मुसलमान मेम्बर की मौत पर उसके लिए की जाने वाली प्रार्थना यानी 'नमाज-ए-जनाज़ा' में शामिल होना पाप है।

क्या कोई धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति ऐसा 'फतवा' जारी कर सकता है? क्या वह शेख अब्दुल्ला जैसी भाषा का प्रयोग करेगा? क्या यह भाषा सुधारों का विरोध करने वाले या कठमुल्लाओं की भाषा से भिन्न है? क्या अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों का धार्मिक रूप से विरोध करने से राजनीति को मध्य युग की ओर नहीं मोड़ा गया और इससे लोगों में असहिष्णुता और संकुचित विचार पैदा नहीं हुए? धर्मनिरपेक्षता की बजाय क्या राजनीतिक वफादारी का आधार इस्लाम नहीं बना? क्या इससे आभ्यंतरिक तौर पर पाकिस्तान के प्रति लगाव नहीं बढ़ा? भुट्टो इस बात को भली प्रकार समझता था। इसीलिए उसने शेखी मारते हुए डॉ० फारूख अब्दुल्ला से 1974 में कहा था—"भले ही भारत काश्मीर को दी जाने वाली मदद में तीन साल के लिए दुगुनी बढ़ोतरी कर दे और इसी दौरान हम आजाद काश्मीर को दी जाने वाली सारी मदद बन्द कर दें और उसके बाद भी यदि जनमत संग्रह होता है तो वह पाकिस्तान के पक्ष में जायेगा।"

शेख अब्दुल्ला ने धर्म को राजनीतिक रंग दिया। उसने कठमुल्लापन के बीज बोये और वहां के लोगों के दिलों में भारत-विरोधी भावनाएं पैदा कीं। उसकी धर्मनिरपेक्षता महज शाब्दिक और उसका सम्बन्ध उसके सत्ता में बने रहने भर से था। वह अपने बेटे और नेशनल कांफ्रेंस के लीडरों की तरह न तो धर्मनिरपेक्ष था और न साम्प्रदायिक। वह तो केवल सत्ता का भूखा था। वह सत्ता की रणनीति के अनुरूप अपनी धारणा बनाता था। काश्मीर में जितनी बेशर्मी से अनपढ़ जनता की भावनाओं से स्वार्थसिद्धि की गई वैसा अन्य कहीं नहीं हुआ। और इस बात की जितनी अनदेखी की गई वह भी बेमिसाल है।

काश्मीर समझौता (1975) संधि पर हस्ताक्षर करके सत्ता में पुन: आने के बाद शेख अब्दुल्ला फिर से धर्मनिरपेक्षता का मसीहा बन गया। परन्तु 1977 के काश्मीर असेम्बली के चुनावों में उसने इस्लाम के नारे का पूरा फायदा उठाया। श्रीमती इंदिरा गांधी के 1977 के लोकसभा चुनावों में पराजित हो जाने के बाद जनता सरकार के सत्ता में आने के बाद पहले उसने इस सरकार को खुश करने के लिए लोकसभा में पार्टी के दो सदस्यों बेगम अख्तर जहां और अब्दुल अहद वकील से अपना समर्थन देने को कहा। परन्तु ज्योंही जनता पार्टी ने अपने बूते

पर स्टेट असेम्बली के चुनावों में हिस्सा लेने का निश्चय किया तो उसने साम्प्रदायिक आधार पर आंखें दिखाईं। अप्रैल, 1977 में उसने कहा—"काश्मीर कांग्रेस गंदी नाली है। निस्संदेह जनता पार्टी के अधीन लोकतन्त्र फूले-फलेगा। हम इसके सहयोगी होना चाहते हैं। जनसंघी हमारे भाई हैं।" परन्तु केवल एक महीने बाद जून, 1977 में उसने कहा—"जनता पार्टी तो नये जनसंघी परिवेश में इस्लाम-विरोधी है। जनसंघी नेताओं के हाथ अभी भी मुसलमानों के रक्त से सने हुए हैं।" उसने अपने कार्यकर्ताओं के हाथों में कुरान देकर काश्मीरी मुसलमानों को यह समझाने के लिए भेजा कि वे नास्तिकों-काफिरों को वोट न दें।

जब शेख अब्दुल्ला जैसे नेताओं ने अपने राजनीतिक ध्येय के लिए धर्म का उपयोग किया तो क्या यह समझ में आने वाली बात नहीं कि आज का युवक उसी नीति को नहीं अपनायेगा? काश्मीर की मस्जिदों पर सैकड़ों लाउडस्पीकर लगे हुए हैं और उनमें वही कुछ कहा जाता है जो शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं ने कहना आरम्भ किया था। मार्च, 1987 के चुनावों में उम्मत-ए-इस्लाम के मुखिया डॉ० काजी निसार के धार्मिक आधार पर लाभ उठाने का विरोध किया तो उन्होंने हिन्दुस्तान टाइम्स में एक भेंट में कहा था—"हमें [illegible] रहा? क्या [illegible] दिये? क्या [illegible] भूल गये जब वे हाथों में कुरान शरीफ लेकर वोट मांगने गये थे?"

भारत में काश्मीर के विलय से सम्बन्धित परिदृश्य में भी यही छल-कपट नजर आता है। मूल रूप से शेख अब्दुल्ला न तो भारत को चाहता था और पाकिस्तान के पक्ष में था। सत्ता हासिल करने की चाह सर्वोपरि थी। उसका ध्यान इस बात पर रहता था कि कौन-सी बात किस अवसर के लिए उसके अनुकूल है। 1947 से 1952 तक वह यही घोषणा करता रहा कि भारत में काश्मीर का विलय मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है और इसे बदला नहीं जा सकता—निरस्त नहीं किया जा सकता। 1948 में उसने जवाहरलाल नेहरू से कहा था—"हमने अपनी इच्छा से अपने भाग्य का निर्णय भारत के पक्ष में किया है। अब हमें कोई पृथक् नहीं कर सकता।" 7 मार्च, 1949 को उसने घोषणा की थी—"हमने भारत के साथ काम करने और साथ मरने का निश्चय किया है।"

जब वह इस तरह की औपचारिक घोषणाएं करता था तो साथ-ही-साथ वह इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि उसे स्वतन्त्र काश्मीर के संबंध में समर्थन मिले। आरम्भ में 28 जनवरी, 1948 में उसने काश्मीर की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर अमरीकी अधिकारियों से बात की। इसका स्पष्ट प्रमाण अमरीकी विदेश विभाग के अधिकारी वारेन आस्टिन के उस नोट से मिलता है जो उसने 28 जनवरी 1948 को शेख अब्दुल्ला से मिलने के बाद भेजा। 14 अप्रैल, 1948 को शेख अब्दुल्ला ने 'स्काट्समैन' के माइकेल डेविडसन को एक भेंटवार्ता में कहा—"संयुक्त राष्ट्र संघ की गारन्टी के साथ काश्मीर की स्वतन्त्रता ही एक मात्र हल है।" 1950 में शेख अब्दुल्ला ने सर ओवन डिक्सन को यह सुझाव दिया था कि इस समस्या का एक हल स्वतन्त्र काश्मीर है। उन्हीं दिनों शेख अब्दुल्ला 'आजाद

काश्मीर' के नेताओं से भी बात करना चाहता था।

यह उस व्यक्ति के मानसिक विचारों की स्थिति थी जिसके संबंध में महाराजा को पत्र लिखते हुए पंडित नेहरू ने कहा था—"काश्मीर में वही एक ऐसा व्यक्ति है जो उसकी नाव पार लगा सकता है।"

यही छल-कपट की बात दिल्ली समझौते के लागू होने के वक्त स्पष्ट दिखाई दी। जैसाकि अध्याय दो में स्पष्ट किया गया कि इस समझौते की कुछ बातें जो शेख अब्दुल्ला के हक में जाती थीं, लागू होने के बाद उसने रंग पलट लिया। उस समय नेहरू की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उसके लिए यह सोचना कठिन था कि जिस व्यक्ति का पूरा भरोसा किया, वही आंखें दिखाने लगे तो क्या करें। 1952 से 1953 के मध्य लिखे काश्मीर संबंधी पत्रों में बार-बार वे यही भाव दोहराते थे—"मैं नहीं जानता," अर्थात् मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हूं। उदाहरण के लिए 25 अप्रेल, 1952 के शेख अब्दुल्ला को लिखे पत्र में नेहरू जी ने कहा—"इस क्षण मुझे कुछ नहीं सूझ रहा कि मैं क्या करूं।" इसी तरह 27 अप्रैल, 1953 को काश्मीर के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद को पत्र लिखते हुए नेहरू जी ने कहा था—"अन्य किसी मामले के संबंध में मुझे कोई संदेह नहीं, परन्तु काश्मीर प्रश्न पर मैं असहाय हूं, क्योंकि मैं नहीं जानता मेरी स्थिति क्या है। 25 अगस्त, 1952 को शेख अब्दुल्ला को लिखे एक पत्र में नेहरू जी ने पछतावा प्रकट किया है—"संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारियों से मिलने या पाकिस्तान में क्या हो रहा है, इसकी मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं, चिन्ता मुझे इस बात की है कि काश्मीर में क्या हो रहा है, क्यों मुझे वहां संदेह और हिचक दिखाई देती है और विचारों में न तो स्पष्टता ही है और न दृढ़ता।" 1 मार्च, 1953 को मौलाना आज़ाद को पत्र में नेहरू जी ने लिखा—"मुझे डर है कि इस समय शेख अब्दुल्ला के विचारों की स्थिति यह है कि वह ऐसा कोई काम न कर दे या ऐसा कोई कदम न उठा ले जिससे स्थिति और भी बिगड़ जाय।"

इससे पहले भी नेहरू जी अब्दुल्ला की दुरंगी चाल से परेशान थे। 4 जुलाई, 1950 को शेख अब्दुल्ला के पत्र में उन्होंने लिखा था—"मैंने काश्मीर और तुम्हारे सम्बन्ध में कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसा होगा। जब मेरे विचारों और कार्यों की भी नींव ही हिल गई तो मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हूं और कुछ कर नहीं पा रहा हूं।"

शेख अब्दुल्ला के छल-कपट की अवहेलना और आरम्भ में उसकी अत्यधिक प्रशंसा करने के कारण बहुत कठिनाई हुई जब उनके सामने अगस्त, 1953 में शेख अब्दुल्ला के बर्खास्त करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह गया था। अपने असंतुलित दृष्टिकोण के कारण बेमेल निर्णय लेने लगे, इससे उनकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और देश की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। तभी तो भारत को बर्ट्रेण्डरसेल जैसे व्यक्ति से प्रतिकूल आलोचना सुननी पड़ी। "भारत सरकार के अन्तर्राष्ट्रीय उच्च आदर्श काश्मीर का प्रश्न आते ही पूर्णतया समाप्त हो जाते। ऐसी स्थिति में निराशा होती है।" नेहरू के आलोचकों ने उनकी 'ब्रूटस' से तुलना कर दी और 'धोखेबाज' कह डाला।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि शेख अब्दुल्ला को बरखास्त और गिरफ्तार करने के संबंध में नेहरू को कुछ मालूम ही नहीं था। उदाहरण के रूप में गंडेदिया की ऐसी ही मान्यता है। परन्तु इससे अधिक गलत बात हो ही नहीं

सकती—क्योंकि काश्मीर संबंधी नीति का मामला नेहरू के दिमाग पर इस बुरी तरह छाया हुआ था कि उसका छोटा-सा पुर्जा भी उनकी खास स्वीकृति के बिना इधर-उधर नहीं हिलाया जा सकता था। शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी जैसी बड़ी घटना नेहरू जी की स्वीकृति के बिना कैसे हो सकती थी?

शेख अब्दुल्ला ने तो नेहरू जी के लिए कटु शब्दों तक का इस्तेमाल किया है जबकि वे सीमा लांघ कर भी उसकी सहायता करते रहे। शेख अब्दुल्ला ने आतिशे चिनार में नेहरू जी के लिए लिखा है—

"नेहरू अपने आपको अज्ञेयवादी मानते थे, परन्तु वे प्राचीन परम्परा भारत की हिन्दू विचारधारा के भारी प्रशंसक भी थे। भारतीय इतिहास की उनकी व्याख्या जो सही ज्ञान पर आधारित नहीं, के० एम० मुंशी और दयानन्द सरस्वती जैसे सुधारकों में मिलती है। वे अपने आपके भारत की प्राचीन संस्कृति के साथ उसका पुनर्निर्माण करने वाला मानते हैं।

इस प्रकार नेहरू के विचारों में मेकियावेली की राजनीतिक दार्शनिकता, हथकण्डे और धोखा मिला हुआ है। इसीलिए सिद्धान्तों पर आधारित दार्शनिक सत महात्मा गांधी के शिष्य होने के साथ चाणक्य के भी प्रशंसक हैं। जवाहर-लाल नेहरू ने काश्मीर में हमारे प्रति मेकियावेली का दृष्टिकोण अपनाया है। उसने इसी तरह पाकिस्तान से भी व्यवहार किया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी हगरी तथा अन्य मामलों में मेकियावेलियन विचारधारा अपनाई है।

नेहरू अपने दोस्तों के दायित्वों की तुष्टि के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। परन्तु यह सभी उसी सीमा तक होगा जहां तक उनकी व्यक्तिगत सत्ता और स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। जब उनकी स्थिति को खतरा होगा फौरन रंग पलट जाएंगे। जब मैं उसके लिए उपयोगी नहीं रहा तो उसने मुझे जेल भेज दिया। उसी के इशारे पर बख्शी गुलाम मोहम्मद ने अपने शुभ-चिन्तक और कौम से दगा की। और जब नेहरू को उसकी भी जरूरत नहीं रही तो उसे भी गन्दे सड़े फल की तरह खिड़की से बाहर फेंक दिया गया। इसी तरह जब उसकी स्थिति के लिए खतरा पैदा हुआ तो कृष्ण मेनन को बलि का बकरा बना, अपमानित करके मन्त्रिमण्डल से बाहर कर दिया गया—जबकि वही अकेला नेहरू की नीतियों को लागू करा रहा था, परन्तु मैंने उसे कभी पसन्द नहीं किया था।

और अन्तत. नेहरू में स्थित चाणक्य ने ही उसका अन्त कर दिया। चीन संबंधी अपनी नीति के कारण उसे केवल राजनीतिक धक्का ही नहीं लगा, वरन् मानसिक तौर पर भी हानि पहुंची। गांधी जी की परम्परा को विरासत में प्राप्त करने के रूप में उसने उच्च नैतिक सिद्धान्तों का मसीहा बनने का यत्न किया। परन्तु जिस ढंग से उसने काश्मीर के साथ सलूक किया, उसके कारण उसके विचारों को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा और उसकी मान्यता और वैधता समाप्त हो गई।"

नेहरू जी की तो अपने राजनीतिक विरोधियों और मित्रों—दोनों से दुर्गति हुई। वास्तविक दोष तो शेख अब्दुल्ला द्वारा आरम्भ की गई छल-कपट की नीति का था। यदि उसने भारत में विलय के सवाल पर थोड़ी भी नेकनीयती दिखाई होती तो बाद में हुई तकलीफों और तूफान से बचा जा सकता था।

अगस्त, 1953 के बाद शेख अब्दुल्ला ने जो कुछ किया उनका भी आपसी तालमेल नहीं था। उसने जो भी अधिकांश भाषण किये और काम किये, उसके पहले के विचारों से मेल नहीं खाते। उसने वस्तुत: पाकिस्तानी दृष्टिकोण अपना लिया। उसने 'वार कौंसिल' और 'जनमत संग्रह मोर्चे' के कार्यकर्ताओं के माध्यम से पाकिस्तानी अधिकारियों से संबंध बनाये रखा।[1] पाकिस्तानी एजेण्टों के हाथों ही उसने अपनी चिट्ठी सुरक्षा परिषद् को भिजवाई। उसने पाकिस्तानी आदमियों, उपकरणों और धन की सहायता से सरकार को उलटने का घृणित षड्यन्त्र भी किया। 8 जनवरी, 1958 को जब उसे रिहा किया गया तो वह बड़े धूमधड़ाके से काश्मीर घाटी गया और उसने अनेक स्थानों पर भारत-विरोधी भाषण किये। भले ही 17 जनवरी, 1958 को नेशनल कांफ्रेंस के हैडक्वार्टर मुजाहिद मंजिल पर कब्जा करने में असफल रहा,[2] और उसकी 26 जनवरी के गणतन्त्र दिवस के बहिष्कार के आह्वान की बात का भी कोई असर नहीं हुआ, परन्तु वह गरीब जनता के धार्मिक उन्माद को बढ़ाने में लगा रहा। वह भोली-भाली जनता को भारतीय उत्पीड़कों के प्रति इस्लाम के शहीदों की तरह काम करने के लिए भड़काता रहा। 29 अप्रैल, 1958 को उसे पुन: गिरफ्तार किया गया तो उसके घर से जनमत संग्रह मोर्चे द्वारा तैयार एक प्रस्ताव मिला, जिससे पाकिस्तानी मत का पूर्ण समर्थन होता था। मुकदमे के दौरान शेख अब्दुल्ला ने अदालत को भारत-विरोधी प्रचार के मंच की तरह प्रयोग किया। वास्तव में 1972 तक वह पूर्णतया पाकिस्तानी पक्ष का हो गया था। पाकिस्तान ने 1965 में काश्मीर को जोर-जबरदस्ती हड़पने का फिर प्रयत्न किया, इसके लिए किसी अंश तक अब्दुल्ला का पाकिस्तानी रवैया भी एक कारण था। जब उसे अपनी इच्छाओं के अनुकूल लगा तो उसने काश्मीर समझौते (1975) पर हस्ताक्षर किये और अपने विचार बदल लिये।

उसके आलोचकों की यह बात सच थी कि शेख अब्दुल्ला पिछले 22 साल से 'सम्मानपूर्ण दर्जे' की जो बात कह रहा था, उसका अर्थ यह था कि "उसे मुख्यमंत्री का पद मिले और उसके बाद उसके बेटे डॉ० फारूख अब्दुल्ला को; उसकी पत्नी अकबरजहां को संसद् की सदस्यता; उसके दामाद गुलाम मोहम्मद शाह को मंत्रीपद तथा अपने अन्य दोस्तों और रिश्तेदारों को ऐसे ओहदे मिलें जहां उन्हें अच्छी आमदनी हो।"

जो बात शेख अब्दुल्ला पर लागू होती है कुछ हद तक वही बात जी० एम० शाह और डॉ० फारूख अब्दुल्ला के संबंध में भी ठीक है। जब शाह मुख्यमंत्री था तो वह पूर्ण रूप से भारत का समर्थक था। भारत में विलय को अन्तिम और

1. अध्याय दो देखें—जिसमें, इतिहास का सर्वेक्षण तथा अन्य धाराएं तथा काश्मीर समझौता और जनमत संग्रह मोर्चे के संबंध में विवरण है।
2. इस दिन शेख अब्दुल्ला ने जनता से पत्थर मस्जिद में इकट्ठा होने की अपील की। बात तो जुमे की नमाज की थी, पर उसके बाद लोगों को सामने की मुजाहिद मस्जिद में चलने को कहा गया। भारी भीड़ थी पर शेख अब्दुल्ला ऐन मौके पर हाजिर न हो सका। उसके हौसले पस्त हो चुके थे।

अपरिवर्तनीय मानता था। जब सत्ता उसके हाथ से निकल गई तो उसने यह कहना शुरू कर दिया कि "हर काश्मीरी मुसलमान पाकिस्तानी है। मैं भी पाकिस्तानी हूं। भारत से नाता जोड़ना एक भारी भूल थी।" 1975 तक नेशनल कांफ्रेंस के सत्ता में न आने तक डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने अमानुल्लाखा से दोस्ती रखी। 1974 में उसने यहां तक कहा कि –"काश्मीर की आजादी के लिए यहां बच्चा-बच्चा अपने को बलिदान कर देगा।" उसके रिकार्ड किये हुए भाषण को आजाद काश्मीर रेडियो से भारत के विरुद्ध बगावत के लिए भड़काने के वास्ते 1990 की 22 से 26 जनवरी तक प्रसारित किया जाता रहा।

जब ए० जी० लोन कांग्रेस मिनिस्टर थे, उस समय वह भारत को धर्मनिरपेक्षता और लोकतन्त्र का श्रेष्ठतम उदाहरण मानता था। उसकी यह भी मान्यता थी कि भारत में काश्मीर के विलय का निर्णय सही और पक्का था। पर जब वह मंत्री नहीं रहा तो उसका नजरिया ही बदल गया। तब भारत साम्प्रदायिक और उपनिवेशवादी बन गया और विलय को उसने भयंकर भूल बताया। जब उसने यह अनुभव किया कि हिंसा भड़काने की बातें करने में उसे राजनीतिक लाभ मिल सकता है तो उसने जनरल ए० एम० वैद्य के सिख कातिल की तारीफ तक की और मुसलमानों को भी उसी के पदचिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित किया।

1986 में एक पाकिस्तानी पत्रकार जो मूल रूप से बारामूला का रहने वाला था, मुझे मिलने आया। बातचीत के दौरान मैंने उससे अपने विचार बताने को कहा। उसने कहा—"एक बात मैं केवल राजनीतिज्ञों के बारे में बहुत ही साफ रूप से कह सकता हूं, क्योंकि मैं अधिकांश को मिला हूं। उनमें से जो लोग सत्ता में हैं, वे भारत के साथ हैं और जो सत्ता में नहीं वे पाकिस्तान के साथ हैं।"

भ्रान्ति

छल-कपट की राजनीति में इस क्षेत्र में काम करने वालों में विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियां पैदा हो जाती हैं। केन्द्र सरकार, विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू ने एक भ्रान्ति का पोषण किया, जबकि शेख अब्दुल्ला तथा उसकी नेशनल कांफ्रेंस दूसरी तरह के भ्रम में पड़ी रही। इन्हीं में काश्मीर की त्रासदी छिपी है। केन्द्रीय नेता यह सोचते रहे कि समय के बीतने के साथ काश्मीर का भारत में पूरी तरह विलय हो जाने देंगे और शेख अब्दुल्ला की दिली ख्वाहिश कि अर्द्ध-स्वतन्त्र राजा की तरह काम करे और 'शेख शाही' स्थापित कर ले, जहां उसे कोई पूछने रोकने वाला न हो।

यहां तक सरदार पटेल भी इसी भारतीय भ्रम के शिकार हो गये। बी० शंकर ने काश्मीर के विशेष दर्जे के गोपालास्वामी आयंगर के मसौदे से सहमत होने पर सरदार पटेल की बुद्धिमत्ता पर संदेह प्रकट किया था। उसने टिप्पणी की थी—"न तो गोपालास्वामी आयंगर और न शेख अब्दुल्ला सदा रहने वाले हैं परन्तु भविष्य भारत सरकार की दृढ़ता और साहस पर निर्भर करता है। यदि हमें अपनी शक्ति और दृढ़ता में ही भरोसा नहीं तो हमें राष्ट्र के रूप में जीवित

रहने का अधिकार नहीं।"

विभिन्न क्षेत्रों ने लोगों ने इस संबंध में जो भ्रान्तियां पाल रखी थीं वे पूरी न हो सकीं। वे उन्हें पूरा नहीं कर पाये। भ्रान्तियां तो भ्रान्तियां ही होती हैं— और वे बहुत दिनों तक बनी भी नहीं रह सकतीं। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक वास्तविकताएं उन्हें भंग कर देती हैं। झूठी आशाओं और भावनाओं से निराशा हाथ लगी और निराशा से कटुता बढ़ी, कटुता से कुण्ठा और कुण्ठा से आपसी संघर्ष बढ़ा। ऐसी स्थिति में समय बीतने के साथ नई भ्रान्तियों को हमने पाला, नई आशाएं जागीं और नई कटुता, कुण्ठा और संघर्ष पैदा हुए। यही चक्र चलता रहा। यही चक्र अभी भी चल रहा है और संभवतः भविष्य में भी चलता रहेगा।

भारतीय नेताओं ने अब भी यह बात नहीं समझी कि भ्रान्तियां समाप्त कर देनी चाहिए। हवाई बातों को असली दृढ़, पायेदार जामा पहनाने की जरूरत है। और जो वास्तविकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए। पुराने विचारों के चक्र से निकलकर नये ध्येय की ओर ध्यान देना चाहिए। घुटने-टेक नीति के दुष्परिणामों को समझ लेना चाहिए। छल-कपट और दो राष्ट्रों के सिद्धान्त से चिपके रहने की वृत्ति त्याग देनी चाहिए।

काश्मीर समझौता

फरवरी, 1975 का काश्मीर समझौता और उसके प्रति भ्रान्तियों को पाले रहना एक और उदाहरण है। बंगला देश के युद्ध के बाद परिवर्तित स्थितियों में शेख अब्दुल्ला और श्रीमती गांधी के प्रतिनिधियों में बातचीत हुई। काफी कष्टदायक बातचीत के बाद फरवरी, 1975 में काश्मीर समझौते पर हस्ताक्षर हुए।

इस समझौते का मुख्य प्रावधान यह है कि धारा 370 जारी रहेगी और शेष अधिकार राज्य सरकार के पास रहेंगे। इसमें यह बात भी कही गई थी कि यदि भारतीय संविधान की कोई धारा कुछ परिवर्तन के बाद काश्मीर पर लागू होती है तो उसे आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति धारा 370 के अधीन बदल या समाप्त कर सकता है। प्रत्येक योजना पर उसकी विशेषताओं के आधार पर विचार किया जाएगा। परन्तु बिना संशोधन आदि के भारतीय संविधान की जो धाराएं पहले से ही लागू हैं, उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा। इस समझौते का पूरा पाठ परिशिष्ट में दिया गया है।

तत्व की बात यह है कि इस समझौते से भारत और काश्मीर के संवैधानिक सम्बन्धों में अन्तर नहीं आता। इसका प्रमुख ध्येय शेख अब्दुल्ला को पुनः सत्ता में लाने और इस बात की झलक देने से भी था कि रियासत की स्वायत्तता पर विचार किया जा सकता है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस समझौते की मूल भावना के सम्बन्ध में 24 फरवरी, 1975 को संसद् में वक्तव्य देते हुए कहा था, "शेख अब्दुल्ला ने पहले जो भूमिका निभाई है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है, बाद में उनके विचारों में परिवर्तन आया और मतभेद तथा तनातनी बढ़ी। अब फिर उन्होंने धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्र की एकता के लिए

काम करने की इच्छा प्रकट की है। इसके लिए हम उनका स्वागत करते हैं।"

निस्सन्देह काश्मीर समझौता किसी सीमा तक लाभदायक था। इसके औचित्य के सम्बन्ध में स्वर्णसिंह ने संसद् में बयान देते हुए कहा था, "इस परिवर्तन की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि जम्मू-काश्मीर की जनता का कुछ प्रभावशाली भाग अभी भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में नहीं था।" अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी इससे भारत की समस्या लोग और अधिक समझ सके। यह बात पाकिस्तान द्वारा प्रकट की गई अप्रसन्नता से स्पष्ट है। भुट्टो ने इस समझौते के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए हड़ताल का आह्वान किया।

परन्तु इस समझौते से मूल समस्याओं को सुलझाया नहीं जा सका। 370 धारा में सम्बन्धित भावनात्मक तत्त्व अभी अक्षुण्ण थे। जिन तत्त्वों ने ऐसी स्थिति पैदा की थी जिनके कारण अगस्त, 1953 की घटना हुई, उन्हें समाप्त नहीं किया जा सका था। इस बात का कोई सुदृढ़ प्रबन्ध नहीं किया गया था कि शेख अब्दुल्ला और उसके परिवार की शक्ति और स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए साम्प्रदायिक और काश्मीर की पहचान बनाने जैसी बातों का भविष्य में सहारा नहीं लिया जायेगा। इस बात के लिए भी कोई सुधारात्मक उपाय नहीं किये गये थे कि जिससे छल-कपट की राजनीति के दुष्परिणामों को रोका जा सके। ऐसी सम्भावनाओं को पूरी तरह प्रभावपूर्ण ढंग से समाप्त नहीं किया जा सका जो फिर वही स्थिति पैदा कर दें। शेख अब्दुल्ला ने कुछ मामलों में फिर पलटी खाई और वह फिर 'मिनी सुलतान' बन बैठा। अप्रिय बीती बातों पर परदा डाल देने में कोई बुराई नहीं, परन्तु गन्दी धूल-मिट्टी को कालीन के नीचे दबा देने से लाभ नहीं होता। वह रिसकर ऊपर आ जाती है और घुटन पैदा कर देती है।

स्वर्णसिंह ने इस समझौते का "दिल और दिमाग के मिलन और विश्वास का काम" कहकर स्वागत किया था। शेख अब्दुल्ला ने विश्वास की भावना की पुनः स्थापना बताया था। उसने कहा था कि हमने आपसी सहयोग की मजबूत नींव डाल दी है। परन्तु शीघ्र ही पता चल गया, इस नींव में नकली और घटिया माल इस्तेमाल किया गया था। इसमें दरारें नजर आने लगीं। 1977 तक यह आलीशान इमारत धराशायी हो गई। एक और भ्रान्ति का मोह भग हो गया।

मीर कासिम ने अपनी पुस्तक 'दास्ताने हयात' में काश्मीर समझौते के असफल रहने के लिए प्रारम्भिक रूप से श्रीमती गांधी को दोषी बताया है। उसका विचार था कि श्रीमती गांधी, शेख अब्दुल्ला और मीर कासिम के प्रति सदा से सन्देह की नजर रखती थी और 26 मार्च, 1977 को कांग्रेस (ई) पार्टी के विधान मण्डल द्वारा शेख अब्दुल्ला को समर्थन बन्द करके नये नेता के चुनाव का निश्चय काश्मीर समझौते के कफन में "आखिरी कील थी। परन्तु मीर कासिम की बात कुछ अंशों में ही ठीक है। उसने इन बातों का सही खुलासा नहीं किया कि शेख अब्दुल्ला ने जनमत संग्रह मोर्चे को नेशनल कांफ्रेंस में परिवर्तित कर दिया, काश्मीर मन्त्रिमण्डल में श्रीमती गांधी की पार्टी के प्रतिनिधि को रखने के लिए उनसे स्पष्ट परामर्श क्यों नहीं किया गया, शेख अब्दुल्ला ए० जी० लोन को अपने मन्त्रिमण्डल में लेने के लिए इतने उतावले क्यों थे जबकि वह कांग्रेस पार्टी छोड़ चुका था, और क्यों शेख अब्दुल्ला ने जनमत संग्रह मोर्चे के सदस्यों को स्वतन्त्रता सेनानी करार देकर उन्हें पेन्शनें देने की मनमानी कार्यवाही

की? इस समझौते के असफल रहने का कारण केवल जम्मू-काश्मीर कांग्रेस के कुछ लोगों द्वारा इसका विरोध नहीं, वे तो आरम्भ से ही इसके विरोधी थे। इसके असफल रहने का कारण यह था कि मन विसंगतियों और असमानताओं का हल नहीं किया गया और स्वायत्तता के सिद्धान्त को शेख अब्दुल्ला की लोक-तान्त्रिक तानाशाही की छत्रछाया में बनाये रखना था।

उलटी प्रक्रिया : रीसैटलमेंट एक्ट

1975 में काश्मीर समझौते, विशेष रूप से 1977 में काश्मीर राज्य विधान सभा के चुनावों के बाद राज्य के शासन में एकीकरण की प्रक्रिया विपरीत दिशा में चल पड़ी। भारतीय संविधान की धाराओं और केन्द्रीय कानूनों का राज्य में लागू होना बन्द हो गया—यद्यपि ये धाराएँ साधारण जनता की रुचि और उनके लिए लाभप्रद थीं। समय-समय पर राज्य की स्वायत्तता का हौवा खड़ा किया जाने लगा। अखिल भारतीय सेवाओं का दर्जा भी बदल दिया गया। धारा 370 को बचाव दीवार के रूप में और सुदृढ़ किया गया। इस उलटी प्रक्रिया का सबसे अधिक स्पष्ट प्रमाण जम्मू-काश्मीर रीसैटलमेंट एक्ट 1982 को लागू करना था।

जिस ढंग से यह रीसैटलमेंट लाया गया उससे यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार 'स्थानीय सुलतानों' ने साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काकर अपनी इच्छानुसार अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाया। उन्हें शेष भारत से रियासत के भावनात्मक सम्बन्धों को दृढ़ करने की कोई चिन्ता नहीं थी।

रीसैटलमेंट एक्ट, 1982 का प्रकट ध्येय उन काश्मीरियों को घाटी में पुन: बसाना था जो या तो पाकिस्तान अधिकृत काश्मीर या पाकिस्तान चले गये थे। इसका ध्येय काश्मीरी परिवारों को फिर से दोस्ता-मिलाना था। एक छोटी पुस्तिका 'रीसैटलमेण्ट बिल क्यों' में यह कहा गया कि इस संवैधानिक आवश्यकता पूरी हुई है और रियासत की जनता को वापस लौटने की सुविधा मिली है। परन्तु यह बातों का महत्त्व केवल तात्त्विक था, जैसे यह खोखली सिद्ध हुईं।

रीसैटलमेण्ट एक्ट का वास्तविक ध्येय शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस को काश्मीरी एकता और उसकी पहचान का प्रतिनिधि बनाना था, शेख को अपनी इमेज को और दृढ़ करने और ऐसी स्थिति पैदा करने के लिए लागू किया गया कि जिससे फारूख अब्दुल्ला को शेख का उत्तराधिकारी घोषित किया जा सके, राज्य की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता का दिखावा किया जा सके, केन्द्रीय सरकार के प्रति उपेक्षा का रवैया अपनाकर काश्मीर समझौते में पलीता लगाया जा सके, पुंछ और राजौरी जिलों में मुस्लिम बहुमत करके 'बृहत्तर काश्मीर' की योजना को कुछ स्वरूप दिया जा सके। इन बातों से प्रगति और कल्याण सम्बन्धी जो मुख्य प्रश्न थे, उन्हें एक ओर रख दिया गया। और किसी भी व्यक्ति ने नेताओं की ईमानदारी के प्रति सन्देह तक प्रकट नहीं किया।

आशा के अनुरूप इस बिल की तीखी प्रतिक्रिया हुई और राज्यपाल बी० के० नेहरू और केन्द्र सरकार को सैकड़ों प्रतिवेदन मिले। राज्यपाल ने इन पर विचार किया और कुछ निश्चय किया—परन्तु इस बात पर ही शेष मन्त्रिमण्डल के सदस्य

जी० एम० शाह ने आपत्ति की और माग की कि या तो राज्यपाल इस बिल की स्वीकृति दें या फिर त्यागपत्र दें।

राज्यपाल बी० के० नेहरू इस बिल की कुछ त्रुटियो का उल्लेख करते हुए राज्य असेम्बली को एक सन्देश भेजना चाहते थे, परन्तु डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने, जो 8 सितम्बर, 1982 मे शेख अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद मुख्यमन्त्री बन गये थे, 4 अक्तूबर,1982 को असेम्बली मे दूसरी बार बिल पास करवा लिया। ऐसी स्थिति मे राज्यपाल के लिए बिल को स्वीकृति देने के अतिरिक्त कोई विकल्प न था। नये मुख्यमन्त्री फारूख अब्दुल्ला से विचार के बाद केन्द्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय से इस सम्बन्ध मे परामर्श देने के लिए कहा, परन्तु यह मामला अभी तक ठण्डे बस्ते मे पड़ा है।

रीसैटलमैण्ट के सम्बन्ध मे जिस तरह विवाद आरम्भ हुआ और फिर अस्थायी तौर पर इसे दफना दिया गया, इन बातो को देखने से अनेक प्रश्न उठते हैं। एक तो यह कि इसका औचित्य क्या था? क्या 1947, 1965 और 1971 के युद्धो से सम्बन्धित तथ्यो की उपेक्षा की जा सकती है? क्या तथा-कथित काश्मीरी परिवारों के लौटने से सामाजिक और आर्थिक विघटन नही होता और इसके साथ देश की सुरक्षा को भयंकर खतरा उत्पन्न नही होता? कौन इस बात की गारण्टी दे सकता है, इस प्रावधान के अधीन भेदिये और तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्व देश मे नही आ घुसेंगे? मुख्य रूप से जिस बिल का नागरिक अधिकार प्रदान करने से सम्बन्ध है, उसे राज्य विधान सभा कानून का दर्जा कैसे दे सकती है? देश छोड़कर चले जाने वालो के उन बच्चो को भारतीय राष्ट्रीयता कैसे दी जा सकती है जो पैदा ही पाकिस्तान मे हुए?

यह प्रश्न अपने आप मे बहुत महत्वपूर्ण है और इनमे शेख अब्दुल्ला और उसकी नेशनल कांफ्रेंस सकुचित, संकीर्ण और अलगाववादी विचारधारा का पता चलता है। परन्तु इनके साथ अन्य सवाल भी हैं और इनका भविष्य के लिए बहुत महत्त्व है। क्या इस कदम का ध्येय ऐसा वातावरण बनाना नही था जिससे 'स्वतन्त्र काश्मीर' आन्दोलन पैदा हो? आज जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट जिस बात की माग कर रहा है, क्या इस बिल ने उसके लिए अनुकूल स्थिति पैदा नही की? क्या स्वतन्त्रता-समर्थक उद्दाम भावनाओं को और दृढ नही किया गया? यह समझना भी कठिन है कि जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट का प्रयोजन भी वही है? रीसैटलमैण्ट एक्ट और वर्तमान लिबरेशन आन्दोलन के समर्थकों की सोच एक ही है और उसके मूल मे अलगाववादी भावना।

एक अन्य मूलभूत मुद्दे—लोकतंत्र के विषय मे, वही दोमुही बातें, वही धोखा, और वही वैचारिक प्रवन्ध की बातें कही गईं, जो निजी जाल बनाने के लिए मौजूद थी। शेख अब्दुल्ला और उनकी मंडली ने, जिस प्रकार के लोकतंत्र को काश्मीर मे उपजाया था, वह नकारात्मक कारको और शक्तियो पर, अधिकाश रूप से आधारित था। वह मध्यकालीन प्रवृत्तियो और साम्प्रदायिक भावनाओं पर टिका था। उसमे निजी छवि तो सुस्थापित थी ही, दूसरे लोगो को डराने-धमकाने वाले अम्युपायो को प्रयोग-व्यवहार मे लाने के प्रति कोई हिचक नही थी। वह अधिकाशत जोड-तोडमूलक और फासीवादी प्रवृत्ति थी। उसने न केवल लोगो के दिलोदिमाग को प्रदूषित और बदी बना दिया था, बल्कि मतपत्रों के माध्यम

से, इन प्रवृत्तियों को मतपेटियों में पहुंचा दिया था। अब यह स्पष्ट था कि इस प्रकार के खोटे और नकली सिक्के बाजार में बहुत दिनों तक टिक नहीं सकते थे।

मैंने जो बात ऊपर कही है, वह इस कथन से स्पष्ट हो जाती है कि किस प्रकार शेख अब्दुल्ला ने ऐसी भूमिका तैयार की, जिसमें अपने वंशानुगत उत्तराधिकार पर आधारित शासन को स्थापित किया जा सके। यह बात उस तरीके से भी स्पष्ट हो जाती है, जिस तरीके से (सन् 1975 की फरवरी में हुई) काश्मीर सहमति (Kashmir Accord) से (सन् 1986 के नवम्बर में सम्पन्न) राजीव-फ़ारूक सहमति की स्थापना की अवधि के बीच सम्पन्न हुए चुनाव नेशनल कान्फ्रेन्स ने लड़े।

सन् 1981 में 21 अगस्त के दिन, शेख अब्दुल्ला ने श्रीनगर के इकबाल पार्क में जो भाषण दिया, उसके एक अंश का अनुवाद इस प्रकार है—

"सन् 1930 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) के सदर का ओहदा, पंडित मोतीलाल नेहरू ने तत्कालीन नई पीढ़ी की रहनुमाई कर रहे पंडित जवाहरलाल नेहरू को सौंप दिया और जैसाकि हमने देखा है, वह सत्ता-परिवर्तन कितना अधिक सफल रहा। आज मैं खुद को उसी नाजुक चौराहे पर, उसी दशा में खड़ा पाता हूं और मैं नेशनल कांफ्रेंस का सदर पद, नई पीढ़ी की रहनुमाई कर रहे डॉ० फारूख अब्दुल्ला[1] को सौंप रहा हूं। यह एक महान सम्मान है और एक बड़ा इम्तहान भी। यह ताज जिसे मैं डॉ० फारूख अब्दुल्ला के सिर पर रख रहा हूं, कांटों भरा ताज है, फिर भी मैं यह उम्मीद करता हूं कि वे इस सम्मान के पात्र सिद्ध होंगे। मैं अल्लाह से दुआ करता हूं कि वह (डॉ० फारूख अब्दुल्ला को) इस इम्तहान में कामयाबी अता फर्मायें।

"मैंने इस क़ौम की खिदमत की है, काश्मीरियों के हितों की हिफ़ाज़त बड़ी होशियारी से की है और अपनी क़ौम के साथ आंसुओं के दरिया में गोता लगाया है। मैंने अपनी ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा क़ौम की खिदमत में लगाया है और मेरी ख़्वाहिश है कि नौजवान पीढ़ी हमारे यक़ीन के लायक साबित हो।

"साथियो! इस मौज़ूदा मन्ज़र की महानता को मद्दे नज़र रखते हुए, मेरा दिल खुदा के शुक्र से लबरेज़ है, जिसने इस महान काम को सरंजाम करने के लिए मुझे चुना है। मैं अल्लाह का शुक्रगुज़ार हूं कि उसने मुझे सन् 1931 से ही इस काम को अंजाम देने के लिए ताक़त दी है।

"मैं अपने उन सभी दोस्तों और साथियों का शुक्रगुज़ार हूं, जो मेरे हमसफ़र रहे हैं और जिन्होंने हर मुश्किल के दिनों में, मेरी मदद की है। अगर उन्होंने मुझ पर भरोसा और यक़ीन न किया होता तो मैं इस महान कार्य को कैसे सरंजाम दे पाता? उन सभी साथियों के सामने मैं अपना सिर झुकाता हूं, जिन्होंने अपनी जान की परवाह न कर, आज़ादी की लड़ाई में शिरकत की। मैं उन सभी शहीदों को सलाम करता हूं, जिन्होंने क़ौम की ख़िदमत में अपनी जान को कुर्बान कर दिया। मैं उन बहनों के लिए भी दिली हमदर्दी का इज़हार करता हूं, जिन्होंने इस मुल्क़ की ख़ातिर अपने 'सुहाग' की कुर्बानी दी।"

यहां यह कहना उचित होगा कि शेख अब्दुल्ला ने यह तकरीर नेशनल कान्फ्रेंस के उस सालाना जलसे में दी थी, जिसका असली मक़सद, फारूख अब्दुल्ला की ताजपोशी करना था।

यह तकरीर महत्त्वपूर्ण है। इससे शेख अब्दुल्ला के व्यक्तित्व के प्रमुख पहलू उजागर होते हैं। इस तकरीर के ज़रिये, शेख अब्दुल्ला का असली मंशा यह है कि वे युवा पीढ़ी को (नेशनल कान्फ्रेंस के सदर पद की) ज़िम्मेदारी सौंपना चाहते हैं, लेकिन वे इस ज़िम्मेदारी को सौंपने के लिए किसे चुनते हैं? अपने फ़रज़न्द डॉ० फारूख अब्दुल्ला को। यहां देखने की बात यह है कि किस तरह शेख अब्दुल्ला जनता के सामने खुद को पेश करते हैं, किस तरह अपनी कुर्बानियों का ज़िक्र करते हैं, किस तरह कौम के साथ आंसुओं के दरिया में नहाने की बात करते है।

देखिये, किस तरह वे अपनी असल मंशा को इतिहास का लबादा पहनाते हैं और जनता को, उस पंडित मोतीलाल नेहरू की बात याद दिलाते हैं, जिन्होंने स्वयं भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष का पद पंडित जवाहरलाल नेहरू को सौंपा था। उन्हें अर्थात् शेख अब्दुल्ला को इस बात की कतई परवाह नहीं थी कि उस ज़माने के हालात, इन दिनों की बनिस्वत कितने अलग थे। उन दिनों, इस तरह का फैसला करने का तरीका मौजूदा ज़माने से कितना भिन्न था। यहां यह बात ध्यान देने के काबिल है कि किस प्रकार शेख अब्दुल्ला, काश्मीरियों को एक अलग कौम के रूप में बार-बार पेश करते हैं और दोनों परिस्थितियों में हालात की समानता का वही कोड़ा हवा में लहराते हैं। देखिये, किस तरह शेख अब्दुल्ला अपने उन पुराने साथियों का ज़िक्र करते हैं, जिन्होंने उनके लिए अगणित कुर्बानियां दीं। फिर वही शेख अब्दुल्ला उन साथियों में से सबसे तगड़े — मिर्ज़ा अफज़ल बेग जैसे साथी तथा जी० एo शाह जैसे अपने बुज़ुर्ग साथियों का ज़िक्र तक नहीं करते। यही नहीं, वे नेशनल कान्फ्रेंस के 'सदर' पद का ताज अपने बेटे डॉ० फारूख अब्दुल्ला के सिर पर पहना देते हैं। इस प्रकार वे उक्त ओहदे के वास्तविक और वैध उत्तराधिकारियों को ज़मींदोज़ कर देते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि जब शेख अब्दुल्ला ने मिर्ज़ा अफज़ल बेग को 'निजी वफादारी के शपथपत्र' पर दस्तखत करने को कहा तो उन्होंने इसका प्रतिरोध किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि 'सदर' पद की ताजपोशी का मामला, पार्टी के स्तर पर दल के लोगों की सलाह और उनके मश्वरे से तय किया जाना चाहिए। शेख अब्दुल्ला शुरू में तो इस मांग से रज़ामन्द हो गये, लेकिन चन्द घंटों के बाद ही उन्होंने बेग साहब से इस्तीफा (Resugbation) मांग लिया। इस पर मिर्ज़ा अफज़ल बेग का कहना यह था कि जो शख्स 47 बरसों की वफादारी और दोस्ती पर यकीन नहीं कर सकता तो वह दो जुमलों (वाक्यों) में कही बात का यकीन कैसे कर लेगा? यहां यह बात ध्यान देने के काबिल है कि अफज़ल बेग भू-सुधारों के मुख्य नियन्ता व नियोजक (architect) थे और वही जनमत संग्रह मोर्चा (Plebiscite Front) के जीते-जागते प्रेरणा-स्रोत और काश्मीर सहमति (Kashmir Accord) के अकेले कर्ताधर्ता थे। शेख अब्दुल्ला के दुर्दिनों की घड़ियों में, उनसे अधिक उनकी खिदमत और कौन कर सकता था? अब केवल

उन्हें ही शेख़ अब्दुल्ला की निजी छवि और वंशानुवर्ती संस्कृति की बलिवेदी पर कुर्बानी का बकरा बना दिया गया।

यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त भाषण में शेख अब्दुल्ला ने आर्थिक और सामाजिक सुधारों की बात कही थी और महाराजा के शासन-काल की सामाजिक असमानताओं को उजागर किया था, लेकिन शेख साहब ने उन भेदभावों और असमानताओं का ज़िक्र नहीं किया, जिन्हें खुद उन्होंने पैदा किया था। उन्होंने क़ौमी ज़िन्दगी में, साम्प्रदायिक तत्त्व को ला खड़ा किया और कहा कि "भारत में, 34 साल के बाद भी आज मुसलमान ख़ौफ़ज़दा जिन्दगी बसर कर रहे हैं।" यह बात करते समय वे भली प्रकार जानते थे कि वे अपने बेटे को अपनी जगह बिठाने की जोड़-जुगत कर रहे थे। इन हालात में, उस समय यह कतई ज़रूरी नहीं था कि वे श्रीमती इन्दिरा गांधी जैसे केन्द्रीय नेताओं की खिंचाई किसी सीमा से बाहर करते। तभी तो शेख अब्दुल्ला ने अबुल कलाम आजाद द्वारा रामगढ़ कांग्रेस के सम्मेलन के अवसर पर कही बात को दोहराया कि "मैं एक मुसलमान हूं और मुझे अपने मुसलमान होने का फ़ख़्र है। इस्लामी संस्कृति मेरी तन्दुरुस्ती है और इसकी हिफ़ाजत करना मेरा फ़र्ज़ है। लेकिन इन सब बातों के होते हुए, मुझे इस बात का फ़ख़्र है कि मैं एक हिन्दुस्तानी हूं और हिन्दुस्तानी क़ौम के फर्ज अंजाम करना हमारा कर्त्तव्य है।"

चुनावी तकनीकें

फरवरी, सन् 1975 से नवम्बर, सन् 1986 के बीच की अवधि में सम्पन्न हुए चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस ने फासीवादी तकनीकों को इस्तेमाल में लिया। सभी मतदाताओं को, बौद्धिक आधार पर तर्कसंगत ढंग से, गुणदोष की विवेचना के आधार पर सोचने-विचारने का मौका नहीं दिया गया। सुनियोजित ढंग से यह प्रचार किया गया कि तमाम काश्मीरी लोग गुलामी के जुए को उतार फेंकना चाहते हैं, इसलिए उन्हें नेशनल कांफ्रेंस के हक़ में वोट देना चाहिए। शेख़ अब्दुल्ला के इर्द-गिर्द, जिस निजी छवि को संयोजित किया गया था, उन्होंने उसका भरपूर शोषण किया। शेख़ अब्दुल्ला को काश्मीरियों की आजादी का अलमबरदार और केन्द्रीय नेताओं को बर्बाद करने वाले विध्वंसक के रूप में पेश किया गया।

केन्द्र सरकार की कमजोरी, उसका ढुलमुलापन, उसके नज़रिये में लगातार तब्दीलियां, सरकारी लक्ष्यों की अस्पष्टता, राज्यपालों का शुतुरमुर्गीय दृष्टिकोण, शेख़ अब्दुल्ला और उनके परिवार की ग़ैर माकूल और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा आदि इन सबका कुल मिलाकर यह असर हुआ कि नेशनल कांफ्रेंस को उपर्युक्त रुख अख्तियार करने का हौसला बढ़ा। यही नहीं, नेशनल कांफ्रेंस की दोमुंही बातों और उसके बेहद संकीर्ण राजनीतिक नज़रिये के जाल में, केन्द्रीय नेताओं का एक बड़ा वर्ग और प्रेस तथा विरोधी दल फंस गये और नेशनल कांफ्रेंस के अत्यधिक संकुचित राजनीतिक उद्देश्यों के असर में आ गये। किसी की भी इतनी जुर्रत न थी कि कोई सही बात को साफ-साफ कह पाता या फिर तत्कालीन राजनीति के प्रवाह की गहरी अंतर्धाराओं को समझ पाता।

यू तो मेरे उक्त कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिए अन्य बहुत-से साक्ष्य और प्रमाण प्रचुर संख्या मे प्राप्य हैं, तथापि इस समय मैं नेशनल कान्फ्रेंस (फारूख)द्वारा दिसम्बर, सन् 1984 मे, लोकसभा के चुनावो के दौरान आयोजित अभियानो तक स्वयं को सीमित रखूगा। मैं उन प्रसारित पोस्टरो मे से चार पोस्टरों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, जिन्हें यथावत यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है। उस समय इन पोस्टरो का प्रचार-प्रसार व्यापक स्तर पर किया गया था और ये सभी पोस्टर नेशनल कान्फ्रेंस द्वारा प्रकाशित और वितरित किये गये थे।

जैसा कि पोस्टर संख्या 1 से स्वत स्पष्ट है, इसमे सभी काश्मीरियो को, दयनीय स्थिति मे, बेडियो से जकडे दिखाया गया है। निश्चय ही, यहा यह प्रश्न होता है कि इन्हें दासता की बेड़ियों या जंजीरो मे किसने जकड़ा है? यह स्वत:ही ध्वनित होता है भारत ने। एक पूरी काश्मीरी कौम को नेशनल कान्फ्रेंस (फारूख) के रूप मे दर्शाया गया है। पोस्टर की आखिरी पंक्ति मे कहा गया है कि 'हल' 'तुम्हारी जद्दोजहद, तुम्हारी आजादी' का प्रतीक है, आदि। यह संघर्ष और जद्दोजहद किससे है? आजादी किससे तलब की गई है? क्या काश्मीरी पहले ही आजाद नही हैं? क्या वे सभी खुद को अब भी गुलाम समझते हैं?

इस पोस्टर के ऊपर एक कविता दी गई है जिसका भाव यह है—"ओ खुदा, काश्मीर की आजादी की आत्मा का हनन करने वाले इस क्रूर हाथ को तोड दे।"

आगे कहा गया है कि—"यह हाथ मासूम लोगो के खून मे सना हुआ है, इसे सदा-सदा के लिए काट दे।" क्या इसका सीधा-सा मतलब 'भारतीय' हाथ से नही? बेड़ियो में काश्मीरी की पृष्ठभूमि मे पोस्टर मे लाल रग दिया गया है, यह भी विशेष अर्थ रखता है।

अपने इस प्रसग मे पोस्टर का अर्थ क्या है? कुल मिलाकर इसका प्रभाव क्या हुआ और काश्मीरियो को यह क्या सदेश देता है? यह भी सोचने की बात है कि नेशनल कान्फ्रेंस (फा०) की मंशा क्या है? फारूख अब्दुल्ला भारत के अन्य भागो मे जो भाषण या घोषणाए करते हैं क्या वे इस पोस्टर के अनुरूप है?

दूसरे पोस्टर मे काश्मीर का नक्शा और भयभीत चेहरे वाला काश्मीरी लडका दिखाया गया है। लडका काश्मीर की सीमारेखा के अन्दर है। लडका चित पडा है और उसकी छाती मे एक मजबूत निर्दयी हाथ भाला घुमेड रहा है। यह हाथ काश्मीर के बाहर यानी भारत की ओर से उठा है। इस पोस्टर का दुर्भावनापूर्ण अर्थ स्पष्ट है कि निर्दयी और खून के प्यासे भारतीय भोले-भाले काश्मीरियो का कत्ल कर रहे हैं। खून मे सना हाथ, कठोर मुट्ठी और लडके की छाती के आस-पास दिखाये गये रक्त का कश्मीरियो के लिए और अर्थ है।

तीसरे पोस्टर मे काश्मीर की ओर संगीनें और बदूकें उठी हुई हैं। यह सगीनें किसकी है? निश्चय ही काश्मीरी लोग इन्हे भारतीयो की ही मानेगे। इस पोस्टर पर लिखा है—"*जरा क्षण-भर के लिए सोचिये, सोचिये।*" इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि वे दुश्मन से घिरे हुए हैं।

चौथे पोस्टर के साथ 'आपरेशन न्यूस्टार' नामक एक पैम्फलेट को पढने की जरूरत है। इस पोस्टर मे एक लडकी है जिसे 'कौम'—यानी 'काश्मीरी कौम' की

बनाया गया है। और कहा गया है कि उसके खून का बदला नेशनल कान्फ्रेंस को वोट देकर लें। पैम्पलेट में कहा गया है कि यह भोली लड़की भारतीय सुरक्षा सेनाओं की गोलियों का शिकार हुई है। इसका सीधा-सा अर्थ यही है, यह विदेशी फौजें भोली लड़कियों की हत्या कर रही हैं। इस भयंकर रूप से हानिकारक प्रचार का वास्तविक तथ्य यह है कि लड़की शिया मुसलमानों द्वारा निकाले जुलूस पर काश्मीर पुलिस द्वारा चलाई गई गोली से मरी थी।

काश्मीर में जिस लोकतंत्र का निर्माण शेख अब्दुल्ला, फारूख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस ने किया वह स्वार्थसिद्धि के लिए था। इसे उन कार्यों से पोषण मिलता रहा जिससे सत्ता चाहने वालों को केवल अस्थायी लाभ हुआ। इससे एक ओर तो उन्होंने भारत के प्रति घृणा फैलाई और दूसरी ओर वे राज्य सरकार की भ्रष्ट और लचर कारगुजारियों पर पर्दा डालते रहे।

यदि आज का काश्मीरी युवक भारत से घृणा करने लगा है तो क्या यह गलती उस युवक की है या उनकी जिन्होंने इस किस्म का प्रचार किया या उसे इजाजत दी? कष्ट उस समय और भी बढ़ जाता है जब हम यह याद करते हैं कि यह सब उस पार्टी ने किया जिसके महान् नेता शेख अब्दुल्ला के लिए अक्तूबर, 1977 में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने 'शेरे काश्मीर' के साथ 'शेरे भारत' कहा था।

काश्मीर लोकतन्त्र का घृणित पहलू यह है कि यह केवल एक गुट से संबंधित था और किसी अन्य को बरदाश्त नहीं करता था। जम्मू के एक उर्दू कवि मुहम्मद अमीन चुगताई ने यह बात बहुत पहले 40 के दशक में ही भांप ली थी। शेख अब्दुल्ला के 'नये काश्मीर' के विचारों को पद्यबद्ध किया है। उसका भाव यह है—

शेख अब्दुल्ला की इच्छा है कि नये काश्मीर का निर्माण हो और उसके बाद यह उसकी घरेलू जागीर बन जाय। यदि कोई उसके विरोध में कुछ कहता है तो बख्शी की छड़ी तलवार की शक्ल में बदल जाती है और विरोधी से बदला लेती है।

चारों ओर फैली इस कुटिलता का परिणाम यह हुआ कि वह मजबूत अन्दरूनी सत्ता के ढांचे में भी समा गई। पुराने साथियों और मिलकर काम करने वालों को धोखा देने की प्रवृत्ति पनपती गई। बख्शी ने शेख अब्दुल्ला को धोखा दिया और शेख अब्दुल्ला ने अपने से सीनियर और पुराने पार्टी कार्यकर्ता मिर्जा अफजल बेग से कुछ कम नहीं किया। मौलवी फारूख जिसे बख्शी गुलाम मुहम्मद ने मीरवायज बनाने में बहुत सहायता की थी, को 'मूए मुकद्दस' आन्दोलन में जनता की नजरों से गिराने में कोई कसर न छोड़ी। आपसी संदेह की भावना इस हद तक पहुंची कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला मंत्रिमण्डल के सभी मंत्रियों को राजभवन में शपथ दिलवाने के फौरन बाद 14 सितम्बर, 1982 को शेख अब्दुल्ला की मजार पर ले जाकर मजार की मिट्टी सबके हाथों में देकर नये मुख्यमंत्री के प्रति वफादार रहने की शपथ दिलवाई गई। परन्तु इस तरह के हथकण्डों से वास्तविकता को नहीं रोका जा सकता। फारूख अब्दुल्ला को मुख्यमंत्री पद से हटाने वाली उसकी सगी बहन खालिदा शाह थी। इस मौके पर बेगम शेख अब्दुल्ला ने अपने बेटे का पक्ष लिया और बेटी के लिए नमाज-ए-जनाजा यानी मरने पर प्रार्थना अता की। बेगम ने यह भी ऐलान कर दिया कि मेरी ओर से बेटी मर चुकी। जनता

ने इस नजारे का मजा लिया। यह देखने की बात है कि कितनी सरलता से दोस्ती, वफादारी और एक-दूसरे के प्रति रवैया बदल जाता था वह आश्चर्य-जनक था। इससे समाज के चरित्र के सही प्रवाह को हानि पहुंचती है। इससे राज्य में बार-बार हिंसा और अस्थिरता का दौर चला। इस संबंध में मैं एक उदाहरण देता हूं—इस परिदृश्य को 'डबल फारूख' का नाम दिया गया है।

1988 की पहली छमाही में दोनों फारूख—डॉ० फारूख अब्दुल्ला और मौलवी फारूख राजनीतिक रूप मे साथी थे—परन्तु दोनों एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते रहे। इससे काश्मीर की राजनीति में षड्यन्त्रों और वहा के राजनीतिज्ञो मे उलटी-सीधी बातें बोलने की प्रवृत्ति बढ़ी। इस मामले में एक स्थानीय समीक्षक ने मजाकिया लहजे मे तथ्यपूर्ण बात कही थी—"ऐसी सभावना है कि काश्मीर का भावी इतिहास दो फारूखो के इर्द-गिर्द ही घूमेगा—जिसमे एक फारूख जामा मस्जिद से गरम-नरम और दूसरा हजरतबल दरगाह मे नरम-गरम बातें बोलता मिलेगा। दोनों फारूखो मे छल-कपट और दोमुही बातों के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं।"

9 जून, 1988 को श्रीनगर शहर मे दगे फूट पडे। 15 जून तक ये दगे चलते रहे। इनमें पाच आदमी मारे गये और 100 के लगभग जख्मी हुए। इन दंगों का दिखाई देने वाला कारण राज्य सरकार द्वारा बिजली की दरें बढ़ाने का विरोध था। परन्तु वास्तविक कारण दोनो 'फारूखो' के सबधो में भारी तनातनी था—फारूख का 'मौलवी स्वरूप' अपने लिए राज्य की राजनीति में प्रमुख स्थान बनाना चाहता था।

बिजली की दरो मे बढोतरी 93 प्रतिशत उपभोक्ताओ पर लागू ही नही होती थी। इसका अधिक प्रभाव जम्मू क्षेत्र के उद्योगो पर पडता था। इसके बावजूद आन्दोलन काश्मीर घाटी—विशेष रूप से श्रीनगर मे और वह भी श्रीनगर के मध्य भाग मे जहा 'मौलवी फारूख' के काफी अनुयायी थे, आयोजित किया गया। और इस अशान्ति की स्वय उसी ने शुरुआत की थी। जामिया मस्जिद को वह राजनीतिक मच के रूप मे प्रयोग करता था—वहा से उसने मुख्यमंत्री की कडी आलोचना की। उदाहरण के लिए 17 जून को उसने डॉ० फारूख अब्दुल्ला को 'अविश्वसनीय' बताया और उस पर दोष मढा कि वह 'जनता विरोधी' काम करता है। साथ ही अपनी छवि बनाने के यत्न में 'मीरवाइज खानदान' के बलिदानों का जिक्र करते हुए 1964 के मूए-मुकद्दस आन्दोलन मे अवामी एक्शन कमेटी द्वारा अदा किये रोल का जिक्र कर दिया। एक अन्य मौके पर उसने डॉ० फारूख अब्दुल्ला को 'अपरिपक्व और अस्थिर' तथा 'सत्ता मे न होने पर मित्र' और 'सत्ता के वक्त शत्रु' बन जाता है—अर्थात् मतलब होने पर मित्र और मतलब निकल जाने पर किसी की ओर ध्यान भी नही देता। उसने और भी कटु भाषा का प्रयोग किया। 18 जून को उसने मौलवी फारूख को 'मुर्गी' बताया और कहा कि आज के मौलवियो का कोई चरित्र नही रह गया। वे दिन के उजाले में धर्म की बातें करते हैं और रात को ब्लू फिल्मे देखते हैं।

उन दिनों बेगम शेख अब्दुल्ला को 'मादरे-मेहरबान' कहा जाता था, उन्होंने मौलवी फारूख और डॉ० फारूख अब्दुल्ला को अपने दो बेटे और दो आखें बताया था। 1988 के मध्य में फारूख अब्दुल्ला के इन दोनो स्वरूपो के

संबंध में कही गई यह बात कितनी व्यंग्यात्मक प्रतीत होती है और काश्मीर राजनीति की गिरावट के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रकट कर देती है। गरीब जनता पिसती रही। जून, 1988 के आन्दोलन में इन दो नेताओं—डॉ० फारूख अब्दुल्ला और मौलवी फारूख की होड़ में—जिन्हें राजनीतिक साथी समझा जाता था, 5 जानें गईं और राज्य में कई दिन अशान्ति रही।

इतने पर भी दुख इस बात का है कि ये लोग अपने निजी और राजनीतिक स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए घृणित हथकण्डे अपनाने से हिचकिचाये नहीं। इसका एक उदाहरण यह है कि दिसम्बर, 1984 के लोकसभा चुनावों के लिए नेशनल कान्फ्रेंस के खालिदा धड़े ने तीन सीटों के चुनाव में जीत के लिए एक नापाक योजना बनाई। समय रहते मुझे इसकी सूचना मिल गई और हस्तक्षेप से रियासत हिंसा और खूनखराबे से बच गई।

नेता लोग निर्लज्जतापूर्वक परस्परविरोधी दृष्टिकोण अपनाते रहे। इन्होंने ऐसा छल-कपटपूर्ण वातावरण बनाया जिससे स्वस्थ राजनीति और प्रशासन को आघात लगा। शेख अब्दुल्ला काफी लम्बे समय तक कांग्रेसियों को 'नाली का गन्दा कीड़ा' कहकर फतवे देता रहा। वह उन्हें काश्मीर की भूमि में दफनाने के भी अयोग्य समझता था। इन सब घृणित बातों के अलावा फरवरी, 1975 में कांग्रेस विधान सभा पार्टी का नेता बनने और इस पार्टी के सहयोग से मुख्यमन्त्री बनने में कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं हुई। मई, 1983 से फरवरी, 1986 तक कांग्रेस (ई) फारूख अब्दुल्ला को सुरक्षा के लिए खतरा बताती रही। राजीव गांधी स्वयं कहते रहे कि फारूख अब्दुल्ला के पाकिस्तान-समर्थक और तोड़फोड़ करने वाले तत्त्वों से सम्बन्ध हैं—परन्तु जनता को कोई सफाई दिए बिना उनके रुख में परिवर्तन हुआ और कांग्रेस (ई) ने फारूख अब्दुल्ला से समझौता करके मार्च, 1987 में मिलकर विधान सभा के चुनाव लड़े और उसके साथ साझा सरकार बनाई, जिसकी कोई तुक नहीं थी और जहां तक डॉ० फारूख अब्दुल्ला का सम्बन्ध था, उसके बदलते तेवर और बयानों पर भरोसा करना कठिन था।

निकृष्ट देन

इस समय राज्य में हिंसा और आतंकवाद का जो माहौल है उसका मूल कारण भूतकाल की निकृष्ट विरासत में भी निहित है। यह हैं जनमत संग्रह मोर्चा और अलफतह।

जनमत संग्रह मोर्चा—इस मोर्चे की स्थापना 9 अगस्त, 1955 को मिर्जा अफजल बेग ने की थी। इससे पूर्व शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के फौरन बाद उसके लक्ष्यों की पूर्ति के समर्थन के लिए एक 'युद्ध समिति' बनाई गई थी। इसी युद्ध समिति या वार कौंसिल को अफजल बेग ने जनमत संग्रह मोर्चे में उस समय बदला जब उसे नवम्बर, 1954 में स्वास्थ्य खराब होने के आधार पर रिहा किया गया था।

इस मोर्चे की स्थापना की प्रेरणा शेख अब्दुल्ला की ही थी। वह इसका सदस्य और मार्गदर्शक रहा। परन्तु तकनीकी कारणों से वह इस मोर्चे में बाकायदा तौर पर शामिल नहीं हुआ, क्योंकि वह इस तरह अन्य संभावनाओं के द्वार

खुले रखना चाहता था।

इस मोर्चे का मुख्य ध्येय संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में जनमत संग्रह की मांग पर जोर देना था जिससे राज्य के भविष्य का निर्णय हो सके। मोर्चे द्वारा आयोजित सभी सभाओं में यह मांग दोहराई जाती रही। यह मोर्चा भारतीय सेनाओं को राज्य पर कब्जा करने वाली बताता रहा। 1965 में भारत-पाक युद्ध के समय इस मोर्चे ने पाकिस्तानी घुसपैठियों के काश्मीर में घुस आने को उचित बताया था। इस मोर्चे के पाकिस्तान से गुप्त सम्बन्ध थे, जहां से उसे भारी आर्थिक और प्रचारात्मक सहायता प्राप्त होती थी। 1976 में पाकिस्तान से प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया था कि मोर्चे को 1954 और 1974 के बीच के समय में साढ़े सात करोड़ रुपये की सहायता दी गई।

मोर्चे के उत्कर्ष के दिनों शेख अब्दुल्ला को पाकिस्तान ने हीरो बना दिया था जबकि उससे पहले उसे वही लोग भारतीय गुर्गा कहा करते थे। उसे पाकिस्तानी पासपोर्ट तक आफर किया गया।

अप्रैल, 1964 में काश्मीर षड्यन्त्र केस वापस लिये जाने पर जनमत संग्रह मोर्चे की गतिविधियां बढ़ गईं। कुछ समय के बाद भारत के विरुद्ध विषैला प्रचार शुरू कर दिया गया। काश्मीरियों का आह्वान किया गया कि वे अपने कंधों से भारतीय जूए को उतार फेंकें। शेख अब्दुल्ला ने भारत-विरोधी प्रचार विदेशी समाचारपत्रों में ही नहीं, जब वह अफजल बेग के साथ 1965 के आरम्भ में हज के लिए गया तो विदेशों में भी किया। वह भारत सरकार के रवैये की आलोचना करते हुए अपनी जनमत संग्रह की मांग को उचित ठहराता रहा। उसने कैरो (मिस्र) की एक प्रेस-कान्फ्रेंस में यह सुझाव देकर कि राष्ट्रपति नासर काश्मीर के दोनों भागों को मिलाने का यत्न करें, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्थिति को हास्यास्पद बना दिया। उसने अल्जीयर्स की अफ्रोएशियन कान्फ्रेंस (1965) में यह मांग की कि यहां काश्मीर की समस्या पर विचार करें। शेख अब्दुल्ला काश्मीर सम्बन्धी अपने विचारों के समर्थन के लिए चाऊ-एन-लाई से भी मिला। चाऊ ने उसे काश्मीर आने का निमन्त्रण दिया था।

भारत सरकार ने शेख अब्दुल्ला और मिर्जा अफजल बेग की भारत-विरोधी गतिविधियों के कारण 8 मई, 1965 को उनके हज से लौटने पर गिरफ्तार कर लिया।

ताशकंत घोषणा (1966) के कारण काश्मीर समस्या का महत्त्व कम हो गया और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने इसमें दिलचस्पी लेना ही छोड़ दिया।

जनवरी, 1968 को शेख अब्दुल्ला रिहा कर दिया गया। उसके बाद जनमत संग्रह मोर्चे का प्रचार अधिक प्रभावशाली हो गया। वक्फ फण्ड पर शेख अब्दुल्ला का पूरा नियन्त्रण था, इस कारण और धार्मिक मंच का भारत-विरोधी प्रचार के लिए खुलकर इस्तेमाल किया गया जिसके कारण उन दिनों मोर्चे के पांच लाख सदस्य बने।

जनमत संग्रह मोर्चे ने विधान सभा के पहले दो चुनावों में भाग नहीं लिया क्योंकि काश्मीर का संविधान मोर्चे को मान्यता नहीं देता। परन्तु मोर्चे ने स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में भाग लिया और भारी संख्या में जीतें।

बंगलादेश के युद्ध के बाद मोर्चे को मनोवैज्ञानिक धक्का लगा। सदस्यों में

भारी निराशा फैली। उस समय शेख अब्दुल्ला ने यह बयान देने आरम्भ करे दिये कि वह केन्द्र सरकार से समझौते की बात कर रहा है। यह वार्ता मिर्जा अफजल बेग ने की और काश्मीर समझौते पर हस्ताक्षर हुए —जनमत संग्रह मोर्चा भंग कर दिया गया—परन्तु वास्तव में उसने नेशनल कांफ्रेंस का रूप ले लिया।

यह ठीक है कि मोर्चा भंग हो गया परन्तु उसकी कटु विरासत बची रही। सत्ता के नये ढांचे में मोर्चे के सभी सदस्यों को खपाया नहीं जा सका जबकि मुट्ठी-भर लोगों को उनकी काबलियत से अधिक लाभ हुआ। कुछ सदस्य, जो ध्येय के प्रति शेख अब्दुल्ला के विरोधी थे, चाहते थे कि जनमत संग्रह के लिए संघर्ष जारी रहना चाहिए। यह असंतुष्ट तत्त्व उन संगठनों से आ मिले जो विध्वंसात्मक गतिविधियों में लग रहे थे। परन्तु अधिक हानिप्रद बात यह थी कि बंगलादेश के युद्ध और समय के प्रभाव के कारण जनमत मोर्चा कमजोर पड़ गया था, वस्तुत: शेख अब्दुल्ला के साथ काश्मीर समझौते (फरवरी, 1975) के कारण पुन: जीवित हो उठा। फिर से दो स्टूलों पर खड़े होने वाला रवैया उत्पन्न हुआ जिसका परिणाम नीचे गिरना होता है।

अलफतह—अलफतह तथा अन्य आतंकवादी संगठनों की देन कम गम्भीर नहीं। गुप्तचरी, बम विस्फोट और हवाई जहाजों के अपहरण आदि की घटनाओं ने काश्मीरी युवकों की मानसिकता को प्रभावित किया है। जनवरी, 1965 से जनवरी, 1971 तक के पांच वर्षों में 80 के लगभग गुप्त संगठन काम कर रहे थे। इनमें अलफतह, अलबारो और अल-काश्मीर संगठन भी थे। इस दौरान पुलिस ने 281 (·303) राइफलें, 309 बन्दूकें, 8 स्टेनगनें, 4 हलकी मशीनगनें, 44 रिवाल्वर, 431 हथगोले, 66 (2") तोपगोले, 5 स्वचालित राइफलें, 65 बेनट बंदूकें, 117 डिटोनेटर, 30 बम, दो राकेट लांचर, 3 वायरलेस सैट और 1600 पौंड विस्फोटक सामग्री बरामद की। इस सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1965 के भारत-पाक युद्ध और ताशकंत घोषणा के बाद भी कितनी और किस तरह की तोड़फोड़ की कार्रवाई जारी रही।

ताशकंत घोषणा के बाद अलफतह नामक संगठन प्रमुख रहा। इसने 1966 में अपनी हलचलें शुरू कीं। धीरे-धीरे इनमें बढ़ोतरी हुई। 1969 तक इस संगठन का सुनियोजित राजनीतिक, आर्थिक और तोड़फोड़ वाला सैनिक पक्ष भी काम करने लगा था, जब 1971 में बैंक डकैती में गिरफ्तारियों के समय तक इस संगठन की गतिविधियां चरम सीमा पर थीं। दल के सदस्यों का पता लग गया था और इसे पूरी तरह नष्ट कर दिया गया था।

अलफतह को अपने नाम की प्रेरणा अरब गुरिल्ला संगठन से मिली जो फिलिस्तीन की मुक्ति चाहता है। इसकी प्रेरणा वे कुरान की उस आयत से लेते हैं जिसका अर्थ है—"खुदा की सहायता से अवश्य सफलता मिलती है।" इस संगठन ने स्वतंत्रता के लिए हंगेरियन संघर्ष, क्यूबा क्रांति और चे-गुवारा आदि विभिन्न दृष्टिकोणों वाले तत्त्वों और गतिविधियों से प्रेरणा ली।

इस संगठन का मुखिया गुलाम रसूल जहांगीर था। इसे कुछ युवकों का सहयोग मिला जिन्हें उसने सफलतापूर्वक इस काम में शामिल होने की प्रेरणा दी। इनमें एक प्रमुख युवक थे सैयद सरवर—जिसने स्टूडेण्ट्स रैवेल्यूशनरी कौंसिल बना रखी थी—फजलुलहक कुरैशी और नजीर अहमद वानी। 1971

में पुलिस द्वारा इसे नष्ट कर दिये जाने के समय तक 200 सदस्य थे, इनमें 40 तो बहुत ही सक्रिय थे।

इस संगठन के प्रमुख ध्येय थे—गुप्तचरी, बम विस्फोट, डाके डालना और अन्य तोड़फोड़ की कार्यवाहियां करना। इसकी रणनीति में धर्मस्थानों को नष्ट करना और साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काना था। इस संस्था ने 'लाल काश्मीर' शीर्षक से इश्तहार निकाले और आजाद काश्मीर का नारा बुलन्द किया।

अलफतह के प्रमुख नेताओं को पाकिस्तानी खुफिया विभाग के मेजर हबीबुल्ला, मेजर कैसर कुरैशी, मेजर तुफैल, मेजर असगर और जफर इकबाल राठर आदि अफसरों को प्रशिक्षित और प्रेरित किया। वे कई बार सीमा को लांघकर आये-गये। उन्होंने सहायता और मार्गदर्शन के लिए पाकिस्तानी दूतावास से संपर्क बनाये रखा। इन्होंने सरकारी दफ्तरों में भी घुसपैठ की। उदाहरण के लिए काश्मीर सचिवालय का हैड असिस्टेंट मुहम्मद इसहाक मनहास इस संगठन का कर्मठ सदस्य था। इसके अलावा पाकिस्तानी अधिकारियों ने सलीम जहांगीर द्वारा भारी मात्रा में हथियार काश्मीर में चोरी से भेजे ताकि जरूरत पड़ने पर अलफतह के सदस्यों को दिये जा सकें।

अलफतह, विशेष रूप से मिर्जा अफजल बेग तीन प्रमुख आतंकवादी घटनाओं के लिए जिम्मेदार है। मोर्चे के युवक विभाग का अलफतह के विशिष्ट अग यंग-मैन्स लीग और स्टूडेण्ट फैडरेशन मिलकर काम करते थे। मिर्जा अफजल बेग का गुलाम रसूल जहांगीर से संपर्क बना रहा।

अलफतह तीन प्रमुख आतंकवादी घटनाओं के लिए जिम्मेदार है—(1)3 फरवरी, 1967 को सीमा सुरक्षा बल के सिपाही चरणदास की हत्या नवाकदल पुल पर की, (2) 1 अप्रैल, 1970 को तहसील शिक्षा विभाग के पुलवामा दफ्तर में डकैती, जिसमें 72 हजार के लगभग रुपया लूटा गया। (3) दो जनवरी, 1971 को हजरतबल बैंक में डाका, जिसमें 97 हजार रुपया लूटा।

हजरतबल बैंक डकैती केस के दौरान पुलिस को सुराग मिला जिसके कारण संगठन के सारे सदस्य पकड़े गये। इसी जांच-पड़ताल के दौरान यह भी पता चला कि सलीम जहांगीर ने चार-ए-शरीफ में भारी मात्रा में हथियार छिपा रखे हैं। जहांगीर के घर से छापे में 12 स्टेनगनें, 13 (38 बोर) रिवाल्वर और कई बोरी गोला-बारूद बरामद हुआ।

जांच-पड़ताल से यह भी पता चला कि 1971 के चुनावों के दौरान मुख्य-मंत्री, अन्य मंत्रियों और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के अपहरण और हत्या करने की योजना थी।

आज की आतंकवादी घटनाओं का आगाज इन्हीं पूर्व घटनाओं में है। हो सकता है अलफतह तथा अन्य आतंकवादी संगठनों ने अपेक्षाकृत कम वारदातें की हों। परन्तु वास्तविक ध्येय, काम करने के ढंग, सरकारी कर्मचारियों की वफादारी समाप्त करके उनमें तोड़फोड़ की भावनाएं भरना और राज्य के भीतर विध्वंसकारी कार्यों के लिए विदेश से सहायता प्राप्त करने के तरीकों में कोई अन्तर नहीं। उदाहरण के लिए, अलफतह के एक प्रमुख सदस्य फजलुलहक कुरैशी

2 बम रखने वाले एक आतंकवादी से पूछताछ के दौरान पता चला
षड्यन्त्रकारियों से सम्बन्ध थे। तब उसे पकड़ा गया। उस समय
ालय में अकाउंट्स अफसर के पद पर काम कर रहा था।

वितयों की सक्रियता

क शक्तियों—नरमी और अनुमतिबोधक का रवैया, छल-कपट की
ली डिमाक्रेसी, गलतफहमियों और निकृष्ट विरासत की ओर
लेने से—का आन्तरिक प्रभाव सक्रिय रूप से पड़ा। वे विभिन्न रूप
। छल-कपट की राजनीति केवल नेशनल कांफ्रेंस तथा अन्य गुटों
त नहीं थी। कांग्रेस भी इससे पीड़ित थी। 1983-84 में कांग्रेस
अब्दुल्ला को राष्ट्रविरोधी और सुरक्षा के लिए खतरा बताया
श्मीर में सरकार के बदलने के सम्बन्ध में लोकसभा की एक बहस
दस्यों ने डॉ० फारूख अब्दुल्ला को गद्दार, देशद्रोही तक कह डाला
मारी बाजपेयी ने कहा था, "डॉ० फारूख अब्दुल्ला के सम्बन्ध सदा से
रहे हैं जो काश्मीर को भारत से अलग करने की सोचते हैं। उसके
बरेशन फ्रण्ट से व्यक्तिगत सम्बन्ध हैं। सत्ता में आने के बाद भी
लोगों से सम्बन्ध बने रहे। और यही कारण है कि वह जमायते
जमायते तुलबा को प्रोत्साहन देता रहा जबकि ये दोनों संगठन
जंगजू भाग हैं। इन लोगों ने वे नारे लगाने आरम्भ किये जो इससे
नहीं गये।" जैन-उल-बशीर ने कहा था कि पंजाब के उग्रवादियों
श्मीर के मुख्यमंत्री में निरन्तर संपर्क रहे हैं। बलिराम भगत ने
कहा था कि तथ्यों से यह स्पष्ट है कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला राष्ट्र-
विधियों में लिप्त है। डॉ० अब्दुल्ला पाकिस्तान अधिकृत जंगजुओं के
ाये हैं और उन्होंने इस बात को भुलाने का यत्न किया है। उन्होंने
रपुर (पाक-अधिकृत क्षेत्र) में होने वाले जनमत संग्रह मोर्चे के
धिवेशन में शरीक होने का न्योता दिया। इसी यात्रा के दौरान
अब्दुल्ला का अमानुल्ला खां और मकबूल बट्ट से संपर्क हुआ।
भाषण करते हुए फारूख अब्दुल्ला ने काश्मीर के लोगों से जनमत
देने की अपील की। युद्धविराम रेखा के दोनों ओर काम कर रहे
ने इस बात पर जोर दिया कि "कोई भी शक्ति काश्मीरियों द्वारा
के निर्णय का अधिकार छीन नहीं सकती।" कमालुद्दीन अहमद ने
अब्दुल्ला की देशभक्ति और ईमानदारी पर सन्देह प्रकट किया।
—

और काश्मीर की घटनाओं से स्पष्ट है कि देश से इन भागों को
श के टुकड़े करने की भयंकर साजिश चल रही है। डॉ० फारूख
अकाली दल, जनमत संग्रह मोर्चा, जमायते इस्लामी, जमायते
जे० के० लिबरेशन फ्रण्ट जैसे संगठनों से सम्बन्ध बना हुआ है। यह

बहुत गम्भीर मामला है और सम्पूर्ण देश को इस पर विचार करना चाहिए। डॉ॰ अब्दुल्ला का मौलवी फारूख से भी सम्बन्ध रहा है जो काश्मीर के भारत में विलय के समर्थक थे। डॉ॰ फारुख अब्दुल्ला जिस ढंग से सरकार चला रहे हैं, उसके कारण विधान सभा सदस्यों ने उनका साथ छोड़ दिया है। इस पर भी हालात यह है कि यह वही फारुख अब्दुल्ला है जिसके साथ कांग्रेस (ई) ने गठजोड़ किया है और उसके समर्थन में राजीव गांधी सहित कांग्रेसी नेता मेरी आलोचना कर रहे है जबकि मैंने 1990 के जनवरी-फरवरी महीनो मे सत्ता को विध्वंसक तत्त्वों मे मुक्त करवाने का यत्न किया था। न तो कांग्रेस और न इसके नेताओं ने जानबूझकर बोले गये झूठ की प्रामाणिकता का पता लगाने का यत्न नही किया। उन्होने भारतीय जनता का अपमान किया है और उसे धोखा दिया है। वे सोचते हैं कि वह किसी भी बात को मान लेगी।

राजीव-फारुख समझौता (नवम्बर, 1986) बनावटी लोकतन्त्र और गलत धारणाओ को पाले रखने का एक और उदाहरण है। यह समझौता लिखित नही है—केवल मिलकर काम करने और नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस (ई) की साझा सरकार बनाने की जबानी घोषणा मात्र है। अनौपचारिक तौर पर यह निश्चय किया गया कि सरकार मे 60 और 40 प्रतिशत की भागीदारी रहेगी।

इस समझौते मे अनुकूल परिणाम निकल सकते थे यदि इसके पीछे सुधारात्मक उत्साह और निर्माण का दृष्टिकोण होता। परन्तु दोनों दलो ने केवल अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए यह सहयोग किया। क्रियात्मक रूप मे इस समझौते से केवल सवेदनहीन स्वार्थी गुटतन्त्र की भावना का दायरा बढ़ा है। किसी स्वस्थ परम्परा की नीव नही पडी। इसके विपरीत राज्यपाल के शासन के दौरान काम करने का जो सही ढांचा तैयार किया गया था, उसे नष्ट कर दिया गया। 23 मार्च, 1987 मे राज्य विधान सभा के चुनाव जिस ढंग से किये गये, उसमे उनके सही ढंग से होने के प्रति भारी आशकाए पैदा हुई। कुछ चुनाव क्षेत्रों में मतगणना रोक दी गई और नेशनल कान्फ्रेंस के उम्मीदवार रद्द किये गये मतों से भी कम मतों यानी बहुत ही थोडे मतो से जीते। नेशनल कान्फ्रेन्स के सदस्य क्रमश. बिजबेड़ा मे 100, वाची मे 122 और सोपिया मे 330 मतो से जीते, जबकि इन क्षेत्रों मे रद्द किये गये मतो की सख्या 1172, 1703 और 1122 थी। दुर्भाग्य से यह चुनाव मुस्लिम युनाइटिड फ्रंट के बड़े नेताओं की गिरफ्तारी के बाद हुए।

परिणाम यह हुआ कि अप्रिय सत्य फौरन सामने आ गया। अनेक व्यक्तियो और नेताओं ने इनकी भर्त्सना की। नेशनल कान्फ्रेंस के सासद अब्दुल रशीद काबुली ने कहा, "हमारी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई है। फारुख तो पहले ही दमन, घुटन और रिंगिग के प्रतीक बन चुके हैं। इसी प्रकार एक स्वतन्त्र सदस्य मीर मुस्तफा ने भी चिन्ता व्यक्त की थी, ' राज्यपाल के शासन के दौरान काश्मीर ने केन्द्र से कोई अतिरिक्त पैसा भी नहीं लिया था तो भी स्कूल चल रहे थे, सड़कें बन रही थीं, अस्पताल चल रहे थे और न्याय मिलता था। कुछ ही महीनो में राज्यपाल ने कुछ कर दिखाया था।"

जगमोहन के काल मे जो कुछ हुआ वह इसमे स्पष्ट है। जनता को कुशल प्रशासन मिला और कठमुल्लापन की जड़ें समाप्त होती नजर आने लगीं। उस

समय लोग मुस्तफा के या पाकिस्तान के शासन की मांग नहीं कर रहे थे—वे काम मांगते थे, केन्द्र में अधिक प्रतिनिधित्व की मांग करते थे और उनकी मांग थी कि पदों पर भरती की नीति सही हो। काजी निसार जैसे आदमी ने भी, जिसे राज्यपाल ने शान्ति भंग करने के अपराध में कैद किया था, दुख प्रकट किया था, "दुख है कि राज्य की भलाई के लिए जो सुधार किये गये थे उन्हें पलट दिया गया। डल झील की सफाई रुक गई। देहात में जो खेल के मैदान विकसित किये जा रहे थे, वहां कूड़ा जमने लगा। राज्यपाल ने जनता की भलाई को ध्यान में रख सरकारी डाक्टरों की निजी प्रेक्टिस पर रोक लगाई थी—वे फिर अपना धन्धा करने लगे। जगमोहन ने अराजपत्रित नौकरियों में चुनाव में धांधली, पक्षपात और रिश्वत बंद करने के लिए एक सब-आर्डिनेट सिलेक्शन बोर्ड की स्थापना की थी, उसे भी समाप्त करने के लिए कदम उठाये गये।

इस समझौते द्वारा नई खुशफहमियां पैदा की गई। डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने आडम्बरपूर्ण घोषणा की कि जमायते-इस्लामी द्वारा चलाये जा रहे स्कूल बंद कर दिये गये हैं। देश के प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भ्रामक धारणा उत्पन्न करने का यत्न यह कहकर किया कि काश्मीर को 1000 करोड़ की विशेष सहायता दी गई है। वस्तुत. यह केवल आंकड़ों के खेल के अतिरिक्त और कुछ न था। इस प्रकार के अनैतिक और जान-समझकर किये गये धोखे का असर उलटा हुआ। इनसे केवल निराशा बढ़ी।

राजीव-फारूख समझौते द्वारा दोनों नेताओं के दिखावटीपन और राज्य सरकार की निष्क्रियता से नकारात्मक शक्तियों को बल मिला और अस्वस्थ वातावरण को शीघ्र फैलने में मदद मिली। ये दोनों बातें माहौल की नियति थीं और उस नियति का कारण थीं। इस भ्रष्ट वातावरण, निकृष्ट भूमि, घुन लगे बीज और उसमें हल चलाने वाले की विकृत दृष्टि से हानि और आपदा आनी ही थी।

पांचवां अध्याय

मूल कारण : अप्रच्छन्न विचार

"जोत (खेत) को काटकर बैठ गये तुम
हाथ पर हाथ बांधे
तुमने किस प्रकार बोया था बीज
प्रचुर फसल पाने को।"

—ललद्यद

किसी राष्ट्र के जीवन को संचालित करने के लिए कुछ मौलिक तत्व होते हैं, ये तत्व या शक्तियां सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था की गुप्त धाराएं होती हैं। धर्म इन्ही धाराओं में से एक है—जो सबसे महत्वपूर्ण है।

धार्मिक जड़ें

मानवीय इतिहास में धर्म का हमेशा एक शक्तिशाली स्थान रहा है, चाहे मार्क्स जैसे विचारक ने इसे जनता के लिए अफीम का नाम दिया हो या फिर फ्रॉयड जैसे लोगो ने इसे जनता का सामूहिक स्नायु-रोग का नाम दिया हो। इस संदर्भ में मुझे कार्डिनल गोसालविक और नेपोलियन के बीच वार्तालाप का ध्यान आता है। कार्डिनल केथोलिक चर्च के पक्ष में पैरवी कर रहा था। नेपोलियन को किसी मुद्दे पर गुस्सा आ गया और वह कार्डिनल पर चिल्लाया, "महामहिम, क्या आपको इस बात की खबर नहीं कि मैं केथोलिक चर्च को तबाह कर सकता हू?" कार्डिनल मुस्कराया और बोला, "महामहिम, हम केथोलिक पादरियों ने पिछले 1800 वर्षों से केथोलिक चर्च को नष्ट करने के भरसक प्रयत्न किये हैं। हम सफल नहीं हुए। न ही आप सफल होगे।" इस वार्तालाप में धर्म की भीतरी और बाहरी विनाशक शक्तियों के बावजूद इसकी जबरदस्त जीवन-शक्ति का पता चलता है।

महत्वपूर्ण मोड़ पर असफलता

काश्मीर के ऋषियों और सूफियों की धार्मिक व्यवस्थाओं में प्रेम और एकता, शांति और दया, सहानुभूति और उदारता के सौम्य गुण पहले से ही मौजूद थे।

लेकिन इन परम्पराओं का उपयोग कभी नहीं किया गया। उनको पुनर्जीवित नहीं किया गया, वर्तमान प्रसंगों में नहीं ढाला गया, उन नई सामाजिक व राजनैतिक वास्तविकताओं के अनुरूप पुनर्जागरण नहीं किया गया जिनका स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उठना अपरिहार्य था। यहां हमारा नेतृत्व इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर असफल हो गया।

इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षण में, काश्मीर सतह के नीचे की अन्दरूनी स्थिति को नहीं देख पाया, धार्मिक और सांस्कृतिक शक्तियों में निहित महत्त्व को नहीं देख पाया, धार्मिक और सांस्कृतिक शक्तियों में निहित महत्त्व को नहीं समझ पाया—जिसकी पुनर्रचना और पुनर्विकास से काश्मीर को तथा उसके साथ भारत के सम्बन्धों को एक नई और ठोस दिशा मिलती। यह सम्बन्ध बुद्धि और आत्मा का होता और केवल संवैधानिक विधान—अनुच्छेद 370 पर ही आधारित न होता। काश्मीरी इस्लाम की भीतरी सुन्दरता और प्रकाश से भारत से उसके सम्बन्ध और दृढ़ होते। लेकिन दुर्भाग्यवश, विपरीत ही हुआ। काश्मीर की स्वस्थ परम्पराएं न केवल क्षतिग्रस्त हुईं और नष्ट कर दी गईं वरन् अस्वस्थ परम्पराएं उठ खड़ी हुईं और उनका भरण-पोषण भी किया गया।

मैंने पहले ही यह बता दिया है कि किस तरह अवसर मिलने पर शेख अब्दुल्ला अपने राजनैतिक उद्देश्यों को पाने के लिए इस्लाम का इस्तेमाल करने पर जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र फारूख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस ने उसी मार्ग का अनुसरण किया। यह उस तरीके से स्पष्ट हो जाता है जिससे नेशनल कांफ्रेंस ने राज्य विधान सभा के लिए 1983 और लोक सभा के लिए दिसम्बर 1984 में अपना चुनाव अभियान संचालित किया। वास्तव में, नेशनल कांफ्रेंस में हमेशा कुछ इस्लाम के प्रति अभिमुख तत्त्व रहे हैं। कभी-कभी इन तत्त्वों ने उसी धार्मिक उन्माद से काम किया, जिससे कोई भी कट्टरपंथी दल काम करता है। उदाहरण के लिए, नेशनल कांफ्रेंस के एक नेता अत्ताउल्लाह सुहरावादी जो कि भूतपूर्व मंत्री और उपाध्यक्ष भी रहे हैं, उन्होंने राज्य विधान सभा में अपने भाषण में यह कहा था—

"मैं पहले मुसलमान हूं फिर भारतीय। इस्लाम को अपने प्रसार के लिए किसी का सहारा नहीं चाहिए। यह अपने आप ही फैल रहा है। विभाजन के समय देश में केवल साढ़े चार करोड़ मुसलमान थे। बहरहाल, भिवंडी, मुरादाबाद अलीगढ़ और दूसरे क्षेत्रों में साम्प्रदायिक दंगों और हजारों मुसलमानों की हत्या के बावजूद मुसलमानों की जनसंख्या 14 करोड़ हो गई है···। जहां तक सभी का इस्लाम में परिवर्तन का प्रश्न है, तो यह हर मुसलमान का कर्तव्य है कि वह धर्म परिवर्तन के प्रयास करे और जो मुसलमान इस कर्तव्य को याद नहीं रखता, वह मुसलमान कहलाने योग्य नहीं है।"

इस्लाम क्या है?

इस्लाम की कोई संक्षिप्त परिभाषा देना बहुत कठिन है। निस्संदेह इसका एक केन्द्र बिन्दु तो है जो कि एक विशाल क्षेत्र से घिरा है, जिसकी विभिन्न व्याख्याएं हैं। हर मुसलमान इस बात पर सहमत होगा कि केवल एक ही ईश्वर

है और हजरत मुहम्मद उसके दूत हैं। लेकिन इसके आगे सहमति का एक भी बिन्दु पाना कठिन है। विभिन्न समय और परिस्थितियों में इस्लाम के सिद्धांतों व विचारों की व्याख्या विभिन्न तरीकों से की गई है।

पाकिस्तान मे 1953 के दौरान अहमदिया विरोधी दंगों की जाच करते हुए जस्टिस मुनीर ने 'उलेमाओं' [illegible] की क्या परिभाषा है। अ[illegible] की—"अगर उलेमा इस [illegible] आम आदमी इसे कैसे समझ सकता है ?" इस उदाहरण से इस्लाम के अन्तर्गत कौन-से सिद्धान्त व परम्पराए आती है—इसका संक्षिप्त और निश्चित जवाब देने की दुविधा जाहिर होती है।

जैसाकि गेटे ने कहा था, "यदि इस्लाम का अर्थ ईश्वर को समर्पण करना है तो हम सभी इस्लाम मे ही जीते और मरते हैं।" इसके केन्द्र बिन्दु को लेकर नही बल्कि इसके सीमा क्षेत्रो को लेकर समस्या खडी होती है—वह सीमा क्षेत्र जो रोजमर्रा के जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और राजनैतिक मुद्दो को कही-न-कही प्रभावित करता है।

विशिष्ट रंग

काश्मीर मे इस्लाम ने अपनी अलग ही रगत जमा ली। जैसाकि सर ऑरेल स्टाइन ने लिखा, "काश्मीर मे इस्लाम ने अपना रास्ता बलपूर्वक विजय से नही बल्कि धीमे-धीमे किये गये धर्म परिवर्तन से बनाया।" कष्टकर बल प्रयोग कभी-कभार किये गये, जैसाकि सुलतान सिकन्दर के समय मे हुआ। लेकिन इसका प्रसार करने का मुख्य श्रेय सैयद अली हमदानी और सैयद मुहम्मद हमदानी जैसे धर्म-प्रचारकों को जाता है। हालाकि धर्म को शीघ्र ही धारण किया गया, लेकिन स्थानीय विश्वासो, रीति-रिवाजों मे कोई फर्क नही आया। वैसे भी, ऋषियो और सूफियों की श्रेणी के जो मूल गुण थे, जो काश्मीर मे इस्लाम का भी केन्द्र बिन्दु थे, वे सामान्य संदर्भ और लोगो के आध्यात्मिक स्वभाव से भी मेल खाते थे। इनकी व्यवस्थाए सामान्यत ग्रहणशील और सहिष्णु स्वभाव की थीं।

अभी हाल तक, वास्तव मे जमात-ए-इस्लामी और कुछ अन्य कट्टरपंथी संस्थाओ के अतिक्रमण के समय तक—काश्मीर धार्मिक प्रवृत्ति मुख्यत दो धार्मिक श्रेणियो से प्रभावित रही—सूफी और ऋषि—जो काश्मीर मे 14-15वी सदी के बीच आये। काश्मीर मे सूफी धर्म मुख्तया फारस और केन्द्रीय एशिया से आये साधु-संतो द्वारा प्रचारित किया गया, जबकि ऋषि धर्म व्यवस्था, जिस पर स्थानीय आध्यात्मिक परम्पराओ की छाप ज्यादा गहरी थी, उसका प्रचार राज्य के लोगो द्वारा ही किया गया।

सूफीवाद की देन

इस्लाम मे सूफीवाद कुछ सर्वाधिक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक आदोलनो में से

एक रहा है। उस समय के सामाजिक अन्याय के विरुद्ध 'आत्मा के एक भीतरी विद्रोह' की तरह और सिद्धांतनिर्माताओं द्वारा बाल की खाल निकालने वाले अति बौद्धिकतावाद की प्रतिक्रिया के रूप में इसका जन्म हुआ।

कुरान में कुछ ऐसी घोषणाएं हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि हजरत मुहम्मद संन्यास और पलायनवाद के पक्षधर नहीं थे। बहरहाल, सूफी संतों के अनुसार, सूफीवाद इस्लाम के सारतत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता है। ये सूफी संत, ईश्वर के एक होते, कयामत के दिन, सजा और इनाम की व्यवस्था वगैरह पर विश्वास करते हैं, लेकिन पवित्रता और भगवान की ओर व्यक्तिगत रूप से लौ लगाने पर ज्यादा ज़ोर देते हैं। वे जीवन में भक्ति और पवित्रता के पक्षधर हैं। सरलता, संयम और जीवन के सुधार की ओर लगातार प्रयास उनके मार्ग-दर्शक गुण हैं। उनका विश्वास है कि 'जिहाद' का अर्थ है इन्सान की भीतरी बुराइयों के खिलाफ लड़ाई करना और इसमें भौतिक इच्छाओं और दुनियावी खुशियों को नियन्त्रित करके ही सच्ची विजय हासिल की जा सकती है। ईश्वर को ईश्वर होने की वजह से प्रेम करना चाहिए न कि किसी स्वार्थ की इच्छा से। जैसाकि एक सूफी संत रबा ने कहा है, "मैंने उसकी (खुदा की) सेवा उसके प्रति प्रेम और इच्छा की वजह से की है। उसके प्रति मेरे प्रेम ने मुझे इतना अनुप्राणित कर दिया है कि और किसी चीज को प्यार करने की जगह ही नहीं है।"

काश्मीरी सूफी व्यवस्था

काश्मीर में सूफी आंदोलन की प्रमुख ज्योति थे सैयद अली हमदानी, जिन्हें शाहे हमदानी यानी हमदान के स्वामी के नाम से भी जाना जाता है। उनका जन्म हमदान में 1314 को हुआ। वे एक महान् विद्वान् और धर्मप्रचारक थे। उन्होंने 170 किताबें तथा निबन्ध लिखे। वे विद्वान् विचारक और सूफी संत भी थे। वे काश्मीर में सन् 1372 को अपने 700 शिष्यों के साथ आये। दुबारा वे 1379 में आये और ढाई वर्षों के लिए यहां ठहरे। तीसरी बार वे 1383 में यहां आये। उन्होंने सारी घाटी का भ्रमण किया, इस्लामी अध्यात्म का संदेश फैलाया और लोगों को अपने विश्वास के प्रति परिवर्तित किया। उन्होंने अनेक जगहों, विशेषकर हिन्दू धर्म और संस्कृति के केन्द्र अवन्तीपुरा और मटन जैसी जगहों पर अपने शिष्य बनाये। काश्मीर का इस्लामीकरण करने में उन्होंने मुख्य भूमिका निभाई। निस्संदेह इस्लामीकरण की प्रक्रिया सैयद अली हमदानी के आने से पहले ही शुरू हो गई थी, लेकिन उन्होंने और उनके अनुयायियों ने यह प्रक्रिया और भी तेज़ कर दी। उन्होंने खानकाहों और 'मदरसों' की स्थापना की, जहां से इस्लाम का संदेश पूरी घाटी में प्रचारित किया गया। इसीलिए उन्हें काश्मीर में 'बनी-ए-इस्लाम' कहा जाता है।

सैयद अली हमदानी के सूफी विश्वासों को दो स्तरों पर देखा जा सकता है। एक स्तर पर, उनका यह विचार है कि रचयिता और प्राणी दो अलग वास्तविकताएं हैं: रचयिता का कोई रूप नहीं है—उसकी जैसी कोई चीज नहीं है। "जो कुछ भी व्यक्ति उसके बारे में समझता है, वह उससे परे है।" दूसरे स्तर पर, उनका विश्वास है कि प्राणी पवित्र जीवन जीते हुए और पवित्र ध्यान-मनन से उस रचयिता के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

हमदानी चाहते हैं कि वह इंसान स्वयं में सम्पूर्ण हो। वे इस बात पर जोर देते हैं कि जो लोग सही मार्ग चुनते हैं, वे ईश्वर के उद्देश्य को पूरा करते हैं, क्योंकि ईश्वर ने स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए ही इंसान की रचना की थी।

सैयद अली हमदानी के बाद उनके पुत्र सैयद मुहम्मद हमदानी आये। वे अपने रुख में उग्र थे। 1394 में वे 300 सैयदों के साथ काश्मीर आये। वे 22 वर्षों तक घाटी में रहे। उन्हीं के प्रभाव में सुलतान ने धर्मप्रचार का ऐसा उत्साह दिखलाया।

काश्मीरी ऋषि व्यवस्था

सैयद अली हमदानी द्वारा प्रचारित सूफी धर्म की तुलना में ऋषि धर्म ज्यादा उदार, गैर मिशनरी और स्थानीय परम्पराओं में कहीं गहरे पैठा हुआ था। इस संघ के दो प्रमुख संत थे लालदे और शेख नुरुद्दीन।

सन् 1317 और 1326 के बीच लालदे का जन्म पाम्पुर के सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। उनका पालन-पोषण धर्मपरायणता के वातावरण में हुआ। बाल्यावस्था में ही उनका विवाह कर दिया गया। उनके पति और सास-ससुर ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया। उन्होंने अपना घर छोड दिया और संन्यासिनी हो गई। वे लगभग नग्नावस्था में जगलों में घूमती थीं। उनके कथन और पद्य, नुरुद्दीन के कथन और पद्य—ऋषि धर्म व्यवस्था का सारतत्व है। लालदे का महान् प्रभाव उनके अपने ही शब्दों से स्पष्ट है—

"जो भी मैंने अपनी जवान से कहा
'मंत्र' बन गया।"

लालदे की कविताओं में जन्मजात विलक्षणता के लक्षण हैं। उनकी कल्पना, तुलनाएं और अभिव्यक्ति इतनी स्वत. स्फूर्त तथा काश्मीरी वातावरण में इतनी रची-बसी हैं कि उनकी अभिव्यक्ति और जीवन की भीतरी एवं बाह्य वास्तविकताओं को समझने की क्षमता पर अचम्भा होता है। शेख नुरुद्दीन ने ठीक ही कहा था कि "लालदे एक 'अवतार' और 'योगिनी' हैं।" उनके बारे में एक अच्छा वर्णन यह भी है, "ईश्वर के प्रति तीव्र इच्छा में जो भी उनके पास था, उसे भस्मीभूत कर दिया।"

'मैं दुनिया में तपस्विनी होकर आई
और बोध ने स्वयं की ओर आते मार्ग को प्रकाशित कर दिया।"

शेख नुरुद्दीन लालदे से लगभग 30 साल छोटे थे। उनका जन्म लगभग 1378 ई० के आसपास एक चौकीदार के परिवार में हुआ। पिता की मृत्यु के बाद उनके भाइयों ने चोरी करने के काम में उन्हें भी शामिल कर लिया। लेकिन वे पवित्र आत्मा थे और ध्यान-मनन में लीन रहते थे। वे महान् औवैसी रहस्यवादी बने। वास्तव में काश्मीरी ऋषि व्यवस्था की नीव उन्होंने ही रखी। उन्होंने [illegible] गतिविधियों के केन्द्र [illegible] 1430 में सुलतान [illegible] फगान राजदूत अता मुहम्मद खान ने उनके सम्मान में उन्नीसवीं शती के आरम्भ में सिक्के निकलवाए।

प्रभाव

काश्मीर के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर ऋषियों का सशक्त प्रभाव पड़ा। उनके बारे में कहा जाता है कि "उन्होंने घाटी को स्वर्ग में बदल दिया।" सत्रहवीं शताब्दी का एक कवि लिखता है, "धर्म का दीपक ऋषियों द्वारा प्रज्वलित किया गया है। वे ही आस्था के मार्ग के कर्णधार हैं। इन विनम्र आत्माओं का हृदय को ऊष्मा देने का गुण ऋषियों के हृदय की भीतरी पवित्रता से उत्पन्न होता है। यह काश्मीर की घाटी जिसे तुम स्वर्ग कहते हो, इसकी बहुत-सी खूबसूरती ऋषियों द्वारा प्रतिपादित परम्पराओं का परिणाम है।"

अबुल फजल भी ऋषियों की भूमिका से प्रभावित हो गये थे। उनके अनुमान के अनुसार उस समय लगभग 2000 ऋषि थे। उन्होंने लिखा—"काश्मीर में सर्वाधिक आदरणीय वर्ग ऋषियों का है। हालांकि उन्होने पूजा के परम्परागत रीति-रिवाजों को नहीं त्यागा है, फिर भी वे सच्चे भक्त हैं। वे दुनिया की वस्तुओं की इच्छा नहीं रखते। लोगों के फायदे के लिए वे फल वाले वृक्ष लगाते हैं। वे मांस नहीं खाते और विवाह नहीं करते।" बादशाह जहांगीर ने भी ऐसा ही कहा—"हालांकि ऋषियों ने शिक्षा नहीं पाई है, लेकिन वे एक खुला और आडम्बरहीन जीवन जीते हैं। वे किसी की निंदा नहीं करते और कोई मांग नही करते।"

आस्थाएं

ऋषि बनावटीपन और आडम्बर की भर्त्सना करते थे। शेख नुरुद्दीन के प्रसिद्ध पद्यांशों में से एक इस प्रकार है—

"ओ मुल्ला, तुम्हारी माला
एक सांप की तरह है
तुम तब शुरू करते हो जाप
जब तुम्हारे शिष्य नजदीक आते हैं
एक के बाद एक तुम छः बार
भोजन करते हो
अगर तुम मुल्ला हो तो चोर कौन है ?"

ऋषियों ने दुनियावी इच्छाओं को जीतने पर भी जोर दिया। शेख नुरुद्दीन के जीवन से सम्बन्धित एक कहानी के अनुसार, उन्होंने एक दुकान पर मछली पकते हुए देखी। उनका मन हुआ कि वे मछली खाएं। वे उस जगह के पास गये। लेकिन एक क्षण के विचार के बाद, मछली खाने की बजाय उन्होंने अंगीठी से एक जलती हुई लकड़ी उठाई और अपने मुंह में रख ली। उनकी जीभ जल गई। वे चिल्लाए, "ओ मेरी वासना, तुम्हारे लिए मछली यह जलती हुई लकड़ी है।" शेख का विश्वास था कि इच्छाएं, लालच ही इस दुनिया में सभी समस्याओं की जड़ हैं।

ऋषियों ने जीवन के गहन सत्यों को समझा और उन्हें साधारण मुहावरों में प्रकट किया। उनका विश्वास था कि ईश्वर सर्वव्यापी है और अपने व्यक्तिगत अहम् को उस सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान (ईश्वर) में लीन कर देने से ही उसकी

अनुभूति हो सकती है। नुरुद्दीन ने एक बार कहा था, "जब मैं अहम् को पहचानने मे समर्थ हुआ, मैं ईश्वर को भी पहचान सका, नुकसान और फायदा मेरे लिए एक समान हो गये और जीवन और मृत्यु का अन्तर खत्म हो गया।"

यही विश्वास लालदे द्वारा भी व्यक्त किया गया है—

"तीर्थयात्री सन्यासी एक मजार से दूसरी मजार तक
उसे ढूढ़ता है जो सन्यासी के भीतर रहता है।"

वर्तमान सकट के पहले, काश्मीरियो का जाना-पहचाना अहिंसात्मक स्वभाव इन्ही ऋषियो के प्रवचनों और आचरण से प्रेरित हुआ। उन्हे हत्या और मांस खाने मे घृणा थी। जैन लोगों की तरह ये भी इस बात का ध्यान रखते थे कि कही घास और कीटो को भी क्षति न पहुंचे। उदाहरण के लिए नुरुद्दीन ने घास पर चलना ही छोड़ दिया था। उन्होने ताजी सब्जी खाना भी छोड़ दिया था।

ऋषियों द्वारा प्रचारित काश्मीर का इस्लाम कबीर के धर्म जैसा ही था।

काश्मीरी इस्लाम के गुण—ध्यान-मनन, तप, आत्मत्याग, संयम, सादापन, सह-अस्तित्व इत्यादि—हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म के भी सर्वाधिक मान्य गुण हैं। यह हिन्दू बहुवर्गीय समाज से ज्यादा मेल खाता है। यह काश्मीरी मानसिकता में पैठे, इन्ही मूल्यों का परिणाम था कि 1947 मे जब शेष देश साम्प्रदायिकता और कट्टरपथ के उन्माद के तूफान से हिल गया था, तब काश्मीर में कोई खूनखराबा, असहिष्णुता या साम्प्रदायिक पागलपन नही हुआ।

यह वाकई दुख का विषय है कि काश्मीर की आध्यात्मिक जमीन पर प्रचलित ऐसे विचारों और विश्वासो को ग्रहण नही किया गया, उनकी महत्ता को नही समझा गया। राज्य और केन्द्रीय स्तर पर हर नेता सत्ता और शक्ति के अपने खेल मे इतना लीन हो गया कि इन धार्मिक और सास्कृतिक मुद्दों पर ध्यान ही नही दिया गया जो राजनीति को कर्तव्यनिष्ठ, सस्थानो को हितकर और केन्द्र तथा काश्मीर की सामाजिक व्यवस्था को सुसगठित बनाये रख सकती थीं। अपने तुच्छ उद्देश्यो की पूर्ति के लिए शोषक इस भूमि के स्वरूप को बिगाड़ने, और तगदिली तथा स्वार्थ के बीज बोने मे भी नही हिचकिचाये जिसके कारण फूट और विधान के विषैले वृक्ष उग आये।

जमात-ए-इस्लामी

समय के साथ-साथ कुछ ऐसी शक्तिया उठ खडी हुईं जिन्होंने सोच-समझकर यह अनुमान लगाया कि नेशनल कान्फ्रेंस की इस्लाम को जरूरत के वक्त इस्तेमाल करने और काश्मीरी इस्लाम को कट्टरपथी बनाने की नीति से वे राज्य के राजनैतिक माहौल मे अपना प्रभाव मजबूत कर सकेंगे। इस सन्दर्भ मे, सर्वाधिक शक्तिशाली दल था जमात-ए-इस्लामी। इसने काश्मीरी सामाजिक और राजनैतिक स्वभाव को कट्टरपथ और धार्मिक उन्माद की ओर मोड़ दिया। काश्मीर की राज्यव्यवस्था और प्रशासन को, उसने नया रूप दिया। इसने उन दलो मे भी पाकिस्तान-समर्थक भावनाए भर दी जो काश्मीर के पाकिस्तान मे विलय के पक्षधर नही थे। इसलिए, यह जरूरी है कि इसकी पृष्ठभूमि को विस्तार से देखा

जाए।

भारत में जमात-ए-इस्लामी की स्थापना 1938 में सैयद अब्दुल अल्ला मौदूदी ने कुछ प्रमुख मुसलमानों को इसके संविधान का खाका दिखाकर की। कुछ सुधार करके इसी स्वरूप को 1941 में अपनाया गया। मौदूदी ने निजाम-ए-मुस्तफा की धारणा का विकास किया। निज़ाम-ए-मुस्तफा अर्थात् हजरत मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था। वे चाहते थे कि कुरान और सुन्ना को सर्वोपरि माना जाये। उनका विश्वास था कि राजनैतिक प्रभुसत्ता ईश्वर में निहित है; और जो शासक खुदा की ओर से शासन कर सकता है, उसे सबसे योग्य और गुणवान मुसलमान होना चाहिए तथा उमाह (मुस्लिम सम्प्रदाय) द्वारा ऐसे ही व्यक्ति को बतौर शासक चुना जाना चाहिए।

मौदूदी ने जीवन के इस्लामी तरीके को अधिक प्राथमिकता दी। वह इस्लाम को ही श्रेष्ठतम राष्ट्रीय चरित्र मानता था। उसने राष्ट्रीयता की भर्त्सना की। एक बार कहा था कि 'मुस्लिम प्रजातन्त्र' शब्द उतना ही विरोधाभास व्यक्त करता है जितना कि 'सच्चरित्र वेश्या'। वे सारी दुनिया की सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था को इस्लाम के नियमों के अनुसार बदलना चाहता था।

मौदूदी द्वारा विकसित व्यवस्था की धारणा तानाशाही राज्य की थी। अपने मूल स्वभाव में ही यह परम्परागत अर्थों में लोकतान्त्रिक नहीं हो सकती थी। मौदूदी ने स्वयं इसे 'धर्म का प्रजातन्त्र' कहा, एक अस्पष्ट तरीके का प्रजातन्त्र, जो दैवी नियमों के अनुसार कार्य करे।

15 अगस्त, 1947 को भारत-विभाजन से पहले, मौदूदी अलग से पाकिस्तान राज्य बनाने के विरुद्ध था। उसका विचार था कि जब तक जीवन के इस्लामी तरीके का आचरण नहीं किया जाता तब तक पाकिस्तान भी एक दूसरा ईश्वरहीन गैर-इस्लामी राज्य बनकर रह जाएगा। बहरहाल पाकिस्तान की स्थापना के बाद, मौदूदी का विचार बदल गया। उसने इसे इस्लामी राष्ट्र बनाने के लिए काम शुरू कर दिया। अपने विश्वासों को लेकर वह बहुत हठी और कट्टर हो गया। 1953 में पंजाब में हुए अहमदिया-विरोधी दंगों में उसने सक्रिय भाग लिया। उसे मौत की सजा दी गई लेकिन बाद में छोड़ दिया गया। पाकिस्तान सरकार द्वारा अहमदिया दंगों की जांच के लिए नियुक्त मुनीर कमीशन के सामने अपनी गवाही में उसका धार्मिक उन्माद स्पष्ट हो गया। समय के साथ-साथ पाकिस्तान में जमात-ए-इस्सामी एक सशक्त बल बन गया और पहले जुल्फिकार अली भुट्टो की सरकार गिराकर उसे मृत्युदण्ड देने तथा जनरल जिया उल हक को समर्थन देने में इसने सक्रिय भूमिका अदा की।

मौदूदी की पूरी विचारधारा पूर्णतया कट्टरपंथी है। उसकी धारणा स्पष्ट रूप से अव्यवस्थित और स्पष्ट है। खुदा की ओर से उसकी सर्वोच्चता कौन लागू करेगा? यदि कुरान के नियमों की व्याख्या में मतभेद है तो किसकी व्याख्या मानी जायेगी? क्या खुदा के आधिपत्य को लागू करने वाले शासक उन लोगों के अधिकार को मानेगा जो उससे अलग व्याख्या देते हैं? उस योग्यता का निर्धारण कौन करेगा जिसके आधार पर एक व्यक्ति को सर्वाधिक गुणवान और राज्य का प्रमुख घोषित किया जा सके? और इस बात की क्या गारंटी है कि एक बार चुने जाने के बाद शासक हमेशा

सदाचारी ही बना रहेगा ?

ऐसे प्रश्नों के स्पष्ट उत्तरों की अनुपस्थिति ही मौदूदी द्वारा विकसित इस्लामी राज्य की धारणा के विरोधाभासों, अनिश्चितताओं और अव्यावहारिकता को स्पष्ट कर देती है। यही वजह है कि जब भी और जहां भी इस्लामी राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया है, वह तानाशाही बन गया जिसमें धार्मिक नियमों का व्यक्तिगत तथा राजनैतिक स्वार्थों के लिए इस्तेमाल किया गया। यह उचित ही कहा गया है, "अत्याचार के सभी रूपों में से, धर्म के नाम पर थोपे गये नियम और प्रतिबन्ध सबसे अधिक खतरनाक होते हैं। मुल्लाओं ने शासक वर्ग से मिलकर यही किया। जो भगवान का नहीं था उसे ईश्वर के नाम पर लोगों का शोषण करने के लिए उन पर थोप दिया गया।"

भारत में अगस्त, 1947 के बाद, जमात-ए-इस्लामी-हिन्द नाम से एक संस्था का फिर से संगठन किया गया। भारतीय जमात-ए-इस्लामी का सम्बन्ध इस्लामी राज्य की स्थापना के विचार से नहीं है। यह भारतीय मुसलमानों और उमाह इस्लामिया में सम्पर्क स्थापित करती है और इसका उद्देश्य विश्व मुस्लिम सम्प्रदाय के एक भाग, भारतीय मुसलमानों की अवस्था में सुधार लाना है। भारतीय मुसलमानों की धार्मिक व सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखना, उनके व्यक्तिगत कानूनों, भाषा और धार्मिक रीति वगैरह की रक्षा करना, इसके मुख्य उद्देश्य हैं।

अपने विचारों का प्रचार करने के लिए जमात-ए-इस्लामी 548 पुस्तकालय, 386 अध्ययन कक्ष, 240 स्टडी सर्कल, 266 बालवाड़ी, 344 पार्ट टाइम 'मक्तब' यानी प्राथमिक स्कूल, 36 जूनियर हाई स्कूल और 23 कॉलेज चला रही है। रामपुर में यह एक केन्द्रीय संस्था भी चला रहा है। लगभग 700 मस्जिदें इसके नियन्त्रण में आती हैं और हर शुक्रवार नेता लोग इन्हीं मस्जिदों से भीड़ को सम्बोधित करते हैं। कुरान और इस धर्म के विभिन्न पहलुओं पर 'जमात' 491 किताबें उर्दू में, 77 हिन्दी में और 78 अंग्रेजी में भी प्रकाशित कर चुकी है। दिल्ली, रामपुर, कलकत्ता, गोहाटी, अहमदाबाद, हैदराबाद, मंगलौर, कालिकट और मद्रास से यह कई अखबार और पत्रिकाएं भी निकाल रही है।

महत्त्वपूर्ण यह है कि जमात-ए-इस्लामी-हिन्द धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करती है और भारतीय मुसलमानों के लिए उसे वरदान समझती है। दूसरी ओर, पाकिस्तान में जमात-ए-इस्लामी धर्मनिरपेक्षता को एक स्थायी बुराई का नाम देते हैं और इसे इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन मानते हैं। भारत और पाकिस्तान में परस्पर विरोधी विचार जमात-ए-इस्लामी के सिद्धान्तों के पाखण्ड, सनक और स्वार्थपरायणता को उघाड़कर रख देते हैं जो पवित्रता और धार्मिकता के प्रति ढोंग उघाड़कर रख देते हैं।

जम्मू-काश्मीर की जमात-ए-इस्लामी का जमात-ए-इस्लामी-हिन्द का हिस्सा नहीं है। यह एक अलग और स्वतन्त्र संस्था है। यह 1942 में शोपियान में गुलाम अहमद अहर द्वारा सैयद शहाबुद्दीन और एक ही विचारधारा के कुछ लोगों की सहायता से स्थापित की गई थी।

सिद्धान्ततः और व्यावहारिक रूप से जमात-ए-इस्लामी (जम्मू-काश्मीर) पाकिस्तान की जमात-ए-इस्लामी से मेल खाती है। यह धर्मनिरपेक्षता और

समाजवाद को नहीं मानती। वह भारत के तथाकथित 'भारतीय उपनिवेशवाद' और 'ब्राह्मण साम्राज्यवाद' की भर्त्सना करती है। केन्द्रीय सरकार को इसने नफरत से 'दिल्ली दरबार' का नाम दिया है। यह सभी काम काश्मीर के पाकिस्तान में विलयन के लिए करती है। यह इस्लाम से प्रेरित राजनैतिक संघटन पर विश्वास करती है। अपने सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए इस पार्टी ने समर्पित, अनुशासित और धार्मिक रूप से प्रेरित लोगों के सशक्त दल संगठित किये हैं। यह पार्टी मौदूदी के विचारों के अनुसार निज़ाम-ए-मुस्तफा की स्थापना का समर्थन करती है।

पाकिस्तान के राज्य और समाज का इस्लामीकरण करने के जनरल जिया-उल-हक के प्रयत्नों का यह स्वागत करती है। यह सामाजिक और नैतिक व्यवहार के आधुनिक नियमों की भर्त्सना करती है। यह चाहती है कि काश्मीर के समाज का सुधार और संरचना शरीयत के सिद्धान्तों के अनुसार हो।

वर्तमान प्रमुख नेता सैयद अली शाह गिलानी के वक्तव्यों से जमात-ए-इस्लामी के उद्देश्य, और प्रेरणास्रोत स्पष्टतः उभरकर आते हैं। अपनी लघु पुस्तिका में (काश्मीर स्थिति का एक पहलू यह भी है) उसने अपने विचार बहुत काव्यात्मक और भावनात्मक तरीके से व्यक्त किये हैं जो काश्मीरी युवकों के लिए एक बड़ा आकर्षण रहा है क्योंकि काश्मीरी युवक, एक वर्ग के रूप में, भावुकता और भावनात्मकता से काफी प्रभावित होते हैं।

इस तर्क के सन्दर्भ में कि जनमत संग्रह और भारत में विलय का मुद्दा अब मृतप्राय हो गया है, गिलानी कहते हैं —"झेलम में बहुत पानी बह चुका है।"— यह वाक्य हमारे पत्रकारों द्वारा प्रायः लिखा जाता है। मैं इन मित्रों से यह पूछता हूं कि क्या मानव अधिकार भी झेलम के पानी के साथ बह गये हैं? मानवता के नैतिक सिद्धान्त इस पानी के साथ बह नहीं गये हैं। न ही आजादी की सशक्त इच्छा और संस्कृति तथा सभ्यता के मापदण्ड ही बहे हैं। गंगा और यमुना से होकर भी पानी बहा है, लेकिन स्वतंत्रता के भारतीय संघर्षकर्त्ताओं ने साहस नहीं खोया और देश में अंग्रेजी शासन खत्म करके ही दम लिया। पानी ब्रह्मपुत्र से भी बहा है, लेकिन इसने भारत को आगे आकर पूर्वी पाकिस्तान को बांग्लादेश बनने में सहायता देने से नहीं रोका। अफगानिस्तान की नदियों और धाराओं से भी पानी बहा है, लेकिन आज भी अफगानों की आजादी प्राप्ति की इच्छा शक्तिशाली सत्ता के समक्ष घुटने नहीं टेक रही।"[1]

शेख अब्दुल्ला की भूमिका के बारे में गिलानी का कहना है—"1931 से हम अपने खून की बाजी लगा रहे हैं, लेकिन जिस नेता पर हमने विश्वास किया, उसीने हमें धोखा दिया है। पिछले 40 सालों से, युवक धोखे का शिकार बनते रहे। अब वह धैर्यवान हो गया है और शत्रु तथा मित्रों की पहचान कर सकता है। अब काश्मीरी युवक में विश्वास और उत्साह है।"

अपने राजनैतिक विश्वासों के बारे में, वे साफ कहते हैं—"समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता की राजनीति बिलकुल अनुचित है। मैं नहीं चाहूंगा कि कोई भी

---

1. लेखक द्वारा उर्दू से अनुवादित।

मुसलमान समाजवाद या धर्मनिरपेक्षवाद को अपना आदर्श मानें।"

'मुकदमा-ए-इलहक'[1] (भारत में विलय का मुकदमा) नाम से एक और लघु पुस्तिका में जमात-ए-इस्लामी इन शब्दों में लोगों को सम्बोधित करती है—"तुम, काश्मीरी मुसलमान राष्ट्र के तुम लोग, कब तक आसानी से बनाये नये गुलामों की सूची में स्वयं को गिनवाते रहोगे ! ये ऊंची सिनेमा की इमारतें, नगे नाच के ये घर, हर गली में शराब की दुकानें, स्वतन्त्र समाज के ये केन्द्र जहां पुरुष और स्त्रियां निर्लज्जतापूर्वक साथ रहते हैं, ये स्कूल और कॉलेज, ये सब इस बात का संकेत है कि तुमसे तुम्हारी सांस्कृतिक विरासत छीनी जा रही है। तुम्हारी सभ्यता के ताजमहल को किसने धूल में मिलाया है? तुम्हारे नवयुवकों के जमीर को किसने क्षीण कर दिया है? तुम्हारे धर्म और विश्वास को किसने क्षति पहुंचाई है ? तुम कब तक सोते रहोगे? तुम कब तक दूसरों के स्वार्थी राजनैतिक खेल का शिकार होते रहोगे? कब तक तुम नास्तिकवाद और खुदा-विहीन दर्शन का शिकार रहोगे? क्या तुम उस बात का इन्तजार कर रहे हो जब, जैसाकि अफगानिस्तान में हुआ, तुम्हारी मस्जिदों को एक नास्तिक लोगों के स्थान में बदल दिया जायेगा जहां कुरान के कागजों का इस्तेमाल धूल और गन्दगी साफ करने के लिए किया जायेगा ?"

इस पुस्तिका में आगे लिखा है—"तुम्हारे दुश्मन, तुम्हारी पहचान और विश्वास मिटाने पर आमादा है। वे अपनी सेना और हथियारों से पूरा बल लगा रहे हैं। यदि तुम इस चुनौती की उपेक्षा करते हो, तो विश्वास करो मुरादाबाद का इतिहास फिर दोहराया जायेगा। भिवंडी, चादवासा, अलीगढ़ और हैदराबाद की तरह तुम्हारी जमीन को भी रक्तरंजित कर दिया जायेगा। तुम्हारा सामना एक निर्दयी सामन्तवादी ताकत से है जिसकी ब्राह्मण मानसिकता हर दिन तुम्हारे लिए नई उलझनें ला रही है। यदि तुम अब भी नहीं समझते, तो इतिहास के पन्नों में तुम्हें कोई स्थान नहीं मिलेगा।"

जनवरी, 1990 तक बहुत सालों से यही विचार अति भावनात्मक और धार्मिक रूप से प्रचारित किये जाते रहे। इसके प्रत्युत्तर में कोई नीति न तो बनाई गई, न ही लागू की गई। लोगों को यह समझाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया कि जमात-ए-इस्लामी का प्रचार कितना अनुचित है, धार्मिक उन्माद और कट्टरपंथ की क्या कमियां हैं और पाकिस्तान की बेईमानी काश्मीर की पहचान और संस्कृति को कितना घातक नुकसान पहुंचाएगी।

परिणामत, एक या दो छोटे-मोटे अवसरों को छोड़कर जमात-ए-इस्लामी लगातार शक्तिशाली होती चली गई। राजनैतिक स्तर पर, ये लोग बढ़ती उग्रता के साथ, इस तर्क का समर्थन करते रहे कि काश्मीर का भारत में विलय अन्तिम नहीं है, कि जिहाद मुसलमानों का वैधानिक हथियार है, ईरानी क्रान्ति अनुकरणीय है तथा पाकिस्तान का इस्लामीकरण करने का जिया-उल-हक का कार्यक्रम प्रेरणादायक तथा प्रशंसनीय है। सामाजिक स्तर पर जमात-ए-इस्लामी ने परिवार कल्याण कार्यक्रम के विरुद्ध यह कहते हुए एक उग्र आन्दोलन छेड़ दिया कि यह कार्यक्रम इस्लाम के विरुद्ध है तथा मुसलमान बहुसंख्यकों को अल्प-

1. जमात-इस्लामी द्वारा प्रकाशित। लेखक द्वारा अनुवादित।

संख्यकों में बदलने का राज्य द्वारा विचारित चतुर तरीका है। शैक्षिक स्तर पर, यह कट्टरपंथ और धार्मिक अन्धोन्माद के बीज अपने 150 स्कूल और मदरसो द्वारा बोती रही। बच्चों को क्या पढ़ाया जा रहा था इसका ज्वलन्त उदाहरण कक्षा तीन में पढ़ाई जाने वाली कविता का यह अंश है—

"छोटे बच्चो, रहो शान्त
हम बताएंगे क्या है इस्लाम
तुम कम हो सकते हो,
सेना भी नही तुम्हारे पास
पर तुमको लड़ना है इस्लाम के नाम।"

प्राथमिक कक्षाओं में लगी एक किताब के पद्यांश के अनुसार: "हम काश्मीरी हैं और हमारा देश काश्मीर है। यह भारत, चीन और ईरान से घिरा है।"

सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तरों पर जमात-ए-इस्लामी के कार्यों और इसके बढ़ते हुए कार्यकर्त्ताओं की वजह से, इसकी शक्ति ऊपरी तौर पर नहीं नज़र आती लेकिन अन्दर-ही-अन्दर यह फैलती जा रही है। और पिछले चुनावों में इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि लोगों पर इसका वास्तविक प्रभाव है। इसने तीन चुनाव लड़े, पहला 1972 में, दूसरा 1977 तथा तीसरा 1983 में। इसके बाद 1987 में, इसने मुस्लिम युनाइटेड फ्रण्ट का एक हिस्सा बनकर चुनाव लड़ा। 1972 में इसे केवल एक स्थान और दिये गये मतों का केवल 3 59% प्राप्त हुआ। 1983 में इसे कोई स्थान नहीं मिला लेकिन इसके पक्ष में पड़े मतों की संख्या बढ़कर 3.88% हो गई।

लेकिन मतदान का यह स्वरूप वास्तविक रूप प्रदर्शित नहीं करता। 1977 और 1983 के चुनावों में, नेशनल कान्फ्रेंस ने अपने साम्प्रदायिक, धर्मांध और पाक-समर्थक रवैये की वजह से जमात-ए-इस्लामी की जगह लगभग हथिया ली थी। नेशनल कान्फ्रेंस ने ठीक वही किया जो जमात-ए-इस्लामी करना चाहती थी। 1977 और 1983 के चुनावों के दौरान जो युवा दल जमात-ए-इस्लामी का समर्थन कर रहे थे, वे मूल रूप से उन युवा दलो से अलग नहीं थे जो नेशनल कान्फ्रेंस की सहायता कर रहे थे। जमात-ए-इस्लामी और नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यक्रम तब एक से ही हो गये थे जब नेशनल कान्फ्रेंस ने भी पाक-समर्थक और भारत-विरोधी रवैया अपना लिया। उनकी सार्वजनिक अपील घुल-मिल गई। ये दोनों लगभग जुड़वां बहनों की तरह हो गईं। उदाहरण के लिए, 1983 में विधान सभा चुनावों के दौरान डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने 'भारतीय प्रभुत्व' के विरुद्ध बढ़-चढ़कर भाषण दिये। यहां तक कि उन्होंने भारतीय चुनाव उपायुक्त के अन्तर्गत नहीं बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ की देखभाल में करवाने की धमकी भी दी।

जब 1975 में शेख अब्दुल्ला द्वारा काश्मीर समझौते पर हस्ताक्षर किये गये तो जमात-ए-इस्लामी ने इसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया था। जनमत-संग्रह मोर्चे के अनेक कार्यकर्ता जो इस समझौते के पक्षधर नहीं थे और उनके विचार जमात-ए-इस्लामी से मेल खाते थे, वे इसमें शामिल हो गये और उच्च पद पर बैठा

दिये गये। लेकिन 1977 में जब जुल्फिकार अली भुट्टो को पाकिस्तान में मृत्यु-दण्ड दे दिया गया तो इसे धक्का पहुंचा। स्थानीय मुसलमानों का विश्वास था कि भुट्टो को मृत्युदण्ड जमात-ए-इस्लामी (पाकिस्तान) के राष्ट्रपति जिया-उल-हक पर प्रभाव होने की वजह से दिया गया। उन्होंने लूटपाट मचा दी और उनके जमात-ए-इस्लामी कार्यकर्ताओं के घर जला दिये।

लेकिन जमात-ए-इस्लामी को मिला यह धक्का अल्पकालिक था। जल्दी ही इसने अपनी स्थिति पुन: प्राप्त कर ली और उसे सशक्त भी बनाया। यह आंशिक रूप से युवा वर्ग में कुप्रशासन द्वारा जन्मे क्षोभ का नतीजा था जिसे जमात-ए-इस्लामी ने इस्तेमाल किया और इसका कुछ श्रेय नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं द्वारा उन धार्मिक भावनाओं को भड़काने की प्रकृति पर जाता है जो जमात-ए-इस्लामी का आधार हैं। यही चुनावी रणनीति थी जो शेख अब्दुल्ला ने जून, 1977 में, डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने जून, 1983 और जी० एम० शाह ने दिसम्बर, 1984 में अपनायी। मैंने जोर देकर इस संबंध में यह सारे मुद्दे और इनमें निहित खतरे केन्द्रीय सरकार को बताये। 12 फरवरी, 1985 को प्रधानमंत्री राजीव गांधी को लिखे अपने पत्र में मैंने लिखा—

'यह पत्र कल, मकबूल बट के मौत के दिन पहली याद पर श्रीनगर में हुई गोलीबारी तथा अन्य घटनाओं के सम्बन्ध में है।

सतही तौर पर, यह संकट मकबूल बट्ट दिवस से सम्बन्धित लगता है, लेकिन इसकी भीतरी वजह राष्ट्र-विरोधी तत्वों की बढ़ती शक्ति है जिसे मुख्यमंत्री द्वारा जमात-ए-इस्लामी के नेता सैयद अली शाह गीलानी और उसके अनुयायियों को छोड़ने के अकस्मात् निर्णय से प्रेरणा मिली है। यह निर्णय मुख्यमंत्री द्वारा 6 फरवरी, 1984 को बड़े नाटकीय रूप से घोषित किया गया। यहां तक कि जब इस मुद्दे में राज्य की सुरक्षा भी शामिल थी, उन्होंने मुझसे या केन्द्रीय सरकार से मशविरा करने की परवाह न की। वास्तव में, मुझे इस निर्णय का पता अखबार के समाचारों से मिला।

जब से इन लोगों को आजाद किया गया है, गीलानी आपत्तिजनक भाषण दे रहा है, इस्लामी कट्टरपंथ का उपदेश दे रहा है और भारत पर काश्मीर को जबरदस्ती हथियाने का दोषारोपण कर रहा है। वह प्रशिक्षण केन्द्रों को संचालित कर रहा है जिसमें जमात-ए-इस्लामी के नेता पार्टी सदस्यों को यह प्रचार करने के लिए उत्साहित कर रहे हैं कि पाकिस्तान में विलयन के बाद न केवल काश्मीर इस्लाम की सेवा करेंगे बल्कि उन्हें, पाकिस्तानियों की तरह, मुस्लिम समाज में अनेक नौकरी के अवसर प्राप्त होंगे।

यह बात और भी क्षुब्ध करती है कि राज्य की खुफिया रिपोर्टों में भी जिनके संकेत दिये गये हैं, उन अलगाववादी विद्रोही गतिविधियों की जानकारी के बावजूद, गीलानी के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया गया। जाहिर है, इससे राष्ट्र-विरोधी दलों जैसे महाज-ए-आजादी, पीपल्स लीग, काश्मीर राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा वगैरह को भी प्रोत्साहन मिला है।

मैं इस मौके पर यह बताना चाहूंगा कि, जम्मू-काश्मीर संविधान के अनुच्छेद 44 और व्यापार के नियमों का अतिक्रमण करके, मुख्यमंत्री राज्य की सुरक्षा और समानान्तर पुलिस बल की रचना इत्यादि जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों को भी

जानकारी नहीं दे रहे हैं।

सार्वजनिक और केन्द्रीय सरकार की सांत्वना के लिए, मुख्यमंत्री राष्ट्र-समर्थक कुछ कथन जारी कर रहे हैं। लेकिन वास्तव में, साम्प्रदायिकता स्वायत्तता-समर्थक और अलगाववादी दलों को प्रोत्साहित करने के लिए, वे हर सम्भव कार्य कर रहे हैं। ये तत्त्व और भी खतरनाक हो गये हैं क्योंकि ये इस्लामी कट्टरपंथ के साथ-साथ पाक-समर्थक भावनाओं को भी भड़का रहे हैं। यदि एक बार ये तत्त्व काश्मीरी माहौल का हिस्सा बन गये तो स्थायी क्षति होगी। इसके बाद कोई भी राजनैतिक प्रयास उस मूल समस्या को हल नहीं कर पायेगा। चाहे कोई भी हल निकाला जाये, अब इस स्थिति में सुधार करने की सख्त जरूरत है।"

दुर्भाग्यवश, राजीव गांधी इस सभी गुजारिशों और चेतावनी के प्रति असंवेदनशील रहे।

जल्दी ही राजनैतिक लाभ पाने के लिए अन्य राजनैतिक दलों ने भी इस्लामी कट्टर पंथ को इस्तेमाल करना उचित समझा। इन दलों में पीपल्स लीग, इस्लामी जमात-ए-तुल्बा, इस्लामी स्टुडेण्ट्स लीग, जमात-ए-इस्लामी, तहफजुल-उल-इस्लामी, इस्लामी स्टडी सर्कल, महाज-ए-आजादी और अंजुमने-इत्तेहादे-मुसलमीन के नाम शामिल हैं। पीपल्स लीग की स्थापना 30 सितम्बर, 1974 में, अलफतह मुकद्दमे के अभियुक्त, नाजिर अहमद वानी ने की थी। इसके नेतृत्व की डोर बाद में फारूख रहमानी और शबीर शाह के हाथ में आई जिन्होंने यह प्रचार किया कि इस्लाम के अनुयायियों का कर्तव्य काश्मीर से भारतीयों को बाहर फेंकना है। जमाते-इस्लामी के छात्र दल इस्लामिक जमात-ए-तुल्बा ने, ताजमुल इस्लाम के नेतृत्व में मुस्लिम युवकों को शिक्षा देने का विशेष प्रयास किया। इस्लामिक स्टूडेंट्स लीग के संविधान में ही यह घोषणा शामिल थी कि "सिपाही की जिन्दगी ही इस्लाम के आधार का हिस्सा है।" जमात-ए-इस्लामी जिसकी स्थापना 4 मार्च, 1986 में डॉ० काजी निसार द्वारा की गई थी, इसने धार्मिक उन्माद को भड़काने का हर सम्भव प्रयास किया ताकि अशिक्षित और अनपढ़ मुसलमान लोगों और उनकी तंग धार्मिक भावनाओं के बूते पर डॉ० काजी निसार अपनी लीडरी कायम कर सके।

राजनीतिक सत्ता पाने की धुन में सभी राजनैतिक दलों ने इस राज्य में रही-सही स्वस्थ परम्पराओं को निकाल फेंकना और उसके स्थान पर धर्मांधता तथा कट्टर पंथ के बीज बोने शुरू कर दिये। उसकी त्रासदीपूर्ण फसल हम सभी के सामने है।

प्रशासनिक जड़ें

कुशल राजनैतिक व्यवस्था के लिए स्थिर और कुशल प्रशासन जरूरी है। जम्मू-काश्मीर में दुर्भाग्यवश, स्थिरता और कुशलता नाम की चीज नहीं है। यहां दूसरे की कमजोरी से लाभ उठाया जाता है।

इतिहास इस बात के अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है कि एक सशक्त और उत्साहित प्रशासन विभिन्न दलों में एकता लाने में, और तेज सामाजिक तथा आर्थिक विकास में प्रमुख भूमिका अदा कर सकता है। माइजी पुनर्स्थापन के बाद जापान और 19वीं शताब्दी में जर्मनी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। दूसरी

ओर, जैसाकि तीसरी दुनिया के देशों में व्याप्त मतभेदों से स्पष्ट है, कमजोर, विभाजित प्रशासन विनाश का परिचायक रहा है। ऐसा प्रशासन जातीय, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक भेद को और गहरा करता है तथा सामाजिक और आर्थिक विकास को रोक देता है।

जम्मू-काश्मीर की बहुआयामी समस्याओं को देखते हुए, इसके प्रशासन को मजबूत, सरल, ईमानदार, व्यावहारिक, गैर-राजनैतिक, गतिशील और रचनात्मक होना चाहिए था। लेकिन, सामान्य तौर पर, इसमें सारे विपरीत गुण आ गये। प्रशासन लापरवाह, संकीर्ण, शिथिल और असंवेदनशील बन गया।

राजनीति और प्रशासन को दृढ़तापूर्वक अलग-अलग खानों में नहीं रखा जा सकता; वास्तव में, ये दोनों एक ही स्वरूप के दो संगठित अंग हैं। वे एक ही हवा में सांस लेते हैं; एक ही मूल्यों का आचरण करते हैं और एक ही राष्ट्रीय प्रकृति में विकसित होते हैं। किसी भी स्थिति में, कोई भी प्रशासन आध्यात्मिक या सैद्धान्तिक शून्य में काम नहीं करता। राजनैतिक संस्कृति का इस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि यह संस्कृति अस्वस्थ है तो प्रशासन का बिगड़ा स्वरूप अपरिहार्य है। और संक्रमणग्रस्त प्रशासन बदले में फिर राजनैतिक व्यवस्था को और खराब करता है। इस तरह वे परस्पर एक-दूसरे की कमजोरियों को बढ़ावा देते हैं।

जम्मू-काश्मीर में विशेष कर काश्मीर समझौते के बाद से यही सब कुछ हो रहा है। 1975 के बाद, जो राजनैतिक ढांचे का नया स्वरूप सामने आया, उसने प्रशासन को और अनुदार और अपने स्वार्थी उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक बना दिया। प्रशासन के वे तत्त्व जिन्हें ये प्रवृत्तियां अपने अनुकूल लगीं, अपने राजनैतिक संरक्षकों का सहारा लेकर, इसी दिशा में और आगे बढ़ गये। जल्दी ही, बड़े पदों पर ऐसे उच्चाधिकारी आ गये जिनका मुख्यमंत्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला पर जरूरत से ज्यादा प्रभाव बढ़ा। एक तरफ तो उच्चाधिकारियों के इस वर्ग ने, मध्य और निम्न स्तर पर कुछ सहायकों के साथ सत्ता के उच्च राजनीतिज्ञों के व्यक्तिगत और पार्टी के स्वार्थ पूरे करने शुरू किये तो दूसरी ओर इसने अपना घर भरना तथा सत्ता के ढांचे में अपनी जगह बनाना शुरू कर दिया। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के चारों ओर बने व्यक्ति-पूजा के इस माहौल का चतुरतापूर्वक इस्तेमाल किया गया। इस तरह, राजनैतिक और प्रशासनिक सत्ताधारी कुलीन घुल मिल गये। इस तरह राजनीति और प्रशासन में एक-दूसरे की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करने वाले गुटों ने एक-दूसरे के स्वार्थों को पूरा करना शुरू कर दिया।

अधिकतर वे अधिकारी जिन्हें महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे गये थे, उन तत्त्वों से मिले हुए थे जिनका उद्देश्य राज्य को राष्ट्र की मुख्यधारा से जहां तक हो सके, दूर रखना था। उदाहरण के लिए, अस्सी के दशक की शुरुआत में मुख्य सचिव के पद पर आसीन व्यक्ति राज्य की स्वायत्तता-समर्थक विचार का ज़बरदस्त पक्षधर था। उसने बहुत सलीके से उन सभी चीजों को बिगाड़ दिया जो केन्द्र और राज्य के स्वस्थ सम्बन्ध के लिए जरूरी होती हैं। उसने राष्ट्र-समर्थक तत्त्वों को कमजोर बनाया और राज्य में केन्द्रीय संस्थानों का कुशलतापूर्वक काम करना मुश्किल कर दिया। उदाहरण के लिए 19 मार्च, 1982 को उसने एक आदेश जारी

करके सेना द्वारा भूमि-प्राप्ति को लगभग असम्भव बना दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि अखिल भारतीय सेवाएं प्रभावहीन हो गईं। अनेक पदों को काडर से बाहर कर दिया गया। मसलन नवम्बर, 1984 को मैंने ध्यान दिया कि अखिल भारतीय पुलिस काडर में डायरेक्टर जनरल का एक पद, इंस्पेटर जनरल के तीन पद, एडिशनल इंस्पेक्टर जनरल के 6 पद और सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस के 46 पद थे ही नहीं। समानान्तर राज्य के काडर परस्पर विलय हो गये थे। आई० ए० एस० और आई० पी० एस० अधिकारियों को लेना लगभग रोक दिया गया। राज्य और अखिल भारतीय काडर में भी अनेक तरह की खामियां थीं। चालबाजी ने धाक जमा रखी थी। पक्षपात बढ़ गया। न्याय में प्राय: लापरवाही बरती जाती थी। क्षेत्रीय वफादारी की जड़ें गहरी होती गईं। साम्प्रदायिक और जातीय पक्ष में दोषारोपण प्राय: किये जाने लगे। यहां तक कि योग्यता के आधार पर लिये गये निर्णय की ईमानदारी को भी कोई स्वीकार नहीं करता था। राज्य मशीनरी विश्वास खो चुकी थी। भ्रष्टाचार बढ़ गया। प्रशासन की कार्यकुशलता घटी। व्यर्थ के विवाद उठाये गये। राज्य और केन्द्र के बीच जो तनाव हटाये जा सकते थे, उन्हें पैदा किया गया।

इसके कुछ ही अपवाद थे। कुछ अधिकारी बहुत योग्य थे। लेकिन या तो वे राजनीति के दुष्चक्र में फंसे हुए थे, या वे अपनी गैर-महत्त्वपूर्ण भूमिका पर उदास होते हुए और इस उम्मीद से कि कभी तो राज्य का भाग्य बदलेगा और वे भी शक्ति के इस ढांचे में कोई प्रभावशाली भूमिका अदा करेंगे—वे इन सभी गतिविधियों के किनारे-किनारे रहते। बहुत-से अधिकारी जो निस्सन्देह सुयोग्य थे, उन्होंने अपनी योग्यता को या तो केन्द्र और राज्य की धोखाधड़ी वाली राजनीति में या फिर कांग्रेस और विरोधी पार्टियों की राजनीति में प्रयोग करना उचित समझा।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला के कमजोर नेतृत्व में सार्वजनिक सेवाओं में लगा घुन और भी गहरा हो गया। शेख अब्दुल्ला को अपने समर्थकों के साथ-साथ योग्य अधिकारियों का प्रयोग करना भी आता था। उसका प्रभाव गुटों और दलों पर भी था। डॉ० अब्दुल्ला ने यह प्रभाव भी खो दिया। शब्दों और कर्मों का भेद गहराता गया। डॉ० अब्दुल्ला प्रशासनिक संरक्षण देने में भी दयालु थे। दफ्तरशाही बढ़ी। अस्सी के दशक के मध्य में, प्रशासन का भार इतना हो गया कि इसका व्यय देश में सबसे ज्यादा और इसकी उत्पादकता देश में सबसे कम हो गई। राज्य का वेतन बिल ही इसके गैर-योजना व्यय का 43 प्रतिशत ले लेता था। 1982 से 1989 तक के सात वर्षों में इसके कर्मचारियों की संख्या में वार्षिक वृद्धि 4·38 प्रतिशत थी जबकि पूरे देश की औसत वृद्धि 2·7 प्रतिशत थी। बीस सूत्रीय कार्यक्रम को लागू करने के संदर्भ में कार्यक्रम कार्यान्वयन के केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा राज्य प्रशासन की खराब उत्पादकता का त्रैमासिक वर्गीकरण किया गया; यह हमेशा बहुत कम रही।

जब 16 अप्रैल, 1984 में मैं पहली बार बतौर गवर्नर वहां गया तब 'दल', 'दरार' और 'धर्मपिता' जम्मू-काश्मीर प्रशासन की ये तीन मुख्य विशेषताएं थीं। उच्च सेवाओं में गुटबंदी बहुत थी। वे एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्यालु थे और शक की नजर से देखते थे। वे उन्हीं मध्ययुगीन षड्यन्त्रों में व्यस्त थे, लेकिन उनके तरीके

और तकनीक आधुनिक थे। एक सशक्त, न्यायपूर्ण और उत्साहित नेतृत्व और एक जागृत, प्रगतिशील तथा ईमानदार नीति अब भी स्थिति को संभाल सकती थी। लेकिन न तो डॉ० फारुख अब्दुल्ला न ही जी० एम० शाह उन्हीं पुरानी प्रतिक्रियाओं से बाहर निकल पाये। केन्द्रीय नेतृत्व तब थोड़ा-सा गतिशील हुआ जब श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आधारभूत वास्तविकताओं की समझ दिखाई और कुछ लोगों को समझाने की कोशिश की गई। इन लोगों का राज्य में अवतरण हालांकि 1986 में थोड़ी देर के लिए रोका गया, लेकिन इसे पूर्णतया नहीं रोका जा सका। कुछ योग्य अधिकारियों के निष्कासन ने स्थिति को और खराब कर दिया। और डॉ० फारुख अब्दुल्ला के 7 नवम्बर, 1986 से 18 जनवरी, 1990 तक के शासनकाल में राज्य प्रशासन अकुशलता और प्रभावहीनता का नमूना बन गया।

इस बात का प्रमाण और विश्लेषण जम्मू में सचिवालय से कुछ ही गज दूर एक क्षेत्र में 13 जनवरी, 1989 को हुई घटना से दिया जा सकता है। वहां राज्य सचिवालय में मुख्यमन्त्री और मंत्रालय के सदस्य भी उपस्थित थे।

13 जनवरी, 1989 गुरु गोविन्द सिंह के जन्मदिन की पूर्व सन्ध्या थी। इस अवसर पर एक जलूस का आयोजन किया गया था। जलूस में भाग लेने वाले कुछ लोगों के पास झण्डे थे जिनमें इन्दिरा गांधी के हत्यारों—सतवन्त सिंह और केहर सिंह को 'शहीद' करार दिया गया था। जिला मैजिस्ट्रेट और पुलिस के अनुसार जलूस शुरू होने से पहले ही इन लोगों को यह झण्डे न ले जाने की हिदायत दी गई थी और वे सहमत भी हो गये थे। लेकिन जब यह जलूस शहर के केन्द्र में घनी आबादी वाले क्षेत्र, पुरानी मण्डी में पहुंचा तो ये झण्डे फिर से निकाल लिये गये और राष्ट्र-विरोधी तथा उकसाने वाले नारे लगाये गये। इससे कुछ हिन्दू दुकानदार और क्षेत्र के निवासी भड़क गये और उन्होंने जलूस पर पत्थर फेंके। दूसरे बयान के अनुसार पहले जलूस में शामिल लोगों ने दुकानें लूटना शुरू कर दिया और लगभग 50 'खोखों' को आग लगा दी। हड़बड़ाहट और अस्तव्यस्तता की स्थिति में जलूस टूट गया और दंगे शुरू हो गये। जलूस में भाग लेने वाले कुछ युवकों ने विभिन्न दिशाओं में भागते हुए, खड़े हुए वाहनों में आग लगा दी और गुण्डागर्दी भी की। दंगे में 12 लोगों की जानें गईं, 120 घायल हो गये, 125 वाहनों को क्षति पहुंची और लाखों की सम्पत्ति नष्ट कर दी गई।

प्रशासन ने अक्षम्य अदूरदर्शिता दिखलाई। यहां तक कि कुछ आधारभूत सावधानी भी नहीं बरती गई। और जब हिंसा शुरू हुई तो भीतरी अकर्मण्यता ने कुछ करने की इच्छा तक को खत्म कर दिया। मुख्यमंत्री के सचिवालय की कुछ ही दूरी पर पांच घण्टे तक खुले आम लूटमार चलती रही। लगा, जैसे प्रशासन का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। कोई भी पुलिस का आदमी एक उंगली उठाने को तैयार नहीं था जबकि उसकी मौजूदगी में दुकानें और कारें जलाई जा रही थीं। बर्बर आक्रमण और हत्याएं भी पुलिस में कोई प्रतिक्रिया न जगा सकीं। न कोई पुलिस लाठी चार्ज हुआ, न ही अश्रुगैस का एक भी गोला छोड़ा गया, न ही गोली चलाई गई।

श्रीमती इंदिरा गांधी के हत्यारों को मृत्युदण्ड मिलने के बाद स्पष्ट रूप से

सावधान रहने के निर्देश दिये गये थे। गुरदासपुर जिले में आतंकवादियों द्वारा चार लोगों को फांसी पर लटकाये जाने को लेकर भी जबरदस्त तनाव था। 6 जनवरी से 13 जनवरी तक विरोध सप्ताह मनाने के लिए अकाल तख्त के मुखिया दर्शनसिंह रागी ने आह्वान किया था।

दुर्भाग्यवश किसी भी घटना का पूर्वानुमान नहीं लगाया गया। बिना किसी जांच के जलूस के आयोजन की आज्ञा दे दी गई। जलूस के साथ पुलिस का वह दल नियुक्त किया गया जो न तो पर्याप्त था न ही उनके पास पर्याप्त रूप से हथियार थे। भड़काऊ झण्डों को छीना नहीं गया। जलूस के एक वर्ग द्वारा उकसाने वाले भाषणों-नारों को रोका नहीं गया। यहां तक कि जब यह स्पष्ट हो गया कि दुकानें बन्द हो रही हैं और माहौल विस्फोटक बन रहा है, कोई वास्तविक निगरानी नहीं रखी गई।

राज्य पुलिस की विशेष शाखा की तो यह विशुद्ध असफलता थी। न तो यह लोगों की मानसिकता को समझ पाई, न ही गहराई नाप पाई। उच्चाधिकारियों ने इस पर गम्भीरतापूर्वक सोचा ही नहीं। पुलिस तैनाती अपर्याप्त थी। कुछ विशेष जगहों पर रिज़र्व पुलिस नहीं रखी गई। यहां तक कि पुलिस नियन्त्रण कक्ष भी उचित कार्यशील नहीं था। जलूस के दिन अधीक्षक और सलाहकार (गृह विभाग) मुख्यालयों से दूर ही रहे। वे कुछ भी समझने में असफल रहे। ऐसी ही गुप्तचर जानकारी की स्थिति थी। मानसिक सावधानी ज़ाहिर है, किसी बाहरी प्रभाव से नहीं आती। राज्य की प्रशासनिक प्रवृत्ति में लापरवाही और अव्यवस्था का बोलबाला था जिनसे कुछ परिहार्य त्रासदियां घटित होनी ही थीं।

स्थिति इतनी दुःखद और निराशाजनक कैसे हो गई? कानून और व्यवस्था की मशीनरी इतनी अकर्मण्य और अयोग्य कैसे बन गई? इस तरह हर जगह चीजें इतनी विकृत कैसे हो गईं? इसके कुछ कारण मैं पहले बता चुका हूं। इसका दूसरा मूलभूत कारण, सहायक सेवाओं में अन्यायपूर्ण और बेईमान तरीके से की गई भर्ती था। अध्यापकों और निरीक्षकों इत्यादि जैसे पदों पर नियुक्ति के संदर्भ में भ्रष्टाचार और राजनीतिकरण सरेआम और बिना किसी शर्म के किया जाता था। एक उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा। यह उदाहरण जनवरी-फरवरी, 1986 में पुलिस-इंस्पेक्टरों और सब-इंस्पेक्टरों की नियुक्ति से सम्बन्धित है।

स्पष्टतः चयन-प्रक्रिया के प्रारम्भ से पहले ही पुलिस के डायरेक्टर जनरल को मुख्यमंत्री और अन्य प्रभावशाली लोगों से नामों की सूची मिल गई थी। जिन उम्मीदवारों के नाम दिये गये थे, उन्हें चयन बोर्ड के साथ औपचारिक साक्षात्कार के बाद चुना जाना था। बहरहाल इन उम्मीदवारों को संरक्षण देने वाले साथियों के बीच लड़ाई हो गई। इस मुद्दे पर कृषि मंत्री ने झगड़ा खड़ा कर दिया। जब मंत्रीगण की सभा में इस मुद्दे को उठाया गया, जिसका उठना अपेक्षित नहीं था, तो जो हुआ उसका आंखों देखा विवरण इस प्रकार है—

"मुश्किल तब शुरू हुई जब पुलिस के डायरेक्टर जनरल ने चयन की प्रक्रिया का ब्योरा पेश किया। उन्होंने बताया कि मुख्यमंत्री के निर्देशानुसार उन्होंने 70 प्रतिशत उम्मीदवारों को योग्यता के आधार पर तथा 30 प्रतिशत उम्मीदवारों को सत्ताधीन पार्टी के नेताओं की सिफारिश पर चुनने का निर्णय लिया

था। पुलिस प्रमुख ने यह भी बताया कि बारामूला जिले के लिए उम्मीदवार चुनने हेतु उन्होंने मुख्यमंत्री के विश्वसनीय सत्ताधीन पार्टी के दो नेताओं से सलाह भी ली थी। इससे कृषि मंत्री भड़क उठे क्योंकि बारामूला उनका क्षेत्र था। उन्होंने व्यंग्य किया कि केवल दो 'अति विश्वसनीय' नेता ही बारामूला क्षेत्र से नहीं आये हैं। वे भी जिले का प्रतिनिधित्व करते हैं। उत्तेजित मुख्यमंत्री ने बात रोककर कहा कि वे दो नेता चुनाव में उनके लिए लड़े थे और वे उनकी कुर्बानी नहीं भूल सकते। कृषि मंत्री ने कहा कि उन्होंने भी बहुत त्याग किया है। इससे मुख्यमंत्री और भी उत्तेजित हो गये। 'तुमने क्या त्याग किया है? तुम चोर हो। तुम छः लाख रुपये हड़प गये। मुझे उस पैसे का पूरा ब्योरा दो।' इस पर कृषि मंत्री ने एक और तीर चलाया, 'आप मुझसे बड़े चोर हैं। आपने 24 लाख रुपये हड़पे हैं। पहले आप उसका ब्योरा दें। सरकार आपकी जागीर नहीं है। सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर आपने अपने सम्बन्धी नियुक्त कर दिये हैं।' मुख्यमंत्री अपना नियन्त्रण खो बैठे और चिल्लाये, 'मेरे घर से बाहर निकल जाओ।' कृषि मंत्री जवाब में चिल्लाये, 'यह न तो आपकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है न ही खानदानी जागीर। आप कौन होते हैं मुझे बाहर निकालने वाले?' इस पर मुख्यमंत्री उग्र रूप से दांत किटकिटाते अपनी आस्तीनें ऊपर चढ़ाते कृषि मंत्री की ओर बढ़े।"

मैंने इस घटना का विवरण यह दिखाने के लिए दिया है कि किस तरह कानून और व्यवस्था के संरक्षकों की भरती की जा रही थी और राजनीतिज्ञों तथा संस्थानों के बीच कैसा अस्वस्थ सम्बन्ध घर कर गया था और किस सीमा तक प्रशासन भ्रष्ट और स्वार्थी हो चुका था। जनवरी, 1965 में बख्शी गुलाम मुहम्मद के विरुद्ध लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने के लिए स्थापित जस्टिस अयंगार आयोग ने लिखा था, "मेरे सामने पेश की गई चीज़ों में से सबसे निराशाजनक और दुःखपूर्ण उन अधिकारियों के हलफनामे हैं जिन्होंने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने राज्य और राज्य सम्बन्धी सम्पत्ति के पूर्वाग्रह में सरकारी रिकार्डों में भी बख्शी गुलाम मोहम्मद या उनके सम्बन्धियों के लाभ के लिए रद्दोबदल की थी।" दुर्भाग्यवश, इस क्षेत्र में स्थिति वैसे ही बनी रही, बल्कि और भी खराब हो गई। प्रायः राजनीतिज्ञ और प्रशासक न्याय, ईमानदारी और कार्य-कुशलता तथा स्वस्थ परम्पराओं को समूल नष्ट करने के लिए एक-दूसरे को सहयोग देते थे।

इससे थोड़े अलग ढंग की घटना भी वर्णन योग्य है। यह घटना 1984-85 में राज्य परिवहन निगम में बस चालकों की भरती से सम्बन्धित है। परिवहन मंत्री ने निगम के मैनेजिंग डायरेक्टर को 150 लोगों की सूची दी और उन लोगों को बस-चालक नियुक्त करने के लिए कहा। जब मैनेजिंग डायरेक्टर ने यह बताया कि चयन के लिए कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना जरूरी है, तो उन्हें कहा गया कि इस बात की परवाह वे न करें। और जब मैनेजिंग डायरेक्टर ने परिवहन मंत्री को बताया कि उनमें से कुछ लोगों के पास ड्राइविंग लाइसेंस तक नहीं हैं, तो उन्हें निर्देश दिये गये कि उन लोगों को ड्राइविंग लाइसेंस दे दिये जायें। "आपके मैनेजिंग डायरेक्टर होने में क्या फायदा अगर आप कुछ ड्राइविंग लाइसेंसों का भी बन्दोबस्त नहीं कर सकते?" मंत्री की यह टिप्पणी थी। चयन और नियुक्ति की प्रक्रिया किस हद तक गिर चुकी थी! सार्वजनिक सुरक्षा की आवश्यकताओं

को भी अनदेखा कर दिया गया। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि जम्मू-काश्मीर राज्य में दुर्घटनाओं की दर सर्वाधिक थी।

सार्वजनिक सुरक्षा और न्याय के आधारभूत सिद्धान्तों के प्रति इतनी लापरवाही, एक सीमा तक इस वजह से थी कि नेशनल कांफ्रेंस ने जम्मू-काश्मीर चुनावों को प्रशासन में ईमानदारी की वजह से नहीं, बल्कि जातीय, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने वाले नारों के आधार पर जीता था।

भरती की इस प्रक्रिया में निम्न स्तरीय राजनीतिकरण ने अनेक अनचाही चीजों को जन्म दिया। कभी-कभी एक ही तरह के लोगों को भरती कर लिया जाता था। ये लोग एक वर्ग में आते थे। उनकी प्राय: एक सी राजनैतिक मनोवृत्ति और निष्ठाएं थीं। शेर-ए-काश्मीर मेडिकल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज में श्रेणी चतुर्थ में सैंकड़ों लोगों की भरती इस बात का एक विशेष उदाहरण है। इस संस्थान की वित्तीय व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के योजना आयोग द्वारा 62 करोड़ रुपये तक की गई थी। नेशनल कांफ्रेंस के मुख्यालय 'मुजाहिद मंजिल' से एक टेलीफोन की जरूरत थी और ये कर्मचारी प्रदर्शन के लिए कहीं भी उपस्थित हो जाते थे। वे संस्थान की बसों का प्रयोग कर सकते थे। जब 1983 में इंदिरा गांधी श्रीनगर आई तो लगभग इन सभी काश्मीरियों को काले झण्डे देकर हवाई अड्डे भेजा गया था। यह विडम्बना ही थी कि इस तरह केन्द्रीय सहायता अपने ही वित्त से काश्मीर में उन तत्त्वों का भरण-पोषण कर रही थी जिन्हें बड़ी ही कुशलतापूर्वक केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध ही इस्तेमाल किया जाता था। यदि थोड़ा-सा विचार किया जाता और वित्तीय सहायता के साथ-साथ चयन की सही प्रक्रिया पर जोर दिया जाता तो ऐसी स्थिति से बचा जा सकता था। मसलन, इम्प्लॉयमेंट एक्सचेंज के जरिये की गई भरती इस अधिकारी वर्ग की मनमानी को रोक सकती थी।

मैंने स्थिति को ठीक करने का प्रयास किया। 7 मार्च से 6 सितम्बर, 1986 तक के अल्पकालीन राज्यपाल शासन के दौरान मैंने इस क्षेत्र में कुछ मुख्य सुधार कार्य शुरू किये। अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए मैंने जम्मू-काश्मीर राज्य के सहायक सेवा भरती अधिनियम 1986 को लागू किया। लेकिन काश्मीर की राजनैतिक व्यवस्था में धोखाधड़ी और भाई-भतीजावाद इतना गहरा पैठ गया था कि जैसे ही नवम्बर, 1986 में डॉ० अब्दुल्ला की सरकार आई, इस अधिनियम को हटा दिया गया।

राज्य के राजनैतिक नेता जिन मूल्यों का आचरण करते थे और केन्द्रीय सरकार सार्वजनिक प्रशासन के महत्त्वपूर्ण मुद्दों को जिस लापरवाही से देखती थी उसका स्पष्ट प्रमाण 1984-85 में लोकसभा चुनाव के दौरान घटी घटना से मिलता है।

दिसम्बर, 1984 में, मुझे समय पर यह सूचना मिल गई कि मुख्यमंत्री जी० एम० शाह के गुट ने श्रीनगर चुनाव क्षेत्र से उनके पुत्र मुजफ्फर शाह को लोकसभा चुनाव में जिस किसी प्रकार जिताने की पूरी योजना बना ली है। मैं तत्काल हवाई जहाज से श्रीनगर पहुंचा और इस उपक्षेत्र के उच्चाधिकारियों तथा पुलिस के डायरेक्टर जनरल की बैठक बुलाई। बैठक में मैंने अधिकारियों को याद दिलाया कि चुनाव भारत के चुनाव आयोग की देख-रेख में हो रहे हैं

और केवल आयोग के ही निर्देशों का पालन करने की जरूरत है। मैंने उनके वैधानिक, प्रशासनिक और नैतिक कर्त्तव्यों के बारे में भी सामान्य तौर पर बात की। अधिकारियों को संकेत मिल गया और वे इस 'योजना' से हट गये जिसका स्वरूप और परिणाम दोनों ही दुष्टतापूर्ण थे।

'योजना' असफल हो गई। मुजफ्फर शाह बुरी तरह हार गया। लेकिन जिन राजनैतिक शासकों को बेरोक-टोक मनमानी करने की आदत थी, उन्होंने प्रतिकार किया। बड़े पैमाने पर तबादलों का आदेश जारी किया गया। इसको रोकने की मैंने कोशिश की, लेकिन मेरे पास कोई शक्ति या वैधानिक सामर्थ्य नहीं थी। केन्द्रीय सरकार की तटस्थता अत्यधिक थी। यहां तक कि प्रधानमंत्री से मेरी व्यक्तिगत बातचीत और उनको सम्बोधित मेरे अर्द्ध-औपचारिक पत्र का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 9 जनवरी, 1985 को अपने पत्र में मैंने लिखा—

"बड़े पैमाने पर स्थानान्तरणों का आदेश दिया गया है और उन्हें कुछ ही घंटों के भीतर लागू भी कर दिया। वे सभी अधिकारी जिन्होंने न्यायपूर्ण चुनाव करवाने और घाटी में बड़े पैमाने पर हिंसा को रोकने के हमारे अनौपचारिक सुझावों का पालन किया था, उन्हें परेशान और अपमानित किया गया है। स्थानांतरण की जल्दबाजी जानबूझ कर की गई है और यह मुझे तथा केन्द्रीय सरकार को प्रभावहीन बनाने का एक हिस्सा है। एक खतरनाक और विस्फोटक स्थिति पैदा की जा रही है। इस सर्वाधिक संवेदनशील राज्य के प्रशासन और राजनीति पर इसके अल्पकालिक और दीर्घकालिक भयानक प्रभाव होंगे।"

स्थानीय अफसरशाही, जोकि दलबंदी से बोझिल थी, ने भी जिम्मेदारी का कोई भाव नहीं दिखलाया। उनमें से कुछ ने तो खुशी-खुशी नये अवसरों को झपट लिया।

राज्यपाल शासन के दौरान अखिल भारतीय सेवाएं—भारतीय प्रशासनिक सेवाएं, भारतीय पुलिस सेवा, और भारतीय वन सेवा—पुनर्गठित की गईं। उनके वर्गों का तर्कसंगत विभाजन किया गया और उन्हें सामान्यतः प्रोत्साहन दिया गया। भरती और नियुक्ति की प्रक्रिया को न्यायपूर्ण बनाने के लिए एक स्वतन्त्र सवैधानिक सहायक सेवा चयन समिति स्थापित की गई। अर्द्ध-न्यायिक मामलों की जांच-पड़ताल के लिए, स्वतन्त्र ट्रिब्यूनल बनाये गये। भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सशक्त अभियान चलाया गया और बहुत-से पुराने, जीर्णशीर्ण तत्त्वों को हटा दिया गया। बाईस उच्चाधिकारियों को सेवा-निवृत्त कर दिया गया। जनता से साक्षात्कार की नई व्यवस्था आरम्भ की गई ताकि निर्धनतम और साधनहीन लोग भी सीधे मुझसे सम्पर्क कर सकें। इस व्यवस्था से जनता की शिकायतों को शीघ्र निपटाने में ही सहायता नहीं मिली बल्कि इसने पूरी प्रशासनिक मशीनरी के लिए 'पारदर्शी' के रूप में भी काम किया। इससे मैं प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर क्या हो रहा है, यह देखने में समर्थ हो सका। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मैं लगभग 22,000 लोगों से मिला जो समाज के विभिन्न वर्गों व स्तरों के थे। इससे पूरी मशीनरी कार्यशील, सावधान और जनता की जरूरतों के प्रति जवाबदेह बन गई। पूरी व्यवस्था का एक तरह से मानवीयकरण भी हुआ।

जब राज्यपाल शासन खत्म होने को था, तो मैंने केन्द्रीय सरकार को सलाह

दी कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि जो संस्थागत स्वरूप मैंने गठित किया था और जिसकी उन्होंने स्वयं प्रशंसा की थी, उसे राज्य सरकार बिखरने न दे। यह बात विशेषकर ध्यान देने योग्य थी क्योंकि राज्य सरकार राजीव-फारूख समझौते के नतीजन आ रही थी। बातों का तो बहुतायत में आश्वासन दिया गया। लेकिन दरअसल, कुछ नहीं किया गया।

जल्द ही राजनैतिक उस्ताद अपने चालबाजी और व्यक्तिगत तथा पार्टी स्वार्थों के लिए धोखाधड़ी के पुराने खेल पर आ गये। अब एक ही उदाहरण लिया जाये, 1989 के मध्य में कृषि विभाग में 1,100 पद बनाये गये। इन पदों को भरने के लिए, साझेदार दलों में मतभेद खड़ा हो गया—कि नेशनल कांफ्रेंस (फा) और कांग्रेस (ई) के बीच पदों को 80 : 20 के अनुपात में बांटा जाये या 70:30 अथवा 60 : 40 में। इस झगड़े से पदों पर नियुक्ति में ही देरी नहीं हुई बल्कि दोनों राजनैतिक दलों में काफी तनाव भी आ गया। यह तब हुआ जब विघटन और आतंकवाद राज्य सरकार की दहलीज़ पर उग्र रूप धारण किये खड़े थे।

आई ए एस तथा आई पी एस अधिकारियों को जिले में स्थानांतरित न करने की प्रथा फिर आ गई। मसलन, 1988 में 14 डिप्टी कमिश्नरों के पद पर, केवल छः आई ए एस अधिकारी काम कर रहे थे। इसी प्रकार पुलिस सुपरिंटेंडेंट के 14 पदों पर केवल पांच आई पी एस अधिकारी कार्यरत थे। गैर आई ए एस तथा गैर आई पी एस अधिकारियों को वरीयता देने की इस प्रवृत्ति से अखिल भारतीय सेवाओं की भूमिका फीकी ही नहीं पड़ी बल्कि इससे मूलभूत स्तर पर राजनैतिज्ञों तथा सार्वजनिक सेवाओं के बीच अस्वस्थ और घृणित गठबन्धन को भी सहायता मिली। इससे भ्रष्टाचार और कुरीतियों की एक दूसरी लहर दौड़ गई। फरवरी, 1988 में मैंने पाया कि पिछले नौ महीनों में लगभग तीन करोड़ रुपया उन लोगों को वेतन देने में व्यय हुआ है जिन्हें मंत्रियों के कहने पर दिहाड़ी पर रखा गया था। भाई-भतीजावाद का यह स्तर बढ़ता ही चला गया। दिन-ब-दिन छोटी-छोटी किन्तु हानिकारक परेशानियां खड़ी ही होती चली गई।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला के शासन में राज्य में अनेक अन्य कमज़ोरियां भी थीं। मार्च, 1988 में मैंने इस संदर्भ में स्थिति को समझा और यह जाना कि जबकि वर्तमान असंतोष का दोष बेरोज़गारी पर डाला जा रहा था, राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में 16,310 पद रिक्त पड़े थे। प्रशासन ऊपर तक भरा था। लगभग 70 लाख की आबादी वाले राज्य में 10 तो अतिरिक्त मुख्य सचिव थे, तीन पुलिस डायरेक्टर जनरल और पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल और अतिरिक्त इंस्पेक्टर जनरल के पद पर लगभग एक दर्जन अधिकारी थे। इससे उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों में बिखराव आ रहा था। जान पड़ता था कि उच्च सेवाओं में गुटबन्दी रोकने के लिए या तो राजनैतिक नेतृत्व इच्छुक नहीं था या फिर असमर्थ था। इससे प्रशासन की कार्य-कुशलता और भी कम हो गई। ग्यारह सरकारी उद्योग घाटे में चल रहे थे। वे लगभग 71 करोड़ रुपये के नुकसान में थे। यह दुःखद स्थिति, अत्यधिक नियुक्तियों, आधुनिकीकरण की कमी और काम की एक उचित पद्धति न होने के कारण पैदा हुई। किस सीमा तक अत्यधिक नियुक्तिया की गई थीं, यह इस तथ्य से जाना जा सकता है

कि हर एक बस के लिए, छः चालक तथा आठ सवाहक और सफाई कर्मचारी थे। साधन तो निस्संदेह सीमित थे। लेकिन, विभिन्न संस्थाओं से बड़ी मात्रा में धन की वसूली शेष थी—25 करोड़ रुपये वनों की पट्टेदारी से, 32 करोड़ रुपये बिक्री कर से और 83 लाख रुपये चुंगी ठेकेदारों से। 1988-89 में सरकारी वनों पर कब्जे की घटनाएं 300 से बढ़कर 600 हो गई। वन विभाग के लगभग 14,000 मुकद्मे अदालत में पड़े थे जिन पर लगभग कोई कार्यवाही नहीं हो रही थी। धन की कमी के बावजूद, दीवाली पर राज्य सरकार अधिकारियों द्वारा केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को लगभग एक लाख रुपये तक के उपहार दिये जाते थे। धन की यह मात्रा नही वरन् यह प्रवृत्ति स्वयं में बहुत कुछ व्यक्त करती है, जबकि धन की कमी पर लगातार बातें की जा रही थीं। लगभग 2.5 करोड़ रुपये एक हेलीकाप्टर खरीदने तथा उसकी मरम्मत पर खर्च किये गये। राज्य में एक प्रकार हेलीकाप्टर-संस्कृति विकसित हो गई थी। विंसेंट ए० स्मिथ ने मध्ययुगीन काल के बारे में लिखा था, "सरकारी मामलों में काश्मीर की जितनी बुरी स्थिति थी, वह शायद ही विश्व के किसी और क्षेत्र में पैदा हुई हो।" यह टिप्पणी समकालीन काश्मीर पर लागू नहीं होती। लेकिन, इस समय में भी काश्मीर इतना भाग्यवान् नहीं रहा कि उसके पास एक स्वस्थ प्रशासन हो। कुछ छोटे अन्तरालों को छोड़कर, अक्टूबर, 1947 से काश्मीर में ऐसी प्रवृत्तियां लक्षित हुईं जो आधुनिक और न्यायपूर्ण होने की बजाय ज्यादा सामन्तवादी और पराश्रित थी। यह एक व्यवस्थित स्वरूप भी नहीं ले पाया: यह बास से बने एक सुन्दर ढांचे की शक्ल भी नहीं ले पाया। इसके कमजोर ढांचे को अक्सर जी० एम० शाह और डॉ० अब्दुल्ला जैसे देख-रेख करने की सनक और आदतों से हिलाते रहे। इसमें हैरानी की बात नहीं है कि अपने ही विरोधाभासों के परिणामस्वरूप यह ताश के पत्तों से बने घर की तरह बिखर गया।

सार्वजनिक भ्रष्टाचार में पैठी जड़ें

2 मई, 1988 को जम्मू में बच्चों के अस्पताल की एक तिमंजिला इमारत ढह गई। यह ताश के पत्तों से बने घर की तरह बिखर गई। आरम्भिक अवस्था में लगभग 100 बच्चों, उनके सरक्षकों और अस्पताल कर्मचारियों की इस दुखद घटना में शिकार होने की आशंका थी। सौभाग्यवश, इतनी संख्या में लोगों को क्षति न पहुंची। 10 लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा, 27 गम्भीर रूप से घायल हुए।

यह भयावह त्रासदी, जो पूर्णरूप से अस्वाभाविक और कृत्रिम थी, राज्य प्रशासन में भ्रष्टाचार की गहरी जड़ों का प्रतीक थी। इस इमारत को बने केवल पांच साल ही हुए थे। जाहिर है, इसमें निम्नकोटि का कच्चा माल इस्तेमाल किया गया था और धन देवता के समक्ष सुरक्षा के सारे नियम बलि चढ़ा दिये गये थे। इस 'धन देवता' के भक्त प्रशासकों, इंजीनियरों और राजनीतिज्ञों के बीच थे। इस त्रासदी से प्रशासन में लगी घुन का भी पता चला—जैसे नौकरियों के लिए चयन व नियुक्ति के गलत तरीके, इंजीनियरों की नियुक्ति व स्थानांतरण, ठेका दिये जाने के वक्त राजनैतिक तत्वों द्वारा अपने प्रभाव का प्रयोग, अफसरशाही की सामान्य लापरवाही और नागरिक सुरक्षा के लिए

व्यवस्था का अभाव। यदि समय पर सेना की सहायता नहीं मिलती तो जन-जीवन का नुकसान कहीं अधिक होता।

मार्च, 1988 में अपने एक सार्वजनिक कथन में जी० एम० शाह ने यह स्वीकार किया कि उन्होंने आवामी एक्शन कमेटी के प्रमुख, मीरवायज़ मौलवी फारुख को अपने पुत्र मुज़फ्फरशाह द्वारा श्रीनगर चुनाव क्षेत्र से दिसम्बर, 1984 के लोकसभा चुनावों में विजयी होने में सहायता देने के लिए एक लाख रुपये दिये थे। सामान्यत: यह विश्वास कर लिया गया कि जी० एम० शाह सच बोल रहे थे, लेकिन किसी ने यह नहीं पूछा कि उनके पास इतनी राशि कहां से आई और क्या उन्होंने इसे आयकर तथा अन्य दस्तावेजों में दर्ज़ करवाया था? न तो किसी राज्य संस्था ने, न ही किसी केन्द्रीय संस्था ने इस बारे में कोई जांच-पड़ताल की जबकि यह आरोप पूर्व मुख्यमंत्री द्वारा लगाये गये थे।

16, जुलाई, 1988 को अपने दूसरे सार्वजनिक बयान में जी० एम० शाह ने आरोप लगाया, "डॉ० अब्दुल्ला के पास बहुत-सी नये माडलों की मोटर कारें हैं जिसका मूल्य लगभग 32 लाख रुपये है। केवल एक मोटर साईकिल की कीमत ही 73,000 रुपया है। मैं यह मांग करता हूं कि मुख्यमत्री अपनी उस आय का साधन बताएं जिससे उन्होंने ये कारें खरीदीं।" इसका भी कोई उत्तर नहीं मिला।

मैंने यह उदाहरण यह दिखाने के लिए दिये हैं कि काश्मीर में भ्रष्टाचार इतना स्थिर और स्थानीय हो गया था कि उसे एक अजीब सहिष्णुता से देखा जाता था। शरीर और आत्मा तक को भ्रष्टाचार ने भावशून्य बना दिया था। राजनीतिज्ञों, व्यापारियों और सरकारी अधिकारियों द्वारा कीमती और आलीशान बंगले बनवाना, उनके रहन-सहन का तरीका, उपभोग का मूल्य, सड़कों पर चीटियों की तरह बढ़ती मारुति कारें, करों का बहुत कम दर पर भुगतान, ये सब राज्य में बड़े पैमाने पर उपस्थित भ्रष्टाचार के संकेत थे। लेकिन इसे खत्म करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। नतीजा यह है कि पर्यावरण विपाक्त होने की वजह से जहां, घाटी की गुनगुनाती खूबसूरत धाराएं अपना रेशमी रूप-रंग खो रही हैं, वहीं भ्रष्टाचार की धारा बिना किसी अवरोध के अपने पूरे भद्देपन के साथ बह रही है।

अप्रेल, 1984 में अपनी नियुक्ति के कुछ ही महीनों के दौरान मुझे हैरानी थी कि सरकारी नौकरियों के लिए इतनी असाधारण हड़बड़ाहट क्यों थी, नये-नये पद क्यों बनाये जा रहे थे, जबकि उनकी कोई ज़रूरत नहीं थी। लोग छोटी-छोटी नौकरियों के लिए भी रिश्वत में बड़ी-बड़ी धनराशि देने के लिए क्यों तैयार हो जाते थे; और मंत्री तथा राजनैतिक कुलीन वर्ग इस बात का ध्यान क्यों रख रहे थे कि वे अपने सम्बन्धियों को छोटी-छोटी नौकरियां देकर उन पर जीवन-भर का अहसान लाद दें?

जल्दी ही, इन प्रश्नों का उत्तर मुझे एक साधारण तथ्य में मिल गया—जम्मू-काश्मीर में नौकरी करने की सामान्य से कुछ अधिक महत्ता थी। इनमें बहुत मात्रा में अतिरिक्त आय होती थी। एक बार नियुक्ति हो जाने के बाद, अधिकारियों को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। बहुत सारे अवकाश मिलते थे, बहुत कम काम था और तत्काल धन प्राप्ति की अनेक सम्भावनाएं थीं। अगर कोई डॉक्टर था तो वह अस्पताल का काम करने की बजाय प्राइवेट क्लीनिक

में मरीजों को देखकर ढेर सारा पैसा कमा सकता था। कोई अध्यापक था तो घर में ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर छात्रों को जमा कर सकता था। जो ट्यूशन नहीं लेते, उनके प्रति वह कठोर हो जाता और जो उससे ट्यूशन लेते, उनके प्रति पक्षपात करता। क्योंकि नौकरियां बेईमानी से पाई गई थी इसलिए अधिकारियों की आत्मा उन्हें खुले आम गलत काम करने पर भी नहीं कचोटती थी।

भ्रष्टाचार ने पूरी व्यवस्था को पंगु और अमानवीय बना दिया। जून, 1986 में राज्यपाल शासन के दौरान मैंने काश्मीर का भ्रमण किया। यह मेरी आदत थी कि मैं अपने दौरों में अस्पताल, स्कूल और नागरिक समितियों के कार्यालयों में जाता था जहाँ जनता प्रशासन के सीधे सम्पर्क में आती है। किश्तवाड़ अस्पताल में मैंने एक 15 साल के लड़के को देखा जो भयानक पीड़ा में था। वह गिर गया था और उसकी दोनों बाहें बुरी तरह से टूट गई थी। जाच करने पर, उस लड़के के पिता ने मुझे बताया कि अस्पताल से सम्बन्धित डॉक्टर ने उससे लड़के को टैक्सी में जम्मू ले जाने के लिए कहा था, क्योंकि लड़के के टूटे हुए जोड़ों को सही स्थिति में लाने के लिए सर्जरी की जरूरत थी। इस पूरी प्रक्रिया का व्यय लगभग 2,700 रुपये आता और साथ ही लड़के को पहाड़ी विषम क्षेत्र में पीड़ाजनक यात्रा करनी पड़ती। गरीब पिता के पास 20 रुपये भी नहीं थे। मैंने धन का बंदोबस्त किया और लड़के को जम्मू भेज दिया। लेकिन यह बात अलग है।

पूरी घटना ने एक भ्रष्ट और आत्मविहीन व्यवस्था को खोलकर रख दिया। लिखित रूप में इस व्यवस्था के नियोजित उद्देश्य पूरे हो चुके थे लेकिन व्यावहारिक रूप में यह जरूरतमंद की कोई सहायता नहीं कर सकता था। इस घटना से 'सत्ता के कुलीन वर्ग' के षड्यन्त्र के विषैले ताने-बाने और राज्य में डॉक्टर-राजनीतिज्ञ साठ-गाँठ का भी रहस्योद्घाटन हुआ। मैंने पाया कि किश्तवाड़ अस्पताल में एक ऑपरेशन कक्ष था, एक योग्य शल्य चिकित्सक भी था, लेकिन एनेस्थेसिया देने वाला कोई नहीं था हालांकि इसके लिए एक स्वीकृत पद था। मुझे पता चला क्योंकि सरकारी डॉक्टरों और एनेस्थेसिया देने वालों को व्यक्तिगत रूप से काम करने की आज्ञा थी, इसलिए ये लोग अपने राजनैतिक उस्तादों की कृपा से श्रीनगर या जम्मू में रहकर निजी काम में खूब पैसा कमाते थे।

नितान्त अमानवीय तथा गरीबों को लूटने के अनेक अन्य मामले भी मेरे सामने आये। मैंने सरकारी डॉक्टरों की व्यक्तिगत प्रैक्टिस पर प्रतिबन्ध लगा दिया और साथ ही गैर-प्रैक्टिस भत्ता भी शुरू कर दिया। जनता और प्रेस द्वारा इस कदम की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। अस्पताल सेवा में नाटकीय सुधार आया। दुराचार कम हुआ। नि.शुल्क दवाओं की उपलब्धि सरल हो गई। मेडिकल कॉलेजों में अध्यापन नियमित हो गया। जब कुछ डॉक्टरों ने हाई कोर्ट में मेरे आदेश को चुनौती दी तो अदालत ने इस आदेश को उचित और जनता के हित में माना। लेकिन जैसे ही तथाकथित लोकप्रिय मंत्रिमण्डल वापस आया, उसने सारे लोकप्रिय सुधारों को प्रतिवर्तित कर दिया। इससे आम लोगों में काफी क्रोध व क्षोभ उत्पन्न हुआ। काश्मीर में भ्रष्टाचार और घुले-मिले सत्तालोलुप समाज ने लोकतन्त्र को एक निरर्थक पहेली बना दिया था।

जैसे ईमानदारी और सौहार्द साथ-साथ चलते हैं वैसे ही भ्रष्टाचार और लापरवाही भी साथ-साथ चलते है। यह सार्वजनिक भ्रष्टाचार का ढंग ही है जो

प्रशासन को महंगा और अमानवीय बनाता है। पिछले दशक में काश्मीर में देखी गई कट्टरपंथी और नैतिक प्रवृत्ति कुछ सीमा तक भ्रष्टाचार, लापरवाही और उपभोक्तावाद की इसी संस्कृति की प्रतिक्रियाएं हैं। भ्रष्टाचार को लेकर जनता का असंतोप जहां सरकार की छवि को मलिन करता है वहीं कट्टरपंथियों को लाभ पहुंचाता है। मसलन, पीपल्स लीग का अध्यक्ष और विघटनकारियों का नेता, फारूख रहमानी वर्षो से यही प्रचार कर रहा है, "बाहर के लोगों की क्या कहें, हमारे लोग ही हमसे भेड़ों-सा वर्ताव कर रहे हैं और निर्दयतापूर्वक हमारी गर्म खाल उधेड़ रहे हैं।"

केन्द्रीय सरकार ने तो सामान्यत: काश्मीर में फैले भ्रष्टाचार से आंखें ही फेर ली थीं। जब 1953 में बख्शी गुलाम मुहम्मद राज्य के प्रधानमंत्री बने, तो वे काश्मीरियों को खुश और सन्तुष्ट रखते थे। उनको केन्द्रीय कोप से काफी मात्रा में वित्तीय सहायता मिली और इसका उपयोग उन्होंने लोगों की सहायता करने और विकास कार्यो को पूरा करने में उदारतापूर्वक किया।

बख्शी गुलाम मुहम्मद, स्वयं में एक महान नेता, महान संगठनकर्त्ता और हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान समर्थक थे। उन्होंने छोटे पद से उन्नति की थी और वे आम काश्मीरी के दु:ख-दर्द को समझते थे। लेकिन उनकी त्रासदी यह थी कि, समाज को पुनर्गठित, इसके आधार में सुधार तथा प्रशासन का आधुनिकीकरण करने की बजाय, उन्होंने सामन्तवादी परम्पराओं का सहारा लिया और अपने, अपने परिवार के सदस्यों और मित्रों के लिए बड़ी मात्रा में धन इकट्ठा किया। राज्य और केन्द्रीय स्तर पर उनके राजनैतिक विरोधियों ने इस बात को बहुत उछाला। आखिरकार कामराज योजना के अन्तर्गत उन्हें पद-च्युत कर दिया गया। 30 जनवरी, 1965 को बख्शी गुलाम मुम्मद पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने के लिए जम्मू-काश्मीर कमीशन ऑफ इंक्वायरी अधिनियम 1962 के अनुसार एक कमीशन बैठा। इस एक-व्यक्ति कमीशन के सदस्य जस्टिस अयंगार थे।

अयंगार कमीशन की खोज-बीन से उन बातों की पुष्टि हो गई जो पहले से जगजाहिर थीं। जहां तक बख्शी के राजनैतिक विरोधियों के उद्देश्य का सवाल है, वह तो पूरा हो गया; एक राजनैतिक शक्ति के रूप में तो वे लगभग खत्म हो गये। लेकिन कमीशन राज्य में भ्रष्टाचार की मात्रा घटाने में असफल रहा। भ्रष्टाचार की यह धारा बहती रही। वास्तव में, इसके बाद जो हुआ, उससे यह जाहिर हुआ कि बख्शी गुलाम मुहम्मद का उतना दोप नहीं जितना उनके प्रति काम करने वाले लोगों का था।

'लाल किताब' नाम से प्रकाशित एक लघु पुस्तिका में शेख अब्दुल्ला और उनके परिवार द्वारा किये गये भ्रष्टाचार के कृत्यों की सूची थी। अस्सी के दशक की शुरुआत में, यह गुप्त रूप से पढ़ी जाती थी। हो सकता है कि यह लघु पुस्तिका राजनैतिक रूप से प्रेरित रही हो। लेकिन आरोपों की विशिष्टता ऐसी थी कि शेख अब्दुल्ला की 'ऐतिहासिक महानता' ही लोगों को उन पर विश्वास करने से रोकती थी। किसी भी हाल में, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि शेख की नाक के ठीक नीचे भ्रष्टाचार फलता-फूलता रहा। यह बात अलग है कि वह 'नाक' बीमार थी और चारों ओर फैले भ्रष्टाचार की भनक भी न पा

सकी। वन के पट्टे जारी करने, होटलों के लिए जमीन देने, उद्योगपतियों को अनुदान देने, ठेका देने, सरकारी सम्पत्ति को बेचने और पट्टे के समझौतों का दुरुपयोग करने में भ्रष्टाचार साफ-साफ दीख पड़ता था।

1977 के बाद शेख अब्दुल्ला को लगभग असीमित शक्ति मिल गई। और भ्रष्टाचार को कश्मीर में नये आयाम मिल गये। सत्ता-चक्र और करीब हो गया; राजनीतिज्ञों और नागरिक सेवा अधिकारियों की भूमिका घुल-मिल गई; अनुच्छेद 370 के लबादे ने और भी गहरा तथा भयंकर रूप ले लिया; और ठोस, अच्छे तथा ईमानदारी से किये गये काम पर निर्भर होने की बजाय, धन-शक्ति तथा धर्मांधता और जातीयता की भावनाओं के शोषण का बढ़-चढ़कर सहारा लिया जाने लगा। लॉर्ड एक्टन की इस टिप्पणी का व्यावहारिक रूप सरलतापूर्वक दृष्टिगोचर था, "शक्ति भ्रष्ट करती है, और संपूर्ण निरंकुश शक्ति पूर्णतया भ्रष्ट कर देती है।"

अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण दूंगा। और, यह उदाहरण डल झील के किनारे या डल झील पर अनेक होटलों के निर्माण से तथा आज जिसे मुख्य मार्ग कहा जाता है, उसके निर्माण से सम्बन्धित है। यहां जमीन के बहुत-से हिस्से प्रभावशाली व्यापारियों को होटल तथा व्यापारिक इमारतें बनाने के लिए सस्ती दरों पर दे दिये गये। झील के चांदी से वक्ष पर एक स्थायी घाव बना दिया गया। सारी गंदगी और सीवर को झील में बहने देने तथा सार्वजनिक पार्किंग की कोई जगह न छोड़ने के कारण यह क्षति दुगनी हो गई। अब एक आधुनिक झोंपड़पट्टी का इलाका ठीक डल झील के किनारे बन गया है जो इसकी खूबसूरती को खराब कर रहा है और झील में पैदा हुई खर-पतवार में वृद्धि कर रहा है। सत्ता के चक्र में शामिल होकर व्यक्ति को शायद इससे फायदा हुआ—राजनीतिज्ञ, व्यापारी और अधिकारियों को भी। लेकिन झील का सिकुड़ता क्षेत्र, उससे उठती बदबू भ्रष्टाचार और शक्ति की संस्कृति के एक त्रासदीपूर्ण परिणाम के रूप में हमेशा विद्यमान रहेगी।

आबिदा हुसेन ने अपनी किताब 'शेख अब्दुल्ला का जीवन' में यह दर्ज किया है—

"शेख अब्दुल्ला और उनके परिवार के पास, सत्ता में आने से पूर्व, थोड़ी ही सम्पत्ति थी। आज उनकी अचल सम्पत्ति का मूल्य ही 20 करोड़ रुपये से अधिक है। धन का यह विलक्षण संकलन विशेषकर 1975 से 1981 के दौरान ही हुआ। उनकी सम्पत्ति मुख्यतः व्यापारिक रूप से राज्य में सबसे मूल्यवान् सरकारी भूमि पर अवैध अधिकार और इन जगहों पर खड़ी हुई शानदार इमारतों के रूप में है। यह कहना जरूरी नहीं है कि ये इमारतें सरकारी विभागों के साथ काम कर रहे ठेकेदारों द्वारा सभी तरह के संदिग्ध सूत्रों से धन व कच्चा माल प्राप्त करके बनाई गई हैं।"

2 जुलाई, 1984 से 6 मार्च, 1986 तक जी० एम० शाह के शासनकाल में एक नये होटल की इमारत के पास खाली पड़ी जगह को पाकिस्तान सेना के सेवा-निवृत्त मेजर जनरल के लिए उपलब्ध करवाकर, और भी क्षति पहुंचाई गई। इस मेजर जनरल पर यह जोर डाल दिया गया कि वह भूमि पर शरणार्थी भूमि के रूप में दावा करे। मुझे इसका पता चला, तो मैंने इस सुझाव को टाल

दिया।

जो डॉ० फारूख़ अब्दुल्ला ने किया, वह वाकई आश्चर्यजनक था और उससे ज़ाहिर हो गया कि सत्ता का स्वरूप कितना सनकी और बिगड़ चुका था और किस तरह छल और स्वार्थ उन पर हावी हो चुके थे।

1984 के आरम्भ में एक सेमिनार के दौरान, जिसका उद्घाटन मैंने ही किया था, डॉ० अब्दुल्ला ने मुख्य मार्ग पर होटल बनाने के शेख के निर्णय की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा, "इन होटलों के निर्माण की अनुमति देकर महान अपराध किया गया है। ये सब होटल जला दिये जाने चाहिए। उन्होंने झील के तट को लूटकर जीर्ण-शीर्ण कर दिया है।" मुझे ये शब्द सुनकर खुशी हुई। मैंने सोचा, डॉ० अब्दुल्ला एक जाग्रत नेता हैं और वे पर्यावरण सुरक्षित रखने के लिए ज़रूरी बातों के प्रति सचेत हैं। लेकिन यह जानने में देर नहीं लगी कि वह भी भेड़ की खाल में भेड़िया हैं। इस घोषणा के कुछ ही महीनों बाद डॉ० अब्दुल्ला ने न केवल इस होटल-निर्माण को अनुमति दी बल्कि एक अनुचित जगह पर बड़े होटल के नींव का पत्थर भी रखा। यह स्थान झील को सर्वाधिक विषाक्त कर रहा है, जगह की खूबसूरती को खराब करने का सबसे बड़ा कारण बन चुका है और पहाड़ों को चीरती एक सड़क पर भारी यातायात तथा शोर की वजह से पहाड़ों की हरियाली और शांति भंग कर रहा है। एक चीज़ कहने और उसके ठीक विपरीत काम करने का इससे दु:खद उदाहरण कोई और नहीं हो सकता। वास्तव में समय के साथ-साथ, काश्मीर में एक ओर भ्रष्टाचार की जोर-शोर से निन्दा करने और दूसरी ओर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भ्रष्टाचार में शामिल होने की परम्परा-सी बन गई थी।

शेख अब्दुल्ला के शासनकाल में बड़े पैमाने पर हो रहे भ्रष्टाचार को डॉ० अब्दुल्ला ने अप्रत्यक्ष रूप से पहचाना था, जब वे शेख अब्दुल्ला के बाद सितम्बर, 1982 में मुख्यमंत्री बने। उन्होंने अपने मन्त्रिमण्डल में शेख अब्दुल्ला के साथी अनेक प्रमुख नेताओं को शामिल नहीं किया। उनमें डी० डी० ठाकुर, जी०एन० कोचक और जी०एम० भदरवाही प्रमुख थे। डॉ० फारूख एक तीर से दो शिकार करना चाहते थे। वे अपने पिता के मंत्रिमण्डल के महत्त्वाकांक्षी नेताओं को दूर रखना चाहते थे और साथ ही साथ जनता को यह भी दिखलाना चाहते थे कि वे भ्रष्टाचार को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। डॉ० अब्दुल्ला का मंत्रिमण्डल कोई आदर्शों का फरिश्ता या दूसरे शासन से अलग नहीं है— यह जल्द ही प्रमाणित हो गया।

बख्शी गुलाम मुहम्मद के शासनकाल के दौरान हुए भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में जस्टिस अयंगार ने दो विपरीत टिप्पणियां दी थीं। एक, राजनैतिक मुखिया की ओर से सरेआम अनुचित काम करने की अधिकारियों की इच्छा के बारे में थी। जैसाकि मैंने प्रशासनिक जड़ें नामक भाग में बताया है, अधिकारियों की यह इच्छा अब भी बरकरार थी। जस्टिस अयंगार की दूसरी टिप्पणी मंत्रिमण्डल की सभा में सीधे रूप से कुछ अनावश्यक बातें जोड़कर 'काम-काज के नियमों' का अतिक्रमण करने से सम्बन्धित थी। यह अस्वस्थ परम्परा भी जारी रही। जी० एम० शाह और फारूख अब्दुल्ला के शासनकाल में भी बहुत-से ऐसे मुद्दे, जिनके बारे में भ्रष्टाचार का सन्देह था, सीधे मन्त्रिमण्डल की बैठक में ही उठाये

गये जबकि उनकी ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी, न ही उनसे सम्बन्धित विभागों में उन पर कोई कदम उठाया गया था। जाहिर है, इसके पीछे कुछ गैर-कानूनी तथ्यों को रिकॉर्ड में न रखने और उत्तरदायित्वों के क्षेत्र को अस्पष्ट ही रहने देने का उद्देश्य था। जी० एम० शाह के मुख्यमंत्री काल के दौरान ऐसे मामलों के कुछ उदाहरण हैं – बातचीत के जरिये बिक्री कर के मामलों का बन्दोबस्त, नजूल जमीन का स्थायी तौर पर हस्तांतरण और डॉ० अब्दुल्ला के समय में नीडो और संतूर होटल तथा गोल्फ कोर्स वगैरह का स्थायी तौर पर हस्तातरण।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने कमीशन ऑफ़ इन्क्वायरी अधिनियम के अन्तर्गत जांच कमेटी नियुक्त की जिसे भ्रष्टाचार के आरोपों, विशेषकर शेख अब्दुल्ला मंत्रिमण्डल के कुछ सदस्यों को मकान बनाने के लिए जमीनें नियत करने के आरोप के बारे में जांच करनी थी। जम्मू-काश्मीर हाई कोर्ट के जस्टिस कोतवाल को जांच के लिए नियुक्त किया गया। लेकिन जैसे ही जी० एम० शाह मंत्रि-मण्डल आया और शेख मंत्रिमण्डल के भूतपूर्व मंत्री फिर से मंत्री बन गये तो कोतवाल कमीशन को खत्म कर दिया गया। दूसरी ओर, डॉ० अब्दुल्ला द्वारा किये गये भ्रष्टाचार और अनुचित कामों के आरोपों की जांच करने के लिए एक मंत्रिमण्डल उपसमिति बैठा दी गई। इस उपसमिति का नेतृत्व उप-मुख्यमंत्री डी० डी० ठाकुर ने किया। डी० डी० ठाकुर ने दुराचार और राष्ट्र-विरोधी गति-विधियों के लिए डॉ० अब्दुल्ला की कड़ी आलोचना की। लेकिन इन जांच और प्रति-जांच का कोई नतीजा नहीं निकला।

जी० एम० शाह और डॉ० अब्दुल्ला द्वारा लिये गये अनुचित निर्णयों की सूची इतनी लम्बी है कि पूरी तरह से बनाई जा सकती है न ही इसका पूरा-पूरा विश्लेषण किया जा सकता है। इसके लिए एक विशिष्ट उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

दिसम्बर, 1987 से, आसरा बिल्डर्स के विरुद्ध काफी शिकायतें मिलीं। आसरा बिल्डर्स डॉ० अब्दुल्ला मंत्रिमण्डल के राजस्व व शहरी विकास मन्त्री पी० एल० हाण्डू के दामाद रमन मट्ट द्वारा स्थापित बस्तियां बनाने के लिए जमीन खरीदने वाली एक प्राइवेट कम्पनी थी। इस पर आरोप था कि हाण्डू की सुप्रबन्ध मदद से आसरा बिल्डर्स ने राजस्व और नागरिक नियमों का अतिक्रमण करके जम्मू शहर की सीमा पर बहुत सारी जमीन खरीदी और किसी निर्माण योजना की स्वीकृति के बिना बहुत बड़ी धनराशि के बदले, इस जमीन को आवासीय भूखण्डों के रूप में बेच दिया। मैंने इस पर मुख्यमंत्री डॉ० फारूख अब्दुल्ला का ध्यान आकर्षित किया और इस सम्बन्ध में उन्हें तीन पत्र लिखे। अपने तीसरे पत्र में दिनांक 28 दिसम्बर, 1987 को मैंने लिखा, "मुझे यह बताते हुए दुःख है कि आसरा बिल्डर्स की गतिविधियां यथापूर्व चल रही हैं। इस सम्बन्ध में, मैं स्थानीय अखबारों में आसरा बिल्डर्स द्वारा दिये गये विज्ञापन की फोटो कॉपी भेज रहा हूं। मुझे यह समझ नहीं आता कि नगर निगम अथवा विकास प्राधिकरण के कस्बा योजना नियमों द्वारा स्वीकृति प्राप्त किये बिना और पहले कालोनी बनाकर और योजनानुसार सारी सेवाओं को उपलब्ध करवाये बिना, आवासीय भूखण्ड कैसे बेचे जा सकते हैं विज्ञापन की एक झलक ही यह

बता देती है कि भूखण्ड केवल कागजों पर ही बनाये गये हैं। आसरा बिल्डर्स हर तरह से नगर विकास योजना, क्षेत्रीय विकास और पर्यावरण सुरक्षा के सभी नियमों और सिद्धान्तों का अतिक्रमण कर रहे हैं। स्पष्ट है कि जमीनों के मामलों में धोखाधड़ी और सट्टेबाज़ी बेरोकटोक चल रही है। अवैध और अनियमित होने के साथ-साथ, इस तरह की गतिविधियों के लिए आने वाली पीढ़ी को भारी वित्तीय और पर्यावरण सम्बन्धी क़ीमत चुकानी पड़ेगी।"

पैंथर्स पार्टी के जनरल सेक्रेटरी श्री उदयचन्द और उमत-ए-इस्लाम के प्रमुख डॉ० काज़ी निसार और दक्षिण काश्मीर के 'मीरवाय' मेरे पास अलग-अलग आये और भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के अन्तर्गत पी० एल० हांडू मुकदमा चलाने की आज्ञा मांगी। मैंने उनके प्रार्थनापत्र टिप्पणी के लिए मुख्यमंत्री के पास भेजे लेकिन कोई जवाब नहीं आया।

एक प्रमुख वकील तथा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में रह चुके कानून मंत्री, एस० एन० कक्कड़, निगरानी समिति जिनसे सलाह करती थी, उनका विचार था कि 'आसरा बिल्डर्स' अनेक कानूनों का अतिक्रमण कर चुके थे। लेकिन एस० एन० कक्कड़ की रिपोर्ट पर कोई कदम उठाने के बजाय या पैंथर्स पार्टी या उमात-ए-इस्लाम के प्रार्थनापत्रों का जवाब भेजने की बजाय, मुख्यमंत्री ने यह केस संविधान सभा की गृह समिति के हवाले कर दिया। इसके पीछे स्पष्ट उद्देश्य काम में देरी करना और कानूनी प्रक्रिया का घुमा-फिराकर प्रयोग करना ही था। ज़ाहिर है, गृह समिति ऐसे मामलों की जांच करने के लिए उपयुक्त नहीं थी। जल्द ही यह ताने-बाने में उलझकर रह गई और कोई परिणाम नहीं निकला।

उन अनेक दूसरे मामलों का भी यही परिणाम हुआ जिनके सम्बन्ध में मैंने रिपोर्ट मांगी थी। पूरी शासन व्यवस्था इतनी जीर्णशीर्ण और भ्रष्ट हो चुकी थी कि भ्रष्ट लोगों के विरुद्ध कोई भी कदम उठाना लगभग असम्भव हो चुका था। एक मामले में, जिसके बारे में मैंने रिपोर्ट मांगी थी, यह मामला सतर्कता विभाग के हवाले कर दिया गया था। लेकिन धनाढ्य लोगों से सम्बन्धित सामान्य मामलात में जैसा होता था, हाई कोर्ट को संदिग्ध लोगों के बचाव के लिए प्रयोग किया गया। यहां तक कि कोर्ट ने सतर्कता समिति द्वारा की जा रही खोजबीन को स्थगित कर दिया। एक अन्य मुकद्दमे में, हाई कोर्ट के दो न्यायाधीशों ने चीफ़ जस्टिस के निर्णय के विरुद्ध 'स्थगन आदेश' जारी किया और मामला खोजबीन के लिए सी० बी० आई० के हवाले कर दिया। यह मुकद्दमा एक जिला न्यायाधीश के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों से सम्बन्धित था। ये आरोप अनेक कागज़ात और दस्तावेजों से पहले ही सिद्ध हो चुके थे। एक दूसरे विडम्बनापूर्ण मुकद्दमे में, सुप्रीम कोर्ट ने तो राज्य सरकार को कारण बताओ नोटिस जारी किया था कि डल झील में पर्यावरण के प्रति हानिकारक कामों को क्यों नहीं रोका जा रहा। दूसरी ओर, स्थानीय हाई कोर्ट ने श्रीनगर नगर निगम को, बिना किसी सुनवाई के, हुक्मनामा जारी किया था कि झील के 'हरियाली भरे' क्षेत्र में इमारत निर्माण योजना को स्वीकृति दी जाये। जाहिर है, अदालतों द्वारा इस तरह की ग़ैर-ज़िम्मेदाराना गतिविधियों से भ्रष्टाचार पनपना और दिन-ब-दिन बढ़ते जाना, अपरिहार्य था।

कोई भी संस्थान अपने चारों ओर के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। राज्य की कानून व्यवस्था भी इसका कोई अपवाद नहीं थी। भ्रष्टाचार के कीट का संक्रमण यहां भी व्याप्त था। हाई कोर्ट में चल रही भ्रष्ट गुटबन्दी ने वातावरण को और भी दूषित कर दिया था। सुधार के कुछ कार्यों के सम्बन्ध में मेरे द्वारा दिये गये अनेक सुझावों पर केन्द्रीय सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की। न ही मुझे कोई उत्तर दिया गया कि आखिरकार मेरे सुझावों को स्वीकार करना सम्भव क्यों नहीं था। परिणाम-स्वरूप कानून व्यवस्था का पतन गहराता चला गया और अक्सर न्याय व्यवस्था अन्याय की दुखद स्थितियां पैदा करने लगी।

राज्य और समाज के महत्त्वपूर्ण अंगों को भ्रष्टाचार का कैंसर भीतर ही भीतर खाये चला जा रहा था—इस तथ्य के बावजूद समस्या की गम्भीरता को कभी महसूस नहीं किया गया। राजनीतिज्ञ एक ईमानदार रवैया अपनाना नहीं चाहते थे, अधिकारी अस्वस्थ राजनैतिक तत्त्वों से स्वयं को दूर नहीं रखना चाहते थे, कुलीन वर्ग कानून का अतिक्रमण करने की अपनी आदत से बाज नहीं आना चाहता था, और अदालतें, संदिग्ध लोगों के पक्ष में अपने हस्तक्षेप के कारण हो रही क्षति को नहीं समझना चाहती थी। इस प्रकार, सार्वजनिक भ्रष्टाचार का स्वरूप इतना बिगड चुका था और इसका स्तर इतना व्यापक हो गया था कि इसके प्रभाव में सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का ढह जाना अपरिहार्य था। जो लोग इन गतिविधियों में शामिल थे, उनमें तथा लाभ प्राप्त करने वाले और लाभ न प्राप्त करने वाले के बीच भी विरोध पैदा हो गये। स्थिति को स्पष्ट करने का दिन स्पष्टतः अब दूर नहीं था।

पर्यावरण को बिगाड़ने के कारण

किसी भी जगह के पर्यावरण की स्थिति उसकी आध्यात्मिक सुदृढ़ता की परिचायक होती है। पर्यावरण के मुद्दे में संस्कृति, मूल्यों, राजनीति, और समाज के आर्थिक स्वरूप के मुद्दे भी शामिल हैं। इस बात की महत्ता काश्मीर की स्थिति से ज्वलंत रूप से सिद्ध होती है। प्रकृति ने इस घाटी को खूबसूरती का वरदान दिया है लेकिन दिमागी और भौतिक शक्तियां इस खूबसूरती को बहुत तेजी से मिटा रही हैं। भूमि के साथ की गई पाशविकता, झीलों और नदियों की सिकुड़न, हवा, पानी और मिट्टी में प्रदूषण इसी का परिणाम है। निर्णय लेने के सनकीपन के साथ-साथ विकास की प्राथमिकताओं और स्वरूप ने इस सबमें अपना योगदान दिया है। हरियाली नहीं, लालच लोगों को प्रोत्साहित करता है। प्राकृतिक दृश्यों की खूबसूरती देखकर तो यह रुख होना चाहिए था, "हे धरती मां, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं, अपने पैरों से आपका स्पर्श करने के लिए हमें क्षमा करना।" लेकिन काश्मीर की खूबसूरती बर्बरतापूर्वक नष्ट की जा रही है। इस बर्बरता को धनाढ्य वर्ग के मस्तिष्क में एक सुरक्षित शरण मिल गई है और शोषक प्रजातंत्र द्वारा उदारतापूर्वक इस बर्बरता को प्रेरणा मिल रही है। झीलों, नदियों, लगूनों, मिट्टी और शहर के स्वरूप से यह प्रमाणित होता है।

प्रसिद्ध डल झील, जिसे अबुलफजल ने 'धरती का स्वर्ग' का नाम दिया था,

24 वर्ग कि० मी० से सिकुड़कर 10 वर्ग कि० मी० रह गई है। यहां तक कि इस समय भी हर वर्ष 15 टन फास्फोरस और 320 टन नाइट्रोजन इसमें बहा दी जाती है। 1987 में आई बाढ़ से यह सिद्ध हो गया कि झील के तटों के अतिक्रमण से पानी का स्वाभाविक प्रवाह किस तरह प्रभावित होता है। झील के चारों ओर बने लगभग 1200 मकान नष्ट हो गये थे और 12 मौतें हुई थीं। अनुमान है कि कुल मिलाकर लगभग 85 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। वुल्लर और मन्सव : झीलों का भाग्य भी कोई भिन्न नहीं है। अंछ और गिल्सर झीलें अब लुप्त हो गई हैं।

घाटी की जीवनधारा झेलम नदी में भी आश्चर्यजनक तेज़ी से गाद भरती जा रही है। पोहरू क्षेत्र ही हर साल इसमें लगभग 24 लाख एकड़ फुट का गाद उंडेल देता है। सारी घाटी के द्रव या ठोस अवशिष्ट पदार्थ इसी में जाते हैं। अब, थोड़ी-सी बरसात से भी इसमें बाढ़ आ जाती है और सम्पत्ति तथा फसलों को बड़ी मात्रा में क्षति पहुंचती है। 1986, 1987 और 1988 की बाढ़ में क्रमशः 84 करोड़ रुपये, 328 करोड़ और 212 करोड़ रुपये का नुकसान होने का अनुमान है।

हाल ही की बात है कि दुनिया के सबसे घने जंगलों में जम्मू की शिवालिक पहाड़ियां और काश्मीर के पहाड़ गिने जाते थे। पूरे भूमि क्षेत्र के लगभग 60% हिस्से में यह जंगल फैला हुआ था। लेकिन अब, विशेषकर सत्तर के दशक से, हरे-भरे वृक्षों की लगभग 'लाइसेंस्ड हत्या' हो रही है। दो साल पहले तक राज्य के जंगलों से लगभग 4 करोड़ क्यूबिक फुट लकड़ी हर साल निकाली जा रही थी। हाल में की गई खोज के अनुसार 1952 से लेकर 1976 तक लगभग 9 हज़ार हेक्टेयर जंगल 'विकास' योजनाओं की भेंट चढ़ गया। केवल श्रीनगर शहर को ही, आग जलाने की लकड़ी की जरूरत को पूरा करने के लिए 5 लाख क्विटल लकड़ी दी जा रही है। पूरे राज्य की आग जलाने की लकड़ी की मांग लगभग 100 लाख क्विटल है।

हवा, पानी और मिट्टी के प्रदूषण से पैदा हुई समस्या भी बहुत गम्भीर हो गई है। यह प्रदूषण सीमेंट फैक्टरी, पत्थर पीसने वाली मशीनों, ईंटों की भट्ठी, ठोस पदार्थ को गलाने के उद्योगों, रसायनों के खुले प्रयोग के कारण उत्पन्न होता है। प्रयोग किये गये रसायनों की मुश्किल से एक प्रतिशत उद्देश्य पूर्ति में खपत हो जाती है शेष पर्यावरण में चला जाता है। 500 ग्राम/हेक्टर कीटनाशक दवाई के प्रयोग के राष्ट्रीय अनुपात की तुलना में काश्मीर क्षेत्र बागों के लिए 6,000 से 12,000/हेक्टेयर कीटनाशक दवाई प्रयोग करता है।

यह हैरानी की बात है कि स्वतन्त्रता के 43 वर्षों बाद भी राज्य की ग्रीष्म-कालीन राजधानी में कोई सीवर व्यवस्था नहीं है। मुख्य शहर के एक या दो प्रतिशत घरों में ही आधुनिक शौचालय हैं। यह मल या तो सिर पर उठाकर या चरमराते हुए वाहनों में ले जाया जाता है जिससे सारे शहर में गन्दी दुर्गन्ध फैलती है। डोंगों में रहने वाले नाविक या हाउसबोट के निवासी सारा मल और गन्दगी झेलम नदी या डल झील में छोड़ देते हैं जिससे यह खूबसूरत जलप्रवाह लगभग गन्दे सीवर नाले बनकर रह गये हैं। गवर्नमेंट एस० पी० कॉलेज की हाइड्रो-बायोलोजी प्रयोगशाला द्वारा किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ कि श्रीनगर

शहर के कुछ हिस्सों में प्रेषित पीने का पानी झेलम नदी के प्रदूषित पानी से भी गन्दा है। यह भी पता चला कि इस तरह के पानी से वन्य जीवन को विशेषकर डाचीगम नेशनल पार्क के प्राणियों को खतरा भी हो सकता है।

यह सब हो चुका है और हो रहा है केवल खुलेआम हो रहे भ्रष्टाचार और कुशासन की वजह से ही नहीं बल्कि तथाकथित विकास की विकृत प्राथमिकताओं और कथनी तथा करनी के बीच शर्मनाक अंतर की वजह से भी यह सब हो रहा है। पर्यावरण सम्बन्धी चेतना और जाग्रति केवल शब्दों तक ही सीमित है। मैं आपको इसके कुछ उदाहरण देता हूं।

वृक्षों, झाड़ियों और जंगली पेड़-पौधों से भरा लगभग 907 हेक्टेयर क्षेत्र पालमहल, शंकराचार्य पहाड़ी और जटियार पहाड़ी के निकट उपेक्षित ही पड़ा था। यह क्षेत्र अतिक्रमण और धोखाधड़ी का शिकार हो रहा था। कुछ सरकारी विभाग इसे अस्थायी कूड़े के ढेर की तरह प्रयोग कर रहे थे। प्राकृतिक झरने कूड़े और गन्दगी से भर गये। कृत्रिम गड्ढे, जो स्थिर पानी से भरे हुए थे, उनमें मच्छर पैदा होने लगे।

9 मई, 1984 को अपने पहली सार्वजनिक सभा में जाते वक्त मेरा ध्यान इस शहर की ओर गया। अपने उद्घाटन भाषण में, मैंने इसका हवाला दिया और कहा, "इस क्षेत्र को शहर के जंगल के रूप में विकसित करने की काफी सम्भावनाएं हैं।" मैंने अपील की: "आइए, हम ऐसा पर्यावरण रचें जिसमें पर्यटक यहां के भौतिक तथा आध्यात्मिक सौन्दर्य के सीधे सम्पर्क में आ सकें ताकि जब वे यहां से जाएं तो केवल बाहर से ताजा होकर ही नहीं बल्कि आंतरिक सौन्दर्य प्राप्त करके भी जायें।"

अपने वक्तव्य में मुख्यमंत्री डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने इस विचार का गर्मजोशी से स्वागत किया। उन्होंने कहा, "एक युवा, गतिशील और कल्पनाशील होने के नाते, जगमोहन की आंखों ने उस क्षेत्र को जान लिया है जिस पर समय से काम करने की जरूरत है। मेरी रगों में भी युवा रक्त है। दो 'युवा रक्त' मिलकर इस राज्य में शांति ला सकते हैं।" लेकिन यह केवल अर्थहीन भाषण ही निकला। डॉ० अब्दुल्ला या जी० एम० शाह द्वारा कुछ भी नहीं किया गया। वह क्षेत्र अब भी उपेक्षित अवस्था में ही पड़ा है।

गवर्नर शासन के दौरान, मैंने उस क्षेत्र को शहरी वन, यानी श्रीनगर शहर के भीतर ही एक वन के रूप में विकसित करने का आदेश दिया। पूरे क्षेत्र के चारों ओर तार से घेर दिया गया, प्राकृतिक स्वरूप को पूर्ववत् रखते हुए, सैर करने वालों के लिए पगडंडियां बनाई गई। मलबे के ढेर हटाये गये, कृत्रिम गड्ढों को भर दिया गया और पुराने झरनों में आये अवरोधों को दूर किया गया। झाड़ियों और जंगली पौधों को पूर्ववत् रखा गया। प्रकृति को पुनः इसका पवित्र सौन्दर्य दे दिया गया। बंजर पड़े हिस्सों को नये पौधे लगाने के लिए अंकित कर दिया गया। स्कूल के हजारों बच्चों को नियमित रूप से बड़े पैमाने पर पौधे लगाने तथा प्राकृतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से यहां लाया गया। पुरानी जीर्ण-शीर्ण पड़ी इमारत में संरक्षण केन्द्र भी स्थापित किया गया। यहां पर प्रदर्शनी लगाने, चित्रकारी प्रतियोगिताएं करने, प्रकृति और वन्य जीवन पर फिल्म दिखाने की सुविधाएं भी उपलब्ध कराई गई। एक हिस्से में, वन्य प्राणी सुरक्षा स्थल भी

बनाया गया। हंगूल और अन्य जानवरों को यहां पर पाला गया।

प्रकृति-प्रेमियों के लिए यह पूरा प्रांगण एक स्वर्ग बन गया। सुबह और शाम सैर पर जाने वाले हजारों लोगों ने नए जीवन का अनुभव किया—साफ पर्यावरण, किसी भी तरह के धुएं और शोर से मुक्त माहौल, चहचहाते पक्षी, लहलहाते वृक्ष और झाड़ियां, गुनगुनाते झरने और जलधाराएं तथा चारों ओर उछलते-कूदते सुन्दर पशु। एक आम आदमी के लिए इससे ज्यादा आकर्षक, सस्ता और खुशनुमा अनुभव और क्या हो सकता था? पर्यटकों को भी शहरी जीवन के शोरगुल से दूर यहां घूमना अच्छा लगा।

यह योजना घाटी में ही नहीं पूरे राज्य में चर्चा का विषय बन गई। जम्मू के लोगों ने भी ऐसे शहरी वन की मांग की। अखिल भारतीय नेचर फोटोग्राफी सोसाइटी ने प्रकृति संरक्षण के एक जीवंत उदाहरण के रूप में इसका स्वागत किया। यहां तक कि गवर्नर शासन समाप्त हो जाने के बाद, राज्य के वन्य जीवन बोर्ड ने इस योजना की प्रशंसा में एक विशेष प्रस्ताव जारी किया। यह विडम्बनापूर्ण है कि पर्यावरण संरक्षण के प्रति मेरी सेवाओं की प्रशंसा में प्रस्ताव स्वयं मुख्यमंत्री द्वारा ही रखा गया। अब यह सब नष्ट हो गया है। वह पगडंडियां, झरने और वन्य जीवन—सब खत्म हो गये। वे सैकड़ों वृक्ष और झाड़ियां भी नष्ट कर दी गईं। 10 करोड़ रुपये की भारी लागत पर अब वहां एक कृत्रिम गोल्फ कोर्स बनाया जा रहा है। एक खूबसूरत चीज़ जो शाश्वत रूप से खुशनुमा थी, उसे विकृत कर दिया गया। उसके स्थान पर एक 'कुलीनवर्गीय कोर्स', जो, यदि उसका कोई औचित्य था, कहीं और भी बनाया जा सकता था, यहां बनाया जा रहा है।

मेरे लिए यह एक गहरे व्यक्तिगत दु:ख और पीड़ा की बात है। कोई भी अपनी रचना को नष्ट होते नहीं देख सकता। लेकिन आम जनता के लिए यह गम्भीर अन्याय की बात है। यह तो लोगों से ताज़ा हवा और सुन्दर दृश्य भी छीन लेने की तरह है। इससे भी ज़्यादा दुःखपूर्ण है विकास का स्वरूप—कुलीन वर्ग द्वारा, कुलीन वर्ग के लिए तैयार किया गया स्वरूप, जो बहुत कीमती, पक्षपातपूर्ण और हमारी आवश्यकताओं से बिल्कुल अलग है।

गोल्फ़ कोर्स श्रीनगर पर्यटन में कोई सहायता नहीं करेगा। श्रीनगर में गर्मी के दौरान औसतन दो या तीन विदेशी पर्यटक गोल्फ़ खेलते हैं—वह भी उन दिनों जब वर्षा न हो। ये पर्यटक भी हिप्पी किस्म के होते हैं और गोल्फ़ पर ज़्यादा खर्च नहीं करते। जैसाकि श्रीनगर का मौसम है, विदेशी पर्यटक ज़्यादातर ठण्डे स्थानों जैसे गुलमर्ग और पहलगाम में जाना पसन्द करते हैं। गोल्फ़ कोर्स से होने वाला नुकसान उससे सम्भावित लाभों से कहीं ज़्यादा है।

अब कई किलोमीटर तक फैली एक क्षेत्र की देखभाल करनी होगी। बहुत से गोल्फ ब्वाय और कर्मचारी नियुक्त करने पड़ेंगे। इसके लिए लाखों गैलन पानी की जरूरत होगी। संक्षेप में, विकास का वह स्वरूप जो साधारण, सस्ता और आम आदमी के जीवन को अच्छा बना सकता था तथा ज्यादातर लोगों के लिए लाभदायक था—वह स्वरूप अत्यन्त महंगा और कुलीन वर्ग के लिए तैयार किया गया है।

अनुचित विकास का दूसरा उदाहरण गुलमर्ग कार केवल योजना है, जिसमें

एक 'पैसेंजर रोपवे' गुलमर्ग से कोंगडोरी और कोंगडोरी से अफ़ारवट तक बनाया जाना है।

इसका सम्भावित उद्देश्य पर्यटन को प्रोत्साहित करना है। इस योजना की स्वीकृति के समय, इस पर अनुमानित व्यय 14 करोड़ रुपये था। अब, जबकि योजना अभी आधी ही पूरी हुई है, अनुमानित व्यय 40 करोड़ रुपये हो गया है। और यह इससे ज्यादा हो सकता है।

यह वित्तीय रूप से व्यावहारिक भी है कि नहीं—यह संदेहपूर्ण है। इसकी सामाजिक और पर्यावरण सम्बन्धी कीमत दिल दहला देने वाली होगी। इस योजना को कार्यान्वित करने की प्रक्रिया में 254 हरे-भरे वृक्ष पहले ही काटे जा चुके हैं। टावर और खम्भे लगाने की प्रक्रिया में अभी और वृक्षों की बलि दी जाएगी। बिजली के खम्भों के साथ-साथ वर्षा के दौरान पानी बहेगा जिससे भूक्षरण और भूस्खलन की स्थिति पैदा हो सकती है। 'रोपवे' में विद्युत का व्यय भी अत्यधिक होगा। और गोंडोला का शोर गुलमर्ग के शांत वातावरण तथा प्राकृतिक सौंदर्य को भद्दा बना देगा। और भी, टट्टू रखने वाले लोग, जिनकी जीविका पर्यटकों को पहाड़ी के ऊपर ले जाने से ही चलती है, वे बेरोजगार हो जाएंगे।

यह वास्तव में दर्दनाक है कि जब पश्चिम के देश पर्यावरण संरक्षण के लिए ऐसी योजनाओं को त्याग रहे हैं, जम्मू-काश्मीर जैसे गरीब और विकासशील राज्य उन योजनाओं को अपना रहे हैं। एक स्वतन्त्र और रचनात्मक मार्ग अपनाने और राज्य की सामाजिक शर्तों और सांस्कृतिक विरासत के साथ तारतम्य स्थापित करने की बजाय मानसिक दासता और नकल करने की प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया जा रहा है। जीवन को बेहतर बनाने के महान उद्देश्य की उपेक्षा की जा रही है। उन लाभों की कल्पना करें यदि 35 करोड़ रुपये साफ स्वच्छ पानी, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने में लगाये जाते। एक नागरिक की उत्पादन क्षमता बढ़ जाती और सामाजिक तथा आर्थिक विकास के वे अच्छे साधन बन जाते।

इस योजना में कोई आर्थिक या वित्तीय फायदा नहीं होगा। यदि कोई फायदा हुआ तो वह चालबाज लोगों को जायेगा। कुछ दलाल और बिचौलिए पैसा बनाएंगे और गोंडोला का इस्तेमाल कौन करेगा? इस पर चढ़ने के लिए 100 रुपये देने होंगे। इसलिए पांच लोगों के परिवार को 500 रुपये देने होंगे। उन परिवारों का क्या प्रतिशत होगा जो राज्य में घूमने के व्यय के साथ-साथ गोंडोला यात्रा के लिए 500 रुपये भी खर्च कर सकते हैं? चालबाजों और बड़े व्यापारियों तथा पुराने और नये नवाबों के परिवार ही इतना व्यय कर सकते हैं। जरूरत से ज्यादा व्यय करने के आकर्षण के परिणाम शुभ नहीं होंगे।

यह एहसास नहीं किया गया कि इन झूठी प्राथमिकताओं और विकास के स्वरूप से जनता में कितना गुस्सा पैदा हुआ है। न ही यह समझा गया कि इस तरह के हस्तक्षेप को अनधिकृत लोगों द्वारा अत्याचार माना गया। गुलमर्ग के सैकड़ों टट्टू वालों ने गोंडोला योजना का उग्र रूप से विरोध किया था। क्योंकि उनके लिए यह उनके प्राचीन व्यवसाय को नष्ट करना और उनकी आय को 'लूटने' के समान था। इसी तरह, सुबह सैर करने वाले हजारों लोग, पिकनिक

मनाने के लिए आने वाले छात्र और अध्यापकों के समूह, संरक्षण केन्द्र में आने वाले यात्री, कलाकार, पशु-पक्षी प्रेमी—सभी इस योजना से बहुत आहत थे। लेकिन सरकार के सनकी प्रमुख की शक्ति के सामने वे असहाय थे। उनका क्षोभ, केवल महसूस करके ही जाना जा सकता है। एक बार छात्रों का एक दल मुझसे मिलने आया और शिकायत की कि 2 अक्तूबर, 1986 को एक विशेष कार्यक्रम में जो वृक्ष उन्होंने लगाये थे, उन सभी पर बुलडोजर चला दिया गया। मैं परेशान हो गया, लेकिन मैंने अपनी भावनाएं व्यक्त नहीं कीं। दरअसल मुख्यमंत्री से मैंने अनेक बार इस सन्दर्भ में बात की थी, लेकिन जैसाकि नवम्बर, 1986 के बाद उनका सामान्य व्यवहार था, वे वायदे केवल उन्हें सरासर झूठ साबित करने के लिए ही करते थे। यह विचार उनके दिमाग में बैठ गया था कि केन्द्र गवर्नर की रिपोर्ट के प्रति तटस्थ ही रहेगा। इससे वे और भी गैर-जिम्मेदार हो गये थे। शिकायत करने वाले युवा लोगों को मैंने समझाने की कोशिश की कि गवर्नर शासन खत्म होने के बाद अब इस मामले में मेरी कोई अहमियत नहीं रही और जो कुछ मैं कर सकता था वह मुख्यमंत्री को यह सलाह देकर कर चुका हूं कि शहर के वन को वे हाथ न लगाएं। क्योंकि ऐसा करने से वे न केवल एक लोकप्रिय जगह को नष्ट कर देंगे बल्कि विकास के एक नये स्वरूप को भी समाप्त कर देंगे। छात्रों के दल का एक छोटा सदस्य गुस्से में बोला—"श्रीमान, पहले यह बताएं कि किसके अधिकार ज्यादा हैं—गवर्नर के या मुख्यमंत्री के ? आपको यह धोखाधड़ी रोकने और उन वृक्षों को दुबारा लगाने की बात उनसे कहनी ही चाहिए। नहीं तो, हम कुछ और करने के लिए विवश हो जाएंगे।" उसकी भावना की गहनता को देखकर मुझे अचम्भा हुआ। इस तरह के सभी क्षोभ विघटन को उकसाते ही अगर इन्हें सन्तुष्ट नहीं किया जाय।

क्षेत्रीय कारण

इतिहास की यह आकस्मिक घटना ही थी कि गत शताब्दी के चालीस के दशक में विभिन्न सम्प्रदाय डोगरा राजवंश के अन्तर्गत आ गये। भूगोल, भाषा, जाति, धर्म और संस्कृति के विभिन्न कारणों ने इन सम्प्रदायों को अलग किया था। जम्मू, काश्मीर और लद्दाख पृथक क्षेत्र थे। 'पहाड़ी' जनजातियों के विभिन्न स्वभाव थे। 'गुज्जर' और 'बकरवालों' के जीवन का अपना अलग तरीका था। भारत की सामूहिक सांस्कृतिक एकता के अतिरिक्त इन सभी के बीच महाराजा का तानाशाही शासन ही एक सामान्य बन्धन था।

भारतीय आजादी के बाद एक बुद्धिमान्, रचनात्मक और कल्पनाशील नेतृत्व जातीय मतभेदों की तेज धार को हल्का कर सकता था तथा उन्हें एक नये आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक तार में पिरो सकता था। दुर्भाग्यवश, यह नहीं हुआ। इसके विपरीत, एक विशेष तरह के लोकतन्त्र में, राज्य, धार्मिक और क्षेत्रीय तनावों का केन्द्र बन गया।

दो मुख्य क्षेत्रों जम्मू और काश्मीर के बीच प्रतियोगिता और संदेह बहुत गहरे पैठे हैं और ये बार-बार सतह पर आ जाते हैं। साम्प्रदायिकता भी अपनी भूमिका अदा करती है। अक्तूबर, 1924 में ही क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक तत्त्व

लॉर्ड रिपन को मुसलमान मौलवियों द्वारा दी गई छः याचिकाओं में परिलक्षित हो गये थे। इन याचिकाओं में आरोप लगाया गया था कि 'इस्लाम धर्म' का अपमान किया जा रहा है और मुसलमानों को शिक्षा और नौकरियां नहीं दी जा रही, जबकि उन्होंने हमेशा सरकार की व्यक्तिगत या भौतिक जरूरतों को पूरा करने में सहयोग दिया है।"

दुर्भाग्यवश, विभिन्न स्तरों के समकालीन राजनीतिज्ञों ने क्षेत्रीय और धार्मिक मुद्दे का इस्तेमाल करना तर्कपूर्ण समझा है। कुछ काश्मीरी राजनीतिज्ञ, विशेषकर नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं ने जब भी अपना प्रभाव क्षीण होते पाया है तो 'जम्मू तुरुप के पत्ते' को घाटी में अपना प्रभाव जमाने के लिए खूब इस्तेमाल किया है। उदाहरण के लिए, शेख अब्दुल्ला के सार्वजनिक वक्तव्यों में प्रायः महाराजा हरी सिंह के प्रति उग्रता क्रोध जोकि स्वतन्त्रता के बाद कतई अनावश्यक था, न केवल उनकी भीतरी उच्छृंखलता का प्रमाण था बल्कि यह काश्मीरी दिमाग में अपनी शक्तिशाली छवि बनाने की एक चाल भी थी। इसी तरह, जम्मू क्षेत्र के कुछ नेता अपने क्षेत्र में प्रभाव जमाने के लिए 'काश्मीर तुरुप के पत्ते' का प्रयोग करते रहे हैं। इस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए, राजनैतिक तत्वों ने राज्य में एकता और शांति को पनपने ही नहीं दिया।

डोगरा शासन में कुछ पदों पर भारत सरकार के ब्रिटिश अफसर नियुक्त थे, अधिकांश पदों पर राजवंश के निकट के डोगरा राजपूत थे। थोड़े-से पदों पर मुस्लिम सामन्त श्रेणी के लोग थे।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और नई राजनैतिक चेतना के साथ-साथ, काश्मीरी मुसलमानों ने सरकारी नौकरियों में पर्याप्त हिस्सेदारी की मांग शुरू कर दी। 13 जुलाई, 1931 को हुई हिंसा और अशांति के बाद ब्रिटिश-भारतीय सरकार के दबाव में महाराजा ने विभिन्न सम्प्रदायों की शिकायतें और समस्याएं सुनने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशन का संचालन ब्रिटिश अधिकारी बर्टांड जे० ग्लासी ने किया। साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय असंतुलन की जांच इस कमीशन ने की। इसने परामर्श दिया कि राज्य सेवा की सारी नौकरियों को विज्ञापित करना चाहिए और यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हर सम्प्रदाय को सरकारी नियुक्तियों में उचित हिस्सा मिले। कमीशन ने यह भी सुझाव दिया कि स्थानीय नियुक्तियों के संदर्भ में, सम्बन्धित जिला निवासियों की भर्ती होनी चाहिए।

ग्लासी कमीशन की अनुशंसाओं ने काश्मीरी मुसलमानों को नाममात्र की राहत ही दी। राज्य का आर्थिक पिछड़ापन मूलभूत समस्या थी। नौकरी के अवसर कम थे। लोगों की उम्मीदें कभी पूरी नहीं हो सकीं। असंतोष जारी रहा और कभी-कभी आंदोलनों द्वारा व्यक्त होता रहा।

अक्तूबर, 1947 के बाद राज्य सरकार काश्मीरी नेतृत्व के अधीन हो गई। अब जम्मू के लोगों के कष्टों की बारी थी। उनका कहना था कि काश्मीर क्षेत्र के पक्ष में उनके वैधानिक अधिकार और हितों की बलि दी जा रही है।

जम्मू क्षेत्र में लगातार क्षेत्रीय तनाव और निरन्तर हो रहे आंदोलनों की वजह से राज्य सरकार ने 6 नवम्बर, 1967 को गजेन्द्र गडकर नाम से एक कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन ने क्षेत्रीय विभिन्नताओं का गहराई से

अध्ययन किया और अनेक परामर्श दिये, जिनमें संवैधानिक राज्य विकास समिति और संवैधानिक क्षेत्रीय विकास सहमति स्थापित करना शामिल था। तीन क्षेत्र—जम्मू, काश्मीर और लद्दाख—इन समितियों के अन्तर्गत आते थे। कमीशन ने यह ध्यान दिया कि जम्मू और लद्दाख उपेक्षा के शिकार रहे हैं। इसने यह भी कहा, 'यदि सब मामले समान रूप से सुलझा भी दिये जाएं तब भी कुछ असंतोष रहेगा जब तक कि राज्य के विभिन्न क्षेत्रों की राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएं पूरी नहीं हो जातीं।"

इन सिफारिशों में से अधिकांश को स्वीकार नहीं किया गया न ही लागू किया गया। और जब भी उन्हें लागू करने का काम आरम्भ किया गया, अधूरे मन से हुआ। स्वयं शेख अब्दुल्ला ने इस कमीशन की रिपोर्ट की आलोचना की। परिणामस्वरूप, जम्मू के लोगों की कठिनाइयां पुष्ट होती रहीं। दिसम्बर, 1978 में क्षेत्रीय विरोध ने पूंछ, राजौरी और जम्मू में गम्भीर छात्र दंगों का रूप ले लिया। कर्फ्यू लगाना पड़ा और गोली चलानी पड़ी। 26 दिसम्बर, 1978 को एक सर्वदलीय जम्मू कार्यकारी समिति स्थापित की गई जो जम्मू क्षेत्र के लोगों की शिकायतों को पूरा कराने के लिए आंदोलन शुरू कर सके। शेख अब्दुल्ला को आतंक का माहौल पैदा करने का दोषी ठहराया गया। इस मुद्दे पर जनता का आंदोलन 94 दिन तक चला। जनता के आवेग को कम करने के लिए राज्य सरकार ने जस्टिस एस० एम० सीकरी की अध्यक्षता में एक दूसरा कमीशन बिठा दिया। सर एस० एम० सीकरी भारत के सेवा निवृत्त चीफ़ जस्टिस थे। इसके निर्देशों की अवधि भी गजेन्द्र गड़कर कमीशन जैसी ही थी। 25 अगस्त, 1980 में इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी। लेकिन इसके प्रस्तावों का वही हश्र हुआ जो गजेन्द्र गड़कर कमीशन के प्रस्तावों का हुआ था।

12 अक्तूबर, 1977 को शेख अब्दुल्ला द्वारा दिया गया वक्तव्य—अलग से, अतिरिक्त जिलों का निर्माण एक दूसरा विवादास्पद मुद्दा बन गया है। अक्तूबर, 1972 में राज्य सरकार ने वित्तीय अधीक्षक ए० एस० कादरी की अध्यक्षता में श्रीनगर और जम्मू के दो खण्डों के लिए दो समितियां नियुक्त कीं। इन समितियों ने सुझाव दिया कि जम्मू या काश्मीर में कोई भी नया जिला नहीं बनाना चाहिए। बहरहाल 1 जुलाई, 1979 को राज्य सरकार ने एकाएक, स्वयं ही श्रीनगर घाटी में तीन नये जिलों बदगाम, पलवाना और कुपवाड़ा तथा लद्दाख क्षेत्र में कारगिल नाम के जिले की रचना का निर्णय ले लिया। राज्य सरकार का यह निर्णय स्वेच्छापूर्ण और घाटी के प्रति पक्षपातपूर्ण माना गया। जम्मू क्षेत्र में किस्तवाड़ के लम्बे आंदोलन सहित अनेक आंदोलन इस निर्णय के विरुद्ध किये गये।

12 नवम्बर, 1981 को राज्य सरकार ने जम्मू काश्मीर हाईकोर्ट के सेवा-निवृत्त जस्टिस जे० एन० वज़ीर की अध्यक्षता में एक और कमीशन बनाया ताकि वह इस मुद्दे की जांच-पड़ताल कर सके। इस कमीशन ने जम्मू क्षेत्र में तीन नये जिलों—किस्तवाड़, साम्बा और रियासी तथा श्रीनगर घाटी में एक और जिला—बांदीपुर बनाने का परामर्श दिया। लेकिन वे परामर्श जो जम्मू क्षेत्र के पक्ष में थे, चाहे वे 3 जनवरी, 1984 को ही किये गये थे, ज्यादातर लागू नहीं किये गये।

इस पृष्ठभूमि में जम्मू के लोगों ने सदा अपमानित और आहत महसूस किया

है। उनकी शिकायतों की सूची बढ़ती ही जा रही है। इस क्षेत्र का भीतरी क्षोभ क्षेत्रीय आंदोलनों में व्यक्त होता रहा है। इस संदर्भ में 'दरबार आंदोलन' (1987) तथा सियासी जिले की रचना से सम्बन्धित दो आंदोलनों का वर्णन जरूरी हो जाता है।

अक्तूबर, 1987 में डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार ने राज्य सचिवालय तथा दूसरे कार्यालयों को श्रीनगर से जम्मू स्थानांतरित करने की परम्परा में एकाएक कुछ सुधार किये। इस परम्परा को ज्यादातर 'दरबार आंदोलन' के नाम से जाना जाता है। इसमें बदलाव लाने के परिणामस्वरूप एक प्रमुख आंदोलन हुआ और अनेक समस्याएं भी उठ खड़ी हुईं।

दरबार-परिवर्तन की यह परम्परा 1870 से चली आ रही है। जम्मू के लोगों को यह नया निर्णय उनके विरुद्ध एक गम्भीर भेद रखना लगा। उन्हें डर था कि श्रीनगर को राज्य की स्थायी राजधानी बनाने की ओर यह पहला कदम था और इससे जम्मू क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचेगी।

स्पष्टतः मुख्यमन्त्री द्वारा यह निर्णय बिना सोच-विचारकर और मन्त्रिमण्डल के लिए एक औपचारिक तथा उचित कार्यसूची तैयार किये बिना लिया गया था। जिस जल्दबाजी से यह निर्णय घोषित किया गया था और जिस तरह से निर्णय के एक पहलू पर जोर देते हुए और दूसरे पहलू की उपेक्षा करते हुए प्रेस नोट जारी किया गया था, उससे जम्मू क्षेत्र के लोगों में यह विचार और भी पक्का हो गया कि उनके हितों की उपेक्षा की गई है और डॉ० अब्दुल्ला अपने संकीर्ण राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पार्टी के लोगों के प्रति पक्षपात कर रहे हैं।

आंदोलन लगभग पांच हफ्ते चला, जिसके दौरान जम्मू क्षेत्र के जम्मू उधमपुर और दूसरे स्थानों पर अनेक दिनों के लिए पूर्ण बन्द का आयोजन किया गया। छात्र वर्ग भी काफी क्षुब्ध था। राज्य सरकार ने अनिश्चित काल के लिए शिक्षा संस्थानों को बन्द कर दिया। इस निर्णय के विरुद्ध जम्मू के लोगों की एकता और आंदोलन की बढ़ती कठोरता को देखते हुए 12 दिसम्बर को गृहमंत्री बूटासिंह मुख्यमन्त्री से इस स्थिति पर बात करने के लिए आये। जल्द ही मुख्यमंत्री डॉ० अब्दुल्ला ने इस आदेश को रद्द करने की घोषणा कर दी।

यद्यपि सरकार के इस आदेश से काश्मीरियों को कोई नुकसान नहीं था, फिर भी कुछ लोगों ने इस पर उग्र रूप से प्रतिक्रिया जाहिर की। श्रीनगर बार एसोसिएशन ने काश्मीर बन्द का आह्वान किया, क्योंकि इसके अनुसार राज्य सरकार जम्मू में हो रहे आंदोलनों के सामने झुक गई थी। बन्द के आह्वान को काफी समर्थन मिला और उस दिन कुछ हिंसात्मक घटनाएं हुईं। उसके बाद चार दिन तक श्रीनगर में हिंसा की छुटपुट घटनाएं होती रहीं।

हालांकि यह आंदोलन पांच हफ्ते बाद समाप्त हो गया, लेकिन अपने पीछे कड़वाहट और राज्य के इन क्षेत्रों में काफी तनाव छोड़ गया। राष्ट्र-हितों का नुकसान हुआ। जातीयता को और प्रोत्साहन मिला। क्षेत्रीयता और भी गहरा गई और इससे जम्मू में प्रजा परिषद आंदोलन की स्मृतियां ताजा हो गईं। यहां तक कि एक राज्य के रूप में अलग से स्थापना की मांग भी गम्भीरतापूर्वक की की जाने लगी।

इस घटना से काश्मीर में प्रशासन का संचालन करने वाले लोगों की

अपरिपक्वता भी प्रदर्शित हुई। यदि यह निर्णय जल्दबाजी में नहीं लिया गया होता और इसके सभी पहलुओं पर पहले ही विचार किया गया होता तो बाद में उठी अनेक समस्याओं से बचा जा सकता था।

'दरबार आन्दोलन, के सन्दर्भ में यह निर्णय दुर्भाग्यपूर्ण रहा, और इसका समय बिल्कुल अनुचित था। यह वाकई दुःखपूर्ण था कि जब राज्य को सूखे और विकास सम्बन्धी अनेक समस्याओं को हल करना चाहिए था, वह समय ऊर्जा और साधन उन आन्दोलनों पर व्यय कर दिये गये जिनसे बचा जा सकता था। यह टिप्पणी कि "हमारे देश के आर्थिक भविष्य को पेंडुलम की राजनीति के अतिरिक्त और कोई चीज अन्धकारपूर्ण नहीं बना सकती", राज्य की इस स्थिति के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी।

दूसरा आन्दोलन रियासी जिले की रचना की मांग के पक्ष में आरम्भ किया गया। जैसाकि पहले बताया गया है, वजीर कमीशन ने रियासी जिले की अलग से रचना का सुझाव दिया था। क्योंकि इस सुझाव को लागू नही किया गया, इसलिए सितम्बर-अक्तूबर, 1988 में एक आन्दोलन शुरू किया गया। पहले दस दिनों के दौरान राज्य सरकार ने लगभग कोई कदम नहीं उठाया और अपनी सत्ता का लगभग परित्याग कर दिया। आन्दोलनकर्त्ताओं ने रियासी को जिला मानने की घोषणा कर दी और अपना ही उपाधीक्षक नियुक्त कर दिया। परिणामस्वरूप, इस आन्दोलन के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। यह आन्दोलन दो महीने तक चला। इस दौरान धरना, हड़ताल और जलूस जैसे दिनचर्या का एक हिस्सा बन गये। राज्य सरकार द्वारा कुछ आश्वासन दिये जाने पर आन्दोलन रद्द कर दिया गया।

अक्तूबर, 1947 के बाद, जम्मू क्षेत्र में यह भावना सशक्त रूप ले चुकी थी कि घाटी के नेतृत्व द्वारा राज्य में राजनैतिक प्रभुत्व के परिणामस्वरूप ही जम्मू क्षेत्र को अन्याय का शिकार बनना पड़ा है। यह माना जाता है कि केन्द्रीय नेतृत्व घाटी के लोगों का तुष्टीकरण करता रहता है और अनेक ऐसे निर्णय लिये गए हैं जो जम्मू क्षेत्र की कीमत पर घाटी के पक्षधर हैं। एक गैर राजनैतिक संस्था, जम्मू महासभा द्वारा मुझे दिये गये एक ज्ञापन में जम्मू क्षेत्र की वर्तमान शिकायतों की सूची थी।

इस ज्ञापन से यह पता चला कि ये शिकायतें सामान्य रूप से सही हैं। अगले अध्याय में इस सन्दर्भ में अनुच्छेद 370 के दुरुपयोग का मैंने विश्लेपण किया है। काश्मीर घाटी की हर जनता के लिए और जम्मू क्षेत्र की हर जनता के लिए विधान सभा में एक स्थान होने का कोई औचित्य नहीं दीख पड़ता। ना ही घाटी में अधिकतर महत्त्वपूर्ण संस्थाओं और योजनाओं जैसे—इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, इंजीनियरिंग कालेज, कन्वेंशन हॉल, और कार केवल योजना वगैरह की स्थापना का ही कोई औचित्य है। योजना वित्त का वितरण भी न्याय-पूर्ण नहीं है। मसलन, औसतन लगभग पांच लाख पर्यटक घाटी में आते हैं; जबकि जम्मू में केवल वैष्णोदेवी में ही लगभग 20 लाख सांस्कृतिक और धार्मिक यात्री आते हैं जिससे राज्य के आर्थिक विकास में बड़े पैमाने पर सहयोग मिलता है। लेकिन राज्य द्वारा इन पर्यटकों को निर्माण सम्बन्धी कोई सुविधा नहीं दी गई है। यहां तक कि कटरा जाने वाली सड़क बसों और वाहनों से भरी

रहती हैं, आज भी उतनी ही तंग है। दूसरी ओर, विशाल धन राशि—कभी-कभी पर्यटन बजट का लगभग 90 प्रतिशत घाटी के लिए ही निर्धारित कर दिया जाता है। वर्तमान दो योजनाओं—गुलमर्ग कार केवल योजना और श्रीनगर गोल्फ योजना में ही लगभग पचास करोड़ रुपए की लागत आयेगी। जम्मू में डोगरा आर्ट गैलरी जो कला का और पुराने महलों की सरचनात्मक विलक्षणता का अद्भुत नमूना है, बिल्कुल उपेक्षित पड़ा है।

घाटी मे विकास की जरूरत कुछ कम नहीं है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि क्षेत्रीय मतभेद गहन तनाव पैदा करते हैं और कानून और व्यवस्था के लिए समस्या खड़ी कर देते हैं। इनका सामना करने के लिए राज्य के कीमती साधनों का प्रयोग किया जाता है जिससे विकास और अधिक उत्पादकता की गति और क्षमता मे अवरोध आता है।

लद्दाख

"1947 में जब पूरा भारत आजादी की खुशियां मना रहा था लद्दाखी तो जैसे कुए से खाई मे गिर पड़े। स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र नागरिक बनने की बजाये वे जम्मू-कश्मीर सरकार की दया और सौतेले व्यवहार के आसरे छोड़ दिये गये।" यह उस क्षेत्रीय क्षोभ और तनाव की भावाव्यक्ति है जिसने सम-कालीन लद्दाख को जकड़ रखा है। ये भाव किसी-न-किसी रूप मे व्यक्त होते रहते हैं। मार्च, 1990 मे मुझे दिये गये ज्ञापन में लद्दाखी बौद्ध समिति ने लिखा था: "गांधीजी और दूसरे भारतीय नेताओं ने भारतीय जनता को विदेशी प्रभुत्व, शोषण और औपनिवेशिक राज्य से मुक्त करवाया। लेकिन हम, लद्दाख के लोग, जिनकी एक अलग पहचान है, काश्मीर के अत्याचारी राजनैतिक प्रभुत्व मे धकेल दिये गये हैं और हमें आजादी तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का फल भी नहीं मिला। स्वतन्त्रता के गत 42 सालों मे हमने न केवल काश्मीर का अनियन्त्रित राजनैतिक प्रभुत्व सहा है, बल्कि अलगाववाद के सशक्त प्रवाह मे तनावग्रस्त भी हो गये।"

लद्दाख हालांकि कम जनसख्या वाला स्थान है, लेकिन इसका क्षेत्र जम्मू-कश्मीर के मिले-जुले क्षेत्र से भी दुगना है। इसका क्षेत्रफल 98,000 वर्ग कि० मी० है जिसकी ऊंचाई 4,000 मीटर है। 981 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 1,20,000 है। चीन और पाकिस्तान दोनों के साथ इसकी एक लम्बी सीमा है। युद्धनीति की दृष्टि से इसकी स्थिति अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण है।

लद्दाख का प्राकृतिक सौन्दर्य अनूठा है। इसमे शान्ति और स्थिरता का आकर्षण है। इसकी बंजर और कठोर गरिमा अपना ही प्रभाव उत्पन्न करती है। विशाल शून्यता भावविह्वल कर देती है।

लद्दाख की भूमि वृक्ष-विहीन है। जहा चिनाब नदी का या अन्य धाराओं का जल उपलब्ध है। केवल वहीं वृक्ष पाए जाते हैं। यहां केवल पहाड़ी पीपल और मिसा के वृक्ष उगते हैं। इसके कुछ क्षेत्रों मे भारी हिमपात होता है। इसका एक छोटा-सा कस्बा, दारास, विश्व का दूसरा सबसे ठण्डा प्रदेश है। यहां तापमान

—40°C से भी नीचे चला जाता है। यहीं पर अंटार्कटिका पर जाने वाले भारतीय सदस्यों को जलवायु के अनुकूल प्रशिक्षण दिया गया था।

लद्दाख में बहुत कम वर्षा होती है। एक साल में लगभग 300 दिन सुनहरी धूप रहती है। छाया में, जमा देने वाली ठण्ड लगती है। सूरज में गर्मी सही नहीं जाती। यदि कोई अपना सर धूप की ओर तथा पांव छाया में करके बैठ जाए तो उसके सिर को गर्मी लग जाएगी जबकि पैर बर्फ से जम जाएंगे।

लद्दाख का धरातल चांद के धरातल से मिलता जुलता है। पहली बार लद्दाख को देखने के बाद मैं अपने दोस्तों से मजाक किया करता था कि अमरीकियों ने आर्म स्ट्रांग को चांद पर भेजने के लिए यूं ही खरबों डालर व्यर्थ कर दिये। उसे लद्दाख भेज देना चाहिए था। वह यहां चांद भी देख लेता और उसे यह इतना रूखा और शुष्क भी न लगता।

लद्दाख के लेह क्षेत्र में, जहां मुख्यतः बौद्ध लोग रहते हैं, जनसंख्या 67,000 है। यहां पर दलाई लामा का सम्मान तिब्बत से भी अधिक किया जाता है। इसे अक्सर तिब्बती बौद्ध की चौकी कहा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह स्वभाव में तिब्बत से ज्यादा तिब्बती है।

कारगिल क्षेत्र में मुख्यतः शिया मुसलमान (80 प्रतिशत) रहते हैं। वे अपने रवैये में बहुत रूढ़िवादी हैं। उनका सम्बन्ध मंगोल, तराछो, मघमी, ब्रुक्पा, और मांग्रिक समुदायों से हैं।

यह दुःखपूर्ण है कि 'विशाल शून्यता लिये चांद की यह भूमि' भी वर्तमान धोखाधड़ी की राजनीति के विष से बची नहीं है। जुलाई-अक्तूबर, 1989 में इस सुदूर क्षेत्र में जहां लोग 'खुशनुमा, अच्छे स्वभाव, हंसमुख और झगड़ों से दूर रहने वाले' माने जाते हैं, यहां लद्दाखी बौद्ध समिति के नेतृत्व में एक लम्बा और कभी-कभी हिंसात्मक आन्दोलन हुआ।

अपने आन्दोलन का औचित्य सिद्ध करते हुए लद्दाखी बौद्धों ने कहा, "आज लद्दाख के लोग यह अनुभव करते हैं कि उनकी प्राचीन संस्कृति की विनम्रता और सहिष्णुता को कायरता और असहायता समझा जा रहा है। उन्होंने अन्ततः एक आन्दोलन छेड़ दिया है, जो किसी धार्मिक सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं बल्कि लेह में हो रहे झगड़ों और समस्याओं के मूलभूत कारण, काश्मीर सरकार के विरुद्ध, जो सभी बुराइयों का स्रोत रही है।" समिति ने आरोप लगाया, "यद्यपि आज़ादी के गत 42 वर्षों में लद्दाख के साथ भेदभाव बरता गया है, लेकिन 1975 में शेख अब्दुल्ला के फिर से सत्ता में आने पर ऐसा विशेष तौर पर किया गया। एक राजनैतिक षड्यन्त्र रचा गया जो लेह और कारगिल को दो अलग जिले बनाने में सफल हो गया। कारगिल को लेह से अलग करने के पीछे शेख का उद्देश्य कारगिलियों, जो मुख्यतः शिया मुसलमान हैं, को यह याद दिलाना था कि इस्लामी व्यवस्था में उन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बन्धनों की कोई अहमियत नहीं है जो वह राज्य में लागू करने की कोशिश कर रहे थे। डॉ० फारूख अब्दुल्ला के सत्ता में आने के बाद लद्दाखी मामलात सम्बन्धी विभाग लगभग मृतप्राय हो गया।"

समिति ने इस ओर भी ध्यान दिलाया, "हमारी शिकायतों का भारतीय सरकार द्वारा कभी भी सकारात्मक प्रत्युत्तर नहीं मिला; बल्कि उन्होंने हमें इन

दशकों में काश्मीरियों के शासन के अधीन छोड़ दिये गये। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के समय मे हमें अपनी ही मातृभूमि पर दास बना दिया गया है। काश्मीरी सरकार द्वारा हम पर किये गये अत्याचार पूर्ण शासन के प्रभाव ने हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप को भी क्षति पहुचाई है।"

बौद्ध लोगों ने महसूस किया कि उनके प्रति सौतेला व्यवहार किया जा रहा है और उनकी शैक्षिक, आर्थिक और प्रशासनिक जरूरतो की जानबूझ कर राज्य सरकार द्वारा उपेक्षा की जा रही है। उन्होंने बताया कि लद्दाख के स्कूलों मे उत्तीर्ण होने वाले बच्चों की संख्या शून्य थी क्योंकि राज्य सरकार ने वहां अध्यापक नियुक्त करने की परवाह ही नही की। 'उर्दू' को कार्यकारी भाषा के रूप मे थोप दिया गया जबकि 'बोधि' की उपेक्षा की गई। लेह जिले के 25 स्कूलों में से केवल कुछ स्कूलों मे बोधि भाषा के अध्यापक थे।

समिति ने यह भी आरोप लगाया कि अनेक धनी और साधन सम्पन्न काश्मीरी व्यापारियो ने लेह मे प्राचीन वस्तुओ की दुकानें खोल ली हैं। ये व्यापारी लद्दाखी प्राचीन वस्तुओं को बेच कर लद्दाख को इसकी सांस्कृतिक विरासत से महरूम कर रहे थे। साथ ही साथ क्षेत्र में जो कुछ आर्थिक अवसर थे, उन्हें भी हड़प रहे थे।

लद्दाखी समिति ने कड़े शब्दों मे यह शिकायत की कि "अनुच्छेद 370 से निश्चित होकर, काश्मीरियो ने अपनी बन्दूकें बौद्धों पर साथ ली हैं जिसका अन्तिम उद्देश्य बौद्ध लोगों को इस्लाम मे शामिल करना है। काश्मीरी मुसलमानो की प्रधानता वाली राज्य सरकार लद्दाखी बौद्धों द्वारा इस्लाम मे धर्म-परिवर्तन को खुले आम प्रोत्साहित कर रही है। मुसलमानो के पक्ष मे बौद्धो की जनसंख्या का अनुपात कम करना ही इसका उद्देश्य है। हाल के वर्षों में मुस्लिम धर्म-परिवर्तन की यह दर बहुत तेजी से बढ़ी है। राज्य सरकार द्वारा कट्टरपन्थियों को निर्दयतापूर्वक धर्म-परिवर्तन करने का प्रोत्साहन मिलता है। धन और प्रचार-प्रसार के साधनों का प्रयोग कर उन्होने सैकड़ो बौद्ध लड़कियो का इस्लाम मे धर्म-परिवर्तन करवा दिया है। धर्म-परिवर्तन के इस अभियान के पीछे लद्दाख का इस्लामीकरण करने और अलगाववादी तथा विघटनकारी राजनीति के आधार पर घाटी को सुसंगठित करने का उद्देश्य है।"

विरोध का दूसरा आधार कुछ काश्मीरी अधिकारियो की नियुक्ति से सम्बन्धित था जिन्होंने 'अरगोरा' लोगों के साथ सांठ-गांठ कर ली थी—'अरगोरा' लद्दाख मे बसे कुलीन सुन्नी मुसलमान व्यापारियो का एक छोटा सा समुदाय है। इन लोगों से मिलकर अधिकारियों ने लद्दाखियों को मिलने वाली आर्थिक सहायता मे हेर फेर किया जिससे लद्दाख मे थोड़ा-बहुत विकास जो हो सकता था, नही हुआ।

लद्दाखियो की दूसरी शिकायत यह थी कि 1989 मे डॉ० अब्दुल्ला मन्त्रि-मण्डल मे 30 मन्त्री थे, लेकिन एक भी उनके क्षेत्र का नहीं था। उन्होंने इस तरह के अनेक दूसरे सवाल उठाये, "लेह की जिला योजना में पर्यटन, विद्युत और बागवानी के विभागों को शामिल करने का क्या औचित्य है जबकि दूसरे जिलो में ये विभाग राज्य से वित्तीय सहायता प्राप्त करते हैं? विश्व बैंक से सामाजिक वन्य योजना के लिए गत 4 वर्षों में 24 करोड़ रुपये प्राप्त किये गये

लेकिन उसमें लेह को शामिल ही नहीं किया गया—क्यों? उच्च स्तर पर, लद्दाख में अधिकारियों की नियुक्ति इस आधार पर नहीं की जाती कि वे वस्तुपरक नहीं होंगे फिर यह मापदण्ड काश्मीर में क्यों लागू होता है जहां स्थिति ठीक विपरीत है?"

जैसाकि अगले अध्याय में बताया गया है, राज्य की ज्यादातर समस्याएं अनुच्छेद 370 के दुरुपयोग और काश्मीरी राजनीतिज्ञों द्वारा राज्य-सत्ता के स्वरूप को ऐसा बनाने की वजह से हैं जिससे घाटी को ही लाभ हो।

लद्दाख की विशेष जरूरतों की भी उपेक्षा की गई है। 1984 में जब मैं पहली बार लद्दाख गया और इसके छुसुल, पोग-गोंग, झील, जंस्कर और नुबरा जैसे इलाकों का भ्रमण किया जो न केवल दूर थे बल्कि यहां तक पहुंचाना भी कठिन था, तो इस पूरे असाधारण माहौल में वही साधारण प्रशासनिक मशीनरी ने मुझे हैरान कर दिया। इस तथ्य के बावजूद कि पर्यावरण और सुदूर इलाकों में रहने से उत्पन्न माहौल में आधारभूत भिन्नता है—प्रशासन यहां भी दूसरे जिलों की तरह ही था। सेना की उपस्थिति और इसका सहायतापूर्ण उदार रवैया न हो तो सुदूर इलाकों में रहने वाले लद्दाखी मौसम पर निर्भर और वर्तमान नागरिक सुविधाओं से वंचित प्रागैतिहासिक लोग बनकर रह जाएं।

हैरानी की बात नहीं है कि विकास की कुछ योजनाएं वर्षों से पूर्ववत् पड़ी हैं। 'स्कुतना हाइडल प्रोजेक्ट' 30 वर्ष पहले शुरू किया गया था और जब मैंने इसका दौरा किया तो इसका एक अहम भाग बनना अभी शेष था। उत्तरी कमांड के आर्मी कमांडर लेफ्टिनेन्ट-जनरल एम० एल० छिब्बर ने मुझे बताया कि जब वह इस क्षेत्र में केप्टेन की हैसियत से काम कर रहे थे तो स्कुतना योजना शुरू हुई थी और उनके आर्मी कमांडर बन जाने के बाद भी यह योजना अभी चल ही रही है।

1986 में गवर्नर शासन के दौरान लद्दाख की विशेष ज़रूरतों को पूरा करने के लिए मैंने कुछ कदम उठाये। लेह कस्बे के लिए लेह विकास प्राधिकरण स्थापित किया गया जो शहरी सुधार कार्य तथा नागरिक सेवाओं के आधुनिकरण का कार्य संभाल सके। शहर को स्वच्छ और नया स्वरूप देकर पर्यटक को प्रोत्साहित करना इसका उद्देश्य था। लद्दाख के लिए एक मुख्य इंजीनियर नियुक्त किया गया। चुना गया अधिकारी दावा, लद्दाखी ही था। वह लोकप्रिय था और अपनी ईमानदारी, गहन स्थानीय ज्ञान और स्वाभिमान के लिए जाना जाता था। 'गर्म धूप और जमा देने वाली ठण्ड' के मौसम के अनुकूल एक निवासीय योजना तैयार की गई। ट्राम्बे दीवार व्यवस्था जो दिन की गर्मी को संचित करने, रात में गर्माहट देने में समर्थ हो—उसका प्रयोग करके 200 आवासीय इकाइयों पर काम शुरू किया गया।

भाषा और साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए काश्मीर तथा जम्मू विश्वविद्यालय में लद्दाखी अध्ययन विभाग खोलने के निर्देश दिये गये।

लद्दाख के पर्यावरण की विशेष जरूरतों का ख्याल रखने के लिए एक गैर-राजनैतिक समिति 'लद्दाखी पर्यावरण समाज' की अपनी गतिविधियां बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। बड़े पैमाने पर केन्द्रीय पर्यावरण विभाग को भी इस पूरे क्षेत्र में लाया गया।

मैंने अनेक दीर्घकालीन योजनाओं और सुदूर क्षेत्रों मे प्रशासनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए अनेक संस्थात्मक परिवर्तन को भी तैयार किया था। लेकिन श्रीनगर और नई दिल्ली मे कार्यरत राजनैतिक तत्त्वो के फलस्वरूप, गवर्नर शासन अकस्मात् ही खत्म कर दिया गया। न केवल परिवर्तन की योजनाएं त्याग दी गईं बल्कि कुछ निर्णयो को बिल्कुल विपरीत रूप दे दिया गया। मसलन मुख्य इंजीनियर, दावा, का स्थानांतरण कर दिया गया। इससे लद्दाखी बहुत परेशान हुए। परिणामस्वरूप दावा ने त्यागपत्र दे दिया।

अप्रत्यक्ष रूप मे दावा के प्रति किया गया व्यवहार ही लद्दाखी बौद्ध समिति द्वारा 1989 मे शुरू किये गये लम्बे और हिंसात्मक आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया।

यह प्रमाणित होता है कि राज्य की अनेक गम्भीर समस्याएं क्षेत्रीय कारणों से उत्पन्न हुई है। जैसाकि अन्तिम अध्याय मे मैंने संकेत किया है, रचनात्मक काम करने, सुधार और जीर्णोद्वार करने के लिए एक विशेष तरह की प्रेरणा, दृढ़ इच्छा और उत्साह की आवश्यकता होती है। इसकी अनुपस्थिति मे विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न समुदायों मे एकता विकसित नही हो सकती। इसके *विपरीत, स्थिति और भी खराब हो जाती है। पहले ही, लद्दाखी बौद्ध समिति* एक बार फिर केन्द्रीय प्रशासित राज्य का दर्जा पाने के लिए आन्दोलन छेड़ने को तैयार है, जम्मू-घाटी की घटनाओ के प्रभाव मे किसी भी वक्त फूट सकता है। स्थिति मे कुछ क्षेत्रीय विद्वेष गहरे पैठे हैं।

रक्त धारा

मैंने वे प्रच्छन्न धाराएं दिखाई हैं जिनसे होकर काश्मीर के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन का रक्त प्रवाहित होता है। ऐसा करते हुए मैंने दूसरी शता० ई० पूर्व० के ग्रीक इतिहास पोली बिदस की बात याद रखी है। उसने कहा था: "यदि तुम इतिहास के कारण, सिद्धान्त और प्रेरणा और उद्देश्य प्राप्ति के लिए *साधनों के प्रयोग का सारा विवरण ले लेते हो तो एक ऐसा दृश्य पटल रह जाएगा* जो शिक्षाप्रद नही होगा और यादें थोड़े समय के लिए हमें यह खुशी दे, इसका कोई स्थायी मूल्य नही होगा।"

छठा अध्याय

मूल कारण : धारा 370

उनके लिए सत्ता ही सब कुछ है, ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं। उन्होंने इस राज्य को ऐसा बना दिया है, जहां न्याय नाम की कोई चीज नहीं और सब कार्य परस्पर विरोधी हैं।

—(लेखक की डायरी से
15 अगस्त, 1986)

काश्मीरी अलगाववाद और फूट की सबसे मजबूत जड़ें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 में हैं, जो जम्मू-काश्मीर राज्य को विशेष स्तर देता है। इस मुद्दे में केवल दूरगामी परिणामों वाले ऐतिहासिक, संवैधानिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विचार ही शामिल नहीं हैं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक विचार भी इसमें निहित हैं। अक्सर इसको लेकर राष्ट्रीय स्तर पर जोरदार विवाद भी हुआ है। संविधान से इसको निकालना या इसे जस का तस रखना—दोनों पक्षों को समान रूप से जोरदार समर्थन मिला है। लेकिन इसके एक आधारभूत पहलू पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। उसका सम्बन्ध निहित स्वार्थों द्वारा इस धारा के दुरुपयोग से होता है।

गवर्नर शासन के दौरान मूलभूत सुधारों से बारे में सोचते हुए, मैंने अगस्त, 1986 में अपनी डायरी में लिखा : "धारा 370 इस स्वर्ग रूपी राज्य में केवल शोषकों को समृद्ध करने का ही साधन है। यह गरीबों को लूटता है। यह मृगतृष्णा की तरह उन्हें भ्रम में डालता है। यह 'सत्ताधारी कुलीनों' की जेबें भरता है। नये 'सुलतानों' के अहम को बढ़ाता है। संक्षेप में यह एक ऐसे भू-क्षेत्र की रचना करता है, जहां न्याय नहीं है और जो अपरिपक्वताओं तथा अन्तर्विरोधों से भरा है। यह धारा धोखे, दुहरेपन और जनोत्तेजना की राजनीति को बढ़ावा देता है। विघटन के बीजाणुओं का प्रजनन करता है। दो-राष्ट्र धारणा की हानिकारक विरासत को जीवित रखने में सहयोग देता है। एक भारत के विचार और काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के महान् सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण की हत्या करता है। घाटी में यह एक हिंसात्मक और सशक्त उथल-पुथल का कारण हो सकता है—यह एक ऐसे भूचाल का केन्द्र है, जिसका कम्पन पूरे देश को हिला देगा, उसके परिणामों की हम कल्पना नहीं कर सकते।" इसके

बाद मैंने केन्द्रीय सरकार को अपने विचार बताये और राज्य में एक नये संस्थानात्मक ढांचे के लिए अनेक सुझाव भी दिये। लेकिन इन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। एक महान् अवसर इस तरह खो दिया गया।

समय के साथ-साथ, धारा 370 सत्ताधारी राजकुलीनों और अफसरशाही, व्यापारियों, न्यायप्रणाली तथा वकीलों के हाथों शोषण का साधन बन चुका है। इसने एक दुष्चक्र स्थापित हो गया है, जो अलगाववादी वर्गों को जन्म देता है और ये बल बदले में 370 को मजबूत बनाते हैं। राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त धनी वर्ग के लिए भी धारा धन बटोरने का साधन बनी है। अन्य स्वस्थ वित्तीय नियमों को राज्य में लागू न होने देना भी सम्भव बना दिया है। धारा 370 के कारण केन्द्र के अनेक लाभकारी कानून जैसे सम्पत्ति कर, शहरी भूमि सीमा कानून, उपहार कर इत्यादि यहां लागू नहीं हो सकते। सामान्य जनता को यह समझने ही नहीं दिया जाता कि दरअसल धारा 370 उन्हें पनपने ही नहीं दे रही है, न्याय नहीं मिल रहा है और आर्थिक विकास में उनकी भागीदारी से भी उन्हें दूर रख रहा है।

वे क्या परिस्थितियां थीं, जिनके कारण धारा 370 को हमारे संविधान में लाया गया? इसकी विषय-वस्तु क्या है? और समय के साथ-साथ, इसका स्वरूप बिगड़ा तो क्यों? आगे कुछ कहने से पहले इन सवालों पर चर्चा करना जरूरी है।

24 अक्तूबर, 1947 को जब पाकिस्तानी फौजों ने आजाद कश्मीर सेना के नाम से कश्मीर पर हमला बोला तो महाराजा हरीसिंह ने भारत सरकार से मदद मांगी। 26 अक्तूबर, 1947 को उन्होंने विलय संधि की। इसके अधीन उन्होंने सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द कर दिये। इस 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' का स्वरूप बिल्कुल वैसा ही था, जैसाकि दूसरे रियासती राज्यों के प्रमुखों ने भारत सरकार से किया था। भारतीय

मलन का अन्तिम

इस अन्तराल में

[illegible]धानी सभा में इस

पर विचार-विमर्श होने तक भारतीय संविधान में कुछ अन्तरिम नियम तो बनाने ही थे और धारा 370 जोड़कर ऐसा किया गया।

धारा 370 का सार तत्व यह है कि जम्मू कश्मीर के सम्बन्ध में रक्षा, विदेशी मामलों और संचार के साथ-साथ केन्द्रीय संसद, केन्द्रीय तथा सम्मिलित सूचियों के संदर्भ में राज्य सहमति पर ही कानून बना सकती है। इससे जम्मू कश्मीर राज्य को एक विशेष स्तर मिल जाता है। जहां एक ओर केन्द्रीय संसद को अन्य राज्यों के संदर्भ में कानून बनाने के लिए निर्बाध अधिकार है, वहीं जम्मू-कश्मीर के लिए कानून राज्य सरकार की सहमति पर ही बनाया जा सकता है।

धारा 370 जो कि परिशिष्ट III में दी गई है, से स्पष्ट हो जाता है कि यह स्वभाव से ही अल्पकालिक है। जम्मू कश्मीर की संवैधानिक सभा ने फरवरी, 1956 में राज्य के संघ में सम्मिलन की अभिपुष्टि कर दी थी। इस अभिपुष्टि के साथ ही राज्य का भारत में सम्मिलन का मुद्दा सुलझ गया था, लेकिन रक्षा, विदेशी मामलों और संचार के अतिरिक्त अन्य मामलों में संसद के अधिकार क्षेत्र के मुद्दे को लचीला ही छोड़ दिया गया। राज्य सरकार की सहमति से, राष्ट्र-

पात भारतीय संविधान के नियम जम्मू-काश्मीर पर भी लागू कर सकते थे।

370 के अन्तर्गत राष्ट्रपति का पहला आदेश 1950 में जारी किया गया था। इस आदेश से भारतीय संविधान के उन्हीं तीन क्षेत्रों के नियम राज्य पर लागू किये गये, जो 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' में वर्णित थे। संविधान के अन्य क्षेत्रों के नियम भी राज्य पर लागू करने के सुझावों पर केन्द्रीय तथा राज्य प्रतिनिधियों की आगे बातचीत हुई। उस समय शेख मुहम्मद अब्दुल्ला जम्मू-काश्मीर के प्रधानमंत्री थे। बातचीत के परिणामस्वरूप दोनों सरकारों के बीच एक समझौता हुआ। यह समझौता दिल्ली समझौते (1952) के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार भारत के राष्ट्रपति ने संविधान आदेश 1954 (जम्मू और काश्मीर पर प्रयुक्त) जारी किया। इस आदेश के अन्तर्गत भारतीय संविधान के अनेक नियम इस राज्य पर भी लागू किये गये। समय-समय पर इस आदेश में राज्य पर अन्य नियम लागू करने के लिए संशोधन किये गये। इन नियमों की विशेषताओं का विवरण परिशिष्ट 4 में दिया गया है। जम्मू काश्मीर-संविधान का 1966 में अलग से संशोधन किया गया, जिसके अनुसार सदर-ए-रियासत का पद गवर्नर और प्रधानमंत्री का पद मुख्यमंत्री में बदला गया।

संक्षेप में आज भारतीय संविधान के रक्षा, विदेशी मामलों एवं संचार के साथ-साथ अन्य कई नियम जम्मू-काश्मीर राज्य पर लागू होते हैं। नियमों के इस विस्तार के अन्तर्गत धारा 356 और सर्वोच्च न्यायालय का न्याय क्षेत्र, चुनाव आयोग तथा महालेखाकार के अधिकार क्षेत्र महत्त्वपूर्ण हैं।

फिर भी कभी बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जो राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में ही आती हैं, जिनमें समवर्ती सूची तथा अवशिष्ट अधिकारों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा आ जाता है। अनुच्छेद 352 जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को राष्ट्रीय संकट की घोषणा करने का अधिकार मिलता है, इस राज्य में केवल एक सीमा तक ही लागू हो सकता है। अनुच्छेद 360, जो राष्ट्रपति को आर्थिक संकट घोषित करने का अधिकार देता है, इस राज्य पर लागू नहीं होता। न तो राष्ट्रपति इस राज्य के संविधान को रद्द ही कर सकता है न ही अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत इसे कोई निर्देश दे सकता है।

राज्य का अपना संविधान है जो कि धारा 370 की एक दुर्भाग्यपूर्ण गौण उपज है। भारतीय संघ के किसी और राज्य का अलग संविधान नहीं है। अन्य राज्यों का एक ही स्वरूप है, जो भारतीय संविधान के भाग IV के अनुसार रचा गया है।

जम्मू-काश्मीर संविधान की व्यवस्था अनेक समस्याएं पैदा करती है—विशेषकर सम्पत्ति रखने, नागरिकता पाने और राज्य में बसने के अधिकार के संदर्भ में। भारत के नागरिक स्वत: ही जम्मू-काश्मीर के नागरिक नहीं बन जाते। उन्हें राज्य में बसने का भी कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है। भारत का संविधान केवल एक नागरिकता को मान्यता देता है। लेकिन जम्मू-काश्मीर के नागरिक दुहरा लाभ उठाते हैं—भारत के नागरिक के रूप में और दूसरा जम्मू काश्मीर के नागरिक के रूप में। जो लोग जम्मू-काश्मीर राज्य के नागरिक नहीं हैं उन्हें राज्य में अनेक कमियों का सामना करना पड़ता है। वे राज्य में कोई भी सम्पत्ति नहीं रख सकते। उन्हें राज्य की संसद, स्थानीय समस्याओं, पंचायतों

या सहकारी समितियों वगैरह के चुनाव में मतदान का कोई अधिकार नहीं होता। इससे भी ज्यादा अन्यायपूर्ण यह है कि यदि जम्मू-काश्मीर राज्य की कोई महिला किसी अन्य राज्य के नागरिक से विवाह कर लेती है तो वह जम्मू-काश्मीर में अपनी सारी सम्पत्ति खो देगी; यहां तक कि वह अपने माता-पिता की पैतृक सम्पत्ति का अधिकार भी खो बैठेगी। संविधान की यह व्यवस्था, कानूनी और संवैधानिक रूप से पुरानी और समयानुकूल नहीं है। ये राज्य तथा केन्द्र के मध्य भावनात्मक अवरोध पैदा करते हैं और वैसे भी न्याय तथा औचित्य के मूलभूत सिद्धातों की दृष्टि से भी ठीक नहीं है। यह अस्वस्थ हालत इस तथ्य से और भी बिगड़ जाती है कि राज्य का अपना ध्वज और प्रतीक है। सरकारी इमारतों पर राज्य और राष्ट्र दोनों का झण्डा फहराया जाता है और नेशनल कांफ्रेंस के मंत्री राष्ट्रीय झण्डे के साथ-साथ नेशनल कांफ्रेंस का अपना झण्डा भी फहराते हैं।

जैसाकि इस अध्याय के आरम्भ में बताया गया है, धारा 370 राज्य के आम लोगों के हित में नहीं है। इसके कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मार्च, 1988 में नीडोज होटल के पट्टे (लीज) के समय बढ़ाने की घटना इस बात का एक विशेष उदाहरण है कि कैसे एक छोटा-सा गुट धारा 370 का दुरुपयोग करता है। इस घटना में नीडोज होटल का मूल पट्टा जून, 1980 में खत्म हो गया था। मार्च, 1988 में राज्य सरकार ने इस पट्टे को पूर्व प्रभाव से जून, 1980 से लेकर 95 वर्षों तक प्रलम्बित कर दिया। इसका वार्षिक किराया 52,000 रुपये निर्धारित किया गया जो पट्टे के हर दस साल बाद दुगना हो जाता था। साथ-ही-साथ जिसे पट्टा दिया गया, उस होटल को यह सम्पत्ति आगे एक भारतीय तम्बाकू कम्पनी को पट्टे पर देने की अनुमति भी दे दी गई। यह तम्बाकू कम्पनी 'वेलकम ग्रुप' के नाम से बहुत-से होटल चलाती है और 14 लाख रुपये का वार्षिक किराया देती है जो इजारे के अनुसार आने वाले वर्षों में दुगना हो जायेगा और इजारे के अन्तिम दशक में 30 लाख रुपये हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, यह पट्टीदार वेलकम ग्रुप से इजारे के समय में 19 करोड़ रुपये कमायेगा और इसी समय में राज्य सरकार को केवल 80 लाख रुपये अदा करेगा। इस तरह वह राज्य के खर्चे पर 18.20 करोड़ रुपये की दलाली के रूप में कमाई के साथ खालिस मुनाफा कमायेगा। 113 कनाल जमीन की सम्पत्ति प्रतियोगिता के आधार पर या नीलामी के आधार पर ठेके पर दी जाती तो राज्य सरकार इजारे के रूप में करोड़ों रुपया कमा सकती थी।

करल संगरी होटल जिसे अब सतूर होटल के नाम से जाना जाता है, उसका मामला धारा 370 की मजबूत सुरक्षा के भीतर हो रहे विश्वासघात का दूसरा उदाहरण है। इस मामले में, एक पहाड़ी चोटी पर डल झील की ओर एक पांच सितारा होटल बनाया गया है।

यह मामला मेरी नजर में तब आया जब सोवियत संघ के राजदूत टी० एन० कौल मुझसे मिलने 1985 के मध्य में श्रीनगर आये। वे छुट्टी पर थे और चश्मेशाही विश्रामगृह में ठहरे थे। उन्होंने मुझे बताया कि करल संगरी की छोटी-सी पहाड़ी, जो देखने में खूबसूरत लगती थी, उसे सड़क बनाने के लिए तहस-नहस किया जा रहा है। मैंने मामले की जांच करवाई। मुझे पता चला कि सैयद मीर कासिम के मुख्यमंत्री काल के दौरान उस जगह सरकारी विश्राम गृह बनाने का

कुछ काम शुरू किया गया था। लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ। जब शेख मुहम्मद अब्दुल्ला सत्ता में आये तो इस जगह का कुछ हिस्सा एक प्रभावपूर्ण स्थानीय व्यापारी द्वारा इस मौन सहमति से खरीद लिया गया था कि उस जगह होटल बनाने की अनुमति दे दी जायेगी। डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मुख्यमंत्री काल के दौरान श्रीनगर नगरपालिका से एक अस्पष्ट स्वीकृति भी प्राप्त कर ली गई। जब यह व्यापारी राज्य से बाहर के किसी ऐसे साधन-सम्पन्न होटल संचालक की तलाश में था, जिसे वह जमीन का यह हिस्सा इमारत बनाने की योजना की स्वीकृति के साथ बेच सके। इसी दौरान फारूख अब्दुल्ला की सरकार गिर गई। कुछ समय मामले को टालने के बाद, उस व्यापारी ने मुख्यमंत्री जी० एम० शाह के बेटे मुजफ्फर शाह की मदद से इमारत बनाने की योजना पुनः स्वीकृत करवा ली। तब तक एक योग्य ग्राहक—संतूर होटल—का पता लगा लिया गया था और उससे समझौता भी हो गया था। इस अवस्था में उस पहाड़ी की काट-छांट, तोड़-फोड़ शुरू कर दी गई।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला की पार्टी, नेशनल कांफ्रेंस (फा) जो इस व्यापारी के कार्यकलापों से परिचित थी, उसने कई बार मुझसे मुजफ्फर शाह पर आरोपित गलत कामों के बारे में शिकायत की। 14 सितम्बर, 1985 को डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मंत्रिमण्डल के दो सदस्य पी० एल० हांडू और मुहम्मद शफी इस संदर्भ में मुझसे मिले। वे इस मुद्दे को लेकर इस कदर गम्भीर थे कि उन्होंने लगभग मुझे अपने कार्यालय से उठकर बाहर आकर यह देखने के लिए विवश कर दिया कि किस तरह एक खूबसूरत पहाड़ को भद्दा बनाया जा रहा था और किस तरह डल झील के माहौल और पर्यावरण को बिगाड़ा जा रहा था।

7 मार्च, 1986 को राज्य में गवर्नर शासन लागू कर दिया गया। फाइलों की जांच करने पर मैंने जमीन के स्वामित्व और तथाकथित स्वीकृति—दोनों ही संदर्भों में अनेक अनियमितताएं पाईं। पूरी योजना रद्द कर दी गई। मैं खुश था कि एक गम्भीर पर्यावरण सम्बन्धी क्षति होने से बच गई। खूबसूरत दृश्य को बिगाड़ने के साथ-साथ होटल की वजह से डल झील में बहुत सारी गंदगी और मलबा भी जाता। लेकिन गवर्नर शासन हटने के थोड़ी देर बाद ही, उस जगह निर्माण का काम जोर-शोर से शुरू हो गया। जांच करने पर मुझे पता चला कि किसी और ने नहीं बल्कि मुख्यमंत्री फारूख अब्दुल्ला ने ही होटल की नींव का पत्थर रखा था। यह दुःखपूर्ण बात थी कि जो व्यक्ति तथा जो पार्टी भ्रष्टाचार और पर्यावरण सम्बन्धी आरोपों पर खूब शोर मचा रही थी, उसी को पूरी योजना को चालू रखने का श्रेय गया। और इस तरह स्थानीय व्यापारी तथा उसका होटल संचालक सहायक राज्य के बूते पर भारी वित्तीय लाभ उठाने में सफल हो गया।

यह घटना एक विशेष तरीके से यह प्रदर्शित करती है कि किस तरह पैसा बनाने और शक्ति बनाने वाला गुट राज्य की आर्थिक तथा पर्यावरण सम्बन्धी व्यवस्था को धारा 370 की आड़ में अस्त-व्यस्त कर रहे हैं और किस तरह काश्मीर की त्रासदी धोखे की राजनीति और शोषण की अर्थव्यवस्था में ही निहित है। यदि राज्य की व्यापारिक जमीन देश के अन्य भागों की तरह नीलामी या प्रतियोगिता के आधार पर दी जाती, तो राज्य को बहुत लाभ होता

और दलाल लाभ न उठा पाते। राज्य के पर्यावरण को क्षति नहीं पहुंचती। काला धन घटता। भ्रष्ट और चालाक लोगों को काम करने का आधार ही नहीं मिलता। सत्ताधारी तथा व्यापारी वर्ग के कुलीनों में जो षड्यन्त्रकारी सम्बन्ध हैं, वे टूट जाते। क्योंकि कुछ भी काम नाजायज और रहस्यात्मक तरीके से करने की जरूरत नहीं होती, इसलिए पर्यावरण को होने वाले नुकसान को भी कम किया जा सकता। राज्य के बाहर से पूंजी भीतर आयेगी तो स्थानीय जनता के लिए रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। समाज और खुला हो जायेगा। इस तरह विकास की प्रक्रिया भी तेजी पकड़ लेगी।

1986 में राज्यपाल शासन के दौरान मैंने एक बड़ी इमारत, जिसे हरि-निवास नाम से जाना जाता था, होटल बनाने के लिए, राज्य के निवासी होने वाले बंधन के बगैर खुली नीलामी में रख दिया। यह भवन भूतपूर्व महाराजा का था। 70 के दशक के आरम्भ में डॉ० करनसिंह ने इसे राज्य सरकार को 50 लाख रुपये में बेच दिया था। इसका कोई इस्तेमाल नहीं किया गया था। खुली नीलामी में हमें 6 करोड़ रुपये मिले। सत्ताधारी कुलीनों द्वारा 370 का शोर मचाकर गरीब जनता को गुमराह करने से रोकने के लिए मैंने साथ-ही-साथ घोषणा की कि नीलामी से प्राप्त राशि का उपयोग शहर में सीवर्स डलवाने के लिए किया जायेगा। नीलामी की धनराशि को शहरी गरीबों के लिए लाभप्रद शहरी विकास योजना से जोड़कर धारा 370 का राज्य के साधनों को सीमित और बाधित करने वाला हानिकारक प्रभाव खत्म कर दिया गया।

शहरी भूमि परिसीमन अधिनियम 1970 सारे भारतवर्ष पर लागू होता है। पर इसे जम्मू-काश्मीर पर लागू नहीं किया जा सकता। इस एक्ट का जम्मू-काश्मीर के विशेष स्तर से क्या लेना-देना है? मुख्यतः सत्ताधारी कुलीनों के निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए इस अधिनियम को यहां लागू नहीं किया गया।

मार्च, 1988 में मुझे छः गम्भीर भ्रष्टाचार के मामलों की जांच करने का अवसर मिला। एक मामले में राजस्व मंत्री और उनके दामाद के विरुद्ध आरोप थे। दूसरी घटना में भूतपूर्व राजस्व सचिव और भूतपूर्व राजस्व मंत्री शामिल थे। तीसरी घटना में, अभी तक शाही परिवार के एक सदस्य द्वारा नाजायज़ सौदे से बड़े पैमाने पर आर्थिक लाभ हासिल किये गये थे। चौथी घटना खाली की गई सम्पत्ति के रिकॉर्ड में की गई धोखेबाजी और चालबाजी से सम्बन्धित थी। पांचवीं घटना में, भूतपूर्व मुख्यमंत्री के पुत्र पर शहर के केन्द्र में एक बहुत महंगी जमीन हथियाने का आरोप था। छठे मामले में, एक पार्टी के उच्च नेता पर आरोप था कि उसने एक भूमि का हर्जाना सामान्य दरों से बहुत अधिक दर पर लिया। इन सभी घटनाओं के दो पहलू एक समान थे: शहरी भूमि और राज-नैतिक तथा अफसरशाही कुलीन वर्ग। बहुमूल्य जमीन को घेरकर और उस पर सट्टेबाजी करके बहुत बड़े पैमाने पर धन बनाया गया था। इस अस्वस्थ गति-विधि को शहरी भूमि अधिनियम (1976) लागू करके रोका जा सकता था। लेकिन निहित स्वार्थों ने इस बात का ध्यान रखा कि ऐसा न हो पाये।

राजनैतिक कुलीन तंत्र स्थापित करने के लिए भी 370 का दुरुपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए, विधान सभा में दल-बदल रोकने का केन्द्रीय विधान जम्मू काश्मीर में पूर्णतया लागू नहीं किया गया। स्थानीय कानून कुछ इस तरह

बनाया गया है कि उससे पार्टी प्रमुख को लगभग तानाशाही अधिकार मिल जाते हैं। राज्यकीय कानून के अनुसार अध्यक्ष नहीं बल्कि पार्टी प्रमुख यह निश्चय करता है कि संसद सदस्य ने वास्तव में दल बदल लिया है या नहीं। दूसरे शब्दों में वह सरकार का मुखिया होने के साथ-साथ पार्टी का मुखिया भी है; वही पार्टी टिकट बांटता है, वही मंत्री चुनता है; और यदि उसके नेतृत्व पर किसी मंत्री या संसद सदस्य द्वारा कोई सवाल खड़ा किया जाये तो वही निर्णय करता है और अन्तिम निर्णय भी उसी का होता है। जम्मू-काश्मीर संविधान (18वां संशोधन) अधिनियम के अनुसार यह कानून 1987 में लागू हुआ। इसके अनुसार, "यदि किसी संसद सदस्य के अयोग्य सिद्ध होने का प्रश्न उठता है तो यह प्रश्न निर्णय के लिए सम्बन्धित पार्टी प्रमुख के हवाले कर देना होगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा।" यह व्यक्तिवाद को बढ़ावा देता है और पार्टी नेता की तानाशाही को लगभग संवैधानिक स्वीकृति भी देता है।

यदि जम्मू-काश्मीर की महिला किसी अन्य भारतीय नागरिक से विवाह करती है, जो जम्मू-काश्मीर का नागरिक नहीं है, तो वह अपनी सम्पत्ति पर अधिकार खो देगी—इस बात का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूं। बतौर उदाहरण मैं हाल में ही घटित घटना का वृत्तान्त बताता हूं। डॉ० रुबीना नसरुल्ला, जो 'राज्य की स्थायी नागरिक / निवासी थीं', उन्होंने अपनी एम० बी० बी० एस० डिग्री प्राप्त की और स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज में प्रार्थनापत्र भेजा। उसके पास राज्य का सर्टिफिकेट था जो प्रार्थनापत्र के साथ दे दिया। लेकिन उससे, "विवाह के बाद स्थायी निवासी होने का सर्टिफिकेट" देने को कहा गया। जिसका आशय था कि शादी के बाद उसकी स्थिति बदल गई है। उसने सम्बन्धित अधिकारियों को यह सर्टिफिकेट देने के लिए प्रार्थनापत्र भेजा, पर उसे इन्कार कर दिया गया। क्यों? क्योंकि उसने एक ऐसे भारतीय से विवाह किया था जो जम्मू-काश्मीर राज्य का स्थायी नागरिक / निवासी नहीं था। धारा 226 के अन्तर्गत डॉ० रुबीना नसरुल्ला को हाई कोर्ट में 'राज्य अधिकारियों' द्वारा 6 फरवरी, 1985 को 'विवाह के बाद, स्थायी विवाह सर्टिफिकेट' लाने या निर्देश और उस सर्टिफिकेट के न लाने पर स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए उसकी अयोग्यता की घोषणा को" रद्द करवाने के लिए पुनर्विचार याचिका दर्ज करवाई। लेकिन यह केस अभी तक यूं ही पड़ा है।

यहां मूल प्रश्न यह है: जो लोग जम्मू-काश्मीर पर शासन करते हैं और जो भारतीय नीति रचयिता 370 तथा राज्य संविधान की आड़ में सब कुछ होने देते हैं, उनका रुख क्या है? एक व्यक्ति जो भारतीय नागरिक है और जम्मू काश्मीर का स्थायी निवासी / नागरिक है, भारतीय करदाताओं के ही पैसे से स्थापित कॉलेज में सिर्फ इसलिए प्रवेश नहीं पा सकता क्योंकि उसने एक भारतीय नागरिक से ही शादी की है? इससे अधिक अन्यायपूर्ण, अतार्किक बात क्या हो सकती है? पाकिस्तानी विस्थापितों सम्बन्धी मामला अन्याय का एक और ज्वलंत उदाहरण है। विभाजन के दौरान, पश्चिमी पाकिस्तान से कुछ परिवार यहां आकर बस गये। अब ये इस राज्य में लगभग चार दशकों से हैं। लेकिन ये बदकिस्मत लोग, जिन्हें परिस्थितिवश जगह बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा, इन्हें मूलभूत मानवीय अधिकार भी नहीं दिये गये। उन्हें, उनके बच्चों, उनके

बच्चों के बच्चों को भी जम्मू-काश्मीर राज्य की नागरिकता हासिल करने का कोई अधिकार नहीं है। राज्य चुनाव, नगर पालिका या पंचायत चुनावो मे भी वे भाग नही ले सकते। यहां तक कि वे राज्य सरकार या उसकी एजेंसियों से उधार भी नहीं ले सकते। युवा लड़के, लड़कियो को राज्य के मेडिकल, इंजीनियरिंग या कृषि कॉलेजों में प्रवेश भी नही मिल सकता।

क्या यह दु खद नही है कि यह सब कुछ हमारे देश के ही एक हिस्से में हो रहा है—उस देश में जो सदा अपने सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय का दम भरता रहा है, उस देश में ऐसा हो रहा है, जो दक्षिणी अफ्रीकियों और फिलीस्तीनियो के मानवीय अधिकारो पर चार-चार आंसू रोता रहा है? यहा मूल प्रश्न, कितने लोग इसमे शामिल हैं—इसका नही है। यहा सवाल कुछ लाभों के लिए तुष्टीकरण नीति की राजनीति के खेल और स्वार्थपरायणता की वेदी पर सहानुभूति और कर्त्तव्यों के बलिदान का है।

आज के जमाने में चार तरह के मुजरिम पहचान मे नही आते। एक वर्ग है जो परोक्ष धोखेबाजी से अपराध करता है। इस वर्ग का उदाहरण वे उच्च-वर्गीय कुलीन हैं जो अपने फायदे के लिए आर्थिक व्यवस्था को मोड़ लेते हैं और जनता का एक बडा भाग इससे भुखमरी का शिकार होता है, मौत और बीमारी इसका परिणाम होता है। अपराधियो का दूसरा वर्ग पर्यावरण टाइम बम का प्रयोग कर फायदा हासिल करता है, जो शरीर मे नही जमीन, हवा और समुद्र मे ज़हर उंडेलते हैं। अपराधियों का दूसरा वर्ग गलत सूचना देने और सत्य को छिपाने की कला से फलता-फूलता है। अपराधियों का एक और वर्ग है जो विलोपन या त्रुटि से अपराध करते हैं जोकि वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से अपराध करने से भिन्न नही है। हम सभी यह जानते हैं फिर भी चुप हैं। विस्थापित लोगों के संदर्भ मे और ऐसे अनेक अन्य मामलात में पूरा देश अपराधी है—कि वह धारा 370 और उसके नतीजो की अमानवीयता और असमानता को नहीं देख पाया।

अनुच्छेद 370 के संदर्भ मे कुछ और प्रश्न हैं जो उठाने चाहिए। इसके अस्तित्व की तार्किकता और महत्त्व क्या है? काश्मीर के बारे में ऐसा विशेष क्या है कि यह धारा दूसरे राज्यो मे लागू नही की जा सकती? यदि 370 से काश्मीर के सास्कृतिक अस्तित्व का संरक्षण करने मे सहायता मिलती है तो ऐसा विधान सभी राज्यो के लिए होना चाहिए था। सभी राज्यों को अपनी सास्कृतिक अस्मिता के सरक्षण की जरूरत है। क्या यह कहा जा सकता है कि बंगाल, केरल और तमिलनाडु के सास्कृतिक परिवेश को संरक्षण की कोई जरूरत नही? फिर काश्मीर में ऐसा क्या है जो भारत के दूसरे राज्यों मे नही है? क्या इसकी यही वजह है कि केवल यही राज्य मुस्लिम बहुसंख्यक है? तो क्या इससे यह स्पष्ट नही होता कि धारा 370 दो-राष्ट्र वाली धारणा को मौन सहमति देती है?

हमने दो-राष्ट्रो के सिद्धान्त की आलोचना की है, विश्व के समक्ष यह घोषणा की थी कि भारत में अलगाव या विशिष्टता का आधार धर्म नहीं है। विडम्बना यही है कि हम ही काश्मीर में दो-राष्ट्र की नीति को लागू कर रहे हैं और हम यह बहुत दर्दनाक और आत्मघाती तरीके से कर रहे हैं। पाकिस्तान जिसका जन्म दो-राष्ट्र के सिद्धान्त की वजह से ही हुआ, अपने साधनों सहित जीवित है। लेकिन

यहां काश्मीर धारा 370 और स्वायत्तता के मसले को इस तरह से व्यवहार में लाया जा रहा है कि हम भारतीय पैसे से लगभग एक सल्तनत, शेखवाद या लघु-पाकिस्तान पाल रहे हैं। दुर्भाग्यवश न तो हमारी इच्छा है, न ही समझ की गहराई कि हम इस खेल को समझ सकें। काश्मीरी नेतृत्व का भारत के प्रति भीतरी रवैया यही है : "आप जा रहे हैं तो क्या छोड़कर जाएंगे, आप लौटकर आएंगे तो क्या लाएंगे ?" भारत से सम्बन्ध केवल भारतीय धन पाने के लिए है न कि न्यायपूर्ण, धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील आधार पर। कोई भी केन्द्रीय कानून या प्रशासनिक कदम चाहे वह जनता के लिए कितना ही लाभदायक हो, यहां आलोचना का केन्द बनता है और त्याग दिया जाता है।

धारा 370 के दावेदार अक्सर यह तर्क देते हैं कि संविधान में इसे रखना राज्य की स्वायत्तता के लिए जरूरी है। लेकिन इस स्वायत्तता का धारा से क्या लेना-देना है ? जब अन्य राज्य केन्द्र से और स्वायत्तता की मांग करते हैं तो उनका मतलब एक अलग पहचान से नहीं होता। वे वाकई सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहते हैं ताकि प्रशासनिक और विकास कार्य जल्दी हो सके और सार्वजनिक सेवा का स्तर अच्छा हो सके। लेकिन जम्मू-काश्मीर में धारा 370 को 1953 से किये गये अवमिश्रण को खत्म कर जस का तस रखने की मांग एक विभिन्न उद्देश्य से उपजी है। यह मांग मुख्य धारा से अलग रहने, अलग साम्राज्य स्थापित करने, अलग झण्डा फहराने, मुख्यमंत्री के स्थान पर प्रधानमंत्री और गवर्नर के स्थान पर सदर-ए-रियासत रखने तथा और अधिक सत्ता हासिल करने की कुशल नीति से उपजी है। यह जनता के हित के लिए, शान्ति या प्रगति हासिल करने या अनेकता में सांस्कृतिक एकता लाने के लिए नहीं बल्कि 'नये कुलीनों' और 'नये शेखों' की स्वार्थ पूर्ति के लिए है।

धारा 370 में किस तरह दो राष्ट्र वाला सिद्धान्त परोक्ष रूप से निहित है, किस तरह इस सिद्धान्त का इतिहास राज्य के साम्प्रदायिक मनोविज्ञान को बनाता है—यह परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति यहां के नेताओं के रवैये से स्पष्ट हो जायेगा। लगभग सभी स्थानीय राजनैतिक पार्टियों को इस कार्यक्रम के विरोध में बोलना अपने हित में लगा। उदाहरण के तौर पर आवामी नेशनल कांफ्रेंस के नेता और भूतपूर्व मुख्यमंत्री जी० एम० शाह ने कहा, "जन्म दर नियंत्रण कार्यक्रम का उद्देश्य मुस्लिम बहुसंख्यकों को अल्प संख्या में बदलना है। 1947 में राज्य की जनसंख्या में 80 प्रतिशत लोग मुसलमान थे, अब उनकी संख्या घटकर 54 प्रतिशत रह गई है। और दस वर्षों में मुस्लिम घटकर अल्प-संख्यक हो जाएंगे—पूरी जनसंख्या का केवल 48 प्रतिशत।" इस तरह के कथन संख्यात्मक तौर पर झूठे होने के साथ-साथ परिवार कल्याण कार्यक्रम को गम्भीर रूप से क्षति पहुंचाते हैं और कट्टरपंथियों की भीतरी सोच को ज़ाहिर करते हैं। वे परिवार कल्याण कार्यक्रम को गैर-इस्लामी बताते हैं और मुसलमानों को एक अल्पसंख्या में बदल देने का हिन्दू भारत का षड्यन्त्र ठहराते हैं। इसी रवैये की वजह से 1971 से लेकर 1981 तक के दशक में जम्मू-काश्मीर में जनसंख्या वृद्धि का दर पूरे देश में सबसे अधिक रहा। राष्ट्रीय औसत 25 की तुलना में यहां 29·6 प्रतिशत था। इसीलिए उपलब्धियों से वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाई।

धारा 370 और स्वायत्तता के इन लक्षणों का व्यावहारिक पहलू क्या है ? कश्मीर की स्थिति में क्या स्वायत्तता सम्भव है ? क्या इसका व्यावहारिकता में कोई अर्थ है ?

योजना और गैर-योजना वित्तीय सहायता के लिए जम्मू काश्मीर बड़े पैमाने पर केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है। इसकी पंचवर्षीय योजना को पूरी वित्तीय सहायता केन्द्र द्वारा दी जाती है। गैर-योजना खर्चे का एक बड़ा भाग केन्द्र द्वारा अदा किया जाता है। मसलन 1988-89 के बजट में राज्य की 74 प्रतिशत राजस्व अदायगी केन्द्रीय सरकार के हस्तातरणों द्वारा की गई। राज्य को सरकार से अनुदान और उधार में 1003 करोड़ रुपए मिले, इसकी कुल प्राप्ति 234 करोड़ रुपये थी। यदि राज्य को वाकई स्वायत्तता दे दी जाती और अपने ही साधनों पर छोड़ दिया जाता तो इसे किसी भी योजना या विकास कार्य के लिए एक नया रुपया भी नहीं मिल सकता था। और राज्य अनेक कर्मचारियों का वेतन भी नहीं दे पाता। अत्यधिक कमजोर वित्तीय स्थिति और तंग आर्थिक आधार को देखते हुए जम्मू-काश्मीर को स्वायत्तता देना न तो सम्भव है और न ही वांछित।

केन्द्र के साथ पूर्ण वित्तीय गठबन्धन के बगैर जम्मू-काश्मीर मध्य युगीन महाराजा के समय का राज्य रह जाता, जब प्रति व्यक्ति आय केवल 11 रुपए थी जिसमें से 21 प्रतिशत करो के भुगतान में चली जाती थी, 93 4 प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित थी; हर 66 वर्ग मील में केवल एक लड़की का प्राथमिक स्कूल होता था और हर 467 वर्ग मील पर लड़कियों की एक प्राथमिक पाठशाला, और कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, उद्योग, सड़कों, सिंचाई और शिक्षा पर कुल खर्चा केवल 36 लाख था। 1947-48 में राज्य के बजट में कुल व्यय 4 81 करोड़ रुपये का था। 1947 में प्रति व्यक्ति राज्य व्यय 15 रुपया था। 1988-89 में केवल योजना पर ही प्रति व्यक्ति राज्य व्यय 645 रुपया था। ये तुलनात्मक अध्ययन उन बड़े फायदों को स्पष्ट करते हैं जो जम्मू-काश्मीर को केन्द्रीय सरकार के साथ पूर्ण वित्तीय गठबन्धन पर हुए। सातवीं पंचवर्षीय योजना में राज्य को 1838 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता मिली —14 करोड़ योजना व्यय के लिए और 438 करोड़ रु० गैर-योजना सम्बन्धी व्यय के लिए। पिछले 43 सालों में केन्द्रीय सरकार ने जम्मू काश्मीर को लगभग 70,000 रुपये दिए हैं। इस राज्य के सन्दर्भ में प्रति व्यक्ति वित्तीय सहायता राष्ट्रीय औसत से कहीं ज्यादा रही है। केन्द्र द्वारा दिये गये कुल अनुदान का 2 57 प्रतिशत इस राज्य को मिल रहा है जबकि इसकी जनसंख्या देश की जनसंख्या का लगभग 0 8 प्रतिशत है। उदाहरण के लिए, जम्मू-काश्मीर के लिए प्रति व्यक्ति केन्द्रीय अनुदान 1989-90 में 1152 रुपये था, जबकि हिमाचल प्रदेश के लिए यह 552 रुपये, असम के लिए 425 रुपये, बिहार के लिए 109 रुपये उत्तर प्रदेश के लिए 91 रुपये और पश्चिम बंगाल के लिए 67 रुपए था।

अब धारा 356 को जम्मू-काश्मीर में लागू करने का ही मुद्दा लें। यह धारा राष्ट्रपति को इस राज्य को राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत लाने का अधिकार देती है। यह प्रायः कहा जाता है कि इस धारा को लागू करना राज्य की स्वायत्तता का अतिक्रमण होता है। लेकिन कोई भी इससे सम्बन्धित यह सवाल नहीं पूछता :

"यदि राज्य में संवैधानिक मशीनरी असफल हो जाती है या अगर राज्य रक्षा, विदेशी मामलों या संचार के क्षेत्र में केन्द्र का कोई निर्देश नहीं मानता, तो धारा 356 के अन्तर्गत आने वाली राष्ट्रपति की शक्तियों की अनुपस्थिति में क्या होगा? मान लें कि गवर्नर को ऐसे ही कुछ अधिकार है तो इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति को अपने द्वारा ही नियुक्त व्यक्ति के निर्णय के सामने झुकना पड़ेगा? मान लें कि गवर्नर को सदर-ए-रियासत बना दिया जाता है जिसे केन्द्रीय सरकार नियुक्त नहीं करती वरन् वह राज्य विधान सभा में चुना जाता है; तब सदर-ए-रियासत के हाथ अन्तिम निर्णय का अधिकार देने का अभिप्राय केन्द्र को राज्य के अधीन करने से नहीं होगा?

दूसरी व्यावहारिक समस्या लेते हैं। सुरक्षा केन्द्रीय मामला है जबकि जमीन प्राप्ति राज्याधिकार में आता है। यदि केन्द्रीय सरकार एक विशेष जगह पर छावनी स्थापित करना चाहती है तो उसके लिए जमीन का प्रबन्ध राज्य सरकार ही करेगी। मान लो कि राज्य सरकार ज़मीन उपलब्ध कराने से इन्कार कर देती है। इसका एक ही उपाय है कि धारा 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति का आदेश लागू किया जाये। दूसरे शब्दों में, प्रशासन के दैनिक कामों में भी ऐसी अनेक स्थितियां पैदा होंगी जिसमें केन्द्र को राज्य सरकार की ओर देखना पड़ेगा। और अगर राज्य सरकार केन्द्र की जरूरतों को मानने से इंकार कर देती हैं, तो केन्द्र का आदेश जबरन लागू करना पड़ेगा।

पूर्वी यूरोप में स्वायत्तता की जो ताजा हवा हाल में ही चल रही है उसे कुछ क्षेत्रों में स्वायत्तता देने के तर्क की तरह इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन यह तर्क हमारे सामाजिक और आर्थिक विकास की अवस्था का ध्यान नहीं रखता। गरीबी, पिछड़ापन, अशिक्षा, कट्टरपंथवाद की समस्याओं को सुलझाने से पहले स्वायत्तता के बारे में सोचना घोड़े के आगे छकड़े को रखने के समान होगा। नकल करके हमें अपना विनाश नहीं करना चाहिये। हमारे 'युद्ध नेता' के स्वतन्त्रता और मानवीय विकास के ऊंचे सिद्धान्तों से प्रेरित नहीं होंगे बल्कि एक संकुचित विचार-धारा से प्रेरित होंगे और चारों ओर दुःख और खून बहा देंगे। विदेशी विचारधारा से प्रेरित हो उठाये गये स्वायत्तता के ये झूठे विचार हमारे देश में विपत्ति का कारण बनेंगे और समाज को विभाजित कर देंगे।

जो लोग जम्मू-काश्मीर की स्वायत्तता की बात करते हैं, वे इस राज्य के विशाल और भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप को भूल जाते हैं। जम्मू के लोगों के सपने अलग हैं। उनका गठबन्धन 'एक विधान, एक प्रधान' से है। उनकी संस्कृति और व्यक्तित्व विशेष है। पूंछ और राजौरी के मुसलमानों में अलग गुण और विशेषताएं पाई जाती हैं। हिमाचल प्रदेश की सीमा के पास रहने वाले लोगों की स्थिति भी यही है। गूजर और बकरवाल भी एक विशेष समूह हैं। लद्दाख तो पूरी तरह से अलग है।

यदि धारा 370 को बनाये रखा जाता है और स्वायत्तता पर ज़रूरत से ज़्यादा जोर दिया जाता है तो काश्मीरियों की हुकूमत का सामना करने के लिए राज्य का हर क्षेत्र, हर सांस्कृतिक इकाई धारा 370 के समकक्ष या फिर 'स्वायत्तता' की मांग करने लगेगी। दावे तथा प्रतिदावे अनन्त होंगे और राज्य की अवस्था और भी तार-तार हो जायेगी।

जम्मू क्षेत्र के लोगों की यह पुरानी शिकायत रही है कि धारा 370 और राज्य संविधान की आड़ में घाटी के नेताओं ने नीतियों और निर्णयों को कुछ इस तरह तोड़ा-मरोड़ा है कि राज्य सत्ता का ढांचा स्थायी तौर पर काश्मीर क्षेत्र के पक्ष में झुका रहता है। इस सम्बन्ध में इस तथ्य पर हमेशा संकेत किया जाता रहा है कि हर 14 लाख लोगों का एक प्रतिनिधि जम्मू लोक सभा में भेजता है जबकि काश्मीर हर एक लाख लोगों का एक प्रतिनिधि लोक सभा में भेजता है। जम्मू का कुल क्षेत्र काश्मीर से 70 प्रतिशत बड़ा है और यहां राज्य की 45 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। लेकिन राज्य विधान सभा की 76 सीटों में से जम्मू की केवल 32 सीटें हैं और काश्मीर की 42। जबकि जम्मू हर 90,000 लोगों पर एक सदस्य विधान सभा में भेजता है, काश्मीर हर 73,000 पर एक सदस्य भेजता है। 1979 में घाटी में तीन नये जिलों की संरचना एकाएक कर दी गई थी जबकि वजीर कमीशन (1981-83) द्वारा पारित तीन में से एक भी जिला जम्मू क्षेत्र में नहीं बनाया गया। योजना वित्त का वितरण भी असमान है। मसलन, घाटी में औसतन पांच लाख पर्यटक आते हैं जबकि जम्मू में वैष्णो देवी के तीर्थस्थल पर ही लगभग बीस लाख धार्मिक यात्री या पर्यटक आते हैं जिससे राज्य को बहुत आर्थिक लाभ होता है। इन पर्यटकों को सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य द्वारा लगभग न के बराबर व्यय किया जाता है। यहां तक कि कटरा जाने वाली सड़क, जिस पर रोज हजारों बसें और ट्रक गुजरते हैं, बहुत तंग है। दूसरी तरफ घाटी को वित्तीय सहायता का एक बड़ा भाग कई बार पर्यटन बजट का 90 प्रतिशत भी, घाटी को दे दिया जाता है। दो वर्तमान योजनाओं, गुलमर्ग केवल कार और श्रीनगर गोल्फ कोर्स पर कुल व्यय 50 करोड़ रुपये होगा। जम्मू में डोगरा आर्ट गैलरी, जहां कला के कुछ असाधारण नमूने रखे गये हैं, पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। फिर जम्मू क्षेत्र का कुल क्षेत्र 26,293 वर्ग किलोमीटर है और सड़कें 3,500 किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं, काश्मीर का क्षेत्र 15,853 वर्ग किलोमीटर है और सड़कें 4,000 किलोमीटर क्षेत्र में फैली हैं। इस तरह, जम्मू में 18 प्रतिशत क्षेत्र में सड़कों का जाल है जबकि काश्मीर में यह क्षेत्र 40 प्रतिशत है।

लद्दाखी लोग भी इसका विरोध करते हैं कि काश्मीरियों के हाथ में धारा 370 का फायदा पकड़ा दिया गया है। वे यह शिकायत करते रहे हैं कि 'स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र सपूत होने' की बजाय उन्हें काश्मीरियों की दया पर छोड़ दिया गया है। अक्सर उन्हें यह कहते सुना गया है, "अगर भारत हमें काश्मीर की हुकूमत में रखना चाहता है तो यह तो चीनी हुकूमत के कब्जे में रहने जितना ही बुरा है।" 1949 में ही, नेहरू जी को सम्बोधित एक भावनात्मक अनुरोध में लद्दाख बौद्ध समिति ने लद्दाख को प्रत्यक्षतः केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत लाने की प्रार्थना करते हुए कहा था, "तिब्बत भारत की सांस्कृतिक पुत्री है और 'लघु तिब्बत' के हम लोग अपनी मां की छत्रच्छाया चाहते हैं ताकि हमें पूर्ण विकसित होने के लिए पर्याप्त भरण-पोषण मिले। क्या हमारी महान मां (भारत) अपने सबसे कमजोर, अलग-अलग पड़े निराश बच्चों को अपनी बाहों में लेने से इन्कार कर देगी?" दुर्भाग्यवश ऐसी भली भावनाएं भी कोई योग्य प्रत्युत्तर प्रेरित नहीं कर सकीं। धारा 370 के अन्तर्गत घाटी के नेतृत्व को लद्दाख के ऊपर भरपूर

प्रमुख दे दिया गया और जो संस्था रूपी सुरक्षा कवच भारत के अन्य प्रदेशों में उपलब्ध थे, लद्दाखियों को वे भी नहीं दिये गये। जुलाई-सितम्बर 1990 में लद्दाखी बौद्धों का हिंसात्मक आन्दोलन उनके काश्मीरी हुकूमत और शोषण (जैसाकि वे कहते हैं) के विरोध की सशक्त अभिव्यक्ति थी।

जम्मू काश्मीर में मुख्य कार्य स्वायत्तता के खोटे सिक्के को जारी रखना और लोगों को सांस्कृतिक अस्तित्व के नाम पर गुमराह करना नहीं बल्कि गरीबी, भूख, बीमारी को हटाना, सर्वहारा वर्ग की सामान्य तकलीफों को दूर करते हुए संतुलित विकास नियोजित करना है। जब तक पिछड़ापन खत्म नहीं होता, असली स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र नहीं हो सकता। इससे काश्मीरी संस्कृति भी दूषित हो जाएगी। धारा 370 की समाप्ति दरअसल गरीबी और पिछड़ापन हटाने में मदद करेगा जिससे काश्मीरी संस्कृति पुनर्जीवित होगी और पूरे राज्य का सांस्कृतिक व्यक्तित्व फले-फूलेगा। कोई भी संस्कृति अकेले ही विकसित नहीं हो सकती। इसके लिए इसका दूसरी संस्कृतियों के सम्पर्क में आना जरूरी है।

कुछ नेता और विशेषज्ञ अब भी यही कहते हैं कि धारा 370 विश्वास का मामला है। लेकिन वे इससे आगे नहीं बढ़ते। वे स्वयं से यह नहीं पूछते—इस विश्वास का मतलब क्या है? इसके पीछे क्या तर्क है? क्या राज्य को भारतीय संविधान के ढांचे में पूर्णतया ढालकर इस विश्वास को और सशक्त, न्यायपूर्ण और सार्थक नहीं बनाया जा सकता?

इसी स्वर में, 'ऐतिहासिक आवश्यकता' और 'स्वायतता' जैसे शब्दों के बारे में बात की जाती है। व्यवहार में इन शब्दों का क्या अर्थ है? क्या ऐतिहासिक आवश्यकता का मतलब यह है कि एक हाथ से हम जम्मू-काश्मीर को एक भारी कीमत पर लिखित रूप में भारतीय संघ का हिस्सा मान लें और दूसरे हाथ से सुनहरी कठौती पर इसे वापस कर दें? क्या यह काश्मीरी नेतृत्व के इस कथन के अनुरूप नहीं बैठता, "आप भेजें मैं खर्च करूंगा; अगर मैं भ्रष्ट और लापरवाह कुलीन तंत्र भी खड़ा करता हूं और ऐसी स्थिति पैदा करता हूं जिसमें अलगाव की तलवार हमेशा आपके सिर पर लटकती रहे, तो भी आपको कुछ कहने का अधिकार नहीं होगा?"

क्या धारा 370 रद्द किया जा सकता है? यदि हां तो कैसे? कई बार यह तर्क दिया जाता है कि इस धारा को राज्य विधान सभा की सहमति के बगैर रद्द करना संवैधानिक रूप से उचित नहीं है। यह कहा जाता है कि इस संदर्भ में संविधान को एक नजर से देख लेने पर ही यह स्पष्ट हो जाता है। धारा 370 का महत्त्वपूर्ण भाग इस प्रकार है—

"धारा के पूर्ववर्णित विधान के बावजूद, राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना के द्वारा, यह घोषणा कर सकता है कि इस धारा को रद्द कर दिया गया है···"

"···लेकिन राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचना जारी करने से पहले राज्य विधान सभा की सहमति जैसाकि खण्ड (2) में बताया गया है, जरूरी होगी।"

राष्ट्रपति घोषणा से पहले महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है राज्य विधान सभा की सहमति की। दूसरे शब्दों में, यदि केन्द्रीय सरकार इस धारा को रद्द भी करना चाहे तो ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि इसके लिए राज्य की असेम्बली की अनुशंसा आवश्यक होगी। धारा 368 के अन्तर्गत संशोधित प्रावधान भी कोई सहायता

नहीं कर सकते।

ऊपरी तौर पर, यह तर्क प्रभावपूर्ण लगता है। लेकिन संविधान का कोई भी विधान अलग से नहीं पढ़ा जा सकता। धारा 1 इसमें कहीं ज्यादा मूलभूत महत्ता रखती है। इसके अनुसार—

" 1. नाम और भारत का क्षेत्र भारत राज्यों का एक संघ होगा।

2. राज्य और क्षेत्र प्रथम अनुसूची में दिये गये के अनुसार होंगे।

3. भारत के क्षेत्र में : (क) राज्यों का क्षेत्र, (ख) केन्द्रीय शासित प्रदेशों का क्षेत्र, जैसा कि प्रथम अनुसूची में बताये गए हैं, (ग) और ऐसे अन्य क्षेत्र जो प्राप्त किये जाएंगे, इसके अन्तर्गत आते है।

प्रथम अनुसूची के अनुसार जम्मू काश्मीर भारत का पन्द्रहवां प्रदेश है और धारा 1 इस पर पूरी तरह लागू होती है। दूसरी ओर धारा 370 अस्थायी है। संविधान के (xxi)वें भाग का शीर्षक है—'अस्थायी, अल्पकालिक विशेष विधान'। इस प्रकार, जब धारा 370 बनाई गई थी तो इस विचार के साथ कि यह संविधान मे बहुत कम समय के लिए देश के परिवर्तन के दौर तक ही रहेगी। क्योंकि राज्य की संवैधानिक सभा अब नहीं है जो धारा 370 के अन्तर्गत इसकी सहमति का सवाल ही नहीं उठता। एक मृतक या अस्तित्वहीन संस्थान की सहमति का कोई अर्थ नहीं होता। इसलिए, धारा 368 के अन्तर्गत केन्द्रीय ससद द्वारा जो प्रदेश के लोगों का भी प्रतिनिधित्व करती है, संविधान को संशोधित किया जा सकता है। इसके बाद, राज्य की संविधान सभा की सहमति का विधान भी हटाया जा सकता है। यह विधान हटाये जाने के बाद, राष्ट्रपति आवश्यक घोषणा कर सकता है और इस तरह धारा 370 को रद्द किया जा सकता है।

जब भी संविधान के किन्हीं दो विधानों में विरोधाभास हो तो जो तुलनात्मक रूप से अधिक मूलभूत है, वही प्रचलन मे रहेगा। संविधान को समझने के दौरान, अदालतों को परिवर्तित परिस्थितियों और सारे देश के उद्देश्यों को ध्यान मे रखना होगा, जिनके लिए संविधान बनाया गया है। धारा 1, जैसाकि मैंने पहले कहा, मूलभूत महत्त्व रखती है। यह देश की क्षेत्रीय एकता और संगठन से सम्बन्धित है। सोवियत संघ की तुलना मे हमारे देश के किसी राज्य को अलग होने का अधिकार नहीं है। पूरे देश के राजनैतिक और क्षेत्रीय मामले केन्द्रीय ससद से सम्बन्धित है और इसे यह ध्यान रखने का पूरा-पूरा अधिकार है ऐसा कुछ भी न हो जिससे देश देश की एकता को क्षति पहुचे।

काश्मीर की वर्तमान स्थिति से सिद्ध होता है कि धारा 370 ने अलगाववादी दृष्टिकोण पैदा किया है और संघ की क्षेत्रीय एकता को चुनौती दी है। ससद् को इसलिए इस ओर अवश्य कदम उठाना चाहिए। और जब अदालतों से संविधान को समझने और धारा 1, 368 तथा 370 का समन्वय करने के लिए कहा जाये तो अदालतों को क्षेत्रीय एकता के पक्ष मे तर्क देना चाहिए तथा धारा 370 को रद्द करने के संसद के निर्णय मे बाधा नहीं डालनी चाहिए विशेषकर तब जबकि इस धारा को अन्याय के एक साधन की तरह प्रयोग किया जा रहा हो और अदालत का उद्देश्य न्याय दिलवाना और अन्यायपूर्ण स्थितियों को खत्म करना हो। दूसरों शब्दों मे, यदि अदालत संविधान को एक कार्यशील और रचनात्मक तरीके से समझती है तो निश्चय ही वह धारा 370 को रद्द करने की पक्षधर

होगी, अगर इसके उपवाक्यांश को धारा 366 के अन्तर्गत संशोधित कर दिया जाये।

भारतीय संविधान की धारा 355 के नियम भी महत्त्वपूर्ण हैं। यह भारतीय संघ पर बाहरी आक्रमण या अंदरूनी अशांति की परिस्थिति में राज्य की सुरक्षा देने का कर्त्तव्य-भार डालता है। अगर धारा 370 भारतीय संविधान द्वारा इस कर्त्तव्य को पूरा करने की राह में रुकावट बनकर आता है, तो इसे रद्द ही करना होगा। वर्तमान संदर्भ में, जबकि जम्मू-काश्मीर बाहरी आक्रमण और भीतरी अशांति के प्रति संवेदनशील हो गया है और धारा 370 भीतरी अशांति फैलाने तथा बाह्य उग्रता को सरल बनाने में अहम् भूमिका अदा कर रहा है तो यह केन्द्रीय सरकार के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह धारा 355 के अन्तर्गत अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए धारा 370 को रद्द कर दे। इस प्रकार, यदि 370 को धारा 1 और 355 के साथ पढ़ा जाये तो 368 के अन्तर्गत 370 के उपबन्ध को रद्द करना पूर्णतया तर्कसंगत होगा। और यह शर्त रद्द करने के बाद, पूरी 370 धारा को रद्द करने की राष्ट्रपति की घोषणा स्थिति को बिल्कुल साफ और स्पष्ट कर देगी।

यह भी कहा जा सकता है कि धारा 370 की तीव्रता को 35 ए को, रद्द करके भी समाप्त किया जा सकता है। यदि यह रद्द होती है तो धारा 19 (1) (ई) और (जी) का पूरा-पूरा प्रयोग होगा। धारा 19 (1) (ई) और (जी) घोषणा करती हैं—

"हर नागरिक को

(अ) भारत के किसी भी क्षेत्र में रहने और बसने का तथा

(ब) कोई भी पेशा, व्यवसाय या व्यापार करने का अधिकार होगा।"

संविधान का भाग III पहले ही जम्मू-काश्मीर पर लागू होता है। धारा 19 (1) (ई) और (जी) को निर्बाध रूप से लागू करने पर कोई भी भारतीय जम्मू-काश्मीर में जाकर बस सकता है और इस तरह बसने और नागरिकता के संदर्भ में जम्मू-काश्मीर संविधान के जितने अतार्किक और अन्यायपूर्ण नियम हैं, जो भारतीय संविधान के अयोग्य हैं, खत्म हो जाएंगे।

राज्य विषयों पर प्रतिबन्धों के पक्षधर कभी-कभी यह कहते हैं कि ये प्रतिबंध 1947 के बाद राज्य सरकार या शेख अब्दुल्ला द्वारा नहीं बल्कि 1893 में डोगरा और पंडित सभा के प्रतिनिधित्व पर महाराजा द्वारा लगाये गये थे। यह तर्क बिल्कुल गलत तरह से दिया गया है। हमारा मार्गदर्शन 1893 की परिस्थितियों, मूल्यों और विचारों से नहीं हो सकता बल्कि हम भारत की वर्तमान महत्त्वाकांक्षाओं और भारतीय संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों से प्रेरित होते हैं। इन प्रतिबन्धों के अनौचित्य को तो 1931-32 में ही जान लिया गया था जब शिकायत समिति के अध्यक्ष (बर्टेन्ड ग्लांसी) ने अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया था, "राज्य जनता की वर्तमान परिभाषा अनुचित रूप से कठोर जान पड़ती है, एक हजार वर्ष तक राज्य में अधिवास पर भी किसी व्यक्ति को, इस परिभाषा के अनुसार, यहां बसने के योग्य नहीं माना जाता। एक व्यक्ति जिसने लगभग पांच वर्षों तक राज्य मे अधिवास किया है और स्थानीय चीजों में अपनी पहचान बनाई है, उसे मतदान का अधिकार न देना, अनुचित ही नहीं अतार्किक भी है।"

लेकिन इन प्रतिबन्धों को स्वार्थी इरादों में न केवल जारी रखा गया बल्कि संवैधानिक सुरक्षा भी दे दी गई। *यह जान-बूझकर 'भुला' दिया गया कि ये* प्रतिबन्ध पहले पहल महाराजा ने अंग्रेजों को काश्मीर से दूर रखने के लिए लगाये थे।

विस्थापितों के मामले में, जिनकी दुर्दशा का बयान मैं संक्षिप्त तौर पर इस [illegible]

सका।

21 अगस्त, 1962 को धारा 370 के सम्बन्ध में लिखे पं० प्रेमनाथ बजाज के पत्र का उत्तर देते हुए पं० जवाहरलाल ने लिखा था—

"वास्तविकता यह है कि संविधान में इस धारा के रहते हुए भी, जोकि जम्मू-काश्मीर को एक विशेष दर्जा देती है, बहुत कुछ किया जा चुका है और जो थोड़ी-बहुत बाधा है, वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगी। सवाल भावुकता का *अधिक है, बजाय और कुछ होने के। कभी-कभी भावना महत्त्वपूर्ण होती है लेकिन* हमें दोनों पक्षों को तोलना चाहिए और मैं सोचता हूं कि वर्तमान में हमें इस सम्बन्ध में और कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए।"

इस पत्र से यह प्रकट होता है कि नेहरू ने स्वयं धारा 370 में भावी परिवर्तन से इंकार नहीं किया था। और जहां तक भावनाओं का सम्बन्ध है, अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि उनका विरोधी दिशा में ही क्रियान्वयन हुआ है और उन्होंने फूटपरस्त अलगाववादी प्रवृत्तियों को ही मजबूत किया है जिसके परिणामस्वरूप देश की एकता तथा अखण्डता के लिए संकट पैदा हो गया है। यही समय है जब उस बीज को जिसने एक विषैले पौधे को जन्म दिया, जड़ से उखाड़कर फेंका जा सकता है।

धारा 370 को बनाये रखने के लिए उसके औचित्य को यह कहकर सिद्ध किया जाता है कि यह एक दीवार नहीं वरन् एक सुरंग है। केन्द्रीय गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने 4 दिसम्बर, 1964 को कहा था—इस सुरंग द्वारा बहुत मात्रा में यातायात जा चुका है तथा अब और अधिक जायेगा। उसके कुछ दिनों बाद शिक्षा मंत्री श्री एम० सी० छागला ने कहा था—"धारा 370 के माध्यम से भारत का पूरा संविधान जम्मू और काश्मीर पर लागू किया जा सकता है।"

सिद्धान्त में इस स्थिति को मानना बहुत अच्छा लग सकता है, लेकिन यह इस नितान्त नग्न सत्य की उपेक्षा कर देता है कि इस सुरंग द्वार का नियन्त्रण किसी और के द्वारा किया जा रहा है। और यदि राज्यपाल शासन काल 7 मार्च से 6 सितम्बर तक के एकमात्र अपवाद को छोड़ दिया जाय तो उस समय क्या होगा जब सुरंग अवरुद्ध हो जाये। इसके बावजूद इसमें क्या बुद्धिमता है कि जब एक सीधा, मजबूत और प्रशस्त मार्ग उपलब्ध हो तब भी एक खतरनाक रूप से बनी सुरंग द्वारा ही जाया जाए?

कभी-कभी एक तर्क यह भी दिया जाता है कि अगर धारा 370 को रद्द कर दिया गया, भारत से काश्मीर के सम्बन्धों की कड़ी टूट जायेगी। यह तर्क बहुत अधिक कानूनी है और क्रियात्मक रूप में इसका कोई अर्थ नहीं। अगर ब्रिटेन की

संसद भारत स्वतंत्रता अधिनियम को भूतकालीन प्रभाव सहित भंग कर दे, जैसा कि करने की वह कानूनी सामर्थ्य रखती है तो क्या उसके परिणामस्वरूप भारत फिर से उपनिवेश बन जायेगा ?

उपर्युक्त तर्क भारतीय संविधान की धारा 1 और अन्य प्रावधानों की भी अनदेखी करते हैं। वे यह धारणा बनाकर चलते हैं कि धारा 370 को भंग करने के बाद व्याख्या, विस्तार या परिशोधन के रूप में कुछ भी जोड़ा नहीं जायेगा। ये तर्क यह धारणा भी बना लेते हैं कि भारत आज वही कुछ है जोकि ब्रिटेन की संसद् चाहती थी और इससे पूर्व काश्मीर भारत का अंग नहीं था। भारत जो काश्मीर से कन्याकुमारी तक हजारों वर्षों से लोगों के दिल और दिमाग में बसा रहा है, भारत जिसने भावनायें और बौद्धिकता, कविता और दर्शन, जीवन और साहित्य दिया—उस भारत की मूल सच्चाई की अवहेलना कर यह संकीर्ण कानूनी तकनीक को महत्त्व देता है। नोबल पुरस्कार विजेता साहित्यकार सोल्झेनित्सन ने ठीक ही कहा है—"एक समाज जो कानूनी शब्दों पर आधारित है और उससे ऊपर कभी विचार नहीं करता, वह मानव की उच्च संभावित शक्तियों का लाभ नहीं उठा सकता। कानून के शब्द इतने निर्जीव होते हैं कि वे समाज पर कोई लाभदायक प्रभाव नहीं डाल सकते।" इसी स्वर में थॉमस जेफर्सन ने कहा है—"कानून और संस्थाओं को मानवीय मस्तिष्क की प्रगति के साथ-साथ ही चलना चाहिए।…जिस प्रकार एक वयस्क आदमी वह कोट नहीं पहन सकता जो वह लड़कपन में पहना करता था, उसी प्रकार सभ्य समाज हमेशा अपने पूर्वजों की सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं रह सकता।"

इतिहास हमें यह भी बताता है कि सभ्यतायें जब अपने-आपको धोखा देने लगती हैं और जब वे मूलभूत न्याय से अधिक कानूनी तकनीक में खो जाती हैं, उनका पतन हो जाता है। एक विकासशील और प्रगतिशील समाज की कानूनी संस्थाओं को परिवर्तनशील समाज तथा आर्थिक सच्चाइयों के अनुकूल बनना पड़ता है। उन्हें नयी प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं को स्वीकार करना चाहिए।

स्पष्ट है कि धारा 370 और उससे संबद्ध प्रावधानों और जम्मू-काश्मीर के पृथक् संविधान को अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि ऐसा करना कानूनी और संवैधानिक रूप से सम्भव है वरन् इसलिए भी कि हमारे पिछले इतिहास और वर्तमान जीवन की मूल और विस्तृत आवश्यकता की महत्त्वपूर्ण पूर्ति के लिए यह जरूरी है। इस धारा तथा इससे सम्बन्धित प्रावधानों को समाप्त करने की आवश्यकता है। यह असमानता तथा अन्याय को बनाये रखने का साधन बना हुआ है। यह भ्रष्ट कुलीनतंत्र के विकास और उसके बने रहने को सुविधाएं देता है। यह रूढ़िवादी और पक्षपातपूर्ण शक्तियों को जीवित रखता तथा बढ़ावा देता है। यह दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को परोक्ष रूप से मान्यता देता है। यह अलगाववादी भावनाओं को जन्म देने के केन्द्र के रूप में कार्य करता है। यह युवाओं के मस्तिष्क में झूठी धारणायें भरता और संकीर्ण भावनायें तथा संकुचित वफादारी पैदा करता है। यह क्षेत्रीय तनावों और संघर्षों को उठाता है और उपलब्ध स्वायत्तता को भी क्रियात्मक रूप में अनुपलब्ध बना देता है। इस धारा के बिना भी काश्मीर का विशिष्ट व्यक्तित्व तथा सांस्कृतिक अस्मिता की सुरक्षा की जा सकती है। यह सामाजिक रूप से पतनोन्मुखी है और ऐसी स्थितियां

पैदा कर देता है जिसमें स्त्रियां राज्य के बाहरी व्यक्ति से विवाह करने पर अपने अधिकार खो देती हैं और जो लोग राज्य में चालीस वर्षों से भी अधिक समय से रह रहे हैं उन्हें प्राथमिक मानवीय और जनतांत्रिक अधिकारों से वंचित करता है। और इन सबसे अधिक वह भारत के विशाल और विभिन्न विस्तार तथा उसकी आवश्यकताओं एवं वास्तविकताओं के अनुकूल नहीं है। भारत को आज ऐसी छोटी-छोटी सर्वोच्च सत्ताओं की आवश्यकता नहीं है जो देश की महत्वाकांक्षाओं और उत्साह को ठंडा करके उसे तुच्छ तानाशाहों के छोटे से रियासती राज्यों में बदल दें वरन् भारत को आज आवश्यकता है एक नये सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन की जिसमें युगों पुरानी सहनशीलता और बहुलवाद, सत्य और औचित्य, न्याय और ईमानदारी, दया और विश्वबंधुत्व आपस में घुलमिल कर शुद्ध होकर एक शक्तिशाली और जीवन्त व्यवस्था का रूप ग्रहण कर सभी को सच्ची स्वतंत्रता, सच्चा जनतंत्र और वास्तविक पुनरुत्थान प्रदान करें।

सातवां अध्याय

डॉ० फारूख अब्दुल्ला की बर्खास्तगी

हर बात का एक समय होता है
कभी मौन रहना होता है
और समय पर बोलना भी पड़ता है।

हमारे कुछ राजनैतिक टिप्पणीकारों में एक आम कमज़ोरी यह है कि वे अपनी अधिकृत टिप्पणी लिखने से पूर्व शायद ही कभी पूरे तथ्यों की सचाई जानने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में सच्चाई अनावश्यक आलोचना की परतों में डूब जाती है। इतिहास का अपने को सही करने का एक अपना तरीका है लेकिन वह केवल समय गुजरने के साथ होता है। 2 जुलाई, 1984 को डॉ० फारूख अब्दुल्ला को मुख्यमंत्री के पद से बर्खास्त करने के मेरे निर्णय के पीछे भी ऐसी स्थिति थी। यह निर्णय अब भी कुछ क्षेत्रों में न्यायोचित इरादे से किया हुआ नहीं माना जाता। इसलिए यह आवश्यक है कि मैं इस सम्बन्ध में, पूरी पृष्ठभूमि और सन्दर्भ को प्रस्तुत करूं।

एक आदर्श राज्यपाल कौन होता है ?

26 अप्रैल, 1984 को जम्मू और काश्मीर के राज्यपाल पद की शपथ लेने के बाद, उस अवसर पर आये अनेकों प्रेस संवाददाताओं ने मुझसे कई प्रश्न पूछे थे। मैंने उनके प्रश्नों को यह कहते हुए टाल दिया था कि एक आदर्श गवर्नर वह है जो जितना सम्भव हो कम बोले और अधिक से अधिक पढ़े, सुने और देखे। अगली सुबह यह टिप्पणी समाचार-पत्रों में प्रमुखता के साथ प्रकाशित हुई। अनेक लोगों ने सुझाव दिया कि मुझे आदर्श गवर्नर के सम्बन्ध में अपनी धारणा को स्पष्ट रूप में विस्तार सहित बताना चाहिए। मुझे ऐसा करने का अवसर 4 अप्रैल, 1989 को जम्मू विश्वविद्यालय में उस समय मिला जब जस्टिस वी० आर० कृष्ण अय्यर द्वारा दिये केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर भाषण सभा की मैं अध्यक्षता कर रहा था। जो मैंने कहा वह कुछ राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ और यहां उसको दोबारा विस्तार से देने की आवश्यकता है। मुझे भारत का गवर्नर

उस व्यक्ति की तरह लगता है जिसके सिर पर ताज है और पैरों में बेड़ियां। उर्दू का निम्नलिखित 'शेर' इस पर ठीक बैठता है :

मुसव्वर ने बनाई क्या-क्या तस्वीरें हैं···
सर पे ताज है पावों मे जंजीरें हैं···

एक आदर्श गवर्नर वह है जो जितना सम्भव हो कम बोले, जो सार्वजनिक रूप से अनावश्यक टिप्पणियां न करे और कोई ऐसी बात न कहे जिससे शासनाध्यक्ष, मन्त्रिपरिषद या सत्ता के किसी अंग की बदनामी हो। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने एक बार कहा था : "सौभाग्यवश कामराज के कोई पुत्र या दामाद नहीं है।" इसमें इन्दिरा गांधी, मोरारजी देसाई और चरणसिंह पर एक व्यंग्य था। डॉ० राधाकृष्णन भी जवाहर लाल नेहरू के प्रति कभी व्यंग्य करते थे। उन्होंने अमरीकी राजदूत चेस्टर बाउल्स तक से कह दिया था कि नेहरू के प्रधानमन्त्री न रहने पर यह बेहतर होगा कि पूरे देश में कुछ महीनों के लिए राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाये। उनके इस कथन के पीछे नेहरू द्वारा सार्वजनिक कार्यों में पूरी कुव्यवस्था पैदा करने का अर्थ छिपा था। संवैधानिक अध्यक्ष द्वारा इस प्रकार के उद्गार महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक नेताओं की छवि को ही नहीं गिराते वरन् संवैधानिक संकट के समय उनके अपने प्रभाव को भी कम कर देते हैं।

कभी-कभी गवर्नर अपने को अवांछनीय स्थिति में पाते हैं। इस तथ्य को कम ही सराहा जाता है कि जिन संवैधानिक संकटों का समाधान करने के लिए राज्यपालों से कहा जाता है, वे उनके द्वारा बनाए गये नहीं होते। वे उन पर थोप दिए जाते हैं। उन्हें पेचीदा मामलों को, जिनमें अनेकों गुत्थियां होती हैं, महीनों या दिनों में नहीं कुछ ही घंटों में सुलझाना पड़ता है।

अगर गवर्नर से दूध धुले कार्यों की अपेक्षा की जाती है तो सरकार के दूसरे अंगों को भी उसी प्रकार कार्य करना चाहिए। उदाहरणार्थ, विधानसभा में मतगणना के कार्य में (स्पीकर) अध्यक्ष की भूमिका पर विचार करें। हम सभी जानते हैं कि तमिलनाडु विधानसभा में इस सम्बन्ध में क्या हुआ? वहां अध्यक्ष ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रयत्न किया कि मतगणना में 223 लोगों में से केवल 98 मत दे सकें।

गवर्नर को क्या करना चाहिए अगर सत्ता की व्यवस्था के दूसरे अंग संवैधानिक प्रावधानों के नैतिक तथा आचार विषयक आधार को ही नष्ट करने लगें। उदाहरण के लिए, संविधान की उस धारा के अन्तर्गत जिसके अनुसार गवर्नर को साहित्यिक और बौद्धिक क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति को नामांकित करना आवश्यक है, क्या किसी अशिक्षित व्यक्ति का नामांकन कर दे? दूसरे, क्या उसे विधानसभा में दिए जाने वाले अपने पारंपरिक भाषण में राष्ट्रपति की आलोचना करनी चाहिए जबकि स्वयं उसका पद राष्ट्रपति की सदिच्छा पर निर्भर करता है?

संविधान अपने आप में एक उद्देश्य नहीं। वह एक उद्देश्य पाने का साधन है—यह उद्देश्य है एक ऐसे वातावरण में संगठित और अनुशासित जीवन व्यतीत करने का जो शान्ति, प्रगति और उत्पादकता के अनुकूल हो। अन्यथा संविधान

इस सीमा तक विकृत हो जाएगा कि प्रजातंत्र चुने हुए लोगों की तानाशाही बन कर रह जाएगा।

इसके बाद प्रश्न आता है संवैधानिक उत्तरदायित्व का। सत्ता के ढांचे के प्रत्येक अंग को उचित और उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से काम करना चाहिए। इस सम्बन्ध में, मैं ब्रिटेन के प्रधानमंत्री का एक उदाहरण देना चाहता हूं। वहां के प्रधानमंत्री बाल्डविन, सन् 1926 में स्वास्थ्य सुधार के लिए एक हफ्ते की छुट्टी पर जाना चाहते थे। उन दिनों ब्रिटेन की कोयला खानों में हड़ताल चल रही थी। वहां के सम्राट् ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि बाल्डविन ऐसे समय राजधानी से दूर रहेंगे। बेचारे बाल्डविन को अपना स्वास्थ्य प्रमाण पत्र सम्राट् को सन्तुष्ट करने के लिए दिखाना पड़ा।

ऐसी हैं ब्रिटेन की संवैधानिक मान्यताएं जिनका वहां के प्रधानमंत्री द्वारा पालन किया जाता है। हमारी सरकारों के कितने निर्वाचित नेता संवैधानिक मुखिया के प्रति इतना आदर और सम्मान दिखाते हैं?

कभी-कभी ऐसे लोगों द्वारा गवर्नर की आलोचना की जाती है जिनके पास उस समय पूरे और सही तथ्य नहीं होते। गोपनीयता के कारणवश गवर्नर को चुप्पी साधनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त संवैधानिक शब्दों और अभिव्यक्तियों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं हैं और उन्हें पूरी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए। एक जिम्मेदार गवर्नर राजनैतिक और प्रशासनिक वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकता।

कभी-कभी राजनैतिक विश्लेषक रूढ़ियों और परम्पराओं का हवाला देते हैं। लेकिन ऐसी परम्पराएं कहां हैं? यदि कोई व्यक्ति संविधान लागू होने के बाद से तमाम गवर्नरों द्वारा किए गये निर्णयों का विश्लेषण करने लगे, वह उनमें शायद ही कोई तादात्म्य पा सकेगा। एक ही प्रकार की परिस्थितियों में विभिन्न गवर्नरों ने अलग-अलग तरह के निर्णय लिए हैं। इस सम्बन्ध में सुनहरा सिद्धान्त यह है कि गवर्नर की निर्णायक स्थिति को राष्ट्रीय सुरक्षा, अखंडता और जनता के कल्याण के दृष्टिकोण से जांचा जाए। सभी परिस्थितियों में उसे एक ही तरीके से कार्य करने को विवश करना आग से खेलने के समान होगा।

एक आदर्श राज्यपाल को संकट के समय पूरे राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए साहस और दूरदृष्टि का परिचय देना चाहिए। उसे एक शून्य की तरह, या एक रबर की मुहर अथवा एक कोने में काठ-सा चेहरा और पथरीली आंखें वाले भ्रमित वृद्ध व्यक्ति की तरह कार्य नहीं करना चाहिए। गवर्नर की शक्तियों का एक सुरक्षित क्षेत्र होता है जो नित्यप्रति के राज्य कार्यों में निष्क्रिय रहता है परन्तु संकट के समय महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यदि उसे सभी परिस्थितियों में वही करना पड़ता है जो उसके सलाहकार बताते हैं तब यह अधिक उचित और लाभप्रद होगा कि उसके स्थान पर एक यन्त्र मानव रख लिया जाय या उसे बिलकुल रखा ही न जाये।

अज्ञानता

डॉ० फारूख अब्दुल्ला को बर्खास्त करने के कारणों को सही रूप में समझने के लिए जो कुछ मैंने ऊपर कहा उसे दृष्टि में रखने के साथ उन विशेष परिस्थितियों

को भी ध्यान में रखना आवश्यक है जिनमें मुझे जम्मू-काश्मीर के संविधान के अनुसार निर्णय लेने के लिए विवश होना पड़ा।

जम्मू और काश्मीर के गवर्नर की सही स्थिति के सम्बन्ध में अज्ञान इतना अधिक है कि इन तथ्यों को जाने बिना, कि जम्मू-काश्मीर का एक अलग संविधान है, कि जम्मू-काश्मीर का गवर्नर उस संविधान के अन्तर्गत नियुक्त होता है, कि वह सवैधानिक व्यवस्था के भंग होने पर राज्य का प्रशासन जम्मू और काश्मीर के संविधान की उपधारा 92 के अन्तर्गत अपने हाथ में ले सकता है और वह भारत के राष्ट्रपति की सहमति से इस सम्बन्ध में उद्घोषणा जारी कर सकता है और यह कि इसके लिए अन्य राज्यों के गवर्नरों की तरह यह आवश्यक नहीं कि वह संविधान की धारा 356 के अनुसार राष्ट्रपति को रिपोर्ट बना कर दे, एक समाचार-पत्र ने इस विषय पर संपादकीय टिप्पणी लिख मारी। आंशिक रूप से इस प्रकार के अज्ञान के कारण मेरी कार्रवाई के सम्बन्ध में विरोधी टिप्पणियां की गईं।

क्रियात्मक अनुभव

एक अन्य मौलिक कारण भी है। गवर्नर की भूमिका के बारे मे अधिकांश उन लोगो द्वारा लिखा गया है जिन्हे उन पेचीदा परिस्थितियों से निपटने का क्रियात्मक अनुभव नहीं था, जिनकी कल्पना हमारे संविधान निर्माता भी नहीं कर सकते थे और जिनका उसकी शब्दावली के अन्तर्गत वर्णन नहीं किया जा सकता।

क्या संविधान निर्माताओ ने ऐसी स्थिति के बारे में सोचा होगा जिसमें मुख्यमन्त्रीगण सुल्तानों की तरह व्यवहार करें अथवा पूरा का पूरा एकपक्षीय प्रशासन स्थापित कर डालें या अपने चुने हुए सी० आई० डी० कर्मचारियो को सुरक्षाज्ञों के वेश मे राजभवन में गवर्नरो की जासूसी करने के लिए रख दें या उन्हें महत्वपूर्ण जानकारी तक न दें अथवा उन्हें अपने पक्ष का समर्थन विवरण ही दें अथवा गवर्नर कार्यालय से व्यवस्था और रखरखाव के बारे मे आने वाले साधारण प्रस्तावो को ठुकराकर उसकी प्रतिष्ठा को नीचा दिखाएं? क्या सविधान निर्माताओं ने ऐसी पूर्व कल्पना की होगी कि ऐसे भी मुख्यमंत्री होंगे जो केन्द्रीय अधिकारी को दूर रखने की अक्सर कोशिश करेंगे और इसके लिए लोगों की क्षेत्रीय, धार्मिक और पक्षपातपूर्ण भावनाओ को उत्तेजित करने की कोशिश करेंगे।

क्या उन्होंने विचार किया था कि मुख्यमंत्रीगण कानूनी शासन को केवल मौखिक समर्थन देंगे और क्रियात्मक रूप मे अपने समर्थकों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं करेंगे। क्या उन्होंने कल्पना की थी एक राज्य के सरकारी कर्मचारी खुले सार्वजनिक भाषणो में भारत के राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री को जान से मारने की धमकी देंगे और मुख्यमंत्री उन लोगो के खिलाफ उनका उस महत्वपूर्ण पद से स्थानान्तरण करने तक की कार्रवाई नही करेगा, विभागीय जांच करवाने या न्यायालय मे इस स्पष्ट अपराध के विरुद्ध दाडिक कार्रवाई की बात तो दूर की है। क्या हमारी संसद जब जम्मू और काश्मीर को एक विशेष दर्जा देने और

धारा 370 को संविधान में सम्मिलित करने के लिए सहमत हो गई थी, यह समझती थी कि यह व्यवस्था गरीव काश्मीरियों के हितों की रक्षा के लिए नहीं वल्कि विशिष्ट वर्ग द्वारा अपने कुलीन तंत्र की स्थापना हेतु इस्तेमाल की जायेगी और वे अलगाववादी शक्तियों को जीवित रखने और राज्य को मुख्य धारा में मिलने से रोकने के लिए व्यवस्था में जोड़-तोड़ करते रहेंगे ? अथवा उन्होंने ऐसी स्थिति का पूर्व अनुमान किया था जब गवर्नरों को राजनैतिक और सामाजिक अपराधियों को महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के वर्ग में नामांकित कर राज्यसभा का सदस्य मनोनीत करने के लिए कहा जायेगा ?

न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने कहीं लिखा है कि संविधान निर्माताओं का इरादा चक्रवर्तियों और महाराजाओं को राज्यपाल के वेष में रखना कभी नहीं था। यह निस्संदेह सत्य है। लेकिन क्या संविधान निर्माता यह चाहते थे कि मुख्यमंत्री लोग संविधान के ढांचे को अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रजातांत्रिक व्यवस्था की आत्मा का गला घोंटकर सत्ता में बने रहने के लिए तोड़ें-मरोड़ें या उस प्रकार की भूमिका अदा करें और साम्प्रदायिक तथा प्रांतीयता के पूर्वाग्रहों का जाल बुन कर जनसाधारण के दिमाग को गुलाम बनाए रखें ?

काश्मीर की पृष्ठभूमि में घटनाओं को देखते हुए इस बात पर दुःख नहीं होता कि गवर्नरों ने अधिक बार कार्रवाई की परन्तु दुःख इस बात पर होता है कि उन्होंने कार्रवाई करने में बहुत देर कर दी और वे बुराई को उसके प्रारम्भिक दौर में ही रोकने की अत्यधिक उपेक्षा करते रहे और कम से कम विरोध करने की नीति अपनाने का इरादा उनमें आवश्यकता से अधिक ही रहा। वे व्यवस्था की रक्षा के प्रति अपनी प्रतिवद्धता में बहुत अधिक अकुशल थे। वास्तव में, संविधान निर्माताओं को प्रिय उन नियमों और सिद्धान्तों द्वारा जड़ न पकड़ने के कारणों में से एक कारण यह है कि अधिकांश राज्यों के गवर्नर मुख्यमंत्रियों के गलत कार्यों के प्रति भोले, आलसी अथवा मूक दर्शक की भूमिका अपना लेते हैं और उन्होंने समझौता करने की जो विशेष प्रवृत्ति दिखाई है उसमें भ्रष्टता से फैलने वाले रोगाणु निहित हैं। अन्यथा जम्मू और काश्मीर में आल इण्डिया सर्विस के मूल ढांचे की सन् 1975 से 1985 के काल की अवधि में उपेक्षा कैसे हो सकती थी जबकि वह राष्ट्रीय अखंडता और एकता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उसी काल की अवधि में न्यायपालिका को प्रमुख कार्यपालिका की पूरी तरह सेविका बनने की अनुमति कैसे दी गई ? किस प्रकार नियुक्ति, पदोन्नति, व्यवसाय प्रशिक्षण, विद्यालयों में प्रवेश, भूमि आवंटन आदि के रूप में संरक्षण को इस प्रकार से देने की अनुमति मिली कि उससे 200 या उसके लगभग परिवार ही लाभ उठा सकें ? और किस प्रकार सत्ता के ऐसे ढांचे को मजबूत होने दिया गया जिसके निहित स्वार्थ अलगाववादी प्रवृत्तियों में थे ? यदि मूक दर्शक बने रहने की प्रवृत्ति ने पहले से ही अपनी पकड़ मजबूत नहीं की होती तो बाद में लिए जाने वाले कटु और आलोचनात्मक निर्णयों से बचा जा सकता था।

कठोर यथार्थ

ऐसी कठोर सच्चाई को आलोचक प्रायः नहीं जानते अथवा नाम मात्र के लिए जानते हैं। न वे दूसरी एजेंसियों के रवैये पर विचार करते हैं। उदाहरण

के लिए, क्या गवर्नर उस प्रकार के संवैधानिक संकट में जिसका मुझे सामना करना पड़ा था, मुख्यमंत्री, स्पीकर (अध्यक्ष), राजनैतिक दलों और विभिन्न कार्य करने वालों के रवैये की उपेक्षा कर सकता था जिनके निहित स्वार्थ तत्कालीन सत्ता के ढाचे से जुड़े थे। गवर्नर द्वारा की जाने वाली कार्यवाही तभी स्वच्छ हो सकती है जब मुख्यमंत्री, स्पीकर, राजनैतिक दलों और सत्ता के अन्य अंगो के मनोभाव शुद्ध हो। जब सम्मिलित दूसरे पक्ष खेल को नियमों के अनुसार खेलने के लिए तैयार न हो, तब किसी गवर्नर द्वारा ऐसे निर्णय लेने की आशा नहीं की जा सकती जो पूरी तरह अनात्मक हों। वास्तव मे जिस बात की आवश्यकता है, वह है संविधान की भावना के प्रति आदर और चारो ओर के पूरे वातावरण में उत्तरदायित्व का होना।

गलत सूचना ग्रस्त आलोचना

मेरे आलोचक नही जानते और शायद वे जानना भी नही चाहते थे कि 2 जुलाई, 1984 को मैंने राष्ट्रपति केन्द्रीय सरकार से बहुत जोरदार अनुरोध किया था कि वे मुझे जम्मू काश्मीर के संविधान की धारा 92 के अन्तर्गत गवर्नर शासन लागू करने की अनुमति दें, और जब मुझे यह कानूनी सर्वधानिक विकल्प भी लेने मे मना कर दिया गया, मुझे दो मे से एक विकल्प चुनना था—डॉ० फारुख अब्दुल्ला के मन्त्रिमंडल को वरीयता देना या जी० एम० शाह के मन्त्रिमंडल को।

डॉ० फारुख अब्दुल्ला की बर्खास्तगी और जी० एम० शाह मन्त्रिमंडल बनने के बाद गलत सूचनाओं के आधार पर की गई आलोचनाओं को बाढ़ सी आ गई। पहले मैंने खामोश रहने का निर्णय किया। मैंने सोचा समय सच्चाई खोल देगा। लेकिन जब आलोचना एक सीमा से अधिक बढ गई, मैंने जनता को अपने पक्ष की कम-से-कम एक झलक देने का निर्णय किया। ऐसा मैंने 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया' को एक पत्र लिख कर किया जो 24 अगस्त, 1984 को प्रकाशित हुआ। वह पत्र एल० पी० सिंह आसाम के भूतपूर्व गवर्नर द्वारा मेरी कार्यवाही की आलोचना में लिखे गए तथा उसी समाचार-पत्र मे तीन दिन पूर्व प्रकाशित लेख के उत्तर में था। मेरा यह पत्र निम्नलिखित था—

अगस्त 22; 1984

सम्पादक,
दि टाइम्स आफ इण्डिया,
नई दिल्ली

प्रिय महोदय,

श्री एल० पी० सिंह के लेख—'संकट के समय गवर्नर की भूमिका' के सम्बन्ध मे, जो आपके प्रतिष्ठित पत्र में दिनांक 18 अगस्त, 1984 को प्रकाशित हुआ था, मैं निम्नलिखित कहना चाहता हूं :

श्री एल० पी० सिंह की अपनी गणना के अनुसार वह लगभग 14 वर्ष से काश्मीरी मामलों के सम्पर्क मे नहीं हैं। इसलिए क्या उनके लिए यह उचित नही था कि वह अपना कोई विचार प्रकट नही करते, विशेष रूप से उन जैसी

पृष्ठभूमि और अनुभव रखने वाले व्यक्ति द्वारा दिये विचार को अधिकृत समझे जाने की अधिक सम्भावना होती है।

अभी तक मैं निरर्थक और गलत सूचना ग्रस्त आलोचना को सुधारने के लोभ को रोकता रहा। इसके अतिरिक्त कुछ तथ्यों की प्रकृति ऐसी है कि उन्हें इस स्तर पर सार्वजनिक रूप से उद्घाटित नहीं किया जा सकता। परन्तु जिम्मेदार क्षेत्रों तक में जो आलोचना की जा रही है, उस दृष्टि से अपने पद की सीमाओं और कुछ तथ्यों की गोपनीयता को बनाये रखते हुये कम-से-कम थोड़े से तथ्यों को सही रूप में रखना आवश्यक लगता है।

श्री एल० पी० सिंह ने जिस गवर्नर्स कमेटी की सिफारिशों का उल्लेख किया है क्या वे अपने आप में अन्तिम हैं? क्या गवर्नर को उस प्रशासनिक और राजनैतिक वातावरण की उपेक्षा कर देनी चाहिए जिस लाभ के लिए उसे नियुक्त किया गया है? क्या उसे कुछ लोगों, समूहों और सम्प्रदायों के व्यवहार की शैली से सम्बन्धित प्राप्त ठोस प्रमाणों के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिये? क्या उसे राष्ट्रीय हित और सार्वजनिक शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने वाले विषयों को एक ओर रख देना चाहिये और कमेटी द्वारा की गई सिफारिशों के उस संकुचित दायरे में सीमित रहना चाहिये जिसे न तो संविधान या कानून से मान्यता प्राप्त है और न सरकार अथवा संसद से? क्या उसे अपनी निष्पक्षता प्रदर्शन के लिए प्रेस और जनता की क्षणिक प्रशंसा पाने की कोशिश करनी चाहिये अथवा सही परन्तु अलोकप्रिय निर्णय लेने का साहस करना चाहिये? इस विषय में मुझे विश्वास है कि यदि दूसरी परिस्थिति पर बिना विचारे केवल संकीर्ण दृष्टि से स्थिति को देखा जाए तो बहुत दुखान्त हालात हो जायेंगे जैसे कि पंजाब और आसाम में हैं, जिससे सम्पत्ति और जीवन की बहुत हानि होगी तथा राष्ट्रीय एकता को गम्भीर क्षति पहुंचेगी। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि, बुराई की जीत के लिए केवल एक बात की जरूरत होती है और वह है अच्छे आदमियों द्वारा कुछ भी नहीं किया जाना।"

श्री एल० पी० सिंह ने राज्यपाल समिति की सिफारिशों का केवल कुछ अंश ही दिया है। क्या यह सच नहीं है कि उसी कमेटी ने विशेष रूप से कहा था कि राज्यपालों के लिए कोई कठोर मार्ग निर्देशन निश्चित करना बुद्धिमानी नहीं होगी और न यथार्थवादी होगा और गवर्नर को विषय की परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए अपने निष्कर्ष पर पहुंचना होगा? क्या कमेटी ने नहीं कहा था कि कोई भी दो मामले एक से नहीं हो सकते? यदि जम्मू और काश्मीर का विषय विशेष वर्ग में नहीं आता, फिर मैं नहीं विचार सकता कि और कौन-सा विषय इस वर्ग में आयेगा?

श्री एल० पी० सिंह यह कहना छोड़ गये कि तत्कालीन जनता-सरकार ने लोक सभा में 17 जनवरी, 1977 को और राज्य सभा में 18 नवम्बर, 1977 को यह स्पष्ट कर दिया था कि वह उपर्युक्त सिफारिशों को असेम्बली बुलाने के सम्बन्ध में स्वीकार करना जरूरी नहीं समझती। यदि ऐसे हर मामले में विधान सभा का अधिवेशन बुलाना इतना अलंघनीय है, जितना कि अब कहा जा रहा है तो सरकार और संसद ने स्पष्ट रूप से नवम्बर, 1977 को क्यों नहीं कहा? उसने इस सम्बन्ध में गवर्नरों को परामर्श के लिए पत्र क्यों नहीं लिखा?

क्या किसी ने यह विचार करने का प्रयत्न किया है कि वे कौन से विवादग्रस्त विषय हो सकते है जिनकी असेम्बली के मतदान द्वारा निर्णीत होने की आवश्यकता हो सकती है। इस विषय में, तथ्यो पर कोई विवाद नही है कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला अल्पमत मे थे, इसमे सन्देह नही। उन्होने स्वयं इसका विरोध नहीं किया और न कर सकते थे। सभी प्रमाण उनको लिखित में और व्यक्तिगत रूप से दिये गये और कुछ भी उनकी पीठ के पीछे नही किया गया। वास्तव में, अपने विरोधियो को दल-बदलू कहकर, उन्होने यह स्वीकार किया कि वे उनके विरुद्ध हो गये हैं। तब एक अस्पष्ट मंत्र की तरह जिसका अर्थ जानने का कोई कष्ट नही करता, बार-बार यह क्यों दोहराया जाता है कि असेम्बली का अधिवेशन बुलाया जाना चाहिए था?

कोई भी जिम्मेदार गवर्नर स्थिति की वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता। डॉ० फारूख अब्दुल्ला की अल्पमत सरकार को थोड़े समय के लिए भी बने रहने की अनुमति देने का अर्थ या तत्काल जुलूसों के सगठित होने, साम्प्रदायिक और आतकवादी तत्वो का उपयोग किये जाने, जन आक्रोश को भड़काने, प्रशासनिक मशीनरी का दुरुपयोग करने, 'विश्वासघातियों' से उचित बदला लिए जाने आदि कार्यों की ओर से आखें मूद लेना और बाद मे पुलिस से यह कहलवाना कि अचानक विद्रोह और जनता की उमड़ती भीड़ और समझ मे न आने वाले जन आक्रोश के सामने वह कुछ नही कर सकी। श्री बी० के० नेहरू ने डॉ० फारूख अब्दुल्ला को जनवरी 1984 मे जो लिखा था उसका उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा—"आपके विरोधी भयभीत थे, पहले तो इसलिए कि उन्हें डर था कि मेरे पास आने और असेम्बली मे वोट देने के दौरान उनके घर जला दिये जायेंगे और आपके आदेश पर पुलिस उनके परिवारो पर हमला कर देगी। उनको दूसरा भय यह था कि असेम्बली के नियमो को इस प्रकार तोड़-मरोड दिया जायेगा जिससे न तो सही और स्वतन्त्र बहस हो सकेगी और न ही नियमानुसार मतदान। मैं उनकी दोनों आशंकाओं को सही मानता हूं।"

यदि गवर्नर को केवल क्लर्क या पोस्ट ऑफिस की भूमिका ही दी गई है तब वह, विशेष रूप से जम्मू और काश्मीर का गवर्नर एक मूक दर्शक मात्र रह जायेगा जो एक किनारे खडा विघटनकारियों का नीचता भरा खेल देखता रहेगा।

'सभी फरिश्ते भी एक ही विचार के नही होते' लेकिन मुझे कोई सन्देह नहीं कि आतकवादियो, विघटनकारियो और साम्प्रदायिक शक्तियों को पनपाने, 2 जुलाई, 1984 जैसी आकस्मिकता पर इनका उपयोग करने से सम्बन्धित सभी तथ्यों के जनता के सामने आ जाने के बाद, गवर्नर की सामान्य शक्तियो को ध्यान मे रखते हुए, इस घटना के विशेष तथ्यो और राजनैतिक तथा प्रशासनिक वातावरण जिसमे मुझे अपना निर्णय लेना था, डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मन्त्रि-मडल को बर्खास्त करने का मेरा निर्णय सवैधानिक रूप से सही, प्रशासनिक रूप से न्यायोचित और पूरे राष्ट्रीय हित मे तथा सार्वजनिक व्यवस्था तथा शान्ति के हित मे ही था, ऐसा पूरी तरह सराहा जायेगा। इस क्षण मैं सही कार्य करने का साहस करने पर केवल एक धुधला सा गर्व अनुभव कर रहा हू।

आपका विश्वसनीय,
जगमोहन"

कुछ कहने का समय—

इस पत्र के प्रकाशन ने अचानक एक सनसनी पूर्ण प्रभाव डाला। लगभग सभी दूसरे प्रमुख समाचार पत्रों ने इस पत्र की सामग्री को समाचार के रूप में प्रकाशित किया। अनेकों लोगों ने, जिनमें मेरे पूर्ववर्ती आलोचक भी शामिल थे, मेरे सशक्त तर्कों को स्वीकार किया और तस्वीर के दूसरे पहलू के विषय में बातें करना शुरू कर दीं। उन्होंने मुझ पर दबाव डाला कि मैं विस्तार से सभी बातें बताऊं। लेकिन अपने पद पर रहते हुए मैं किसी वितंडावाद में नहीं फंसना चाहता था। मेरा उत्तर था: 'हर चीज़ का एक समय होता है—मौन रहने का समय और बोलने का समय।' अब मेरे विचार से कुछ कहने का समय आ गया है कि अपने पर लगाये गये आरोपों, आलोचनाओं का उत्तर दूं और श्री बी० के० नेहरू के स्थान पर अपनी नियुक्ति से सम्बन्धित बातों पर भी प्रकाश डालूं।

मेरी नियुक्ति

25 मार्च, 1984 को राष्ट्रपति भवन की एक विज्ञप्ति में मुझे जम्मू और काश्मीर का राज्यपाल नियुक्त करने की घोषणा की गई। विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग तरह से प्रतिक्रिया हुई। मेरे मन में भी दो प्रकार के विचार उठ रहे थे—राज्यपाल के पद पर नियुक्ति से मैं खुश था और दिल्ली छोड़ने से उदास, क्योंकि दिल्ली की सेवा में मैंने पर्याप्त रूप से रचनात्मक सन्तोष पाया था और जिसकी करुणा, कविता और पीड़ा ने मेरे हृदय में अपना एक स्थान बना लिया था। दिल्ली वासी भी आमतौर पर नगर के जीवन और विकास से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध समझते थे और उन्हें कुछ निराशा हुई थी। टाइम्स ऑफ इंडिया ने इस मनोदशा का सही वर्णन किया था। उसने लिखा था: "दिल्ली में अनेकों लोग उपराज्यपाल जगमोहन को याद करेंगे और वह भी स्वयं दिल्ली को जिससे उनका अत्यधिक लगाव रहा है, भूल नहीं सकेंगे। उन्होंने दिल्ली की लम्बे अर्से से सेवा की है—सात वर्ष तक डी० डी० ए० के अध्यक्ष के रूप में, दो बार वे गोआ, दमन और द्वीप के उपराज्यपाल भी रहे। चुनौती भरे इन सभी वर्षों में उन्होंने अपने लिए एक ऐसे आदमी की प्रतिष्ठा बनाई है जो गम्भीर कठिनाइयों में भी कार्यों को सरंजाम दे सकता है। श्रीनगर की अपनी नियुक्ति को भी उन्होंने अपनी चारित्रिक विशेषता, कि करने योग्य कार्य को भली प्रकार किया जाना चाहिए, की भावना से लिया लगता है। हाल के समय में वे एकमात्र ऐसे सरकारी प्रशासक हैं जिन्होंने राजधानी के जीवन और परिदृश्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।"

हिन्दुस्तान टाइम्स के 28 मार्च, 1984 के सम्पादकीय में लिखा था—

"जगमोहन राजनीतिज्ञ नहीं हैं, यद्यपि वे राजनीति की बारीकियों से परिचित हैं। प्रत्येक विषय पर वह अपना एक विशिष्ट विचार रखते हैं और यही कारण है कि कुछ स्थानीय कांग्रेस नेता उनकी विदाई पर प्रसन्न हैं।"

पेट्रियाट ने उसी दिन के अपने सम्पादकीय में लिखा—

"सीमा पार से आने वाली धमकी अब भारत की कल्पना की गढ़न्त नहीं है जैसा कि जियाउलहक चाहते हैं कि संसार उन पर विश्वास करे। जम्मू और

काश्मीर के लोगों का मनोबल सुरक्षा की प्रथम पंक्ति है और इसे अनिर्णय तथा अव्यवस्था से कमजोर नहीं होने दिया जा सकता। दिल्ली की समस्याओं से निपटते हुए नौकरशाही के लालफीताशाही को काट कर जगमोहन ने जो जानी [illegible] उन परिस्थितियों में श्रीनगर के उस [illegible]

[illegible] सम्पादकीय टिप्पणी थी—"ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधान मन्त्री अनुभव करते हैं कि देश के संकट ग्रस्त सुरक्षा वातावरण मे जो अनिवार्यत. जम्मू और काश्मीर का अतिक्रमण करता है और जहा अलगाव के पक्षधर तत्त्व फिर से पनपने लगे हैं, उस राज्य को एक अधिक क्रियाशील स्वभाव के राज्यपाल की आवश्यकता है। इसमें उन्होंने अच्छा चुनाव किया है। जगमोहन कर्मठ व्यक्ति हैं। जम्मू और काश्मीर की परिस्थितियों में उनकी भूमिका वास्तव मे मात्र राज्याध्यक्ष की नहीं हो सकती। इस बात को डॉक्टर फारूख अब्दुल्ला स्वयं मान लेंगे।"

28 मार्च के स्टेट्समेन ने लिखा—

"अभी यह देखना बाकी है कि क्या दिल्ली के पूर्ववर्ती उप-राज्यपाल अपने से पहले वाले की सैद्धान्तिक परम्परा को तोड़ने के लिए तैयार होंगे और डॉक्टर फारूख अब्दुल्ला की कीमत पर कांग्रेस को अनुग्रहीत करेंगे। कांग्रेसियों को उनसे सहयोग पाने की पूरी आशा रखने का हक है। श्रीमति इन्दिरा गांधी उनसे इतना प्रभावित थीं कि सन् 1980 मे दुबारा चुन कर आने पर उन्होंने फौरन उनकी पदोन्नति कर दी और बाद में एशियाड के समय उन्हें दिल्ली के राजनिवास में बुला लिया।"

एक उर्दू अखबार ने मजाकिया लहजे मे लिखा कि लोग कह रहे हैं कि चोगम (Chogam), एशियाड (Asiad) और नाम (Nam) सम्बन्धी विशेष रूप से कठोर परिश्रम के कार्यों के बाद जगमोहन को काश्मीर मे अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए भेजा जा रहा है और साथ ही वे डॉ० फारूख अब्दुल्ला को और अधिक स्वस्थ होने मे सहायक होंगे। एक अंग्रेजी दैनिक मे एक कार्टून भी प्रकाशित हुआ जो दीवारा दिये जाने योग्य है।

आरोप

कुछ राजनैतिक टिप्पणीकारों और राजनीतिज्ञों के इस आरोप से कि मुझे जम्मू और काश्मीर इन्दिरा गांधी की उस राज्य सम्बन्धी व्यापक योजना के एक भाग के रूप मे भेजा जा रहा है, दुख पहुंचा। इसलिए मैंने प्रधान मन्त्री कार्यालय को यह सूचित किया कि यदि उनका विचार मुझे बड़ी जिम्मेदारियां देना है, जैसा कि मुझे बताया गया था, तो मुझे पंजाब भेजा जा सकता है—मेरे विचार मे वहां का पद काश्मीर सम्बन्धी कार्य से अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है। मुझे नम्रता के साथ बताया गया कि प्रधानमन्त्री मेरी भावनाओं की सराहना करती हैं। लेकिन वह मेरे अनुरोध को स्वीकारने को इच्छुक नहीं है क्योंकि एक तो मैं पंजाबी हूं और दूसरे उनके विचार से काश्मीर भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उनका विश्वास है कि यह निश्चित करना मूल महत्व रखता है कि जम्मू काश्मीर भारत के मर्मस्थल को निरन्तर पीड़ा देने वाला दूसरा कांटा न बन पाये।

संक्षिप्त सलाहें

जब मैं श्रीमती गांधी से मिला उन्हें इस बात पर बल देते हुए दुःख हुआ कि देश के अन्दर और देश के बाहर कुछ ऐसी मजबूत शक्तियां हैं जो भारत को चारों ओर से घेरने और उनके लिए पंजाब, काश्मीर, उत्तर पूर्व, तमिलनाडु—श्रीलंका क्षेत्र में स्थायी सिर दर्द पैदा करने पर तुली हुई है। उन्होंने काश्मीर में हुई ताजा घटनाओं पर बोलते हुए उसमें शामिल विभिन्न पार्टियों, व्यक्तित्वों के बारे में अपनी सम्मति दी। उनका विचार था कि श्री बी० के० नेहरू बहुत वृद्ध हो गए हैं, स्थितियों पर उनकी पकड़ नहीं रही है और अस्थिरता पैदा करने वाली शक्तियां इसका पूरा लाभ उठा रही हैं। डॉक्टर फारूख अब्दुल्ला के प्रति वह कटु थीं और प्रसन्न भी। उन्होंने उसके बचकाना, असंगत और अनिश्चिततापूर्ण तौर तरीकों के बारे में बताया। उनका विचार था कि वह कुछ दुष्ट लोगों के प्रभाव में हैं। उसको जब भी लाभदायक मालूम पड़ता है वह साम्प्रदायिक और प्रांतीयता के जज्बातों को बढ़ावा देने लगता है। 'केन्द्र से घृणा करो' की भावना पैदा करना आरम्भ कर देता है। उसकी पंजाब सिख कट्टरपंथियों से दोस्ती के प्रति वह विशेष रूप से चिन्तित थीं।

उनके कहने पर तत्कालीन विदेश सचिव रसगोत्रा ने मुझे अपने घर पर चाय के लिए आमंत्रित किया और भारतीय सीमा के चारों ओर तथा विशेष रूप से काश्मीर की पाकिस्तानी और चीनी सीमा पर होने वाली घटनाओं के बढ़ने की सम्भावना के बारे में संक्षिप्त सलाह दी। सियाचिन ग्लेशियर के बारे में सरकारी दृष्टिकोण पर विस्तार से व्याख्या की।

नियुक्ति और स्थानान्तरण की घोषणा के चार दिन बाद बी० के० नेहरू दिल्ली आये। उन्होंने नयी दिल्ली के काश्मीर हाऊस में मुझे जलपान पर आमंत्रित किया। इससे पहले मैं उनसे दो बार मिला था। एक बार मैं उनके सुझाव पर उन्हें उन विभिन्न स्थानों पर ले गया था जहां दिल्ली विकास प्राधिकरण द्वारा नए विकास कार्य हो रहे थे। उसके बाद उन्होंने एक बड़ा स्नेह तथा प्रशंसा भरा पत्र मुझे लिखा था। मैं उनके मस्तिष्क की नेहरू शैली जैसी विश्वबन्धुत्व की भावना और मुझ जैसे युवा अधिकारियों के प्रति पितृ तुल्य स्नेह अनुभव कर बहुत प्रभावित हुआ था। मैं उनसे 1964-65 में वाशिंगटन दूतावासीय निवास पर भी इण्डियन इंस्टीच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत मध्य स्तर के अधिकारियों के एक समूह के साथ मिला था। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि एक दिन मैं उनका पद भार सम्भालूंगा। मुझे उनके तबादले पर कुछ दु:ख हुआ। उन्होंने बताया कि वे काश्मीर में कुछ समय और रहना चाहते थे और उन्हें अपना सामान पैक करने में करीब एक महीना लग जाएगा। मैंने उनसे कहा कि वे आराम से अपना समय लें, जहां तक मेरा सम्बन्ध है मुझे कोई जल्दी नहीं।

बी० के० नेहरू ने मुझे पुराने आई० सी० एस० अधिकारियों की विशिष्ट शैली में अपनी संक्षिप्त सलाह दी! उन्होंने कहा कि हालात बहुत खराब हैं और लोग लगातार काश्मीरी अस्मिता की बातें करते हैं तथा केन्द्र और राज्य के बीच बहुत गलतफहमी और कटुता है। प्रधानमन्त्री तथा मुख्यमन्त्री के विचार

आपस में नहीं मिलते। उन्होंने डॉक्टर फारूख अब्दुल्ला की आलोचना नही की लेकिन उनका विचार था कि उसका व्यवहार अनिश्चित तथा बचकाना है।

अन्य लोगो ने भी मुझे सलाह दी। मैंने सबको सुना पर कोई टिप्पणी नही की, उस समय भी नही जब श्रीमती गांधी मुझे संक्षिप्त सलाह दे रही थी या बी० के० नेहरू अपना दृष्टिकोण बता रहे थे। मैं प्रायः चुप रहा। मेरा दृष्टिकोण पहले परिस्थितियों को भली प्रकार समझ लेने का था। मेरे ऐसे कुछ सच्चे मित्र और शुभाकांक्षी भी थे जो सोचते थे कि काश्मीरी स्वर्ग में बहुत से बिच्छू भी हैं, कि मुझे स्पष्ट रूप से दिखने वाले मित्रों द्वारा भी धोखा दिया जाएगा और अवश्य ही *काश्मीर मेरा 'वाटरलू' यानी अन्तिम हार वाला युद्ध होगा*। मैंने इस प्रकार के सभी परामर्श और टिप्पणियां शान्तिपूर्वक सुनी। मैं परस्पर विरोधी भावनाओ का शिकार बना हुआ था। दिल्ली से मुझे जबर्दस्त लगाव था। मेरी कुछ पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याएं भी थीं। मुझे अपने पुत्र का होस्टल मे दाखिल करना आवश्यक था जिसका उसकी पढाई तथा कैरियर पर भी खराब असर पड सकता था। यद्यपि यह बात विचित्र लगती है परन्तु वेतन आदि के सम्बन्ध मे भी मुझे कुछ लाभ नही हुआ।

प्रचारात्मक तकनीक

राष्ट्रपति की विज्ञप्ति द्वारा मेरी नियुक्ति होने के एक माह से अधिक के बाद मैंने इन सभी संक्षिप्त सलाहो और प्रेस टिप्पणियो के साथ अपना पदभार सम्भाला, लेकिन कुछ राजनैतिक क्षेत्रो मे यह निष्कर्ष निकाला जा रहा था कि मैं श्रीमती इन्दिरा गाधी द्वारा किसी विशेष उद्देश्य पूर्ति के लिए भेजा जा रहा हूं। इसने मुझे विचलित कर दिया और मुझे अधिक सतर्क कर दिया। लेकिन इसके साथ ही मैंने अपने आपसे [illegible]
दूर रखने की प्रचारात्मक तकनी[illegible]
भी हिचकिचाहट पैदा कर दे, [illegible]
पडने पर कोई कदम उठाया जाये। अपना पद-भार सम्भालने के कुछ दिनो के अन्दर मैंने जो कुछ देखा उससे बहुत चिन्ता पैदा हो गई। राष्ट्र-विरोधी तत्त्व पूरे दृश्य पटल पर छाये हुए थे। मैंने निश्चय किया कि चाहे जो कुछ हो, न मैं हिचकिचाऊंगा और न किसी गलत या मूल रूप से बुरी बात से समझौता करूंगा।

शायद ही कभी मैं अपने व्यक्तिगत कैरियर या प्रशासनिक मामलो के सम्बन्ध में भगवान से प्रार्थना करता हू। लेकिन जब भी मैं प्रार्थना करता हू, मैं सदैव कहता हूं—*"मुझे सही कार्य करने का साहस दो चाहे मैं एक तरफ अकेला ही क्यो न होऊं।"* कठिनाइयो और संकटो के क्षणो मे ऐसी प्रार्थनाओ ने मुझे सदैव अपार साहस और निर्णय लेने की शक्ति दी है। मैं जानता हूं कि ऐसे निर्णय मुझे जनता के एक वर्ग विशेष मे अलोकप्रिय बना देंगे। लेकिन समय बीतने के साथ वे पूरे समाज तथा राज्य के हित मे मूल रूप से सही, स्वच्छ और उचित समझे जायेंगे।

तनावपूर्ण वातावरण

राज्य का वातावरण तनाव से बोझिल था। वह 5 जून, 1983 को हुए राज्य विधान सभा चुनावों तथा उनसे सम्बद्ध तत्त्वो ने, जिनके बारे मे मैंने पिछले

परिच्छेदों 'मूल कारणों' में उल्लेख किया है बहुत बिगाड़ दिया था।

उपर्युक्त चुनावों के दौरान दलों के नेताओं ने फासिस्ट तरीकों का इस्तेमाल किया था। जान-बूझकर झूठी बातें फैलाई गई थीं। धार्मिक और क्षेत्रीय भावनाओं को अनैतिक रूप से उठाया गया था। डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने घाटी में अपनी स्थिति मजबूत करने और एक ऐसा मानसिक माहौल तैयार करने के लिए जिसमें केन्द्र विरोधी जनमत संग्रह के पक्षधर और मुस्लिम वोट उनके पक्ष में हो जायें मीर वायज मौलवी फारूख से गठजोड़ कर लिया था, जिसने अस्थायी रूप से भी अपना पाकिस्तान और जनमत संग्रह समर्थक रुख नहीं छोड़ा था। मौलवी के चाचा, पूर्ववर्ती 'मीरवायज' पाकिस्तान चले गये थे और आजाद काश्मीर के प्रेसीडेण्ट बन गये थे। डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने भिन्न स्थानों पर अलग-अलग तरह की बातें कीं। लेकिन घाटी में उन्होंने चतुरतापूर्वक उस समूह की सहायता प्राप्त कर ली, जो कभी जनमत संग्रह मोर्चा का केन्द्र होता था और जिसने शेख अब्दुल्ला का उस समय साथ छोड़ दिया था, जब उन्होंने काश्मीर समझौता (1975) किया था। घाटी में शेख अब्दुल्ला ने खुद प्रचार किया, "यह चुनाव एक जनमत संग्रह है, जिसमें लोग कह सकें कि वे किस राजनैतिक पार्टी को पसन्द करते हैं—नेशनल कांफ्रेंस या कांग्रेस (ई)।" दूसरी ओर श्रीमती इन्दिरा गांधी और कांग्रेस (ई) ने जम्मू वासियों की पाकिस्तान सम्बन्धी आशंकाओं को जगाया और राज्य में जो तत्त्व इसके पक्ष में थे उन्होंने उनको समर्थन दिया।

इन सबका नतीजा यह हुआ कि सारे मतदाताओं का साम्प्रदायिक और प्रांतीयता के आधार पर ध्रुवीकरण हो गया। घाटी के निवासियों और मुसलमानों ने बहुत बड़ी संख्या में नेशनल कांफ्रेंस को वोट दिये और जम्मू के गैर-मुस्लिम बहुल क्षेत्र और हिन्दुओं ने कांग्रेस (ई) को।

चुनाव अभियान के दौरान अनेकों घृणित घटनाएं हुईं जो अपने पीछे कटुता तथा शत्रुता के चिह्न छोड़ गयीं। उदाहरणार्थ, 3 जून को श्रीनगर के इकबाल पार्क में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सभा में हिंसक और अवर्णनीय रूप से, बेशर्म तरीके से बाधा डाली गयी। केन्द्र और राज्य सरकार के विभागों में भी आपसी संघर्ष चल रहा था। कुछ चुनाव अधिकारियों ने भारत के चुनाव आयोग की हिदायतों तक की उपेक्षा कर दी। सेना के लगभग 10,000 कर्मचारी राज्य में चुनाव ड्यूटी पर भेजे गये थे, विशेष रूप से मतदान केन्द्रों पर एक मिली-जुली सैन्यशक्ति की व्यवस्था करने के लिए। लेकिन राज्य के अधिकारियों ने उन्हें महत्त्वहीन कार्य करने के आदेश दिये और इस प्रकार मतदान केन्द्रों को पूरी तरह स्थानीय पुलिस के रहम पर छोड़ दिया गया। दूसरी ओर डॉ० फारूख ने केन्द्र सरकार के अधिकारियों की बड़ी संख्या तथा भारत के चुनाव कमीशन के अधिकारियों की उपस्थिति पर आपत्ति की।

कार्यवाही के वास्तविक स्तर पर राजनैतिक तथा प्रशासनिक तत्त्वों में जो गठजोड़ था उसको दृष्टि में रखते हुए नेशनल कांफ्रेंस के उम्मीदवारों के पक्ष में अनुचित उपाय अपनाने के आरोपों को आसानी से अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दस चुनाव क्षेत्रों में फैले 18 मतदान केन्द्रों पर कब्जा करना की विशिष्ट शिकायतें थीं। अनेकों स्थानों पर गिनती में न आने योग्य मतदान पत्र बड़ी संख्या में प्राप्त हुए। उदाहरण के लिए, जादीबल चुनाव क्षेत्र में नेशनल कांफ्रेंस

के उम्मीदवार ने मतदान हुए वोटो में से 90 प्रतिशत वोट प्राप्त किये, जबकि शेख अब्दुल्ला की चढ़ती हुई लोकप्रियता के दिनों 1977 मे पार्टी उम्मीदवार को केवल 51 प्रतिशत वोट मिले थे। राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष मुफ्ती मोहम्मद सईद ने दुःख से कहा—"यह ठीक पाकिस्तान मे 1978 मे हुए भुट्टो के चुनाव की तरह है। यह बिलकुल जायज़ नहीं है। यह ठगी पर आधारित है।" कांग्रेस (ई) ने चुनावो की अनियमितताओ के विरुद्ध 40 चुनाव याचिकाएं की। दूसरी ओर डॉ॰ फारूख ने चुनाव आयोग पर पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाने का आरोप लगाया।

सुरक्षा और प्रशासनिक वातावरण

15 अगस्त, 1983 के बाद से कई बार लगातार क्रमशः बम विस्फोट हुए, जिनके सम्बन्ध मे मैंने प्रथम अध्याय मे संक्षिप्त विवरण दिया है। श्रीमती इन्दिरा गाधी के आदेश पर ऐसे एक बम विस्फोट की घटना के बारे मे, जो स्वतन्त्रता दिवस समारोह के अवसर पर हुई थी—पूरी जाच की गई। चार संदिग्ध अपराधी —इकबाल कुरैशी, अल्ताफ कुरैशी, अल्ताफ महाजन और माजिद लाला गिरफ्तार किये गये। इकबाल कुरैशी उस हाशिम कुरैशी का भाई था, जिसने सन् 1971 मे इंडियन एयर लाइन्स के फॉकर विमान का अपहरण किया था। अल्ताफ कुरैशी अशरफ कुरैशी का भाई था, जो कि सह-अपहरणकर्ता था। ऐसे खतरनाक लोगो की उपस्थिति से स्पष्ट था कि स्थिति किस दिशा मे जा रही है।

23 अक्तूबर, 1983 को भारत और वेस्ट इंडीज के बीच हुए एक दिवसीय क्रिकेट मैच के दौरान अत्यन्त निन्दनीय विघटनकारी कार्य हुए। भारतीय खिलाडियों की बेइज्जती की गई, हूट किया गया, गालियां दी गयी और यहा तक कि उन पर सड़े फलों, पत्थरो और झण्डे के डण्डो से हमला किया गया। पाकिस्तानी झण्डे फहराये गये। पिच को खोदने की कोशिशें की गयी। सितम्बर, 1986 में गवर्नर के शासनकाल के दौरान दूसरा एक दिवसीय क्रिकेट मैच आस्ट्रेलिया और भारत के बीच हुआ जो कि उचित तरीके से खेला गया। उस समय भारतीय टीम के कप्तान कपिलदेव ने मुझे 13 अक्तूबर, 1983 के अपने भयानक अनुभव के बारे मे सुनाया। उसने बताया कि उसकी टीम के कुछ साथियों ने सोचा था कि वे मार डाले जायेंगे। उस घृणित घटना से जो लाखों टी॰ वी॰ दर्शकों के सामने घटित हुई थी पूरे देश मे क्रोध की लहर फैल गयी थी।

राष्ट्र को दूसरा सदमा उस वक्त पहुंचा, जब भारतीय राजनयिक रविन्द्र म्हात्रा जो कि बर्मिंगम में पदासीन थे, *का फरवरी 1984 के प्रथम सप्ताह में* जे॰ के॰ एल॰ एफ॰ ने अपहरण कर लिया और फिर हत्या कर दी। जे॰ के॰ लिब्रेशन आर्मी (प्लेबीसाइट फ्रण्ट) जनमत संग्रह मोर्चा का एक सैनिक संगठन था। इस दुखान्त घटना को घाटी की बिगडी हुई स्थिति और भारत-विरोधी व पाकिस्तान परस्त तत्त्वो के विरुद्ध पूर्ण अकर्मण्यता का प्रत्यक्ष फल समझा गया। वास्तव मे ये तत्त्व और नेशनल फ्रण्ट के काफी सदस्यो के मानसिक विचार एक समान थे। 11 फरवरी, 1984 को मकबूल बट्ट के मृत्यु दण्ड ने राज्य मे फैले तनाव को और बढा दिया।

उस समय दूसरा विचारणीय महत्त्व का तथ्य जो सामने आया वह था मुसलमानों और केन्द्रीय सरकार विरोधी अवसर तोड़-फोड़ करने वाले सिख युवकों में बढ़ता गठबन्धन। उदाहरणार्थ, 29 मई, 1984 को इन तत्वों द्वारा एक हिंसक जुलूस निकाला गया, प्रकटत: यह भिवन्डी में पन्द्रह दिन पहले हुए दंगों के विरोध में था। सेना और बी० एस० एफ० के सात वाहनों पर हमला किया गया और पांच जवान घायल हुए। अत्यधिक उत्तेजक नारे जैसे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद', 'खालिस्तान जिन्दाबाद', 'नूरे चश्म, नूरे हक—जिया-उल-हक, जिया उल हक' लगाये गये। 7 जून को दूसरा मिला-जुला जुलूस निकाला गया जिसमें नंगी तलवारें आजादी के साथ घुमाई गयीं। भीड़ लूट-पाट करने लगी और अनेकों घरों व दुकानों में आग लगा दी, इनमें आर्य समाज स्कूल और निरंकारी भवन शामिल थे। हनुमान मंदिर पर भी हमला किया गया, पुजारी को पीटा गया और मूर्ति को झेलम में फेंक दिया गया।

इसी प्रकार अनेकों घटनाएं हुई।

परिवार की राजनीति

शेख अब्दुल्ला के परिवार के खून में राजनीति घुली थी। उनकी सबसे बड़ी बेटी श्रीमती खालिदा शाह उतनी ही राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा रखती थी जितना कि उनके भाई डॉ० फारूख अब्दुल्ला। लेडी मेकबेथ की भांति वह भी चाहती थीं कि उनका पति 'राजा' बने। भाई-बहन के बीच के संघर्ष की एक पृष्ठभूमि थी। उनके आपसी द्वेष, शेख द्वारा खालिदा को विशेष रूप से पसंद करने और गम्भीरता रहित डॉ० फारूख अब्दुल्ला को नापसंद करने के बारे में अनेकों कहानियां प्रचलित हैं।

जी० एम० शाह ने सदैव यह अनुभव किया कि राज्य के मुख्यमंत्री पद और नेशनल कांफ्रेंस का नेतृत्व करने का उनका दावा बेहतर है। अपने पुत्र को राज-मुकुट सौंपने के शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के निर्णय से वह समझौता नहीं कर सके थे। वह दबी आवाज में यह कहा करते थे कि कठिनाई के समय में उन्होंने शेख का साथ दिया, जेल गये, जनमत संग्रह मोर्चा के सेक्रेटरी के रूप में कठोर परिश्रम किया और पार्टी के क्रिया-कलापों का व्यापक अनुभव प्राप्त किया जबकि डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने लम्बे समय इंगलैण्ड में मौज मारी, अपनी मेडिकल डिग्री प्राप्त करने में वर्षों लगाए और उसके बाद चालाकी से पिता की गद्दी हासिल कर ली।

बाद में जी० एम० शाह पर डॉ० फारूख अब्दुल्ला से विश्वासघात करने का आरोप लगाया गया। लेकिन वह उसी न्यायोचित रूप से कह सकते थे कि पहले शेख अब्दुल्ला ने उनके साथ विश्वासघात किया, यही नहीं वरन् उन्होंने जीवन भर संकटों में साथ देने वाले अपने साथी मिर्जा अफजल बेग के साथ भी विश्वासघात किया।

जी० एम० शाह कुछ समय के लिए शांत बने रहे। उन्होंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला के प्रति दिखावे की वफादारी का प्रदर्शन किया। जून, 1983 के राज्य असेम्बली के चुनाव में उन्होंने चुपचाप अपनी सास श्रीमती शेख अब्दुल्ला के माध्यम से कम से कम आठ अपने सहायकों के लिए पार्टी टिकट प्राप्त कर लिए।

जब नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) के बीच सम्बन्ध खराब होने लगे, शाह ने अपना मौका देखा। कांग्रेस ने उनको उत्साहित करने वाले संकेत भेजे। शेख अब्दुल्ला मन्त्रिमण्डल के करीब आधा दर्जन पूर्ववर्ती मन्त्रियों को शेख की मृत्यु के बाद डॉ० फारुख अब्दुल्ला द्वारा उस समय बिना किसी औपचारिकता के हटा दिया गया था जब वे सितम्बर 1982 के मुख्यमंत्री बने। ये मंत्री लोग छिपे तौर पर जी० एम० शाह के साथ मिल गये।

कांग्रेस (ई) ने अलग से चुनावों में धांधली होने और डॉ० फारुख अब्दुल्ला के कुशासन के विरुद्ध जन आन्दोलन शुरू कर दिया। अनेकों प्रदर्शन हुए। 15 जनवरी, 1984 को हुए ऐसे एक प्रदर्शन में पुलिस ने गोली चलाई जिसमें कांग्रेस के चार समर्थक मारे गये। इससे कांग्रेस (ई) और नेशनल कांफ्रेंस के बीच और कटुता बढ़ गई। उस समय की कांग्रेस (ई) की मन:स्थिति उसके नेता और भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री मोहम्मद शफी कुरैशी के इस कथन से झलकती है —"अजीब बात है अगर आप 'आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' का नारा लगाते हैं, आप मारे जाते हैं, लेकिन यदि आप 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' या 'भारतीय कुत्ते वापस जाओ' चिल्लाते हैं तो आप खुशहाल होते हैं और मौज मारते हैं।" के० सी० पन्त ने भी डॉ० फारुख अब्दुल्ला पर 'राष्ट्रविरोधी शक्तियों के हाथों का स्वैच्छिक बंदी' होने का आरोप लगाया। डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने अपनी ओर से कांग्रेस (ई) की भी इसी प्रचण्डता से आलोचना की। उन्होंने धमकी तक दे डाली कि यदि केन्द्रीय सरकार उदार आर्थिक सहायता नहीं देती, वह सऊदी अरब से सहायता मांगेंगे। उन्होंने काश्मीर की कांग्रेस (ई) पार्टी को 'गुण्डों और लुटेरों' का समूह बताया जो बिना सत्ता के नहीं रह सकता।"

राज्य और केन्द्रीय सरकार के बीच भी सम्बन्धों में तनाव आया, विशेष रूप से जम्मू-काश्मीर में उग्रवादी सिखों के ट्रेनिंग कैम्प होने के विषय को लेकर। डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने जून, 1983 के राज्य चुनावों में अकालियों की सहायता प्राप्त कर ली थी। उनके दिल में सिख उग्रवादियों के प्रति सहानुभूति पैदा हो गयी थी। केन्द्रीय गृहमंत्री पी० सी० सेठी ने दोनों विषयों पर डॉ० फारुख अब्दुला को अनेकों पत्र लिखे। उन्होंने ट्रेनिंग कैम्पों और जम्मू-काश्मीर तथा पंजाब के उग्रवादियों के बीच बढ़ने वाले भयानक सम्बन्धों पर केन्द्रीय सरकार की गहरी आशंका व्यक्त की। उन्होंने घाटी में पाक परस्त और अलगाववादी गतिविधियों के बढ़ने की निन्दा भी की। डॉ० फारुख अब्दुल्ला और राज्य सरकार ने इन आरोपों का ज़ोरदार खण्डन किया। लेकिन इन विवादों के कारण दोनों सरकारों के बीच काफी संघर्ष और मनमुटाव पैदा हुआ।

जून, 1984 के अन्त तक यह बात खुल चुकी थी कि जी० एम० शाह और उनके समर्थकों ने कांग्रेस (ई) के सहयोग से डॉ० फारुख अब्दुल्ला के मन्त्रिमण्डल को गिराने का निर्णय कर लिया है।

कंगन से विधानसभा सदस्य शेख अब्दुल जब्बर बगावत का झण्डा उठाने वाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने भारत के राष्ट्रपति को डॉ० फारुख अब्दुल्ला के काले कारनामों की सूची का एक ज्ञापन दिया जिसमें उनको बर्खास्त करने की मांग की गयी थी। डॉ० फारुख अब्दुल्ला के समर्थकों की प्रतिक्रिया काश्मीरी शैली की राजनीति के अनुकूल हुई। उन्होंने शेख जब्बर को धमकियां दीं तथा

जहां भी वह जाते उनके पीछे पड़ जाते। अप्रैल 24, 1984 को जी० एम० शाह और श्रीमती खालिदा शाह जब्बर के समर्थन में स्पष्ट रूप से आ गये। जब्बर के समर्थन में एक सभा में भाषण देने के लिए श्रीमती खालिदा कंगन रवाना हुईं। रास्ते में ही उन पर हमला करके घायल कर दिया।

अलग सम्मेलन

जब डॉ० फारूख अब्दुल्ला और जी० एम० शाह के समर्थकों ने अपने-अपने समूह के अलग पार्टी सम्मेलन करने का निश्चय किया, इन दोनों की फूट ने एक स्पष्ट आकार ले लिया। जी० एम० शाह ने अपना सम्मेलन 23 मई 1987 को करना निश्चित किया और डा० फारूख अब्दुल्ला ने 24 मई, 1987 को।

जबकि जी० एम० शाह के सम्मेलन आयोजकों ने इसे एक महान सफलता बताया और उनके दावों को उनके प्रेस समर्थकों ने समाचार-पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर प्रमुख शीर्षक देकर पुष्ट किया। डॉ० फारूख अब्दुल्ला और उनके पार्टी के साथियों ने इसे कुछ तिकड़मबाजों का महान 'तमाशा' बताया। तथापि सम्मेलन का महत्त्व इस सफलता या असफलता में नहीं है कि कितने नेताओं और लोगों ने इसमें भाग लिया वरन् इस तथ्य में है कि इसने पार्टी से अलग हुए श्रीमती खालिदा शाह के गुट को एक कानूनी अस्तित्व दिया।

फारूख अब्दुल्ला इसको नहीं समझ सके कि सम्मेलन आयोजित करने का अर्थ ही यह था कि जी० एम० शाह को कुछ एम० एल० ए० गुप्त सहायता देने का आश्वासन दे चुके हैं, ये ऐसे लोग थे जो उस समय तक कुछ स्पष्ट कारणों से सामने नहीं आ सकते थे। वह अपने को यही विश्वास देते रहे कि शाह को कोई समर्थन प्राप्त नहीं है। सावधान होने के बजाय वह और अधिक लापरवाह हो गये।

चारों ओर तनाव ही तनाव

इस प्रकार चारों ओर अत्यधिक तनाव था —केन्द्र और राज्य के मध्य तनाव, नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) के बीच तनाव, डॉ० फारूख अब्दुल्ला तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी और शेख अब्दुल्ला के पारिवारिक सदस्यों के बीच भी तनाव था। पाकिस्तान परस्त और खालिस्तान परस्त तत्त्व अपनी मंशा को और दृढ़ बनाने लगे थे। वातावरण बुरी तरह गरम था। मेरी ओर से जरा सा गलत अनुमान या गलत व्यवहार बारूद के पूरे ढेर में जोरदार विस्फोट कर सकता था जिससे चारों ओर कटुता, मृत्यु और विनाश फैल सकता था। दुर्भाग्यवश हमारे देश में उस समय कोई ध्यान नहीं देता जब कोई दुखद घटना से बचा जाता है और बहुत बड़ी हानि नहीं होने दी जाती।

निर्णायक रात्रि

1 जुलाई को रात्रि साढ़े दस बजे मेरे सुरक्षा स्टॉफ ने सूचित किया कि एक महत्त्वपूर्ण अनुरोध करने के लिए जी० एम० शाह और डी० डी० ठाकुर के नेतृत्व में एम० एल० ए० और एम० एल० सी० का एक दल मुझसे राजभवन

में मिलने के लिए आना चाहता है। यह संकेत दिया गया था कि उन्होंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार को समर्थन देना बन्द कर दिया है, कांग्रेस (ई) ने भी नये दल को समर्थन देने का निश्चय किया है। इस प्रकार डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार अल्पमत में रह गई है। मैंने सुरक्षा स्टॉफ को उत्तर दिया कि वह कह दे कि ये लोग सुबह 8 30 बजे आ सकते हैं। लेकिन यह दल ज़िद करने लगा। सुरक्षा स्टॉफ के माध्यम से आया उनका उत्तर कुछ इस प्रकार था— अगर पुलिस स्वतन्त्र होती तो कोई समस्या नहीं थी और न हम आपको इस समय कष्ट देते। हमारी सही समस्या पूरी तरह कैद प्रशासन है। जैसे ही आप पुलिस से सुरक्षा देने के लिए कहेंगे, हमारे एकत्रित होने का समाचार डॉ० फारूख अब्दुल्ला के पास पहुंच जायेगा और पुलिस की गुप्त सहमति से गुण्डे तथा मुजरिम हमारे पीछे पड़ जायेंगे। हमारी हत्या कर दी जायेगी, हमारे घरों को जला दिया जायेगा और हमारे परिवारों को नुकसान पहुंचाया जायेगा।

अगर आप हमसे सुबह मिलना चाहते हैं तो हमें राजभवन की सीमा के अन्दर आ जाने दीजिए ताकि अगर हमारे एकत्रित होने की खबर फूट भी जाये तो हम पर कोई हमला न कर सके।"

मैं समझ गया कि उन लोगों की आशंका निर्मूल नहीं है। फिर भी मैं पहले वाले दृष्टिकोण पर दृढ़ रहा। मैंने उनको केवल यह एक सुविधा दी कि वे 8.30 बजे सुबह के बजाए प्रात. 7 बजे मिल सकते हैं।

अचानक होने वाली घटनाओं के इस परिवर्तन ने मुझे उलझन में डाल दिया। यद्यपि यह अफवाह थी कि जी० एम० शाह और उनका समर्थक समूह डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार को कांग्रेस (ई) की सहायता से गिराने की योजना बना रहे हैं लेकिन इसकी सम्भावना कम मालूम पड़ती थी। वास्तव में, संकेत तो ऐसे मिल रहे थे कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला और श्रीमती गांधी के बीच गलतफहमी शीघ्र ही दूर होने वाली है। उन्होंने स्वयं जून के अन्त में मुझे बताया था कि अगर डॉ० फारूख अब्दुल्ला विघ्नकारियों के खिलाफ प्रभावपूर्ण कदम उठाएं तो वह पूरी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनकी दूसरी गलतियों को अनदेखा कर सकती हैं। उनके विचार से डॉ० फारूख अब्दुल्ला के चालाक दोस्त उनकी अपरिपक्वता का लाभ उठा रहे हैं और उन्हें ऐसा खतरनाक रास्ता अपनाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं जो मुसलमान तथा सिख कट्टरपंथियों को साथ लाने के अतिरिक्त पाकिस्तान को अपनी मनमर्जी का खेल खेलने देगा।

श्रीमती इन्दिरा गांधी से जून के अन्त में हुई अपनी बातचीत की पृष्ठभूमि में स्थानीय कांग्रेस (ई) के नेताओं का जी० एम० शाह को उत्साहित करने और उनके साथ शामिल होने का निर्णय कुछ आश्चर्यजनक लगता था।

मैंने शीघ्र अपने को शांत किया और मुझे अनुभव हुआ कि यह समय इस विचार में पड़ने का नहीं है कि कोई विशेष घटना क्यों घटित हो रही है बल्कि सुबह जब फारूख परस्त और फारूख विरोधी समूहों में होने वाला संघर्ष फूटेगा तब के लिए यह निश्चित करने हेतु शीघ्रता से सोच-विचार कर डालने का है कि उससे राज्य में हिंसा की आग न भड़के, देश विरोधी शक्तियां चाहे वे घाटी की हों या सीमा पार की, इस तनावपूर्ण स्थिति से फायदा न उठा पायें।

मैं राजभवन की निचली मंजिल में स्थित अपने कार्यालय में आया। जैसे

कि मेरी आदत थी, किसी संकट से निपटने और स्पष्टता पाने के लिए मैंने एक कागज पर कुछ खास-खास बातें लिख डालीं। मैंने सुबह उत्पन्न होने वाली अनेकों सम्भावित स्थितियों की कल्पना की। एक मूल बात मुझे पूरी तरह स्पष्ट हो गई। जहां तक सम्भव है मैं सार्वजनिक व्यवस्था भंग नहीं होने दूंगा और न मानव जीवन को क्षति पहुंचने दूंगा। एक बार गया मानव जीवन दोबारा नहीं लौटता। लेकिन हमारे राजनैतिक नेता जनता का शोषण करने के बाद खुद पक्ष बदल लेते हैं। उन सब मूल्यों को नुकसान पहुंचाते हैं, जो सच्ची स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र का आधार है। मैं उस नीच खेल के प्रति पूरी तरह जागरूक था, जो राजनीतिज्ञ लोग काश्मीर में खेल रहे थे। मैं जानता था कि किसी उद्देश्य के प्रति उनकी प्रतिबद्धता कितनी आडम्बरपूर्ण है और किस प्रकार उनमें से अधिकांश ने अपनी शक्ति को साम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद और रूढ़िवाद पर आधारित करने में रंचमात्र भी अन्तर्विवेक नहीं दिखाया था। ऐसे नेताओं के कारण मनुष्यों की जानें चली जाने देना नैतिक रूप से अक्षम्य होगा। उनके लिए सत्ता ही सर्वस्व थी, जनता, सिद्धान्त या मूल्य किसी महत्त्व के नहीं।

मैंने सोचा दोनों ही दल अपने-अपने स्वार्थ पूरे करेंगे। दोनों उसी कुलीन वर्ग की सेवा करेंगे। दोनों गरीबों को मूर्ख बनाने की कोशिशें करेंगे। दोनों गलत सूचनाएं देंगे और फासिस्ट तरीकों को अपनाएंगे। दोनों भारतीय संविधान की धारा 370 के सम्बन्ध में जनता को भरमायेंगे।

आडम्बरपूर्ण न्याय और दिखावटी व्यवहार की अपेक्षा वास्तविक न्याय और निष्पक्ष व्यवहार की आवश्यकताओं को बिना त्यागे जनता और उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा और राष्ट्रीय हितों की रक्षा मेरे प्रथम उद्देश्य थे। संविधान के ढांचे के अन्दर रहते हुए मैंने एक सक्रिय भूमिका निभाने का निश्चय कर लिया। मैं इस सम्बन्ध में पूरी तरह स्पष्ट था कि यदि किसी संवैधानिक निष्क्रियता को बना रहने दिया गया तो उसके भयानक परिणाम होंगे।

पहला कार्य मैंने कैबिनेट सेक्रेटरी सी० आर० कृष्णास्वामी राव साहब और होम सेक्रेटरी एम० एम० के० वली को टेलीफोन करके उस स्थिति के बारे में बताने का किया जो सुबह पैदा हो सकती थी। मैंने राज्य सरकार की ओर से कोई बात नहीं की, लेकिन उनको केवल सूचित कर दिया। ऐसा मैंने इसलिए किया क्योंकि इससे पूर्व जब कभी कोई संघर्ष या झगड़ा हुआ था, अशांति फैलाने वालों का पहला निशाना केन्द्रीय सरकार की इमारतें और प्रतिष्ठान बने थे। यहां तक कि सैनिक वाहनों तक को बख्शा नहीं गया था। धार्मिक और ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों को नुकसान पहुंचाने या विस्फोट से उड़ा देने का भी खतरा था। इससे पूरी जनता की धार्मिक भावनाएं भड़क उठतीं, जैसा कि दिसम्बर, 1963 जनवरी, 1964 में मोहम्मद साहब के बाल की चोरी वाली घटना से हुआ था। केन्द्रीय सरकार को इसकी जानकारी देना मेरा कर्त्तव्य था। मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उन्हें सुझाव दूं कि उन्हें घाटी में या घाटी के निकट केन्द्रीय पुलिस बल रखने का प्रबन्ध करना चाहिए ताकि सुबह बड़े पैमाने पर होने वाली अशांति और हिंसा के दौरान महत्त्वपूर्ण जगहों की रक्षा का सशक्त प्रबन्ध किया जा सके।

प्रेस के एक हिस्से ने मेरे इस काम पर काफी हंगामा खड़ा किया। यह कहा गया कि मैंने ऐसे काम लिया जैसे राज्य सरकार की डोर मेरे हाथ में आ गई है।

इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं हो सकता। मैंने राज्य सरकार की ओर से कोई निर्देश या अनुरोध जारी नहीं किया था। केन्द्रीय सरकार को उस स्थिति के बारे में समय पर सूचित करना, जो गम्भीर सार्वजनिक क्षति ही नहीं बल्कि राज्य की सुरक्षा के लिए भी खतरा बन सकती थी, यह एक साधारण समझदारी और सार्वजनिक उत्तरदायित्व का काम ही नहीं, मेरा संवैधानिक कर्तव्य भी था और इन सबसे ज्यादा, इंसानी जिन्दगी बचाने का यह एक इन्सानी फर्ज था।

अपनी लघु पुस्तिका 'माई डिसमिसल' (मेरी बर्खास्तगी) में डॉ० फारूख अब्दुल्ला लिखते हैं : "गवर्नर को उस स्थिति के लिए विशेष कानून और व्यवस्था प्रबन्ध क्यों करने पड़े, जो मुझे अवैध रूप से बर्खास्त न करने पर गवर्नर के अनुसार, पैदा हो सकती थी ?" इस बात का जवाब यह है कि मैं सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को बता देना चाहता था और सुरक्षा बलों को पास रखने की जिम्मेदारी उन पर छोड़ना चाहता था। मेरी समझ में यही आया था कि मेरे निर्णय से चाहे जो स्थिति पैदा हो, सैन्य बलों की आवश्यकता तो होगी ही। अगर गवर्नर शासन हुआ, जिसका कि मुझे अंदेशा था, तो मुझे इन बलों की जरूरत होगी, अगर फारूख शासन ही चलता रहा और कानून व व्यवस्था भंग होने की स्थिति आई, तो भी सैन्य बलों की जरूरत होगी और अगर शाह सरकार आती है और इसके विरोधी बड़े पैमाने पर गड़बड़ी करना शुरू करते हैं तो भी यही स्थिति होगी। इस सभी में मैंने कोई आदेश जारी नहीं किया। मैंने सूचना दी, मैंने सुझाव दिया, मैंने उन्हें सावधान किया। पहल करना कहीं भी निषेध नहीं है, विशेष रूप से जब यह सार्वजनिक हित में हो और जब अन्तर्निहित प्रेरणा यह हो कि किसी भी स्थिति में भोली-भाली जनता को बेईमान राजनीतिज्ञों के सत्ता-खेल का शिकार नहीं होने देना है।

मैंने उत्तरी कमांड के जनरल ऑफिसर कमांडिंग, लेफ्टिनेंट जनरल एम० एल० छिब्बर से फोन पर सम्पर्क किया। मैंने उन्हें इन सब घटनाओं के बारे में बताया। मैंने उन्हें अपने अफसरों को सावधान रखने और कुछ उत्तेजित नागरिकों के कामों जैसे दैनिक चौकसी पर सेना-वाहनों पर पत्थर फेंकने पर भड़ककर कोई कदम न उठाने की सलाह दी। मैंने उन्हें शीघ्र ही श्रीनगर आने का सुझाव भी दिया ताकि अगर स्थिति गम्भीर हो जाती है तो जल्द ही निर्णय लिये जा सकें। आवामी एक्शन कमेटी के नेता, मौलवी मुहम्मद फारूख के लगभग 10,000 कट्टरपंथी और शीघ्र ही हिंसक हो जाने वाले अनुयायियों की मौजूदगी, मेरे विचार में इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि उसे नकारा नहीं जा सकता था। ना ही मुझे इस बात का कोई विश्वास था कि जम्मू काश्मीर सशस्त्र पुलिस का क्या रवैया होगा। जैसा कि मुझे बताया गया था, इस पुलिस में भरती उन्हीं की होती थी, जो केन्द्र-विरोधी भावनाओं से भरे थे।

एक प्रशासकीय संस्था के कुशल प्रशासक की तरह मैंने बदतर-से-बदतर स्थितियों की कल्पना करने और उन्हें नियन्त्रण में लाने के उपायों को सोचा। प्रशासन में हुई सबसे अहम् दुर्घटनाएं उन लोगों की वजह से हुई थीं, जिन्हें उनके [illegible] ना एक बड़े वर्ग की कट्टरपंथी [illegible] मर्यता ही प्रशासन की घातक [illegible] वजह से अनेक झगड़े, मुठभेड़ें

तथा जान और माल का नुकसान हुआ था और जिन्होंने राष्ट्रीय स्थिरता और एकता को क्षीण कर दिया था।

मैंने गुप्तचर विभाग के स्थानीय प्रमुख के० पी० सिंह से भी सम्पर्क किया। उन्होंने बताया कि फिलहाल जनता को नहीं मालूम कि क्या हो रहा है, लेकिन सुबह तक खबर जल्द ही फैल जायेगी और कुछ नेता गलियों में भीड़ इकट्ठा करने और उन्हें भड़काने की कोशिश जरूर करेंगे।

के० पी० सिंह के द्वारा दी गई सूचना से मेरा यह विचार और भी दृढ़ हो गया कि कोई भी खतरा नहीं लिया जा सकता था, न ही इस मामले में लिये गये शीघ्र एवं अन्तिम निर्णय के बीच में किसी सैद्धान्तिक ख्याल को लाया जा सकता था। मुझे जम्मू काश्मीर के संविधान के नियमों के बारे में जानकारी थी, फिर भी इस संविधान के महत्त्वपूर्ण भागों को एक बार फिर पढ़ लेना मुझे उचित लगा। संविधान की व्याख्या कोई सरल काम नहीं है। इसका उन संदर्भों और परिस्थितियों से सम्बन्ध है, जिनमें इसके नियमों पर विचार किया जाता है। सभी सम्भावनाओं को ध्यान में न रखना या फिर किसी पूर्व धारणा पर चलना समझदारी का काम नहीं होगा। मुझे लगा कि इस समस्या को सुलझाने का मेरा तरीका उस रुख पर निर्भर करना चाहिए जो विभिन्न पार्टियां अगली सुबह लेंगी।

एक महत्त्वपूर्ण दिन

इस पूरी विचार प्रक्रिया, सूचना के आदान-प्रदान, पढ़ने और लिखने में लगभग सारी रात बीत गई। मैं इस पूरी स्थिति में इतना मशगूल था कि मुझे पता ही नहीं चला कब 2 जुलाई, 1984 की सुबह के 4 बज गये। जब मैं संतुष्ट हो गया कि जो भी कुछ सम्भव था, मैं कर चुका हूं, मैं ऊपर अपने कमरे में सोने चला गया। मैं दो घण्टे गहरी नींद सोया। यह उस तरह की नींद थी, जो तब आती है जब आपको यह एहसास होता है कि एक काम कुशलतापूर्वक, ईमानदारी से किया गया है और उसके अच्छे या बुरे परिणाम हमें एक संयमपूर्ण शांति से स्वीकार करने होंगे।

जब मैं सुबह सात बजे दफ्तर पहुंचा तो मुझे बताया गया कि जी० एम० शाह के नेतृत्व में एक दल पहले ही आया हुआ है और मुख्य इमारत से 30 से 40 मीटर की दूरी पर बने एक कक्ष में प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे बताया गया कि कांग्रेस विधान सभा पार्टी के नेता श्री इफ्तिखार हुसैन अंसारी भी उनके साथ हैं। मैंने स्थिति पर कुछ देर विचार किया और फिर नियत समय पर प्रतिनिधि दल को बुला भेजा।

जी० एम० शाह ने मुझे 28 जून, 1984 की तिथि का एक पत्र दिया जिस पर 12 एम० एल० ए० के हस्ताक्षर थे।

जी० एम० शाह ने स्वयं उन 12 विधान सभा सदस्यों को मेरे सामने पेश किये। मेरे सामने पूर्व प्रार्थना-पत्र के साथ उन्होंने दूसरा प्रार्थना-पत्र लिखा, उस पर उन 12 विधान सभा सदस्यों के हस्ताक्षर भी लिये।

दूसरे-प्रार्थना-पत्र में यह लिखा था :

"28-6-1984 को लिखे गये हमारे पत्र के सन्दर्भ में, नेशनल कांफ्रेंस के जम्मू काश्मीर विधान सभा दल के सदस्य, हम आपके समक्ष व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत हैं और निवेदन करते हैं कि हमने डॉ० फारूख अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया है। परिणामस्वरूप डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने विधान सभा के बहुमत का समर्थन खो दिया है।

हमने श्री जी० एम० शाह विधान सभा सदस्य को अपना नेता चुना है। अतः हम आपसे अनुरोध करते हैं कि श्री जी० एम० शाह को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया जाये।

हम यह भी निवेदन करते हैं कि निर्दलीय सदस्य श्री अली मुहम्मद नायक सहित कांग्रेस (ई) के विधान सभा दल के 26 सदस्यों ने भी अपना समर्थन देने का वायदा किया है।"

जी० एम० शाह के नेतृत्व वाले इस दल से मैंने पूछा कि वे विधान सभा में अपना बहुमत क्यों नहीं दिखा सके? उनका जवाब सीधा-सा था: "हमें ज्ञान था कि स्पीकर पक्षपात करेगा। पिछले सत्र में भी ऐसा ही हुआ था, जब सारे नियमों में ढील देकर डॉ० अब्दुला ने विश्वास मत प्राप्त किया था, जबकि बी० के० नेहरू ने उन्हें पहले ही विश्वास दिलाया था कि यह मत सामान्य तरीके से हासिल करना है और इसके लिए कोई खरीद-फरोख्त नहीं होनी चाहिए। राज्य पुलिस के कुछ गुण्डों को भी हमारे पीछे लगा देने का डर था और भीड़ को हमारे विरुद्ध भड़काने के फासिस्ट तरीके को अपनाने की आशंका थी।" मुझे इस तर्क में कुछ वजन लगा फिर भी संदेह का निवारण नहीं हुआ। काश्मीर में यह किस तरह का प्रजातन्त्र था, जिसमें गुण्डे और फासिस्ट तरीकों से काम लिया जा रहा था?

मैंने जी० एम० शाह से सारे दस्तावेज लिये और उन्हें उसी कक्ष में प्रतीक्षा करने के लिए कहा। मैंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला को फोन करके राजभवन आने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि वे नहाने के बाद वहां आयेंगे। उन्हें वहां पहुंचने में 45 मिनट लगे। इस दौरान मैंने जी० एम० शाह और उनके समर्थकों का पत्र फोटो स्टेट करवा लिया। इसी दौरान लेफ्टिनेंट जनरल एम० एल० छिब्बर भी आ पहुंचे। मैंने उन्हें चाय पर सारी घटना का ब्योरा दिया। जब मेरे ए० डी० सी० ने डॉ० फारूख अब्दुल्ला के आ पहुंचने की घोषणा की तो मैंने उन्हें बैठक में बैठाया और लेफ्टिनेंट जनरल को अपने ही दफ्तर में चाय पीता छोड़, मैं वहां गया।

सामान्य अभिवादन और औपचारिकता के बाद मैंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला से कुछ इस तरह के शब्द कहे, "एक राजनैतिक समस्या आ खड़ी हुई है। हमें हर चीज को शान्तिपूर्वक लेना चाहिए। इस बार का भी निश्चय कर लेना चाहिए कि जो भी निर्णय लिया जाता है, उस पर ऐसा कुछ कहा या किया नहीं जाएगा जिससे कानून और व्यवस्था की समस्या खड़ी हो। यह वे पत्र हैं जो जी० एम० शाह और अन्य लोगों ने मुझे दिये हैं। शाह का दावा है कि अब आप अल्पमत में हैं और उसकी यह मांग है कि आपको हटा दिया जाये और बहुमत में होने के कारण उन्हें मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई जाये। उन्होंने यह भी कहा है कि राज्य में विस्फोटक स्थिति हो जाने की वजह से तथा 27 जनवरी, 1984 को झूठा मत प्राप्त किये जाने के कारण असेम्बली में उन्हें न्यायपूर्ण निर्णय मिल

पायेगा—इसकी उन्हें उम्मीद नहीं है।"

डॉ० फारूख अब्दुल्ला की तत्काल प्रतिक्रिया हैरानी और परेशानी की थी। उन्होंने नाम देखे और कुछ अस्पष्ट शब्द चोर, ठग वगैरह कहे। उन्होंने पत्रों और हस्ताक्षरित नामों की सच्चाई को कोई चुनौती नहीं दी। ऐसा लगा कि उन्हें उम्मीद थी कि 'ये चोर', 'ये ठग' इसी तरह का काम करेंगे। वे इन विधायकों के विद्रोही व्यवहार के बारे में इतने निश्चित थे कि उन्होंने जी० एम० शाह के इस दावे की पुष्टि भी नहीं की। अपनी लघु पुस्तिका, 'माई डिस्मिसल' (मेरी बर्खास्तगी) में उसने लिखा है, "मैं उन लोगों का मुंह नहीं देखना चाहता, जिन्होंने मुझे धोखा दिया।" नामों से वे साफ पता लगा सकते थे कि उनके विरुद्ध यह विद्रोह शेख अब्दुल्ला कैबिनेट के उन सदस्यों और अन्य कुछ लोगों का है, जिनकी महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं हो पाई थी और जिन्हें उन्होंने अपनी कैबिनेट से हटा दिया था।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने अपने भाव व्यक्त करने की कोशिश की। उन्हें नहीं सूझ पड़ा कि वे क्या कहें। उनकी अनिश्चय की स्थिति देखकर मैंने कहा, "डॉक्टर, अब आपको समस्या का यह पहलू जान लेना चाहिए। आप अब स्पष्टतः अल्पमत में हैं। जाहिर है कि एक अल्पमत सरकार को सत्ता में रखना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पायेगा। आपको इस्तीफा देना पड़ेगा। मेरी सीमाओं और इस संवेदनशील राज्य में शांति बनाये रखने की मेरी चिन्ता को आप समझिये। मैं कोई खतरा नहीं ले सकता। मैं आप पर भरोसा कर सकता हूं, लेकिन गलियों में आपके समर्थकों पर नहीं। ज्यादा से ज्यादा यही कर सकता हूं—और जो सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के हित में होगा—कि जम्मू काश्मीर संविधान के अनुसार सेक्शन 92 के तहत गवर्नर शासन लागू कर दूं और धीरे-धीरे सभी मसलों को सुलझाने का प्रयास करूं।"

जैसे ही मैंने गवर्नर शासन की बात की, डॉ० फारूख अब्दुल्ला लगभग अपने स्थान से कूद पड़े। लगा जैसे उनमें नये प्राण फूंक दिये गये हों, "गवर्नर साहब, इस सुझाव के लिए मैं आपका आभारी हूं।" पूरा विश्वास फिर से पाकर उन्होंने कहा : "इन चोरों और ठगों को नहीं—पर अपने हाथ में आप जितनी देर तक चाहें सत्ता अपने पास रखें।" हमारी बातचीत की जो अजीब स्थिति थी, वह निश्चित रूप से खत्म हो गई। दिमागों में तनाव हल्का हुआ। हमने उन स्थितियों पर थोड़ी देर बात की, जिनसे गवर्नर शासन का लागू होना जायज़ है। मैंने सोचा समस्या का समाधान हो गया है। अपने आशावाद में मैंने काश्मीरी राजनीति के मोड़ों और कुछ लोगों तथा शक्तियों की कार्यप्रणाली के बारे में सोचा ही नहीं था।

मैंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला से कहा कि बेहतर होगा कि वे इस बात को लिखित रूप में दें कि वे राज्य में अस्थायी तौर पर लागू गवर्नर शासन के मेरे विचार का समर्थन करते हैं। बिना किसी संकोच के वे सहमत हो गये। उन्होंने कहा कि वे घर जाकर पी० एल० हांडू की मदद से पत्र तैयार करेंगे और मुझे भिजवा देंगे। एक बात मुझे स्पष्ट कर देनी चाहिए कि यह पत्र मेरे लिए वैधानिक या संवैधानिक रूप से आवश्यक नहीं था। मैंने सोचा कि इससे जम्मू काश्मीर संविधान के सेक्शन 92 के तहत गवर्नर शासन जारी करने के लिए मैं राष्ट्रपति/केन्द्र

[illegible]

मूत महत्त्व रखती थी।

मुझे खुले-आम सडकों पर होने वाली हिंसा को रोकने की बहुत चिन्ता थी। काश्मीरी भीड़ को बहुत जल्द भडकाया जा सकता है। वे बहुत जल्द ही उन्माद का शिकार हो जाते हैं। फिर यह बात अहमियत नहीं रखती कि वे किसी एक मुद्दे का समर्थन करते हैं या विरोध। यदि एक बार वे भावुक और तनाव की स्थिति में आ जाएं तो उन्हें एक साथ शहर के विशेषकर श्रीनगर के अलग-अलग स्थानों में खुराफात करने से कोई नहीं रोक सकता। सडकों पर रुकावटें खड़ी कर देना, बसों और कारों पर पथराव उनकी विशेषता है। उनके व्यवहार में मजे लेकर गुण्डागर्दी करने का भी आभास होता है। अधिकतर ये लोग बेरोजगार होते हैं और स्वयं को व्यस्त रखने में मनोरंजन के साधन लगभग नहीं के बराबर हैं। जिन उद्देश्यों का वे ऊपरी तौर पर समर्थन करते हैं, उनके उचित या अनुचित होने का बोध भी उन्हें नहीं है। बहुतायत उन लोगों की है, जिनके विरुद्ध कोई सख्त कार्रवाई करने से पहले दुःख महसूस किये बिना नहीं रहा जाता।

आवामी एक्शन कमेटी के अध्यक्ष और लगभग 10,000 जल्द हिंसक हो जाने वाले लोगों के नेता मौलवी फारूख, श्रीनगर शहर में सार्वजनिक व्यवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, इसलिए मैंने उन्हें इस अनुरोध पर राजभवन बुलाया कि मैं संवैधानिक समस्या को हल करने के लिए उनकी परिपक्व सलाह चाहता हूं। मौलवी खुश थे कि गवर्नर उनका कीमती सुझाव मांग रहा है और मुझे इस बात की खुशी थी कि जब तक शहर में कानून और व्यवस्था कायम रखने के प्रबन्ध नहीं हो जाते—मैं उन्हें राजभवन में मशगूल रख सकूंगा।

जब मैं शांतिपूर्वक और शीघ्रतापूर्वक ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे को सुलझाने की कोशिश कर रहा था कि आल इंडिया रेडियो ने सुबह अपने आठ बजे के समाचार बुलेटिन में यह समाचार दे दिया कि जी० एम० शाह के नेतृत्व में 13 एम० एल० ए० राजभवन में गये और व्यक्तिगत तौर पर उन्होंने गवर्नर के सामने यह स्पष्ट किया कि उन्होंने अब्दुल्ला सरकार से समर्थन वापस ले लिया है और—इस आधार पर कि जी० एम० शाह को बहुमत प्राप्त है, यह दावा किया कि जी० एम० शाह को मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाये। यह भी बताया गया कि इन विधान सभा सदस्यों और कांग्रेस (ई) विधान सभा दल के नेता मौलवी इफ्तिखार हुसैन अंसारी की मांग थी कि फारूख अब्दुल्ला की अल्पमत वाली सरकार को बर्खास्त कर दिया जाये। जब मेरे स्टाफ ने समाचार बुलेटिन के बारे में मुझे बताया तो मैं परेशान हो गया। मुझे समझ नहीं आया कि यह केवल एक मूर्खता थी या अव्यवस्था को रोकने के मेरे प्रयासों को जान-बूझकर कोई विफल करने का यत्न। फिर भी, इस समाचार के प्रसारण से होने वाली प्रतिक्रियाओं का सामना करने के लिए मैंने शीघ्र ही कुछ निर्णय लिये। इनमें से एक मौलवी फारूख को तुरन्त सलाह के लिए बुलाना था और दूसरा कदम था सलाह लेने, पत्र लिखने और संवैधानिक तथा प्रशासनिक मुद्दों को छांटने की गति में तेजी लाना।

राष्ट्रपति, कैबिनेट सेक्रेटरी तथा होम सेक्रेटरी तथा प्रधानमंत्री के सचिव को मैंने एक जरूरी वायरलेस संकेत लिखवाया। यह संकेत इस प्रकार था—

"राज्य की कानून व्यवस्था और शान्ति को विघटनकारी तत्त्वों द्वारा गड़बड़ी फैलाने तथा राजनैतिक अस्थिरता से गम्भीर खतरा पैदा हो गया है। यह राजनैतिक अस्थिरता 13 विधान सभा सदस्यों (नेशनल कांफ्रेंस के 12 तथा 1 निर्दलीय सदस्य) द्वारा मुख्यमन्त्री से अपना समर्थन वापिस ले लेने से पैदा हुई है। इन सदस्यों द्वारा समर्थन वापिस ले लेने की वजह से डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने विधान सभा में बहुमत खो दिया है। मुझे विश्वास हो गया है कि एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें, जम्मू काश्मीर संविधान के नियमानुसार सरकार सत्ता में नहीं रह सकती। मैं तत्काल जम्मू काश्मीर संविधान के सेक्शन 92 के तहत राज्य सरकार या राज्य के किसी भी विभाग के सभी कार्यों व उत्तरदायित्वों को स्वयं लेने की घोषणा जारी करना चाहता हूं। सेक्सन 92 के आर्टिकल 5 के तहत अपना सहमति अनुरोध तत्काल भेजें। स्थिति गम्भीर है।"

मैंने फोन पर केबिनेट तथा गृह सचिवों से भी बात की। जम्मू काश्मीर संविधान के सेक्शन 92 के अन्तर्गत जारी की जाने वाली घोषणा के लिए जरूरी सहमति याचना की आवश्यकता भी मैंने उन्हें बतलाई। मैंने तर्क दिया कि इस सेक्शन के अनुसार गवर्नर का संवैधानिक मशीनरी के टूट जाने का विश्वास ही इस पूरे मुद्दे का आधार बनता है। इससे भी ज्यादा, यह समय काम करने का है और अगर इस अनिश्चय की अवस्था में कुछ घटनाएं हो जाती हैं तो स्थिति एकाएक हाथ से निकल सकती है। गृह तथा केबिनेट सचिव मेरे विश्लेषण और निर्णय से सहमत थे और उन्होंने तत्काल कदम उठाए जाने का वायदा भी किया। केबिनेट सचिव ने मुझे बताया कि श्रीमती गांधी श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्द्धने से बातचीत करने में व्यस्त हैं। जैसे ही यह बातचीत खत्म होगी, वह उनसे बात कर सकेगा। मैंने उनसे यह भी कहा कि डॉ० अब्दुल्ला भी मुझसे सहमत हो गए हैं और उनकी सहमति कानून और व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने में मेरी मदद करेगी। केबिनेट तथा गृह सचिव दोनों ने स्वीकारा कि यह तो इस स्थिति में एक अच्छी बात ही है, इससे यह और भी जरूरी हो जाता है कि वे जल्द ही केन्द्र की सहमति प्राप्त करें। मैं[illegible] [illegible]पति से भी [illegible]तगत रूप से बात की है।

साथ ही साथ मैंने अपने [illegible] स[illegible] [illegible]पुलिस के डायरेक्टर जनरल को बुलाने के लिए [illegible] [illegible]चिव [illegible] गोल्फ के लिए गए हुए थे और उन्हें इन बदल[illegible] [illegible]ता न[illegible] [illegible]रेक्टर जनरल ने इस [illegible]व के बारे में राज[illegible] [illegible]आते [illegible] वे आए तो मैंने उन्हें [illegible] हो रहा था, उ[illegible] [illegible]दी। [illegible] वैधानिक तथा प्रशा- [illegible] कर्त्तव्यों की [illegible] कान[illegible] [illegible] कायम रखने के लिए, [illegible] शान्ति [illegible] लए [illegible] तिक नेता [illegible]र के [illegible] की जरूरत [illegible] क लिए [illegible] दिया औ[illegible] [illegible] रहने [illegible] इससे कु[illegible] [illegible] को [illegible] भे[illegible] [illegible] क [illegible]

प्रिय मुख्यमन्त्री,

आज सुबह जम्मू काश्मीर विधान सभा के 13 सदस्य (12 नेशनल पार्टी के तथा एक निर्दलीय) मेरे पास आए। उन्होंने मुझे बताया और लिखित में भी दिया कि उन्होंने आपकी सरकार से समर्थन वापिस ले लिया है और विधान सभा सदस्य श्री जी० एम० शाह को अपना समर्थन देने का वादा किया है। साथ ही साथ कांग्रेस (ई) के विधान सभा दल के नेता मौलवी इफ्तिखार हुसैन अंसारी ने मुझे व्यक्तिगत तौर पर और लिखित में भी यह बताया कि कांग्रेस (ई) के विधान सभा दल, जिसमें 26 विधान सभा सदस्य हैं, ने भी श्री गुलाम मुहम्मद शाह को समर्थन देने का निश्चय किया है। इन दोनों वायदों की एक-एक प्रतिलिपि सलग्न है।

मुझे विश्वास हो गया है कि अब आप विधान सभा में बहुमत के अधिकारी नहीं रहे और इसलिए मुख्यमन्त्री बने रहने तथा सरकार का नेतृत्व करने का अधिकार खो चुके हैं।

इन परिस्थितियों में, मैं सुझाव दूंगा कि आप मुख्यमन्त्री पद से इस्तिफा दे दें।

शुभकामनाओं सहित

आपका
जगमोहन"

"पुनश्च हम मिल कर इस मुद्दे पर बातचीत कर चुके हैं। आपने मुझे जम्मू काश्मीर के सेक्शन 92 के तहत गवर्नर शासन लागू करने तथा विधान सभा को निलम्बित रखने का सुझाव दिया था। मैं आभारी हूंगा यदि आप इस विषय में तत्काल अपनी लिखित पुष्टि भेज दें।"

यह पत्र और दो अन्य महत्वपूर्ण तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि डॉ० फारुख अब्दुल्ला और उनका मन्त्रिमंडल मुझे और सलाह देने का अधिकार भी खो चुके थे। सुबह सात बजे, अपना बहुमत सिद्ध करते हुए जी० एम० शाह और उनके समर्थकों ने यह मांग की थी कि विधान सभा रद्द करने के सन्दर्भ में मैं मुख्यमन्त्री का कोई भी सुझाव स्वीकार न करूं। वास्तव में एक मुख्यमन्त्री जिसका अल्पमत व्यक्तिगत उपस्थिति से ही नहीं बल्कि लिखित तौर पर सिद्ध हो चुका था और जिसने स्वयं इस सन्दर्भ में अपनी स्थिति स्वीकार कर ली थी, उस मुख्यमन्त्री की सलाह को प्रमाणिक नहीं माना जा सकता था। अगर डॉ० अब्दुल्ला और उनका मन्त्रिमंडल एक दिन पहले मेरे पास आया होता तो स्थिति बिल्कुल अलग होती। दूसरी बात, 27 जनवरी, 1984 को बी० के० नेहरू द्वारा लिखे गए पत्र की पृष्ठभूमि हमेशा की तरह मौजूद थी। इस पत्र का हवाला मैं बाद में दूंगा। इस पत्र के अन्तिम भाग में बी० के० नेहरू ने इन शब्दों में साफ-साफ कह दिया था : "मैं यह कहने के लिए लिख रहा हूं कि यदि ऐसा प्रतिनिधि दल इन परिस्थितियों में मेरे पास आया होता और मैं लोगों को गिन कर एक प्रक्रिया जिसको मैंने हमेशा दृढ़तापूर्वक नकारा है—इस बात के लिए निश्चिन्त हो जाता—कि आपने बहुमत खो दिया है—तो मेरे पास आपकी सरकार को बर्खास्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता क्योंकि सभी उचित संवैधानिक क्रियाएं पहले ही विफल की जा चुकी हैं।"

मैंने केविनेट और गृह सचिव से एक बार फिर सम्पर्क किया। दोनों ने मुझे सूचना दी कि मेरे संकेत पर प्रधानमंत्री से बातचीत हो चुकी है और वे पूर्णरूप से मेरी प्रार्थना से सहमत हैं। उन्होंने राजनैतिक मामलों से संबद्ध मंत्रिमण्डलीय उप समिति की विशेष बैठक बुलायी है जिसके बाद राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त की जाएगी और मुझे भेज दी जायेगी। केविनेट सेक्रेटरी के अनुसार यह सहमति मुझे एक बजे तक मिल जाएगी। इसके तुरन्त बाद मैंने जी० एम० शाह और डी० डी० ठाकुर जो प्रतीक्षा कक्ष में मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे, बुलाया और बताया कि मेरे विचार में इस वक्त गवर्नर शासन ही सबसे अच्छा विकल्प है। उन्होंने कहा कि यह अच्छा नहीं होगा और वे बाहर सलाह मशविरा करने चले गए।

केविनेट सचिव द्वारा दी गई सूचना ने मुझे तनाव मुक्त कर दिया। मुख्य सचिव, मीर नसरुल्लाह की मदद से मैंने प्रेस नोट तैयार करना शुरू कर दिया जो गवर्नर शासन लागू हो जाने पर जारी किया जाना था। उसमें मुझे गवर्नर शासन की वजह बतानी थी और जनता से नए प्रशासन से पूरे सहयोग की अपील करनी थी।

चूंकि मुख्यमंत्री वायदे के अनुसार पत्र भेजने में देर कर रहे थे, मैंने मुख्य सचिव से उनके घर जाकर स्थिति को देखने के लिए कहा। बहुत देर बाद, मुख्य सचिव एक पत्र लेकर लौटे जो हैरानी की बात थी, उस पत्र से बिल्कुल अलग था जिस पर मुख्यमंत्री से पहले मेरी सहमति हुई थी। मुझे विश्वास हो गया कि मुख्यमंत्री को उनके कुछ अति कुशल सहयोगियों ने मार्गदर्शन या यूं कहिए कि दिग्भ्रमित किया है। यह मुद्दा संवैधानिक बारीकी का नहीं बल्कि राजनैतिक निर्णय और स्पष्ट विचारधारा का था। डॉ० फारूख अब्दुल्ला की बजाय जी० एम० शाह को गवर्नर शासन से ज्यादा नुकसान होना था। अगर उनके समर्थक केवल सत्ता पाने के लिए ही इकट्ठे हुए थे तो वे टूट जाते। इस बात में मुझे ज़रा भी संदेह नहीं था कि यदि डॉ० फारूख अब्दुल्ला को जम्मू काश्मीर संविधान की ज़रा भी जानकारी होती और उन्होंने अपने दिमाग का इस्तेमाल किया होता तो वे एक सही निश्चय पर पहुंच जाते और वायदे के अनुसार मुझे पत्र भेज देते और इस तरह उन्हें बर्खास्त करने का अवांछनीय काम मुझे न करना पड़ता।

डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने जो पत्र मुख्य सचिव के हाथ मुझे भिजवाया था, वह इस प्रकार था—

"महामहिम,

मैंने 2 जुलाई, 1984 को लिखे गये आपके पत्र न० जी० एस० 1 (पी० ए० जी०) और संलग्न प्रतियां प्राप्त कीं। मैंने अपने मंत्रीमण्डल के सहयोगियों के साथ इस बारे में सलाह मशविरा किया है और आपको सूचित करना चाहता हूं कि प्रजातांत्रिक परम्परा के अनुसार विश्वास मत खो देने के प्रश्न की परीक्षा विधान सभा में ही होनी चाहिए। वास्तव में हस्ताक्षरित सदस्यों द्वारा महामहिम को सम्बोधित इस पत्र में 28 जून, 1984 को आपको सम्बोधित एक अन्य पत्र का हवाला दिया गया है जिसकी विषय-वस्तु मुझे मालूम नहीं है। बहरहाल मुझे नहीं लगता कि आपको दल-बदल विरोधी कानून के बारे में नहीं पता जिसके अनुसार राज्य में पार्टी आदेश का अतिक्रमण करने पर एक सदस्य को अयोग्य करार कर दिया जाता है और वैसे भी जो कुछ उन्होंने लिखा है वह कोई अर्थ

नहीं रखता। केबिनेट और स्वय अपनी तरफ से मैं आपको यह सलाह देता हूं कि तुरन्त विधान सभा का सत्र बुलाया जाए ताकि मैं अपना बहुमत सिद्ध कर सकूं।

अपने पत्र के दूसरे भाग मे आपने उस बातचीत का हवाला दिया है जो आज [illegible] 92 के अन्तर्गत [illegible] की बात की [illegible] धान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने में असमर्थ हो जाऊं। मैं, इसलिए एक बार फिर मैं यह कहूंगा कि विधान सभा का सत्र बुलवाया जाए ताकि अगर मैं सभा का विश्वास मत प्राप्त करने मे असमर्थ हो जाऊ तो राज्य के संविधान के अन्तर्गत उपलब्ध विकल्पों पर हम बातचीत कर सकें।

आदर सहित,

आपका

डॉ० फारूख अब्दुल्ला"

डॉ० अब्दुल्ला जानते थे कि सुबह मैं यह स्पष्ट कर चुका था कि ऐसे गम्भीर और खतरनाक माहौल मे मैं विधान सभा की बैठक नही बुला सकता और सभा गवर्नर शासन के कुछ दिनो बाद कानून व व्यवस्था स्थापित होने गली-मुहल्लों की हिंसा तथा प्रदर्शनो की सम्भावनाओ के समाप्त होने पर ही बुलाई जा सकती थी।

इस पत्र के संदर्भ मे कुछ महत्त्वपूर्ण चीजें ध्यान देने योग्य हैं। पहली, यह पत्र तब आया जब मैंने डॉ० फारूख अब्दुल्ला से त्यागपत्र के लिए कहा था और जब वे गवर्नर शासन लागू करने के मेरे विचार पर उत्साहपूर्वक सहमत हो गये थे। वे इस बात पर भी राजी हो गए थे कि एक शांतिपूर्ण वातावरण स्थापित हो जाने और ऐसे प्रशासनिक माहौल जो इसके प्रति जनता के विश्वास को बढाए और प्रशासनिक मशीनरी को टूटने का कोई खतरा न पैदा करे—ऐसे माहौल के बन जाने के बाद ही तमाम मुद्दों को सुलझाया जाए।

दूसरी बात, इस पत्र मे यह स्वीकारा गया कि उनकी पार्टी के 12 एम० एल० ए० उनके विरुद्ध हैं और समर्थन वापस ले चुके हैं। इसलिए राजभवन में केवल लोगों की गिनती से ही यह निश्चित होगा—यह कहना पूर्णतय गलत था। दस्तावेजी प्रमाण और साथ मे उनका अपना कथन कि 12 एम० एल० ए० दल बदल चुके हैं—इन बातो ने गवर्नर के लिए राजभवन मे गिनती करने का कोई सवाल ही नहीं छोडा था। जी० एम० शाह के दावे और दूसरी पार्टी के समर्थन तथा स्वीकृति से मामला लगभग साफ था। जहा तक विधान सभा सदस्यों को अयोग्य सिद्ध करने का सवाल या यह केवल राज्य का हाई कोर्ट स्थानीय कानून के तहत ही कर सकता था। जब तक हाईकोर्ट ऐसा करता, मुझे उनको विधान सभा सदस्य की तरह ही लेना था। यहा तक कि दूसरे पहलू से भी कानून से यह स्पष्ट था कि इन सदस्यो ने अयोग्य होने लायक ऐसा कोई काम नहीं किया था। बाद मे जम्मू काश्मीर हाई कोर्ट ने भी यह घोषित कर दिया कि ये सदस्य दल बदलू नहीं थे बल्कि नेशनल कांफ्रेंस का ही विघटन हुआ था।

तीसरी बात, डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने सुबह गवर्नर शासन लागू करने पर

सहमति देने के बाद, इस संदर्भ में कोई प्रत्यक्ष एवं सीधा जवाब नहीं दिया था। इसकी बजाए उन्होंने इस बात का अस्पष्ट हवाला दिया और कहा कि यह बात-चीत में उठे बहुत से विकल्पों में से एक था। उन्होंने विधान सभा का सत्र बुलाने के लिए कहा और कहा कि संविधान में उपलब्ध अन्य विकल्पों पर बाद में बात की जा सकती है। इस सम्बन्ध में यह सवाल उठता है कि वे अपना बहुमत कैसे सिद्ध कर सकते थे जब उस समय वे अल्पमत में थे। क्या वे इस बीच इन तथाकथित दल-बदलू सदस्यों का समर्थन वापस जीतना चाहते थे या इन सदस्यों को मत देने की अनुमति न देने या कोई संदिग्ध साधन अपनाने के लिए (स्पीकरों) अध्यक्ष के पद का इस्तेमाल करते या फिर कुछ विशेष विधान सभा सदस्यों के नाम मंत्री बनाए जाने के लिए प्रस्तावित करते।

चौथी बात, डॉ० अब्दुल्ला को मालूम होना चाहिए था कि जब उन्हें त्याग-पत्र देने के लिए कहा जा चुका है तो उन्हें विधान सभा को भंग करने की मांग करने का कोई अधिकार नहीं था। न ही यह करना मेरे लिए उचित होता। विधान सभा भंग करना हमेशा एक अपवादपूर्ण हल होता है। एक विख्यात संविधान विशेषज्ञ, सर जॉन मेरियट का कहना है, "किसी भी परिस्थिति में केबिनेट को यह अधिकार नहीं है कि वह राष्ट्रपति से संसद भंग करने की मांग करे।" डॉ० यूजीन ए० फोरसे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'संसद भंग करने की राजकीय शक्ति' में लिखते हैं, "मंत्रीमंडल विशेषकर प्रधानमंत्री के अधिकारों में इतनी अधिक वृद्धि यह सवाल खड़ा करती है कि क्या विलय के लिए विवश करने या इसे अस्वीकार कर देने की राष्ट्रपति की शक्ति, 'जनता के नेता' जो उस समय सत्ता में है, उसकी तानाशाही को रोकने के सुरक्षित उपायों में से एक नहीं है? ब्रिटिश संविधान का उद्देश्य एक ऐसा 'जनमत लोकतंत्र' होना नहीं था, जिसमें संसद का अस्तित्व किसी भी समय सत्तारूढ़ सरकार द्वारा संसद को भंग करने की धमकी के प्रभाव में रहे। इस तरह की व्यवस्था को निश्चित रूप से "संसदीय लोकतंत्र' नहीं कहा जा सकता और कम से कम यह सवाल तो उठाया ही जा सकता है कि क्या इसे लोकतांत्रिक कहलाए जाने का कोई अधिकार है ?"

दो गवर्नरों को नीचा दिखाना

डॉ० फारूख अब्दुल्ला के इस असंगतिपूर्ण व्यवहार ने मुझे परेशान कर दिया। यह वह व्यक्ति था जिसे मैं इतनी कठिन परिस्थितियों में न्याय देना चाहता था। और वही मुझे निराश कर रहा था। अपनी लघु पुस्तिका "मेरी बर्खास्तगी" (माई डिसमिसल) के पृष्ठ 12 पर डॉ० अब्दुल्ला लिखते हैं, "2 जुलाई, 1984 को दिल्ली ने गवर्नर द्वारा प्रस्तावित गवर्नर शासन को अस्वीकार कर दिया।" यहां से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि मैं गवर्नर शासन के पक्ष में था। केन्द्रीय सरकार और गवर्नर एक षड़यन्त्र में कैसे शामिल हो सकते हैं यदि वे परस्पर विरोधी उद्देश्यों के लिए काम करें और अगर गवर्नर की सलाह केन्द्रीय सरकार द्वारा अस्वीकार कर दी जाएं? डॉ० फारूख अब्दुल्ला के अस्थिर स्वभाव और प्रशासनिक मशीनरी तथा संवैधानिक नियमों पर उनका जो ऊपरी नियन्त्रण

था—वही असली परेशानी थी। अगर डॉ० अब्दुल्ला मेरे साथ किये गए निर्णय पर दृढ़ रहते तो मैंने राष्ट्रपति / केन्द्रीय सरकार पर गवर्नर शासन लागू करने के लिए दबाव डाला होता और पूरी संभावना थी कि केन्द्रीय सरकार सहमत भी हो जाती। जब वायदे के अनुसार मुख्यमंत्री की पुष्टि नहीं आई और जो पत्र भेजा गया वह सहमति के कतई विपरीत था—तो मुझे केन्द्रीय सरकार के सामने शर्मिन्दा होना पड़ा। केन्द्रीय सरकार के स्तर पर डॉ० अब्दुल्ला के निन्दकों ने सवाल किया, "क्या हमने पहले नहीं कहा था कि उन पर कतई विश्वास नहीं किया जा सकता?" गवर्नर शासन लागू करने का मेरा आधारभूत उद्देश्य था। सर्वप्रथम संस्थात्मक ढांचे को ठीक करना और फिर बहुमत वाले मुख्यमंत्री के हाथ प्रशासन को सौंप देना।

मैं अकेला व्यक्ति नहीं था जिसे डॉ० अब्दुल्ला ने निराश किया हो। उन्होंने बी० के० नेहरू के साथ भी यही किया था। विधान सभा की कार्यवाही को न्याय पूर्ण तरीके से चलाने और सामान्य प्रक्रियाओं का अनुकरण करने का वायदा करके डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने अपने वादे अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम किया। और 27 जनवरी, 1984 को क्रुद्ध बी० के नेहरू ने उन्हे यह लिखा—

"जैसा कि आप भलीभांति जानते हैं कि पिछले कई हफ्तों से नेशनल कांफ्रेंस के दल-बदलने को तैयार एम० एल० ए० मुझे बार-बार सुझाव दे रहे हैं कि जब भी उनमे से 13 लोगों का प्रतिनिधि मंडल आपके और आपके मंत्री-मंडल पर अपना अविश्वास प्रकट करने और कांग्रेस (ई)विधान सभा दल के 26 सदस्यों के समर्थन के साथ मेरे पास आएगा तो मुझे आपकी सरकार को बर्खास्त करके नए मुख्यमन्त्री को नियुक्त करना चाहिए जिसे कांग्रेस पार्टी और समर्थन वापिस लेने को तैयार सदस्यों (जो फिर बहुमत में हो जाएंगे) का विश्वास प्राप्त हो।

मैंने उन्हें लगातार यह बताया है कि मैं ऐसा नहीं करूंगा क्योंकि अविश्वास प्रकट करने का उचित स्थान विधान सभा है। मैंने कहा कि इसके बजाए, मैं आपको यह सलाह देने के लिए कहूंगा कि मुझे शीघ्र ही विधान सभा का सत्र बुलाना चाहिए ताकि आप पर अविश्वास प्रस्ताव उचित रूप से रखा जा सके, उस पर विवाद किया जा सके और फिर मतदान से सिद्ध किया जा सके।

• लेकिन वे लोग दो कारणों से इस प्रक्रिया का पालन करने में हिचकिचा रहे थे। पहले तो उन्हे भय था कि उनके मेरे पास आने और विधान सभा में मतदान होने के अंतराल मे आपके आदेशानुसार पुलिस द्वारा उनके घर जला दिए जाएंगे और उनके परिवारों पर हमला किया जाएगा। दूसरी बात, उन्हें डर था कि सभा के नियमों को इस तरह तोड़ा-मरोड़ा जाएगा कि स्वतंत्र और निष्पक्ष बहस या मतदान होने ही न पाए। मैं इन दोनों स्तरों पर पैदा हुए डर को भली-भांति जानता था फिर भी मुझे लगा कि संवैधानिक मर्यादा सर्वोपरि है और एक जोखिम ले लेना चाहिए।

आपसे तो नहीं, लेकिन मुझे पता चला कि इस सुबह गवर्नर का सम्बोधन सुनने के बाद जैसे ही सभा का सत्र शुरू हुआ, जब केवल रोजमर्रा की कार्यवाही का निश्चय ही हो रहा था, अपने स्वयं पर विश्वास व्यक्त करते हुए प्रस्ताव रख दिया, कि सामान्य नियमों के अतिक्रमण पर ऐसे कामों के लिए आवश्यक 7 दिन

का नोटिस नहीं दिया गया और फिर बिना किसी बहस के तुरन्त मतदान पर जोर दिया गया और मतदान तत्काल हो भी गया जबकि कांग्रेस पार्टी विरोध में सभा से जा चुकी थी। जितने सदस्य सभा में बचे उन्होंने बिना किसी विरोध के विश्वास प्रस्ताव पारित कर दिया।

नियमों के अनुसार जब तक वर्तमान सत्र चलता है सभा में अविश्वास प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता। मैं यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि इस परिस्थिति में यदि और जब भी ऐसा कोई प्रतिनिधि मंडल मेरे पास आता है और मैं केवल उन्हें गिनकर विश्वस्त हो जाता हूं—एक प्रक्रिया जिसको मैंने हमेशा दृढ़तापूर्वक नकारा है—कि आपने बहुमत खो दिया है तो मेरे पास आपकी सरकार को बर्खास्त करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं बचता क्योंकि सभी उचित संवैधानिक क्रियाएं पहले ही अनुचित रूप से विफल की जा चुकी हैं।"

यह पत्र एक-दूसरे संदर्भ में भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें गवर्नर का स्पष्ट संकेत है कि उनके पास डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मंत्रीमंडल का भाग्य निश्चित करने के लिए सदस्यों की गिनती के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि मैंने दोनों पार्टियों के दस्तावेजों पर निर्भर होकर गवर्नर शासन लागू करने के विकल्प का उपयोग करने का निश्चय किया था। लेकिन अगर मैंने केवल 'राजभवन में लोगों की गिनती' ही की होती, तो भी मैं पूर्व गवर्नर बी० के० नेहरू के उपलिखित पत्र के अनुसार मेरा काम न्याय संगत ही होता।

मुझे हैरानी हुई जब रात तीन बजे के कुछ ही देर बाद केबिनेट सचिव ने मुझे इत्तिला दी कि उप-समिति ने जम्मू काश्मीर संविधान के सेक्शन 92 के तहत राष्ट्रपति की सहमति न देने का फैसला किया है। सुबह की सोच में यह परिवर्तन किस तरह आया, मैं निश्चित तौर पर कुछ नहीं कह सकता। शायद यह कुछ आधारभूत सच्चाइयों को उचित रूप से न समझ पाने की वजह से हुआ हो; शायद यह केन्द्रीय सरकार पर कुछ निहित स्वार्थों के दबाव का नतीजा था। शायद यह मंत्रीमण्डलीय उप-समिति और प्रधानमंत्री के फारूख अब्दुल्ला की कायापलट पर आए गुस्से का परिणाम हो; या शायद यह इन सभी बातों की वजह से हुआ।

मेरे प्रयासों के जो परिणाम निकले उनसे मैं निराश हो गया। संवैधानिक रूप से जी० एम० शाह को मुख्यमंत्री की शपथ दिलाने के अतिरिक्त मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। डॉ० अब्दुल्ला से त्यागपत्र देने के लिए मैंने पहले ही कह दिया था। मेरे दिमाग में एक और बात अटकी थी कि शाह सरकार और प्रशासनिक ढांचे में कोई तारतम्य नहीं होगा और एकतरफा प्रशासन की जकड़ ढीली होगी। बहरहाल, जहां तक मेरा सवाल था, मेरे दिमाग में यह बिल्कुल स्पष्ट था कि अगर निर्णय लेने के सारे मोर्चे मेरे हाथ में होते तो मैंने 2 जुलाई, 1984 से गवर्नर शासन लागू कर दिया होता।

चूंकि राज्य में सत्ता शून्यता रखना खतरे से खाली नहीं था, मैंने जी० एम० शाह को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। मैंने उनसे यह विश्वास लिया कि एक महीने के भीतर वे सत्र बुलाएंगे। जी० एम० शाह और डी० डी० ठाकुर के थके और पीले पड़े चेहरों पर एकाएक खुशी की लहर दौड़ गई। वे तुरन्त सत्ता

संभालने के लिए तैयार थे।

शपथ समारोह शाम 5.30 बजे होना निश्चित हुआ। शाह और उनके समर्थकों द्वारा शीघ्र ही भीड़ इकट्ठी कर ली गई। उन्होंने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की कि उन्हें लोकप्रिय समर्थन प्राप्त है और लोगों को डॉ० अब्दुल्ला के जाने की खुशी है। मैंने तत्काल जी० एम० शाह को सावधान किया कि वे ऐसा कुछ भी नहीं करें जिससे कोई जवाबी प्रतिक्रिया भड़के। मैंने उन्हें यह भी बताया कि अपने राजनैतिक विरोधियों से उन्हें आदरपूर्वक व्यवहार करना होगा और किसी को भी बिल्कुल परेशान नहीं किया जाना चाहिए तथा एक सद्भावपूर्ण एवं शांतिपूर्ण वातावरण बनाने के लिए प्रयास करना होगा।

दो बार बहुमत सिद्ध करना

यह कहना अनुचित होगा कि गवर्नर ने जी० एम० शाह को बहुमत सिद्ध करने के लिए एक महीने का समय दिया था, जैसा कि फारूख अब्दुल्ला ने आरोप लगाया। उनका बहुमत तो पहले ही सिद्ध था। मैंने उनसे एक महीने में विधान सभा सत्र बुलाने और उस समय के दौरान विश्वास मत हासिल करने के लिए कहा था; दूसरे शब्दों में एक बार फिर अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा था। डॉ० फारूख अब्दुल्ला को जवाब में भेजे गए दिनांक 7 जुलाई के पत्र में मैंने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था। उसी दिन डॉ० अब्दुल्ला ने भी पत्र लिखा था। दोनों पत्र नीचे दिये जा रहे हैं। डॉ० अब्दुल्ला के पत्र में लिखा था—

7 जुलाई, 1984

"प्रिय गवर्नर साहिब,

2 जुलाई, 1984 को विधान सभा के पार्टी से निकले 12 सदस्यों के नए नेता की शपथ की घोषणा के साथ यह भी घोषणा की गई थी कि 1 नए नेता के बहुमत की परीक्षा के लिए सभा का सत्र बुलाया जाएगा। आज 7 जुलाई, 1984 है और अभी तक कोई भी सूचना जारी नहीं की गई है जिससे जाहिर है कि विधान सभा का सत्र बुलाने में एक महीने से अधिक देर लग जाएगी। इस अवस्था में दल-बदलू सदस्य मंत्रीमंडल के विशेष सदस्यों और अन्य लोगों, जिन्होंने उनकी जनता विरोधी गतिविधियों को समर्थन देने से इंकार कर दिया है, उनकी आधारभूत ईमानदारी को तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। आपने लोकतांत्रिक व्यवहार के नियमों के विरुद्ध तत्काल सभा-सत्र बुलाने की मेरी सलाह जिन कारणों से नहीं मानी वे आप ही जानते होंगे। इसके स्थान पर आपने एक नए व्यक्ति को महीने के भीतर सभा का विश्वास सिद्ध करने की जिम्मेदारी के साथ नियुक्त कर दिया, जिसका पालन भी वह नहीं कर रहा।

समझा जाता है कि राज्य और देश की कानून व्यवस्था में लोगों का विश्वास पुनर्जागृत करने के विषय में बातचीत करते हुए अखिल भारतीय विपक्ष ने भी यह मुद्दा उठाया था। मुझे बताया गया है कि आपने अखिल भारतीय प्रतिनिधि-मंडल को विश्वास दिलाया है कि सही वक्त पर विधान सभा सत्र बुलाने के लिए कदम उठाए जाएंगे—समय, जिसकी सीमा 2 जुलाई, 1984 से तीस दिन तक

निश्चित कर दी गई है। मैं निवेदन करता हूं कि यह वायदा जल्द-से-जल्द पूरा किया जाए।

आदर सहित,

आपका,
डॉ० फारुख अब्दुल्ला"

मेरा जवाब था—

"प्रिय मुख्यमंत्री,

दिनांक 7 जुलाई, 1984 को जी० एम० शाह द्वारा अपनी सरकार का बहुमत सिद्ध करने के लिए विधान सभा सत्र बुलाने के संदर्भ में लिखे गए आपके डी० ओ० पत्र संख्या 11/NC/7/84/PP के लिए धन्यवाद।

मैं आपको फिर विश्वास दिलाना चाहूंगा कि लिखित तौर पर श्री जी० एम० शाह को सरकार बनाने के लिए इस शर्त पर आमंत्रित किया गया था कि वे पद संभालने के एक महीने के भीतर विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करेंगे।

मैंने आपके पत्र की एक प्रति मुख्यमंत्री के पास पहुंचा दी है ताकि यदि वह कार्यवाही अभी तक नहीं हुई तो शुरू कर दी जाए।

आदर सहित,

आपका,
जगमोहन"

झूठी मान्यताएं : मौन षड्यन्त्र

यह स्पष्ट रहना चाहिए कि मेरे निर्णय की आलोचना राजनैतिक रूप से प्रेरित ही नहीं बल्कि झूठी मान्यताओं पर भी आधारित थी। यह वाकई हैरानी की बात है कि संसद के दोनों सदनों में गृहमन्त्री सहित न तो किसी केन्द्रीय मन्त्री ने, न ही नेशनल कान्फ्रेंस (फारुख) के किसी प्रतिनिधि ने, जो यह अच्छी तरह जानते थे, कि मैंने संवैधानिक रूप से गवर्नर शासन का प्रस्ताव किया था और जम्मू काश्मीर संविधान के अनुसार राष्ट्रपति से सहमति मांगी थी—इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का स्पष्ट वर्णन भी नहीं किया। क्या इसकी नैतिक और संवैधानिक रूप से कोई सफाई दी जा सकती है ? क्या यह रियायत और विशेषाधिकार का सवाल नहीं खड़ा करती ? क्या मन्त्री को महत्त्वपूर्ण तथ्य छिपा लेने का अधिकार है ?

मैं मौन रूप से किए गए इस षड्यन्त्र से आहत हुआ पर कुछ नहीं कर सकता था। राज्य में हिंसा की विस्फोटक स्थिति रोकने के मूल उद्देश्य में मेरी सफलता ही उस वक्त मेरी सबसे बड़ी सान्त्वना थी। सौभाग्यवश, जानबूझकर तथ्यों को विगाड़ने के बावजूद प्रेस का एक वर्ग स्थिति के सार को समझ गया। मसलन 10 जुलाई, 1984 समाचार पत्र 'पेट्रियट' के सर्वप्रथम सम्पादकीय "काश्मीर आग की चपेट में क्यों नहीं आया" में लिखा था।

"शुरू में ही इस बात पर जोर देना जरूरी है कि 2 जुलाई की बेहद नाजुक स्थिति को गवर्नर जगमोहन ने विलक्षण कुशाग्रता, सक्षमता, संवेदना और

दूरदर्शिता से नियन्त्रित किया। जिस पल पर्दा उठा, वे सभी वर्गों का विश्वास जीतने और उन्हें ये बतलाने में विजयी हुए कि वे निष्पक्ष व न्यायपूर्ण तरीके से काम कर रहे हैं। उन्होंने एक जुलाई की मध्यरात्रि को जी० एम० शाह व उनके 13 समर्थकों से मिलने के लिए इंकार कर दिया। अगले सुबह जब वे लोग उनके सामने यह ज्ञापन लेकर उपस्थित हुए कि उन सभी सदस्यों ने डॉ० अब्दुल्ला से समर्थन वापिस ले लिया है तो उन्होंने इस बात पर ज़िद् की कि हरेक व्यक्ति उनके सामने अपने हस्ताक्षर करे। एक क्षण खोए बिना, उन्होंने डॉ० अब्दुल्ला को बुलाया, उन विधान सभा सदस्यों द्वारा दिए गए पत्र की एक प्रति उन्हें दी, मुख्य मन्त्री को बताया कि वे बहुमत खो चुके हैं और इस स्थिति में केवल दो विकल्प उनके पास हैं, या तो वे जी० एम० शाह को सरकार बनाने का निमंत्रण दें या गवर्नर शासन लागू कर देते। व्यक्तिगत तौर पर डॉ० अब्दुल्ला ने गवर्नर शासन का समर्थन किया, लेकिन दूसरे ही क्षण अपने सहयोगियों से मशविरा करने का समय मांगा। गवर्नर सहमत हो गए पर साथ-ही-साथ उन्होंने मुख्यमन्त्री को एक औपचारिक पत्र भी भेजा कि वे बहुमत खो चुके हैं और उसमें अपना गवर्नर शासन का सुझाव भी दर्ज किया।

डॉ० अब्दुल्ला ने इस बात को चुनौती नहीं दी कि 13 विधान सभा सदस्यों ने समर्थन वापिस ले लिया है। हालांकि उन्होंने इन सदस्यों को दल-बदलू ही कहा है। न ही उन्होंने इस बात को नकारा है कि गवर्नर शासन का सुझाव उन्हें दिया गया, बल्कि खुद कहा है कि यह विकल्पों में से एक था। यह स्पष्ट था कि एक मुख्यमन्त्री जो बहुमत खो चुका है, उसके सुझाव का पालन करना जरूरी नहीं है। जम्मू काश्मीर के दल-बदल कानून के अनुसार केवल हाई कोर्ट ही किसी विधान सभा सदस्य को दल-बदलू घोषित कर सकता है।"

घृणित इरादे : अध्यक्ष की भूमिका

डॉ० फारूख अब्दुल्ला और उनके समर्थक एक दुष्टतापूर्ण खेल-खेल रहे थे, यह अध्यक्ष वली मोहम्मद इटू के कार्यकलापों से स्पष्ट हो गया। जम्मू और काश्मीर राज्य में दल-बदल विरोधी कानून के अनुसार, नेशनल कान्फ्रेंस पार्टी द्वारा शिकायत दर्ज करने पर अध्यक्ष ने इन 12 सदस्यों की स्थिति के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए इस केस को हाई कोर्ट के पास भेज दिया। सभी सम्बन्धित पार्टियों की सुनवाई के बाद चीफ जस्टिस ने 30 जुलाई 1984 को अपने निर्णय में कहा, "मेरा मानना है कि जनता प्रतिनिधित्व एक्ट के सेक्शन 24-जी के तहत ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे उन्हें अयोग्य ठहराया जा सके। तदानुसार इस केस का जवाब भी दिया जाता है।"

कोर्ट ने स्पष्ट कर दिया कि यदि कोई पार्टी सचेतक है तो उसे नीति के अनुसार होना चाहिए न कि नेतृत्व के कथन के अनुसार। उसने दावा किया कि एक विधान सभा के सदस्य द्वारा पार्टी के नेतृत्व से समर्थन वापिस लेने पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसने पार्टी की सदस्यता छोड़ दी है।

जब चीफ़ जस्टिस अपना फैसला सुना रहे थे तो अध्यक्ष ने, सभी नियमों के विरुद्ध केस को वापिस लेने का भद्दा प्रयास किया। इस सम्बन्ध में चीफ जस्टिस

ने कहा कि, "हाई कोर्ट विवरणों का कोर्ट है और इसके सामने रखे गए मामले को कोई भी पार्टी इच्छानुसार वापिस नहीं ले सकती।"

अध्यक्ष इससे भी आगे गए और औचित्य की सारी सीमाएं तोड़ दीं। जम्मू काश्मीर संविधान के नियमों, दल-बदल विरोधी कानून के नियमों तथा हाई कोर्ट के निर्णय का अनादर करते हुए उन्होंने स्वयं उन 12 विधान सभा सदस्यों को अयोग्य घोषित करने का आदेश पारित किया और उनके स्थान रिक्त घोषित कर दिए।

संवैधानिक और नैतिक तौर पर उससे बुरा क्या हो सकता था? अध्यक्ष ने डॉ० फारूख अब्दुल्ला से सांठ-गांठ करके जानबूझ कर बिल्कुल अवैध आदेश जारी कर दिया। उन्होंने इस बात के लिए जरा भी आदर नहीं दिखाया कि उन्होंने स्वयं इस केस को हाई कोर्ट में भेजा था। ये उन लोगों के नियम व सिद्धान्त थे जो प्रजातांत्रिक परम्पराओं के बारे में जोर-जोर से चिल्ला रहे थे और मेरे निर्णय की निन्दा कर रहे थे जबकि उन्हें मालूम था कि उन स्थितियों में वह 'दूध-का-दूध' जैसा निर्णय था और संवैधानिक, प्रशासनिक तथा नैतिक रूप से थोड़े समय के लिए गवर्नर शासन लागू करने से अच्छा कोई उपाय नहीं हो सकता था।

31 जुलाई को सुबह 10 बजे जैसा कि निश्चित था, विधान सभा का विशेष सत्र आरम्भ हुआ। मैंने सभा के कामों को देखने के लिए अपने सचिव को नियुक्त किया। सभा को तीन काम करने थे—(1) जी० एम० शाह के नेतृत्व वाले मन्त्री मण्डल का विश्वास मत प्रस्ताव, (2) अध्यक्ष श्री वली मोहम्मद इटू के विरुद्ध अविश्वास मत प्रस्ताव, (3) उपाध्यक्ष का चुनाव। क्योंकि पूरे दिन की कार्यवाही में अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव भी था और पिछले दिन उनके व्यवहार ने उनकी नीयत पर कोई सन्देह नहीं छोड़ा था, इसलिए सभा के नेता और शिक्षा मन्त्री, अली मोहम्मद नायक ने अध्यक्ष से प्रार्थना की कि सबसे पहले उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव को ही लिया जाए या फिर वे स्वयं चेयरमेन पेनल के सदस्य की नियुक्ति के लिए पद त्याग दें ताकि वह सदस्य सभा की कार्यवाही की अध्यक्षता कर सके। क्योंकि अध्यक्ष ने प्रार्थना मानने से इंकार कर दिया इसलिए सभा के 43 सदस्य नेता के प्रस्ताव के समर्थन में उठ खड़े हुए और अध्यक्ष को पद से हटा दिया गया। चेयरमेन पेनल के सदस्य रंगिल सिंह ने अध्यक्षता की। नेशनल कान्फ्रेंस (फारूख) के 31 सदस्य अध्यक्ष को पदच्युत करने के विरोध में सभा से बाहर चले गए।

अध्यक्ष के विरोध में अविश्वास प्रस्ताव पहले लिया गया जिसके समर्थन में 42 सदस्य और विरोध में कोई नहीं था। तब सभा ने मंगत राम शर्मा को नया अध्यक्ष चुना जिसने सभा की शेष कार्यवाही की अध्यक्षता की। जी० एम० शाह मन्त्री मण्डल पर विश्वास मत का प्रस्ताव एकमत से पारित हो गया। सभा के नेता के सुझाव पर सभा ने गुलाम दीन मलिक को नया उपाध्यक्ष चुना। नए अध्यक्ष ने घोषणा की कि पिछले दिन जारी किए गए आदेश को उन्होंने वापिस ले लिया है जिसके अनुसार 12 विधान सभा सदस्यों को जम्मू काश्मीर विधान सभा का सदस्य होने के अयोग्य सिद्ध कर दिया था। क्योंकि अध्यक्ष के अनुसार ये आदेश गलत, संविधान के प्रतिकूल और भूतपूर्व अध्यक्ष के कहने के अनुसार ही लिए गए हाई कोर्ट के निर्णय के विपरीत था।

प्रक्रिया की तकनीक और व्यवहारिक नियमों के अतिरिक्त बहुमत में कौन है—इसके सवाल का जवाब एक बार फिर साफ-साफ मिल गया और विधान सभा सदस्यों के योग्य या अयोग्य होने का मुद्दा भी हाई कोर्ट के फैसले के अनुसार निश्चित हो गया। अध्यक्ष और डॉ० फारूख का दल अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर शक्ति परीक्षा को टाल रहे थे — यही तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि उनका दल अल्पमत में था और वे अध्यक्ष पद का दुरुपयोग करना चाहते थे।

परम्पराएं कहां हैं ?

जैसा कि ऊपर कहा गया है, उस सही स्थिति को ध्यान में रखते हुए, परम्पराओं के अतिक्रमण के लिए की गई आलोचना को नकारने की मुझे अब जरूरत नहीं है। लेकिन मुझे ताज्जुब था कि भारतीय निर्णयों के सन्दर्भ में आलोचक किन परम्पराओं के बारे में बात कर रहे थे? डिसे की परिभाषा के अनुसार संविधान की परम्पराएं उन "प्रथाओं, कार्यों, नियमों एवं निर्देशों में निहित हैं, जिन्हें अदालतों में मान्यता नहीं मिलती, न ही उन्हें अदालतें लागू करती हैं।" लेकिन —"वे कानून नहीं, संवैधानिक या राजनैतिक आचार का स्वरूप बनाते हैं।" जहां तक राज्यपालों के निर्णयों का सवाल है, ऐसी परम्पराएं कहां हैं?

यदि हम संविधान लागू होने के बाद में राज्यपालों द्वारा लिए गए निर्णयों का विश्लेषण करें तो शायद ही हमें एक निश्चित स्वरूप मिले। विभिन्न गवर्नरों ने विभिन्न निर्णय लिए हैं, यहां तक कि तब भी जब परिस्थितियां एक-सी रही थी। उदाहरण के लिए 1952 में ट्रावनकोर कोचीन कम्पनी के राजप्रमुख ने उस मुख्यमन्त्री के कहने पर, जो बहुमत खो चुका था, विधान सभा को भंग कर दिया था। लेकिन इन्ही परिस्थितियों में 1967 में पंजाब के गुरनाम सिंह को, 1968 में उत्तर प्रदेश में चरण सिंह को 1969 में मध्य प्रदेश के राजा नरेश चन्द्र सिंह को, 1971 में उड़ीसा के सुखदेव को तथा 1971 में गुजरात के हितेन्द्र देसाई को विधान सभा भंग करने से इन्कार कर दिया गया था। जब मुख्य मन्त्री पद के लिए विभिन्न दावेदार रहे तब भी गवर्नरों ने मुख्यमन्त्री नियुक्त करने के लिए किसी एक प्रक्रिया का पालन नहीं किया। कुछ ने सदन की सबसे बड़ी पार्टी के नेता को निमंत्रण दिया तो कुछ ने विभिन्न दावेदारों के कुल समर्थकों के आधार पर मुख्यमन्त्री नियुक्त किया। उदाहरण के लिए 1967 में पश्चिमी बंगाल और बिहार में कांग्रेस पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए नहीं बुलाया गया, जबकि विधान सभा में वही सबसे बड़ी पार्टी थी। दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में सबसे बड़ी पार्टी को, जो कांग्रेस ही थी, सरकार बनाने के लिए निमंत्रित किया गया। कुछ ने स्थिति को जांचने का पालन किया है तो कुछ ने सदस्यों के स्वयं उपस्थिति होने से निश्चय करने की प्रक्रिया का अनुसरण किया है और कुछ ने दोनों के मिले जुले रूप का प्रयोग किया। मसलन 1971 में गुजरात में श्री मन्नारायण ने स्थिति और सदस्यों की उपस्थिति दोनों नियमों का इस्तेमाल किया था। इसी प्रक्रिया का पालन 1967 में राजस्थान के गवर्नर सरदार हुकमसिंह ने किया था। दूसरी तरफ, डी० सी० पावते ने सदस्यों की

गिनती के तरीके का इस्तेमाल किया। 1952 में मद्रास के गवर्नर श्री प्रकाश ने पहले राजगोपालाचार्य को सदन में मनोनीत किया और उन्हें सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। दूसरे शब्दों में, उन्होंने उस व्यक्ति को चुना जो किसी भी सदन का सदस्य नहीं था, और उसे नियुक्त करने में अपने विवेक का प्रयोग किया। सभा को स्थगित करने के सन्दर्भ में जम्मू काश्मीर के गवर्नर भगवान सहाय ने 1970 में जी० एम० सादिक की सलाह पर सभा को स्थगित कर दिया था जबकि कांग्रेस के 62 सदस्यों में से 35 ने सैयदमीर कासिम के पक्ष में सादिक से अपना समर्थन वापिस ले लिया था। मध्य प्रदेश के गवर्नर के० सी रेड्डी ने भी ऐसा ही किया। दूसरी तरफ, पश्चिम बंगाल के गवर्नर धर्मवीर ने अजय मुखर्जी मन्त्री मण्डल को इस आधार पर बर्खास्त कर दिया था कि उन्होंने गवर्नर की सलाह पर तत्काल सभा नहीं बुलाई थी। इस प्रकार जबकि जम्मू काश्मीर और मध्य प्रदेश के गवर्नरों ने कार्यकारी व्यवस्थापक और विधान मण्डल को साथ रखने के नियम का पालन नहीं किया, पश्चिम बंगाल के गवर्नर ने मन्त्री मण्डल के विरुद्ध इसलिए कार्यवाही की क्योंकि वह व्यवस्थापक और विधान मण्डल के साथ आने पर सहमत नहीं था।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि फलां गवर्नर ने सही मार्ग अपनाया या नहीं। मैं जो स्पष्ट करना चाहता हूं वह यह है कि अलग-अलग गवर्नरों ने अलग-अलग निर्णय लिए हैं और कोई भी महत्त्वपूर्ण परम्परा अभी तक स्थापित नहीं हुई है।

जिस स्थिति में मुझे निर्णय लेना था, मेरे द्वारा उनसे इस्तीफा मांगने और उन अकाट्य दस्तावेजों जिनसे उनका अल्पमत जाहिर होता था और जिनका विरोध उन्होंने भी नहीं किया—इसके बाद डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने मुझसे सदन को भंग करने के लिए कहा। इसलिए सदन को भंग न करने का मेरा निर्णय उस गवर्नर के भंग न करने के निर्णय से कहीं अधिक न्याय संगत था जिसने मुख्यमन्त्री के कहने पर भी सदन को भंग नहीं किया था जबकि मुख्यमन्त्री ने अपना सुझाव तब दिया था जब उससे इस्तीफा देने के लिए भी नहीं कहा गया था। इस सम्बन्ध में, यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब पंजाब में प्रकाश सिंह बादल का बहुमत अकाली दल से सदस्यों के जाने पर संदेहास्पद हो गया था तो उनके कहने पर गवर्नर के सदन को भंग करने के निर्णय की सख्त आलोचना हुई थी और आरोप लगाया गया था कि गवर्नर की सन्त अकाली दल से सांठ-गांठ थी।

अपने निर्णय का चुनाव

आधारभूत सवाल यह है कि क्या ऐसी विवादास्पद परिस्थितियों में गवर्नर को कोई अपना निर्णय लेने का अधिकार है? यह बिल्कुल स्पष्ट है कि गवर्नर का स्वनिर्णय है। यदि वह अपने निर्णय को एक विशेष तरीके से इस्तेमाल करता है तो उसे उन पार्टियों और दलों से आलोचना मिलेगी जिन्हें इस निर्णय से नुकसान होता है, लेकिन उस निर्णय को स्वयं में अवैध या असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता। गवर्नर के निर्णय की महत्ता को समझने की सही पहुंच है, उस पूरे राजनैतिक और प्रशासनिक वातावरण में जिसमें गवर्नर को निर्णय लेना है, उन सभी परिस्थितियों में उस निर्णय का मूल्यांकन करना। सभी परिस्थितियों में

उससे एक ही तरीके से काम करवाना पूर्णतया अवास्तविक और खतरनाक होगा। तब स्थिति वर्तमान स्थिति से जिसमें थोड़ा बहुत उत्क्रमण हो हो सकता है, अधिक खराब हो जाएगी। कोई भी गवर्नर उस मुख्य मन्त्री के शासन को जारी नहीं रख सकता, जो बहुमत खो चुका हो। आन्ध्र प्रदेश में बहुमत एन० टी० रामाराव के समर्थन में था और गवर्नर रामलाल ने चाहे जो भी किया, कुछ ही दिनों में स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो गई। दूसरी ओर, जम्मू कश्मीर में बहुमत डॉ० अब्दुल्ला के समर्थन में नहीं था। वे और उनके सहयोगी बहुत शोर मचाते रहे लेकिन जुलाई 1984 से नवम्बर 1986 तक जब मैंने शाह सरकार को बर्खास्त किया था, जितने भी अवसर आए, वे अपना बहुमत सिद्ध नहीं कर सके।

विभिन्न दावेदार अपना शक्ति परीक्षण केवल विधानसभा में ही करें, संविधान में यह कहीं भी अनिवार्य नहीं बनाया गया है। यदि यह निश्चित करना था कि राज्यपाल सभी अवसरों पर एक ही विशिष्ट रीति से कार्य करें तो संविधान में ऐसा प्रावधान करने में क्या कठिनाई थी? संविधान निर्माण के समय राज्यपाल के लिए एक लिखित अनुदेश जारी करने का प्रस्ताव था। तथापि इस प्रस्ताव को त्याग दिया गया। ऐसा मुख्यतया यह अनुभव करने के बाद किया गया कि एक कठोर प्रावधान बनाना बुद्धिमानी नहीं होगी और राज्यपाल को हर विषय पर उसके गुण-अवगुणों के आधार पर अपना निर्णय लेने की अनुमति होनी चाहिए।

संसद सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में संविधान में विशेष रूप से दिया गया है कि उन्हें वही विशेषाधिकार होंगे जो ब्रिटेन में 'हाउस ऑफ़ कामन्स' के सदस्यों को परम्परागत रूप से प्राप्त हैं। इसी प्रकार का प्रावधान राज्यपालों के बारे में संविधान में बनाने के लिए लिखा जा सकता था कि राज्यपाल उसी रीति और परम्पराओं से कार्य करेंगे जो ब्रिटेन में 'क्राउन' (राजा) और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों के बीच हैं। परन्तु यह भी नहीं किया गया। इस विषय में सत्य तो यह है कि हमारे संविधान निर्माताओं को हमारे जनतंत्र की प्रकृति के बारे में आशंकाएं थीं। डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि हमारा जनतंत्र एक ऐसी धरती का जो वस्तुतः अजनतान्त्रिक है का केवल ऊपरी वस्त्र है। इसीलिए विधायिका पर पूरी तरह विश्वास करने की ओर उनका झुकाव नहीं था।

इस सम्बन्ध में प्रख्यात संविधान विशेषज्ञ सीरवी (Seeravi) का कथन भी उपयुक्त है। उनका कथन है—"शमशेर सिंह के केस में (ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 2192) सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद यह प्रतिज्ञप्ति कि केवल (लिखित) व्यक्त प्रावधान होने पर ही राज्यपाल अपना निर्णय ले सकता है, दोनों ही निर्णयों के लिए (ए० एन० रे, मुख्य न्यायाधीश और कृष्ण अय्यर, न्यायाधीश) अच्छा कानून नहीं रहा, इस मुकदमे में यह निर्णय किया गया था कि कुछ विषयों में राज्यपाल को आवश्यक पेचीदगियों के कारण अपना निर्णय लेने का अधिकार है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश ए० के० दास ने मेरे निर्णय पर टिप्पणी करते हुए कहा था, इस विशेष मामले में राज्यपाल ने 'अपनी इच्छानुसार निर्णय लेने के सिद्धान्त' का उपयोग मनमर्जी से नहीं वरन् बहुत न्यायोचित रूप से, डॉ० फारूख अब्दुल्ला का उनके विरुद्ध दी जाने वाली

साक्षियों से सामना करवाने के बाद किया। इन साक्षियों का डॉ० अब्दुल्ला ने कभी खण्डन नहीं किया। ऐसे मुख्यमंत्री की संस्तुतियां (सिफारिशें) जो बहुमत खो चुका है कोई प्रभाव नहीं रखतीं। काश्मीर के राज्यपाल का निर्णय न तो गैर-कानूनी है और न असंवैधानिक तथा मंत्रिमण्डल भंग करने के बारे में उठाया गया झगड़ा अनुचित है।"

तत्कालीन गृहमंत्री पी० वी० नरसिम्हाराव ने मेरे निर्णय के पक्ष में लोकसभा में कहा था :

"बहुमत खोना और राष्ट्रविरोधी शक्तियों को रोकने में असमर्थता ये दोनों घटनाएं आपस में अलग-अलग नहीं हैं। जहां तक संवैधानिक और कानूनी औचित्य का प्रश्न है, यह स्मरण दिलाया जा सकता है कि संविधान निर्मात्री सभा के वाद-विवादों में यह बहुत स्पष्ट रूप से लिखा गया था कि शब्द 'इच्छा के दौरान' से यह अर्थ समझा जायेगा कि मंत्रिमण्डल द्वारा बहुमत खोने पर यह 'इच्छा' नहीं रहेगी और जैसे ही मंत्रिमण्डल बहुमत का विश्वास खोता है, राज्यपाल मंत्रिमण्डल को पदच्युत करने की इच्छा का पालन करेगा। हमारे पास ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां राज्यपालों ने अपने निर्णय को लागू किया है। देश में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं था जहां मुख्यमंत्री के बहुमत की वस्तुतः सदन में परीक्षा ली गई हो। यदि जम्मू और काश्मीर के वर्तमान राज्यपाल ने भारत के दूसरे राज्यपालों की भांति दूसरे जनतांत्रिक विकल्प को खोजने की कोशिश की और उसे संभव पाया तो वह गलत नहीं था।"

खेद है कि नरसिम्हाराव ने यह नहीं जोड़ा कि मैंने संवैधानिक रीति से राज्यपाल का शासन लागू करने के लिए कहा था।

यहां यह ध्यान दिलाना कि राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने जुलाई, 1979 में क्या किया प्रासंगिक होगा। उन्होंने चरणसिंह और मोरारजी देसाई से अपने-अपने समर्थकों की सूची मांगी। उन्होंने इन सूचियों के आधार पर कार्य किया न कि सदन के परीक्षण पर। जिन सदस्यों का नाम दोनों सूचियों में था, उनसे उन्होंने व्यक्तिगत लिखित घोषणा भी नहीं मांगी। उन्होंने मोरारजी देसाई को थोड़ा समय देने से इंकार कर दिया और विभिन्न अन्तर्गुटों के नेताओं द्वारा बनाई गई संदिग्ध सच्चाई की सूचियों के आधार पर चरणसिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। वह भलीभांति जानते थे कि चरणसिंह के समर्थकों ने दस परस्पर विरोधी समूहों के सदस्य तथा कुछ व्यक्ति थे जिनका कोई समान कार्यक्रम या नीति नहीं थी। उन्होंने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी कि मोरारजी के पीछे 219 समर्थक सदस्य हैं जो कि एकमात्र संगठित समूह था जिसके पास अपनी समान नीति तथा कार्यक्रम था।

जैसी आशा थी चरणसिंह संसद का सामना नहीं कर सके। रेड्डी ने उस प्रधानमंत्री की सलाह को मान लिया जिसका वास्तव में किसी भी समयबिंदु पर बहुमत नहीं था। विरोधी दल के नेता वाई० वी० चह्वाण को बुलाने के अपने ही पूर्व दृष्टान्त के विरुद्ध, उन्होंने जगजीवनराम को सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया। उन्होंने मनमर्जी से उनके तर्क को कि 'कुछ दलों के नेताओं के दृष्टिकोण

उनके काफी समर्थकों के दृष्टिकोणों को प्रतिबिम्बित नहीं करते'[1] ठुकरा दिया।

राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने स्वयं क्या किया उसको बिना समझे हुए, उन्होंने सेवा निवृति के बाद मेरी उस पद्धति की आलोचना की जो ठोस साक्षियों पर आधारित थी और जिस पर किसी भी संबद्धित दल ने विवाद नहीं उठाया था। यही नहीं वरन् मेरे मामले में वातावरण को सुरक्षित बनाये रखने की आवश्यकताएं भी थीं, डॉ० फारुख अब्दुल्ला और उनके 'डकैत पुलिस व अधिकारियों' ने स्वतन्त्र और सही परीक्षा नहीं होने देनी थी। संजीव रेड्डी को ऐसी किसी भी आवश्यकता पर विचार नहीं करना था। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के सर्वोच्च नेता तक अपनी मान्यता को भंग करने वाला रुख अपनाने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करते। संजीव रेड्डी ने मेरे बारे में टिप्पणी करने से पूर्व सही तथ्यों की पुष्टि करने की भी चिन्ता नहीं की। वह यह नहीं जानते थे कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैंने जी० एम० शाह के मंत्रिमण्डल को लाने का नहीं वरन् राज्यपाल शासन लागू करने का प्रस्ताव किया था।

राज्यपाल "राज्य के सवैधानिक यंत्र के धुरे की कील है।"[2] उसकी स्थिति को मजबूत करने की ओर उसके पद तथा छवि को सुधारने की जरूरत है। एक जागरूक और सक्रिय राज्यपाल आत्मकेन्द्रित जनतन्त्र की विपथगामिता को सुधारने, जनव्यवहार के नियमों और समाज की नैतिकता को ऊंचा उठाने में बहुत उपयोगी भूमिका निभा सकता है। मैं दो उदाहरण देकर अपने विचार की पुष्टि करूंगा।

21 जनवरी, 1985 को जी० एम० शाह के मंत्रिमण्डल ने राज्य भूमि के पट्टेदारों को बाजार मूल्य से आधे में स्वामित्व अधिकार देने और 'नाजूल भूमि' पर अनधिकृत रूप से बने लोगों के अधिकार को वैध बनाने का निर्णय लिया। ये दोनों विषय वास्तव में अलग-अलग थे परन्तु इन्हें विस्तार देने के लिए आपस मे मिला दिया गया। एक अस्पष्ट और संक्षिप्त-सी विचारार्थ सूची तैयार कर दी गई। ऐसा धनी और प्रभावशाली पट्टेदारों, जिनमें अनेकों बड़े मंत्री तथा सिविल सर्वेन्ट्स भी शामिल थे को लाभ पहुंचाने के वास्तविक इरादे को छिपाने की कोशिश में किया गया था।

यह विषय फरवरी 1985 के दूसरे सप्ताह में मेरी दृष्टि में आया। मैंने 13 फरवरी को मुख्यमंत्री को लिखे पत्र में बताया :

"मैं यह मंत्रिमण्डल द्वारा 21 जनवरी 1985 को लिए गये निर्णय संख्या 67, की ओर ध्यान दिलाने के लिए लिख रहा हूं। इस क्रम का विषय अधोलिखित है :

"सम्पत्ति के आधार पर पट्टों का स्थानान्तरण—नजूल भूमि पर अनधिकृत रूप से कब्जा जमाये लोगों को स्वामित्व अधिकार प्रदान करना।"

यह वास्तव में दो अलग-अलग विषयों से सम्बन्धित है। पहला, स्वामित्व अधिकार प्रदान करना और दूसरा, 'नजूल' भूमि पर अनाधिकृत कब्जे को वैध बनाना।

---

1. 21 अगस्त 1979 को लिखा जगजीवनराम का पत्र।
2. सरकारिया आयोग की रिपोर्ट

जहां तक पहले विषय का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट नहीं है कि नगर योजना के सिद्धान्तों और पट्टा प्रणाली (लीज़ सिस्टम) के मूल आधारों की क्यों उपेक्षा की गयी और क्यों भूमि के बाजार मूल्य का केवल 50 प्रतिशत वसूल करके स्वामित्व अधिकार दिया जा रहा है ? ऐसा करने का, विशेष रूप से जबकि पट्टाधारी बाज़ार से आधे मूल्य में भूमि पर अधिकार पाने के बाद उसे पूरे मूल्य में बेच कर अत्यधिक लाभ कमा सकते हैं, कोई औचित्य नहीं दिखता। जितनी बड़ी भू-सम्पत्ति होगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। दूसरे शब्दों में आदमी जितना धनवान होगा, वह उतना ही अधिक धनवान बन जायेगा।

अरबन लैण्ड सीलिंग एक्ट, कैपिटल गेन्स टैक्स, वैल्थ टैक्स, गिफ्ट टैक्स, और ऐसे ही अन्य टैक्स जो भारत के अन्य भागों पर लागू होते हैं, काश्मीर में नहीं हैं, अतः इस प्रश्न पर लिए गये निर्णय का अर्थ धनी वर्गों को एक बड़ी और पूरी तरह अनुचित समृद्धि देनी होगी और इससे भूमि के खरीद-फरोख्त की सट्टेबाजी को बढ़ावा मिलेगा।

यह भी स्पष्ट नहीं है कि भूमि के मूल्य निर्धारण का क्या सिद्धान्त या माप-दण्ड होगा। प्रायः ऐसे विषयों का निर्णय स्पष्ट रूप से निर्धारित नियमों के आधार पर न्यायिक कल्प द्वारा किया जाता है। लेकिन इसमें अन्तिम निर्णय राजस्व मंत्री पर छोड़ दिया गया है।

दूसरा विषय 'नजूल भूमियों' के अनाधिकृत कब्जे से सम्बन्धित है। यह निर्णय भावी योजना और पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होगा। क्या यह सच है कि डल झील के किनारे की बहुत सी भूमि अधिकृत कब्जे में है और कृषि भूमि के अनेक बड़े-बड़े भाग कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के अधिकार में हैं ?

स्पष्ट है कि इस विषय में बड़े पैमाने पर आर्थिक पेंचीदगियां हैं। यह राज्य की बड़ी भू-संपत्ति से सम्बन्धित है और इसके द्वारा राज्य के खर्चे पर बड़ी संख्या में धनवानों तथा प्रभावशाली लोगों को लाभ पहुंचेगा।

उपर्युक्त धारणाओं को ध्यान में रखते हुए मेरा सुझाव है कि पूरे विषय पर दोबारा विचार तथा गहराई से जांच की जाये और तब तक के लिए इस निर्णय को क्रियान्वित करने से रोक दिया जाय।

यदि राज्य सरकार पुनर्विचार या ऐसे ही इस निर्णय पर अटल रहने की इच्छा रखती है तो सम्बन्धित फाइल/फाइलों के साथ आवश्यक विवरण लगाकर मुझे विचारार्थ भेज दिया जाए।"

इस पत्र ने मंत्रियों और मुख्यमंत्री को हिला दिया। इसने नागरिक सेवा के उच्च अधिकारियों को भी झटका दिया जिन्होंने विषय से सम्बन्धित अपर्याप्त विवरण तैयार किए थे। उन्होंने समझ लिया कि कोई गहराई के साथ विषय को देख रहा है और उसने उनकी चालाकी को समझ लिया है। वे कुछ दिनों तक बहानेबाज़ी करते रहे लेकिन मैंने अपना आग्रह ज़ारी रखा। उन्होंने अनुभव कर लिया कि स्वयं सही निर्णय लेने में ही बेहतरी है। इस विषय को अन्त में पूरी तरह त्याग दिया गया।

सन् 1984 में लोकसभा चुनावों के बाद जी० एम० शाह का मंत्रिमण्डल वस्तुतः अंधा-धुंध लूट में लग गया। उसने उच्च अधिकारियों का स्थानान्तरण

करने और अयोग्य व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करने में किसी भी नियम का ध्यान नहीं रखा। एक ऐसा ही मामला जम्मू और काश्मीर बैंक के चेयरमैन की नियुक्ति से सम्बन्धित था। एक ऐसे व्यक्ति का नाम प्रस्तावित किया गया था जो सत्ताधारी अन्तर्गुट के व्यापारिक हितों की पूर्ति करने के लिए जाना-माना था और जिसके विरुद्ध जाच (विजीलेंस) के तीन मामले चल रहे थे। मैंने वित्त मंत्री और रिजर्व बैंक के गवर्नर को लिखा :

"राज्य सरकार ने जम्मू एण्ड काश्मीर बैंक के चेयरमैन पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने का निर्णय लिया है जिसके विरुद्ध जाच (विजीलेंस) के तीन मामले रजिस्टर्ड हैं।

यह कदम गुणों की अपेक्षा अन्य कारणों से उठाया जा रहा है। जब मैंने राज्य सरकार से इस विषय में रिपोर्ट मांगी, मुझे एक संक्षिप्त और बहुत कुछ गलत विवरण भेज दिया गया। इसके साथ ही विजीलेंस विभाग के अधिकारियों पर जोर डाला गया कि वे इस केस को शीघ्र ही सम्बन्धित व्यक्ति के पक्ष में निपटा दें।

प्रस्तावित नियुक्ति के विरुद्ध लगाए गए आरोप गम्भीर हैं। उसके विरुद्ध मेरी अपनी जाच से इन आरोपों की न केवल पुष्टि हुई है वरन् भ्रष्टाचार की और अधिक गहराई का पता चला है।

निहित स्वार्थ इतने मजबूत हैं कि स्थानीय स्तर पर मेरी सलाह पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसलिए मैं इन तथ्यों को आपकी जानकारी में ला रहा हू ताकि आप जो कदम आवश्यक समझें उठा सकें। मेरा सुझाव है कि केन्द्रीय सरकार को रिजर्व बैंक को सलाह देनी चाहिए कि जब तक उसके द्वारा पूरी जाच नहीं कर ली जाती वह एक ऐसे व्यक्ति की, बेहतर हो बाहर के व्यक्ति की, जो पूरी तरह स्वतन्त्र और ईमानदार हो जे० एण्ड के० बैंक के चेयरमैन पद पर नियुक्ति करवाये।"

इस विषय में अप्रत्यक्ष रूप में पहल करके मैं उस नियुक्ति और उससे होने वाली हानियों को रोकने में सफल रहा।

ऐसे अनेक मामले थे जिनमें मैंने मुख्यमंत्री को पत्र तथा विवरण भेजे। मंत्रि-मण्डल के पास इन मामलों के बारे में मेरे द्वारा उठाये प्रश्नों के कोई सही उत्तर नहीं थे, वह आशंकित हो उठा। मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री ने राजीव गांधी से शिकायत की। राजीव गांधी को मैंने निम्नलिखित पत्र भेजा—

"मैं केवल जे० एण्ड के० संविधान और कार्य के नियमों (सन्दर्भ अंश संलग्न) की धारा 44 के अन्तर्गत राज्यपाल को दिये गये जानने का अधिकार, विवरण पाने का अधिकार का उपयोग कर रहा हूं।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि इन अधिकारों का उपयोग पहले किया जाता तो स्वर्गीय शेख अब्दुल्ला और उनका परिवार विशाल सम्पत्ति पर अधिकार नहीं पा सकता था। स्वायत्तता समर्थक भी प्रशासन तथा व्यापार में इतनी मजबूत शक्ति नहीं बना सकते थे।

मैंने सन् 1947 से काश्मीर की स्थिति का हर पहलू से अध्ययन किया है। हमारी मुख्य समस्याओं में से एक धमकियों और आतंक जमाने के कार्यों के विरुद्ध सही समय पर दृढ़ रहने में असमर्थता रही है।"

मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूं कि राज्यपाल को केवल एक प्रभावहीन और निष्क्रिय सज्जन व्यक्ति बन कर नहीं रह जाना चाहिए वरन् उसे एक ऐसा सज्जन पुरुष होना चाहिए जो समय आने और बुराई के एक निश्चित सीमा तोड़ने पर प्रभावपूर्ण कदम उठा सके। मैं प्रशासन के दिन-प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप करने की वकालत नहीं कर रहा हूं और न ऐसे अवसरों पर हस्तक्षेप करने की, कि जब किसी विषय पर ईमानदारी के साथ दो परस्पर विरोधी मत हो सकते हों। परन्तु जब अन्तर्गुट और चौगुटे अथवा मन्त्री या विधान सभा सदस्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए गुटबन्दी करने लगें जैसा कि बारहवें अध्याय में प्लाट्स के आबंटन के बारे में दिया गया है, तब राज्यपाल को अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए और प्रभावशाली ढंग से करना चाहिए।

वास्तविक अपराधी

राज्यपाल के पास स्वयं निर्णय लेकर कार्य करने का पर्याप्त क्षेत्र है। इसके कारण समस्याएं नहीं पैदा होतीं वरन् इसलिए पैदा होती हैं क्योंकि केन्द्र में समय-समय पर जो राजनैतिक तत्त्व सत्ता में आये हैं, वे अपने छोटे-छोटे स्वार्थों से ऊपर उठने में सफल नहीं हुए। यदि राजनैतिक तत्त्वों के इरादे नेक हों तो टी० टी० कृष्णामचारी के उन सिद्धान्तों का पालन करने में कोई कठिनाई न हो जो उन्होंने संविधान निर्मात्री सभा में प्रस्तुत किए थे। उन्होंने कहा था "मैं इस प्रकार के विचारों को कि इस सदन के हम लोग यह चाहते हैं कि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत भावी राज्यपाल (गवर्नर) किसी भी अर्थ में केन्द्रीय सरकार का एजेन्ट हो, एकदम नकारना चाहता हूं। मैं इस मुद्दे को बहुत स्पष्ट करना चाहूंगा क्योंकि भविष्य के राज्यपालों की व्यवस्था में ऐसा कोई विचार नहीं है।" दूसरे अगर सभी राजनैतिक दल वास्तव में राज्यपाल की नियुक्ति, अवधि, भूमिका और कार्य तथा उसको हटाने से सम्बन्धित मतभेदों को दूर करने में रुचि रखते हैं तो वे इस विषय में सरकारिया आयोग की सिफारिशों को पूरी तरह मानने के लिए सहमत क्यों नहीं हो जाते? आज कोई भी संवैधानिक पद इतना असुरक्षित नहीं है जितना राज्यपाल का। एक वही है जो केन्द्रीय सरकार की मनमर्जी के मुताबिक कभी भी स्थानान्तरित या सेवा मुक्त किया जा सकता है। उसकी स्थिति यद्यपि दैनिक मजदूरी की तरह नहीं है तथापि ठेके के कर्मचारी के स्तर पर आ गई है।

चन्द्रशेखर सरकार ने राज्यपाल की रिपोर्ट की चिन्ता किए बिना तामिलनाडु सरकार को भंग करने के लिए जो कुछ किया उससे प्रकट हो जाता है कि केन्द्रीय सरकार किस सीमा तक अनुचित संवैधानिक तरीकों को अपना सकती और उसमें कामयाब हो सकती है।

वास्तविक अपराधी तो सिद्धान्तहीन राजनीति है। हाल के वर्षों में केन्द्र में सत्ता पाने वाले किसी भी दल ने संवैधानिक नैतिकता के प्रति थोड़ी सी भी संवेदनशीलता नहीं दिखाई है।

सन् 1977 में जनता पार्टी के झण्डे के नीचे आ जुटे नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा राज्यपाल के पद का दुरुपयोग करने के लिए उनकी आलोचना किया करते थे। लेकिन जब जनता पार्टी सत्ता में आई उसने राज्यपालों की नियुक्तियां

पार्टी के हितों को ध्यान में रख कर की। उनमें से कुछ लोगों को यह पद केवल पुरस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। वे इस पद के लिए स्पष्ट रूप से अयोग्य थे। मुझे याद है कि जब मैं 17 फरवरी, 1980 में दिल्ली का राज्यपाल बना, मुझे राज्यपालों के सम्मेलन में पहली बार शामिल होने का अवसर मिला और मैंने देखा कुछ राज्यपाल इतने वृद्ध और कमजोर हो चुके थे कि उनमें से कई को कानों से ठीक सुनाई नहीं देता था और कुछ अपने सहायकों की सहायता के बिना कुर्सी से उठ नहीं सकते थे।

सन् 1989 के अन्त में वी० पी० सिंह की जो राष्ट्रीय मोर्चा सरकार सत्ता में आई, वह इस सम्बन्ध में पिछली सभी सरकारों से आगे निकल गई। उसने राज्यपालों को सामूहिक रूप से बदल डाला। उसने संविधान तक में लिखित 'पांच वर्ष' शब्द की खिल्ली उड़ा दी। केवल यही तथ्य कि सभी के विषय में 'राष्ट्रपति की इच्छा' को एक साथ वापस ले लिया गया था यह बताता है कि ऐसा व्यक्तिगत गुणों-अवगुणों के आधार पर नहीं वरन् राजनैतिक कारणों से किया गया था। इस निर्णय ने राज्यपाल को एक स्वतन्त्र संवैधानिक अधिकारी से बदल कर केन्द्रीय सरकार का एक ऐसा कर्मचारी बना दिया जिसे बिना कारण बताए पद से हटाया जा सकता है, जब कि छोटे-से-छोटे कर्मचारी को भी बिना कारण बताए पद से नहीं हटाया जा सकता। जब चन्द्रशेखर सरकार सत्ता में आयी उसने भी संवैधानिक भावना के प्रति वैसे ही उदासीनता दिखाई। इससे राज्यपालों को यही संकेत मिला कि या तो "हमारी (सरकार की) इच्छा का पालन करो अथवा त्याग-पत्र दे दो।"

दुर्भाग्यवश किसी भी राष्ट्रपति ने राज्यपाल के पद की स्वतन्त्रता, महत्त्व और सम्मान की रक्षा के लिए संवैधानिक साहस नहीं दिखाया। सत्ताधारी पार्टी द्वारा राज्यपाल को संवैधानिक प्रतिनिधि के बजाय अपना राजनैतिक एजेन्ट बनाने की कोशिश से बाज न आने पर किसी ने भी त्याग-पत्र देने की धमकी नहीं दी। मेरे विषय में, राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमन्त्री या गृहमन्त्री को इतनी भी सलाह या सुझाव नहीं दिया गया कि सरकार को कम-से-कम संसद को यह बता देना चाहिए कि राज्यपाल ने जे० एण्ड के० संविधान की धारा 92 के अन्तर्गत राज्यपाल शासन लागू करने के लिए राष्ट्रपति से संवैधानिक रूप में अनुरोध किया था पर संघ सरकार ने इस घोषणा को जारी करने की सहमति नहीं दी।

भारत का राष्ट्रपति यह भूल गया कि वह केवल एक ऐसे राज्य का अध्यक्ष ही नहीं है जिसमें उत्तरदायित्व पूर्ण संसदात्मक सरकार है वरन् वह संघात्मक ढांचे के शीर्षस्थ स्थान पर है। वह यह भी भूला बैठा कि उसे विधान सभाओं और संसद के सदस्यों से बने मतदाता समूह द्वारा चुना जाता है और संविधान में उस पर महाभियोग लगाने की व्यवस्था का कोई औचित्य नहीं अगर उसे सदैव एक शून्य की भांति काम करना है। यदि राष्ट्रपति ऐसे मामलों में हस्ताक्षर करने से मना कर दे जिनमें वह देखता है कि संघीय सरकार द्वारा भिन्न दल के शासित राज्य के राज्यपाल को पांच वर्ष से पूर्व हटाया, पदच्युत या स्थानान्तरित किया जा रहा है और वह राष्ट्र को अपने विश्वास में ले या त्याग-पत्र देने की धमकी देने लगे तो कोई भी प्रधानमन्त्री राज्यपाल पद के साथ

खिलवाड़ नहीं करेगा और इससे राष्ट्रपति तथा राज्यपाल पदों की गरिमा ऊंची होगी।

सच्चाई यह है कि हमारा राष्ट्र बीमार है और उस बीमारी से हम सभी पीड़ित हैं। डा० अम्बेडकर ने संविधान स्वीकार किए जाने के समय कहा था "संविधान चाहे कितना भी अच्छा हो अगर उसे क्रियान्वित करने वाले लोग बुरे हैं तो वह अवश्य ही बुरा साबित होगा।"

आठवां अध्याय

मेरे आने से पूर्व की परिस्थितियां

जब केन्द्र जोडकर नहीं रख सकता
चीजें गिरकर बिखर जाती हैं
रक्त रंजित ज्वार संसार का विध्वंस करता है
और हर जगह उसमें निर्दोष जनों का समारोह डूब जाता है,
श्रेष्ठ लोगों मे कमी है दृढ़ विश्वास की
जबकि सबसे दुष्ट जनों में भरी है तीव्र दुर्वासना ।

— डब्ल्यू० बी० ईट्स

कुछ राजनैतिक तत्त्व इस दृष्टिकोण का प्रचार करने की कोशिश करते रहे हैं कि नेशनल कार्फ्रेस और कांग्रेस (ई) की मिली-जुली सरकार के शासन काल के दौरान परिस्थितियां इतनी खराब नही थी जितनी कि बाद मे हो गयी। यह दृष्टिकोण भ्रामक तथा गुमराह करने वाला है। यह वास्तविकताओ की उपेक्षा करता है। यह मूल को, जडो को भुला देता है। यह मूल रोग से अधिक उसके लक्षणो को महत्त्व देता है। 19 जनवरी, 1990 को लागू किये जाने वाले राज्यपाल शासन से पहले घाटी मे पूर्ण मानसिक समर्पण कर दिया गया था और दुर्व्यवस्था तथा विध्वंस के घने बादलों ने घाटी को ढक लिया था।

जब प्रशासन की शक्ति किसी समस्या का समाधान करने के बजाय समर्पण कर देती है, तब वह अपने देश के साथ विश्वासघात करती है। *यदि काश्मीर का* प्रशासन 19 जनवरी, 1990 तक डॉ० फारूख अब्दुल्ला के हाथो मे रहने के स्थान पर 26 जनवरी, 1990 तक रहता तो राष्ट्र को इस मनोवृत्ति के गम्भीर और दुखान्त परिणामो का ज्ञान हो जाता।

जब मैंने अपनी पहली प्रशासन अवधि में 12 जुलाई, 1989 को अपना पद-भार छोडा था, उस समय जो परिस्थितिया थी उनका आंकलन मैं तृतीय अध्याय 'संकट के संकेत' मे दे चुका हू। इस अध्याय मे, मैं जुलाई 1989 से 19 जनवरी, 1990 तक हुई घटनाओ का वर्णन करूगा।

धमाके के साथ आतंकवाद का आगमन

27 अक्तूबर, 1988 को लाल चौक में एक मारुति वान खड़ी थी। उसमें जोरदार विस्फोट हुआ। स्पष्ट रूप से मारुति वान के वहां खड़ा होने के बाद ही उसमें बम रखा गया था। विस्फोट के फलस्वरूप वान नष्ट हो गई। वहां से गुजरने वाले ग्यारह लोग जिनमें एक मुसलमान महिला एडवोकेट भी शामिल थी गंभीर रूप से घायल हुए। बेचारी महिला को एक पैर गंवाना पड़ा।

आतंकवाद ने आक्रमण कर दिया था। यह एक क्रूर जोखिमों से भरा संकट बनने वाला था। इस प्रक्रिया में एक निरपराध मुस्लिम महिला बुरी तरह घायल हो गई, यह तथ्य आतंकवादियों के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था। उन्हें तो बस किसी भी प्रकार अत्यधिक भय पैदा करना था। मैंने पहले ही जैसा कि पूर्व अध्याय में बताया है, सचेत कर दिया था—'आज उचित समय हो सकता है, कल बहुत देर हो जायेगी।' और वह कल दुर्भाग्यवश एक धमाके के साथ आ पहुंचा था। इसके बाद आतंकवादी हिंसा के और कार्य तथा विस्फोट अत्यधिक तीव्रता तथा क्रूरता से होने वाले थे।

सदा की तरह सी० आर० पी० की एक बस 13 जुलाई, 1989 को सुबह 7 बजे उन जवानों को लेने आयी, जो दिन की ड्यूटी पूरी कर चुके थे। जब जवान बस पर चढ़ रहे थे, उन पर गोलियों की बौछार की गयी। ये गोलियां पहले से योजना निश्चित कर चलायी गयी थीं। वे पड़ोस के मकानों और सड़क की ओर से चलायी जा रही थीं। बस गोलियों के जवाब में गोलियां चलाती हुई तेजी से दूर चली गई। इससे होने वाले डर और घबराहट में कुछ आक्रमणकारी भीड़ में गुम हो गये और कुछ आस-पास की संकरी गलियों-कूचों में गायब हो गये। (सी० आर० पी०) केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस के दो जवान मारे गये, दस गम्भीर रूप से घायल हो गये। चार निरपराध राहगीरों को भी अपनी जानें खोनी पड़ीं।

इस आक्रमण में तत्कालीन आतंकवाद की सभी विशेषताएं देखी जा सकती हैं। आश्चर्य में डालना, तेजी, ध्यानपूर्वक योजना बनाना, भीड़ में मिल जाना और गायब हो जाना, ये सभी तत्त्व इसमें हैं। जनता को भयभीत तथा आतंकित कर देना और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों में विस्तृत प्रचार पाना भी इसमें स्पष्ट है। आतंकवादी गतिविधियों का मूल तरीका निश्चित हो चुका था। इसे ही विभिन्न रूपों और आकारों में बार-बार दोहराया जाना था।

17 जुलाई को जम्मू काश्मीर (लिब्रेशन फ्रण्ट) मुक्ति मोर्चा ने एक औपचारिक घोषणा करके सी० आर० पी० पर आक्रमण करने की जिम्मेवारी ली। उसमें घोषित किया गया था—इस तरह के हमले उस समय तक चलते रहेंगे, जब तक भारतीय साम्राज्यवाद और अत्याचार का अन्त नहीं होता। कुछ दिनों बाद एक-दूसरे आतंकवादी दल 'हिसबुल्लाह इस्लामिया जम्हूरिया' ने इसी प्रकार की घोषणा की। इसमें विश्वासघातियों को कठोर चेतावनी देते हुए कहा गया था कि उन्हें ऐसी सजा दी जायेगी कि सबको सबक मिले।

20 जुलाई को खायान सिनेमा के महिला शौचालय में बम विस्फोट हुआ। इस घटना ने बता दिया कि कुछ स्त्रियां भी आतंकवादियों में शामिल हो गई

है। 29 जुलाई को दो युवा मुसलमान महिलाओं पर जो बिना बुर्का पहने जा रही थी, तेजाब फेंका गया। इसका उद्देश्य उन महिलाओं को चेतावनी देना था, जो कुछ साम्प्रदायिक कट्टरपंथियों द्वारा सख्ती से परदा प्रथा का पालन करने के बारे में जारी निर्देशों की ओर ध्यान नहीं दे रही थी।

अगस्त के महीने में हिंसा, धमकी, तोड़-फोड़ और आतंकवादी घटनाएं चौंका देने वाली तेजी से जारी रहीं। पाकिस्तानी स्वतन्त्रता दिवस 14 अगस्त उत्साह और उल्लास से मनाया गया। 15 अगस्त को विभिन्न आतंकवादी और विध्वंसकारी गुटों के आह्वान पर हड़ताल रखी गई। वे दुकानें तक बन्द रही जिनके मालिक मन्त्रीगण या उनके रिश्तेदार थे। तिरंगे झण्डे जलाये गये। निजी घरों और कुछ सार्वजनिक इमारतों तक पर काले झण्डे फहराये गये। यातायात को ठप्प करवा दिया गया। इस दिन बम विस्फोटों में लगभग 60 लोग घायल हुए! इससे पूर्व स्कूल जाने वाले बच्चों के माता-पिता को पत्र भेज दिये गये थे, जिनमें चेतावनी दी गई थी कि अगर उन्होंने अपने बच्चे को स्वतन्त्रता दिवस की परेड या स्वतन्त्रता दिवस से सम्बन्धित किसी समारोह में भाग लेने के लिए भेजा तो उन्हें उनके भयानक परिणाम भुगतने होंगे। रात में सड़कों की बिजली बुझा दी गई। सचिवालय तक की इमारत अंधकार में डूबी रही।

17 अगस्त को राज्यकीय सरकार की एक बस का टनमर्ग के निकट पिस्तौल दिखाकर अपहरण कर लिया गया और यात्रियों को बस से उतारने के बाद उसे विस्फोट से उड़ा दिया गया। 18 अगस्त की हिंसक घटनाओं में 50 से अधिक लोग जख्मी हुए। 21 अगस्त को श्रीनगर के बीच में स्थित निचले भाग में सफाकदल के निकट नेशनल कांफ्रेंस के नेता मोहम्मद युसफ हलवाई को गोली से उड़ा दिया गया। इससे पूर्व आतंकवादियों ने प्रांतीय कांग्रेस (ई) कमेटी के अध्यक्ष शफी कुरेशी के घर पर बम विस्फोट किया। शफी कुरेशी ने 18 अगस्त को प्रेस को दी गई एक टिप्पणी में स्वयं कहा—यह पहली बार है कि विघटनवादी इतने साहसी हो गये हैं कि उन्होंने सरकार की नाक के नीचे पाकिस्तानी स्वतन्त्रता दिवस आयोजित किया। सरकारी स्टेडियम में (मार्च पास्ट) पथ संचलन किया गया और 21 तोपों की सलामी के प्रतीक रूप में 21 गोलियां दागी गयीं। जब एक बम गैराज में फटा, मेरा अपना घर बुरी तरह ध्वस्त हो गया। मेरी मारुति वान को इतना नुकसान पहुंचा कि उसकी मरम्मत नहीं हो सकती। जब मैंने 21 बन्दूकों की सलामी देने, बम विस्फोटों को करने, तिरंगों को जलाने और दिन-दहाड़े निरपराध लोगों की हत्या करने वालों के विरुद्ध कठोर कदम उठाने शुरू किये तो आश्चर्य की बात है कि कुरेशी जैसे लोगों ने मेरी आलोचना करनी आरम्भ कर दी।

ऐसा लगता था कि डॉ॰ फारूख अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस—कांग्रेस (ई) सरकार को लकवा मार गया था। उसकी अक्षमता और लापरवाही विस्मयकारी थी और यही हाल दोनों मुख्य राजनीतिक पार्टियों की प्रभावहीनता तथा उपेक्षा का था। जनता के भय को दूर करने वाला कोई नहीं था, जनता के विचार को संगठित करने वाला कोई नहीं था और न ही कोई आतंकवादियों के विरुद्ध चुनौती देने वाला था। इन नेताओं के पास केवल लम्बे-चौड़े उग्र भाषण देने के अतिरिक्त और कोई अस्त्र नहीं था। इसका प्रभाव भी अधिक बार उपयोग

करने से समाप्त हो चुका था।

शेख अब्दुल्ला की वरसी का दिन 8 सितम्बर, 1989 को पड़ता था। नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं ने अपने को शेख के भारी सुरक्षा से घिरे समाधि स्थल पर मीटिंग करके संतुष्ट कर लिया। विघटनकारियों ने इस दिन को (मुक्ति दिवस) 'कौमे निजात' के रूप में मनाने का आह्वान किया। इस आह्वान का सभी ने पालन किया। घाटी के श्रीनगर, अनन्तनाग, वारामुला तथा अन्य नगरों में लगभग पूरी हड़ताल रखी गई। सड़क पर यातायात वहुत कम था। शेख के पुतले वनाकर जलाये गये। रात में लगभग 90 प्रतिशत घरों में रोशनी नहीं की गई। लगभग पूरी तरह वाहर अंधेरा रखा गया।

क्या कोई विश्वास कर सकता था कि यह वही शेख अब्दुल्ला था जिसकी सात वर्ष पूर्व हुई मृत्यु पर जनता का अपार सागर 'हमारा शेर'—'सानये शेरो' की आवाजें गुंजाता हुआ श्रीनगर की सड़कों पर फैल गया था और दो दिन वाद जिसकी शवयात्रा पर हर छत, हर खिड़की और हर छज्जे पर लोगों की भीड़ जुट आयी थी। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि या तो उसकी महानता कृत्रिम सामग्री से वनी थी और उस पर केवल सोने का पानी चढ़ा था अथवा जिन्होंने उसका भार संभाला वे इतनी अशुद्ध सामग्री और गन्दी मिट्टी के वने थे कि उनके गलत कार्यों ने कब्र में दफन शेख अब्दुल्ला की महानता को भी समाप्त कर दिया।

किसी भी दूसरे शहर में नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं या कार्यकर्ताओं द्वारा कोई कार्य नहीं किया गया। यह संगठन इतना प्रभावहीन हो चुका था कि वह उस व्यक्ति के लिए भी जिसे वह 'शेरे काश्मीर' और 'वावा-ए-कौम' (राष्ट्रपिता) कहते थकता नहीं था, कुछ नहीं कर सका। उसने काश्मीर के मार्गों को विध्वंसकारियों के आगमन हेतु खुला छोड़ दिया।

14 सितम्बर को 58 वर्षीय काश्मीरी पंडित टिक्कालाल टापलू जो उच्च न्यायालय के एडवोकेट और जम्मू काश्मीर भारतीय जनता पार्टी के वाइस प्रेसीडेंट थे, श्रीनगर के चिन्कारा मोहल्ला में अपने घर से वाहर आ रहे थे। हेल्मेट पहने दो युवक उनके सामने आये। एक ने उनका अभिवादन किया, जो सम्भवत: उनको पहचानने की पुष्टि करने के लिए किया गया था। दूसरे ने अचानक कलाश्निकोव निकाल लिया और पांच गोलियां नजदीक से टापलू के पेट में दाग दीं। वह खून से घिरे निश्चेष्ट गिर गये। दूसरी आधा दर्जन गोलियां उनके शरीर को पार करती हुई पास की दीवार में धंस गयीं, इससे पता चलता है कि यह हमला कितनी क्रूरता और अडिग आत्मविश्वास के साथ किया गया था। शासन का भय विलकुल नहीं रह गया था। हत्यारे दिन की रोशनी में हत्या करके चले गये।

काश्मीरी पंडितों की जाति को संकेत दिया जा चुका था। वे आतंकवादियों की दया पर जीवित थे। वे उनकी जाति के किसी भी सदस्य की, किसी भी समय हत्या कर सकते थे। यदि एक पंडित श्रीनगर शहर के वीच और वह भी ऐसी वस्ती में जहां पंडित वहुत वड़ी संख्या में रहते थे, सुरक्षित नहीं था तब वे कैसे सुरक्षित रह सकते थे जो दूर-दूर के विखरे गांवों में सवसे कटे हुए रहते थे। उन्हें भय सताने लगा।

दूसरे राष्ट्रवादियों के लिए भी संदेश स्पष्ट और ऊंची आवाज में था। जैसा कि इस हत्या के बाद जे० के० एल० एफ० ने प्रेस बयान में कहा—"हम उन सब लोगों को मार देंगे जो कहते हैं कि जम्मू-काश्मीर का भारत में विलय अखण्डनीय है। हम अपना सशस्त्र संघर्ष जारी रखेंगे।" टिक्कालाल टपलू एक समर्पित समाज सेवक और पूर्ण देशभक्त थे।

अजाज दर की प्रथम बरसी 18 सितम्बर को बलिदानी दिवस के रूप में मनाई गई। दर एक युवक था जो 18 सितम्बर, 1988 की रात को श्रीनगर में डी० आई० जी० अली मोहम्मद वताली के घर के बाहर सुरक्षा दस्ते से सशस्त्र मुठभेड़ करते हुए मारा गया था। दर उसके तीन साथी हथियारों से लैस होकर डी० आई० जी० के घर वताली की हत्या करने गये थे। वताली राज्य की सत्ता का एक सक्रिय प्रतीक माना जाता था। यह विडम्बना ही है कि करीब दो वर्ष जे० के० एल० एफ० के चार चोटी के नेता वताली के भाई के घर से गिरफ्तार किये गये।

दर के महान बलिदान की प्रशंसा करने वाले पोस्टर्स चारों ओर भेजे गये और बड़ी संख्या में चिपकाये गये। उसके सम्मान में कविताएं बनाई गयीं। मस्जिदों में उसके लिए प्रार्थना की गई। बाजार, स्कूल और कॉलेज बन्द रहे। विघटनकारियों की प्रचार मशीन प्रचण्ड रूप से काम कर रही थी। लेकिन सरकारी व्यवस्था में कोई गति नहीं थी। पोस्टर्स को हटाया नहीं गया, विघटनकारियों की कार्यवाहियों का सामना करने के लिए कुछ नहीं किया गया। फलस्वरूप जनता की भावनाएं भड़क उठीं और अजाज दर के चारों ओर आत्म-बलिदानी की आभा को फैलाने में सफलता पा ली गई।

वह दिन अनेकों घटनाओं का साक्षी बना। नवाकदल में चीन निर्मित हथगोले पुलिस दल पर फेंके गये, जिसमें दस पुलिस वालों सहित 16 लोग घायल हो गये। सी० आर० पी० के डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल एन० के० तिवारी जब नवाकदल में घटना स्थल देखने जा रहे थे, दो सौ लोगों की भीड़ ने उन पर बसन्त बाग में हमला किया। उन्हें भीड़ को डराकर भगाने के लिए हवा में गोली चलानी पड़ी। सफाकदल में जे० एण्ड के० बैंक पर हमला कर उसे क्षतिग्रस्त कर दिया गया। अलीकदल बस्ती में बारह आतंकवादियों द्वारा अंधाधुंध गोलियां चलाई गयीं। कलिश्नकोव राइफलों का भी इस्तेमाल किया गया।

हिंसा की वारदात में 50 से अधिक लोग घायल हुए। राज्य की सरकार द्वारा पहले से कोई योजना तैयार न करने के कारण आतंकवादी जो कुछ चाहते थे, उन्होंने वह किया। उन्होंने एक बड़ा मनोवैज्ञानिक लाभ प्राप्त कर लिया और काश्मीर में आतंकवादी हिंसा ने गहरी जड़ें जमा लीं।

पीपुल्स लीग के प्रेसीडेण्ट शबीर अहमद शाह को सितम्बर 27-28 की रात को रामबन के निकट मुख्य मार्ग पर गिरफ्तार कर लिया गया था। गिरफ्तार करने की कार्य योजना इन्टेलिजेन्स ब्यूरो ने बनाई थी जो सफल रही। लेकिन किसी अज्ञात कारण से शबीर शाह को जम्मू न ले जाकर डायरेक्टर जनरल पुलिस गुलाम जिलानी पंडित के निर्देश पर वापस श्रीनगर में बन्दी बनाये रखने के लिए लाया गया। यह घाटी में अशांति उत्पन्न करने का एक संकेत था। घाटी में बड़े पैमाने पर झगड़े हुए, जिन्होंने दुबारा राज्य की सुरक्षा व्यवस्था की कम-

ारियों को उजागर कर दिया। श्रीनगर तथा मुख्य नगरों में चार दिन तक पूरी
ड़ताल रही। पांच लोग गोली चलाने से मारे गये। अनेकों सार्वजनिक इमारतों
ो आग लगा दी गई। इनमें सोपुर हैंडिक्राफ्ट सेन्टर, बरामुला शीप हसबैण्डरी
ाफिस, पुलवामा जिले के ताहब में लड़कों का स्कूल, रतनीपुरा में लड़कियों का
कूल, पहलगांव के निकट लकड़ी का एक पुल शामिल था। लाल चौक पर चीन
र्मित एक हथगोला भी फेंका गया जिससे चारों तरफ आतंक फैल गया।

शासन करने वाली पार्टियों ने अपने अनुयायियों को संगठित करने और
ड़ताल को तोड़ने के लिए कोई प्रतीकात्मक कार्यवाही तक नहीं की। इसकी
लंबद्धता और अधिक स्पष्ट हो गई।

प्रशासनिक रूप से स्थिति इससे भी अधिक विक्षुब्ध कर देने वाली थी।
ीनगर के डिप्टी कमिश्नर परदेसी ने शबीर अहमद शाह को बन्दी बनाने के
ारन्ट पर हस्ताक्षर करने से साफ मना कर दिया। अनन्तनाग के डिप्टी कमिश्नर
भी यही रुख अपनाया। न्यायालय में राज्य के पक्ष की ओर से एडवोकेट जनरल
हीं आये। उन्होंने अपनी जिम्मेवारी एडीशनल एडवोकेट जनरल और सरकारी
कील पर डालने का प्रयत्न किया। वे भी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुए। इन
बने विध्वंसकारी आन्दोलन को और अधिक बल दिया। स्थानीय समाचार-पत्रों
ं लोग पैसे देकर विज्ञापन निकलवाने लगे कि उनका नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस
ई) से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब राज्य के महत्त्वपूर्ण अधिकारी भय से आतंकित
ा और अपनी प्राथमिक ड्यूटी भी करने के इच्छुक नहीं थे तथा केन्द्रीय सरकार
े अधिकारी और राज्य के उच्च स्तर के पदाधिकारी इस तरफ ध्यान नहीं दे
हे थे, तब राजनैतिक पार्टियों के सामान्य स्तर के कार्यकर्त्ताओं में भय व्याप्त हो
जाना स्वाभाविक था।

सन् 1989 का अक्तूबर माह भी उसी प्रकार के कष्टों से भरा था। हिंसा
ी घटनाएं जारी रहीं। करीब 30 बम विस्फोट हुए जिससे 39 लोग घायल
हुए और दर्जनों आगजनी की घटनाएं हुईं। आतंकवादियों द्वारा 15 घटनाएं
गोलियां चलाने की हुईं जिनमें तीन लोग मारे गये और एक दर्जन घायल हुए।

जिला कुपवारा में सब-इन्स्पेक्टर पुलिस शबीर अहमद ने आतंकवाद को
काबू में रखने के लिए उपयोगी काम किया। उसकी समय पूर्व पदोन्नति की गई।
2 अक्टूबर की रात को बगूरा गांव में तीन आतंकवादी वहां आये जहां शबीर
अहमद का भाई बशीर अहमद हकीम रहता था। हकीम के घर के रोशनदान से
उन्होंने कलिश्नकोव से अंधाधुंध गोलियां चलाईं जिनसे अहमद की पत्नी और दस
वर्षीय बेटी मर गई। यह एक बहुत क्रूर और घिनावना हत्याकाण्ड था। बच्चे
तक को नहीं छोड़ा गया। मां और बेटी का सब-इन्स्पेक्टर की ड्यूटी से कोई
लेना-देना नहीं था। लेकिन आतंकवादियों द्वारा इस प्रकार विचार नहीं किया
जाता। उनका उद्देश्य आतंकित करना था। और इसमें वे सफल रहे।

5 अक्तूबर को एक शक्तिशाली हथगोला मुख्य बाजार में फेंका गया जिसमें
5 पुलिस वालों को मिलाकर 17 लोग घायल हुए। चत्तावल पुलिस स्टेशन के
सहायक सब-इन्स्पेक्टर की हत्या करने का भी प्रयत्न किया गया।

27 अक्तूबर का काश्मीर के इतिहास में बहुत महत्त्व है। सन् 1947 में
इसी दिन लेफ्टीनेन्ट कर्नल डी० आर० राई के नेतृत्व में भारतीय सैनिकों का

पहला दल श्रीनगर में उतरा था। उस समय हमलावर राजधानी से कुछ मील की दूरी पर थे। कर्नल राई ने उनको बारामूला में रोकने का निर्णय लिया। दुश्मनों के अधिक संख्या में होने के बावजूद वह बहादुरी के साथ लड़ते हुए शहीद हो गये। वीरता के दूसरे कार्य में मेजर सोमनाथ शर्मा ने श्रीनगर हवाई अड्डे की रक्षा करते हुए अपना जीवन बलिदान कर दिया। लेकिन अक्तूबर 1989 को घाटी पुनः हमलावरों के चंगुल में फंस गई किन्तु इस बार के हमलावर बाहरी नहीं अन्दरूनी थे। ऐसा लगा कि सन् 1947 में भारत के वीर सैनिकों द्वारा जो बलिदान किए गए थे, वे सब व्यर्थ हो गए। वास्तव में राजनैतिक और प्रशासनिक कुप्रबन्ध की अवस्था इतनी गिर चुकी थी कि जो असह्य थी। अक्तूबर 26 और 27 दो दिनों तक घाटी के जीवन को विघटनवादियों तथा आतंकवादियों ने हड़ताल का आह्वान कर पंगु बना दिया था।

4 नवम्बर को सेवानिवृत्त जिला और सेशन जज एन० के० गंजू की तीन आतंकवादियों द्वारा दिन दहाड़े व्यस्त हरीसिंह स्ट्रीट पर गोली मारकर हत्या कर दी गई। श्री गंजू 'एनीमी एजेन्ट एक्ट' के अन्तर्गत बनी विशेष न्यायालय के प्रिसाइडिंग ऑफीसर थे और उन्होंने मकबूल बट्ट को हत्या के आरोप में मृत्यु दण्ड दिया था। इस हत्या का उद्देश्य न केवल विघटनकारियों की बढ़ती हुई शक्ति का प्रदर्शन करना था वरन् न्यायपालिका के सदस्यों को भयभीत करना भी था। यह संकेत अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहा जैसा कि इस घटना के बाद न्यायपालिका के सदस्यों के व्यवहार में प्रकट होता है।

लोकसभा चुनावों के आने के साथ, विघटनवादी गतिविधियां बढ़ा दी गईं। नवम्बर माह के दौरान 50 से भी अधिक हथगोले फेंके गये। जुलूसों और हड़तालों की संख्या में भी वृद्धि हुई। नेहरू का जन्म दिवस 14 नवम्बर 'काला दिन' के रूप में मनाया गया। एक मुख्य आतंकवादी हमीद शेख की गिरफ्तारी के विरुद्ध महिलाओं ने एक हिंसापूर्ण प्रदर्शन किया। हमीद पुलिस के साथ हुई एक मुठभेड़ में घायल हो गया था और उसका सौरा मेडिकल इंस्टीच्यूट में उपचार चल रहा था। इंस्टीच्यूट के डॉक्टरों ने हमीद से पूछ-ताछ करने के पुलिस कार्य में जितनी भी रुकावटें सम्भव हो सकती थीं डालीं। राज्य सरकार का पूरा तंत्र जैसा कि 'विघटन की प्रकृति और प्रणाली' अध्याय में दिया गया है विघटनकारियों और उनके सहायकों के नियन्त्रण में आ चुका था।

अक्तूबर 1989 तक विघटनकारियों ने जम्मू क्षेत्र के डोडा, भदरवा और किश्तवार इलाकों में भी घुसपैठ कर ली थी। इन इलाकों के मुसलमानों द्वारा शबीर शाह की गिरफ्तारी के विरोध में जुलूस निकाले गये। 14 अक्तूबर को डोडा में इस्लाम का झण्डा फहराया गया और मस्जिद में उत्तेजनापूर्ण भाषण दिए गये। 27 और 28 अक्तूबर को इन शहरों के मुसलमानों द्वारा हड़ताल रखी गई। डोडा में आतंकवादियों की कार्यवाहियों का विस्तार उनके 'वृहत्तर काश्मीर योजना' को साकार करने का एक अंग था। इस योजना के अन्तर्गत जम्मू क्षेत्र के मुस्लिम बहुल इलाकों को काश्मीर घाटी में मिलाना था।

पार्टियों के पारस्परिक तथा अन्दरूनी झगड़े

जबकि राज्य विस्फोट की कगार पर था, न तो नेशनल कान्फ्रेंस और न कांग्रेस (ई) विघटनकारी शक्तियों का सामना करने के लिए कोई कार्य कर रही

थीं। इसके विपरीत वे आपस में लड़ रही थीं। इतना ही नहीं वरन् दोनों पार्टियों के बीच अविश्वास की गहरी जड़ें जमीं थीं। वे निरन्तर एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थीं। कुछ दिन पहले ही कांग्रेस (ई) के नेता डॉ० फारूख अब्दुल्ला को नेशनल फ्रंट के एजेन्ट रूप में चित्रित कर रहे थे। कांग्रेस (ई) के वरिष्ठ नेता जनकराज गुप्ता जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ने, जो कि बाद में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए डॉ० फारूख अब्दुल्ला पर पाकिस्तान परस्त व्यक्ति होने का आरोप लगाया था। राज्य विधानसभा में 15 मार्च, 1984 को बोलते हुए जनकराज गुप्ता 'इंसाफ़' नामक उर्दू साप्ताहिक से (जो कि मुजफ्फराबाद और रावलपिंडी से एक साथ प्रकाशित होता था।) विस्तृत उदाहरण देते हुए कहा था कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला 'लिब्रेशन फ्रंट' की सक्रिय उपसंस्था 'प्लेबिसाइट फ्रंट' के निमन्त्रण पर सन् 1974 में पाकिस्तान तथा पाकिस्तान अधिकृत काश्मीर गये थे। उस समय डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने खुलेआम काश्मीर की मुक्ति के लिए घोषणा की थी। उन्होंने इस हद तक बात कही थी कि यदि शेख अब्दुल्ला उनके विचारों को स्वीकार नहीं करते, वे अपने पिता के खिलाफ बगावत कर देंगे। पुरानी शत्रुता और भय आसानी से समाप्त नहीं होते।

राज्य में व्याप्त परिस्थितियों में पार्टियों के पारस्परिक और अन्दरूनी झगड़े एक अनपहचानी मृत्यु कामना के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे। जबकि घर में आग लग गई थी। प्रबन्धक अपने पदों के लाभों पर झगड़ रहे थे। वे सत्ता पाने की अपनी बीमारी से बुरी तरह ग्रस्त थे कि उन्हें बाहरी दीवार से उठती आग की लपटों से सभी को होने वाला खतरा दिखाई नहीं दे रहा था।

इसी के समान घातक थी उनकी सबके सामने अपने झगड़ों के बारे में कह देने की आदत। इसने दोनों पार्टियों की छवि कलंकित होती गई और वे घृणा और उपहास की पात्र बन गई। क्या ऐसी पार्टियां अन्दर तथा बाहर दोनों ओर से होने वाले संगठित और दृढ़ विघटन के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध कर सकती थीं?

इस तथ्य से सम्बन्धित कुछ ज्वलत उदाहरण दिए जा सकते हैं। पी० सी० सी० (ई) (प्रदेश कांग्रेस कमेटी) के अध्यक्ष मोहम्मद शफी कुरेशी ने जून 1989 को नेशनल कान्फ्रेंस के दृष्टिकोण और कार्यों के बारे में कड़ी आलोचनापूर्ण बात कही। उन्होंने शेख अब्दुल्ला को भी नहीं बख्शा। उन्होंने कहा, "शेख अब्दुल्ला ने राज्य के लोगों का अपने हित के लिए शोषण किया। भ्रष्ट तरीकों से कुछ परिवारों ने राज्य का सारा धन हथिया लिया है।" दुबारा 20 अगस्त को कुरेशी ने खुलेआम टिप्पणी की, "डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार राज्य के तीनों क्षेत्रों में झगड़ों को रोकने में असफल रही है। बढ़ती हुई आतंकवादी हिंसा के कारण कांग्रेस (ई) लगातार अपना आधार खोती जा रही है।" उन्होंने नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) के प्रति नेशनल कांफ्रेंस द्वारा सकारात्मक रुख नहीं अपनाने पर उसकी आलोचना की। 16 सितम्बर को कुरेशी समूह द्वारा जम्मू में हुई विचारगोष्ठी में डॉ० फारूख अब्दुल्ला सरकार की प्रभावहीनता की निन्दा करते हुए यह चेतावनी दी गई कि जब तक अलगाववादी प्रवृत्तियों और कट्टर साम्प्रदायवादियों तथा आतंकवादी शक्तियों को नियंत्रित नहीं किया जाता, राज्य की ही नहीं वरन् पूरे राष्ट्र की सुरक्षा तथा अखंडता को खतरा बना रहेगा। 17 सितम्बर को कुरेशी ने एक प्रेस सम्मेलन में दुबारा

नेशनल-कान्फ्रेंस द्वारा कांग्रेस के प्रति किए जाने वाले सौतेले व्यवहार की शिकायत की। सितम्बर 5 और 6 को कुरेशी ने इसी प्रकार के बयान दिए। उन्होंने कहा—"कुछ समय से राज्य दुरवस्था की परिस्थितियों में जकड़ गया है। स्थिति सभलने के बजाय बद से बदतर होती जा रही है।" कुरेशी ने नेशनल कान्फ्रेंस के हाथों से पहल छीनने के लिए संघीय सरकार को सलाह दी कि उसे आतंकवादियों को वार्ता करने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए।

नेशनल कान्फ्रेंस भी कांग्रेस (ई) के प्रति शत्रुता रखने और उसकी आलोचना करने में कम कटु नहीं थी। निर्माण राज्य मंत्री और मुख्यमंत्री के छोटे भाई मुस्तफा कमाल ने 8 अगस्त को दिए गये अपने एक प्रेस साक्षात्कार में कहा, "राजीव-फारूख समझौता अपनी उपयोगिता खो चुका है। समय आ गया है जब दोनों पक्षों को स्थितियों का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए।" मध्य अक्तूबर में, नेशनल कान्फ्रेंस के 27 विधानसभा सदस्यों ने मोहम्मद शफी कुरेशी के रवैये की निन्दा की। उन्होंने उन पर राज्य में विघटनवाद को बढ़ावा देने और राजीव-फारूख समझौते को भंग करने के आरोप लगाये। डॉ० फारूख अब्दुल्ला की आन्तरिक भावनाएं 20 अक्तूबर को निराशा से भरी थी। उन्होंने कहा कि केन्द्रीय सरकार अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति पर चल रही है। उसने 'काश्मीर चेम्बर ऑफ कॉमर्स' में यहां तक कह डाला कि काश्मीरी मुसलमानों पर नई दिल्ली विश्वास नहीं करती। वह फिर से—एक ही समय में आलोचना और प्रशंसा करने की जानी-पहचानी चालों पर लौट आये। वह घाटी में एक बात कहते, दूसरी जम्मू में कहते और दिल्ली में और कुछ।

खुलेआम झगड़ा करना और शत्रुता तक प्रकट करना केवल गठबन्धन की पार्टियों तक सीमित नहीं था, यह दोनों पार्टियों के अन्दर भी समान रूप और विकृति में उपस्थित था। विशेष रूप से कांग्रेस (ई) में अन्दरूनी फूट थी। जुलाई में कांग्रेस के दो मुख्य धड़ों, जिनमें से एक के नेता पी० सी० सी० (ई) के अध्यक्ष मोहम्मद शफी कुरेशी थे और दूसरे के ऊर्जा मंत्री गुलाम रसूल कार के बीच सम्बन्ध पहले से भी अधिक बिगड़ गये। अगस्त में ऐसी स्थिति आ गई कि असन्तुष्ट धड़े के समूह जिसमें जी० आर० कार, मंगतराम शर्मा और मीर लालजान सम्मिलित थे, ने मांग की कि पी० सी० सी० (ई) को पुनर्गठित किया जाये, और जम्मू-काश्मीर कांग्रेस का कार्य देखने वाले ऑल इण्डिया कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी के० एन० सिंह के स्थान पर दूसरा व्यक्ति नियुक्त किया जाये। इसकी जवाबी कार्यवाही के रूप में कुरेशी धड़े ने 13 अगस्त को असन्तुष्ट नेताओं—मीर लालजान, मेहमूदा बेगम और रागे सिंह के नाम यह नोटिस जारी कर दिया कि वे स्पष्टीकरण दें कि उनको पार्टी विरोधी गतिविधियों के कारण पार्टी से क्यों निकाल दिया जाये? दोनों धड़ों के बीच सितम्बर-अक्तूबर तक शत्रुता बराबर बनी रही।

कांग्रेस (ई) की तरह नेशनल कान्फ्रेंस के झगड़े उतने मुखर नहीं थे। लेकिन डॉ० फारूख अब्दुल्ला और उनके पिछलग्गू साथियों के विरुद्ध अन्दर ही अन्दर एक जबर्दस्त रोष बना हुआ था। उदाहरणार्थ, अगस्त में उन्होंने कांग्रेस (ई) के मंत्री इफ्तिखार हुसैन अंसारी के साथ बडगाम जाने का निर्णय किया। यह पार्टी

के एक प्रभावशाली धड़े, जिसे श्रीमती शेख अब्दुल्ला और जनरल सेक्रेटरी शेख नाजिर का समर्थन प्राप्त था, पसन्द नहीं किया गया। डॉ० फारुख को यह यात्रा स्थगित करने के लिए विवश कर दिया गया। इसी प्रकार उन्हें पार्टी के अन्दरूनी झगड़ों के कारण तराल जाना स्थगित करना पड़ा। नेशनल कांफ्रेंस की युवा शाखा के दो दलों में 10 सितम्बर को जम्मू में खुलेआम मुठभेड़ हुई। लाठियां और पैने हथियारों का प्रयोग किया गया। इसमें एक दल के नेता थे मंत्री अली मोहम्मद सागर और दूसरे के बशीर अहमद हंस।

पर्यटन मंत्री आर० एस० छिब ने 16 सितम्बर को त्यागपत्र दे दिया। छिब ने अपने त्यागपत्र देने का कारण 'सरकार की दिशाहीनता' तथा प्रशासन में 'अभूतपूर्व भ्रष्टाचार और अव्यवस्था' बताया। उन्होंने कहा कि राज्य के तीनों क्षेत्रों में अशांति फैली हुई है और कर्मचारियों को भर्ती करने के तरीकों ने सरकार को जनता में बदनाम कर दिया है।

कार्यकर्ताओं के त्यागपत्रों और पार्टी से अपने सम्बन्धों को समाप्त करने की घोषणाओं के कारण नेशनल कांफ्रेंस में अन्दर तक कमजोरी फैलती जा रही थी। स्थानीय पत्रों में लगभग नित्य इस सम्बन्ध में लोग पैसा देकर विज्ञापन दे रहे थे। 8 अगस्त को विघटनकारी संगठनों ने एक बयान जारी किया जिसमें उन्होंने नेशनल-कांफ्रेंस के कार्यकर्ताओं और सदस्यो से कहा कि वे अपनी पार्टी से इस्तीफा दे देवें या उसके कुफलों का सामना करें। इस धमकी की सच्चाई को सिद्ध करने के लिए नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं के घरों के सामने बम विस्फोट किए गये। नेशनल कांफ्रेंस के काश्मीर प्रांत के प्रेसीडेण्ट अब्दुल सलाम देवा के घर के निकट 12 अगस्त को बम विस्फोट हुआ और 13 अगस्त को गंडेरबल के प्रमुख कार्यकर्ता गुलाम अहमद मीर के घर के पास। 15 अगस्त को ऐसे दो बम धमाके हुए, पहला अब्दुल समद तेली तथा दूसरा गुलाम रसूल के घर के नजदीक। दोनों ही नेशनल कांफ्रेंस के वरिष्ठ नेता थे। आतंकवादियों ने 21 अगस्त को नेशनल कांफ्रेंस के जैनाकदल ब्लाक के प्रेसीडेण्ट मोहम्मद यूसुफ हलवाई की गोली मारकर हत्या कर दी। अक्तूबर माह में नेशनल कांफ्रेंस के वरिष्ठ नेता और डॉ० फारूख अब्दुल्ला के निकट सम्बन्धी शेख रशीद ने अपने घर की चारदीवारी के अन्दर बम विस्फोट होने के तत्काल बाद इस्तीफा दे दिया। अपने त्याग-पत्र में शेख रसीद ने डॉ० फारूख अब्दुल्ला द्वारा नेशनल कांफ्रेंस के मूल सिद्धान्तों को त्यागने के लिए उनकी आलोचना की।

प्रचार आक्रमण

हिंसक हमले—गोलीबारी और बम के धमाकों के साथ हड़ताल और प्रचार आक्रमण भी जारी था। उदाहरणार्थ, अगस्त में एक हड़ताल 13 दिन तक चली जबकि किसी भी राजनैतिक पार्टी ने इसका आह्वान नहीं किया था। श्रीनगर के एक दुकानदार ने 25 अगस्त को दुख के साथ एक प्रेस संवाददाता से कहा था, "इस साल हमारे यहां कार्य दिवसों से अधिक 'बन्द' और हड़तालें हुई हैं।"

आतंकवादियों की एक भूमिगत प्रचार व्यवस्था द्वारा हिंसक घटनाओं और हड़तालों के बारे में लगातार प्रचार किया जाता था। राज्य सरकार द्वारा

इस प्रचार के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए कोई भी जवाबी कार्यवाही नहीं की गई। इसके फलस्वरूप प्रचार-पत्रों, दीवार-पत्रों, पोस्टरों, कैसेट्स और अन्य प्रचार सामग्री जनता के मस्तिष्क को अपनी धारा में बहाने लगी। वास्तव में विध्वंसकारियों ने घाटी की जनता के बहुत बड़े भाग के दिमागों पर अपना नियन्त्रण कर लिया था।

चुनाव और आतंकवाद को बढ़ावा

अक्तूबर के अन्त तक सभी सम्बन्धित लोगों को स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि राज्य सरकार का कोई भी ऐसा विभाग नहीं है जो कि इस संकटपूर्ण बीमारी से ग्रस्त न हो और वैसी परिस्थितियों में लोकसभा के चुनाव करवाना राज्य में विध्वंसकारी तथा आतंकवादी शक्तियों को बढ़ावा देगा।

काश्मीर में लोकसभा के चुनाव करवाने का निर्णय लेने वालों का आडम्बर और उथलापन वास्तव में आश्चर्यजनक था। वे क्या आशा करते थे? क्या वे [illegible]

[illegible]

[illegible]

डालेगी? क्या वोटर को इस व्यवस्था पर विश्वास रह गया था जिसका डिप्टी कमिश्नर 'ट्रांसफर वारन्ट' पर हस्ताक्षर करने जैसा अपना प्राथमिक कर्तव्य करने का भी इच्छुक नहीं था और जिसके एडवोकेट जनरल और एडवोकेट उच्च न्यायालय में प्रतीकात्मक रूप तक से उपस्थित होने से इन्कार कर रहे थे?

निर्णय लेने वालों को वास्तविक सच्चाई की कोई समझ, कोई पकड़ नहीं थी। वे भ्रमों के संसार में रह रहे थे। अपने-आपको धोखा देने की उनकी अनन्त क्षमता पूरी तरह उजागर हो चुकी थी। 22 नवम्बर को, मतदान के दिन शहर सुनसान पड़े थे और गांव सोए हुए। विध्वंसकारियों ने दिन में नागरिक कर्फ्यू और रात में (ब्लैक आउट) अंधेरा रखने की घोषणा कर दी थी। मतदाताओं को ललचाने के लिए कुछ मतदान केन्द्रों के आगे टी० वी० सेट्स रखवा दिए गये थे। जिनके पास रखे विज्ञापन-पत्रक में लिखा था—"कोई भी जो अपना मत डालेगा, उसे यह उपहारस्वरूप मिलेगा।" कुछ दूसरे मतदान केन्द्रों के पास कफन रखे थे जिन पर लिखा था—"जो कोई अपना मत डालेगा, उसे यह मिलेगा।" सरकारी सत्ता का इतना पतन हो चुका था कि उसका इस प्रकार मज़ाक उड़ाया जा सकता था।

बहुत ही कम लोगों द्वारा डाले गये वोटों ने सारे संसार को यह दिखा दिया कि घाटी में अशांति व्याप्त है और नेशनल कांफ्रेंस तथा कांग्रेस (ई) और कुछ नहीं केवल शव मात्र हैं।

गुलाम रसूल सोपोर नगर के रहने वाले हैं और वह राज्य सरकार के मंत्री थे। वह विधानसभा के अध्यक्ष हबीबुल्ला का भी गृह-नगर है। पूर्ववर्ती नेशनल कांफ्रेंस के सदस्य अब्दुल अहद वकील भी वहीं के रहने वाले हैं। इसके बावजूद सोपोर में केवल 5 वोट पड़े। बारामूला शहर के मुख्य भाग में एक भी वोट नहीं पड़ा। दूसरे मतदान केन्द्रों में भी यही स्थिति थी।

श्रीनगर शहर में जहां से बॉयकाट के कारण मोहम्मद शफी वट्ट निर्विरोध निर्वाचित हुए थे, वहुत-सी इमारतों पर जे० के० एल० एफ० के झंडे लहराते थे। पूरी कोशिश एक मजाक और त्रासदी बन गयी थी। नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) ने एक दयनीय प्रदर्शन किया। कोई चुनाव सभा नहीं हुई, संगठन का कोई कार्य नहीं किया गया और यहां तक कि चुनाव प्रत्याशी अपने घरों से वाहर नहीं निकले।

प्रेस द्वारा 22 नवम्बर—मतदान दिवस का वर्णन जैसा किया गया उससे किसी को विध्वंसकारियों के पूर्ण प्रभाव और आपसी समझौते में वंधी राजनैतिक पार्टियों की पूर्ण उदासीनता के वारे में कोई सन्देह नहीं रहता। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता ने लिखा—सच्चाई यह है कि इस संवाददाता को आज काश्मीर घाटी में वारामूला और अनन्तनाग के चुनाव क्षेत्रों में आने वाले गांवों के किसी भी मतदान केन्द्र पर एक भी मतदाता नहीं मिला। कहीं भी किसी प्रत्याशी का, यहां तक कि नेशनल कांफ्रेंस के संसद सदस्य प्रो० सइफुद्दीन सोज का भी कोई चुनाव एजेन्ट नहीं दिखाई दिया। राज्य की राजधानी में, जिसने पहले से ही नेशनल कांफ्रेंस के नामजद प्रत्याशी को विना चुनाव कराये भेजा है, पूरी हड़ताल रही। सरकारी कार्यालयों में कर्मचारियों की उपस्थिति नगण्य थी।" इण्डियन एक्सप्रेस ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि वहां कोई कर्फ्यू नहीं था, कोई पोलिंग एजेन्ट नहीं था। उसने लिखा—काश्मीर घाटी में नवम्बर 22 जनता की गतिविधियों का दिन होने के वजाय पूरी तरह से पंगु दिवस था, अधिकांश गांवों और शहरों में पूरी तरह वंध लगा था। वारामूला और अनन्तनाग के चुनाव क्षेत्रों में मतदान कन्द्रों पर मतदाताओं की कोई पंक्ति नहीं दिखाई दी। अधिकांश मतदान केन्द्रों पर सत्ताधारी नेशनल कांफ्रेंस तक के पोलिंग एजेन्ट नहीं थे। घाटी के दूसरे वड़े शहर अनन्तनाग और वारामूला, सोपोर और शोफियां जैसे दूसरे केन्द्रों में मतदान लगभग एक प्रतिशत हुआ। वहिष्कार अह्वान अंतिम चरण के रूप में अनन्तनाग, वारामूला, श्रीनगर और दूसरे शहरों की अधिकांश वस्तियों में रोशनियां वुझा दी गईं।" पेट्रियॉट की टिप्पणी भी इसी प्रकार की थी। उसने लिखा—काश्मीर में हिंसावादियों का हुक्म चलता है, उन्हें मतदान का वहिष्कार करने में मिली सफलता से यह सत्य रेखांकित होता है कि नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (ई) के गठबन्धन की शक्ति कहां तक गत तीन वर्षों में क्षय हो चुकी है। उनका चुनावों से हट जाना दयनीय था। शेख अब्दुल्ला और जनमत संग्रह मोर्चा के भयोत्पादक दिनों में भी मतदान वहिष्कार का कभी इतना चौंका देने वाला पालन नहीं किया गया था।

यह तथ्य दुख और व्यंग्यपूर्ण था कि लोकसभा के लिए चुने जाने के तत्काल वाद मोहम्मद शफी वट्ट और सैफुद्दीन शोज दोनों ने ऐसे वयान दिए जो राष्ट्रीय हित के विरुद्ध थे। वट्ट ने कहा, "काश्मीर में फैली वर्तमान अशांति के लिए केन्द्र और कांग्रेस (ई) जिम्मेवार हैं। यह हालात 'केन्द्र के गलत कामों' का नतीजा है जो कि जम्मू और काश्मीर से अपने उपनिवेश की तरह व्यवहार करते हैं। यहां रहने वाले लोगों के साथ दूसरे दर्जे के नागरिकों की तरह व्यवहार किया जाता है। केन्द्र ने 1947 में काश्मीर की जनता से जो वायदा किया था उसको पूरा नहीं किया।" 1947 के वायदे से क्या मतलव है ? स्पष्टतः इसमें

यहाँ जनमत संग्रह का सन्दर्भ है। गोरे ने भी इसी प्रकार का बयान दिया।

दोगलापन

शफी बट्ट और सैफुद्दीन सोज के दृष्टिकोण और प्रतिनिधि-चरित्र के बारे में उपर्युक्त तथ्य बहुत कुछ बताते हैं। और फिर भी ये लोग हैं जो कश्मीर की जनता की ओर से भारतीय संसद में बैठते हैं। ये जोरदार शोर मचाते हैं, गलत सूचनाएं और भ्रामक धारणाएं फैलाते हैं। ये दोनों तरह से कश्मीर की समस्या को पेचीदा बनाते हैं। ये राष्ट्रवादियों को जनमत संग्रह और 1953 से पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में कुटिल रूप से बोल कर परेशान करते हैं। ये कश्मीरी युवाओं में अपने आडम्बर से क्रोध उत्पन्न करते हैं। उनका दो मुंहापन केवल उनके अपने भ्रमों को बढ़ाना है और कृत्रिमता तथा गलतबयानी के सामान्य वातावरण को मजबूत करता है। ये यह अनुभव नहीं करते कि दोहरेपन और धोखे के अपने पत्ते को वह जरूरत से ज्यादा बार खेल चुके हैं।

घाटी में लोक सभा चुनावों के दौरान जनता की दृष्टि में नेशनल कान्फ्रेंस (एफ) और कांग्रेस (इ) की नपुंसकता और असमर्थता के पूरी तरह उभर आने के बाद विध्वंस की लहर और आगे बढ़ गई। पहली दिसम्बर को मैसूमा बाजार स्थित पुलिस स्टेशन के एस० एच० ओ० मेहरुल्ला की क्रूरतापूर्वक हत्या करके आतंकवादियों ने पहले से ही बिखरे हुए पुलिस के नैतिक साहस पर घातक हमला किया। उसका शव बाजार में घण्टों वैसा ही पड़ा रहा। राजधानी आतंक से पंगु हो गई और प्रशासन नपुंसक तथा निष्क्रिय। मेहरुल्ला के पुलिस साथियों ने भी साहस ही नहीं वरन् दया तक त्याग दी। नेतृत्वहीनता और इससे उत्पन्न भय ने उनकी आंखों में जमे हुए आंसुओं तक को छीन लिया।

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के जन्म दिवस 5 दिसम्बर को विघटनकारियों के कारण श्रीनगर में पूरी हड़ताल रखी गयी और रात में अंधेरा रखा गया। जब शेख अब्दुल्ला के नाम का बोल बाला था उस समय बहुत बड़ी संख्या में सड़कों, अस्पतालों, स्थानों और भवनों का नाम उनके ऊपर रखा गया था। कभी-कभी मजाक में कहा जाता था राज्य में जो भी चीज है 'शेरेकश्मीर' है — खाना जो हम खाते हैं, हवा जो सांस में लेते हैं, सड़क जिस पर हम चलते हैं, स्टेडियम जिस पर हम कार दौड़ाते हैं, अस्पताल जिसमें हम जाते हैं, पार्क और बगीचे जहां हम घूमने जाते हैं। लेकिन 5 दिसम्बर, 1989 को नेशनल कान्फ्रेंस का एक भी कार्यकर्ता या नेता हड़ताल और 'ब्लैक आउट' को असफल करने के लिए बाहर नहीं निकला। नेशनल कान्फ्रेंस की अपने 'राष्ट्रपिता' या 'बाबाए कौम' के प्रति प्रतिबद्धता कहां चली गयी थी? उसका छल-कपट और पाखण्ड स्पष्ट हो चुका था। और यही दशा नेशनल कान्फ्रेंस के पतन की थी।

डॉ० रुबैया का अपहरण

एक के बाद दूसरी मिलने वाली सफलता ने आतंकवादी चीते के लिए पुष्टिकारक औषधि का काम किया। उसकी आंखों की चमक और तेज हो गयी तथा उसके पंजे अधिक जोखिम भरे। उसके दांत तीव्र हो उठे और उन्हें उसने

स्वतन्त्रतापूर्वक फैला लिया। वह क्षितिज के एक बड़े भाग पर मंडराने लगी। उसने अधिक विश्वास संजो लिया और अपने शिकार के लिए उसने सत्ता के महल की छत पर बने बगीचे को ही चुना।

8 दिसम्बर को जे० के० एल० एफ० के आतंकवादियों ने केन्द्रीय गृहमन्त्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की पुत्री डॉ० रुबैया सईद का अपहरण कर लिया, जिसकी आकस्मिकता से सारा राष्ट्र आश्चर्य से चकित रह गया। सारा राष्ट्र पांच दिनों तक परेशान और भयभीत रहा। राज्य और केन्द्रीय अधिकारी अन्धकार में खोज बीन करते रहे। चेतावनियों के बावजूद अपनी आंखों पर उन्होंने जो पट्टा पहले से बांध रखा था, उसने उन्हें कोई भी सुराग पाने के योग्य नहीं रखा। अपहरण के समय मुख्यमन्त्री डॉ० फारूख अब्दुल्ला विदेश में थे और उनके मन्त्रि परिषद् के साथी टाल-मटोल कर रहे थे। लगभग 20 मुख्य मुसलिम संगठनों ने इस अपहरण की निन्दा की। पाकिस्तान के कुछ नेताओं ने जिनमें जमाते उल्मे इस्लामी के अध्यक्ष मौलाना फ़जल-उल-इस्लाम भी शामिल थे इस अपहरण को गैर-इस्लामी करार दिया। मीरवायज मौलवी फारूख ने भी इसे इस्लाम-विरोधी कहा। इस सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत 12 दिसम्बर को जे० के० लिब्रेशन फ्रन्ट के पाकिस्तान आधारित चीफ अमानुल्लाखां ने डॉ० रुबैया सईद की हत्या करने की धमकी को फिर दोहराया। अन्ततोगत्वा राज्य ने आतंकवादियों के सामने समर्पण कर दिया। चोटी के पांच आतंकवादी—हमीद शेख, शेरखां, जावेद अहमद जारगेर, मोहम्मद कलवल और मोहम्मद अल्ताफ़ बट्ट को डॉ० रुबैया सईद की मुक्ति को सुरक्षित करने के लिए छोड़ दिया गया।

आतंकवादी चील को इस तरह एक शानदार सफलता प्राप्त हो गयी। वह अपने क्षेत्र की मालिक बन बैठी। भयभीत घाटी के ऊपर वह बदशुगनी की तरह मंडराने लगी।

डॉ० रुबैया के अपहरण ने राज्य के प्रशासन की पूर्ण प्रभावहीनता का प्रदर्शन कर दिया था। छोड़े गए आतंकवादियों का अपार भीड़ द्वारा जो उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया, जो अपना विजयोत्सव मना रहे थे, उससे स्पष्ट हो गया, कि आतंकवादियों का पूर्ण प्रभुत्व है और लोग उस पक्ष में चले गए हैं जिसकी विजय में उन्हें कोई सन्देह नहीं है। जैसा कि अवश्यम्भावी था आतंकवादी घटनाओं की गति और घातकता बढ़ने लगी। 17 दिसम्बर को सुरक्षा सैनिकों पर कर्फ्यू की अवधि में ही गोलियां चलायी गईं। 20 दिसम्बर को यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया की रेजीडेन्सी रोड स्थित शाखा को लूट लिया गया और 21 दिसम्बर को इलाहाबाद बैंक के सुरक्षा गार्ड को शहर के बीच गोली से मार दिया गया। दो बम विस्फोटों में पांच लोगों की और जानें गईं। 24 दिसम्बर को दो पुलिस वाले मार डाले गए और सात गम्भीर रूप से घायल हुए। मिसेज आइशा अमीन जिन्होंने रुबैया सईद के अपहरण की निन्दा की थी, के घर की चार दीवारी में एक शक्तिशाली बम विस्फोट हुआ। 25 दिसम्बर को जम्मू और काश्मीर सशस्त्र पुलिस का एक सिपाही खनियार में गोली से मार दिया गया। अनन्तनाग के एक जाने-माने पत्रकार प्रेमनाथ बट्ट की 27 दिसम्बर को हत्या कर दी गई। काश्मीर विश्वविद्यालय के निकट पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेनडेन्ट को गोली मार

कर गम्भीर रूप मे घायल कर दिया गया। उसी दिन घाटी मे पाच बम विस्फोट हुए। 28 दिसम्बर को अनन्तनाग मे हस्तकला विभाग के भवन को बम विस्फोट करके बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया गया। 29 दिसम्बर को दो पुलिस वालो पर गोली चलायी गई। एक सब इन्स्पेक्टर मर गया और दूसरा पुलिस का डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट गम्भीर रूप मे जख्मी हो गया। उसी दिन एक 'एक्स-सर्विसमैन' कुपवारा मे गोली से मार दिया गया और घाटी के पांच भिन्न नगरो मे बम विस्फोट हुए। हरी पर्वत के पृथ्वी उपग्रह स्टेशन पर हथगोला भी फेंका गया। 1989 का वर्ष खून-खराबे और हिंसा के ज्वर के साथ समाप्त हुआ।

सन् 1990 के भोर की सूचना एक शक्तिशाली बम विस्फोट ने दी जिसमे सात लोग गम्भीर रूप से घायल हो गए। 2 जनवरी को जो झगड़े हुए उनमे दो लोग मारे गए और नौ घायल हुए। 3 जनवरी को इन्टेलीजेंस ब्यूरो के इन्स्पेक्टर को गोली से मार दिया गया। 5 जनवरी को जिस दिन सयुक्त राष्ट्र अधिकारियों के प्रथम दल को श्रीनगर पहुंचना था—आत्म-निर्णय दिवस के रूप मे मनाया गया। कर्फ्यू के दौरान झगड़े और विस्फोट हुए जिसमे एक आदमी मारा गया तथा अनेकों घायल हुए। 6 जनवरी को हिंसक मुठभेड़ें हुई और घाटी चार विस्फोटों से हिल उठी जिसमे तीस लोग घायल हुए। दूसरे दिन श्रीनगर, बारामूला, सोपोर और बदगाम मे हुए झगड़ो में पचास लोग घायल हो गए।

8 जनवरी को घाटी मे हिंसा नई ऊंचाइयों पर पहुच गई, जिसमे तेरह लोग मारे गए और सौ लोग घायल हुए। ईदगाह के निकट एक एम्ब्राइडरी (कढ़ाई) केन्द्र मे आग लगा दी गई। आतकवाद के प्रभाव को बढ़ाने की कोशिश मे, हैदरपुर में एक पुलिस कर्मचारी की आखो पर पट्टी बाध दी गई, मुह बन्द कर दिया गया फिर उसको क्रूरतापूर्वक यन्त्रणाए दी गई और उसके बाद एक पेड़ पर लटका कर फासी दे दी गई। सालेर गाव की मस्जिद के इमाम को भी इसी प्रकार यन्त्रणा देकर फांसी दी गई।

अस्तित्वहीन राज्य, बहरी केन्द्र सरकार

कोई यह न अनुभव करे कि मैं एक निराशाजनक चित्र खीच रहा हूं, मैं उस समय के कुछ स्वतन्त्र प्रेक्षको के वर्णनो को प्रस्तुत करूगा। मैंने प्रत्येक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय दैनिक पत्र के एक या दो तत्कालीन विवरण चुने हैं। दृष्टिकोण की समता किसी को इस बारे में संशय मे नहीं रखती कि 19 जनवरी, 1990 को मेरे वहां पहुचने से पूर्व ही राष्ट्र ने वास्तव में काश्मीर को खो दिया था।

'स्टेट्समैन' के संजीव मिगलानी ने 6 नवम्बर, 1989 को निम्नलिखित विवरण दिया था।

"काश्मीर घाटी को हिंसावादियो की दया पर पूरी तरह छोड़ा जा चुका है। वर्तमान स्थिति यह है कि राष्ट्र काश्मीर को लगभग खो चुका है। प्रशासन कई माह पूर्व मे समाप्त हो चुका है। लेकिन इसमे हानि यह है कि वह कोमल व्यवस्था को एक औपचारिकता देता। हिंसावादियो को सन्देश देता है—'ठीक है, हम जा रहे हैं। तुम जो चाहो करो।"

लोगो को प्रशासन की अनुपस्थिति और पूरी तरह बहरा केन्द्र किसी प्रकार

का सहारा नहीं दे सकते थे। यदि मुजाहिदों के प्रति पहले डर के कारण सहानुभूति थी तो अब विश्वास के कारण। लोग अब बन्दूकधारियों के लिए लड़ने को तैयार थे जिन्हें स्वतन्त्रता संग्रामी के रूप में स्वीकार कर लिया गया था।

यदि कानून और व्यवस्था भंग हो चुकी है तो इसका कारण है राजनैतिक नेताओं का मृतप्राय हो जाना।

वास्तव में, वनिहाल के उत्तर के क्षेत्र में एक पार्टी विहीन राज्य है।

इससे पूर्व 26 अगस्त, 1989 को 'स्टेट्समैन' के आवासी सम्पादक एम० एल० कोटरू ने श्रीनगर से भेजी अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"यदि आप जम्मू और काश्मीर राज्य तथा केन्द्र के शासक वर्ग के दिवा स्वप्नों की कल्पनाओं की विना सहायता के स्वयं स्थिति का निरीक्षण करने का निश्चय करें तो आप इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि हिंसावादियों द्वारा दी गयी चुनौती का वास्तव में कोई सामना नहीं करना चाहता।"

डॉ० अब्दुल्ला के विरुद्ध वर्तमान स्थिति सबसे बड़ा अविश्वास प्रस्ताव है।

'पेट्रियाट' ने अपनी 24 अक्तूबर, 1989 की टिप्पणी में दुःख जताया :

"काश्मीर क्षेत्र देश की जानकारी के विना संकट की ओर बढ़ रहा है। श्रीनगर में रोज केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और संस्थाओं को लक्ष्य बना कर बम विस्फोट किए जाते हैं। घाटी में नेतृत्व की शून्यता है। पाकिस्तान आधारित काश्मीर मुक्ति गठबन्धन का घाटी में अशान्ति-पूर्ण प्रभाव एक मुख्य संकट बनता जा रहा है।"

23 नवम्बर, 1989 के संस्करण में टाइम्स ऑफ इंडिया ने टिप्पणी की थी :

पहले की खुशहाल और अब स्पष्ट रूप से असहाय काश्मीर घाटी में ऐसा लगता है मानो आतंकवादियों की तोड़-फोड़ और गैरकानूनी कार्रवाइयों के प्रति एक विचित्र मौन षड्यन्त्र रचा जा चुका है। चुनावों की घोषणा के बहुत पहले से पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादियों द्वारा होने वाली नित्य प्रति की हिंसक घटनायें नई दिल्ली की ओर से जरा भी चिन्ता व्यक्त किये विना जारी हैं और मुख्यमन्त्री डा० फारूख अब्दुल्ला के द्वारा गर्जना पूर्ण भाषण देने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया गया है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के 17 दिसम्बर, 1989 के संस्करण में उसके विशेष संवाददाता ने लिखा—

"सर्व शक्तिशाली नेशनल कांफ्रेंस जो घाटी के प्रत्येक गांव में अपने कार्यकर्ताओं के होने का दावा करती है, आतंकवाद और हिंसावाद का सामना करने में गत दो सालों से दयनीय रूप से असफल रही है। अब हिंसावादी सामने आये, पार्टी के कार्यकर्ताओं ने उनके विरुद्ध संघर्ष करने और जनमत संगठित करने के बजाय निष्क्रिय बैठना और स्थितियों को स्वाभाविक रूप से बढ़ते देना पसन्द किया। यही कारण है कि हिंसावादियों को गांव और शहरों दोनों क्षेत्रों से सहायता मिली। इसके साथ निष्क्रिय राज्य प्रशासन ने स्थिति को बिगड़ते जाने दिया। मुख्यमन्त्री ने श्रोताओं के सम्मुख हिंसा को समाप्त करने और हिंसावादियों को पकड़ने के सम्बन्ध में बहादुरी भरे भाषण दिए लेकिन यह सब अर्थहीन सिद्ध हुआ। गत दो वर्षों में घाटी में लगभग सौ लोग हिंसावादियों और पुलिस द्वारा मारे जा चुके हैं। 1983 के चुनाव से भी पहले जम्मू और काश्मीर में सरकार

के विरुद्ध यह आरोप था कि उसने बहुत से ऐसे काश्मीरी जवानों को पुलिस में भर्ती कर लिया है जिनका कि हिंसक संगठन अलफतेह से सम्बन्ध था।

'नेशनल हेराल्ड' के सम्पादक ने अपने 16 दिसम्बर, 1989 के लेख में लिखा था—

"निरपराध लोग मारे जा चुके हैं; बमों के विस्फोट और बड़ी संख्या में बन्द हुए हैं।"

'द हिन्दू' ने जनवरी 11 की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा—

राज्य प्रशासन सामान्य स्थिति की झलक मात्र तक लाने में असमर्थ रहा है। इस सप्ताह के प्रारम्भ में खूनी घटनाओं के फलस्वरूप पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने के कारण आठ लोगों ने अपनी जानें गवां दी। इसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि सरकार के पास स्थिति को नियन्त्रण में करने का कोई उपाय नहीं है। कर्फ्यू लगा होने पर भी तोड़-फोड़ करने वाले घाटी के विभिन्न भागों में बमों का विस्फोट करने और सार्वजनिक इमारतों में आग लगाने में कामयाब हो जाते हैं। ये कारनामे प्रशासन की पूरी निष्क्रियता को भली प्रकार उजागर करते हैं। डॉ० फारूख अब्दुल्ला प्रशासनिक रूप में ही नहीं वरन् राजनैतिक रूप से भी असफल रहे हैं।"

डॉ० फारूख अब्दुल्ला के राज्य में व्याप्त स्थिति के बारे में लिखते हुए प्रसिद्ध पत्रकार निखिल चक्रवर्ती ने अपनी राजनैतिक टिप्पणी में 11 मार्च, 1990 को कहा था

"उस अवधि में दो बार घाटी में जाने के फलस्वरूप होने वाले व्यक्तिगत अनुभवों से यह संवाददाता बहुत ही कष्टप्रद निष्कर्ष पर पहुंचा और वह यह कि फारूख अब्दुल्ला के राजनैतिक उच्च प्रदर्शन की आड़ में उनका मन्त्रिमंडल भ्रष्टाचार और कुप्रशासन के प्रतीक रूप में उभरा है।

श्री राजीव गांधी द्वारा 6 मार्च को प्रधानमन्त्री को लिखे पत्र में दिए विकृत विवरण के कारण काश्मीर घाटी के कठिन दिनों का वास्तविक वर्णन देना आवश्यक हो गया था। कोई भी श्री गांधी और डॉ० अब्दुल्ला को यह स्मरण दिलाना चाहेगा कि विगत स्वतन्त्रता दिवस 15 अगस्त को क्या हुआ था, जब विघटनकारियों ने खुले आम लोगों से बलपूर्वक 'ब्लेकआऊट' करवाया था और कई स्थानों पर पाकिस्तानी झण्डे फहराये गये थे।

पाकिस्तानी प्रेस द्वारा भी इस अव्यवस्था पूर्ण स्थिति पर ध्यान दिया गया था। पाकिस्तान के प्रसिद्ध दैनिक 'नेशन' ने दिसम्बर 1989 में दो बार काश्मीर की स्थिति पर सम्पादकीय टिप्पणी लिखी। एक टिप्पणी में कहा गया था—

"श्रीनगर का सन्देश स्पष्ट और प्रबल है। घाटी में अब नई दिल्ली के आदेश नहीं चलते तथा शेख अब्दुल्ला के पास अपने छिन्न-भिन्न होते प्रशासन को एकसूत्र में बांधने के बजाय और दूसरे मोहक कार्य करने को है।"

यहां तक कि विदेशी प्रेस ने भी इस दुखद स्थिति पर ध्यान दिया। जनवरी 1990 के अन्तिम सप्ताह में 'न्यूयार्क टाइम्स इन्टरनेशनल' ने अपनी रिपोर्ट में लिखा—

"बहुसंख्यक हिन्दुओं वाले भारत में जम्मू और काश्मीर अकेला राज्य है जहां मुसलमानों का बहुमत है और वहां पिछले लगभग दो वर्षों से अलगाववादी

भावनाओं का पुनरुत्थान हो रहा है। भारतीय राज्य जम्मू और काश्मीर की गर्मियों की राजधानी श्रीनगर में हर जगह मीनारों पर लगे लाउडस्पीकरों द्वारा आह्वान होते थे "बहादुर काश्मीरियो! अपने जीवन को बलिदान करने का समय आ गया है।' तथापि वी० पी० सिंह ने स्वीकार किया है कि काश्मीरियों की अनेको न्यायोचित शिकायतें हैं। उन्होंने दो सप्ताह पूर्व जगमोहन को वहां का गवर्नर नियुक्त किया है। वह एक कुशल प्रशासक हैं, उन्होंने काश्मीर में 1984 से 1989 प्रशासन संभाला है। इसके परिणाम स्वरूप जम्मू और काश्मीर के अलोकप्रिय मुख्यमन्त्री फारूख अब्दुल्ला ने विरोध में अपना इस्तीफा दे दिया है। अपनी सद्इच्छा प्रकट करने के लिए जगमोहन ने कर्फ्यू के दौरान भोजन बांटा, नयी नौकरियों की रचना की और लगभग 3 हजार डॉलर उन तीन नागरिकों के परिवारों को दिए जो भारतीय सुरक्षा सैनिकों द्वारा मारे गए थे। लेकिन अभी भी काश्मीर की हालत इतनी उत्तेजनापूर्ण है कि वह ऐसे प्रतीकात्मक कार्यों से शान्त नहीं हो सकती।

केवल प्रेस और राजनीति समीक्षक ही नहीं वरन् अनेकों प्रमुख नेता दुर्व्यवस्था पर विलाप कर रहे थे। उदाहरणार्थ, 25 अगस्त, 1989 को, भूतपूर्व मुख्यमन्त्री मीर कासिम ने, जिन्हें अब्दुल्ला परिवार का विरोधी नहीं समझा जा सकता, कहा था—'अगर हिंसा से जनता की रक्षा नहीं की जाती, फिर हालात में सुधार नहीं हो सकेगा।'

मैंने वहां पहुंचने पर अपने दोनों सलाहकारों वेद मरवाह और जमील कुरेशी को स्थिति पर एक संक्षिप्त अनुमान बनाने के लिए कहा। वेद मरवाह की रिपोर्ट का सम्बन्धित भाग प्रथम अध्याय में पहले ही दिया जा चुका है कुरेशी ने उस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा वह निम्नलिखित है—

लगभग सभी लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि काश्मीर या तो स्वतन्त्र होने अथवा जनवरी, 1990 को ही पाकिस्तान में शामिल होने जा रहा है। वास्तव में उग्रवादियों द्वारा यह वायदा किया गया था कि 26 जनवरी ही वह निर्धारित मुक्ति दिवस होगा जब कि काश्मीरी जनता के स्वतन्त्र गणराज्य की घोषणा की जायेगी और विदेशी संवाददाताओं को नये राज्य का जन्म देखने के लिए आमन्त्रित किया जाएगा। सरकारी आदेश उसके नियन्त्रण कक्ष और उसके दीवार से आगे नहीं चलते थे। पुलिस का नैतिक बल पूरी तरह गिर चुका था। पुलिस के अन्दर ही उस समय विद्रोह हो गया था जब जम्मू और काश्मीर की सशस्त्र पुलिस ने अपने उच्च अधिकारियों को घेर लिया था और उनसे बन्दूक की नोक पर रक्षा धन वसूल किया था। उग्रवादियों के पीछे पड़ने के बजाय वे खुद ही उनकी सहायता कर रहे और भड़का रहे थे।"

उपर्युक्त घटनाओं और विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जनवरी 19, 1990 से पूर्व ही काश्मीर को उन्मत्त दुर्व्यवस्था और जंगली अराजकता जकड़ चुकी थी। वास्तव में डॉ० रुबैया सईद के अपहरण (8 दिसम्बर, 1989) के दिन से पहले ही जब कि आतंकवाद रूपी चील ने राज्य पर पूरी भीषणता से झपट्टा मारा था, 1600 हिंसक वारदातें हो चुकी थीं, इनमें 351 बम विस्फोटों की थीं जो वर्ष 1989 में हुए थे। घाटी हिंसा, खून-खराबा और अत्याचार से प्रताड़ित हो रही थी। निरपराधिता के संस्कार पूरी तरह डूब चुके थे। विशाल प्रशास-

कोय व्यवस्था एक फैले हुए जीवन रहित आक्टोपस (अष्टपादी जीव) की तरह थी। काश्मीरी आतंकवादी वास्तविक शासक बन गए थे। उनके सम्मुख इतनी हार मानी जा चुकी थी कि जनता के मस्तिक पर उनका प्रभुत्व हो गया था। वास्तव में यह दुर्भाग्यपूर्ण है और यह राष्ट्र की रुग्णता का एक माप है कि इस अध्याय में तथा 'आतंकवाद और विघटन की प्रकृति तथा स्वरूप' अध्याय में दिए गए कठोर सत्यों को बिना समझे हुए जनता का एक भाग 'दुश्शासन के स्वामियों के अभिवचनों और उनकी प्रशंसा का नाद करने वालों तथा उनके समर्थकों की बातों में विश्वास कर लेता है। क्या मृत्यु से भी अधिक बुरी कोई स्थिति हो सकती है। काश्मीर की त्रासदी का कारण उसके शासकों का बहरापन है जो प्रत्यक्ष रूप से या दूर-नियन्त्रण से शासन करते हैं और वे उसकी मृत्यु की घरघराहट तक नहीं सुन सकते।

नवां अध्याय

आक्रमण और प्रत्याक्रमण

"मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि मैं दूसरों की पीड़ा को ऐसे अनुभव कर सकूं मानो मैं उनके शरीर में वास कर रहा हूं और यह कि मैं उनकी पीड़ा को दूर करने की और उन्हें प्रसन्नता देने की शक्ति पा सकूं।"
—भागवतम्

काश्मीर की संकटपूर्ण स्थिति से निपटने के लिए मुझे उन सभी तथ्यों का ध्यान रखना था जिनका जिक्र मैंने पिछले अध्यायों में किया। इसके मन:स्थल पर निष्ठुर इतिहास ने गहरे और भद्दे दाग छोड़े थे। अतीत में जो विषैले बीज मुक्त भाव से बोये गये थे, अब पूरी घाटी में उनकी जंगली और अराजकतावादी फसल फैल चुकी थी। राज्य में आतंकवाद और विद्रोह की कठोर वास्तविकता कहीं गहरे अपनी जड़ पकड़ चुकी थी और विभिन्न दिशाओं में फैल रही थी।[1]

इसके साथ-साथ निष्ठुर और स्वार्थपूर्ण राजनीति के घातक दांव-पेंच भी थे, जिन्हें एक नया मार्ग खोजने के किसी भी सच्चे प्रयास को निर्दयतापूर्वक विफल करने में न तो कोई संकोच था और न ही ग्लानि।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि समकालीन भारत की आत्मा में दिखावटीपन गहरे पैठ चुका है। हमारी राजनीति के नैतिक ढांचे ने, संस्थानों की अपर्याप्त प्रेरणा और राजनैतिक स्थिति का नेतृत्व करने आये नेताओं के छिछोरेपन ने हमारे देश को किसी भी गम्भीर समस्या का समाधान पाने में असमर्थ कर दिया है फिर काश्मीर जैसी गहन और उलझी हुई समस्या की तो बात ही क्या। क्या एक देश महान् बनने का स्वप्न देखते हुए उस तूफान को नकार सकता था, जिसके बारे में मैंने 'खतरे का पूर्व संकेत' अध्याय में लिखा ? क्या एक देश कोमलता और अनुशासनात्मकता में, धोखा-धड़ी और दुहरी राजनीति में तथा झूठे प्रजातन्त्र में और धर्म निरपेक्षवाद में निहित समस्याओं और खतरों से नावाकिफ़ रह सकता था। जिन राष्ट्रों के पास अपना दर्शन होता है या फिर पुनर्निर्माण का एक उद्देश्य ही होता है, वे इतने लापरवाह और कठोर तरीके से काम नहीं करते जैसा कि काश्मीर में परिलक्षित हुआ।

---

1. अध्याय 10 'विघटन की प्रकृति और स्वरूप' देखें।

मुझे हमेशा से देश में नैतिक अव्यवस्था और सुधार की इच्छा के समाप्त होने के माहौल का दर्दनाक एहसास रहता। फिर भी मुझे लगा कि कोशिश तो करनी ही चाहिए।

26 जनवरी, 1990 को विघटनकारियों के *'अनर्थकारी षड्यन्त्र'* को विफल करने और उनके द्वारा घाटी को लगभग हथिया लेने का जो तत्कालीन संकट आया था, उसे नियन्त्रित करने के बाद, मुझे तुरन्त दो गम्भीर समस्याओं का सामना करना था। पहली समस्या थी, 5 फरवरी से 12 फरवरी तक पाकिस्तान द्वारा प्रेरित *'एकता सप्ताह'* मनाने और आतंकवादी दलों द्वारा 11 फरवरी, मकबूल बट्ट दिवस पर पैदा स्थिति का पूरा फायदा उठाने की योजना से उत्पन्न भयानक मारकाट और हिंसा की वारदातों का सामना करना था। दूसरी समस्या थी अपने लिए एक ऐसा आधार बनाना, जिससे मैं आतंकवादियों को समाप्त करने की अपनी योजनाएं लागू कर सकूं।

अब मैंने फिर से नवीनता लाने का काम शुरू कर दिया। पूरे ढांचे को फिर से बनाना था। राज्य की सत्ता के प्रभाव को मजबूत करना था और इससे ज्यादा महत्वपूर्ण था, पुनर्स्थापित मशीनरी को एक स्वस्थ प्रेरणा और उत्साह देना। *इस काम की अन्तर्धारा को कार्यान्वित करने से पहले ही मुझे महसूस हो गया था* कि प्रशासन के बाहरी ढांचे से अच्छे परिणाम नहीं निकलेंगे। इसके लिए एक ऐसी प्रेरणा की आवश्यकता थी, एक महान उद्देश्य को सामने लाना जरूरी था। उत्साहवर्द्धक नेतृत्व की जरूरत थी—एक ऐसा नेतृत्व जो केवल पूरी प्रशासनिक *संरचना की पुनर्रचना ही नहीं करेगा बल्कि उसमें नये प्राण भी फूंक सके।*

एक आदर्श

काफी सोच-विचार के बाद मैंने पहले दौर में 1986 की गवर्नरशिप के नमूने का अनुसरण करने का निश्चय किया। वह क्या था? उस समय क्या किया गया था, मेरा उद्देश्य क्या था? जो कुछ मैंने किया उस पर जनता की क्या प्रतिक्रिया हुई थी और उस समय की परिस्थितिओं में ऐसा करना क्यों महत्वपूर्ण था?

मेरे विचार में इन सभी सवालों के जवाब देने का और पूरी पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने का बेहतरीन तरीका होगा कि मैं उस समय लिखी गई अपनी डायरी के कुछ अंश दूं। इन अंशों में उस समय की ताजा स्थिति का आभास मिलता है, उनसे स्थिति स्वत स्पष्ट हो जाती है।

7 मार्च 1986

आज मैंने जी० एम० शाह मंत्रिमण्डल को बर्खास्त कर दिया। कश्मीर के दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास में उसका शासनकाल एक और दुखद अध्याय था। अब मेरे सामने जो चुनौती है, वह वाकई कठिन है। साम्प्रदायिक उन्माद चरम सीमा पर है। अल्पसंख्यक भयभीत हैं। सरकारी मशीनरी पतवार विहीन नौका के समान है। अधिकारी भ्रष्ट हैं। अनुशासनहीनता ने राज्य मन्त्रालय में जड़ें पकड़ ली हैं। कट्टरपंथी लोग अपने-अपने षड्यन्त्र में मशगूल हैं। दुराचार और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। आर्थिक व्यवस्था, जो पहले से ही दीन-हीन

स्थिति में थी बदतर होती जा रही है। न्यायपालिका में मनमानी हो रही है और क्षेत्रीय तनाव बढ़ता जा रहा है।

देर शाम को, जम्मू राजभवन के इस विशाल प्रांगण में अकेले घूमते हुए मैं उन भयानक समस्याओं के बारे में ही नहीं सोच रहा जिनका मैं सामना कर रहा हूं बल्कि मैं सत्ता के उद्देश्य के बारे में भी सोच रहा हूं। एक व्यक्ति को किस लिए सत्ता की जरूरत होती है? क्या इसकी जरूरत केवल राज्य को बेहतर प्रशासन देने के लिए होती है या फिर एक ऊंचा और महान् उद्देश्य दिखलाने के लिए और फिर उस उद्देश्य को सच्चाई में बदलने के लिए भी। सत्ता भ्रष्ट कर सकती है। लेकिन यह भद्र भी बना सकती है। इससे अच्छा होने और भला करने की सम्भावनाएं बढ़ती भी हैं। एक तरह से समकालीन भारत की त्रासदी यह रही है कि सत्ता ज्यादातर उन लोगों के हाथ में रही, जो किसी महान् उद्देश्य से प्रेरित नहीं थे और जिनके पास वह उद्देश्य है, उन्हें अवसर ही नहीं मिलता या यूं कहिये कि व्यवस्था उन्हें मौका ही नहीं देती।

मैं चुनौतियों से बोझिल हूं। लेकिन मैं कुछ खुश भी हूं। मेरे पास यह अवसर है कि मैं सत्ता का एक भला, पवित्र और उजला पहलू भी दिखा सकूं। अब मैं यह दिखा सकता हूं कि एक गरीब और विकासशील देश में सरकार को किस तरह काम करना चाहिए, किस तरह महान् उद्देश्यों से प्रेरित एक व्यक्ति एक आदर्श प्रशासक हो सकता है, किस तरह सामन्ती वर्ग का स्वामित्व खत्म किया जा सकता है, सत्ता के दलालों को किस तरह नष्ट किया जा सकता है, किस तरह कट्टरपंथी और दकियानूस लोगों द्वारा किये गये शोषण को रोका जा सकता है, युवकों को किस तरह कट्टरपंथी विचारधारा से दूर किया जा सकता है, कैसे न्याय को एक नये धर्म की तरह स्थापित किया जा सकता है और विकासहीनता तथा शोषक प्रजातन्त्र के दुष्चक्र को समाप्त किया जा सकता है। मैं यह भी दिखा सकता हूं कि प्रशासन केवल पेंसिल, कलम, कागज और लाल फीताशाही का नाम ही नहीं है, यह इससे कहीं ज्यादा है। प्रशासन कल्पना है, दर्शन है, रचना है, समर्पण है, सहानुभूति है और भावशान्ति है। प्रशासन कुशलता का नाम है, नेपोलियन-सी निष्ठा, गति, समयानुकूल नेतृत्व का नाम है। प्रशासन का अर्थ है परिश्रम, पसीना और खून। यह एक विचारधारा है—सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के लिए जरूरी प्रभावपूर्ण विचारधारा। क्या मैं खुद से अत्यधिक अपेक्षा तो नहीं कर रहा? एक अकेला व्यक्ति, चाहे वह कितना उत्साही और प्रेरित क्यों न हो, क्या कायरों, भ्रष्टाचारियों से भरे क्षेत्र में एक नया दर्शन ला सकता है? निस्संदेह इतिहास उन लोगों से परिचित है, जिन्होंने लगभग अकेले इसका रुख बदला था। लेकिन क्या वे लोग अधिक सौभाग्यशाली नहीं थे कि उन्हें वे पद, वे स्थितियां मिलीं जहां से उन्हें काम करने के अनेक अवसर और सम्भावनाएं प्राप्त हुईं? केवल एक प्रशासनिक कार्य मुझे इतना सक्षम कैसे बना सकता है कि मैं एक आधारभूत परिवर्तन ला सकूं और अपनी व्यवस्था को एक नया रूप दे सकूं? और फिर छः महीने के छोटे अन्तराल में क्या-क्या किया जा सकता है? अनेक क्षेत्रों में फैली इतनी गंदगी क्या इतनी जल्दी साफ की जा सकती है? बल्कि इस दूषित गन्दगी को तो छूना भी खतरनाक होगा। फिर भी मुझे कोशिश तो करनी चाहिए। प्रयास में ही संतोष है। कुछ भी हो, कुछ-न-कुछ

अच्छा परिणाम तो निकलेगा ही। निर्दयता और तटस्थता के शिकार लोगों की पीड़ा कम-से-कम मुझे एक अच्छा व्यक्ति बनायेगी—जो ज्यादा सौहार्द और सहानुभूतिपूर्ण हो। दोपहर में एक सभा में अपने इस भाषण से एक छोटी शुरुआत तो मैंने कर ही दी है : "मैं शांति और उत्पादकता, प्रत्येक को समान न्याय, भ्रष्टाचार के समूल नाश और गरीब, बीमार व जरूरतमंदों की सेवा को ज्यादा अहमियत दूंगा। प्रशासन के पुनर्गठन और सुधार तथा सरकारी मशीनरी को साफ सुथरी, गतिशील, मानवीय रूप से सजग बनाने पर विशेष ध्यान दूंगा ताकि वह लोगों की जरूरतों और इच्छाओं पर खरी उतर सके। शहर, झीलें, नहरें, पर्यटन स्थल, बाग और पार्क इत्यादि साफ किये जायेंगे और राज्य को पर्यावरण सम्बन्धी जितनी सुविधाएं मिल सकती हैं, दी जाएंगी।"

7 अप्रैल, 1986

"मेरी 'कार्य प्रणाली' की विशेषता यह है कि जहां सबसे ज्यादा जरूरत है, वहां सेवाएं प्रदान की जाएं ताकि ये काम गली-मुहल्लों, झुग्गी-झोंपड़ी और छोटे-छोटे गांवों में रहने वाले सर्वसाधारण लोगों तक पहुंच सकें, जहां फिलहाल पानी के नाम पर गन्दा पानी पीने के लिए मिलता है, सड़कें नाममात्र को हैं और आवश्यक सफाई और नागरिक सेवाएं भी उपलब्ध नहीं।"

30 अप्रैल, 1986

"प्रशासन में किसी भी सुधार ने जनता के दिमाग पर कोई छाप नहीं छोड़ी है और अक्सर यह सुनने में आता है कि पहले किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया, कोई उनके गली-मुहल्लों तक में नहीं आया, न ही किसी ने उनके स्वास्थ्य, सफाई की देख-भाल की और न रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाने के लिए कोई कदम उठाया। परन्तु परिवर्तन हर जगह स्पष्ट दिखाई दे रहा है—गांवों, कस्बों यहां तक कि छात्रों में, जो सामान्यतः सरकार के प्रति उग्र रहे हैं, परिवर्तन स्पष्ट थे। उदाहरण के लिए मेडिकल कॉलिज के छात्र, मेरी अपील पर न केवल बाढ़ पीड़ित परिवारों को चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएं जुटाने के लिए गांव-गांव गए, बल्कि उन्होंने राज्यपाल की ओर से स्थापित कल्याण फंड के लिए अच्छा-खासा चन्दा भी इकट्ठा किया।"

15 मई, 1986

"एक अर्थ में यहां क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। केन्द्रीय सत्ता की भूमिका यहां हमेशा सांड को लाल कपड़ा दिखाने जैसी रही है, पर अब केन्द्र के प्रतिनिधि के शासन का हर जगह स्वागत हो रहा है और गवर्नर का आदर किया जाता है तथा उसे प्रेम और सहयोग भी मिल रहा है।"

30 मई, 1986

"प्रशासन के बिलकुल निचले स्तर पर साप्ताहिक सुनवाई और गतिशीलता

ने एक ऐसा माहौल तैयार कर दिया है, जिसमें आम आदमी में भी यह भावना आ गई है कि उसकी आवाज भी सुनी जाती है और वह भी नियोजित विकास से बराबर का लाभ उठा सकता है।

गवर्नर शासन लागू होने के बाद, मेरे द्वारा परिवर्तन के लिए उठाये गये कदमों का काफी प्रभाव महसूस किया जा सकता है। यदि इस प्रभाव का रुख इतना ही अच्छा रहा तो काश्मीर की राजनीति और प्रशासन में एक मूलभूत परिवर्तन आ सकता है और वे निराशाप्रद समस्याएं, जिनसे राज्य वर्षों से पीड़ित रहा है, सुलझाई जा सकती हैं। एक सही रास्ता मिल गया है और ईमानदार, साफ, कार्यकुशल और गतिशील प्रशासन का माहौल भी बनाया जा रहा है। बहरहाल, समय की गतिविधियों को सही दिशा में रखने के लिए अत्यधिक सावधानी और जागरूक दृष्टिकोण की जरूरत है।"

30 जून, 1986

"वर्तमान तेज गति से हो रहे स्पष्ट विकास की पृष्ठभूमि में, अतीत में उन नेताओं, जो अब तक गरीब काश्मीरियों विशेषकर मुस्लिम काश्मीरियों के मसीहा होने का दावा करते थे, उनके कामों को अब लोग संदेह की नजर से देखने लगे हैं। दूसरे शब्दों में अब उनकी कलई खुल रही है। बहुत से लोगों ने अब ऐसे सवाल करने शुरू कर दिये हैं: पहले ऐसा विकास कार्य क्यों नहीं हुआ, सड़कों की मरम्मत क्यों नहीं हुई, गलियां हमेशा कूड़े और गन्दगी से क्यों भरी रहीं, झीलें साफ क्यों नहीं करवाई गईं, ज्यादातर स्कूल अंधेरी और मच्छर-भरी इमारतों में क्यों खोले गये, स्कूलों और विश्वविद्यालयों का सामान्य शैक्षिक स्तर इतना खराब क्यों रहा, श्रीनगर और जम्मू जैसे महत्त्वपूर्ण शहरों के अहम् हिस्से में पानी आपूर्ति क्यों नहीं हुई, गांव का एक बड़ा वर्ग नहरों का गंदला पानी ही क्यों पीता रहा, कुछ डॉक्टरों को ही चिकित्सा सम्बन्धी कामों पर एकाधिकार क्यों जमाने दिया गया था जो गरीबों को लूटते थे और कर भी नहीं चुकाते थे, हाईकोर्ट करों के भुगतान न करने जैसे कामों को क्यों सरल बना रहा था, जबकि ये कर दूसरे भारतीय नागरिकों द्वारा चुकाये जाते हैं, प्रशासन और न्याय अधिकारियों ने जंगल के पट्टाधारियों को करोड़ों रुपये बटोरने योग्य बना दिया था, प्रभावशाली राजनैतिक तत्त्व और प्रशासनिक अधिकारी एक-दूसरे के फायदे के लिए आम आदमी के हितों को अनदेखा क्यों कर रहे थे, नौकरी के लिए चयन योग्यता पर नहीं बल्कि राजनैतिक और प्रशासनिक सामन्तों की सनक पर क्यों आधारित था? सवालों और सच्चाई के उद्घाटन का यह दौर अभी और चलना चाहिए। इससे भारतीय संघ की समर्थक शक्तियों को सहायता मिलेगी। काश्मीरियों को दासता से जकड़ने वाला वर्ग समाप्त हो जायेगा और झूठे प्रचार के कूड़े-कचरे से सत्य उजागर होगा।"

31 जुलाई, 1986

"स्वार्थी व्यक्तियों के कारण राज्य निर्जीव हो गया है। उन्होंने साधनों से संपत्ति तो बटोर ली है और टैक्सों का भुगतान नहीं किया है। उन्होंने तथाकथित

आजाद काश्मीर समर्थक रवैये से फायदा उठाया है। राज्य में उपहार-सम्पत्ति कर, शहरी भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण पर पाबन्दी जैसे कदम उठाये ही नहीं गये। हाईकोर्ट, जिसमें वही शासक समर्थक वर्ग है, स्वतन्त्रता-समर्थक तत्वों का समर्थन करता है और कर वसूली सम्बन्धी कार्यों को नकार रहा है, जो राज्य के साधनों को बढ़ाने और आर्थिक समानता लाने के लिए नियोजित किये जाते हैं।

राज्य के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढांचे पर कुछ परिवारों के स्वार्थी तत्वों ने अपना दमघोटू कब्जा कर रखा है। इन्हीं स्वार्थी तत्वों ने राजनीति पर अधिकार कर रखा है, प्रशासन, हाईकोर्ट, न्यायिक प्रणाली, वकीलों, व्यापार और उद्योग पर छाये रहे हैं। उन शासकों के एक छोटे से वर्ग के स्वार्थ, राज्य को विकास की मुख्य धारा में लाने और उसे प्रशासनिक, संवैधानिक और वैधानिक रूप से केन्द्र से जोड़ने में मुख्य बाधा रहे हैं। सौभाग्यवश, वर्तमान परिवर्तनों के प्रभाव से स्वार्थी तत्वों का कब्जा ढीला पड़ रहा है और उनका प्रभाव पतन पर है। हाल ही में किये गये कर वसूली सम्बन्धी छापे और छापों पर इन लोगों द्वारा शोर मचाए जाने तथा जन उन्माद को बढ़ावा देने में असफलता परिवर्तित स्थिति को स्पष्ट करती है। 1981 के दौरान पड़े छापों में ये लोग जन उन्माद को भड़काने में सफल हो गये थे। शोषण और भ्रष्टाचारी तन्त्र अब उनके हाथ से निकल रहा है।

यदि वर्तमान सुधार और पुनर्गठन जारी रहता है और यदि नया संस्थात्मक ढांचा कोई रूप ले लेता है, तब राज्य स्वार्थ के उस पुष्ट पंजे से सदा के लिए मुक्त हो जायेगा, जिसने एक तरफ तो राज्य को केन्द्र से अलग कर दिया है और दूसरी ओर गरीबों और मासूम लोगों में साम्प्रदायिकता भड़काकर 'भारतीय गुलामी' की गलत बातें करके उनका शोषण किया है।"

31 अगस्त, 1986

"सारे राज्य में अब जो अमन और शांति है और कुछ ही महीनों में जो परिवर्तन मैंने किये हैं उनका सकारात्मक प्रभाव अब बिलकुल स्पष्ट दीखता है। बहुत सालों बाद पहली बार काश्मीर के कुछ शहरों में जन्माष्टमी के जुलूस शान से निकाले गये। विकास की गतिविधियों को बढ़ावा मिला है और राज्य के सकल आर्थिक परिवर्तन के लिए माहौल तैयार हो गया है।

जब तक काश्मीर अलग-थलग रहता है और केन्द्र के कानून यहां लागू नहीं किये जाते विघटनकारी और कट्टरपंथी तत्व यहां शक्तिशाली रहेंगे और निहित स्वार्थों का दुष्चक्र तथा काश्मीर की स्वतन्त्रता-समर्थक प्रवृत्तियां कभी भी नष्ट नहीं की जा सकेंगी। अगर वर्तमान व्यवस्था न होनी तो राज्य में संविधान की धारा 249 के लागू करने पर बड़ा हंगामा हुआ होता। राज्य में केन्द्र के कानूनों को लागू करने के लिए वर्तमान परिस्थितियों का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। वर्तमान व्यवस्था, लोगों के बदलते रुख और सामान्य सकारात्मक माहौल से एकता के जो अवसर पैदा हो रहे हैं उनका फायदा उठाना चाहिए, जो फिर शायद कभी पैदा नहीं हो सकेंगे। दूर-दृष्टि इसी में है कि इस अवसर का निर्भयता और

कुशलतापूर्वक फायदा उठाना चाहिए ताकि विघटनकारी तत्वों और पारम्परिक शासक उच्च वर्ग के दुष्चक्र को तोड़ा जा सके और आम आदमी को इस वास्तविकता का एहसास करवाया जा सके कि केन्द्रीय सरकार और देश की जनता उनके विकास की समर्थक और सहयोगी है।"

मेरी डायरी में दर्ज ये बातें उस प्रभाव को स्पष्ट करती हैं जो 1986 के मेरे काम ने राज्य की मानसिकता पर डाला था। यह बहुत से प्रेक्षकों की टिप्पणियों से प्रमाणित हो सकता है। यहां मैं कुछ ही कथनों-टिप्पणियों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

'ट्रिब्यून' के मुख्य सम्पादक वी० एन० नारायणन ने जून, 1989 को तीन दिन घाटी की यात्रा कर 'आज का जम्मू काश्मीर' विषय पर तीन लेख लिखे थे। अन्तिम लेख में नारायणन् ने लिखा था—

"हाल ही श्रीनगर, अनंतनाग और पहलगाम में मैं जिससे भी मिला, उत्सुकतावश एक ही सवाल पूछा—"कौन-सी सरकार राज्य के लिए बेहतरीन सरकार होगी?" और यह हैरानी की बात नहीं थी कि बिना किसी अपवाद के, एक ही जवाब मिला, "गवर्नर का शासन।" "कोई भी गवर्नर?" "नहीं, वर्तमान गवर्नर—जगमोहन।"

'नेशनल हेराल्ड' के सम्पादक ए० एन० धर ने 15 अप्रैल, 1989 में अपने लेख 'ह्वाट इज रांग इन काश्मीर' में लिखा—

"यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पिछले दो सालों में काश्मीर प्रशासनिक रूप से बंजर ही रहा है। संयुक्त सरकार उद्देश्यपूर्ण प्रशासन का कोई उदाहरण पेश नहीं कर पाई। यह वाकई दुःखद है क्योंकि इस सरकार के सामने जगमोहन द्वारा गवर्नर शासन काल में किये गये कामों का आदर्श था। श्री जगमोहन, जो काश्मीर से बाहर के व्यक्ति थे और एक अधिकारी थे, जिन्होंने दो सरकारों को बरखास्त किया, उन्होंने यह दिखा दिया कि एक ईमानदार, निःस्वार्थ और प्रभावशाली प्रशासन से लोगों का दिल जीतना सम्भव है। यहां तक कि कट्टरपंथी और राष्ट्र-विरोधी तत्वों ने यह स्वीकार किया है कि वे ईमानदार और कार्यकुशल प्रशासक हैं।"

6 अप्रैल, 1989 के अंक में 'हिन्दू' ने यह रिपोर्ट दी—"वास्तव में ज्यादातर नौजवानों ने यह संकेत दिया कि अगर गवर्नर श्री जगमोहन को फिर से सत्ता संभालने दी जाती है तो वे संतोष अनुभव करेंगे।"

प्रसिद्ध राजनीतिक विश्लेषक श्री निखिल चक्रवर्ती ने 30 अक्तूबर, 1988 के अपने रविवारीय कॉलम में लिखा—

"घाटी के अनेक भागों में ऐसे लोग मिलेंगे जो मुख्यमन्त्री शासन के कटु आलोचक हैं और वे जगमोहन के गवर्नर शासन की प्रशंसा करते हैं।

यह बात एक गम्भीर तथ्य की ओर संकेत करती है कि जनता द्वारा चुनी हुई सरकार एक योग्य गवर्नर के मुकाबले उन लोगों के दिलों से उतर चुकी, जिन लोगों पर वह सरकार शासन करती थी।"

काश्मीर के प्रसिद्ध उर्दू दैनिक 'श्रीनगर टाइम्स' ने अपने सम्पादकीय में लिखा—

"गवर्नर जगमोहन ने पिछले छः महीनों में घाटी की बिगड़ती स्थिति को

संभालने और बेहतर माहौल तैयार करने के लिए जो कुछ भी किया, कश्मीर के लोग उसे कभी नही भूल पाएंगे।"[1]

इन कथनों को उद्धृत करने का उद्देश्य मेरी *व्यक्तिगत उपलब्धियों को सामने* लाना नही है, बल्कि यह दर्शाना है कि 1986 मे गवर्नर शासन लागू करना कितना सही था। इसका उद्देश्य उन राष्ट्रीय और राज्य नेतृत्व के तत्त्वों की लगभग देश विरोधी भूमिका का पर्दाफाश करना भी था, जिन्होंने मुझे राष्ट्र-विरोधी सिद्ध करने के लिए एड़ी से चोटी तक का जोर लगा दिया और इस प्रक्रिया में राज्य को मृत्यु और विनाश के पंजों से बचाने के लिए किये गये महान् प्रयासों को विफल कर दिया था।

लेकिन फिर भी ठोस रूप मे बहुत कुछ उपलब्धि हुई—समाज के सुधार और रवैये मे मूलभूत परिवर्तन लाने का उद्देश्य, जो कि सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक सुधार में गतिशीलता ला सके, एक सीमा तक प्राप्त किया गया। इस संदर्भ मे मैं वैष्णो देवी मंदिर के सुधार का एक ही उदाहरण दूंगा।

मुझे एहसास हुआ कि वर्तमान परिस्थितियों और आतंकवाद के माहौल में 1986 के स्वरूप और गति का तुरन्त पालन नही किया जा सकता। लेकिन काम करने की वही प्रेरणा, वही उत्साह मेरे मार्गदर्शक थे।

फारूख द्वारा घाटी को छोड़ना

फारूख सरकार घाटी को लगभग छोड़ चुकी थी और श्रीनगर के कमिश्नर, डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पुलिस को उनके अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया था। जिन परिस्थितियों में ये लोग फंसे थे, उससे यह स्वाभाविक था कि वे अकर्मण्य रहे और किसी बुराई का कम-से-कम विरोध करें। उनकी और उनके स्टाफ की व्यक्तिगत समस्याएं थीं। उनमे से अधिकतर लोग और उनके सम्बन्धी शहर के अन्दरूनी इलाकों मे रहते थे। वे आतंकवादियों को जरा-सा भी क्रोधित कर अपने और अपने सम्बन्धियों के लिए खतरा मोल नहीं ले सकते थे।

घाटी में एक दृढ़, साहसी और उच्च स्तरीय नेता की जरूरत थी। लेकिन यहां तो एक साधारण नेतृत्व भी प्राप्त नही था। किसी-न-किसी को तो विनाश और आतंकवाद के विरोध का प्रतीक बनना ही था। इसका सामना करके इसे नियंत्रित करना था। इसलिए मैंने निश्चय किया कि मैं श्रीनगर में ही रहूंगा और वहां एक नियमित शीतकालीन सचिवालय भी स्थापित करूंगा।

जनता से साक्षात्कार

मैंने राजभवन के दरवाजे खोलने और जनता से 1986 की तरह संवाद स्थापित करने का निश्चय अलग से लिया था। बहुत से लोग मुझसे मिलने आये। मैंने इस बात का ध्यान रखा कि उनकी शिकायतें यथाशीघ्र खत्म की जा सकें।

यह तरीका सफल होता जान पड़ा। *31 जनवरी, 1990* को *300* लोग

---

1. उर्दू से अनूदित

मुझसे मिले। 1 फरवरी को लगभग 700 लोग मुझसे मिलने आये। कुछ लोग तो कुपवाड़ा और बारामूला जैसे सुदूर क्षेत्रों से भी आये थे। लगभग सारा दिन मैं उनकी कठिनाइयां सुनने में लगाता। उनकी ज्यादातर शिकायतें उचित थीं। लापरवाही तो अभी तक चलते प्रशासन का एक अंग बन चुकी थी। उदाहरण के लिए सोपोर के इस्लामिया महिला कॉलेज के 12 स्टाफ मेम्बर्स के दल ने बताया कि कॉलेज के लगभग 60 लोगों को पिछले 10 महीने से तनख्वाह नहीं मिली है। बागवानी और मार्केटिंग कारपोरेशन के जूनियर स्टाफ को तीन महीने से वेतन नहीं मिला था। अधिकारियों से फोन पर बात करके मैंने यह शिकायतें दूर कर दीं। राज्य के उच्चतम अधिकारी से इतनी शीघ्र प्रतिक्रिया पाकर क्षोभ का एक हिस्सा तो छंट गया। माहौल के तनाव में थोड़ी कमी आई।

बहुत सारी शिकायतें अधीनस्थ सेवाओं विशेषकर अध्यापन में धोखाधड़ी से की गई नियुक्तियों से सम्बन्धित थीं। इस शिकायत को दूर करने के लिए मैंने एक घोषणा की कि ये सारी नियुक्तियां संवैधानिक अधीनस्थ सेवा नियुक्ति बोर्ड के अन्तर्गत की जाएंगी। यह बोर्ड मैंने अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, जम्मू काश्मीर संविधान के सेक्शन 92 के अन्तर्गत एक एक्ट को लागू करके स्थापित किया। इंजीनियरिंग के काम के सम्बन्ध में भी काफी शिकायतें थीं। राजनैतिक लोगों द्वारा बिना किसी राशि की मंजूरी के बिना बहुत से निर्माण कार्यों का आदेश दिया गया था। ठेकेदारों द्वारा 15 करोड़ रुपये तक की राशि मांगी जा रही थी जबकि काम कुछ नहीं हुआ था। लगभग 6000 लोग, जो निर्माण स्थल पर आते ही नहीं थे, उन्हें वहां नियुक्त दिखाया गया था। इस अस्त-व्यस्त व्यवस्था को रोकने के लिए मैंने उन सभी प्रक्रियाओं पर विराम लगा दिया जो राज्यकोश को लूटने के तरीके को सरल बना रही थीं और शिकायतों को निपटाने के लिए तथा उन्हें जड़ से समाप्त करने के लिए मैंने साथ-ही-साथ यह घोषणा की कि जल्द ही एक उच्च स्तरीय स्वतन्त्र कमेटी नियुक्त की जायेगी जो भ्रष्टाचार, पक्षपात और भाई-भतीजेवाद के मामलों की जांच करेगी जिनकी वजह से सरकारी धन जाया हुआ है। मैंने संयम और सादगी लाने के लिए भी कदम उठाये। खुद से शुरूआत की। मैंने वेतन न लेने का निश्चय किया और एक सहायक की कमी कर दी।

प्रत्याक्रमण

इन सभी कार्यवाहियों का आरम्भिक प्रभाव हुआ। सामान्य तनाव थोड़ा कम हुआ। यातायात में बाधा होने और अन्य कठिनाइयों के बावजूद लोग मुझसे मिलने राज भवन में आते रहे। बहारहाल, मैं फिर भी हर वक्त इस सत्य के प्रति सचेत रहता कि जनवरी 1990, मार्च 1986 नहीं हो सकती। पिछले दिनों का उत्साह आतंकवाद से झुलसे वर्तमान में नहीं फूंका जा सकता था। सत्ता के ढांचे में विघटन की प्रवृति कहीं गहरे पैठ गई थी। शान्ति और स्थिरता लागू करने के उपाय अब शेष नहीं थे और फिर विभिन्न स्तरों पर बाहरी और भीतरी शक्तियां मेरे सभी प्रयासों को विफल करने का प्रयास कर रही थीं या ऐसा करना चाहती थीं।

हमारे देश के शत्रु तत्वों के दृष्टिकोण से यह समझा जा सकता था कि वे मेरी नीतियों को असफल करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। वे जानते थे कि काश्मीर को भारत से छीनने का ऐसा अवसर उन्हें फिर कभी नहीं मिलेगा। भीतरी विद्रोह अपनी चरम सीमा पर था; प्रशासनिक तन्त्र बेहद कमजोर था और भारतीय नेतृत्व में फूट थी, भारतीय नेतृत्व अस्पष्ट, सत्ता की तुच्छ राजनीति के जाल में फंसा था जिसे न तो समझ थी और न समय कि समस्या के मूलभूत कारणों को समझ सके।

पाकिस्तान अपने आन्दोलन को और तेज करने के लिए दृढ़ था। 26 जनवरी, 1990 को पाकिस्तान स्थिति में कुछ नाटकीय मोड़ आने की आशा कर रहा था। पर उस दिन कुछ नहीं हुआ। रोकथाम की हमने जो कार्यवाही की थी, वह सफल हुई। क्षुब्ध होकर पाकिस्तान ने 5 से 12 फरवरी, 1990 को मनाए जाने वाले 'एकता सप्ताह' में कुछ और हिंसात्मक षड्यन्त्रों को जोड़ने का निश्चय किया।

राष्ट्रीय सहमति को विकसित करने और पाकिस्तान के लोगों का पूरा समर्थन काश्मीरी लोगों को देने का प्रस्ताव पारित करने के लिए पाकिस्तानी पालियामेंट की दोनो सभाओ की सयुक्त बैठक 'एकता सप्ताह' के दौरान हुई। सुचेत गढ़, अब्दुलियां, नवापिण्ड और बुदवार—इन चार जगहों से पाकिस्तान की ओर से सीमा पार करने की चेष्टाएं भी हुई। सियालकोट और सुचेतगढ़ से लोगों को बसों द्वारा इन जगहों पर लाया गया। उत्तेजक भाषण दिए गए और सीमा पार करने का एक 'प्रदर्शन' भी किया गया। उनमे से लगभग 100 ने तो वास्तव मे सीमा पार थी पर भारतीय सशस्त्र बलों की दृढ़ कार्यवाही के कारण वे वापिस लौट गए। तनाव को बढ़ाना, इधर-उधर, सशस्त्र मुठभेड़ो को उकसाना, इस्लामी भाई-चारे की भावना को भडकाना और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यानाकर्षित करना इस कार्यवाही के मूलभूत उद्देश्य थे। 31 जनवरी को पाकिस्तान के विदेश मन्त्री साहिबजादा याकूबखान ने रेडियो पर जनता की भावनाओं को भडकाया और काश्मीरी आतकवादियों को स्वतन्त्रता सेनानी बताते हुए पाकिस्तानी समर्थन की साफ पेशकश की। उन्होंने दुःख प्रकट किया : "मैं भारत मे गुलदस्ते के साथ गया था लेकिन काटो की टोकरी के साथ लौटा।" पाकिस्तानी पालियामेंट मे बेनजीर भुट्टो ने भी अपने भाषण मे काफी जहर उगला—

"जम्मू काश्मीर मुक्तिमोर्चे' के 'अध्यक्ष' अमानुल्ला खान ने आग में घी डालने का काम किया। उसका आक्रामक रवैया और भी तेज हो गया। उसने आजाद काश्मीर से 10,000 कमाडो सैनिको को सीमा पर भेजने की धमकी दी।

26 जनवरी को अपनी असफलता से और प्रशासन द्वारा उनके प्रयासों को विफल करने की कोशिश की वजह से लगभग सभी आतकवादी और विद्रोही दलो ने 11 फरवरी को यानी जिस दिन मकबूल बट को तिहाड जेल मे फासी दी गई थी, और अधिक हिंसात्मक कार्यवाही का निश्चय किया था। 'जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा' ने तो घोषणा भी की कि इस दिन अनेक पुलिस अधिकारियों विशेषतः खुफिया विभाग के अधिकारियों का अपहरण करके उन्हे फासी दी जाएगी।

बार-बार लोगों को गवर्नर से न मिलने के 'फरमान' भी जारी किए गए। आतंकवाद में तेजी लाने के लिए वे आसान लक्ष्यों को खोजने लगे।

निर्मम हत्या

2 फरवरी को एक कश्मीरी पंडित युवक सतीश टिक्कू की हब्बाकदल में उसके घर के पास हत्या कर दी गई। वह एक समाज सेवी कार्यकर्ता था। वह अपने सम्प्रदाय के लोगों की समस्याएं सुलझाने में मदद करता था। वह अपने मुहल्ले के हिन्दू और मुसलमान युवकों में समान रूप से लोकप्रिय था। सुबह-सुबह, दो मुसलमान युवक, जिन्हें वह स्पष्टतः जानता था, उसके घर आए। उसकी बहन ने उनसे बातचीत की। यह समझते हुए कि कहीं कुछ गड़बड़ है, उसने आगन्तुकों को कह दिया कि सतीश घर पर नहीं है। वे चले गए लेकिन आस-पास की गलियों में ही घूमते रहे। थोड़ी देर बाद, सतीश अपने कमरे से बाहर आया तो उसकी बहन ने उसे बताया कि कुछ युवक उससे मिलने आए थे। वह नाराज हो गया और उसने अपनी बहन से कहा कि वह ज़रूरत से ज्यादा शक करने लगी है। वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि किसी ने उसे मारने की योजना बनाई है। वह घर से बाहर निकल कर गलियों में देखने लगा। तभी, बन्दूक की आवाज सुनाई दी। पूरा परिवार बाहर दौड़ा। उन्हें खून से लथपथ निष्क्रिय पड़ा सतीश का शरीर मिला।

सतीश टिक्कू की यह क्रूर हत्या कश्मीरी पंडितों के टूटते साहस पर एक और वार था। जाहिर था कि एन० के० गंजू, टिक्का लाल टपलू और जी० एन० वट्टू की हत्याओं से शुरू हुआ पंडितों का कश्मीर से निकास इस हत्या से और भी तेज हो जाएगा।

इस सम्प्रदाय में कुछ विश्वास फूंकने और शोकग्रस्त परिवार को सांत्वना देने के लिए मैंने दूसरे दिन ही टिक्कू परिवार से मिलने का निश्चय किया। 3 फरवरी की शाम को मैं शहर के भीतरी भाग में बसे हब्बाकदल के पुराने और तंग इलाके में गया। तब तक कर्फ्यू में ढील का समय समाप्त हो चुका था। गलियों में हमारे वाहनों की लम्बी कतार के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसा लगता था कि दोपहर को हुई बारिश से सारे घर उदासी में भीग गए हैं। कुछ खिड़कियां जो खुली थीं उनमें से रोशनी की एक हल्की झलक भी नहीं दीख पड़ती थी। आकाश में छाए घने बादलों ने जैसे निराशा और दुःख के इस माहौल को बढ़ा दिया था। एक साथी अधिकारी ने कहा, "इन तंग गलियों में इस तरह निकलना हमारे लिए समझदारी की बात नहीं है। ग्रेनेड से किया गया एक सुनियोजित हमला हम सभी को खत्म कर सकता है।" मैंने सहमति में सिर हिलाया। लेकिन मेरा दिमाग कहीं और था—सड़कों पर पड़ी कीचड़ और गन्दगी; ऊपर धमकी भरे बादल; सड़क के किनारे बने मौन और उदास घर और सब तरफ गहराता सन्नाटा।

टिक्कू परिवार का घर तो मानो बिखरे हुए घोंसले-सा था। हर चीज बिखरी पड़ी थी। मैं परिवार के सदस्यों के साथ फर्श पर बैठ गया। एक पुराना लैम्प जल रहा था जो मेरे चारों ओर छाए अन्धेरे को काट रहा था। एक धीमे,

रुंधे हुए स्वर में सतीश के पिता ने मुझे पूरी घटना सुनाई। इसकी जरूरत नहीं थी। चारों ओर का भयानक वातावरण पूरी वारदात को साफ बता रहा था।

जब मैं जाने के लिए उठा तो परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे हो गए और उन्होंने एकमत होकर यह मांग की कि उन्हें घाटी से बाहर कहीं बसा दिया जाए। सतीश के चाचा थोड़े जिद्दी और दृढ़ निश्चयी थे, उन्होंने जिद्द की कि मैं ऊपर जाकर कुल देवी को देखूं। मैं मान गया। जल्द ही एक शान्त और तेजस्वी आकृति उभरी! वह अन्धेरे में भी इतनी उज्ज्वल लग रही थी। भावुकता से कांपती आवाज में उस व्यक्ति ने कहा, "इस देवी की कृपा से हम यहां सदियों से रहते आ रहे हैं। यह घर, यह गली, ये सड़कें हम छोड़ सकते हैं लेकिन इस देवी को नहीं। आपको ठीक-ठाक स्थान हमें देना ही चाहिए? मैं चुप रहा। ऐसी मांगों पर बात करने का यह समय नहीं था। आंसू भरी आंखों से परिवार के सदस्यों ने मुझे और मेरे साथी अधिकारियों को धन्यवाद दिया। हम सभी परिवार की दशा से द्रवित थे।

एक-दूसरे से जुड़े घरों और किसी अच्छे बुने हुए वस्त्र के धागों-सी सड़कों और गलियों को देखकर मैं सोचने लगा कि ये परिवार, जिनके देवी-देवता यहां हैं, जिनकी जड़ें इस मिट्टी में हैं, वे इस जमीन को छोड़ किसी अजनबी देश या स्थान में कैसे बस सकते हैं। कभी-कभी जीवन कितना निर्दयी लगता है और हम इन्सानों के पास चुपचाप पीड़ा झेलने या शोक मनाने के सिवा और कोई विकल्प नहीं रह जाता।

देर शाम को स्थिति का जायजा लेने और आगे की कार्यवाही निर्धारित करने के लिए राज भवन में अधिकारियों की बैठक हुई। इस मीटिंग में इस तरह के दौरों पर जाने या न जाने के मुद्दे पर भी बात हुई। आम सहमति यह थी कि ऐसे मुआयनों को टालना ही चाहिए। इससे सीमित सुरक्षा बलों पर उत्तरदायित्व बढ़ जाने के कारण तनाव आ जाता है और उनका ध्यान और लोगों को बचाने से हट जाता है।

एक त्रासदी जो टाली जा सकती थी

चार दिन बाद, 7 फरवरी को दूसरी दुखद घटना हुई। लाल चौक के कमर्शियल क्षेत्र में एक बीमा कम्पनी के आफिस में एक बम रखा गया था। जैसे ही आफिस बन्द हुआ, यह बम फटा। इससे आस-पड़ोस की दुकानों में भी आग लग गई। पास की ही दुकान में बहुत से गैस सिलेन्डर रखे थे। लगभग एक साथ वे सिलेन्डर फटने लगे। लाल चौक के पास ही सीमा सुरक्षा बल की एक चौकी में जवानों ने सोचा कि आतंकवादी गोली चला रहे हैं तो उन्होंने भी उसी दिशा में गोली चलाना शुरू कर दिया। दो निर्दोष व्यक्ति भूपिंदर पुरी और शबीर अहमद मारे गए। बहुत-सी दुकानें जल गईं।

यह स्तब्ध कर देने वाली घटना थी। मैंने तत्काल जिला मजिस्ट्रेट श्रीनगर गुलाम अब्बास द्वारा जांच की आज्ञा दी। लेकिन यह निश्चय भी मेरे भीतरी द्वन्द्व को खत्म नहीं कर पाया। मैं इतना परेशान हो गया कि सारी रात इस दुःखद घटना के बारे में सोचता रहा। क्या यह विधि का विधान था या दुर्घटना या

बदहवासी में की गई प्रतिक्रिया या फिर हिंसात्मक माहौल का परिणाम? या क्या आतंकवादी ही इन स्थितियों को पैदा करने के लिए जिम्मेदार थे कि त्रासदी को टाला नहीं जा सकता था? सुबह मैंने शबीर खान के पिता डॉ० मोहम्मद यूसुफ खान को यह पत्र लिख कर स्वयं को कुछ तनाव मुक्त किया—

राजभवन
श्रीनगर
8 फरवरी 1990

प्रिय डॉ० खान,

पिछली शाम लाल चौक में घटी दुर्घटना में आपके पुत्र की दुःखपूर्ण मौत की खबर सुनकर मैं स्तब्ध हूं। आपका और आपके सम्बन्धियों का दुःख वाकई गहरा और अवर्णनीय है। हमारा दुःख भी कम नहीं है। हम आपके दुःख के भागीदार हैं।

विश्वास कीजिए, मैं रात को सो नहीं सका। इस त्रासदी का मेरे दिमाग पर इतना गहरा असर पड़ा है। इस घटना का इन्सानी पहलू किसी भी भावुक हृदय को द्रवित कर देगा। यह खून जो बहता है किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि हम सबका होता है—हमारे भाई बहनों, बेटे-बेटियों का खून होता है। यह वह खून है जो काश्मीर के नाम पर कलंक छोड़ जाएगा। घाटी की खूबसूरती पर यह एक भद्दा दाग़ छोड़ जाएगा।

आइए भगवान से प्रार्थना करें कि वह हमें शान्ति और सद्बुद्धि का मार्ग दिखाए। आइए हम ऐसी स्थिति लाएं जिसमें गली मुहल्ले में कोई पुलिस न दिखाई दे और वे पर्यटकों तथा फलते-फूलते लोगों से भरी रहें। हम अपने छोटे भाइयों को बन्दूक के धर्म की व्यर्थता समझाने का और इससे चारों तरफ जो करुणास्पद स्थिति पैदा हुई है उसे बताने का प्रयत्न करें। आइए, हम उन्हें ये विश्वास दिलाएं कि यदि वे हिंसा का मार्ग छोड़ दें तो उन पर पूरा ध्यान दिया जाएगा और सहानुभूति बरती जाएगी। हम उन्हें याद दिलाएं कि हमारा संविधान सभी को न्याय देने का वादा करता है और हम कोशिश करेंगे कि सभी को सही अर्थों में न्याय मिले।

अब और शबीर न मरें। अब कोई और अपने सगे सम्बन्धियों को खो देने का दुःख न भोगे।

गहरी सहानुभूति और दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना के साथ,

आपका
जगमोहन,"

सुनियोजित हत्याएं

8 फरवरी, सुबह आठ बजे, श्रीनगर सीमा सुरक्षा बल के हेडक्वार्टर के पास दो निहत्थे कांस्टेबलों की हत्या कर दी गई। ये कांस्टेबल ड्यूटी पर नहीं थे और निकट की दुकान पर कुछ खरीददारी कर रहे थे। ज़ाहिर है आतंकवादी उनको पहचानते थे। उन्होंने ध्यान से अपना समय चुना। दुकानदार अब्दुल माजिद शेख को भी गोली लगी और अस्पताल में उसकी भी मृत्यु हो गई।

जिस योजना, विश्वास और आराम से ये हत्याएं की गईं उनसे जाहिर था कि कश्मीरियों के रूप में पाकिस्तानी सिपाहियों या फिर आई० एस० आई०/ एफ० आई० यू० गुर्गों का इन वारदातों में हाथ है। काश्मीरी वेश में अफगानी मुजाहिदीन की उपस्थिति की सम्भावना भी नकारी नहीं जा सकती थी। घाटी में गतिशील बहुत से आतंकवादी दलों को अफगानी मुजाहिदों विशेषकर मुस्लिम कट्टरपंथ के समर्थक मुजाहिदीन से प्रेरणा मिलती थी। उन्होंने अपने दलों का नाम भी अफगानी विद्रोही दलों के नाम पर रख लिया था जैसे हिज़बुल्ला और हिस्बे-इस्लाम। अफगानी विद्रोही नेताओं के उत्तेजनापूर्ण भाषणों के वीडियो कैसेट भी प्रचारित किये जाते थे। एक स्थानीय आतंकवादी दल 'ऑपरेशन बाला कोटे' के नेता आज़म इंकलाबी ने प्रेस में यह भी कहा था कि वह अफगान विद्रोहियों और काश्मीरी छापामारों में एक सम्पर्क स्थापित करना चाहता है और इसलिए उसने पाकिस्तान और अफगानिस्तान में अफगान कैम्पों का दौरा भी किया है।

मकबूल बट्ट दिवस

11 फरवरी को मनाया जाने वाला मक्बूल बट्ट दिवस, अब हमारी नई चिन्ता का मुख्य कारण था।

1939 को गांव त्रेहगाम, जिला कुपवाडा में मकबूल बट्ट का जन्म हुआ था 1958 में वह पेशावर, पाकिस्तान चला गया जहां उसने एम० ए० (उर्दू) और एल-एल० बी० की डिग्री हासिल की। वह थोड़े दिन के लिए पत्रकारिता में भी रहा। 1965 में वह सियालकोट में जम्मू काश्मीर जनमत मोर्चे का सेक्रेटरी बन गया। 1966 में वह काश्मीर घाटी में आ गया। अपने एक आतंकवादी हमले में उसने एक सी० आई० डी० अधिकारी अमरचन्द की हत्या कर दी। इस अपराध के लिए उसे मृत्युदण्ड दिया गया। लेकिन 1968 में बट्ट श्रीनगर से भाग निकला और पाकिस्तान पहुंच गया। भारतीय खुफिया विभाग का दलाल समझ कर पाकिस्तानी अधिकारियों ने उसे कुछ समय के लिए बंदी रखा। 1971 में पाकिस्तानी अधिकारियों ने यह सोचकर कि वह भारतीय खुफिया विभाग का सदस्य है, उसे फिर पकड़ लिया। बहरहाल वह पाकिस्तानी ट्रिब्यूनल के तहत छोड़ दिया गया। फरवरी 1975 में काश्मीर समझौते के बाद मकबूल बट्ट फिर काश्मीर आ गया और आतंकवादी गतिविधियां शुरू कर दी। लंगेट में उसने एक बैंक लूटा और मैनेजर की हत्या कर दी। उसे पकड़ लिया गया और

नहीं देना चाहती थी और कुछ काश्मीरी राजनीतिज्ञों ने कोशिश भी की कि मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास में बदल दिया जाए। इसी समय लंदन में रवि म्हात्रे की हत्या कर दी गई, जिससे मकबूल बट्ट को जल्दी से मृत्युदण्ड दे दिया गया।

क्या मकबूल बट्ट दुःसाहसी था या जासूस या आतंकवादी या फिर

काश्मीर की आजादी में एक सच्चा विश्वास रखने वाला व्यक्ति ? इसका जवाब देना मुश्किल है। उसका जीवन उतार-चढ़ावों और विरोधाभासों से भरा हुआ है। जाहिर है कि वह भी षड्यन्त्रों और दोहरी चालों से ऊपर नहीं था। एक स्थिति में तो भारतीय और पाकिस्तानी अधिकारियों द्वारा उसे डवल एजेंट ही समझा गया था।

इस बात का भी प्रमाण है कि मकबूल बट्ट जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा के गुटों की लड़ाई का शिकार हुआ था। अमानुल्ला खान और उसके कुछ साथियों ने ब्रिटिश हाई कमीशन से सम्बन्धित एक भारतीय राजनयिक म्हात्रे के अपहरण की योजना बनाई थी। उनके दुहरे उद्देश्य थे—काश्मीर मुक्ति मोर्चे के लिए प्रचार हासिल करना और साथ-ही-साथ दल के भीतर के प्रतियोगी यानी मकबूल वट्ट का काम तमाम करना।

मकबूल वट्ट को फांसी मिलने के बाद काश्मीर मुक्ति मोर्चा, उनके सहयोगी दल और दूसरे पाक-समर्थक दल 11 फरवरी को मकबूल वट्ट दिवस मनाते हैं। यह सभी को इकट्ठा करने का और सरकार को परेशानी में डालकर प्रचार पाने का अच्छा अवसर देता है।

11 फरवरी, 1990 को गम्भीर आतंकवादी गतिविधियों की आशंका थी। इस संदर्भ में कई विद्रोही दलों ने घोषणा भी की थी। उन्होंने तो कम-से-कम सौ पुलिस अधिकारियों को फांसी देने की धमकी भी दी थी। बहुत सारे पोस्टर और दीवारों पर चिपकाने के लिए कागज बांटे गए। मस्जिदों से भी बार-बार घोषणाएं और अपीलें की गईं। अतीत के अनुभवों से यह प्रकट हो गया था कि मकबूल वट्ट की तथाकथित 'शहीदी' खाड़कुओं के लिए जनता की भावनाओं से खेलने का एक अच्छा साधन बन गई थी और पिछले तीन सालों से मकबूल वट्ट दिवस पर सरकार की अकर्मण्यता ने इसे और भी तेज़ कर दिया था। 1987, 1988 और 1989 की 11 फरवरी को बड़े पैमाने पर हिंसा और अशांति आरम्भ की गई और सरकार ने उसकी अनदेखी भी की यहां तक कि 11 फरवरी, 1989 को डॉ० फारूख अब्दुल्ला जान-बूझकर राज्य से बाहर चले गये थे।

इस वक्त राज्य प्रशासन में हम लोगों ने आतंकवादियों द्वारा किसी भी नाटकीय गतिविधि को रोकने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। पूरी घाटी में चौकसी सख्ती से बरती गई और कर्फ्यू लगा दिया गया। राज्य व केन्द्र के अधिकारियों को निर्देश दिये गए कि वे कुछ दिनों के लिए बाहर न निकलें और पर्यटक स्वागत कक्ष में ही रहें। इसके पीछे उद्देश्य था कि आतंकवादियों को ऐसा कोई मौका न दिया जाए कि वे आसानी से कोई काम कर सकें। इसके साथ अन्य कार्यवाहियों की वजह से आतंकवादियों की सारी घोषणाएं अपहरण और हत्या की उनकी सारी योजनाएं, आतंकवादी गतिविधियों को तेज करने के उनके सारे प्रयास और इस तरह सत्ता पर अधिकार जमाने की उनकी कोशिश विफल कर दी गईं।

26 जनवरी की सफलता की पुनरावृत्ति—

26 जनवरी की सफलता की फिर से आवृत्ति हुई। इन दोनों अवसरों पर राज्य की शक्ति का निश्चित रूप से प्रदर्शन हुआ और इससे प्रशासनिक क्षेत्र को मजबूत करने में मदद मिली। यह एक मनोवैज्ञानिक विजय भी थी।

राष्ट्रीय पत्रों में भी इस वास्तविकता को सराहा गया। उदाहरण के लिए 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने कहा, "पिछले दो सालों से घाटी में बहुत हिंसा होती थी और इस साल भी हिंसा होने की संभावना थी पर सख्त सुरक्षा-प्रबन्धों ने इससे बचा लिया।"

'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने रिपोर्ट दी, "हालांकि आज खाड़कुओं ने 'काला दिवस' मनाने की घोषणा की थी, श्रीनगर में किसी भी सरकारी इमारत या घर पर एक भी काला झंडा नहीं देखा गया। दोपहर में अपने घरों से निकलकर बड़ी संख्या में इकट्ठे होने की खाड़कुओं की योजना भी विफल कर दी गई।"

दो वीभत्स हत्याएं

सत्ता का अधिकार और दृढ़ता दिखलाने तथा लोगों में विश्वास जगाने का यह काम बहरहाल, अगले दो दिनों में हुई दो सुनियोजित और वीभत्स हत्याओं से कमजोर पड़ा। 12 फरवरी को खुफिया विभाग के अधिकारी भान और 13 फरवरी को श्रीनगर दूरदर्शन के स्टेशन डायरेक्टर लस्सा कौल की हत्या कर दी गई।

सामान्य निर्देशों के अनुसार भान अपने कार्यालय में ही ठहरा था। दुर्भाग्य-वश, मकबूल बट्ट दिवस पर कुछ भी न होने की वजह से वह लापरवाह हो गया और श्रीनगर शहर के निचले भाग में अपने माता-पिता से मिलने निकल पड़ा। 12 फरवरी की सुबह जब वह अपने दफ्तर लौट रहा था, कोई उसके निकट आया, दो-तीन मिनट उसके साथ-साथ चला, अपने 'लबादे' के नीचे से पिस्तौल निकाली और उसकी बगल के नीचे से उसकी गर्दन पर गोली मारी जिससे उसका मुंह और सिर उड़ गया। भान बुलेट-प्रूफ जैकेट पहने हुआ था। हत्यारे को स्पष्टतः इस बात का पता था। यही वजह थी कि उसने सीने पर गोली नहीं मारी और साथ-साथ चलते हुए गर्दन से ऊपर के भाग को निशाना बनाया ताकि तत्काल उसकी मृत्यु हो जाए। इस घटना ने फिर यह सिद्ध कर दिया कि किस हद तक आतंकवादी सरकार के विभिन्न भागों में घुसपैठ कर चुके हैं।

13 फरवरी को बेमिना कालोनी में अपने घर के दरवाजे के पास ही लस्सा कौल पर गोली चलाई गई। ज़ाहिर है, हत्यारे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे जानते थे कि शाम सात बजे वह ऑफिस से चल दिया है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कौल के दफ्तर का कोई व्यक्ति हत्यारों से सम्पर्क बनाए हुए था। कौल को आतंकवादियों के क्रोध का सामना करना पड़ा क्योंकि टेलीविजन पर कुछ ऐसे कार्यक्रम दिखलाये गये थे जो आतंकवादियों की नजर में इस्लाम के खिलाफ थे और जिन्हें इस्लाम पर भारतीय सांस्कृतिक आक्रमण का नाम दिया गया था। उन्होंने कार्यालय में भी अपनी आवाज बुलन्द करनी चाही थी। उसके कई सहयोगी कर्मचारी भय या सहमति से आतंकवादियों की ओर से काम कर

रहे थे। कुछ समाचार और तस्वीरें आतंकवादियों के निर्देश से दिखलाई जाती थीं। इन गलत कामों को रोकने के कौल द्वारा किये गये प्रयासों से आतंकवादी खार खा गये और उन्होंने विवेक की आवाज़ को सदा के लिए बन्द करने और कुछ ईमानदार अधिकारियों में आतंक फैलाने की योजना बनाई।

एक भद्र व्यक्ति और महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन अधिकारी की इस भयावह हत्या ने हम सभी को स्तब्ध कर दिया। हमारी व्यवस्था के उत्साह पर भी निश्चित रूप से गलत असर पड़ा। एक तरफ तो आतंकवादियों ने दावा किया कि उन्होंने अपने शत्रु को मार दिया और दूसरी तरफ दूरदर्शन कार्यालय में आतंकवादियों के सहयोगियों ने हम पर कौल को विवश करने, उस पर दवाव डालने का आरोप लगाया, जो अप्रत्यक्ष रूप से उसकी मौत का कारण बना।

आतंकवाद द्वारा हत्या और विरोधी दल में फूट और उत्साह भंग करने के दोहरे उद्देश्य की प्राप्ति के अपने अलग दाँव-पेच होते हैं। केन्द्रीय गृहमन्त्री, मुफ्ती मुहम्मद सईद और केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मन्त्री, पी० उपेन्द्र हमसे बातचीत करने और शोकग्रस्त परिवारों को सान्त्वना देने के लिये दिल्ली से आये। मुझे खुद यह लगा कि सुरक्षा पुलिस ने अपना कर्त्तव्य पूरी तरह से नहीं निभाया। पर जांच करने के बाद मुझे मालूम हुआ कि सुरक्षा प्रबन्धों से अलग कुछ तत्त्व इस वारदात के लिए जिम्मेदार थे।

त्रुटिरहित पूर्ण सुरक्षा

वर्तमान समय में, विशेषकर जब कि घातक हथियार सरलता से उपलब्ध हैं पूरी सुरक्षा कभी भी नहीं दी जा सकती है। घाटी में पारम्परिक काश्मीरी वस्त्र 'फिरन' ने ऐसी बातों का और भी आसान बना दिया है। पिस्तौल, कालिशनिकोव और ग्रेनेड जैसे हथियार भी इसके भीतर छिपाए जा सकते हैं।

दूसरी महत्त्वपूर्ण वास्तविकता जो मैंने जानी वह थी कि सामान्यत: लोगों और विशेषकर अधिकारियों को स्थिति की गम्भीरता का एहसास नहीं था। इस बात को भी नहीं पहचाना गया था कि राज्य के सरकारी और केन्द्रीय दफ्तरों में आतंकवादियों की गहरी घुसपैठ थी और न ही यह समझा गया था कि इस विषय पर दिए गए निर्देशों का गम्भीरतापूर्वक पालन करना आवश्यक है। अगर निर्देशों का पालन किया गया होता तो भारतीय वायु सेना के अधिकारियों[1] ने गार्ड के साथ वैन की प्रतीक्षा की होती, जो उन्हें उनके घर से लेकर चलती; सीमा सुरक्षा बल के अधिकारी विषम समय में खरीददारी करने नहीं निकलते; अशान्ति वाले इलाके के बीचोंबीच, मान अपने माता-पिता से मिलने बिल्कुल अकेला नहीं जाता है; और लस्सा कौल अपने दफ्तर में या फिर पर्यटक स्वागत केन्द्र में ही रहते।

आतंकवाद एक निष्ठुर परिदृश्य है। आतंकवादी चालबाज व्यक्ति होता है। वह उस बिंदु पर चोट करता है जहां एक विशेष समय में चोट की कम-से-कम उम्मीद होती है। सुरक्षा में थोड़ी-सी ढील का पूरा-पूरा फायदा उठाया जाता है।

---

1. अध्याय 1 देखें

इन तीन वारदातों में यही हुआ और मुशीर-उल-हक, एच० एल० खेड़ा और अन्य लोगों के साथ घटित दु:खपूर्ण घटनाओं में भी यही होना था।

जब हम भारी विषम परिस्थितियों और भीतरी विघटनकारी तथा बाहरी षड्यन्त्रों की अनेक समस्याओं से जूझ रहे थे, डॉ० अब्दुल्ला और उनकी पार्टी के कार्यकर्ताओं ने अपना विनाशकारी, यहां तक कि देशद्रोही खेल जारी रखा और लगातार मेरी पीठ में छुरा भोंका। जितना मैं सफलता के नजदीक जाता, उनके प्रयास उतने ही तेज हो जाते। शायद दिल्ली में कुछ तत्व उन्हें बढ़ावा दे रहे थे। वे किसी भी कीमत पर मेरी सफलता नहीं चाहते थे क्योंकि मेरी सफलता उनकी पिछली लापरवाही और कश्मीर मुद्दे पर राष्ट्र को दिए गए धोखे की पोल खोल देती।

नेशनल कांफ्रेंस और उसके नेताओं के प्रति वहां कोई आदर भाव नहीं था। वे कोई भी सकारात्मक काम करने की स्थिति में नहीं थे। लेकिन वे नुकसान अवश्य पहुंचा सकते थे। वे अफवाहें फैला सकते थे; अनैतिक तरीकों से जनता को भड़का सकते थे। यहां तक कि वे विघटनकारियों के सहयोगी भी बन सकते थे। वे उन्हें यह बता सकते थे : "हमें गलत मत समझो। तुम जो कुछ बाहर में करते रहे हो वही हम भीतर से करते रहे हैं।" वे आतंकवादियों के उद्देश्यों का समर्थन भी कर सकते थे। उदाहरण के तौर पर डा० फारूख की सरकार के राज्यमन्त्री अली मुहम्मद सागर ने मकबूल दिवस पर यह बयान जारी किया कि 'दमन' से बचने के लिए अर्द्ध सैनिक बलों को हटा लेना चाहिए। पर वे यह भूल गए कि यह बल उन्हीं की सरकार ने बुलाया था। 2 फरवरी को नेशनल कांफ्रेंस (फा) के 10 सदस्यों ने यह बयान जारी किया, "हम कश्मीर से अर्द्ध सैनिक बल को वापस बुलाए जाने की मांग करते हैं क्यों कि आतंक का ऐसा माहौल बना दिया गया है जो दक्षिण अफ्रीका में भी सुनने को नहीं मिलता।"[1] इनमें से एक एम० एल० ए० अब्दुल रशीद दर ने इस बयान का समर्थन करते हुए पार्टी का स्वतन्त्रता 'संघर्ष में भाग' लेने का आह्वान किया। उसने घोषणा कर दी कि वह जम्मू कश्मीर मुक्ति मोर्चा के लिए काम करेगा।

ये बयान क्या जाहिर करते हैं? क्या ये नहीं बतलाते कि भारत के प्रति नेशनल कान्फ्रेंस की वचनबद्धता केवल शक्ति और सत्ता पाने के लिए एक छलावा थी? सत्ता खत्म होते ही भारतीय आदर्शों के प्रति ईमानदारी भी खत्म हो जाती थी। जिन सैनिक बलों को इस सरकार ने खुद बुलाया था, उन्हीं को वापस बुला लेने की मांग हो रही थी। उनका आरोप था कि सुरक्षा बलों ने ऐसा आतंक फैलाया है जो दक्षिण अफ्रीका में भी देखने को नहीं मिलता। लेकिन आतंकवादियों के खिलाफ एक शब्द नहीं कहा गया और उनमें से अब्दुल रशीद दर जैसे कुछ लोग तो तथाकथित कश्मीर की आजादी के संघर्ष का समर्थन भी करते थे। शुरुआत से ही मेरी जड़ें काटने का काम शुरू हो गया था। 20 जनवरी 1990 को ही नेशनल कान्फ्रेंस द्वारा एक पक्षीय बयान दे दिया गया था। नई दिल्ली में केन्द्रीय नेताओं से बातचीत के तत्काल बाद श्रीनगर लौट कर 29 जनवरी को दूसरा बयान डॉ० अब्दुल्ला द्वारा दिया गया। पहले अध्याय में, मैं इन बयानों

---

1. इंडियन एक्सप्रेस (चंडीगढ़), 2 फरवरी 1990

का ज़िक्र कर चुका हूं। यहां मैं उनके 15 फरवरी वाले उस बयान की बात करूंगा जो उन्होंने प्रेस में लिखित रूप से जारी किया था। यह बयान आतंकवादियों को खदेड़ देने के लिए किए गए सभी प्रयासों को प्रभावहीन कर फिर से देश को विनाश के कगार पर ला खड़ा करने का प्रयास था। बयान इस प्रकार है :

"सेना और अर्द्ध सैनिक बलों द्वारा लगातार किए गए निर्दयतापूर्ण कृत्यों से काश्मीर दर्द और पीड़ा से तड़प रहा है। यहां 20 जनवरी के बाद साधारण और निहत्थे लोगों के खून से 'होली' खेली जा रही है। खून की यह होली पिछले 25 दिनों से चल रही है। घाटी के विभिन्न इलाके, विशेषकर श्रीनगर शहर के क्षेत्र नात्सी कैम्पों में बदल दिए गए हैं। लगता है जैसे गवर्नर 'हलाकू' और 'चंगेज़ खान' के नक्शेकदम पर चलकर घाटी को कब्रिस्तान में बदल देना चाहता है। 20 जनवरी से लगातार चल रहे कर्फ्यू के कारण यह कहना मुश्किल है कि कितने लोग गोलियों का शिकार हुए और कितने घर सेना और अर्द्ध सेना द्वारा नष्ट कर दिए गए। यह गहरे दुःख की बात है कि इस संकटपूर्ण स्थिति के ज़िम्मेदार लोग ही यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि स्थिति तेज़ी से सामान्य होती जा रही है। इस समय जब काश्मीर की स्थिति बहुत गम्भीर है और काश्मीरी अपने प्रिय देश को एक विशाल कब्रिस्तान में बदलता देख रहे हैं, मैं मानवता की दावेदार राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों से अपील करता हूं कि काश्मीर की स्थिति को देखें और सेना तथा अर्द्ध सैनिक बलों द्वारा अन्धाधुन्ध हत्याओं की जांच करवायें।"

यह वह देशभक्त है जो काश्मीर को 'अज़ीज़ वतन' कहते हुए अलग अस्तित्व की बात कर रहा था। यह वह 'राष्ट्रीय नेता' है, जो भारतीय सेना व अर्द्धसैन्य बलों द्वारा की गई हत्याओं की अन्तर्राष्ट्रीय जांच करवाना चाहता है। यह वह 'जिम्मेदार व्यक्ति' है जो घाटी में 25 दिन से लगातार चल रहे कर्फ्यू के कारण कितने लोग मारे गये और कितने घरों को तहस-नहस कर दिया, यह जानने में असमर्थ है। हालांकि वह अच्छी तरह जानते थे कि कुछ दिन ऐसे भी रहे जब कोई कर्फ्यू नहीं लगाया गया और अधिकारियों ने 16 फरवरी को उस समय तक मारे गये 40 लोगों की सूची बनाई थी। ये अधिकारी बार-बार जनता से और मृतक लोगों के बारे में पूछते रहते थे ताकि सूची में तबदीली की जा सके। यह अब तक मुख्यमंत्री पद पर आसीन वह व्यक्ति था जिसने यह ब्योरा देने की परवाह नहीं की कि अब तक आई० ए० एस० अधिकारियों, बी० एस० एफ० जवानों, टेलीविजन और टेली कम्युनिकेशन के उच्चाधिकारियों तथा गलियों में मारे गये जवानों की हत्या के पीछे कितने 'मासूम और निहत्थे' लोगों का हाथ था; किस तरह लम्बे और उत्तेजक बयानों से जनता को उकसाते हुए उसने इन बीभत्स हत्याओं की निन्दा में एक शब्द भी नहीं कहा।

डॉ० अब्दुल्ला का यह बयान किस बात से प्रेरित था? इसके पीछे वजह थी कि मकबूल बट्ट दिवस (ग्यारह फरवरी) को कुछ नहीं हुआ। वजह थी कि गवर्नर प्रशासन धीरे-धीरे सुदृढ़ होता जा रहा था। यह बात उन्हें, नई दिल्ली में उनके परामर्शदाताओं और सहयोगियों को कैसे पच सकती थी? इसलिए, उन्होंने काश्मीरियों की उग्र भावनाओं को भड़काने और घाटी में बुझती आग में

घो डालने का काम किया था।

शायद व्यक्तिगत स्तर पर मुझे धोखा देने की कोई अहमियत नही थी। अहमियत इस बात की थी इस प्रक्रिया मे डॉ॰ अब्दुल्ला और उनके परामर्शदाताओं ने आतंकवाद और विघटन के खिलाफ शुरू हुए एक राष्ट्रीय प्रयास को क्षति पहुंचाई। भावनाओ को उग्र और आक्रमणशील रखते हुए उन्होंने काश्मीर की पीड़ा और लम्बी कर दी और यह अनेक अन्य मौतों तथा अधिक विनाश का कारण बनी तथा इसने राष्ट्रीय तथा राज्य के खजाने को भी क्षति पहुंचाई। जिनको मैंने दृढ निश्चय और विरोध दिखाया, उनके हमले उतने ही गहरे और कटु होते गये। स्वप्रेम और उच्छृंखलता की नीति को उसके निकृष्टतम और निर्दयी रूप मे प्रयोग किया गया। सभी तथ्यों, अतीत की अपनी घोषणाओं, ठोस प्रमाणों, जिनमे से कुछ मैंने इस अध्याय के पहले भाग मे दिए भी हैं, इन सबके विरुद्ध, उन्होंने अपना छल-प्रपंच जारी रखा।

जहा मेरी भावी सफलता से डॉ॰ अब्दुल्ला और उनके परामर्शदाताओं को यह डर लगा कि कही उनके पहले के कुकृत्य सामने न आ जाएं, वहो श्रीमती बेनजीर भुट्टो और उनकी आई॰ एस॰ आई॰ जैसी एजेंसियो सहित पाकिस्तानी अधिकारियो को भी परेशानी होने लगी। उन्हें यह अहसास हो गया था कि मैं न केवल प्रशासनिक ढांचे को ठीक कर, उसके भीतरी विघटन से छुट्टी पाकर तंत्र के बडे हिस्से से ईमानदारी और सहयोग पा सकता हूं बल्कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन छेड, 1986 के विकास की गति तेज कर और जल्द से जल्द जनता की शिकायतों को दूर करके जनता का हृदय और समर्थन भी जीत सकता हूं। यह बात श्रीमती भुट्टो द्वारा मेरे विरुद्ध टी॰ वी॰ और जन समूह के बीच दिए गये उत्तेजनापूर्ण भाषणो की वजह भी स्पष्ट करती है। वे जानती थी कि मैं काश्मीर के प्रशासन और तंत्र की अन्तर्धाराओं से परिचित हूं और मेरा रवैया निश्चित रूप से प्रभावपूर्ण सिद्ध होगा। श्रीमती भुट्टो यह भी जानती थी कि अतीत मे शासन के उथलेपन और बनावटीपन से पाकिस्तान को बहुत लाभ हुआ है। वे और आई॰ एस॰ आई॰ के अधिकारी यह कैसे सहन कर सकते थे कि वर्षों की उनकी मेहनत विफल कर दी जाये जब कि वे लगभग अपने उद्देश्यों को हासिल कर चुके थे।

राष्ट्र के शुभेच्छु जो भी लोग हैं उन्हें बिना किसी पक्षपात के एक मूलभूत प्रश्न पर सोचना चाहिए था। डॉ॰ फारूख कैसे मुझे हलाकू और चंगेज खान का नाम दे रहे थे, राजीव गाधी मुझे धारा 370 विरोधी और मुसलमान तथा काश्मीर विरोधी के रूप में साबित करते आ रहे थे और उसी समय बेनजीर भुट्टो मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देने की प्रतिज्ञा कर रही थी—'जग-जग मोहन को भाग-भाग-मोहन कर देंगे'।[1]

---

1. थोडे-बहुत बदलाव के साथ उन्होंने ऐसे भावो का इस्तेमाल किया था। 'इंडिया टुडे' के 'न्यूजट्रैक' ने उसके भाषणों का कुछ हिस्सा अपने कैसेट के लिए प्रयोग किया था।

दसवां अध्याय

आतंकवाद और विघटन
सांठगांठ और षड्यन्त्र

"जब नींव ही नकली मसाले से बनी हो और जिसके अन्दर दीमक भी लगी हो तो हवा का एक झोंका ही उसे उखाड़ फेंकेगा, तूफान की तो जरूरत ही नहीं।"

—लेखक की डायरी से, 24 जनवरी 1990।

पिछले अध्याय में मैंने जो मार्ग बताया था उस पर जैसे-जैसे मैं बढ़ता गया मुझे और अधिक प्रत्याक्रमणों का निशाना बनाया गया। मेरे सामने विघटन और आतंकवाद की प्रकृति और स्वरूप और भी स्पष्ट होते गये। यह भूचाल से ढही इमारतों के ही नहीं बल्कि उस इमारत के मलबे के नीचे देखने की तरह था, जिसकी सड़ती दरारों में वे भयावह तत्त्व घर कर गये थे, जो हर दिशा में गतिशील थे। ये तत्त्व लगातार बढ़ते जा रहे थे और अन्य दरारों को, अंततः पूरे ढांचे को मलबे में बदलने के लिए प्रयत्नशील थे।

प्रश्न

ये तत्त्व कौन थे? उनके इरादे क्या थे? उन्हें इतना साहस, इतना बढ़ावा किससे मिलता था? उनकी पूरी योजना और कार्य-प्रणाली क्या थी? वे कैसे पैदा हुए, बढ़ते गये और भीतर ही भीतर अपनी जगह कैसे बनाई? उन्हें अपने बिलों से बेरोकटोक काम कैसे करने दिया गया? उनके ये बिल, ये केन्द्र अभी तक कैसे सुरक्षित बचे रहे और उन्हें आरम्भिक अवस्था में ही क्यों नष्ट नहीं किया गया? इस दीमक का कोई इलाज क्यों नहीं किया गया जबकि यह अच्छी तरह मालूम था कि पूरा क्षेत्र इस दीमक की चपेट में है?

इस अध्याय में, मैं इन सभी प्रश्नों पर विचार करना चाहता हूं। इस प्रक्रिया में वे तरीके जिनसे सत्ता के ढांचे के विभिन्न अंगों को हथिया लिया गया,

और अनेक तरह की सांठ-गांठ और षड्यन्त्र भी उद्घाटित होंगे। बाहरी एजेंसियों और बलों ने इसमें जो भूमिका अदा की और जो प्रेरणा दी—वह भी सामने आयेगी। प्रचार-प्रसार की एक विशाल मशीनरी की संरचना का भी रहस्योद्‌घाटन होगा।

आतंकवादी-दल और उनके प्रशिक्षण केन्द्र

मैं जल्द ही जान गया कि उस समय घाटी में लगभग 44 आतंकवादी दल काम कर रहे थे। इनमें से महत्त्वपूर्ण थे—जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा, हिज़ब-उल-मुजाहिदीन, स्टूडेंट मुक्ति मोर्चा, पीपुल्स लीग, अल्लाह टाइगर्स, हिज़बी इस्लामी, हिज़बुल्लाह, ऑपरेशन बालाकोट और अल खुमैनी। इन सभी से सम्पर्क स्थापित करने वाला एक दल भी था, जिसकी अध्यक्षता एक स्थानीय वकील मियां कयूम के हाथ थी। लेकिन लगभग इन सभी दलों का मार्गदर्शन और निर्देश पाकिस्तान अधिकृत काश्मीर और पाकिस्तान से संचालित होता था। जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा के मुख्य नेता थे अमानुल्ला खान, राजा मुज़फ्फर और फारूख हैदर। *वे खुले आम काम करते थे और लगातार कोई न कोई* घोषणा करते रहते थे जबकि और दूसरे दलों के नेता ज्यादातर गुप्त रूप से ही कार्यशील थे।

19 जनवरी 1990 को गवर्नर शासन लागू होने और सीमा पार करने वाले और पकड़े जाने वाले लोगों से बड़े पैमाने पर जानकारी इकट्ठा करने के बाद यह मालूम हुआ कि पाकिस्तान अधिकृत काश्मीर और पाकिस्तान में कम से कम 39 प्रशिक्षण केन्द्र हैं। पाक-अधिकृत काश्मीर के मुख्य केन्द्र थे—फाग, बटपुरा, कालामूला, चकोथी, तिलवारी, नौशेरी, अथमुगम, नेकरम, कामरी, मिनीमार्ग और बंदीबासपुर। पाकिस्तान में ऐसे केन्द्र भीम्बर, चकवाल, मुज़फ्फराबाद, दुधनैल, शिकियारी, कोहमरी, कोटली (अलीयाबाद), सब्बेर, तत्तापानी, मीरपुर, लिपा, रावलपिंडी (तंचबट्टा), गुजरांवाला, औतक, झेलम, बनोरी, कराची, अमहिरा, अलिपुरा, जाबिया, चिनारी, मगबजरी, लाहौर, पेशावर, मुल्तान, फैसलाबाद, बेतराई, हैदराबाद और खुनेट्टा में थे। घाटी में भी कुछ प्रशिक्षण केन्द्र थे। लेकिन उनमें बहुत कम समय के लिए काम हुआ और वे शीघ्र ही वहां से हटा दिए गये जिससे प्रशिक्षक और प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों को पकड़ने का कोई सुराग मिलना और कठिन हो गया। बहुत से मार्गदर्शकों और उकसाने वाले लोगों की सूची बनाई गई जिन्होंने अपना एक सुगठित दल बना लिया था और वे प्रशिक्षण देने, सीमा पार करवाने, आतंकवादी तथा अन्य गतिविधियों में लिप्त थे।

आतंकवादियों ने जिस तरह से पूरी घाटी को अपने पंजे में जकड़ रखा था, वह साफ जाहिर था।[1] लोगों से कहा गया था कि वे अपने पासपोर्ट उन्हें सौंप दें, क्योंकि जिनके पास पासपोर्ट होता, उन्हें भारतीय समझा जाता था। दुकानदारों को आदेश दिया गया था कि वे अपनी दुकानों में हरा पेन्ट करें, झंडे लगाएं,

1. सातवां अध्याय भी देखें।

नारे लिखें और जब भी 'हड़ताल' का आह्वान किया जाये तो वे अनुकरण करें। उनका 'आदेश' कानून था और पत्थरों से मारना, लूटमार और बंदूक का निशाना—सजा थी।

जनता को निर्देश दिया गया था कि वे टैक्स भी न चुकाए। जनता को तो कहने भर की जरूरत थी। राज्य की मशीनरी असमर्थ ही नहीं बल्कि मनोरंजन और उत्पादन करों जैसे दैनिक करों को भी इकट्ठा करने के लिए अनिच्छुक थी। साल के अंत तक 24 करोड़ रुपए बकाया हो गया था।

गैर-काश्मीरी लोगों को आतंकित करने के लिए धमकी भरे खत भेजे जाते थे। ऐसा ही एक ख़त जो मेरे हाथ लगा, नीचे दिया जा रहा है—

"हम जानते हैं कि तुम काश्मीर में लम्बे समय से रह रहे हो। तुम्हारी बादशाह में आटे की चक्की और लालमंडी में मकान है। तुम्हें तुरन्त काश्मीर छोड़ना होगा; वरना हम तुम्हारी फैक्टरी और मकानों को उड़ा देंगे। हम दिल्ली में तुम्हारा घर और होटल भी उड़ा देंगे।"

हम तुम्हें तुरन्त काश्मीर छोड़ने का हुक्म देते हैं, वरना तुम्हारे बच्चों को नुकसान होगा; हम जानते हैं कि वे कहां पढ़ते हैं। हमें यह भी पता है कि तुम्हारी एक लड़की की हाल ही में शादी हुई है। अपना व्यापार बन्द करो और तुरन्त चले जाओ।

हम तुम्हें धमका नहीं रहे। पर यह जमीन केवल मुसलमानों की है क्योंकि यह अल्लाह की जमीन है। सिख और हिन्दू यहां नहीं रह सकते। अगर तुमने कहना नहीं माना तो हम तुम्हारे बच्चों से शुरूआत करेंगे।

काश्मीर की आज़ादी ज़िन्दाबाद!"

इसी तरह की चेतावनी जमींदारों को दी गई कि वे फौरन सभी गैर मुसलिम, गैरकाश्मीरी काश्तकारों को बाहर कर दें। जमींदारों द्वारा फौरन ही उन्हें नोटिस दिए गये। उस बात का पता पैसा देकर स्थानीय अखबारों में छपवाए गये नोटिसों से लगा कि जंगजुओं के हुक्म की तामील हो गई है।

जिस हद तक राज्य सत्ता के महत्त्वपूर्ण अंगों का पतन हो रहा था, वह वाकई निराशाजनक था। पुलिस, सामान्य सेवाएं, अस्पताल प्रशासन, समाचार-पत्र, वकील और जज—सभी इस संक्रमण से प्रभावित थे।

पुलिस

मुझे पता चला कि अपराधों की गम्भीरता को देखते हुए, स्थानीय पुलिस थानों में तो तलाशशुदा आतंकवादियों की फोटो भी नहीं था। तब कोई भी आतंकवादी कैसे पहचाना और पकडा जा सकता था? हवाई अड्डे और बस स्टैंड पर चौकसी कैसे रखी जा सकती थी? ऐसे सवालों का जवाब कोई नहीं दे सकता था? जब मैंने गम्भीर अपराधों की फाइलें देखीं तो मैं उनके निष्क्रिय रवैये को देखकर विस्मित रह गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के सिवाय लगभग कोई कार्यवाही नहीं की गई थी। यहां तक कि डॉ० रुबैया सईद के अपहरण के केस में, जिसने पूरे राष्ट्र को हिलाकर रख दिया था और जिसे पूरे विश्व में इतना प्रचार मिला था—केवल एक पंक्ति लिखी थी—"अपराधियों का पता नहीं है

और कोई भी गवाह उपलब्ध नही है।"*

स्थानीय पुलिस के इतने बडे हिस्से में विघटनकारियो की घुसपैठ हो चुकी थी कि स्वयं पुलिस ही सुरक्षा के काम मे बाधा बन चुकी थी। अब इस बात में कोई शक नही था कि मारे गये खुफिया विभाग के अधिकारियों को स्थानीय पुलिस के इन्ही घुसपैठियो ने धोखा दिया था और उनकी पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्कों से आतंकवादियों तक पहुंचा दी थी। उदाहरण के लिए उसमे से एक अधिकारी, कृष्ण गोपाल, जिसका घर पुलिस स्टेशन के पास ही था, नौ जनवरी 1990 को तब मारा गया जब वह पुलिस स्टेशन से बाहर निकला ही था। खुफिया विभाग के अधिकारियों की वीभत्स हत्याएं और अपराधियों को पकड़ने के लिए न के बराबर की गई कार्यवाही से न केवल विभाग की अन्य शाखाओ में अनैतिकता फैली वल्कि जानकारी के अन्य साधन भी खत्म हो गये।

मेरी पायलट कार के पुलिस ड्राइवर तक के भी विघटनकारियों से ताल्लुकात थे। इस जीप का बेतार सेट भी उनको दे दिया गया था और चालक ने आराम से अपने अधिकारियों को सूचना दी कि रात में अपने घर के बाहर उसने कार पार्क की थी, तभी वह बेतार का सेट चोरी हो गया। इसलिए इसमे हैरानी की बात नही है कि इस जीप मे एक बार विस्फोट भी हुआ था।

जम्मू-काश्मीर पुलिस का एक हेड कास्टेबल, जो वायरलेस ऑपरेटर का काम करता था, वह जाने-माने आतकवादी अब्दुल्ला बागरू का साथ दे रहा था और सारे संदेश, गुप्त दस्तावेज एक आतंकवादी दल से दूसरे तक पहुंचाता रहता था। अनतनाग का एक दूसरा पुलिस कास्टेबल मुश्ताक वज़ा और बिलाल अहमद बेग मुख्य आतकवादियो के साथ मिले हुए थे।

श्रीनगर का बटमालू क्षेत्र बुरी तरह से आतंकवादियो के पजे मे था। सबसे वीभत्स अपराधो मे से कुछ यहीं हुए थे। भूतपूर्व निर्दलीय एम० एल० ए० मीर मुस्तफा और एच० एम० टी० जनरल मैनेजर खेडा के शव इसी इलाके मे पाए गये थे। बाद मे यह पता चला कि यहा का एक मध्यस्तरीय अधिकारी आतंकवादियो के साथ मिला हुआ था। उसके दफ्तर के दो सदस्य इसमे शामिल थे। एस० एस० पी० श्रीनगर का ड्राइवर भी विघटनकारियो से मिला हुआ था और कभी-कभी उसने आतकवादियो को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए एस० एस० पी० के वाहन का भी इस्तेमाल किया था। अनेक अधिकारी इन गुप्त दलो के लिए मार्गदर्शक और सूचना देने का काम करते थे। बारामूला का एक और मध्म-स्तरीय अधिकारी इस दुर्घटना मे शामिल था। हमीद शेख, जिसे डॉ० रुबैया सईद के बदले छोडा गया था, उसके पास अनेक कर्फ्यू पास थे।

स्थानीय पुलिस के कुछ तत्त्व किस तरह मे पूर्व नियोजित योजना के अनुसार विघटनकारियो की सहायता करते थे यह बात 22 जनवरी, 1990 को घटी एक घटना से स्पष्ट हो सकती है। शाम को लगभग साढे चार बजे केन्द्रीय पुलिस के छोटे से दस्ते ने लाल बाजार मे एक सफेद एम्बेसडर कार देखी। शक

---

*सातवा अध्याय देखें।

*चौदहवा अध्याय देखें।

होने पर उन्होंने उसे रुकने का संकेत किया। पर वह रुकी नहीं बल्कि और तेज हो गई। जवानों ने गोली चला दी। कार को थोड़ा नुकसान हुआ और कार में सवार एक व्यक्ति को हल्की चोट भी आई। अचानक, सौरा पुलिस स्टेशन की एक स्थानीय पुलिस जीप आई और उसने जोर-जोर से लगातार सायरन बजाना शुरू कर दिया। इससे हरेक का ध्यान बंट गया और इस अनिश्चय की अवस्था में लगभग उस पुलिस जीप के पीछे चलते हुए एम्बेसडर कार गायब हो गई। बहरहाल, लगभग 10 मिनट बाद, पास ही हवाल क्षेत्र में वही पुलिस जीप केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के जवानों ने देखी और रोक ली। तलाशी लेने पर पता चला कि जिला बारामूला के उरी गांव का एक व्यक्ति उस पुलिस ड्राइवर के साथ वाली जीप की सीट पर बैठा था। जब वह जीप से उतरा तो उसने सीट पर कम्बल में लिपटा कुछ सामान छोड़ दिया। कम्बल हटाने पर वहां एक भरी हुई .38 रिवॉल्वर, एक चीनी हथगोला, एक चाकू और एक खिलौना पिस्तौल मिली। बारामूला का ही एक और आदमी तथा जम्मू-काश्मीर सशस्त्र पुलिस के तीन कांस्टेबल, जो इस षड्यन्त्र में शामिल थे, उन्हें पकड़ लिया गया।

70 कट्टर आतंकवादियों की रिहाई

राज्य की गम्भीर स्थिति को जानने तथा यह भी जानने के बावजूद कि इस स्थिति को कुशलतापूर्वक ही सामान्य किया जा सकता है, प्रशासन आतंकवादियों की रिहाई जैसे मामलों को नगण्य समझ रहा था। जब, एक तरफ पुलिस का मनोबल गिर रहा था, जासूसी विभाग सामान्य-सा होता जा रहा था, सरकारी सेवाओं में घुसपैठ गहरी होती जा रही थी, आतंकवाद अद्भुत गति से बढ़ता जा रहा था, समाचार पत्रों में टोपक जैसी विघटनकारी योजनाओं की रपटें दी जा रही थीं, जब पूरा राष्ट्र बिगड़ती हुई स्थिति पर चिन्ता प्रकट कर रहा था और जब षड्यन्त्रों का स्वरूप साफ़ जाहिर हो रहा था, तब राज्य सरकार ने अनेक आतंकवादियों को रिहा करने का निश्चय किया। जुलाई और दिसम्बर 1989 के बीच सत्तर खतरनाक कट्टर आतंकवादियों को मुक्त कर दिया गया। मुझे इन बातों का संयोगवश ही पता चला। जो मुझे पता चला, वह वाकई आश्चर्यजनक था। मैं एक विशेष मामले का संक्षिप्त ब्यौरा यहां दे रहा हूं।

त्रेहगाम का निवासी मोहम्मद अफज़ल शेख सीमा पार कर पाकिस्तान पहुंचा और अपने जीजा गुलाम मोहम्मद बनी, जो पाक अधिकृत काश्मीर में बस गया था, के पास रहने लगा। मुजफ्फराबाद में वह जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा के 'अध्यक्ष' अमानुल्ला खान की मदद से मकबूल बट्ट के पुत्रों, जावेद मकबूल बट्ट और शौकत मकबूल बट्ट से मिला। जे०के०एल०एफ़० के मुख्य नेता अब्दुल अहद बजा से भी उसकी मुलाकात हुई। मुजफ्फराबाद में ही उसने उनका साथ देने की प्रतिज्ञा ली और एक फार्म भरा जिसमें अपने खून से अंगूठे का निशान भी लगाया। वह 'कच्ची गदी' पेशावर में प्रशिक्षण पाने गया। वापसी पर उसने बसों में विस्फोट किए। उसे पकड़ लिया गया और हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस की अध्यक्षता में बनी सलाहकार समिति ने उसकी कैद की पुष्टि भी की। फिर भी उसे जुलाई 1989 में फारूख अब्दुल्ला सरकार ने छोड़ दिया।

इस प्रकार छोड़े गए व्यक्ति खतरनाक विघटनकारी थे। उन्हें खतरनाक हथियारों का प्रयोग करने का प्रशिक्षण मिला था। उनका सम्पर्क पाक अधिकृत काश्मीर के उच्चाधिकारियों से था। उन्हें पाकिस्तान जाने और वहां से लौटने के सभी गुप्त मार्ग पता थे। ये वे लोग थे जिन्हें आतंकवाद के सभी व्यावहारिक अनुभव थे—सीमा पार करने का, पाकिस्तान से हथियार लाने का और आतंकवादी अपराध करने के सभी अनुभव। ये वे लोग थे जिनकी गिरफतारी को तीन सदस्यों की सलाहकार समिति जिसके अध्यक्ष चीफ जस्टिस थे, ने स्वीकृति दी थी। फिर भी इन्हें छोड़ दिया गया और वह भी उस वक़्त जबकि विघटनकारी तत्वों का दृढ़तापूर्वक सफाया करने की बेहद जरूरत थी।

किसी भी मामले में रिहाई इसलिए भी ठीक नहीं थी क्योंकि इनमें से किसी को भी पुलिस पकड़ न सकी थी, न ही इनका पता ठिकाना मालूम कर सकी थी। मैंने सभी 70 आतंकवादियों को दुबारा गिरफतार करने का हुक्म दिया। स्पष्टतः अब ये लोग भूमिगत हो गए थे और इन्होंने अपनी आतंकवादी गतिविधियां तेज कर दी थीं जिससे और मौतें हो रही थीं और बम विस्फोट तथा लूटमार की वारदातें बढ़ रही थीं।

चूंकि ये लोग अपनी गतिविधियों में निपुण थे, उनके सीमा पार सम्पर्क स्थापित थे और उन्हें लोगों को सीमा पार करवाने में कठिनाई नहीं होती थी इसी वजह से सीमा पार करने वालों और हथियारों की स्मगलिंग में और तेज़ी हुई। वे अन्य युवकों को भी अपने साथ शामिल होने के लिए उत्साहित करते थे। युवकों को विश्वास दिलाने के लिए वे अपने मामलों का हवाला भी दे देते थे। देखो, हमारे साथ क्या हुआ। हम पाकिस्तान जा चुके हैं। कट्टर आतंकवादियों से मिल चुके हैं और बम विस्फोट करने जैसे काम भी कर चुके हैं। हमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। हम फिर से वही काम कर रहे हैं।"

इस तरह उन 70 आतंकवादियों की रिहाई ने बचे-खुचे ईमानदार पुलिस अधिकारियों में उत्साहहीनता ही नहीं फैलाई बल्कि आतंकवादी तत्वों को और उत्साहित किया जिससे वे पहले से ज्यादा उच्छृंखल हो गए। सरकार का जो रहा-सहा भय था वह भी जाता रहा।

अक्षम्य बात यही थी कि सभी आतंकवादियों को एक साथ छोड़ा गया। इससे उन्हें विघटन, आतंक फैलाने और पाकिस्तान से हथियार लाने, अपहरण करने और आतंकवादी गतिविधियां बढ़ाने का फिर से मौका मिला और उन्होंने अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर ली। उदाहरण के लिए इनमें से एक मोहम्मद दाऊद आतंकवादियों के दल अल बकर का डिप्टी कमाण्डर बन गया और उसने ढाई हजार काश्मीरी नौजवानों को इस आतंकवादी दल की दीक्षा दी। इसी तरह अब्दुल अहद भट ने और भी अधिक संख्या में पाकिस्तान में ट्रेनिंग के लिए जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चे में भर्ती की।

सामान्य सेवाएं

पुलिस के अतिरिक्त अन्य सरकारी विभागों में क्या हो रहा था ? मुझे पता चला कि बहुत से सरकारी अधिकारी विघटनकारी गतिविधियों में शामिल हैं।

उनमें से कुछ तो दल संचालक या दल नेता के रूप में भी काम करते थे। जिस तरीके से सरकारी अधिकारी आतंकवादी गतिविधियों में भाग लेते थे, वह नीचे दिए गए एक विशेष उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

राज्य विद्युत विभाग पुलवामा का एक इंस्पेक्टर हिज़बुलमुजाहिदीन के क्षेत्रीय कमाण्डर के रूप में काम कर रहा था। यद्यपि यह अधिकारी खुले आम क्षेत्रीय नेता का काम कर रहा था और बहुत दिनों से दफ्तर में अनुपस्थित भी था, फिर भी उसे वेतन और अन्य सुविधाएं मिल रही थीं। वह विघटनकारी गतिविधियों के लिए विद्युत विभाग की टेलीफोन और वाहन जैसी सुविधाओं का इस्तेमाल भी कर रहा था।

इस प्रकार के उदाहरणों से कुछ खास सवाल उठते हैं। इतने सारे सरकारी अधिकारी विघटनकारियों के सहयोगी कैसे बन गए? इतने लम्बे समय तक वे लगातार इन गतिविधियों को जारी कैसे रख सके और इनमें से कुछ तो पाक अधिकृत काश्मीर भी पहुंच गए? क्या यह सम्भव है कि इन सभी गतिविधियों का कोई सुराग नहीं मिलता था, जब तक कि प्रभावशाली लोगों द्वारा इन्हें प्रेरणा न मिलती हो या इन सभी सरकारी कर्मचारियों का कोई राजनैतिक संरक्षक न हो? जब मुझे अनेक भयंकर अपराधों का पता चला तो मुझे मालूम हुआ कि एक विशेष विभाग के बहुत से जूनियर इंजीनियर इन वारदातों में शामिल थे। मैंने मुख्य इन्जीनियर को बुलाया और उससे पूछा कि इसकी क्या वजह है? उसने बताया कि इन जूनियर इन्जीनियरों को अपने उच्च-अधिकारियों की कोई परवाह नहीं। उनकी सीधी सिफारिश मन्त्रियों या प्रभावशाली राजनैतिक नेताओं ने की थी और प्राय: जूनियर इन्जीनियर के लिए मुख्य इन्जीनियर को जवाबदेह होना पड़ता था जबकि ठीक इसके विपरीत होना चाहिए।

षड्यन्त्र

किस सीमा तक संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण विभाग में भी इन लोगों की घुसपैठ हो गई थी इस बात का अन्दाजा श्रीनगर सेन्ट्रल जेल से 12 खतरनाक कैदियों के फरार होने की घटना से लगाया जा सकता है। वे लोग जो कैदियों की चौकसी के लिए जिम्मेदार थे उनकी मदद से ही कैदी फरार हुए थे।

गजेटेड या नॉन गजेटेड जेल या पुलिस या फिर विद्युत विभाग के अधिकारी लगभग सभी विघटनकारी तत्त्वों के शिकार हो चुके थे। कुछ षड्यन्त्र रचते थे, कुछ उसे मूक सहमति दे देते थे तो कुछ चुपचाप मुंह फेर लेते थे। फरार होने की सारी सुविधाएं उन्हें दी गईं। ग्रिल और कीलों को काटने के लिए औजार भी वहां मौजूद थे। सीढ़ी बनाने के लिए साथ वाले खाली बैरकों में लकड़ी पड़ी थी। कैदियों को क्रिकेट खेलने के बहाने बैरक में जाने दिया जाता था। सीढ़ी में कील ठोकने की आवाज को बैट पर गेंद पड़ने की आवाज समझा जाता था। बड़ी-बड़ी चादरें उन्हें दी गई थीं ताकि उन चादरों को इकट्ठा बांध कर एक रस्सा तैयार किया जा सके जो जेल के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट के क्वार्टर के आंगन में लटकाने के लिए इस्तेमाल हो सके। डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ने बड़ी सफाई से सुपरिन्टेन्डेन्ट से रात को जेल से बाहर रहने की अनुमति ले ली थी। आंगन से वे

दरवाजा खोलकर उस रास्ते से भाग सकते थे जो बी० एस० एफ० की चौकसी से परे था। एक या दो खेत पार करके नगीना झील आ जाती है जहां पर कैदियों को भगा ले जाने के लिए छोटी नावें तैयार थीं। जब सभी प्रबन्ध कर लिए गए, तो जेल का ट्रांसफार्मर गर्म हो गया और वह इलेक्ट्रीशियन जो सामान्यतः रात को वहां नहीं होता था, तुरन्त वहां मिल गया और उसने ट्रांसफॉर्मर को बन्द कर दिया। इन लोगों ने अपनी भूमिका अदा की और काम सफल होने में सहायता की।

ऐसी योजना थी कि उचित समय पर उचित व्यक्ति उपलब्ध रहे। विघटन को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक अदृश्य शक्तियां भी प्रशासन में काम कर रही थीं। अगर किसी से पूछताछ की जाती तो कोई भी दयनीय मुंह बनाकर शिकायत कर देता कि एक विशेष समुदाय के स्थानीय लोग विश्वसनीय नहीं है। यदि इन 'अदृश्य' तत्त्वों को खोजने का कोई प्रयास नहीं किया जाता, तो ये लोग और अधिक गतिशीलता और उत्साह से काम करने लगते।

सांठ-गांठ के केन्द्र, राज्य-अस्पताल

घाटी के कुछ प्रभावशाली डॉक्टरों ने सरकारी मशीनरी के अन्दर-ही-अन्दर एक शक्तिशाली राष्ट्र-विरोधी संगठन बना रखा था। श्रीनगर के अस्पताल खास तौर पर एस० के० एम० आई०, एस० एम० एस०, और लल देद धीरे-धीरे षड्यन्त्रकारियों की गतिविधियों का अड्डा बन गए। वे अस्पताल का भोजन खाते थे; अस्पताल के बिस्तरों पर सोते थे, अस्पताल के स्टोर्स में अपने हथियार छिपाते थे और स्टाफ के क्वार्टरों से निकल कर गुप्त मार्गों से भाग जाते थे। मसलन एम० एम० एस० अस्पताल के बाहरी आंगन की दीवार पर कुछ चुने हुए स्थानों पर दरारें बनाई गई थीं जहां से कोई भी भीड़-भरे मोहल्लों की तंग गलियों में भाग सकता था। हमीद शेख और यासिन मलिक जैसे खतरनाक आतंकवादियों के फरार होने, डॉ० रुबैया सईद के अपहरण और सौरा मेडिकल भवनों के आसपास हुई हत्या की वारदातों में किसी-न-किसी तरह से अस्पताल प्रशासन का हाथ था। डॉ० ए० ए० गुरु, जिसने एक लम्बे समय में अपने पद और प्रभाव तथा राजनैतिक सम्बन्धों का इस्तेमाल करके स्थानीय चिकित्सा समुदाय में दृढ़ पकड़ जमा ली थी—वही इन सभी वारदातों के पीछे मुख्य व्यक्ति था।

दुर्भाग्यवश सभी सामान्य प्रक्रियाओं और परम्पराओं के विरुद्ध शेख अब्दुल्ला के आग्रह पर एक ट्रस्ट के माध्यम से श्रीनगर मेडिकल इंस्टीट्यूट चलाया जा रहा था। इस ट्रस्ट पर शेख अब्दुल्ला और उनके अंतरंग सहयोगियों का नियन्त्रण था। हालांकि इसके लिए जरूरी सारा खर्च पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा उठाया जा रहा था। समय के साथ-साथ यहां एक पाकिस्तान-समर्थक दल बन गया जिसका हस्तक्षेप इंस्टीट्यूट के कार्यों, खास तौर पर नियुक्तियों और यन्त्रों की खरीद में भी होने लगा। यह विडम्बना पूर्ण है कि इस प्रकार दूरदृष्टि की कमी होने के कारण भारत सरकार ने स्वयं अपने साधनों से घाटी में एक सशक्त विघटनकारी दल खड़ा कर दिया।

अदालतें भी नहीं बच पाईं

आतंकवाद और विघटन का प्रभाव न्याय प्रणाली पर भी पड़ा। जिला और उपक्षेत्रीय स्तर पर अदालतों ने लगभग काम करना बन्द कर दिया था। शोपियां जैसे कुछ कस्बों में कुछ वकीलों ने इकट्ठा होकर एक इस्लामी अदालत की स्थापना कर ली थी और जमात-ए-इस्लामी के नेता जनता को सलाह देते थे कि वे अपनी समस्याएं लेकर उस अदालत में आएं।

इस माहौल ने राज्य हाई कोर्ट को भी प्रभावित किया। वे दो जज जो श्रीनगर से अपना काम करते थे, उन्होंने आदेशों में सुधार के ऐसे निर्णय जारी करने शुरू कर दिये जिसके लिए हमें बार-बार उच्चतम न्यायालय तक जाना पड़े। यहां तक कि जब उन लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती थी जो भारतीय स्टेंडर्ड समय की बजाए 'पाक स्टेंडर्ड समय' का इस्तेमाल करते थे, तो ये न्यायाधीश बीच में आकर कार्यवाई को 'स्टे' दे देते थे। उन अखबारों की भी यही स्थिति थी जो न्यूज़ स्टोरी के बहाने अपराधपूर्ण धमकियां प्रकाशित करते थे।

दो जजों द्वारा स्वयं एक डिविजन बेंच बना लेना उस तरीके का एक और उदाहरण है, जिसमें राज्य हाई कोर्ट श्रीनगर से काम कर रहा था। हाई कोर्ट के नियमानुसार केवल चीफ़ जस्टिस ही डिवीजन बैंच बना सकता है लेकिन इन दो जजों ने खुद डिवीजन बैंच बना ली जिसकी वजह से उनके द्वारा जारी हर आदेश को लेकर हमें उच्चतम न्यायालय तक जाने की विवशता झेलनी पड़ी। अगर यह आदेश एक जज जारी करता तो हम राज्य की शीतकालीन राजधानी, ज़म्मू से काम करते हुए उसी हाई कोर्ट के डिवीजन बैंच को अपील कर देते।

श्रीनगर बैंच द्वारा जारी किए गए कुछ आदेशों को ध्यान में रखना जरूरी है। ये आदेश निम्नलिखित से सम्बन्धित थे—

राज्य सरकार को सुनवाई का कोई अवसर न देते हुए स्थगन आदेश जारी करना; कर्फ्यू लागू करने के अधिकारियों के वैधानिक अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाना; पब्लिक सेफ्टी एक्ट के तहत गिरफ्तार किये गये आतंकवादियों और विघटनकारियों को लगभग अग्रिम जमानत दे देना। इन आदेशों से दुःखी होकर हमने उच्चतम न्यायालय से अपील की और उच्चतम न्यायालय ने हैरानी और दुःख जाहिर करते हुए हाई कोर्ट के सभी निर्णयों को उलट दिया।

वकील समुदाय

श्रीनगर का वकील समुदाय भी उन तत्वों की चपेट में आ चुका था जिन्होंने इसे विघटनकारी विचारों को प्रोत्साहित करने का जरिया बना लिया था। यह समुदाय अक्सर प्रस्ताव पारित करता और उन्हें खूब प्रचारित करता। मसलन, संयुक्त राष्ट्र के स्थानीय दफ्तर में दिये गये ज्ञापन में उन्होंने लिखा—"भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट 1947 के पारित होने के बाद जम्मू-काश्मीर राज्य पर अंग्रेजों का स्वामित्व समाप्त हो गया और अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार 15 अगस्त 1947 को यह एक स्वतन्त्र देश बन गया। इस देश के डोगरा महाराज ने यहां के लोगों की आकांक्षाओं को नहीं पहचाना और उन्होंने भारतीय नेताओं के साथ जम्मू-काश्मीर के लोगों की इच्छा के विरुद्ध जम्मू-काश्मीर भारत को देने के लिए

षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया। इस षड्यन्त्र के परिणाम स्वरूप जम्मू प्रान्त मे ही लगभग 2.5 लाख मुस्लिम मारे गये और बहुत से लोगो को पाकिस्तान के सीमावर्ती क्षेत्रो में भागना पडा। इस षड्यन्त्र और जम्मू प्रान्त मे मुसलमानो के संहार के विरुद्ध कुछ जन-जातियों के सहयोग से यहा के लोगों ने राजा द्वारा मुस्लिम अधिसंख्यको की इच्छा के खिलाफ जम्मू काश्मीर भारत को सौंपने के प्रयास को विफल करने का निश्चय किया। बहरहाल, इससे पहले कि जम्मू-काश्मीर को महाराजा के निरंकुश शासन मे मुक्त कराया जा सकता, महाराजा हरीसिंह ने 22-1-1947 को जम्मू-काश्मीर भारत को सौंप दिया।"

समाचार-पत्र भी माध्यम बने

आतंकवाद अपने कार्यों और उनके प्रचार-प्रसार तथा घोषणाओं पर बहुत निर्भर करता है। यह विरोधियो को अनैतिक बताने, उनको हतोत्साहित कर संघर्ष करने की इच्छा को समाप्त करने का प्रयास करता है और इस प्रक्रिया में भय का वातावरण पैदा कर देता है। सितम्बर 1972 को ग्यारह इजरायली खिलाडियो का ब्लैक सितम्बर आतंकवादियो द्वारा अपहरण और हत्या जिसे पूरे विश्व में लगभग 5000 लाख टैलीविजन दर्शको ने देखा—इस तथ्य का जीता जागता उदाहरण है।

जैसे-जैसे घाटी मे आतकवाद की छाया फैलने लगी, स्थानीय भाषा के समाचारपत्र कुछ अपवादों को छोडकर उन्हें स्वेच्छा से सहयोग देने लगे। इसका एक भाग आतंकवादियों की गोली से डरता था, तो दूसरे हिस्से को विघटनकारी भूमिका अदा करने में हिचक नही थी और एक हिस्सा केवल इस्लामी कट्टरपंथी विचारधारा का प्रचार करके मूलभूत भावना को उकसाता था। इसका परिणाम अन्तत: यह हुआ कि उर्दू की सारी स्थानीय पत्रिकाए विघटनकारियों की जबान में बोलने लगी। सभी ने लगभग आतकवाद के समर्थन मे सफाई पेश की, इसे उकसाया, तर्क संगत बताया और यहा तक कि इसे महिमा मण्डित भी किया। वे मासूम और बेगुनाह लोगो की हत्या के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी बने।

आतंकवादी दलों की विज्ञप्तियां छापने के बहाने, उनकी घोषणाएं, बयान, कार्यक्रम बड़े-बडे शीर्षको मे खूब प्रचारित किए जाते। क्षेत्रीय कमाडर, मुख्य कमाडर, मिलेट्री सलाहकार वगैरह के पद इस तरह प्रयोग मे लाए जाते जैसे वे वाकई 'पद' हो। धमकी भरी मुद्राए, उकसाने और भड़काने वाली भाषा इस्लामी उग्रवाद के साथ प्रयोग की जाती।

कट्टरपंथी शब्दो में लिपटा हर मसाले से युक्त विघटन का यह 'सन्देश' घाटी के कोने-कोने तक फैलाया जाता। नवम्बर-दिसम्बर 1989 तक जैसे-जैसे राज्य सरकार की शक्ति घटी, स्थानीय उर्दू पत्रिकाएं अपनी रिपोर्टों और कथनों मे और अधिक उग्र और विषाक्त होती गई। जब मैं राज्य मे आया तो हालत यह थी कि भारत के पक्ष मे एक शब्द भी नही कहा जा सकता था। 'ब्राह्मण सामन्तवाद' और 'दिल्ली दरबार' जैसे अपमानजनक और घृणापूर्ण शब्द प्राय: इस्तेमाल किए जाते थे। इस सिलसिले में 'चट्टान', 'वादी की आवाज' नामक पत्रिकाएं प्रमुख

थीं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी जल्द ही इनका अनुकरण किया और पूरा स्थानीय प्रेस देश को रोज घायल करता और घाटी से इसके सम्बन्ध पर गहरे घाव करने वाले भाले का काम करने लगा। यह दुःखपूर्ण ही था कि जब यह सब हो रहा था, राज्य उन्हें विज्ञापन, न्यूज प्रिंट और ऋण के रूप में खूब मदद कर रहा था। निरंकुश राज्य का इससे बुरा उदाहरण क्या हो सकता है? क्या उन्हीं हाथों को रोज़ मजबूत बनाने का कोई अर्थ था जो नित्य विघटनकारियों द्वारा भड़काई गई आग में तेल डाल रहे थे?

कुछ अखबार तो मुख्य आतंकवादी दल, हिजबुल मुजाहिदीन के लगभग प्रवक्ता का काम कर रहे थे। एक अखबार ने सरकारी उच्चाधिकारियों को मारने की धमकी छापी तो दूसरे ने 48 घंटे के भीतर गैर काश्मीरी और काश्मीरी ब्राह्मणों को घाटी छोड़ देने की चेतावनी छापी। ऐसा न करने पर वे मारे भी जा सकते हैं। ऐसी खबरों से लोगों के मन में डर बैठ गया और उनमें कुछ तो घाटी छोड़ कर जाने की तैयारी भी करने लगे।

29 मार्च को 'वादी की आवाज़' ने 'ऑपरेशन बालाकोट' के प्रमुख आजम इंकलाबी की यह घोषणा छापी कि वे तब तक चैन नहीं लेंगे जब तक कि गवर्नर जगमोहन की हत्या न हो जाये और भारतीय पंजों से काश्मीर को न छुड़ा लिया जाए।" 1 अप्रैल के 'आफताब' में अल-उमर-मुजाहिदीन का एक कथन प्रकाशित हुआ था जिसके अनुसार आई० ए० एस० और आई० पी० एस० अधिकारियों सहित सभी गैर-काश्मीरियों को 15 अप्रैल तक काश्मीर छोड़ देना था। इसी कथन में लोगों को गाय का मांस भी खाने का निर्देश दिया गया था।

15 अप्रैल को 'श्रीनगर टाइम्स' ने खबर दी कि 14 अप्रैल को हिज़बुल मुजाहिदीन की एक विशेष सभा बुलाई गई। दल के सभी नेताओं ने भाग लिया। इस सभा में गवर्नर जगमोहन को हिटलर का नाम भी दिया गया। सभा में कहा गया कि हिटलर ने एक ऐसे राष्ट्र को चुनौती दी है जिसका विश्वास 'ला-इलाह-इल्लल्लाह मुहम्मद रसूल अल्लाह' में है और यह वही राष्ट्र है जिसने निज़ाम-ए-मुस्तफा की स्थापना के लिए सब कुछ दांव पर लगा दिया। यह निश्चय किया गया कि भारतीय साम्राज्यवादियों, गुप्तचर विभाग के अधिकारियों और सूचना विभाग के अफसरों को दी गई चेतावनी का समय खत्म हो चुका है और उन्हें मृत्यु से पहले अपनी अन्तिम इच्छा पूरी करने की मोहलत दी गई। इसी अखबार ने अपनी दूसरी रिपोर्ट में बताया कि जे० के० एल० एफ० ने अपनी खास सभा में, जिसकी अध्यक्षता क्षेत्रीय कमांडर हिलाल अहमद बेग ने की, जनता से अपील की है कि वे कर्फ्यू में ढील देने के समय के खत्म होने के बाद भी सड़कों पर इकट्ठा हों ताकि गवर्नर को पूरी तरह से चुनौती दी जा सके।

इस तरह की रिपोर्टिंग के पीछे क्या मंशा रही थी? पहली बात, हिज़बुल मुजाहिदीन को बहुत तूल दिया गया और यह दर्शाया गया कि इस दल में कई प्रमुख नेता शामिल हैं। दूसरी बात, गवर्नर को बदनाम किया गया और उस पर एक काश्मीरी 'राष्ट्र' को चुनौती देने का आरोप लगाया गया—एक ऐसा राष्ट्र जो इस्लाम से प्रेरित था और जिसका उद्देश्य निज़ाम-ए-मुस्तफा की स्थापना करना था। यह सब भोली-भाली जनता की धार्मिक भावनाओं को भड़काने के लिए किया गया। तीसरी बात, हत्या की धमकी तथाकथित साम्राज्यवाद के

दलालों तक पहुंचा दी गई और चौथी बात, जनता को कर्फ्यू तोड़ने के लिए उकसाया गया।

जनता को आतंकित करने और उनके दिमागों पर नियन्त्रण पाने का इससे बढ़िया और क्या तरीका हो सकता था? इसके अतिरिक्त आतंकवादियों को अपने कार्यक्रमों और नीतियों का बड़े पैमाने पर निःशुल्क प्रचार-प्रसार कैसे मिल सकता था? अपने सभी विघटनकारी और अपराधपूर्ण तत्त्वों के साथ कोई भी अहस्ताक्षरित विज्ञप्ति को प्रचार माध्यमों द्वारा प्रसारित कर दिया जाता और खासा स्थान मिलता।

पुलिस विभाग की सी० आई० डी० शाखा द्वारा एक सूचना जारी की गई। 6 अप्रैल 1990 को यह 'श्रीनगर टाइम्स' में इस तरह प्रकाशित की गई।

'वह कौन सा घृणित व्यक्ति है जो मुजाहिदों का विरोध करता है। हम मुजाहिद दलों से एक बार फिर अपील करते हैं कि सूचना देने वालों में से कोई भी सी० आई० डी० अधिकारी नहीं है और न ही वे गिरफ्तारियों में गुप्त रूप से कोई भूमिका अदा करते हैं। हम मुजाहिद दलों को विश्वास दिलाते हैं कि हम उन कार्यों में शामिल नहीं है जो काश्मीरियों के पवित्र उद्देश्य में बाधा बनें।'

—गुप्तचर विभाग के कर्मचारी

इस विज्ञप्ति की सच्चाई जाने बगैर इसे प्रकाशित करने के पीछे क्या उद्देश्य हो सकता है? यह देखना मुश्किल है कि इसका उद्देश्य गलतफहमियां और शक पैदा करना, सरकारी सेवारत लोगों को निरुत्साहित और विघटनकारियों के उद्देश्य को बढ़ावा देना था।

स्थानीय समाचार-पत्रों का तो क्या कहा जाय जब श्रीनगर दूरदर्शन केन्द्र ही विघटनकारी तत्त्वों का लगभग प्रवक्ता बन चुका था। श्रीनगर पहुंचने के बाद पहले सप्ताह में ही मैं यह देखकर विस्मित रह गया कि स्थानीय काश्मीरी समाचारों में, खाड़कुओं के झूठे और बढ़ा-चढ़ा कर दिए गये विवरणों को समाचार के नाम पर प्रसारित किया जा रहा था। यहां तक कि 'नमाज-ए-जनाजा' जो अनंतनाग, बारामूला और सोपोर में होती थी, वह भी दूरदर्शन पर दिखलाई जा रही थी। उग्रवादियों के शस्त्रागार का सबसे सस्ता और सर्वाधिक भयानक हथियार था—अफवाहें फैलाना। काश्मीरियों में अफवाहों, अतिशयोक्तियों और नमक-मिर्च लगी बातों के लिये विशेष कमजोरी है। 'काश्मीर की घाटी' पुस्तक के लेखक वाल्टर लारेन्स ने सौ वर्ष पूर्व लिखा था—जेनकादल, नगर का चौथा पुल झूठी अफवाहों को गढ़ने की जगह हुआ करती थी, लेकिन अब खबरें बनाने वाले पहले पुल अमीरा कादल पर चले गये हैं। ज्यादातर लोग बुद्धिमान नहीं होते और नगर से आने वाले विवरणों से गांव वालों को बहुत परेशानियां उठानी पड़ती हैं।

शेख अब्दुल्ला के चारों ओर एक प्रभामंडल बनाने और उनकी व्यक्ति पूजा करवाने में उनके अनुयायियों ने अफवाहों के प्रति इस कमजोरी का पूरा प्रयोग किया। उदाहरण के लिए इस प्रकार की अफवाहें बड़ी कुशलता के साथ फैलाई गईं कि 'चिनार' वृक्षों की पत्तियों में शेख अब्दुल्ला का नाम उभरा हुआ है। उग्रवादियों ने भी काश्मीरियों की अफवाहों के प्रति इस कमजोरी का पूरा उपयोग किया। वास्तव में, उनकी युद्धनीति का एक अंग ऐसी अफवाहों को गढ़ना था

जिनसे जनता में राज्य और केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध घृणा फैले। इस विषय में उनके निर्देश थे—"दुश्मन का नैतिक हौसला पस्त करने और उसकी छवि जनता में बिगाड़ने के लिए अफवाहें फैलाओ।" उदाहरण के लिए अप्रेल 1990 के दूसरे सप्ताह में जब श्रीनगर में कर्फ्यू के दौरान राज्य सरकार की ओर से सेना द्वारा भोजन के पैकेट वितरित किए गये, ये अफवाहें फैलाई गई कि इन पैकिटों में ऐसा पदार्थ मिला है जिसे खाने से महिलाएं और पुरुष अपनी प्रजनन शक्ति खो देंगे और यह घाटी में मुसलमानों की संख्या कम करने के लिए बनाये गये पूरे षड्यंत्र का एक भाग है। उग्रवादियों का मूल उद्देश्य ऐसी अफवाहों को गढ़ कर राज्य प्रशासन और जनता को एक दूसरे के निकट आने से रोकना था। एक रात अचानक एक दूसरी अफवाह घाटी के निचले भागों की लगभग सभी बस्तियों में फैला दी गई कि सुरक्षा बलों ने नगर के मुख्य जल भण्डार में विष मिला दिया है, लोगों को यह पानी नहीं पीना चाहिए और विरोध प्रकट करने के लिए मस्जिदों में एकत्रित होना चाहिए। यह सारी कोशिश जनता को कर्फ्यू के बंधनों को सामूहिक रूप से तोड़ने के लिए भड़काने हेतु की गई थी। हमने ऐसी अफवाहों को निष्प्रभावी बनाने के लिए पुलिस और अर्द्धसैन्य बलों को यह निर्देश दिये कि वे सड़कों पर लोगों की उपस्थिति में स्वयं नगरपालिका के नलों से पानी पीएं और भोजन पैकिटों में से खाएं।

व्यापक प्रचार

स्थानीय प्रेस से अधिक से अधिक प्रचार प्राप्त करने के अतिरिक्त विघटनकारी दलों ने बहुत से नारों, गीतों, स्टिकर्स, पोस्टरों, पैम्फलेट, ऑडियो-वीडियो कैसेट और पत्रिकाओं जैसे बहुत से प्रचारपूर्ण साहित्य का प्रयोग भी किया। कुछ विशेष नारे और स्टिकर्स का मसौदा यहां दिया जा रहा है। (देखिए सामने पृष्ठ पर)

यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये स्टिकर्स और नारे धर्मान्ध रूप से भारत विरोधी हैं और काश्मीरियों को सारे भारतीय कैम्प, डिपो जलाने और घाटी में भारतीय उपस्थिति के सारे संकेत मिटा डालने के लिए उकसाते हैं। जिहाद का समर्थन किया जाता है और काश्मीर की आज़ादी को इस्लामी विश्वास और अल्लाह की इच्छा से जोड़ा जाता है।

इस्लामी प्रतीकों और रूपकों का प्रयोग

विघटनकारियों के प्रचार साहित्य की मुख्य विशेषता है इस्लाम के प्रतीकों और रूपकों का अत्यधिक प्रयोग। सातवीं और आठवीं शताब्दी के इस्लामी इतिहास के बहादुरी भरे कारनामों का अक्सर हवाला दिया जाता है। मसलन, पैगम्बर मुहम्मद की मक्का के अरब काफिरों पर विजय का प्रसंग बार-बार लिया जाता है। प्रयास यही रहता है कि काश्मीरी मुसलमानों विशेषकर अनपढ़ मुसलमानों के दिमाग की धार्मिक भावनाओं को उकसाया जाये। इस तथ्य का एक उदाहरण वह गीत है जिसे 'काश्मीर का स्वतंत्रता गीत' कहा जाता है—

توحید ہماری دعوت ہے

جہاد ہمارا راستہ ہے

اہلحدیث یوتھ فورس مظفر آباد

کشمیر کی مکمل آزادی

اور

اسلامی انقلاب کی نقیب ہے

جموں و کشمیر حزب المجاہدین

PRICE OF FREEDOM

IS BLOOD





विघटनकारी दलों ने बहुत से नारों, गीतों, स्टिकर्स, पोस्टरों, पैम्फलेटों, ऑडियो-वीडियो कैसेटों और पत्रिकाओं जैसे बहुत-से प्रचारपूर्ण साहित्य का प्रयोग भी किया। ये स्टिकर्स और नारे धर्मान्ध रूप से भारत विरोधी हैं और काश्मीरियों को सारे भारतीय कैम्प, डिपो जलाने व घाटी में भारतीय उपस्थिति के सारे संकेत मिटा डालने के लिए उकसाते हैं।

गलगला हरचारसू है नारा-ए तकबीर का
जाग उठा है मुसलमान वादिए-काश्मीर का
जुर्रते फारूको हैदर हौसला शब्बीर का
मौत का कुछ खौफ है दिल में न दारोगीर का
या शहादत पाएंगे या होंगे अब हम फतेहयाब।

लाएंगे काश्मीर में इसलाम का हम इंकलाब
सरफरोशी के लिए तैयार हैं पीरोजवा
नग़माए-तौहीद लब पर अज्म चेहरों से अयां
राइफल एक हाथ में है दूसरे में है कुरान
फिर से दोहराने को है बदरोअहद की दास्ता
फतेह व नफरत साथ है और कामरानी हमरकाब
लाएंगे काश्मीर में इस्लाम का हम इंकलाब।

'गीत के तर्जुमे का मतलब कुछ इस तरह होगा—"हर दिशा में 'तकबीर' (अल्लाह के) नारे सुने जा रहे हैं। घाटी का मुस्लिम जाग गया है। वह फारूख और हैदर जितना बहादुर और शबीर जितना साहसी है। उसे मृत्यु या पीड़ा का भय नहीं। हम या तो शहीद हो जाएंगे या फतह पाएंगे। हम काश्मीर में इस्लामी क्रांति लाएंगे। बूढ़े और जवान सभी अपनी जान देने को तैयार हैं। उनके होठों पर 'तौहीद' का पाठ है, उनका निश्चय उनके चेहरों पर स्पष्ट है। बद्र और उहद की लड़ाई का इतिहास दोहराया जायेगा। फतह हमारे साथ है। हम काश्मीर में इस्लामी क्रांति लाएंगे।"

इसमें धार्मिक उन्माद को हवा देने का प्रयास स्पष्ट है। यहां इस्लाम के इतिहास का जो लड़ाकू पहलू है, उसे कुशलतापूर्वक उठाया गया है। भाषा अत्यन्त काव्यात्मक और शहादत के उदाहरणों से भरी हुई है।

विभिन्न दलों के नेताओं द्वारा इस्लामी भाषा और भावात्मक कविताओं के जरिए भावनाओं को उकसाने का यही रवैया अपनाया गया। उदाहरण के लिए, पीपुल्स लीग के अध्यक्ष शबीर अहमद शाह के द्वारा लिखे गये पोस्टर और पम्फलेट इकबाल की पंक्तियों से शुरू होते थे—

फजाएनो हवीदा कर फरिश्ते तेरी नसरत को
उतर सकते हैं गर्दू से कतार अंदर कतार अब भी।

शबीर के भाषणों का मुख्य भाव यही होता था—"इस्लाम के दुश्मन हर मोर्चे पर इसके मिशन को विफल करने के लिए इकट्ठे हो रहे हैं। काश्मीर पर अधिकार इसका एक उदाहरण है। पर अब इस्लाम से प्रेरित और मार्ग पाकर काश्मीर राष्ट्र जग गया है। इस्लाम की क्रांति का सूर्य उग रहा है। आस्था की संतानों को अब आगे आना चाहिए और भारत से आजादी पाने की कोशिश करनी चाहिए। अल्लाह की इच्छा हमारी मार्गदर्शक है; कुरान हमारा संविधान है, जिहाद हमारी नीति है और शहादत हमारी आकांक्षा।"

लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि वर्तमान आंदोलन का आधारभूत उद्देश्य विशुद्ध इस्लामी शासन स्थापित करना है, प्रचारकर्ता रूढ़िवाद के हर

सिद्धान्त को महत्ता देते थे। लोगों को इस्लाम के सामाजिक और व्यावहारिक रीति-रिवाजों का अनुकरण करने की सख्त हिदायत देते हुए, पूरे ब्यौरे सहित निर्देश जारी किए जाते थे। जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा, अल्लाह टाइगर्स, अल-फ़तह मोर्चा और हिज़बुल मुजाहिदीन द्वारा जारी किए गये एक पोस्टर में काश्मीर की महिलाओं से अपील की गई थी—"अल्लाह का आदेश है कि जब एक स्त्री वयः सन्धि को प्राप्त कर लेती है तो हाथ और चेहरे के सिवाय उसके शरीर का कोई भी भाग नहीं दिखना चाहिए। अपने विश्वास के इस मत को ध्यान में रखते हुए, हम हर मुसलमान मां, बहन और बेटी से गुजारिश करते हैं कि वह 'बुरके' का इस्तेमाल करे। जो स्त्रियां दफ्तर में काम कर रही हैं या स्कूलों कालिजों में पढ़ रही हैं, उन्हें बुरका और पर्दे का इस्तेमाल करना चाहिए ताकि अपने काम की जगह पहुंचकर बुरका हटा भी दें तो उनकी आंखों के सिवा कुछ भी न दिखे। छोटी लड़कियों को स्कार्फ का प्रयोग करना चाहिए और सिर को दुपट्टे से ढके रखना चाहिए। हम इस अपील का अनुकरण करने के लिए 10 दिन का समय देते हैं। जो इसका पालन नहीं करेगी उसका मुंह काला कर दिया जायेगा। हम उम्मीद करते हैं कि आप हमें यह दुःखद कार्य करने का मौका नहीं देंगी।"

यह धमकी निरर्थक नहीं थी, यह जल्द ही एक काश्मीरी महिला के घर के पास बम विस्फोट से सिद्ध हो गया। यह महिला स्त्रियों में पर्दे की कठोर पाबंदी के पक्ष में नहीं थी। इस संदर्भ से मुझे ईरान के होजात-अल-इस्लाम अली अकबर हाशमी रफसन्जानी के कथन की याद हो आई—"लापरवाही से ओढ़ी गई 'चादर' से दीखता बाल का एक गुच्छा भी हमारे शहीदों के दिलों पर चलाई गई तलवार के समान है। अमेरिका अपने सारे टैंकों, बमवर्षकों और प्रक्षेपास्त्रों से इस्लाम को नहीं जीत सकता। लेकिन इस्लाम की हार हो जायेगी अगर इसकी स्त्रियां अपने बाल ढकने और सही वेशभूषा पहनने से इन्कार कर देंगी।"[1]

सामाजिक और धार्मिक नियमों का सख्ती से पालन करने को इतना महत्त्व क्यों दिया गया? लोगों के दिमाग में हमेशा इस्लाम को रखना और उसके विश्वासों की झड़ी लगातार जनता पर लगाते जाना ताकि यह उनकी राजनैतिक चेतना का अंग बन जाये—यह उनका आधारभूत उद्देश्य था। राजनैतिक उद्देश्यों को इस्लाम का लबादा पहना दिया गया था। लेकिन धर्म और आतंकवाद विघटनकारियों की योजनाओं को सफल बनाने के लिए प्रयोग किए गये थे। उन्होंने लोगों के दिमाग में अल्लाह और बंदूक का भय बैठा दिया था। कभी वे कहते—"इसका पालन करो, नहीं तो अल्लाह तुम्हें सजा देगा और कभी दूसरे अवसर पर कहते—"इसका पालन करो वरना हम तुम्हें अपंग बना देंगे या मार डालेंगे।"

कभी-कभी जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा और हिज़बुल मुजाहिदीन में एक फर्क माना जाता है। मुक्ति मोर्चा अपने दृष्टिकोण में कुछ धर्मनिरपेक्ष है है जबकि हिज़बुल मुजाहिदीन कट्टरपंथी है। लेकिन यह मानना उचित नहीं है।

---

4. 17 जून, 1986 को तेहरान रेडियो द्वारा प्रसारित जिसका उद्धरण अमीर तव्वाई की 'होली टेरर' में भी लिया गया है।

इन दोनों दलो मे स्तर का अंतर है। जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा ने अर्द्ध-धार्मिक योद्धाओ की भूमिका अपना ली है जबकि हिज़बुल मुजाहिदीन ने कट्टरपंथी धार्मिक योद्धाओं की।

तीन मुख्य प्रवक्ता

तीन साप्ताहिक विघटनकारी दलो के प्रवक्ता की तरह थे—'सदा-ए-हुरीयात', सदा-ए-हक' और 'सदा-ए-काश्मीर'। ये प्रकाशित भी इन्हीं दलों द्वारा किये जाते थे। मैं हरेक साप्ताहिक मे से एक-एक नमूना पेश करूंगा यह दिखाने के लिए कि वे दरअसल क्या कर रहे थे?

9 फरवरी, 1990 के सदा ए-हुरीयात मे काश्मीर स्टूडेंट्स मुक्ति मोर्चा के क्षेत्रीय कमांडर हिलाल अहमद बेग का एक संक्षिप्त चरित्र चित्रण निकला जिसमे उसके बलिदानों, सही मार्ग देखने की सामर्थ्य और काश्मीरी स्वतन्त्रता के प्रति उसके समर्पण की प्रशंसा की गई थी। इसका उद्देश्य ऐसे गुणों को जोड़ना था जो अन्य नवयुवकों की प्रेरणा देकर आकर्षित करें ताकि वे भी 'स्वतन्त्रता सेनानियों' के दल मे शामिल हो जाए। इसी अंक मे हिलाल का इंटरव्यू भी था जिसमे उसने कहा था—"मुसलमान का सबसे सशक्त हथियार उसका विश्वास है—इस्लाम। फिलिस्तीनी और अफगानी लोगो के उदाहरण हमारे सामने है। अगर काश्मीरी मुसलमानों के हृदय मे इस्लाम की ज्योति जाग्रत हो जाये तो मुझे विश्वास है कि हम जल्द ही आज़ाद हो जाएगे, क्योंकि हमारा सामना एक बहादुर नही कायर राष्ट्र से है। इसके अतिरिक्त, हम अकेले भी नही है।"

जाहिर है कि इसका उद्देश्य इस्लाम के नाम पर काश्मीरियों की भावनाओ को भडकाना और विरोधी को कायर और अनैतिक सिद्ध करना था।

जम्मू-काश्मीर मुक्ति मोर्चा धर्म निरपेक्ष है—इस आभास को गलत साबित करते हुए हिलाल बेग ने अमानुल्ला खां के हाल ही मे दिये गये वक्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया—"इस्लाम हमारी आत्मा है, हमारी आस्था है। हम और किसी सिद्धान्त मे विश्वास नही रखते। हम केवल इस्लामी गणतन्त्र के प्रति समर्पित है। हम पूरी तरह से निज़ाम-ए-मुस्तफा स्थापित करना चाहते हैं।"

सदा-ए-हुरीयत के इसी अंक मे श्रीनगर की एक बस्ती कावदारा मे हुई हत्याओ की एक रिपोर्ट छपी थी —"छ. फरवरी को जे० के० एल० एफ० कार्यकर्ताओं ने कावदारा मे एक सी० आर० पी० ट्रक पर गोली चला दी जिससे चार सैनिक मर गये और अनेक घायल हो गये। वास्तव मे यह क्षेत्र क्रूर भारतीयों का नर्क बन गया है। उन पर चार बार हमला किया गया। उनके 150 आदमी मार दिए गये हैं। 'भारतीय साम्राज्यवाद' के एक दलाल, सतीश कुमार को भी नर्क भेज दिया गया है।" ये सभी संख्याए मनगढंत थी। ऐसा जान-बूझ कर किया गया था ताकि जनता को विघटनकारियों की शक्ति पर और अधिक विश्वास हो जाए तथा अधिक लोगों का समर्थन मिल सके।

दूसरे साप्ताहिक 'सदा-ए-हक' का 23 फरवरी, 1990 का अंक, मैं नमूने के तौर पर ले रहा हूं। इसमे एक लेख था जिसकी शुरूआत इन पंक्तियों से होती थी—

उठ कि आज़ादी ही तेरे ख्वाब की तावीर है
अब तेरा अज़्में जवाँ नाकामिले तस्वीर है।

अनुवाद में इसका यह मतलब होगा—"जागो! केवल आजादी ही तुम्हारे सपनों और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। अब तुम्हारा निश्चय वास्तव में अटल है।"

इस लेख में लिखा गया था—"मानवता जिन भी पापों की शिकार हुई है उनमें गुलामी सबसे बुरी है। इसे कभी माफ नहीं किया जा सकता है। 'कयामत' के दिन कुछ पापी असहाय होने की दलील पेश करेंगे। यह दलील मंजूर नहीं की जायेगी और पापियों को सजा दी जायेगी। उन्हें यह बताया जायेगा कि अल्लाह के निर्देशों के अनुसार किसी भी कीमत पर, यहां तक कि अपनी जान पर खेलकर भी आजादी के लिए कोशिश करना उनका कर्त्तव्य था। अगर उनमें ऐसा करने का साहस नहीं था, तो क्या वे गुलामी का देश छोड़ नहीं सकते थे, एक आजाद देश में जाकर शत्रु के पंजे से अपने देश को आजाद करवाने के लिए खुद को तैयार कर शत्रु पर हमला नहीं कर सकते थे?"

यह साफ जाहिर है कि विघटन की सारी नीति के एक अंग का उद्देश्य था गरीब और अनपढ़ काश्मीरी मुसलमानों को यह बताना कि वे 'काश्मीर की स्वतन्त्रता' के लिए नहीं लड़े तो कयामत के दिन उन्हें अल्लाह के गुस्से का सामना करना पड़ेगा और उन्हें दण्ड दिया जायेगा। इस षड्यन्त्र में इस्लाम के नाम पर एक सुझाव भी है कि पाकिस्तान जाओ, प्रशिक्षण पाओ और लड़ने के लिए वापिस आओ।

तीसरे साप्ताहिक—सदा-ए-कश्मीर के 25 फरवरी, 1990 के अंक में एक कमेंट्री 'आजादी के लिए काश्मीर का बयालीस वर्ष का संघर्ष' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसमें कहा गया था—"1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद भारत ने काश्मीर को अपना अटूट हिस्सा बनाने की हर तरह से कोशिश की। स्वतन्त्रता सेनानियों को मार दिया गया या फिर जेल और पूछताछ केन्द्रों में असहाय अवस्था में डाल दिया गया। भारतीय साम्राज्यवादियों को विश्वास था कि जब तक इस्लाम के आदर्श व मूल्य काश्मीर में मौजूद हैं, यह 'देश' गुलाम नहीं बनाया जा सकता, इसलिए उन्होंने इस्लाम के प्रभाव को क्षीण करने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये। टेलीविजन का ब्राह्मणवाद के संदेश को फैलाने के लिए विस्तार से इस्तेमाल किया गया। वास्तविकता और आदर्शहीनता का प्रचार किया गया। उधार और बैंकिंग को जनजीवन का अंग बना दिया गया। सिनेमा, वीडियो-हॉल और रेडियो की दुकानों को प्रोत्साहित किया गया। मद्यपान आम हो गया। यहां तक कि सरकार ने भी शराब की दुकानें खोलीं। पर्यटन के नाम पर, काश्मीर के सम्मान और चरित्र के चिथड़े कर दिये गये।"

क्या इन शब्दों के पीछे छिपा उद्देश्य जान पाना मुश्किल है। संविधान के प्राव-धानों की उपेक्षा करते हुए भारत की बराबरी 'ब्राह्मणवाद' से की गई जिसने इस्लाम के मूल्यों और काश्मीरी पहचान को नष्ट करने के लिए टेलीविजन और अन्य माध्यमों द्वारा सांस्कृतिक लड़ाई शुरू कर दी। घाटी के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का गला घोंटते हुए भारत को एक पिशाच के रूप में दिखलाया गया।

उपर्युक्त तीन उदाहरणों से, जो कि गुप्त रूप से वितरित होने वाले साप्ताहिकों में से एक-एक लिए गये हैं विघटनकारियों की विशाल प्रचार मशीनरी की विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं।

काव्यात्मक भावात्मकता, धार्मिक जोश, मुस्लिम शहादत, आधुनिकता का प्रभाव, सेवा और त्याग की छवि; इस्लाम के कर्त्तव्य और ईश्वर का क्रोध—इन सभी को प्रचार युद्ध की पूरी नीति में इस्तेमाल किए जाने वाला हथियार बनाने के लिए तोड़-मरोड़ दिया गया है। विघटनकारियों और उनके 'गॉड फादर्स' को इस उक्ति पर दृढ़ विश्वास था कि—"प्रचार पूरे विश्व पर शासन करता है।"

मस्जिदें

राज्य शक्ति के ढांचे के लगभग सारे अंगों को उलट देने, स्थानीय प्रेस पर पूरा-पूरा कब्जा जमा लेने और एक बडी प्रचार मशीनरी को चलाने के साथ-साथ विघटनकारी अपनी गतिविधियों को बढ़ाने, उत्साहित करने के लिए मस्जिदों का विस्तृत रूप से इस्तेमाल भी कर रहे थे। वास्तव में, विभिन्न विघटनकारी दलों द्वारा लोगों के लिए जारी किए गये पम्फलेट, पोस्टरों, दीवारी कागजों और साप्ताहिकों में एक 'निर्देश' यह दिया गया था कि लोगों को मस्जिदों को 'क्रांति का केन्द्र' बना देना चाहिए और यह कोशिश करनी चाहिए कि उनका पूरा प्रबन्ध तथा नियन्त्रण 'मुजाहिदों' के हाथ में आ जाये। अनेक लाउडस्पीकरों से लैस मस्जिदों से ही, प्रोत्साहन, नारे, घोषणाएं और कार्यक्रम लोगों तक पहुंचते थे। मस्जिदें जानकारी देने, तारतम्य स्थापित करने और भीड़ इकट्ठा करने की प्रभावशाली माध्यम हो गईं। मस्जिदों में आयोजित धार्मिक उत्सवों का पूरा-पूरा इस्तेमाल लोगों को इस्लाम और आजादी के नाम पर भडकाने के लिए किया जाता। किसी भी 'स्वतन्त्रता सेनानी' की मौत पर बड़ी मस्जिदों में विशेष प्रार्थनाएं की जाती और इस मौके पर जन उन्माद को उकसाने वाले वक्तव्य दिए जाते।

सीमा की दूसरी तरफ से

सीमापार पाकिस्तानी नेताओं और प्रेस ने काश्मीरियों की भावनाओं को भड़काने के लिए एक सशक्त आन्दोलन छेड़ दिया। वे उनके 'स्वतन्त्रता संघर्ष' की बढ़ा-चढ़ाकर बातें करते, उनकी प्रशंसा करते और इस तरह उन्होंने घाटी में विघटनकारी कार्यवाइयों की गति को और बढ़ावा दिया।

1989 के अन्त में 'आजाद काश्मीर' में ग्यारह पार्टियों का एक संयुक्त दल बना जिसने काश्मीर के 'स्वतन्त्रता संग्राम' में मदद करने का निश्चय किया। जनवरी, 1990 में जम्हूरी इत्तेहाद पार्टी ने काश्मीर के लिए अपना एक अलग विभाग खोल दिया। कहीं ये पीछे न रह जाए...इस उलझन में पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी ने भी काश्मीर समस्या का पत्ता फेंटना शुरू कर दिया। लेकिन सबसे विपाक्त भूमिका जमात-ए-इस्लामी ने अदा की। इसके प्रमुख काजी हुसैन ने काश्मीर में हस्तक्षेप का जोरदार समर्थन करते हुए कहा, "हम एक छोटी शक्ति हैं लेकिन हम एक मुस्लिम देश हैं। हम मुस्लिम भाईचारे के सागर में

रहते हैं। हिन्दू हमारी तरह नहीं है। ब्राह्मण और अछूत उम्माते मुस्लिम जैसा राष्ट्र कभी स्थापित नहीं कर सकते। काश्मीर के लोगों ने पाकिस्तान का झण्डा उठाया है। यह हमारा धार्मिक फर्ज बन जाता है कि हम काश्मीरी मुसलमानों की मदद करें।"

साथ ही साथ पाकिस्तानी प्रेस ने काश्मीर के मुद्दे को उछालना शुरू कर दिया। 'द डॉन' के 8 जनवरी के अंक में एक लेख में कहा गया,'नई दिल्ली को यह पहचानने की जरूरत है कि अब काश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच लड़ाई का सुलगता मुद्दा नहीं रह गया है; अब यह अरब के पश्चिमी तट पर फिलिस्तीनियों के 'इतिफिदा' की तरह वहीं के निवासियों का विद्रोह बन चुका है।" इसमें आगे लिखा था, 'काश्मीरी लोग लड़खड़ाते, ठोकर खाते पाकिस्तानी लोगों से प्रेरणा नहीं ले रहे बल्कि ये प्रेरणा उन्हें अफ़गानी मुजाहिदीनों से मिल रही है जिन्होंने अपनी मातृभूमि से विश्व की सबसे शक्तिशाली सेना को खदेड़ दिया।'

16 जनवरी को इस्लामी जम्हूरी इत्तेहाद पार्टी के नेता नवाज शरीफ ने लोगों से अपील की कि 19 जनवरी को वे 'काश्मीरी स्वतन्त्रता सेनानियों के समर्थन' में विशेष प्रार्थना दिवस मनाएं। उसने उलेमाओं का भी आह्वान किया कि वे काश्मीरियों द्वारा छेड़े गये जिहाद की सफलता के लिए विशेष प्रार्थना करें।

30 जनवरी, 1990 के विशेष प्रसारण में पाकिस्तान के विदेश मन्त्री, साहिबज़ादा याकूब खान ने अपने देश की तरफ से काश्मीरियों की आज़ादी के संघर्ष को पूरा समर्थन देने की प्रतिज्ञा ली। 1 फरवरी को पाकिस्तान के धार्मिक मामलात के राज्य-मन्त्री खान बहादुर खान ने घोषणा की, "हम काश्मीर को आजाद करवाने के लिए दृढ़ निश्चयी हैं जो हमारे पाकिस्तान की जीवन-रेखा है।"

इस्लामाबाद में 4 फरवरी, 1990 को सरकारी और विरोधी नेताओं का एक संयुक्त सम्मेलन काश्मीरी लोगों के स्वतन्त्रता संग्राम के समर्थन में पाकिस्तान का एकमत से समर्थन प्रकट करने के लिये हुआ। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, जिसमें चार मुख्य मन्त्री, संघीय मन्त्री और उच्च स्तर के सैनिक तथा नागरिक अधिकारी शामिल हुए थे, श्रीमती बेनजीर भुट्टो की अनुपस्थिति में श्रीमती नुसरत भुट्टो ने अध्यक्षता करते हुए कहा: "काश्मीर के बारे में पाकिस्तान का रुख वर्षों से जम्मू काश्मीर के लोगों द्वारा अपने मौलिक अधिकारों के लिये अनेक बलिदानों से और भी पवित्र हो गया है। काश्मीर में जारी आन्दोलन की शक्ति और दृढ़ता ने बेशक एक बार फिर यह दिखा दिया है कि काश्मीर मुसलमानों से आत्म-निर्णय का अधिकार नहीं छीना जा सकता न ही वे किसी बर्बर बल या कठोर दबाव के सामने हथियार डालेंगे।"

5 फरवरी को पूरे पाकिस्तान में काश्मीरियों से अपनी एकात्मकता प्रकट करने के लिये हड़ताल रखी गयी। वह एक सरकार द्वारा प्रायोजित हड़ताल थी जिसमें सभी राजनैतिक दलों ने भाग लिया। विशाल प्रचार-पट्ट प्रदर्शित किये गये। इन प्रचार-पट्टों में लिखा था—काश्मीर पाकिस्तान में होगा।

देश के सभी मुख्य नगरों में जन सभायें की गईं और उत्तेजनापूर्ण भाषण दिये गये। लाहौर में ऐसी ही एक सभा में जमाते-इस्लामी के नेता ने गर्जना की,

"भारतीय सेना ने काश्मीर को घेर लिया है, लेकिन वे नहीं जानते कि दुनिया में अभी तक कोई ऐसा हथियार नहीं बना जो जिहाद के जोश को दबा सके।" जनरल अफजल बेग भी चुप नहीं रहे। उन्होंने कहा—"काश्मीर के बदलते हुये दृश्य ने हमारे सामने नई चुनौतियां, नये कार्य तथा नया मिशन पूरा करने के लिये खड़े कर दिये हैं। दूसरे दिन रिटायर्ड कर्नल जी० एस० चीमा, रक्षा राज्य मन्त्री ने कहा —"काश्मीर के बिना पाकिस्तान अधूरा है।"

10 फरवरी को श्रीमती बेनजीर भुट्टो ने पाकिस्तानी संसद के संयुक्त अधिवेशन में काश्मीर पर बहस शुरू करते हुये कहा —"काश्मीर की मौजूदा गड़बड़ी काश्मीरियों की आजादी पाने की इच्छा की अभिव्यक्ति है। यह वह आग है जो पिछले 42 वर्षों से काश्मीर के अन्दर सुलगती रही है। यह एक भ्रांति है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती आयी है।"

पाकिस्तान की चिन्ता को न्यायोचित ठहराते हुए, उन्होंने कहा—"काश्मीरियों से पाकिस्तानियों के खूनी सम्बन्ध होने के अलावा, उनके साथ भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक समानता भी है। यही वजह है कि पाकिस्तान के लोगों ने 'एकात्मकता सप्ताह' के दौरान काश्मीरियों के साथ अपनी पूरी एकता प्रदर्शित की।"

सक्रिय सहायता

पाकिस्तान ने, घाटी के पृथकतावादियों को जैसा कि खुद स्वीकार कर चुका है; केवल राजनैतिक, नैतिक और प्रचारात्मक सहायता ही नहीं दी वरन् उनको तत्कालीन गोरिल्ला-युद्ध प्रणाली में प्रशिक्षण देकर सक्रिय सहायता दी। पाकिस्तान और पाक-अधिकृत काश्मीर में काश्मीरी युवकों के दल के बाद दल प्रशिक्षित किये गये। प्रेरित करने, भर्ती करने और निर्देशन देने के लिये एक शक्तिशाली गुप्त संगठन की स्थापना की गई। इस उद्देश्य के लिए अठमुकाम के गुलाम मुहम्मद बनी और मुजफ्फराबाद के राजा मुजफ्फर के घरों के अतिरिक्त कहामुल्ला चकोठी, तिलवारी, नौशेरी, दूधनियाल, केल, कामरी और मिनीमार्ग की पाकिस्तानी फील्ड इन्टेलिजेंस यूनिटों की बैरकों का प्रारम्भिक कार्यवाही के लिये प्रयोग किया गया। लम्बे अर्से में काश्मीर एक पके सेब की तरह पाकिस्तान की गोद में गिर पड़े यह सुनिश्चित करने के लिए एक पूरी नीति तैयार की गई। यह 'ऑपरेशन' पाकिस्तान की इन्टर सर्विस इन्टेलिजेंस (अन्तर्विभागीय गुप्तचर सेवा) के द्वारा विचारा, नियन्त्रित और निर्देशित किया गया जो कि 'राज्य के अन्दर राज्य' की तरह कार्य करती थी।

समन्वय

प्रशिक्षण-केन्द्र पाकअधिकृत काश्मीर और पाकिस्तान, दोनों जगहों पर खोले गए थे। लेकिन विघटनकारी गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु पाक-अधिकृत काश्मीर में ही था। विघटन और आतंकवाद में पाकिस्तान के प्रत्यक्ष हाथ को छिपाने के लिए ऐसा किया गया था। अमानुल्ला खान, डॉ० फारूख हैदर, राजा जफर अली और जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा के अन्य नेताओं को निरंकुश काम करने दिया

जाता था। ऐसा प्रदर्शित किया जाता था कि हथियार एक 'गुप्त अस्त्र शस्त्र बाजार' से और अफगानी मुजाहिदीनों तक से भी खरीदे जाते थे। पाक अधिकृत काश्मीरी सरकार के अधिकारियों और अर्द्ध-शासकीय एजेंसियों की सेवाएं भी उपलब्ध करवाई गईं थीं।

मेरे द्वारा विशेष तौर पर बताए गए ये 44 विघटनकारी दल सामान्यतः— दो बड़े समूहों में बांटे जा सकते हैं। एक समूह स्वतन्त्र काश्मीर के लिए काम करता था और दूसरा इसको पाकिस्तान में मिलाने के लिए। पहले समूह में मुख्य दल जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा था और दूसरे समूह में प्रमुख हिज़्बुल मुजाहिदीन। जे० के० एल एफ के प्रमुख, अमानुल्ला खान के शब्दों में, "सशक्त कारणों और विशुद्ध तथ्यों के आधार पर हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि काश्मीर मुद्दे का सबसे सम्मानीय, सबसे न्यायपूर्ण और व्यावहारिक हल यही है कि जबरदस्ती विभाजित, कुचले गए जम्मू काश्मीर को इन विभाजनों से पूर्णतः स्वतन्त्र करके पुनः एकीकृत कर दिया जाए। यह हल काश्मीरियों के ही नहीं बल्कि भारत और पाकिस्तान के हित में भी है।"

पाकिस्तान के आई० एस० आई० विभाग का स्वाभाविक तौर पर हिज़्बुल मुजाहिदीन और इस जैसे अन्य दलों के प्रति झुकाव था। जो नवयुवक इन दलों से सम्बन्ध रखते थे, उन्हें ज्यादा अच्छी सहायता, अच्छा प्रशिक्षण, बेहतर घातक हथियार दिए जाते थे। पूरी नीति के तहत, जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा के सदस्यों को भी पर्याप्त सहायता दी जाती थी। चरम उद्देश्य तो स्वतन्त्रता समर्थन की अपेक्षा पाकिस्तान समर्थन की स्थिति को विकसित करना था। लेकिन तत्कालीन प्राथमिकता थी काश्मीर को भारतीय संघ से बाहर निकालने की। हर स्थिति में, दोनों तरह के दलों के लिए इस्लाम एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। एक समूह आज़ाद काश्मीरी इस्लामी गणतन्त्र की स्थापना का पक्षधर था तो दूसरा पाकिस्तानी इस्लामी गणतन्त्र का भाग बनने का समर्थक।

एक अवस्था में तो, पाकिस्तान के आई० एस० आई० विभाग ने सभी दलों को जमाते-इस्लामी के नेता सैयद अली शाह जिलानी के नेतृत्व में एकजुट होकर कार्य करने के लिये राजी कर लिया था। यही वजह थी कि बहुत से पोस्टर जम्मू काश्मीर मुक्ति मोर्चा, हिजबुल मुजाहिदीन, अल्लाह टाइगर्स द्वारा मिल कर मुस्लिम एकता की अपील के लिये जारी किये गये थे। इनमें से अधिकतर पोस्टरों में जो काव्यात्मक पंक्तियां इस्तेमाल की गई थीं उनका अर्थ था, "अल्लाह एक है, पवित्र स्थान एक है, कुरान एक है; कितना अच्छा होता कि सभी मुसलमान एक होते।"

ऑपरेशन टोपक

रिपोर्टों और अखबारों के जरिए मुझे ऑपरेशन टोपक[1] (टी० ओ० पी० ए०

---

1. इस ऑपरेशन का नाम टोपक अमीन के नाम पर रखा गया था जिसने उरुग्वे में 18वीं शताब्दी में स्पेन के शासक के विरुद्ध एक गैर-परम्परागत तरीके से युद्ध लड़ा था।

सी०) के बारे में भी पता चला। इस ऑपरेशन का विचार और स्वरूप पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति जनरल जिया-उल-हक ने दिया था। इसे लागू करने का काम पाकिस्तानी सेना के फील्ड इंटेलिजेंस यूनिट को सौंपा गया था। ऑपरेशन टोपक का मूलभूत उद्देश्य था काश्मीर को पाकिस्तान का हिस्सा बनाना। जो कुछ पाकिस्तान 1947-48, 1965 और 1971 के युद्धों से प्राप्त नहीं कर सका, वह सब षड्यन्त्र, विघटन, बल और धार्मिक कट्टरपंथ के मिश्रण से प्राप्त किया जाना था।

ऑपरेशन टोपक को तीन अवस्थाओं में लागू किया जाना था। पहली अवस्था में सत्ता के सभी भागों में घुसपैठ करके उन्हें भीतर से नष्ट करना था। एक दोस्ताना, अकर्मण्य और कपटपूर्ण शासन को स्थापित करना था। पुलिस सामान्य सेवाओं और प्रशासनिक मशीनरी के अन्य भागों में घुसपैठ बड़े पैमाने पर किन्तु कुशलतापूर्वक करनी थी। इस बात का ध्यान रखना था कि उस समय तक केन्द्र का हस्तक्षेप न हो जब तक कि पूर्ण भीतरी विघटन और पाकिस्तानी बलों का हस्तक्षेप न हो जाए। छात्रों को शामिल करने में विशेष ध्यान देना था। किसानों को उनकी धार्मिक भावनाओं को भड़काकर उत्साहित करना था।

दूसरी अवस्था में, सियाचिन, कारगिल और अन्य संवेदनापूर्ण क्षेत्रों पर दबाव बनाए रखना था ताकि भारतीय सेना सीमा पर ही व्यस्त रहे और उसमें भीतरी विघटन और निम्न स्तरीय गड़बड़ियों से उलझने की अतिरिक्त सामर्थ्य न हो। तीसरी अवस्था में सशस्त्र संघर्ष के लिए जर्ब-ए-मोमिन जैसे सैनिक अभ्यास शामिल थे। आखिर में, पूर्ण भीतरी विघटन और सीमा-पार से आक्रमण करके काश्मीर पर अधिकार जमाना था।

विश्वास किया जाता है कि अपने जासूसी विभाग के चुनिंदा आर्मी कमांडरों और उच्चाधिकारियों को जनरल ज़िया ने यह बताया था :

"सज्जनो मैं इस विषय पर पहले भी विस्तार से बोल चुका हूं। इसलिए, मैं विवरणों में नहीं जाऊंगा। जैसा कि आप लोग जानते ही हैं कि अफगानिस्तान में इस्लाम की सेवारत होने के कारण मैं आपके सामने ये योजनायें नहीं रख सका। बहरहाल, इस बात में कोई गलती नहीं होनी चाहिए कि हमारा उद्देश्य दृढ़ और स्पष्ट है—काश्मीर घाटी की मुक्ति—अब हमारे मुस्लिम काश्मीरी भाइयों को हम और अधिक भारत के साथ नहीं रहने देंगे। इससे पहले हमने हमेशा अस्त-व्यस्त तरीके से युद्ध नीतियों का पालन किया, इसलिए असफल रहे। अब जैसा कि मैंने बताया युद्ध को हम अंतिम प्रहार के लिए रखेंगे, ताकि जब भी ज़रूरत हो, इसका प्रयोग किया जा सके।"

कश्मीरियों के सामान्य गुणों के बारे में जनरल ज़िया ने निम्नलिखित बातें कहीं :

"हमारे काश्मीर घाटी के मुसलमान भाई साधारण लोग हैं और हालांकि उनके दिलो-दिमाग में हम बसते हैं फिर भी वे सरलतापूर्वक लड़ाई के उन तरीकों को नहीं अपना सकते जो अफगानी या पंजाबी किसी भी विदेशी स्वामित्व के विरुद्ध आसानी से अपना लेगा। बहरहाल, काश्मीरियों की कुछ बातों का हम इस्तेमाल कर सकते हैं। पहली विशेषता है, उसकी चतुरता और तेजी; दूसरे, दबाव में भी लगातार काम करने की शक्ति; और तीसरा काश्मीरी राजनैतिक

षड्यन्त्रों में कुशल होता है। यदि हम उन्हें वे चीजें देते रहें जिनसे वह इन गुणों का बेहतरीन इस्तेमाल कर सके, तो वह अवश्य हमारा मनचाहा काम करेगा। विशुद्ध सशस्त्र बल वैसे भी हर किस्म के युद्ध में जरूरी नहीं होता, विशेषकर काश्मीर घाटी को पाने के दौर में तो यह बिल्कुल जरूरी नहीं।"

जनरल जिया ने काश्मीर की विशेष परिस्थितियों का हवाला दिया और भारतीयों को भ्रष्ट और बदनाम करने की जरूरत पर बात की। उसने कहा :

"हमें लड़ाई के उन तरीकों का प्रयोग करना चाहिए जिसे काश्मीरी दिमाग समझ सके और अपना सके—दूसरे शब्दों में युद्ध की कार्यवाई के बजाय नैतिक और भौतिक साधनों के समन्वित साधनों द्वारा की गई लड़ाई से दुश्मन की इच्छा शक्ति, राजनैतिक सामर्थ्य को नष्ट किया जा सकता है और दुनिया के समक्ष उसे एक अत्याचारी के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।"

अपनी युद्ध नीति के केन्द्रीय बिन्दु का खुलासा जनरल जिया ने इस तरह दिया :

"पहले दौर में, जो कुछ सालों तक चल सकता है हम राजनैतिक विघटन और षड्यन्त्र द्वारा अपने काश्मीरी भाइयों को राज्य की सत्ता पर नियन्त्रण करने में मदद करेंगे। ऊपरी तौर पर सत्ता उन्हीं के हाथों में रहनी चाहिए जिनका पक्ष नई दिल्ली लेती है। इसलिए ये देखना होगा कि हम उच्च शासक वर्ग के विशेष 'नेता जिनका पक्ष लिया जाता है' का चुनाव कर सकें जो हमें सत्ता के हर प्रभावशाली भाग को उलट-पुलट कर देने में सहयोग दें।"

अपनी योजना ऑपरेशन टोपक की तीन चालों को साफ-साफ बताते हुए जनरल जिया ने कहा :

"पहली चाल

प्रशासन के विरुद्ध निम्न स्तरीय गड़बड़ी और अशान्ति ताकि इस पर नियन्त्रण तो पाया जा सके लेकिन प्रशासन बिल्कुल ढह ही न जाए क्योंकि हम नहीं चाहेंगे कि इस अवस्था में दिल्ली द्वारा केन्द्रीय शासन लागू किया जाए। हम हर महत्त्वपूर्ण स्थान पर अपने आदमी रख छोड़ेंगे; वे पुलिस, आर्थिक संस्थानों, प्रचार-प्रसार के माध्यमों और दूसरे महत्त्वपूर्ण विभागों में विरोध को सशक्त करेंगे। हम छात्रों और किसानों को सम्भवतः किसी धार्मिक मुद्दे पर उकसायेंगे ताकि वे भारत-विरोधी, सरकार-विरोधी प्रदर्शनों और लूटपाट में हमारा समर्थन करें। विघटनकारी तत्त्वों को संगठित कर उन्हें आरम्भिक अवस्था में अर्द्धसैनिक बलों से लड़ने के लिए प्रशिक्षण देंगे। षड्यंत्र द्वारा और बिना किसी बल का प्रयोग किये हम जम्मू और काश्मीर तथा काश्मीर और लद्दाख के बीच संचार व्यवस्था को काट देंगे। इस सिलसिले में जोजिला से कारगिल तक की सड़क और खरदुंगला पर सड़क का हमें विशेष ध्यान रखना है। सिख उग्रवादियों के सहयोग से, घाटी से ध्यान हटाने के लिए संकटपूर्ण स्थिति आने पर जम्मू में अव्यवस्था और आतंक फैलाना होगा ताकि हिन्दुओं का भी प्रशासन से विश्वास उठ जाए। काश्मीर घाटी के उन स्थानों पर कब्जा

करना होगा जहां भारतीय सेना नही है । दक्षिणी कश्मीर घाटी यह क्षेत्र हो सकता है ।

दूसरी चाल

इसमें भारतीय सेना को अपने बलो को काश्मीर घाटी के बाहर लगाने के लिए विवश करने के उद्देश्य से सियाचिन, कारगिल और राजौरी-पुंछ क्षेत्रो में ज्यादा-से-ज्यादा दबाव बनाये रखना, एक निश्चित समय पर अप्रत्यक्ष रूप से श्रीनगर, पट्टन, कुपवारा, बारामूला, बदीपुर और चौकीवाला में इनके सैन्य आधारो और मुख्यालयो पर हमला करके नष्ट करना शामिल हैं । तब तक आजाद काश्मीर में बसे अफगानी मुजाहिदीन, चुने हुए क्षेत्रों में हमारा प्रभाव बढाने के लिए गुप्त रूप से घुसपैठ कर लेंगे । इस पहलू के लिए चतुरतापूर्ण और सूक्ष्म रूप से बनाई गई योजना की जरूरत हैं । ऑपरेशन जिब्राल्टर (1965) की असफलता ने हमें कई पाठ पढ़ाए हैं । अन्त में, आजाद काश्मीर के सेवा निवृत अधिकारियो के नेतृत्व में एक विशेष दल जिसमें अफगानी भी होंगे, हवाई अड्डों रेडियो स्टेशनो को नष्ट करने, बनीहाल टनेल और कारगिल-लेह हाईवे को रोकने के लिए हमला करने को तैयार रहेगा । एक विशेष स्थिति में पंजाब और जम्मू *और काश्मीर के आसपास का क्षेत्र हमारे उग्र रवैये से अधिकतम दबाव में आ* जाएगा ।

तीसरी चाल

काश्मीर घाटी की आजादी की योजनायें और एक स्वतन्त्र इस्लामी राज्य की स्थापना तीसरी चाल में शामिल हैं ।"

ध्यान देने योग्य है कि यह 'योजना' भली-भांति सोची गई और विलक्षण *योजना थी और सैन्य तथा राजनैतिक रूप में काफी अर्थ रखती थी ।*

दूसरी और तीसरी अवस्था को लाने में पाकिस्तानी अधिकारियो को कोई खास सफलता नहीं मिली । सियाचिन, कारगिल और अन्य संवेदनापूर्ण सीमा क्षेत्रो पर भारतीय सेना पर कोई विशेष दबाव नहीं बन सका । न ही सैन्य आधारो [illegible] है कि भारतीय सेना [illegible] सकता था । लेकिन [illegible] शन टोपक' को अपने रचनाकारो की कल्पना से भी अधिक सफलता मिली । एक विशेष तरीके से पूरी सरकारी मशीनरी उलट दी गई । जैसा कि मैंने इस अध्याय और 'मेरे आने से पहले की स्थिति' अध्याय में बताया गया है, कि सभी महत्त्वपूर्ण सरकारी विभागों में विघटनकारियों के आदेशो का ही पालन होता था । इस विघटन को राजनैतिक और प्रशासनिक ढाचे के सहानुभूतिपूर्ण और अनुज्ञात्मक रवैये से और भी प्रोत्साहन मिला । इन तत्त्वो में से कुछ खुलेआम पाकिस्तानी समर्थक थे, कुछ गुप्त रूप से ऐसे थे, कुछ तटस्थ थे और कुछ डबल एजेंटो का काम कर रहे थे— वे उसी पक्ष की ओर चले जाते, जो जीतता जान पड़ता । कोई भी काम करने *और भीतरी विघटन से लड़ने के लिए तैयार नही था ।* समय के साथ-साथ

विघटन के बीज बोये गए थे और उनकी जड़ें जैसा तीसरे और चौथे अध्याय से स्पष्ट है, काफी गहरी थीं। इस स्थिति का ज़िया उलहक और बाद में श्रीमती बेनजीर भुट्टो ने पूरा-पूरा फायदा उठाया।

कुछ जगह यह संदेह उठाया जाता है कि क्या वाकई पाकिस्तानी अधिकारियों द्वारा 'ऑपरेशन टोपक' जैसा कोई षड्यन्त्र रचा गया था? निःसंदेह, पाकिस्तानी सरकार ने इस अस्तित्व से इंकार किया है और आरोप लगाया है कि यह रिसर्च एण्ड एनालिसस विंग (RAW) का काम है। लेकिन यह जानना लगभग कोई अहमियत नहीं रखता कि यह योजना पाकिस्तानी एजेंसियों द्वारा बनाई गई थी या रिसर्च एण्ड एनालिसस विंग या फिर भारत सरकार की अन्य शाखा द्वारा, केन्द्रीय मुद्दा यह है कि इस विघटन के स्वभाव और प्रकृति के बारे में केन्द्रीय सरकार को पता था, फिर भी उसने कुछ नहीं किया। इसकी अकर्मण्यता अक्षम्य है। वर्तमान अव्यवस्था, पीड़ा, खून-खराबा और देश की एकता को खतरा उचित समय पर की गई चौकसी और षड्यन्त्र के विरुद्ध उठाये गये कदमों द्वारा रोका जा सकता था? पर दुर्भाग्यवश देश उनके हाथों में था जिनके पास कोई दृष्टि नहीं थी और जिनमें मानसिक अंधेपन के साथ-साथ सत्ता की उच्छृंखलता का अहंकार भी था।

काश्मीरी आतंकवाद

काश्मीरी आतंकवाद कई तरीकों में दूसरी छाप के सामयिक आतंकवाद से बहुत भिन्न नहीं है, फिर भी इसने कुछ अपनी विशिष्टताएं प्राप्त कर ली हैं। अलग-अलग स्रोतों से आये भिन्न-भिन्न तत्त्वों से मिलकर यह एक विशिष्ट मिश्रण बन गया है।

अमरीका के स्टेट डिपार्टमेन्ट द्वारा दी जाने वाली आतंकवाद की परिभाषा सबसे अधिक उद्धृत की जाती है। इसके अनुसार आतंकवाद में—"व्यक्तियों या समूहों द्वारा दी जाने वाली धमकी या हिंसा के वे कार्य आते हैं जो स्थापित सरकारी सत्ता के पक्ष या विपक्ष में तत्काल हताहतों से अधिक विशाल एक लक्षित समूह को धमकाने, मारने या सदमा पहुंचाने के लिए किये जाते हैं।"

लेकिन इस परिभाषा में काश्मीरी आतंकवाद के सभी पहलू नहीं आ पाते। यहां आतंकवाद को अधिकांश रूप में पड़ोसी राज्य पाकिस्तान द्वारा प्रश्रय दिया जाता है और अफगानिस्तान की नई घटनाओं से उत्पन्न शक्तियों द्वारा फैलाया जाता है। इस्लामी युद्ध परम्पराओं को चुनकर उनका उपदेश तथा उपयोग अन्तिम लक्ष्य को पाने के लिए किया जाता है। जहां तक आतंकवादी कार्यों को करने की तकनीक का सम्बन्ध है, माओत्सेतुंग और चेग्वारा द्वारा प्रतिपादित विचारों को उदारतापूर्वक ले लिया गया है। ईरान और अल्जीरिया की क्रान्तियों के नमूनों और पेलस्टीन लिब्रेशन ऑर्गेनाइजेशन संघर्षों से मिलाने वाली सीखों को भी ध्यान में रखा जाता है।

मैं इस विषय में उदाहरण के लिए जे० एण्ड० के० लिब्रेशन फ्रंट द्वारा अपने सदस्यों को जारी किए गये 'पम्फलेट ऑव गाइड लाइन्स' के बारे में बताऊंगा। इसे रजा मोहम्मद मुजफ्फर ने लिखा है। इसका शीर्षक है 'आजादी या कुर्बानी'।

इसमें 'स्वतन्त्रता सेनानियों' के लिए विस्तृत निर्देश हैं और उनका कठोरता से पालन करने पर बल दिया गया है। इसमें जहां तक गुरिल्ला लड़ाई या गोपनीय कार्यवाहियों का सम्बन्ध है, उनमें माओ की प्रसिद्ध उक्तियों का उर्दू अनुवाद है, जैसे 'दुश्मन आगे बढ़ता है, हम पीछे हटते हैं', 'दुश्मन जब पड़ाव डालता है, हम उसे परेशान करते हैं', 'जब दुश्मन थक जाता है, हम आक्रमण करते हैं', जब शत्रु पीछे हटता है, हम उसका पीछा करते हैं'। इसमें चेग्वारा के सिद्धान्त को भी दिया गया है जैसे 'प्रत्येक गुरिल्ला या 'स्वतन्त्रता सेनानी' को अद्वितीय नैतिक व्यवहार और कठोर आत्मानुशासन दिखाना चाहिए। उसे स्थानीय जनता को अपने विचारों से प्रभावित करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि उसे विद्रोह को सहायता देने का लाभ मालूम हो सके। ईरानी क्रान्ति में मस्जिदों और मुल्लाओं का बड़े पैमाने पर उपयोग करने की नीति को अपनाया गया। वहीं से प्रचार करने की इस शैली को लिया गया कि—शासन करने वाले जहां एक ओर विलासितापूर्ण और इस्लाम विरोधी जीवन व्यतीत कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर आम जनता घोर गरीबी में जी रही है और हर प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक अन्यायों को सहन कर रही है। लेकिन मुख्य रूप से लड़ाकू इस्लामी विचारधारा और मुहावरों का उपयोग किया जाता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीरी आतंकवाद विभिन्न प्रकार के आतंकवादी का सूक्ष्म मिश्रण है। दूसरे स्थानों के अनुभवों का अध्ययन करने के बाद विघटन और आतंकवादी तरीकों को सावधानी के साथ निश्चित किया जाता है। धार्मिक कट्टरपंथ के क्रोध को नियमित रूप से उत्तेजित किया जाता है ताकि आतंकवादियों को नैतिक बल और जनता का समर्थन बराबर मिलता रहे। इस तरीके का सैनिक कुशलता, अदृश्य बारीकियों और भयानक रूप से समय की सही सूझ-बूझ के साथ उपयोग किया जाता है। इसके साथ ही अपनी बार-बार की गलतियों से कुछ न सीखने वाले कमजोर, बेअसर और प्रतिबद्धताहीन प्रशासन की कमजोरियों का भी पूरा लाभ उठाया जाता है।

इस प्रकार एक ओर आतंकवाद और विघटन की भली प्रकार विचारी तथा क्रियान्वित की गई योजना थी जबकि दूसरी ओर बंद दिमाग और अहंकारी लोग थे जो अपने कल्पित स्वर्ग में रह रहे थे जबकि धरती का वास्तविक स्वर्ग यथार्थ में उनके हाथ से फिसला जा रहा था।

ज़िया और राजीव के विरोधी दृष्टिकोण

सन् 1983 में जब मैं यू० एन० ई० पी० की सहायता से आयोजित आवास और शहरी विकास की कार्फ्रेंस में शामिल होने के लिए कराची गया था, मुझे पाकिस्तान के प्रेसीडेण्ट ज़िया-उल-हक़ से मिलने का अवसर मिला था। उन्होंने मुझे विशेष रूप से पुराने और ऐतिहासिक नगरों तथा सामान्य रूप से महानगरों की समस्याओं के बारे में विचार विनिमय के लिये आमंत्रित किया था। वह मुझे एक ऐसे ठंडे और शान्त रणनीतिज्ञ की तरह लगे जिसके पास हर मुख्य समस्या को गहराई के साथ समझने और उनको हल करने की कार्य योजना को पूरा करने का पर्याप्त समय है। मुझसे मिलने से पूर्व उन्होंने मेरी पुस्तक 'रिबिल्डिंग

शाहजहानाबाद : द वाल्ड सिटी ऑव दिल्ली' के कुछ पृष्ठ पढ़ रखे थे। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं कराची डेवलपमेन्ट अथार्टी के वरिष्ठ अधिकारियों से वार्ता करूं और दीवार घिरे लाहौर नगर को भी देखूं। इसके विपरीत राजीव गांधी से जब कभी मुझे जम्मू और काश्मीर की निर्णायक समस्याओं पर वार्तालाप करने का अवसर मिला, वह मुझे हमेशा जल्दी में लगे और मुझे उनकी जानकारी भली प्रकार बनाये गये दस्तावेजों पर आधारित न होकर कानों में फुस-फुसायी गई बातों और अफवाहों से मिले उथले ज्ञान पर अधिक निर्भर लगी। उनका पूरा दृष्टिकोण घाटी के सामाजिक और राजनैतिक जीवन को बनाने वाली घटनाओं की धाराओं या अन्तर्धाराओं पर आधारित न होकर कुछ व्यक्तित्वों के मूल्यांकन पर टिका था।

काश्मीर में विशेष रूप से मार्च 1987 के बाद से जो कुछ घटित हुआ उससे भारत और पाकिस्तान के दोनों शीर्षस्थ नेताओं के दृष्टिकोणों और मनोवृत्तियों का पता चल जाता है। जबकि जिया और इन्टर सर्विस इन्टेलिजेन्स के उनके सहायक विघटन की एक यथार्थवादी तथा विस्तृत रणनीति बनाने और उसे क्रियान्वित करने में कुशल थे, वहीं राजीव गांधी और उनके छोटे से राजनैतिक अन्तर्गुट ने जवाबी कार्यवाही तो दूर उस रणनीति की प्रकृति को समझने तक की कोई इच्छा प्रकट नहीं की। कोई भी सुझाव या चेतावनी मुस्करा कर टाल दी जाती थी या झूठे आश्वासनों से शान्त कर दी जाती थी। डॉ० फारूख अब्दुल्ला जो कि घाटी में राजीव के आदमी थे, विश्वास और कार्य दोनों में शून्य थे। यह शून्यता उतनी ही घातक थी जितनी कि नई दिल्ली के शासक गुट की उदासीनता।

मेरे लिए यह सब उत्तेजनात्मक था। राजीव गांधी, उनका अन्तर्गुट और उनके सहायक जो कुछ कर रहे थे, उसका कठिनाई से कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण दिया जा सकता था। वास्तव में, मुझे संदेह होने लगे और इन सन्देहों को पुष्ट करने के लिए परिस्थितिजन्य सबूत भी थे—कि वे जान-बूझ कर स्थिति को बिगड़ने दे रहे हैं ताकि जनवरी-फरवरी, 1990 में होने वाले चुनावों के आस-पास भारत-पाक सीमा पर या घाटी में कोई कठोर कदम उठाने पर उसका उचित कारण बता सकें। लेकिन कुछ घटनाओं ने उनके इरादे पूरे नहीं होने दिए। चुनाव की तारीखें बढ़ा दी गईं; और सम्भावित कार्यवाही केवल अनुमान लगाने के क्षेत्र तक सीमित रह गई।

दुर्भाग्यवश चुनाव के समय किसी के पक्ष में 'लहर बनने का प्रपंच' भारतीय राजनीति के लिये अभिशाप साबित हो रहा है। राष्ट्र की ईमानदारी, सच्चाई और समर्पित भाव से सेवा करने के बजाय कृत्रिम रूप से रची गई स्थितियों पर अधिक भरोसा किया जाने लगा है।

कभी-कभी मुझे यह विचार कर आश्चर्य होता है कि क्या राजीव गांधी और शेख अब्दुल्ला वास्तव में दोषी थे? दोनों ही उस सतहीपन के नमूने थे जिसने भारत के राजनीतिक मानस को जकड़ रखा है। नवम्बर 1989 के बाद राजीव गांधी के उपरान्त जो लोग नई दिल्ली में सत्ता में आये, वे भी उनसे बेहतर नहीं थे। वे भी उसी मानसिकता की उपज थे, तथापि उनका सतहीपन उन्हें दूसरी दिशा में ले गया। उन्होंने केवल अपने लिए ही नहीं वरन् उनके लिए भी जो काश्मीर के विघटन और आतंकवाद के पेंचीदा जाल से निकालने में सहायता देना चाहते थे, उलझनों और अन्तर्विरोधों की भवरें पैदा कर दीं।

ग्यारहवां अध्याय

राज्य विधान सभा भंग

"प्रभु में आस्था रखकर काम करो।"

—क्रामवेल

जनवरी, 1990 के अंत तक मैंने अपने कार्यों की सूची मे राज्य विधान सभा को भंग करने को प्राथमिकता दे रखी थी। मुझे यह स्पष्ट हो गया था कि यदि यह कदम न उठाया गया तो राज्य शासन की बागडोर संभालने और सामान्य स्थिति बहाल करने मे अनेक लोग हताहत होंगे।

जनता के बहुमत का विश्वास था कि मार्च 1987 के चुनावो मे धांधली की गई है। मेरे लिए प्रश्न यह जानने का नही था कि इस सम्बन्ध मे जो आरोप लगाये गये हैं वे सही हैं या नहीं, अथवा आंशिक रूप से सही अथवा आंशिक रूप से गलत हैं परन्तु प्रश्न यह था कि चुनावों में भारी धांधली के परिणामस्वरूप आम लोगो मे यह दृढ़ धारणा थी कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला शासन ने अन्य लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओ को कुचल दिया है।

इन कारणो के परिणामस्वरूप, जिनका वर्णन पूर्व अध्यायो में किया गया है, लोगो मे रोष था, वे कठोर बातें कह रहे थे और उनके दिलों मे एक उन्माद समा गया था। मुझे विश्वास हो गया था कि लोगो का यह गुस्सा और उन्माद कुछ हद तक विधान सभा भग करने से दूर हो जायेगा। इससे एक विशेष समुदाय द्वारा लाभ प्राप्ति की धारणा और व्यक्तिगत विद्रोह की बजाय दलो द्वारा आतंकवाद की चिन्गारी समाप्त हो जायेगी।

इस मामले मे मैंने अपने विचार गुप्त नही रखे। 30 जनवरी, 1990 को मैंने राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को अपने विचारों से अवगत करा दिया। राष्ट्रपति को उस तारीख के अपने पत्र, जिसकी प्रतियां अन्यों को भेजी गई थी, इस संकट से उबरने के लिए 6 कदम उठाने का संकेत दिया था। उनमे से एक था—

"असेम्बली को फौरन भग कर दिया जाय और 6 महीने अथवा बाद मे चुनाव करवाये जाएं। उस समय तक विध्वंसक तत्त्वो को समाप्त कर दिया जाएगा और कुछ चुनावों मे भाग लेना पसन्द करेंगे। इससे नया नेतृत्व

उभरेगा और जो संभवतः वह पहली राज्य सरकार से कमभ्रष्ट और अधिक कर्मठ हो।

किसी सरल तरीके को अपनाना या अस्थायी हल ढूंढ़ना गलत होगा, भले ही आत्मघाती सिद्ध न हो। संक्रमण प्रमुख अंगों तक पहुंच चुका है। यदि इस संक्रमण को शीघ्रतापूर्वक दूर न किया गया तो हमें एक के बाद अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।"

14 फरवरी, 1990 के 'इण्डिया टुडे' को एक भेंट में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने कहा था कि काश्मीर असेम्बली भंग कर देना चाहिए।

इस सम्बन्ध में मेरे विचार अन्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए। उदाहरण के लिए, दैनिक 'काश्मीर टाइम्स' जिसकी प्रसार संख्या भी अच्छी है और जिसका सम्पादक मुफ्ती मोहम्मद सईद का मित्र है, ने दस फरवरी के अंक में—'राज्यपाल जम्मू-काश्मीर असेम्बली भंग करने के पक्ष में' शीर्षक देकर समाचार प्रकाशित किया—

"विश्वास किया जाता है कि श्री जगमोहन ने कहा है कि असेम्बली को यथाशीघ्र भंग करने से मार्च, 1987 के चुनावों में हुई अनियमितताओं से लोगों के विश्वास को जो धक्का लगा उसे फिर से कायम किया जा सकेगा। इन चुनावों से लोगों को आशा थी कि राज्य में लोकतन्त्र की बहाली हो सकेगी।

19 फरवरी, 1990 को मैंने निम्न आदेश की विज्ञप्ति जारी की—"जम्मू-काश्मीर के संविधान की धारा 53 की उपधारा (2) क्लाज़ (बी) के अधीन मुझे जो अधिकार प्राप्त हैं, उसके अनुसार मैं राज्य विधान सभा को भंग करता हूं।

—जगमोहन"

धारा 53 की उपधारा इस प्रकार है—

"राज्यपाल समय-समय पर किसी सदन या सदनों को स्थगित कर सकता है अथवा लेजिस्लेटिव असेम्बली को भंग कर सकता है।"

उक्त आदेश के साथ ही उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए एक प्रेस विज्ञप्ति भी प्रकाशित की गई—

"श्री जगमोहन का विश्वास है कि इस कदम से राज्य में सामान्य स्थिति पैदा होगी। उस दिशा में यह सार्थक कदम है। इससे 1987 के चुनावों में धांधली के कारण जिन्होंने हथियार उठा लिये हैं, उनकी शिकायत भी दूर हो जाएगी। इसमें कुछ अन्य तत्त्वों की षड्यन्त्रपूर्ण कार्यवाही पर रोक लगेगी।"

श्री जगमोहन का कहना है कि, "पहले एक-दो वर्षों की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि असेम्बली में लोगों का पूरा प्रतिनिधित्व भी नहीं। जहां तक राज्य सरकार के काम करने की बात है, उसके कुशासन की सूची के विस्तार का अन्त ही नहीं।"

श्री जगमोहन ने युवकों से विशेष रूप से अपील की कि वे बंदूक की नीति की निरर्थकता को समझें। उन्होंने आतंकवाद के सम्बन्ध में कहा कि यह अनेक मुखों वाला दैत्य है जो प्रायः अपने समर्थकों को भी निगल लेता है। उन्होंने युवकों को परामर्श दिया कि भारतीय संविधान के उदार प्रावधानों के आधीन, जिसका प्रमुख ध्येय सभी वर्गों को न्याय दिलाकर राज्य को सशक्त और सही

बनाने की दिशा में सार्थक भूमिका निभायें।

इसके साथ ही जगमोहन ने यह भी स्पष्ट किया कि किसी भी स्वार्थी और देशद्रोही तत्व को राष्ट्र की एकता और संप्रभुता को ठेस पहुंचाने की इजाजत नहीं दी जाएगी और कोई भी व्यक्ति विध्वंस और तोड़ फोड़ को बढ़ावा देने वाले नारों से भ्रम में न डाल सकेगा। उन्होंने कहा—"आइए, हम एक नई शुरुआत करें, बनावट से वास्तविकता और अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ें।"

उनसे जब यह पूछा गया कि चुनाव कब हो सकते हैं, तो उनका उत्तर था कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि जितनी जल्दी राज्य में शान्ति और सामान्य स्थिति बहाल होगी, उतनी जल्दी चुनाव होंगे।"

आशा के अनुरूप जनता ने असैम्बली भंग किये जाने का स्वागत किया। समाचार-पत्रों ने एकमत से तारीफ की। परन्तु केन्द्र सरकार के आसपास के कुछ क्षेत्रों में यह कहकर मेरी आलोचना की गई कि केन्द्र को विश्वास में नहीं लिया गया। मेरे द्वारा केन्द्र सरकार के चार प्रमुख अधिकारियों को भेजे गये पत्रों, इण्डिया टुडे में मेरी भेंटवार्ता, काश्मीर टाइम्स और हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित समाचारों को ध्यान में रख कोई यह कैसे कह सकता है कि मैंने किसी को अंधकार में रखा। इस बात का औचित्य मुझे समझ में नहीं आया—जबकि मैं सदा इस बात का संकेत दे रहा था कि असैम्बली भंग कर दी जायेगी।

स्टेट्समैन ने अपने सम्पादकीय में—केवल पहला कदम—शीर्षक देकर लिखा *कि असैम्बली को भंग करने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।* उसने लिखा—"श्री जगमोहन की नियुक्ति के साथ ही आम लोगों की यह धारणा थी कि केवल फारुख अब्दुल्ला सरकार ही बरखास्त नहीं की जायेगी वरन् *असैम्बली भी भंग कर दी जाएगी।"* 20 फरवरी को टाइम्स आफ इण्डिया ने संकेत दिया कि असैम्बली को भंग करना तो एक संवैधानिक परम्परा को पूर्ण करना था क्योंकि जगमोहन यह फैसला पहले ही कर चुके थे।

21 फरवरी को इण्डियन एक्सप्रेस ने अपने सम्पादकीय में टिप्पणी करते हुए लिखा—"अशान्त राज्य में असैम्बली को भंग करने का तर्क सर्वथा उचित है।" ट्रिब्यून ने लिखा—"78 सदस्यों वाली जम्मू काश्मीर असैम्बली काफी *समय से ही मरणासन्न थी, अब सोमवार को इसे भंग करने की बात समझ* नहीं आई। जगमोहन ने अपने इस कार्य के लिए जो औचित्य दिया है उसकी भी कोई आवश्यकता नहीं थी। मारा तो उसे जाता है जो जीवित हो। क्रियात्मक रूप में तो असैम्बली उसी समय मर गई जब मुख्यमंत्री फारूख अब्दुल्ला थे और हम जंगजुओं का चलता था।" हिन्दुस्तान टाइम्स ने 20 फरवरी को एक रिपोर्ट में लिखा कि एक माह पहले राज्य में राज्यपाल का शासन लागू होने के समय ही यह काम होने के स्पष्ट संकेत थे, परन्तु पांच दिन पहले डॉ० फारुख अब्दुल्ला के विद्वेषपूर्ण बयान से संभवतः यह काम कुछ जल्दी करना पड़ा।

ऊपर के उद्धरणों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि जो कुछ मैंने किया, वह अप्रत्याशित नहीं था। मैंने किसी को अंधकार में भी नहीं रखा। यह निर्णय पूर्ण रूप से स्थिति के अनुकूल था। निश्चित रूप से मैं राजनीतिज्ञों को अपने पर कीचड़ उछालने या आलोचना का अवसर नहीं दे सकता था—इसके साथ ही उन्हें इस बात की इजाजत भी नहीं दे सकता था कि वे अपने राजनैतिक ध्येय के

लिए घर में आग लगाने वालों को सक्रिय रख सकें । इन बातों की संभावना गलत नहीं थी, जिसे मई, 1990 के अंत की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया ।

इसमें संदेह नहीं कि मेरे निर्णय को समझने में कमी रही । गृहमंत्रालय के सचिव शिरोमणि शर्मा ने रात को मुझे टेलीफोन किया और पूछा कि प्रधानमंत्री, जो इस समय दौरे पर हैं, जानना चाहते हैं कि असैम्बली भंग करने का आदेश गृहमंत्री के कहने पर हुआ है या यह आपका अपना है । मैंने कहा कि यह मेरा निर्णय है । आगे बातचीत में उन्होंने कहा कि आपका निर्णय तो सही है पर राज्य के चुनाव समाप्त होने तक आपको रुकना चाहिए था । मैंने उन्हें कहा कि राज्य के चुनावों की बात मेरे दिमाग में नहीं थी । मैं तो स्थिति पर काबू पाना और आम जनता के आक्रोश को शान्त करना चाहता था । मैंने उन्हें एक बार फिर अपने निर्णय के तर्कसंगत और समय के अनुकूल होने की बात समझाई । मैंने उन्हें कहा कि जनता के भावनात्मक आक्रोश को जितनी जल्दी समाप्त किया जा सके, उतना ही अच्छा है । केन्द्रीय गृहमंत्री ने, जो उस समय अहमदाबाद के दौरे पर थे, अगले दिन प्रातः मुझसे बात की । उन्होंने कहा कि मैं कुछ असमंजस की-सी स्थिति में हूं । तब मैंने उन्हें गृहसचिव से हुई बात बताई और 30 जनवरी को उन्हें लिखे पत्र का स्मरण कराया ।

दुर्भाग्य से बहुत कम लोगों ने सही कानूनी स्थिति समझी । जम्मू काश्मीर के संविधान के तहत असैम्बली को भंग करने का काम राज्यपाल को ही करना होता है । उसी को यह अधिकार है । जम्मू काश्मीर संविधान के अन्तर्गत उसकी स्थिति अन्य राज्यों के राज्यपालों से भिन्न होती है । स्थिति को और स्पष्ट करने के लिए मैंने गृहमंत्री को एक पत्र लिखा और उसकी एक प्रति राष्ट्रपति के सचिव को भी भेजी । पत्र इस प्रकार है—

"श्री गृहमंत्री,

राज्य विधान सभा को भंग करने के मेरे निश्चय के सम्बन्ध में आपसे टेलीफोन पर जो बात हुई थी, उसी के सम्बन्ध में लिख रहा हूं ।

मैं नहीं समझता कि कोई गलत बात हुई है । इस सम्बन्ध में मैं कुछ बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूं—

(i) जम्मू-काश्मीर के संविधान में केवल राज्यपाल को ही असैम्बली भंग करने का अधिकार है, अन्य किसी को नहीं ।

(ii) इस सम्बन्ध में संविधान के अनुसार राज्यपाल स्वतन्त्र रूप से निर्णय ले सकता है ।

(iii) असैम्बली को भंग किये बिना व्यापक रूप से शक्ति का उपयोग नैतिक तौर पर तर्कसगत नहीं था । यदि ऐसा न किया जाता तो स्थानीय अधिकारी मेरी और मेरे सलाहकारों की आज्ञा न मानते, क्योंकि उन्हें डॉ० फारूख अब्दुल्ला और उनके साथियों द्वारा बराबर यह बताया जा रहा था कि राज्यपाल द्वारा 'कसाई' की भूमिका किये जाने के बाद वह पुनः सत्ता में आ रहे हैं ।

(iv) डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने ऐसे बयान दिये थे जिनमें काश्मीर की तुलना नाजी कैम्प से की गई थी और इसकी जांच अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करवाने की मांग की थी । इन बातों से भड़क कर लोग और अधिक हिंसा पर उतारू हो रहे थे । उनके एक बयान की हू-ब-हू उर्दू प्रति अंग्रेजी अनुवाद सहित इस पत्र के

साथ संलग्न है और उनके बयान का क्या प्रभाव हुआ, इस सम्बन्ध में भी नोट संलग्न है।

(v) असैम्बली भंग करने के सम्बन्ध में मैंने अपने विचार बहुत पहले 30 जनवरी को ही स्पष्ट कर दिये थे। यदि इस सम्बन्ध में कोई रुकावट या अपवाद था तो मुझे पहले ही स्पष्ट बता दिया जाना चाहिए था।

अपने निश्चय के समर्थन में प्रेस विज्ञप्ति की प्रति भी संलग्न है।

निस्संदेह मेरा निर्णय प्रशासनिक, नैतिक और संवैधानिक तौर पर सही है। इसमे लोगों के संदेह दूर होंगे और राज्य में शान्ति और सामान्य स्थिति स्थापित होगी। वातावरण में तनाव की कमी के कुछ चिन्ह आज ही दिखाई दे रहे हैं। संविधान के प्रति निष्ठापूर्वक मैंने जो शपथ ली है उससे मैं परायेपन की भावना से रहित हूं।

भवदीय
जगमोहन

श्री मुफ्ती मोहम्मद सईद
गृहमंत्री, भारत सरकार
नई दिल्ली"

कांग्रेस (इ) आरम्भ से ही मेरे सम्बन्ध में गलत फहमियां फैला रही थी। पार्टी ने इस बात के लिए तूफान उठा लिया था कि मैं काश्मीर में कामयाब न हो सकूं क्योंकि मेरी कामयाबी से उनके कुकृत्यों और गलत आकलनों का पर्दाफाश होता था। कुछ के दिल में चोर था और कुछ ने मेरे द्वारा किये गए सुधारात्मक कार्यों के विषय मे सोचा ही नहीं, जबकि अनेक मुख वाला विध्वंसकारी दैत्य राज्य की सत्ता के ढांचे के सभी अंगों को अपना शिकार बना रहा था।

8 मार्च, 1990 को सर्वदलीय प्रतिनिधि-मण्डल के सामने काश्मीर असैम्बली भंग करने के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा था, कांग्रेस ने गलत जानकारी देने की रणनीति के तहत जान-बूझकर समाचार-पत्रों को उसे तोड़-मरोड़ कर दिया। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और अन्य अधिकारी इस गलतबयानी से कोई गलत धारणाएं न बना लें, मैंने फौरन ही राष्ट्रपति के सचिव को निम्न सन्देश भेजा और इसकी प्रतियां प्रधानमंत्री के मुख्य सचिव, मंत्रिमण्डलीय सचिव और गृह सचिव को भेजीं —

"मुझे इस बात का भरोसा था कि 8 मार्च, 1990 को श्रीनगर में सर्वदलीय प्रतिनिधिमण्डल के सामने मैंने जो कहा था उन्हें सूचना दी थी, वह उनके लिए ही थी। परन्तु मुझे पता चला है कि कांग्रेस (इ) पार्टी ने काश्मीर असैम्बली भंग किए जाने के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा था, उसे जान-बूझकर तोड़-मरोड़ कर समाचार-पत्रों को दिया है। मैंने प्रतिनिधिमण्डल को यह भी बता दिया था कि असैम्बली भंग करने का निर्णय सभी हालात को ध्यान में रखकर लिया गया। एक कारण कुछ लोगों की उस शिकायत को दूर करना भी था जिसमें वे कहते थे कि 1987 के चुनावों में धांधली के कारण मजबूरन उन्हें बन्दूकें उठानी पड़ीं। नवम्बर, 1989 के संसदीय चुनावों और पिछले दो साल की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि असैम्बली का जन-प्रतिनिधित्व वाला स्वरूप समाप्त हो गया है। मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि इस कार्य से अलग-थलग पड़े

गुमराह लोग मुख्य धारा में आ जाएंगे और चुनाव प्रक्रिया में भाग लेंगे। इस प्रकार उनके लिए यह द्वार खोलने के बाद शक्ति के प्रयोग का नैतिक आधार बन जाता है। उनके लिए कोई भी विकल्प छोड़े बिना शक्ति के प्रयोग से मेरी स्थिति एक कसाई की-सी हो जायेगी और लोग यही समझेंगे कि मैं किसी एक गुट की सत्ता कायम करने आया हूं, पहले ही जिसके कारण राज्य विनाश के कगार पर पहुंच गया है। अन्य बातें वही थीं जो 20 फरवरी के पत्र में स्पष्ट कर दी थीं। कृपया राष्ट्रपति जी को सही स्थिति बताएं।"

मैंने समाचार-पत्रों और जनता को कारण बताये। मैंने केन्द्र सरकार के उन पक्षों को स्पष्ट स्थिति बताई जो गुण-दोष के आधार को छोड़ इसलिए आलोचना कर रहे थे कि मैंने उनसे परामर्श नहीं किया। मैंने जो कुछ किया था एक दृढ़ प्रेरणा के अनुसार किया था और अपनी स्थिति व हालात को देखते हुए मैं उस प्रेरणा की घोषणा नहीं कर सकता था। मैं इस बात के प्रति आश्वस्त था कि इससे एक नई शुरूआत होगी। जो मार्ग अब तक अपनाया गया था, उससे राज्य विनाश के कगार पर पहुंच गया था। यह अवसर था कि उसे विनाश से कुछ क्षण पहले बचा लिया जाये। पतित होती निर्लज्ज दैत्याकार व्यवस्था को बचाकर फिर से स्वस्थ होने की राह पर खड़ा करने के लिए शक्ति के प्रयोग करने का कोई नैतिक आधार नहीं था।

इस सम्बन्ध में कुछ और प्रश्न भी थे। हमारा अन्तिम लक्ष्य क्या था? इससे हम क्या हासिल करना चाहते थे? हम लहूलुहान पैरों से उस कंटीले मार्ग पर हांफते हुए उनके पीछे क्यों भाग रहे थे जो स्वयं खड्ड में गिरना चाहते थे? हम किसके लिए अपने पर घात लगाये जाने का खतरा मोल ले रहे थे? हम क्यों ऐसी स्थिति में अपनी जेबों में हाथ डालने का यत्न कर रहे थे कि जब हमें पता था कि जेब में जहरीले बिच्छू हैं और वे डंक मार देंगे? हम किसके लिए यह असाधारण लड़ाई लड़ रहे थे? किसके लिए हम अपने लोगों को हताहत कर रहे थे? किसके लिए हम अपने आपको और अपने परिवारों को खतरे में डाल रहे थे? किसके लिए सीमा सुरक्षा और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के जवान सीली गलियों में सारी-सारी रात बरफ के तूफान में खड़े रहते हैं? किसके लिए करोड़ों रुपये खर्च किए जा रहे थे? किसके लिए कर्फ्यू, तलाशियां और अनेक अप्रिय कार्य किए जा रहे थे? क्या यह सब कष्ट, बलिदान और व्यय इसलिए किया जा रहा था कि फिर से उसी भ्रष्ट, निकम्मे गुट को सत्ता में लाया जाए? क्या हम पुन: उसी को सत्ता में लाना चाहते थे? या हम कोई नई चीज, नया परिवर्तन देखना चाहते थे—जो कहीं फिर हमें राह में ही धोखा नहीं दे।

ऐसे अनेक मूल सैद्धान्तिक प्रश्न मेरे दिमाग में थे। मुझे उनके सम्बन्ध में कोई भ्रम भी न था। यदि मैं असेम्बली भंग न करता तो मुझे भी उन्हीं का एजेण्ट समझा जाता जो इस विनाश के लिए उत्तरदायी थे और तब बल प्रयोग का नैतिक आधार न होता। इसके विपरीत असैम्बली भंग करके उन्हें सही ढंग से भारतीय संविधान के अन्तर्गत अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार देकर यदि बल का प्रयोग किया जाता है तो क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि मैं किसी उच्च ध्येय, देश की अखण्डता की सुरक्षा के लिए लड़ रहा हूं जिससे सभी देशवासी छोटे-बड़े, सभी जातियां, सभी धर्म इस विशाल भारतरूपी वृक्ष के नीचे आश्रय

ले सकें—जिसकी सत्य, न्याय, प्रेम, सद्भाव और मानवीय भाई-चारे वाली शाखाएं सबको एक-सी छाया दें।

मुख्य रूप से सभी अपहरणों, हत्याओं और संकटों, विनाश और अव्यवस्था के लिए दोषी कौन है? इसके दोषी केवल आतंकवादी ही नहीं, दोषी वे भी हैं जो वास्तविकता से मुंह मोड़ लेते हैं, आखें मूंद लेते हैं। हत्याओं के लिए कलिशिनिकोव रायफलें दोषी नहीं, इसके लिए उपेक्षा, सामान्य समझने की वृत्ति और लापरवाही आदि बातें उत्तरदायी हैं जिनसे होने वाला विनाश दिखाई भी नहीं देता।

इस बात को समझना कोई कठिन नहीं कि मेरी प्रेरणा को केवल वे ही नहीं समझ सके या उसका समर्थन नहीं कर सके जिनका स्वभाव से संकुचित राजनीतिक स्वार्थ बन गया है। वे अपने छोटे से स्वार्थ के लिए उसी पुराने बदनाम अभिनेता को उतारना चाहते हैं। उनका सोचना था कि असेम्बली को भंग करने से उनकी राजनीतिक चालों वाले शस्त्रागार में एक शस्त्र कम हो गया; इसीलिए असेम्बली फिर से जीवित करने की बात चालू हुई। जनता के दिमाग में फिर अनिश्चय की भावना भरी गई। कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने मेरे आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए पुनर्विचार याचिका दायर की।

आश्चर्य की बात है कि इस बात के प्रभाव-परिणाम को जाने बिना केन्द्रीय गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद ने संसद में यह बयान दे दिया कि स्टेट असेम्बली को फिर से जीवित करने की बात पर विचार किया जा रहा है। वह यह भूल गये कि जनता दल के नेता के रूप में उन्होंने स्वयं जम्मू-काश्मीर असेम्बली को भंग करने की मांग की थी। उन्होंने 29 अगस्त, 1989 को एक बयान में कहा था—"राज्य की वर्तमान स्थिति का एक मात्र हल नये चुनाव हैं।" मीर वायज मौलवी फारूख भी यह कह रहे थे कि जम्मू-काश्मीर असेम्बली का राज्य के प्रतिनिधित्व वाला स्वरूप समाप्त हो चुका है।

इस सम्बन्ध में कानूनी और संवैधानिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है।

स्पष्ट है कि धारा 92 के अनुसार सरकारी घोषणा हो जाने पर राज्यपाल को वे सब कार्य करने के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो राज्य सरकार अथवा राज्य विधान सभा करती थी। वह 6 मास के लिए अपने अधिकारों और कार्यों के अतिरिक्त राज्य सरकार और विधान सभा द्वारा किये जाने वाले कार्य कर सकता है। केवल पाबन्दी या रुकावट उच्च न्यायालय से सम्बन्धित कार्यों पर होती है। राज्य संविधान के अनुसार सभी कार्य करने का अधिकार राज्यपाल को प्राप्त हो जाता है।

स्पष्ट रूप से राज्य विधान सभा को भंग करने का अधिकार मुझे था। घोषणा जारी करने में राष्ट्रपति की सहमति का अन्तर्निहित भाव यही है कि राष्ट्रपति चाहते हैं कि इन अधिकारों का प्रयोग चाहूं तो मैं स्वयं करूं। यदि राष्ट्रपति ऐसा न चाहते हों तो सरकारी घोषणा में स्पष्ट किया जाता कि धारा 53 की उपधारा 2 के अधीन इन अधिकारों का उपयोग राष्ट्रपति की सहमति से होगा।

स्पष्ट है कि ऐसा नहीं है, इसलिए यह स्पष्ट है कि राज्य संविधान की धाराओं के अनुसार इन अधिकारों का प्रयोग मैं ही कर सकता था। यदि राज्य

संविधान की धाराओं के अनुसार मेरे द्वारा अधिकारों के प्रयोग पर कोई सन्देह या सवाल नहीं किया जा सकता तो धारा 53 की उपधारा 2 के क्लॉज (v) के अधीन कैसे संदेह किया जा सकता है। यदि उस घोषणा के आधार पर राज्यपाल शासन की अवधि में कानूनों में संशोधन कर सकता हूं या नये कानून बना सकता हूं तो राज्य विधान सभा को भंग क्यों नहीं कर सकता ? यदि उसे भंग करना असंवैधानिक और गैरकानूनी है तो 19 जनवरी, 1990 की घोषणा के अनुसार अनिषिद्ध धाराओंके अनुरूप लिए गये निर्णय और कार्य भी गैरकानूनी हो जाने चाहिए। क्या इससे स्थिति और वेहूदा तथा नियन्त्रण से वाहर नहीं वन जायेगी ?

मैंने अपने 1986 के एक निर्णय में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 को जम्मू-काश्मीर पर लागू करने पर राज्य-सरकार की सहमति दी थी। इसके विरुद्ध डॉ० मोहम्मद अमीन अंदरावी द्वारा जब दिल्ली उच्च न्यायालय में समादेश याचिका दायर की गई तब भारत सरकार ने भी जम्मू-काश्मीर के संविधान की धारा 92 के अधीन राज्यपाल शासन के दौरान उसके अधिकारों के वारे में वही रुख अपनाया था, जो मेरा था।

अजय चौधरी ने भारत सरकार की ओर से एक हलफनामा दाखिल किया था। इसमें इस वात की पुष्टि की गई थी राज्यपाल शासन के दौरान राज्य सरकार के सब अधिकार राज्यपाल को प्राप्त हो जाते हैं।

जब स्पष्ट प्रावधानों के अनुसार स्थिति स्पष्ट है तो इधर-उधर के प्रश्नों पर विचार नहीं किया जा सकता। राज्यपाल को अधिकार था। उसने उनका उपयोग किया। मामला यहीं समाप्त हो जाता है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के शब्दों में—'इसमें कोई सन्देह या अटकलें लगाने की आवश्यकता नहीं।"

विधान सभा भंग करने का मेरा आदेश किसी भी प्रकार वाद-विवाद का विषय नहीं। इस निर्णय को कोई भी अदालत वदल नहीं सकती। उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान केस (ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1361) में स्पष्ट रूप से कानून वना दिया है। इस निर्णय में स्पष्ट कहा गया कि संवैधानिक अधिकार सम्पन्न व्यक्ति ही अपने संवैधानिक अधिकारों को लागू करने के लिए तथ्यों के आधार पर विधान सभा भंग कर सकता है। अदालत संवैधानिक अथारिटी द्वारा लिये गये निर्णयों और उनकी वैधता पर संदेह नहीं करेगी। वह उसे अपने लिए गये निर्णयों का कारण वताने के लिए वाध्य नहीं करेगी।

उच्चतम न्यायालय ने सतपाल के मुकदमे (ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 903) में भी निर्णय दिया था कि विधान सभा के सदस्यों को ऐसा कोई कानूनी अधिकार नहीं है कि वे यह मांग करें विधान सभा को अपना काल पूरा करने देना चाहिए—क्योंकि संविधान में स्पष्ट कहा गया है कि विधान सभा समय से पूर्व भंग की जा सकती है।

8 जुलाई, 1990 को मेरे पद त्याग के कुछ समय वाद राज्य सरकार ने एक हलफनामा उच्च न्यायालय में दाखिल किया। जैसा मैंने पहले वताया, उस समय भी वही स्थिति अपनाई गई। हलफनामे के अनुच्छेद 9 में स्वीकार किया गया—

"जब धारा 92 के अन्तर्गत घोषणा कर दी गई और राज्यपाल ने धारा 35 को स्थगित करके मंत्रिमण्डल के अधिकार ग्रहण कर लिये तो राज्यपाल द्वारा

मंत्रिमण्डल की सहायता या परामर्श से कार्य करने का प्रश्न ही नही उठता।"

अनुच्छेद 13 मे कहा गया है--

"राज्य के सविधान के अनुसार विधान सभा को भंग करके मंत्रिमण्डल के अधिकार समाप्त करने का पूर्ण अधिकार राज्यपाल को है। इन अधिकारो को किसी अदालत मे चुनौती नही दी जा सकती। विधान सभा भग करने का मामला विवादास्पद नही।"

सविधान मे न तो कोई ऐसा प्रावधान है और न कोई कानून जो भग विधान सभा को पुन जीवित कर सके। ऐसा कोई पूर्व उदाहरण भी नही कि कोई भग विधान सभा फिर से जीवित की गई हो। भंग होने के बाद विधान सभा मृत हो जाती है। क्या कोई मृत को जीवित कर सकता है? क्या फंटे हुए अडे को फिर से साबुत बनाया जा सकता है?

पजाब विधान सभा भग करने के मुकदमे मे भी पजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय ने उक्त बातो की ही पुष्टि की है। न्यायालय ने कहा कि यदि हम यह अनुमान करें कि विधान सभा को भग करना किसी की अयोग्यता के कारण हुआ है तो भी सविधान या किसी कानून के अन्तर्गत प्रतिवादी (राष्ट्रपति/राज्यपाल) को यह अधिकार नही कि उसे पुनः जीवित कर सके। न्यायालय ने यह मानने से इन्कार कर दिया भग करना अमान्य है। निर्णय के अन्तिम भाग मे न्यायालय ने कहा कि प्रतिवादी को ऐसा कोई अधिकार नही कि भग असेम्बली को फिर से चालू या जीवित कर सके। उसे जीवित या चालू करने का आदेश इसलिए नही दिया जा सकता क्योकि सविधान इसकी आज्ञा नही देगा।

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि न्यायालय उन तथ्यो पर विचार नही कर सकते जिनके कारण विधान सभा को भंग करना पड़ा। कानून की यही स्थिति है और सविधान भी यही कहता है। परन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से चाहता हूं कि निष्पक्ष पर्यवेक्षक चाहे वे विधिवेत्ता, शिक्षाविद, प्रशासनिक अधिकारी अथवा पत्रकारिता के क्षेत्र से सबद्ध हो, उन तथ्यो की समीक्षा करें। मैं चाहता हूं कि मेरा व्यापक ध्येय समझने का यत्न किया जाये। मैंने अपने पक्ष मे जो प्रमाण दिये हैं उन्हे अन्य अध्यायो, विशेष रूप से 'विध्वस या विद्रोह का तरीका' तथा 'मेरे आने से पूर्व की स्थिति' आदि मे स्पष्ट किया गया है।

अंत मे यह बात दोहराना ही उचित होगा जो मैंने 1990 मे एक पत्रकार के प्रश्न के उत्तर मे कही थी। मैंने कहा था—"मैंने विधान सभा को भग करने का निर्णय सारे हालात को देखकर ही लिया था। मूल उद्देश्य यह था कि इससे एक नई शुरूआत होगी और एक नया वातावरण बनेगा—जिसके प्रति काश्मीर की जनता की धारणा यह है कि यह न्यायसगत और सही है। इससे ऐसा कुछ नही होगा जिससे भ्रष्ट और निकृष्ट गुट राज्य को विनाश के कगार तक पहुचा दे। यह निर्णय प्रशासनिक, नैतिक, सवैधानिक और परिस्थितियो के अनुसार सही है। यदि इसके सम्बन्ध मे स्वार्थी तत्त्व गलत सूचनाए न दें तो इससे राज्य मे शान्ति और सामान्य स्थिति उत्पन्न करने मे सहायता मिलेगी।"

एक न्यायिक चुनौती के प्रश्न पर मैंने उत्तर दिया था। मैंने कहा था— "इतिहास के विधिज्ञ वर्ग के प्रति न्यायालय भी उतने ही उत्तरदायी हैं जितना कोई अन्य।"

बारहवां अध्याय

सन्देह और परस्पर विरोधी बातों का भंवर जाल

आंख खुलने पर मैंने अनुभव किया कि अंधेरा छंट गया है
परन्तु दिन नहीं निकला,
कितनी घड़ियां, कितनी काली घड़ियां बीत गईं, कह नहीं सकता।
—गेरार्ड मैनले हॉपकिंस

फरवरी, 1990 के तृतीय सप्ताह तक प्रशासन को एक निश्चित ढांचे पर आया था। हालांकि प्रशासन के बहुत से अंग बड़ी विकृत अवस्था में थे और म काफी कठिन था। राज्य विधान सभा को भंग करके एक राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिए लोगों में नई आशा पैदा कर दी थी। मुझे इससे कोई सरोकार था कि सत्ता चाहने वाले पुराने राजनीतिक दल ही थे अथवा नये दल। मैंने नेक विकास कार्य प्रारम्भ कर दिये थे और भ्रष्टाचार के विरुद्ध भी काम रम्भ कर दिया था। मुझे आशा थी कि लोग इन नीतियों से सहमत होंगे। क व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार मैंने अपनी रणनीति इस प्रकार से प्रारम्भ की कि जिससे कठोर उग्रवादी तथा पाकिस्तान समर्थक तत्त्व अलग-थलग पड़ यें क्योंकि इन्हीं तत्त्वों के कारण जनता का एक बड़ा भाग तोड़-फोड़ और तंकवादी गतिविधियों में लग चुका था। जैसा कि अध्याय-9 में बताया गया मेरे इन कार्यक्रमों का ध्येय यह था कि लोग सामाजिक, राजनैतिक और र प्रशासनिक रचनात्मक कार्यक्रमों के प्रति जागरूक हों।

जिस समय मैं भटके हुए युवकों को नये मार्ग पर लाने और एक नया वाता-रण पैदा करने का प्रयत्न कर रहा था उस समय वी० पी० सिंह सरकार ने जो दम उठाये उनसे मेरे इन सुधार-कार्यों में बाधा पड़ी। जो प्रकाश की किरण री सहायक थी वह इन कार्यों के कारण समाप्त हो गई। इनमें पहला कार्य था त सदस्यीय सर्वदलीय परामर्शदात्री समिति का गठन। इतने से भी संतुष्ट न कर उन्होंने रेलमंत्री जार्ज फर्नांडीज को काश्मीर मामलों का मंत्री नियुक्त र दिया। यह दो कार्य ऐसे थे जिनसे काश्मीर फिर संदेह और परस्पर-विरोधी तों के घेरे में आ गया।

सेना को भी गलत संकेत दिये जा रहे थे। मेरी स्थिति को इससे फिर धक्का पहुंचा। सरकार की सचाई के प्रति युवकों के मन में फिर सन्देह पैदा हुआ। सबसे हानिप्रद बात यह थी कि सर्वदलीय समिति के दो भागीदारों कांग्रेस (इ) और नेशनल कांफ्रेंस की सचाई में सन्देह। इन लोगों का काम करने का ढंग रचनात्मक नहीं था। उनका ध्येय मेरे मार्ग में कठिनाई पैदा करना था। इन बातों से यह स्पष्ट हो गया कि केन्द्र सरकार विरोधाभासों का जमघट है और प्रशासन के मौलिक नियमों के प्रति उसका कोई क्रियात्मक अनुभव नहीं है।

जार्ज फर्नांडीज और सर्वदलीय समिति के सम्बन्ध में बताने से पहले स्थिति के अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इनमें से एक जनता में फैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई से सम्बन्धित है, दूसरा 'मेराज-ए-आलम' के समारोहों के प्रति अपनाई गई नीति के सम्बन्ध में और तीसरा ऐसी बातों के प्रभाव को कम करना था जिनके कारण तोड़-फोड़ करने वालों को प्रोत्साहन मिलता था।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई

नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) के गठबंधन को जनता की भावनाओं से कोई सरोकार न था और वे बड़ी निर्लज्जतापूर्वक भ्रष्टाचार में लगे हुए थे। वे यह अनुभव नहीं कर सके कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध लोगों की तिरस्कार-भावना बढ़ रही है और इसके कारण तोड़-फोड़ करने वाले और आतंकवादी तत्त्वों को बढ़ावा मिलता है।

जो अनौचित्यपूर्ण कार्य किये जा रहे थे उसका जायज़ा मन्त्रियों तथा विधान सभा और विधान-परिषद के सदस्यों को 74 मकानों के प्लाटों के आवंटन से मिलता है। इन आवंटियों में डॉ० फारूख अब्दुल्ला, उनका छोटा भाई और मंत्री डॉ० मुस्तफा कमाल, शहरी विकास मंत्री अताउल्ला सुहरावर्दी, वित्त मंत्री अब्दुल रहीम राठर, पूर्व राजस्व मंत्री और संसद सदस्य पी० एल० हाण्डू तथा कांग्रेस (इ) के मंत्री मंगतराम शर्मा, गुलाम रसूल कार, मौलवी इफ्तखार हुसैन अंसारी आदि थे। इस मामले से व्यापक रूप से फैले इन विचारों की पुष्टि होती है कि नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एकजुट हो हो गये हैं।

23 फरवरी, 1990 को जारी किये गये अपने आदेश को मैं यहां नीचे दे रहा हूं—

विषय : रूपनगर आवासीय कालोनी में मन्त्रियों, विधान परिषद और विधान सभा के सदस्यों को 74 प्लाटों का आवंटन।

इस मामले को जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे यह प्रकट होता है कि प्रशासन के कुछ अंग अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हुए हैं। प्राय: सभी विधान सभा और विधान परिषद सदस्यों, जिनमें मंत्री भी शामिल हैं, को प्लाट देने का निश्चय किया गया और वह भी इस ढंग से कि जिसमें प्रशासन और न्याय के प्रति इनकी अवहेलना स्पष्ट प्रकट होती है।

इन प्लाटों को नीलामी द्वारा बेचा जाना था। इस स्थिति को मंत्रियों ने

अपने आदेश द्वारा रद्द कर दिया और आपस में प्लाट बांट लिए जबकि इनका कर्त्तव्य था कि वे जनता के हित के प्रति जागरूक रहते। जम्मू-विकास-प्राधिकरण की ओर से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि इन प्लाटों की नीलामी रद्द कर दी जाये। इनके द्वारा जम्मू-काश्मीर विकास एक्ट की स्थाई धारा का उल्लंघन हुआ है।

मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में जो एग्रीमेंट किये गये हैं, वे बहुत जल्दी में किये गये हैं। प्रशासन जनता सम्बन्धी अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन रहा है। पिछले सप्ताह ही मुझे पता चला है और मेरे सामने कुछ मामले आये हैं जिनमें सरकारी कर्मचारियों को पिछले 10 महीने से वेतन नहीं मिला है। सोपोर कालेज और सोपोर स्कूल के मामले भी इसी प्रकार के हैं। अधिसूचित क्षेत्रीय समिति के कर्मचारियों को भी वेतन नहीं मिला। अभी कल ही मुझसे एक विधवा मिलने आई थी जिसका पति दिसम्बर में आतंकवादी हिंसा में मारा गया था। तब से वह दर-दर भटकती और सहायता की भीख मांगती रही है परन्तु उसे किसी प्रकार की सहायता रती-मात्र भी प्राप्त नहीं हुई; जबकि प्लाट देने के मामले में विशेष शीघ्रतापूर्वक अलाटमेंट आर्डर पास किये गये और रियायती ढंग से पैसे की अदायगी के लिए भी समझौते किये गये।

इस मामले से सम्बद्ध सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि जनता के हित में इनका आवंटन रद्द कर दिया जाये। क्योंकि यह कार्य प्रारम्भ से ही गलत था इसलिए मैं आदेश देता हूं कि व्यक्तिगत तौर पर आवंटियों को आवंटन समाप्त करने की सूचना दी जाये और उनका धन वापस कर दिया जाये।

इस मामले से औचित्य के प्रश्न का भी सम्बन्ध है परन्तु इससे सत्ता का उपयोग करने वाले व्यक्तियों की मानसिक स्थिति का भी पता चलता है। नगर-पालिका के सदस्यों के सम्बन्ध में एक बार बात करते हुए गांधी जी ने कहा था—'उन्हें अवैतनिक सफाई कर्मचारी के रूप में कार्य करना चाहिए।' गांधी जी इस प्रकार की प्रेरणा जनता के प्रतिनिधियों में भरना चाहते थे परन्तु इस मामले से क्या स्थिति स्पष्ट होती है और क्या रवैया प्रकट होता है?"

मेरे इस आदेश का अच्छा असर हुआ। सामान्य काश्मीरी और जम्मू के रहने वाले लोगों ने इस पर प्रसन्नता जाहिर की और यह अनुभव किया कि अब न्याय होगा तथा इन गुटों ने राज्य के स्रोतों को अपने हित में प्रयोग करना प्रारम्भ किया था, अब उनका उपयोग विकास तथा जनता के हित के कार्यों में होने लगेगा। इस मामले में प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक सदस्य को तीन लाख रुपये की वित्तीय सहायता दी जानी थी जबकि कुल सदस्य 74 थे। इस प्रकार राज्य को 2 करोड़ की हानि होती।

भ्रष्टाचार से जनता कितना ऊब चुकी थी इसका अनुमान स्थानीय पत्रों में प्रकाशित संपादकीय टिप्पणियों से लगाया जा सकता है। यहां मैं एक उदाहरण दे रहा हूं—

"राज्यपाल जगमोहन द्वारा मंत्रियों और विधान सभा सदस्यों को 74 प्लाट देने के आदेश को रद्द करने से जनता ने प्रसन्नता अनुभव की है। फारूख मंत्रिमण्डल ने सत्ता से हटा दिये जाने से कुछ समय पूर्व ही अनियमित ढंग से

प्लाटों के आवंटन का कार्य किया था। आवंटियों को यह मालूम था कि यह कार्य गलत ढंग से किया गया है और उनको रजिस्ट्री राजनैतिक प्रभाव के कारण हुई है। इस लूट में लाभ उठाने वाला स्वयं मुख्यमंत्री भी था जिसके पास राज्य का स्थायी बाशिंदा होने का प्रमाणपत्र भी नहीं था चूंकि उसने इंगलैंड की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। उसने संवैधानिक नियमों को ताक पर रखकर राज्य का स्थायी बाशिंदा होने का प्रमाणपत्र प्राप्त किया। वास्तविकता यह थी कि इनमें से ज्यादातर सदस्य जम्मू के रहने वाले थे ही नहीं। इससे पहले भी फारूख सरकार ने लोगों को मकान बनाने और कारें खरीदने के लिए सभी विधान सभा सदस्यों को कई लाख का कर्जा देने की स्वीकृति दी थी। प्रायः सभी मामलों में इस राशि से न तो मकान बनाये गये और न कारें खरीदी गईं।

मन्त्रियों और विधान सभा सदस्यों को प्लाटों के आवंटन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांझा सरकार किस प्रकार भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और सत्ता के दुरुपयोग का कारण बनी हुई थी। जो कुछ यहां प्रकट किया गया है यह तो पूरी कहानी का बहुत छोटा-सा अंग है।"

यहां संसद सदस्य सैफुद्दीन सोज के मामले पर प्रकाश डालना आवश्यक है। देखने में यह मामला बहुत ही साधारण मालूम होता है परन्तु इससे स्पष्ट हो जाता है कि नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) के नेताओं ने मेरे विरुद्ध किस प्रकार आंदोलन छेड़ रखा था। मैंने भ्रष्टाचार के विरुद्ध जो कार्य प्रारम्भ किया उसकी आवश्यकता लोगों की सद्भावना पाने और पृथक होने की भावना को कम करना था। मुख्यमंत्री तथा मन्त्रियों के समान सोज को भी रूपनगर कालोनी में एक प्लाट दिया गया था। परन्तु वह इससे सन्तुष्ट न थे, वह चाहते थे कि और अच्छी गांधीनगर कालोनी में उस प्लाट को स्थानांतरित कर दिया जाये। उस समय मैंने कार्यभार संभाला था और इस सम्बन्ध में फाइल मेरे पास आई। मैंने सोज की प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया। इसके साथ ही मैंने यह प्रश्न उठाया कि राजनैतिक उच्च वर्ग के लोगों को प्लाट कैसे दिये गये जबकि सामान्य नीति सारे देश में इस प्रकार की है कि मध्यम अथवा निम्न आय वर्ग के लोगों को निश्चित मूल्य पर प्लाट दिये जाने चाहिए। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि यदि सोज की अर्जी स्वीकृत हो जाती है तो इससे उनको 5 से 7 लाख तक का लाभ होता।

मेरा ध्येय था कि विधान सभा को भंग करने से जो नया वातावरण पैदा हुआ है उससे लाभ उठाया जाये और बड़े लोगों में जो भ्रष्टाचार है उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाये। मैंने अपने इन विचारों की झलक 18 फरवरी, 1990 को आकाशवाणी और दूरदर्शन पर लोगों को दी। मैंने उन्हें पूर्ण न्याय का भरोसा दिलाया—

"व्यापार और उद्योग धन्धों को हानि पहुंच रही है। इसका विशेष रूप से छोटे दूकानदारों और कमजोर वर्ग के लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा है। आने वाले पर्यटकों के मौसम पर राज्य के गलत प्रचार का भी प्रभाव पड़ेगा। राज्य की आर्थिक स्थिति पहले ही ठीक नहीं। बहुत से धन का अपव्यय कर दिया गया है और भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैला हुआ है। मैं प्रयत्न कर रहा हूं कि नियम भंग करने वालों को सजा मिले और एक-एक पैसा विकास कार्यों पर खर्च किया

जाये। मैंने विभिन्न विभागों के हिसाब की जांच के आदेश भी दिये हैं।

मैं याद दिलाना चाहता हूं कि भारतीय संविधान सबको सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय का आश्वासन देता है। मैं आपको यह न्याय दिलवाने के लिए वचन देना हूं। आप लोगों से अपील करता हूं कि आप इस बात को अमली जामा पहनाने में मेरी मदद करें।

तीन सप्ताह के थोड़े से समय में सीमा सुरक्षा बल में 7000, अध्यापकों के 3000, 4300 होम गार्ड तथा सैकड़ों अन्य पदों को स्वतन्त्र भरती बोर्ड द्वारा भरने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रशासन सही ढंग से काम करने लगा है। बारामूला और अनन्तनाग के लिए अलग कमिश्नर नियुक्त कर दिये गये हैं। नागरिक आपूर्ति तथा संचार सेवाओं के काम चालू हो गये हैं। हमने सुधारों, कार्यों के पुनर्गठन, लोगों के हित तथा विकास कार्यों को पुनः करने का कार्यक्रम तैयार कर लिया है। हमें मिलकर इन योजनाओं को लागू करना है और यह देखना है और ऐसे हालात पैदा करते हैं कि शहर की सड़कें पर्यटकों से भरी हों और पुलिस का एक भी सिपाही वहां दिखाई न दे।

पिछले कई दिनों से दिन का कर्फ्यू नहीं है परन्तु कुछ तत्त्व नियम-कायदों का सम्मान करने और शान्ति चाहने वाले लोगों के इस यत्न को समाप्त करना चाहते हैं। शान्ति भंग करना चाहते हैं। हमें इन लोगों को स्थिति पर हावी नहीं होने देना है।"

मिराज-ए-आलम

मुस्लिम पर्व मिराज मानव के आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रगति का प्रतीक है। यह पैगम्बर मुहम्मद साहब के बहिश्त प्रस्थान का संकेत है। इसे 'इसरा' (रात्रि यात्रा) भी कहते हैं। ऐसा विश्वास है कि यह पैगम्बर के मिशन के 12वें वर्ष रबरूल अव्वल महीने में हुआ था। कुरान की 17वीं आयत में कहा है—"हम उस खुदा की तारीफ करते हैं जो अपने खादिम को रात के समय मसजिदुलहरम यानि मक्का से मसजिदुलक्सा यानि जेरूसलम ले गये।"

मुख्य समारोह 'रजब' महीने की 26 और 27 तारीख की रात और उसके बाद के शुक्र को मनाया जाता है। काश्मीर में इन समारोहों का बहुत महत्त्व माना जाता है। मस्जिदों, विशेष रूप से हजरतबल में भारी समारोह होता है और नमाज के समय श्रद्धालुओं को हजरत साहब के बाल के दर्शन कराये जाते हैं।

1990 को मिराज-ए-आलम से सम्बन्धित धार्मिक समारोह फरवरी के तीसरे महीने में होने थे। काफी सोच-विचार के बाद मैंने इस काल में कोई प्रतिबन्ध न लगाने का निश्चय किया था ताकि तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्वों को यह कहने का अवसर न मिले कि राज्यपाल का प्रशासन परम्परागत धार्मिक समारोहों में रुकावटें डाल रहा है।

मेरे सामने दो मुख्य बातें और थीं। पहली यह कि मैं पूर्ण रूप से शान्त वातावरण पैदा करना चाहता था ताकि अधिक से अधिक लोग मेरे पास आकर अपने कष्टों के बारे में बतायें और सुझाव दें। दूसरी बात यह थी कि धर्मान्ध और

रूढ़िवादियों, पाकिस्तान समर्थकों का प्रभाव कम हो। मैं चाहता था कि जे० के० लिबरेशन फ्रंट के लोग मुझ तक पहुंचें क्योंकि वे प्रच्छन्न रूप से कुछ उदार विचारों के थे और मैं सोचता था कि उन्हें यह समझाया जा सकता है कि काश्मीरी लोगों की आजादी भारतीय संविधान के अन्तर्गत रहकर हासिल करने का यत्न करें। इस प्रकार मैं उन्हें समृद्ध वर्ग के शिकंजे से निकलने और उन्हें अपनी राजनीतिक आकांक्षाएं प्रकट करने का अवसर देना चाहता था। मैं चाहता था कि उन्हें आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति का अवसर मिले। पहली मार्च तक लगभग सब कुछ मेरी आशा के अनुरूप चलता रहा, केवल जे० के० लिबरेशन फ्रण्ट ने धार्मिक समारोहों के लिए दी गई आजादी का दुरुपयोग करते हुए संयुक्त राष्ट्र के प्रेक्षक दल के कार्यालय के सामने कई जलूस निकाले। इन जलूसों से सम्बद्ध कार्यवाहियों से स्पष्ट था कि जमाते इस्लामी, हिजबुल मुजाहिदीन और अन्य पाकिस्तान समर्थक तत्त्व नगण्य पड़ गये हैं। इन लोगों को यह बात पसन्द नहीं थी, इसलिए इन लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से एक मार्च 1990 को दो बड़ी वारदातें कीं।

इन वारदातों में नेशनल कान्फ्रेंस के हाथ से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके एजेण्ट भी सदा इस बात की टोह में रहते थे कि मौका मिले तो वे सौहार्दपूर्ण वातावरण को बिगाड़ें। रावलपुरा उपमार्ग के पास सेना की स्कूल बस, जो बच्चों को स्कूल ले जा रही थी, पर हमला किया गया। रक्षकों ने बच्चों को बचाने के लिए गोली चलाई। दूसरी जगह श्रीनगर से 20 कि० मी० दूर जाकुरा नामक जगह पर भीड़ ने सेना के वाहनों की रक्षा करते हुए गार्ड से हथियार छीनने की कोशिश की। एक अन्य गाड़ी में सेना के जवान आ रहे थे, उन्होंने गार्ड पर हमला होते देख गोली चलाई। इन दोनों दुर्भाग्यपूर्ण वारदातों में 17 आदमी मारे गये।

इन तथ्यों की पुष्टि कोर कमाण्डर एम० ए० ज़की द्वारा उसी दिन की जांच पड़ताल से हुई थी। परन्तु मरने वालों की संख्या बढ़ाकर बताई गई। बी० बी० सी० ने मरने वालों की संख्या 21 बताई। हमारे अपने आकाशवाणी केन्द्र काश्मीर ने घटना को और भी तोड़ा-मरोड़ा और कहा कि सेना के जवानों ने एक सरकारी बस पर गोलियां चलाईं जिसमें 30 आदमी मारे गये। फारूख अब्दुल्ला ने पुष्टि किये बिना एक सौ आदमियों के मारे जाने की बात कही। इसके लिए उन्होंने मुझे दोषी ठहराया जबकि इन दोनों घटनाओं से नागरिक प्रशासन का न तो कोई सम्बन्ध था और दोनों घटनाएं श्रीनगर से दूर हुई थीं और दोनों में भीड़ के कुछ शरारती तत्त्वों का हाथ था। नेशनल कान्फ्रेंस के तीन सांसद, जो कभी काश्मीर आते ही नहीं थे पर सदा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते थे कि मैं हालात पर काबू न पा सकूं, संसद के द्वार पर धरने पर बैठ गये और मुझे वापस बुलाये जाने की मांग करने लगे—उनका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर खूब प्रचार हुआ।

पांच कारण

मैं यह अच्छी तरह जानता था कि हालात तोड़-फोड़ करने वालों के अनुकूल

किन पांच कारणों से हुए। उस समय मेरा ध्यान इनके प्रभाव को यदि पूरी तरह समाप्त न किया जा सके तो कम करने की ओर गया।

प्रथम कारण यह था कि तोड़-फोड़ करने वालों ने जनता के दिल में यह बात बिठा दी थी कि उनकी विजय अवश्यंभावी है। इस बात की जगह जनता में यह विश्वास जगाना था कि सफलता राज्य प्रशासन की ही होगी और बहुत जल्दी होगी। जनवरी, 1990 के तीसरे सप्ताह के बाद दृढ़ निश्चय और इच्छा शक्ति से काम आरम्भ करने के बाद स्थिति में परिवर्तन होने लगा। इसलिए आवश्यक था कि इस दिशा में दबाव बनाये ही नहीं रखा जाये बल्कि बढ़ाया भी जाये। इस बात में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं था कि यदि ईमानदारी और दृढ़ता से निरन्तर काम किया जाये तो वातावरण पूरी तरह से प्रशासन के पक्ष में हो जायेगा।

दूसरा कारण यह था कि राजनीतिक रूप से महत्त्वाकांक्षी युवकों के सामने अपनी राजनीतिक भावनाएं प्रकट करने का अवसर नहीं था। उनमें से बहुत से तोड़-फोड़ और आतंकवाद को राजनीति का अंग मानकर ही उधर झुके थे। इस स्थिति का इलाज यही था कि उन्हें उस स्थिति से निकलने का स्पष्ट मार्ग और उससे लौटने का अवसर प्रदान किया जाये। राज्य विधान सभा को भंग करना इसी दिशा में एक कदम था। अब प्रयत्न इस बात का करना था कि पाकिस्तान समर्थक कट्टर लोगों को छोड़, शेष इस मार्ग से वापस मुख्य धारा में लौट सकें।

तीसरा कारण यह था कि अधिकांश काश्मीरी समाज रूढ़िवादी है। देश-द्रोह के कामों में लगे लोग काश्मीर की प्यूरिटन स्थिति की बात उठाते थे, जो आम लोगों को भ्रष्टाचार से तंग आने और संपत्ति कुछ लोगों के हाथ में आने के कारण और अधिक आकर्षित करती थी। इसके लिए यह दर्शाना जरूरी था कि नया शासन-प्रबन्ध ईमानदार है और भ्रष्टाचार से मुक्त है।

चौथे, पाकिस्तान की खुफिया एजेन्सी सभी देशद्रोही तत्त्वों को सैयद अली शाह गिलानी और मियां कयूम जैसे पाकिस्तान समर्थक लोगों के नेतृत्व में संगठित करने का प्रयास कर रही थी। ऐसा न होने देना आवश्यक था। जमाते इस्लामी, हिजबुलमुजाहिदीन, रूढ़िवादी कठमुल्ला लोगों और पाकिस्तान समर्थक लोगों के प्रभाव को कम करना और दबाव बनाये रखना तथा स्कूलों आदि के जरिए उनके द्वारा किये जाने वाले कामों को रोकना था जिनसे वे समाज में अपना विशेष प्रभाव बना लेते।

पांचवां कारण वे लोग थे जो पृष्ठभूमि में रहकर देशद्रोही गतिविधियों को बढ़ावा देते थे। और जब उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती तो वे अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण काफी हो-हल्ला मचाने लगते थे। ऐसे लोग वकील समुदाय, चिकित्सा सेवाओं और व्यापार के क्षेत्र में भी थे। समादेश याचिकाओं और समाचार-पत्रों में गलत बयानों द्वारा ये लोग काफी अड़ंगा लगाते थे। इनमें से कुछ लोग आतंकवादियों द्वारा अपनी हिफाजत के लिए भी यह करते थे और गलत तरीकों से बटोरे गये धन या अपने कुकृत्यों की ओर से ध्यान बंटाने के लिए भी ऐसा करते थे। इसलिए आवश्यक था कि उन्हें जता दिया जाये कि उनके हथकण्डे उन्हें बचा नहीं पायेंगे और उन्हें देशद्रोहियों की सहायता करने का फल भुगतना

ही पड़ेगा। इस प्रकार अध्याय नौ में वर्णित ध्येय के अनुरूप प्रशासन के टूटे-फूटे ढांचे को खड़ा करने के लिए जो उपाय सोचे थे, वे थे—

(1) निरन्तर दृढ़ता से काम लेना, (2) तोड़-फोड़ करने वालों के लिए पुन. मुख्य धारा में लौटने का प्रबन्ध (3) देशद्रोहियों का अपने आपको चरित्रवान और समाज सुधारक कहने की बात का खण्डन, (4) पाकिस्तान समर्थक धर्मान्ध लोगों के नेतृत्व में इन गुटों को इकट्ठा होने से रोकना तथा (5) पृष्ठभूमि में रहकर काम करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही करना।

सर्वदलीय परामर्शदात्री समिति का दौरा

पहली मार्च की दो दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बाद स्थिति शांत हो रही थी और मैं फिर अपने निश्चय के अनुरूप कार्य करने लगा था कि 7 मार्च, 1990 को प्रधानमंत्री निवास पर हुई बैठक में निश्चय किया गया कि अगले ही दिन कुछ मन्त्रियों समेत सभी राजनीतिक दलों का एक प्रतिनिधि मण्डल श्रीनगर का दौरा करेगा। यह निश्चय करने वालों ने यह नहीं सोचा कि यह समय दौरे के उपयुक्त नहीं था। उन्हें वास्तविकता का इतना भी ज्ञान नहीं था कि इतनी अल्पकालीन सूचना पर राज्य प्रशासन इतने अति-विशिष्ट व्यक्तियों की त्रुटि रहित सुरक्षा का प्रबन्ध कैसे कर सकेगा।

लगभग आधी रात के समय केन्द्रीय गृह सचिव शिरोमणि शर्मा ने टेलीफोन पर मुझसे सम्पर्क किया। उन्होंने मुझे बताया कि एक सर्वदलीय प्रतिनिधि मण्डल कल प्रातःकाल विशेष विमान से श्रीनगर आ रहा है। उनकी सुरक्षा और आवास की व्यवस्था कर दी जाये। उन्हें यह मालूम नहीं था कि इस प्रतिनिधि मण्डल में कौन-कौन आ रहा है। उन्होंने बताया कि प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में हुई मीटिंग अभी कुछ ही देर पहले समाप्त हुई है और इस दल के दौरे के बारे में बड़ी जल्दी में निर्णय लिया गया है। गृह सचिव ने यह बात बहुत ही क्षमा याचना पूर्ण ढंग से कही। उनकी स्थिति को मैं समझता था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे स्वयं इस निर्णय और श्रीनगर जाने के समय के औचित्य में सन्देह था। परन्तु उन्होंने उक्त निर्णय लेने वालों को बुद्धिमान भी नहीं कहा।

मैं इस बात से आश्चर्यचकित था कि कितनी कठिन स्थिति के सम्बन्ध में उनका यह दृष्टिकोण कितना दिखावटी और छिछला था। वे इस दौरे से क्या लाभ होने की सोच रहे थे? ऐसा निश्चय करने से पूर्व राज्यपाल, उसके सलाहकारों, पुलिस महानिदेशक या केन्द्रीय अथवा राज्य गुप्तचर विभाग से परामर्श क्यों नहीं कर लिया गया? विस्फोटक मामलों में यदि इन लोगों के विचार नहीं जानने थे, तो भी इतने सारे संगठनों के लोगों को लाने की क्या आवश्यकता थी? यदि इस दौरे को एक दो दिन आगे पीछे रखा जाता तो क्या हानि हो जाती? इस दौरे की इस जल्दी में क्या लाभ होने वाला था और इसके कारण पैदा होने वाली अव्यवस्था क्या उपयुक्त थी? दुर्भाग्य से सारी बातें इनमें उलट थी। इससे सारा प्रशासन और सुरक्षा सम्बन्धी तन्त्र गड़बड़ा ही नहीं गया, इससे दीर्घ व अल्पकालीन समस्याएं और बढ़ीं।

इसके लिए प्रबन्धकों को आधी रात के समय उठाया गया, सुरक्षित

वाहनों और चालकों की सर्दियों की आधी रात में तलाश आरंभ हुई, अगली सुबह जिन स्थानों पर छापे मारने थे, उन्हें छोड़ कर सुरक्षाधिकारियों को नये काम सौंपे गये। हवाई अड्डे से सैण्टोर होटल का मार्ग सुरक्षित नहीं था—इस पर गोली अथवा हथगोलों से हमले का खतरा था। और कुछ नहीं तो भी भीड़ के इकट्ठा होने और रास्ता रोके जाने की सम्भावना थी—जिस पर वल प्रयोग करना पड़ता तो इस वात का राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर भारी प्रचार होता।

जिस ढंग से राज्य के महत्त्वपूर्ण मामलों को संभालने का यत्न किया जा रहा था, उनकी इन वातों से मुझे निराशा हुई। मैं इस वात से भी निराश था कि इस मामले में परिपक्व दृष्टिकोण का अभाव था। मुझे इस वात से भी निराशा थी कि किसी प्रकार राजनीतिक दलों का वास्तविक समस्याओं और उनके मूल कारणों से कोई लगाव नहीं था। क्या सतही भावनाओं पर चलने या पनपने वाला तन्त्र आतंकवाद से लड़ सकता था—जिस आतंकवाद के विषैले दांत दूर तक फैल चुके थे। इसका वर्णन अध्याय 10 में किया गया है।

रात के तीसरे पहर शिरोमणि शर्मा ने फिर फोन किया और वताया कि सम्भवतः राजीव गांधी भी इस दल में आ रहे हैं। पर इस समय तक गृह सचिव को यह पता नहीं था कि कौन और कितने व्यक्ति आ रहे हैं। खैर, हमें और अधिक सुरक्षा तथा अन्य प्रवन्ध करने पड़े।

प्रातःकाल हवाई अड्डे पर अप्रत्याशित रूप से लम्वा चौड़ा प्रतिनिधि मण्डल पहुंचा। इसमें उप-प्रधानमन्त्री देवीलाल के अतिरिक्त दो मन्त्री—रेल मन्त्री जार्ज फर्नाडीज और कानून मन्त्री दिनेश गोस्वामी भी थे। दूसरे विमान में वहुत से पत्रकारों और दूरदर्शन का दल भी आ पहुंचा। जव ये लोग सेन्टोर होटल जा रहे थे तो मेरे सलाहकार वेद मरवाह ने इस दल के लोगों के सम्वन्ध में मुझे वायरलेस से सूचना दी। मैं फौरन ही देवीलाल तथा अन्य लोगों से मिलने होटल गया।

इन लोगों के श्रीनगर पहुंचने की सूचना शहर में तेजी से फैल गई। वस्तुतः कुछ लोगों को इस सम्वन्ध में सूचना रात को ही मिल गई थी। नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं ने अपने कुछ मित्रों को फोन पर सूचना दे दी थी। वे दिन भर समिति के सामने कुछ गुटों को लाकर राज्यपाल प्रशासन को परेशानी में डालने की योजनाएं वना रहे थे, वे अधिक से अधिक अड़चनें और अपने को 'जुल्मशुदा' लोगों का मसीहा दिखाने और मनगढ़न्त दोपारोपणों का स्वांग रचने की योजनाएं वना रहे थे।

जिस वात का मुझे डर था, वही हुआ। सारा श्रीनगर शहर मस्जिदों में लगाये गये लाउड-स्पीकरों पर लगाये जाने वाले उत्तेजनात्मक नारों से गूंज उठा। लोगों को जवरदस्ती घरों से बाहर निकल कर यह कहने को मजबूर किया गया कि "भारतीय कुत्तो वापस जाओ।" तनाव वढ़ा और कानून तथा व्यवस्था विगड़ने की आशंका पैदा हो गई। व्यापक हिंसा भड़कने का खतरा पैदा हो गया। सख्ती से कर्फ्यू लागू करना पड़ा।

मैं उप-प्रधानमन्त्री से उनके होटल कक्ष में मिला। कुछ मिनट तक मैंने उन्हें स्थिति के सम्वन्ध में वताया। व्यापक मसलों के अतिरिक्त उनकी इन समस्याओं

में कोई रुचि नहीं दिखाई दी। वस्तुतः उन्हें इस कठिन समस्या का पूर्ण ज्ञान ही नहीं था। कुछ अन्य नेताओं के समान वे भी कुछ व्यक्तियों के मामले तक ही रुचि रखते थे। इसके बावजूद उनकी समझदारी की तारीफ करनी होगी। थोड़ी देर में दिनेश गोस्वामी भी उसी कमरे में आ गये और मेरी बातें सुनने लगे। उन्होंने भी कुछ सामान्य बातें पूछीं। जार्ज फर्नांडीज किसी को कुछ बताये बिना बाहर चले गये। मुझे उनके काम करने के ढंग पर आश्चर्य हुआ।

परेशानी की बात यह थी कि किसी को भी यह मालूम नहीं था कि क्या करना है। कुछ मन्त्री और दल के सदस्य चाहते थे कि राज्यपाल राज्य की स्थिति के सम्बन्ध में बतायें जबकि कुछ सदस्य जनता के प्रतिनिधि-मण्डलों से मिलना चाहते थे, कुछ नगर में जाकर स्थिति देखना चाहते थे। इस अनिश्चय ने मुझे और परेशान कर दिया।

मैंने उप-प्रधानमन्त्री को सुझाव दिया कि राज्यपाल से समिति के सभी सदस्यों को राज्य की स्थिति, विशेष रूप से राजनीति स्थिति की जानकारी देने को न कहा जाये। अच्छा यह होगा कि मैं आपको तथा मन्त्रियों को स्थिति की जानकारी दूं। उसके बाद आप लोग अन्य सदस्यों से बात कर लें। परन्तु कोई निश्चय नहीं हो पाया और इसी अनिश्चय की स्थिति में मुझे कान्फ्रेंस वाले कमरे में ले जाया गया।

जिस तरह की यह मीटिंग थी और जिस प्रकार के विषय पर उसमें विचार होना था, उसे देखते हुए उपस्थिति काफी अधिक थी। कांग्रेस (इ) के सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी। इसमें राजीव गांधी के अतिरिक्त शिवशंकर, एम० एल० फोतेदार, गुलाम नबी आजाद और मणिशंकर अय्यर भी थे। नेशनल कान्फ्रेंस के सांसद पी० एल० हाण्डू और मुहम्मद शफी बट भी थे। स्पष्ट था कि वे कांग्रेस (इ) की बात में बात मिलाने वाले थे। दोनों के विचार समान थे। फारूख अब्दुल्ला नहीं आये। मैं समझता हूं कि यह उनकी स्वभावगत विशिष्टता थी कि वह कोई ऐसी बात करेंगे और काम करेंगे जो सबसे अलग हो। मुझे पता चला कि वह दिल्ली हवाई अड्डे पर आये थे पर दल के साथ नहीं आये। सांसद सैफुद्दीन सोज श्रीनगर आये थे पर वह अलग चले गये थे। अनुमानतः वह और फर्नांडीज किसी अन्य योजना पर काम कर रहे थे। वातावरण अनिश्चय के कारण धूमिल और बोझिल था और असम्बद्ध बातों का जोर था।

दिसम्बर, 1987 के अनुभव के बाद मुझे उन मानव मूल्यों के प्रति अनास्था पैदा हो गई थी जिनसे राजीव गांधी का निर्माण हुआ था। उनका दुराग्रही स्वभाव और सुरक्षा के नियमों के प्रति उपेक्षा के साथ-साथ वायुसेना, नागरिक उड्डयन विभाग, सीमा सड़क संगठन और स्थानीय पुलिस अधिकारियों के प्रति उनका उपेक्षापूर्ण रवैया प्रकट हो चुका था। मैं हैरान था कि क्या भारत जैसे महान देश के प्रधानमन्त्री में यही बातें होनी चाहिए! इस बात ने मुझे कई दिन बेचैन रखा था। और 8 मार्च, 1990 को उन्होंने सैन्टोर होटल में जिस तरह का व्यवहार किया, उससे मुझे और भी धक्का लगा कि क्या देश का पूर्व प्रधानमन्त्री इतने गैर जिम्मेदाराना ढंग से व्यवहार कर सकता है और इस तरह की हरकतें कर सकता है। इनसे उनके और देश तथा उन जैसे विचारों तथा मूल्यों वाले लोगों का अनुमान किया जा सकता है जो उस समय के प्रमुख थे।

राजीव की मंशा पूरी न हो सकी

उस मीटिंग में क्या हुआ, इसे जानने के लिए उन पत्रकारों की रिपोर्ट पढ़ने से ज्यादा सही स्थिति मालूम होगी। 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने लिखा था :

"गुरुवार को इस कर्फ्यू ग्रस्त नगर में जो उच्चस्तरीय प्रतिनिधि मण्डल आया था उसमें तीखे आरोपों-प्रत्यारोपों के कारण लोगों से मिलकर घाटी की स्थिति पर विचार करने का ध्येय ही समाप्त हो गया। सबसे पहले पूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गांधी और भारतीय जनता पार्टी के नेता जसवन्त सिंह में भयंकर वाक्-युद्ध हुआ। इसके भड़कने का कारण यह था कि राजीव गांधी वार-वार राज्यपाल के विरुद्ध अपमानजनक वातें कहते रहे। उसके वाद राजीव गांधी और जगमोहन में वाक्युद्ध और कहासुनी हुई। राजीव गांधी ने होटल के कांफ्रेंस हाल में घुसते ही राज्यपाल के विरुद्ध अपमानजनक वातें कहनी आरम्भ कर दी थीं। उन्होंने राज्यपाल से कहा कि मैं कुछ लोगों से मिलना चाहता हूं अतः मुझे शहर से लाने का प्रवन्ध किया जाये। वह एक वात पर खास ध्यान दिलाना चाहते थे। उन्होंने कहा—"स्थानीय पत्रकार दिखाई नहीं दे रहे हैं। जगमोहन जी, क्या काश्मीर में अखवार नहीं छपते?" इस समय मुहम्मद शफी वट अपनी जगह से ही चिल्लाये : "गवर्नर ने सव कुछ वन्द कर दिया है।"

प्रायः शान्त रहने वाले जसवन्त सिंह अपने को संभाल न पाये और चिल्लाते हुए से राजीव गांधी से वोले—"आप हमें समाचार-पत्रों के वारे में सीख दोगे? चाहते हो तो खुद जाकर अखवार वालों से वात क्यों नहीं कर लेते।"

इतने पर भी राजीव गांधी चुप नहीं रहे और उन्होंने इस वात पर आपत्ति उठा दी कि उप-प्रधानमन्त्री देवीलाल को राज्यपाल के वाईं ओर विठा कर शिष्टाचार का उल्लंघन किया है, जवकि उन्हें राज्यपाल के दाईं ओर विठाना चाहिए था।

गांधी : कम-से-कम उप-प्रधानमन्त्री के प्रति उचित शिष्टता तो दिखानी ही चाहिए थी। यह राष्ट्र के सम्मान का प्रश्न है।"

जसवंत सिंह : अनेक संस्थाओं को हानि पहुंचाने के वाद अव आपको राष्ट्र के सम्मान की चिन्ता है? आपको राष्ट्र के सम्मान की वात नहीं करनी चाहिए।"

गांधी : मैं इस वात पर आपत्ति करता हूं कि उप-प्रधानमन्त्री को गलत तरफ विठाया गया हैं। इतना ही नहीं, राज्यपाल हवाई अड्डे पर उनकी अगवानी के लिए नहीं गये। वह मेरे उप प्रधानमन्त्री हैं, वह राष्ट्र के उप प्रधानमन्त्री हैं।"

जगमोहन ने स्पष्टीकरण दिया कि विमान के हवाई अड्डे पर आने तक उन्हें यह मालूम ही नहीं था कि शिष्टमण्डल में कौन-कौन हैं। उन्होंने कहा—"जब मुझे पता चला कि उप प्रधानमन्त्री भी आये हैं"···गांधी ने वीच में ही टोकते हुए कहा—"आपके सलाहकार वेद मरवाहा ने मुझे हवाई अड्डे पर वताया था कि हवाई जहाज के विमान तल पर उतरने से तीन मिनट पहले आपको सूचना दे दी गई थी कि उप-प्रधानमन्त्री भी आ रहे हैं।" वेद मरवाहा वहीं पर थे। उन्होंने कहा—"मैंने यह कहा था कि उप-प्रधानमन्त्री के आने की सूचना मुझे नहीं है।

इसलिए राज्यपाल यहा नही हैं ।"

इस जगह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सांसद विप्लवदास गुप्त ने टोकते हुए कहा—"यहां पत्रकारो की मौजूदगी मे हमें इस तरह की बहस मे नही पड़ना चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण और कायदे-कानून के बाहर है।" उन्होंने कहा राज्यपाल को इस तरह की बात गुप्त रखनी चाहिए थी।

इस पर पत्रकारो को हाल से बाहर जाने को कहा गया। बन्द कमरे मे फिर कटु नोक-झोक हुई। विश्वास किया जाता है कि श्री गाधी ने राज्यपाल से कहा—"जब मैं प्रधानमत्री था उस समय भी आप राज्यपाल थे। उस समय आपने धारा 370 के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा था क्या मैं उस रहस्य का उद्घाटन कर दू ?" जगमोहन : "आपने उस समय जो कुछ कहा था उसे भी मैं यहां बता सकता हू।"

राजीव गाधी ने उसके बाद पत्रकारो को बताया कि जगमोहन जो कुछ कर रहे हैं वह एक खतरनाक रास्ता है। कानून मंत्री दिनेश गोस्वामी ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा था कि कोई भी सदस्य गुप्त बैठक के सम्बन्ध मे पत्रकारों के सामने रहस्योद्घाटन नही कर सकता। इस मामले पर राज्यपाल भी अप्रसन्न थे। उन्होने कहा था—"जो बातें मैंने बताई थीं वे केवल प्रतिनिधि मण्डल के लिए थी। यह आश्चर्य की बात है कि जिन सदस्यो से मिलने के लिए राजीव गाधी ने उत्सुकता प्रकट की थी उनमें से जब कुछ व्यक्ति वहा पहुंचे तो उन्होने नेशनल कार्फ्रेंस के सासद सदस्य मुहम्मद शफी बट्ट पर राजीव गाधी का गुर्गा होने का आरोप लगाया।"

कुछ अन्य पत्रों की टिप्पणिया भी इसी प्रकार की थी। ट्रिब्यून ने लिखा था—

"राजीव गाधी तथा नेशनल कार्फ्रेंस के प्रतिनिधि बातचीत में अपने विरोधियो पर हावी होने का प्रयत्न करते रहे जबकि कुछ पत्रकारो ने अपने कर्फ्यू पास राजीव गाधी को देकर शहर मे जाकर लोगो से मिलने की बात कही तो उन्होंने उनकी बात पर कोई ध्यान नही दिया जबकि कुछ ही मिनट पहले वह इस बात पर असतोष प्रकट कर रहे थे कि उन्हे लोगो से मिलने का अवसर नही दिया जा रहा है !"

स्थानीय दैनिक पत्र काश्मीर टाइम्स ने लिखा था—

"असली मुसीबत उस समय आरम्भ हुई जब राज्यपाल जगमोहन ने काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध मे नेताओ को जानकारी देना प्रारम्भ किया। श्री गाधी ने उस समय आरोप लगाया कि जगमोहन ने उप-प्रधानमंत्री देवीलाल से शिष्टाचार-पूर्वक व्यवहार नही किया। उन्होंने क्रुद्ध होते हुए कहा था कि राष्ट्र के सम्मान को खतरा है। इससे उत्तेजित होकर जसवन्त सिंह ने कहा था कि राष्ट्र के सम्मान के सम्बन्ध मे सब लोग आपके विचारो को जानते हैं। जब श्री गाधी ने यह कहा कि मैं यह बात रिकार्ड करवाना चाहता हू कि उप प्रधानमत्री के प्रति शिष्टाचार का उल्लंघन किया गया है। तब जसवन्त सिंह ने पलटकर उसका जवाब दिया था, "हमें इस समय शिष्टाचार की बात को भूलकर अति महत्त्वपूर्ण कार्य, जिसके लिए हम यहा आये है, पर विचार करना चाहिए और अपना समय इन छोट-मोटे मामलों मे नष्ट करने की आवश्यकता नही।"

इस घटना को मैंने अपने शब्दों मे उल्लेख इसलिए नही किया कि मेरा इस

मामले से सीधे सम्बन्ध था कि मैं अपने सम्बन्ध में कोई पक्षपात न कर जाऊं। मैं यह पाठकों पर छोड़ता हूं कि वे स्वयं देखें कि आम सहमति के सम्बन्ध में राजीव गांधी की वात ढोंग अथवा दिखावा मात्र थी। इसका निर्णय वे स्वयं करें। क्या इस घटना से यह प्रकट नहीं होता कि उनके इरादे नेक नहीं थे। वह पहले ही इस वात का निश्चय करके आये थे कि मेरे प्रशासन के सम्बन्ध में काश्मीरी जनता के मन में शंकाएं पैदा की जाएं और हमारे मार्ग में कठिनाइयां। उनके गलत इरादे इस वात से और भी स्पष्ट हो जाते हैं कि अतिविशिष्ट व्यक्तियों के सम्बन्ध में वेद मरवाह ने उनकी वात का खण्डन किया। राजीव गांधी ने गवर्नर पर दोषारोपण जारी रखे, परन्तु यह नहीं वताया कि शिष्टाचार की कौन-सी वात का उल्लंघन हुआ। उन्होंने गृह सचिव शिरोमणि शर्मा और देवीलाल सम्बन्धी वास्तविक तथ्यों की पुष्टि करने का यत्न भी नहीं किया। सीमा मुस्तफा ने 11 से 17 मार्च, 1990 के 'सण्डे आव्जरवर' में अपनी टिप्पणियों में लिखा था—

"देवीलाल ने कहा था कि राज्यपाल हवाई अड्डे पर हमें विदा करने के लिये आये थे और उन्होंने वड़ी शालीनतापूर्वक व्यवहार किया। देवीलाल के कथनानुसार रात 12.30 वजे प्रधानमंत्री ने उनसे श्रीनगर जाने के लिए कहा था और इस वात की पूरी सभावना थी कि राज्यपाल को इस सम्बन्ध में कोई सूचना न हो और जहां तक राज्यपाल के दायीं ओर की वजाय वायीं ओर वैठने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में देवीलाल ने कहा था कि जव हम सव वैठे वात कर रहे थे तो राज्यपाल आये। तव उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं दूसरी कुर्सी पर वैठूं। परन्तु मैं चूंकि भारी-भरकम शरीर का हूं इसलिए मैंने उठने की कोशिश नहीं की और उन्हें वैठ जाने के लिए कहा और यह कोई सरकारी मीटिंग भी नहीं थी। इस मामले को जान-वूझकर तोड़ा-मरोड़ा गया है।"

यहां मैं फिर मूलभूत वातों के सम्बन्ध में ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जिनका अध्याय 9 और 15 में उल्लेख किया गया है। काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध में कठिनाइयों की ओर ध्यान न देते हुए मैंने दूसरी वार वहां का राज्यपाल होना स्वीकार किया था कि मेरा वहां के अनेक मुस्लिम लोगों से एक सम्पर्क कायम हो चुका था उन्होंने वड़ी दिलचस्पी और प्रेम से मेरा नाम जगवातल और सरकाराम रख दिया था। इन लोगों ने मुझे उस भयंकर स्थिति में उभरने में सहायता की थी। इसके सम्बन्ध में हिन्दुस्तान टाइम्स ने 19 जनवरी, 1990 को लिखा था—

"श्रीनगर के लोगों ने जगमोहन की दोवारा राज्यपाल के रूप में नियुक्ति का स्वागत किया था। वे उसके सम्बन्ध में वहुत ही उत्साहजनक रवैया रखते थे और उन्होंने उनके जगवातल और सरकाराम (स्थिति को साफ करने वाला व्यक्ति) आदि नाम रख दिये थे। उन्होंने यह नाम इसलिए रखे थे कि जगमोहन ने काश्मीरी जनता की स्थिति को सुधारने के लिए अत्यधिक उत्साह दिखाया था। जव लोगों ने दोवारा गवर्नर के रूप में नियुक्ति की वात सुनी तो खुशी में आतिशवाजी की गईं थी।"

अव वताइये कि गलती कहां हुई? किसने उनके लोकप्रिय व्यक्तित्व को हानि पहुंचाई? किसने लोगों की प्रसन्नता को समाप्त करने का प्रयत्न किया? और किसने सौहार्दपूर्ण वातावरण में विष घोला? इसमें सन्देह नहीं कि

पाकिस्तान समर्थक तत्वों का इसमें हाथ था, परन्तु वास्तविक हानि राजीव गांधी, फारूख अब्दुल्ला, उनके गुट तथा सहयोगी लोगों ने पहुंचाई।

विपक्ष के नेताओं को यह अधिकार होता है कि सत्ता में स्थित सरकार की असफलताओं का पर्दाफाश करें। परन्तु काश्मीर और उस समय की स्थिति को देखते हुए राजीव गांधी का व्यवहार बहुत ही अनुत्तरदायित्वपूर्ण था। इन लोगों ने राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाई। सर्वदलीय समिति की इस बैठक में उनका व्यवहार वैसा ही था जो वी० पी० सिंह सरकार बनने और मेरी नियुक्ति की घोषणा के बाद उन्होंने अपनाया था।

राजीव गांधी के आलोचनात्मक आरोपों की सच्चाई इस बात से प्रकट हो जाती है कि ये आरोप उन्होंने सर्वदलीय समिति के श्रीनगर जाने से पहले ही लगाने आरम्भ कर दिये थे। 6 मार्च, 1990 को उन्होंने कहा था कि प्रधानमंत्री वी० पी० सिंह को लिखा है कि वे राज्य सरकार के अधिकारियों से कहें कि स्वयं मेरे तथा कांग्रेस(इ) के नेताओं के लिए कर्फ्यू पास जारी करवायें ताकि हम श्रीनगर जा सकें। उन्होंने यह भी कहा था कि जब सर्वदलीय समिति काश्मीर समस्या पर विचार कर रही थी तो वी० पी० सिंह आराम से अपने घर में सो रहे थे। इस प्रकार की बातों में आम सहमति की भावना से कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसी बातें तोता रटंत की तरह भारतीय राजनीतिक स्थिति की वास्तविकता को समझे *बिना अन्य नेता भी बोल रहे थे।"*

सामान्य रूप से सभी समाचार पत्रों ने श्रीनगर बैठक के सम्बन्ध में राजीव गांधी के रवैये की आलोचना की थी। उदाहरण के लिए 9 मार्च, 1990 के स्टेट्समैन की टिप्पणी देखिए—

"राजीव गांधी आप पहले स्वयं स्थिति को बिगाड़ते हैं और उसके बाद आप तथा आपके साथी शहीद बनने का प्रयत्न करते हैं। तब आप अपने द्वारा उत्पन्न संकट पर विचार करने के लिए सरकार को विवश करते हैं। कल की सर्वदलीय समिति में आप और आपके साथी इस बात पर जोर देते रहे कि सर्वदलीय प्रति- *निधि मण्डल को घाटी का दौरा करना चाहिए। यह आप इसलिए कर रहे कि* आपने ही काश्मीर की स्थिति को इस हद तक पहुंचा दिया था जब आप सत्ता के शिखर पर थे। आपका वास्तविक प्रयत्न उस स्थिति की ओर से ध्यान बटाना था। आपने उप-प्रधानमन्त्री के रूप में देवीलाल की स्थिति के सम्बन्ध में जो *चिन्ता प्रकट की और राज्यपाल के प्रति जिस धृष्टता का* परिचय दिया उससे इस बात की पुष्टि होती है कि काश्मीर के सम्बन्ध में आपकी चिन्ता केवल दिखावा मात्र थी। मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि सीमा पार तथा उनके समर्थक घाटी के कुछ लोग पूर्व प्रधानमन्त्री की बातें सुनकर प्रसन्न हुए होंगे। राजीव गांधी आप अपना बचपना कब छोड़ोगे? अथवा वर्तमान प्रधानमंत्री उनके सहायक उपप्रधानमंत्री तथा गृह मंत्री को आप यह सुझाव क्यों नहीं देते कि आपके *किसी पसन्दीदा व्यक्ति को घाटी उपहार में क्यों न दे दी जाये।"*

काश्मीर की स्थिति से जब मैं सर्वदलीय समिति को अवगत करा रहा था तो मेरा प्रयत्न था कि विवादास्पद बातों से बचा जाये। परन्तु नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) के सदस्य इस बात का प्रयत्न कर रहे थे कि विवादास्पद मुद्दे उठाए जाएं। मैं उन बातों का उत्तर नहीं देना चाहता था। मैंने एक बार फिर

यह बात दोहराई कि मैं ये सब बातें उप-प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों को अलग से बता दूंगा और वे बाद में अन्य राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों से इस सम्बन्ध में बात कर लेंगे। इस सम्बन्ध में न तो मंत्रियों और न गृह मंत्रालय के अधिकारियों को स्थिति स्पष्ट थी कि प्रतिनिधियों को जानकारी देने के लिए क्या कसौटी अपनाई जाये। मेरी विवशता को ध्यान में रखते हुए मंत्रियों सहित सभी सदस्यों ने मुझे आश्वासन दिया था कि यहां होने वाली बातें गुप्त रखी जाएंगी।

इसी आश्वासन के आधार पर मैंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और प्रादेशिक तत्त्वों के सम्बन्ध में जो प्रच्छन्न अथवा प्रकट रूप से राष्ट्र-विरोधी काम कर रहे थे, स्थिति का विवरण दिया। मैंने उन्हें इस बात की आवश्यकता बताई कि उदार भावना वाले व्यक्तियों और परम्पराओं को बढ़ावा देने के साथ-साथ जमाइते-इस्लामी और पाकिस्तान समर्थक तत्त्वों, जिनमें रूढ़िवादी दल शामिल हैं, से दृढ़तापूर्वक पेश आया जाये। मैंने उन विकल्पों के सम्बन्ध में भी बताया, जिन पर भविष्य में काम किया जा सकता है। मैंने संक्षेप में उन कारणों पर भी प्रकाश डाला जिनकी वजह से मैंने विधान सभा को भंग किया था, जिसका अध्याय-11 में वर्णन किया गया है।

कभी-कभी समिति की बैठक में गरमा-गरमी पैदा हो जाती थी। राजीव गांधी अपने साथियों के परामर्श से मुझे मुस्लिम विरोधी करार देना चाहते थे। उनकी योजना यह थी कि मुसलमान नौजवानों से 1986 के शासन के समय जो मेरा सम्पर्क बना था और जो उन लोगों में काफी लोकप्रिय रहा था, वे उसे समाप्त करना चाहते थे। वे इस हद तक यह बात कहने के लिए उतारू थे कि पहले शासनकाल के समय मैंने 370 धारा के सम्बन्ध में क्या सुझाव दिये थे। यह बहुत ही संवेदनशील विषय था। उनका विचार था कि वे घाटी के मुसलमानों पर यह प्रकट कर दें कि मैं 370 धारा को जारी रखने के पक्ष में नहीं हूं। वह उन्हें यह बात नहीं बताना चाहते थे जो मैंने इस विषय के सम्बन्ध में उनसे कही थी। क्योंकि इसका सम्बन्ध राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे के सुधार से था। मैंने उस समय यह प्रमाण दिया था कि स्वार्थी तत्त्व सत्ता में बने रहने के लिए तथा आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए धारा 370 का दुरुपयोग कर रहे हैं। तब मैंने इस बात पर जोर दिया था कि गरीब काश्मीरियों के हित में इस धारा को समाप्त कर दिया जाये। परन्तु राजीव गांधी का हित सत्य पक्ष उजागर करने में नहीं था। वे काश्मीरी जनता में मेरी स्थिति को गिराना चाहते थे और इस सम्बन्ध में उनको सफलता भी मिली। प्रादेशिक भाषाओं के स्थानीय पत्रों ने धारा 370 के सम्बन्ध में मेरे विरोध को प्रकट करने के लिए अनेक कहानियां गढ़ीं। उस समय अनेक अफवाहें फैलीं जिनसे मेरी स्थिति कमजोर हुई, जबकि उसे सशक्त बनाने की आवश्यकता थी।

सर्वदलीय समिति की बैठक सायं काल 3.45 तक चली। अधिकांश समय के लिए वक्ता मैं ही था। मुझे इस बात से बहुत ही निराशा हुई कि समिति के अनेक सदस्यों का विचार दलगत राजनीति में था जबकि वे बहुत जल्दी में एक राष्ट्रीय आम सहमति बनाने के लिए श्रीनगर आये थे। मुझे बार-बार इस बात का एहसास होता रहा कि हम लोग किस स्थिति तक नीचे गिर चुके हैं। सचाई, निष्ठा, न्याय और राष्ट्र की उन्नति दलगत राजनीति के कारण नष्ट की जा

रही है। दुर्भाग्य यह था कि यह सब कुछ महात्मा गांधी के उस देश में हो रहा था जहां उनका विश्वास था कि "सिद्धांत-विहीन राजनीति मौत के फन्दे के समान है जिससे राष्ट्र की आत्मा का हनन होता है।"

दोपहर का भोजन 4 बजे हुआ और उसमे पत्रकार भी सम्मिलित थे। सबने देखा कि राजीव गांधी उनसे बात कर रहे थे। मुझे पता चला कि यह बातचीत अभी हुई मीटिंग के सम्बन्ध मे थी जिसके सम्बन्ध में गुप्त रखने का आश्वासन दिया गया था। अगले दिन जो कुछ समाचार पत्रों में छपा वह मेरी आशंकाओं के अनुरूप था। वस्तुत. सब कुछ तोड़-मरोड़कर उन्हें बता दिया गया था।

गुलाम नबी आजाद और एम० एल० फोतेदार कोने की एक मेज पर बैठे खाना खा रहे थे। आपसी अभिवादन के बाद उनसे मेरी बातचीत प्रारम्भ हुई। आजाद ने कहा—हमे आप पर रहम आ रहा है। पहली बार के राज्यकाल मे आपने बहुत बढ़िया काम किया था। जनता आपको बड़े चाव से याद करती रही। उन्होंने आपको गरीबो का मसीहा समझा और वे आपके नाम से कसमें खाने लगे। परन्तु आज वे ही आपके खून के प्यासे बन गये।" "आप लोगो का कहना ठीक है," मैंने कहा—"यह मेरी बदकिस्मती है कि मैं ऐसी स्थिति में यहां पर आया जब मेरे सामने ऐसा कुछ करने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। सबसे पहले हमें काश्मीर को बचाना है। यदि आदमी का सम्मान चला जाता है तो उसे प्राप्त करने के लिए बाद मे भी प्रयत्न किया जा सकता है। इस समय प्रमुख सवाल यह है कि क्या मैं लोकप्रियता का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए काम करू अथवा काश्मीर को गहरे गर्त मे गिरने से बचाऊ ? मुझे यह समझ में नही आता कि आपके दल के सदस्य मुझ पर गलत आरोप मढ़ने का क्यो प्रयत्न कर रहे हैं। आप और आपकी पार्टी मुझे भली प्रकार जानती है। फिर भी आप लोग मुझ पर गलत दोषारोपण क्यो कर रहे हैं। उस समय चाहे मैं दिल्ली में था गोआ अथवा काश्मीर मे, मैं आपके लिए एक हीरे के रूप मे था। अब मैं आपकी नजरो में बिलकुल नकारा, मुस्लिम विरोधी और काश्मीर विरोधी बन गया हूं और कम्युनिस्ट पार्टी तथा मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने 1986 के बाद से मेरे विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा। जब 1980-84 मे मैं दिल्ली मे उप-राज्यपाल था तो उनके कार्यकर्ता मुझे घेरे रहते थे और उनके समाचार पत्र मेरे प्रशंसक बन चुके थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैंने मण्डी गाव मे गरीब किसानो के हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न किया, जिन्हे शक्तिशाली भूमि समर्थक तत्त्वों ने उन्हे अपने अधिकारों से वंचित कर रखा था, तो उन्होंने मेरी कितनी प्रशंसा की थी। आज यह अचानक मुझे विवादास्पद व्यक्ति कहने लगे हैं। मुझे गलत दोषारोपणो से जितना दु ख होता है उतना अन्य किसी बात से नहीं। यह बिलकुल वैसी ही बात है कि कही तेल गिर जाये उसे वहा से साफ कर देने के बाद भी उसके निशान नहीं मिटते। यदि मेरी नियुक्ति पर आपको कोई आपत्ति थी तो नियुक्ति की घोषणा पर ही आप लोगो को चाहिए था कि मुझे टेलीफोन करते तो नियुक्ति स्वीकार करने से पहले मैं उस पर कई बार विचार करता। अब मैं यहां आ चुका हू और यहा की गम्भीर स्थिति के सम्बन्ध मे सब कुछ अच्छी तरह जानता हूं। यदि मैं 26 जनवरी के दिन स्थिति को न संभालता तो

उस समय क्या होता यह, यह वात भली प्रकार स्पष्ट है। अव मैंने सारे संकट उठाकर अनेक कठोर कार्य किये हैं, इसलिए मैं काश्मीर को तव तक नहीं छोड़ सकता जव तक उसे राष्ट्र की मुख्य धारा में पूरी तरह वापस लाने का प्रयत्न न करूं। इस वात के अतिरिक्त मेरा और कोई ध्येय नहीं। मैं किसी प्रकार का वेतन आदि नहीं ले रहा हूं। धमकियां मिल रही हैं। मेरे परिवार के सदस्यों का सामान्य जीवन अस्त-व्यस्त हो चुका है। पहले जैसी कोई वात नहीं रही है।"
आजाद ने कहा – "अच्छा हम सोचेंगे।" हम सव मुस्कराते हुए एक-दूसरे से जुदा हुए।

मैंने उन्हें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राज्य में काम कर रहे धार्मिक तत्त्वों के सम्बन्ध में बता दिया है। मैंने उन्हें यह भी बताया कि एक स्वच्छ प्रशासन की यहा आवश्यकता है और जन प्रेरित विकास कार्यों की भी। इस सम्बन्ध मे विवरण अभी नही दिया जा सकता। मैंने इस विश्वास के आधार पर सदस्यों को यह बातें बताई थी कि वे इन्हें कहीं अन्यत्र प्रकट नहीं करेंगे।

समाचार-पत्रो ने कानून मंत्री के वक्तव्य के आधार पर अगले दिन प्रमुख शीर्षकों से यह समाचार छापा कि केन्द्रीय सरकार जंगजू लोगों से बातचीत करने का इरादा रखती है। चूंकि इस बात का गलत प्रभाव पड़ना था, इसलिए भारत सरकार ने अगले दिन इस समाचार का खण्डन किया।

होटल की लॉबी के एक कोने मे बैठा मैं अधिकारियो से बात कर रहा था तो मुझे होटल के दूसरे भाग से नारे सुनाई दिये। हमने वहां जाकर देखा कि राजीव गाधी और नेशनल कान्फ्रेंस के सासद बट व हाण्डू के विरोध में लोग नारे लगा रहे थे। पूछताछ पर पता चला कि बट राजीव गाधी के पास कुछ ऐसे लोगों को लाये थे, जिन पर उन्हें विश्वास था कि वे उनके समर्थक हैं। परन्तु इसके विपरीत उन्होंने अपना गुस्सा उन्ही पर प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा—"तुम हमारे कब से प्रतिनिधि बन गये। हमने तुम्हे कभी नही चुना। तुम्हे हमारा प्रतिनिधि कौन मानता है। तुम यहा किसी को शक्ल दिखाने के काबिल नही हो। तुम नयी दिल्ली के अपने आरामदेह बंगलो मे बैठकर बयान जारी कर देते हो और समझते हो कि इस तरह हमारी समस्या हल हो जाएंगी। तुम्हारी यही करतूत है। तुम किसे बेवकूफ बनाने आये हो।"··· "और राजीव गांधी जब तुम नयी दिल्ली मे सत्ता संभाले हुए थे तो तुम एक बार भी यहा नही आये, तुम तो यही समझते थे कि तुम्हारा राजकुमार फारुख तुम्हारे नाम से यहा राज चला रहा है। वह मौज-मजे मारने वाला और गोल्फ खेलने वाला राजा है। वो हमे उल्लू बनाता रहा है। उसने हमसे चालें खेली हैं। उसने हमें अपनी इच्छा के अनुरूप हलाल किया है। आज तुम हमारे लिए दिखा-वटी आसू बहा रहे हो। हमारी नजरो से दूर हो जाओ। ओ मोटे-भद्दे आदमी बट हम तुमसे नहीं मिलना चाहते।" इसके बाद उन लोगों ने नारे लगाये, "भारतीय कुत्तो वापस जाओ।" होटल के कर्मचारी भी नारे लगाने मे उनके साथ शामिल हो गये।

समाचार पत्रों मे इसी प्रकार की बातें छपीं, उदाहरण के लिए *काश्मीर टाइम्स* ने जो कुछ लिखा, वह इस प्रकार है—

"जब मुहम्मद शफी बट ने उन लोगो से कुछ कहना चाहा तो उन्होंने यह कहते हुए उसे टोका, "तुम हमारी ओर से बोलने वाले कौन होते हो? तुमने हमे धोखा दिया है। हमने लोक सभा के लिए तुम्हें कभी नही चुना।" इस स्थिति पर राजीव गाधी ने इस बात का खुलासा दिया कि हमने काश्मीर के लोगों की भलाई के लिए एक समझौता किया है। इस पर आने वाले लोगो ने टोककर उन्हें कहा—"तुम्हारा समझौता केवल फारुख अब्दुल्ला से हुआ है।" जब माखनलाल फोतेदार, गुलाम नबी आजाद और पी० एल० हाण्डू ने उन विक्षुब्ध सदस्यों को शात करने का प्रयत्न किया तो उन्होंने उलटा उन्हीं पर प्रश्न किया कि दिल्ली के एयर कंडीशंड कमरो मे बैठकर काश्मीर की स्थिति और यहा के लोगो के हालात

बारे में तुम्हें क्या पता चल सकता है। तुमने अपने शासनकाल में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। उन दिनों कोई भी विकास कार्य नहीं हुआ। केवल कुछ परिवारों ने ही दौलत बटोरी। तुम हमसे किस विषय पर बात करना चाहते हो।" आये हुए लोगों ने फिर नारे लगाने शुरू किये—

"भारतीय कुत्तो वापस जाओ। हमें आजादी चाहिए।"

काश्मीरी पण्डितों का एक शिष्ट मण्डल उप-प्रधानमंत्री और केन्द्रीय कानून मंत्री से मिलने आया। उसके दो प्रमुख सदस्य एच० एन० जत्तू और सप्रू थे। उन्होंने अपने कष्टों की कहानी सुनाई। "पिछले एक साल से लगातार हम डर और मौत के साये में जी रहे हैं। 1989 के बाद से हमें कत्ल किया जा रहा है और हमें पूरी तरह समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारे बहुत से लोग घर छोड़कर चले गये हैं। हमारी चीख-पुकार न केन्द्र सरकार ने सुनी है और न राज्य सरकार ने।" जत्तू और सप्रू इतने भावुक हो उठे कि उनके आंसू निकल पड़ें। सारा वातावरण और भी कष्टप्रद हो उठा।

होटल के दो बैरे उस समय लोगों को चाय पिला रहे थे। मैंने अनुभव किया कि वे काश्मीरी पण्डितों की बात को बहुत ध्यानपूर्वक सुनने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैंने अनुभव किया कि उनकी जान खतरे में पड़ जायेगी। इसीलिए मैंने पुलिस महानिदेशक से उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में परामर्श दिया। उसके उत्तर में पुलिस महानिदेशक ने मुझे बताया कि गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट से पता चलता है कि यदि जत्तू और सप्रू घाटी से बाहर नहीं चले गये तो उन्हें कत्ल कर दिया जायेगा। उसी रात सप्रू को बुरी तरह पीटा गया और उन्हें सिविल अस्पताल में दाखिल किया गया। उनकी सुरक्षा के विचार से उसे जम्मू के सेना के अस्पताल में भेज दिया गया। काश्मीर में रहकर दुःख-तकलीफ को बताने का मतलब अपनी मौत को बुलाना था।

अगले दिन मैं उप-प्रधानमंत्री और प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों को हवाई अड्डा ले जाने के लिए सेण्टोर होटल गया। जब मैं होटल के पोर्टिको में पहुंचा तो वहां मुझे काफी भीड़ दिखाई दी। वह काफी उत्तेजित थी। मैंने देखा कि नेशनल कांफ्रेंस के सांसद शफी बट एक और ड्रामा करने जा रहे हैं। एक ड्राइवर को, जिसके बारे में यह कहा गया कि उसे केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल ने पीटा है, होटल लाया गया था। वे देवीलाल और राजीव गांधी को यह दिखाना चाहते थे कि अर्ध सैन्य बल किस तरह जुल्म ढा रहे हैं और जिसके प्रतिरोध में राज्य सरकार के वाहनों के ड्राइवरों ने हड़ताल कर दी है। जब मुझे यह मामला बताया गया तो मैंने जांच-पड़ताल की बात कही क्योंकि मैं इस सम्बन्ध में कोई तर्क-वितर्क नहीं उठाना चाहता था। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के अधिकारी ड्राइवर के इस स्वांग में बहुत दुःखी थे, परन्तु मैंने उन्हें शांत रहने का परामर्श दिया। मेरा ध्येय यही था कि स्थिति बिगड़ न जाये।

स्थिति में एकाएक परिवर्तन

समिति के सदस्य कारों में बैठ ही रहे थे कि केन्द्रीय गृह सचिव ने मुझे बताया कि वे लोग जम्मू नहीं जा रहे हैं, सीधे दिल्ली जायेंगे। मैंने अनुमान

लगाया कि इससे जम्मू के लोग क्षुब्ध होंगे और वे अनुभव करेंगे कि समिति के लोगों को हमारे मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं। जब मैंने गृह सचिव से एकाएक इस परिवर्तन के बारे मे पूछा तो उन्होंने बताया कि राजीव गांधी और उप-प्रधानमंत्री में कुछ बात हुई है और उसके बाद जम्मू जाने का प्रोग्राम रद्द कर दिया गया। परिणामत इस परिवर्तन का कारण यह था कि राजीव गांधी, उनके कांग्रेसी साथियों तथा नेशनल कांफ्रेंस के सदस्यों को किसी विक्षोभ का सामना [illegible] और राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के सामने कठिन स्थिति पैदा करना था। उनका यह ध्येय सिद्ध हो चुका था।

राज्यपाल और उनके सलाहकार और राज्य अधिकारियों को बिना बताये कार्यक्रम परिवर्तन का कुछ भी कारण रहा हो परन्तु यह बात दुर्भाग्यपूर्ण थी। इससे जम्मू के लोग विक्षुब्ध हो उठे और जम्मू के अधिकारियों के सामने कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा हो गई। काश्मीर से अपने घरबार छोड़कर आने वाले लोगों ने इसे कायरतापूर्ण कहा और राजीव गांधी तथा फारूख अब्दुल्ला के खिलाफ नारे लगाते हुए सड़कों पर प्रदर्शन किया। जम्मू के 100 से अधिक वकीलों ने इस अवहेलना की आलोचना करते हुए एक बयान दिया। तनाव बढ़ गया। मैंने जम्मू के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके उनसे कहा कि वे मेरी ओर से जनता को शांत रहने की अपील करें। स्थिति को नियन्त्रण से बाहर नहीं होने दिया गया।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि घाटी मे जो घटनाएं हो रही थी उनकी प्रतिक्रिया के अनुरूप जम्मू और लद्दाख में मैंने विस्फोटक स्थिति नहीं होने दी। इस बात को लोगों ने नहीं समझा। अपने पुराने सम्बन्धों तथा दोनों क्षेत्रों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण तथा अनेक मामलों में जिनमे विकास कार्य भी सम्मिलित थे, जम्मू के सम्बन्ध मे मैंने अनेक कदम उठाये थे। इन्ही कारणो से मैं वहा उत्पन्न तनाव को नियन्त्रण में रख सका। उदाहरण के रूप में 20 जनवरी को बानिहाल पर खराब मौसम के कारण मैं हैलीकाप्टर द्वारा श्रीनगर नही जा सका और मुझे जम्मू रुकना पड़ा तो मैंने कुछ क्षेत्रों के दौरे का कार्यक्रम बनाया ताकि 1986 में चलाई गई विकास योजनाओं को फिर से चालू किया जाये जिनकी तरफ से मन्त्रिमण्डल ने अब तक उपेक्षा बरती थी। इन योजनाओ मे तवी नदी के क्षेत्र का विकास, हवाई अड्डा मार्ग का निर्माण और महामाया सिटी फारेस्ट आदि की योजनाएं थी। जम्मू के लोगों को यह विश्वास हो गया कि विकास कार्य फिर तेजी से चालू हो जायेंगे। उन्हें आशा हुई और दिसम्बर, 1989 और जनवरी, 1990 के प्रारम्भ में श्रीनगर की घटनाओं से उन्हें जो विक्षोभ पैदा हुआ था वह शात हो गया। यदि तीनों क्षेत्र एक समय में अशात हो जाते तो यह स्थिति बहुत विस्फोटक हो सकती थी। इसका असर राज्य पर ही नहीं सारे देश पर हो सकता था।

कांग्रेस (इ) और नेशनल कार्फ्रेंस के रवैये के कारण उनके अपने आदमी भी खिन्न हुए। मेजर जनरल (अवकाश प्राप्त) बी० एन० धर ने त्याग पत्र दे

दिया। वे राष्ट्रीय मोर्चा के नेता थे और अवकाश प्राप्त सैन्य संगठन के अध्यक्ष भी थे। उन्होंने घाटी की स्थिति के लिए नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) को दोषी वताया जिसके कारण काश्मीरी पण्डितों को अपने घर वार छोड़ने पड़े थे। उनका कहना था कि वे लोग मेरे कारण ही वर्तमान स्थिति में एक आशा का सन्देश देखते हैं।

श्रीनगर हवाई अड्डे पर भी हमें मुश्किल का सामना करना पड़ा। जव सारे सदस्य हवाई अड्डा पहुंच गये और उपप्रधानमंत्री तथा राजीव गांधी अन्य सदस्यों के साथ विमान पर सवार हो गये तो हमने देखा कि पत्रकारों वाली वस अभी नहीं पहुंच पाई थी। हमने सुरक्षा की दृष्टि से एक ही काफिला वनाया था और उसकी सुरक्षा के प्रवन्ध किये थे। पत्रकारों वाली वस के न आने मे मुझे चिन्ता हुई क्योंकि उसके पहुंचने में उचित समय से अधिक देर लग गई थी। मेरी चिन्ता भय में वदल गई, मैंने और पुलिस महानिदेशक तथा अन्य प्रमुख अधिकारियों ने वस को ढूंढ़ने का वेहद प्रयत्न किया। काफी देर के कष्टप्रद समय के वाद पता चला कि जार्ज फर्नांडीज ने एकाएक पत्रकार सम्मेलन के लिए वस को रोक लिया था। ये सारी वातें वेतरतीव ढंग से आपसी परामर्श के विना की जा रही थीं। जव दोनों विमान उड़ान भरकर आकाश में उड़े तो हमने चैन की सांस ली। हालांकि अपने पीछे असमंजस और विपरीत वातों की एक शृंखला छोड़ गये थे। जार्ज फर्नांडीज ने किसी को वताये विना अपना कार्यक्रम वदल दिया था।

दौरे के परिणाम

इस सर्वदलीय समिति के दौरे के परिणाम भयंकर थे। मैंने राज्य विधान सभा को भंग करके प्रशासन तंत्र को ठीक करने के वाद जो स्वच्छ और कठोर अनुशासन के आधार पर मार्ग तैयार किया था, उसको हानि पहुंची। इससे पाकिस्तान समर्थक और काश्मीर को अलग करने वाली शक्तियां इकट्ठी हो गईं और उन्होंने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। भावनाओं और वास्तविक विरोध को जाने विना लगाये गये नारों के कारण उनका उत्साह वढ़ा। जो युवक मेरे कार्यों के प्रति आशावान थे उन्हें धक्का लगा। मेरी पांचों योजनाएं जिनके सम्वन्ध में मैंने इस अध्याय के प्रारम्भ में वताया है, छिन्न-भिन्न हो गईं। स्थिति पर काबू पाने का वातावरण दूषित हो गया। प्रतिनिधिमण्डल के इस दौरे से काश्मीरियों को यह भी प्रकट हो गया कि केन्द्र सरकार पूरी तरह से मेरी पीठ पर नहीं है। इससे राष्ट्र की भ्रमपूर्ण स्थिति का प्रदर्शन हुआ। घोषित आम राय प्राप्त करने के ध्येय के ढोंग का पर्दाफाश हुआ। इससे यह भी प्रकट हुआ कि अधिकांश राजनीतिक दल काश्मीर की वास्तविक कठिनाइयों को नहीं समझते और जानना भी नहीं चाहते।

राजीव गांधी ने जो हानि पहुंचाई थी उसकी कोई पराकाष्ठा नहीं थी। उन्होंने वास्तव में एक विघटनकारी का-सा काम किया था। जैसा कि स्टेट्समैन ने अपने समाचार में लिखा था कि उनकी आलोचनाओं का असर जंगजुओं को जगमोहन विरोधी संघर्ष के लिए उत्साहित करना था। निखिल चक्रवर्ती ने

11 मार्च, 1990 के लेख में राजीव गांधी के कार्य को राष्ट्र विरोधी बताया। संडे मेल के लेख में गिरिलाल जैन ने राजीव गांधी के व्यवहार को अत्यन्त निन्दनीय बताया था। इण्डियन एक्सप्रेस ने 14 मार्च को अपने संपादकीय में बड़े स्पष्ट शब्दों मे राजीव गांधी के अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की निन्दा की थी। उसने लिखा था—"सर्वदलीय समिति के कांग्रेस (इ) और नेशनल कांफ्रेंस के सदस्यों ने अवसरवादिता का प्रदर्शन किया है। इससे स्पष्ट है कि ये देश के हित की बजाय व्यक्तिगत और राजनैतिक लाभ की दृष्टि से सोचते हैं। आशा है कि वे इस समिति को अपने स्वार्थ के लिए और घाटी को बचाने के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनमे रुकावट बनने के लिए नही करेंगे।"

श्रीनगर आने वाले अन्य राजनैतिक दलो के सदस्यों ने भी राजीव गांधी के रवैये की निन्दा की। 10 मार्च को सैफुद्दीन चौधरी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के विप्लवदास गुप्ता, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के ए० एस० फारुखी और ए० एस० मल्होत्रा तथा भारतीय जनता पार्टी के जसवंत सिंह और केदारनाथ साहनी ने एक संयुक्त वक्तव्य मे कहा श्री गाधी ने आम सहमति की बात को भंग किया है और गुप्त रूप से जिन बातो पर मीटिंग में विचार हुआ था उन्हे समाचार-पत्रों को बताया है। इससे दौरे का लाभ ही समाप्त हो गया। इस प्रकार के रवैये की हम भर्त्सना करते हैं।

समाचार पत्रों के संपादकीय और राजनीतिक नेताओ के बयानों से काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध मे मुझे कोई सहायता नही मिली। जो हानि होनी थी वह हो चुकी थी। मेरे प्रति आक्रामक रवैया भडकाया गया था। सन्देह पैदा किये गये और सहानुभूतियुक्त प्रशासक के रूप में मेरे व्यक्तित्व को हानि पहुचाई गई थी। मेरी पूर्व सेवाओं के प्रति काश्मीरियो के दिल में जो एक भावना थी उसे नष्ट कर दिया गया था। यह सब कुछ राजीव गांधी, कांग्रेस (इ) के उनके समर्थकों और नेशनल कांफ्रेंस वालों ने किया। आम सहमति प्राप्त करने और देश के सामने प्रमुख चुनौतियो, उसकी एकता और अखण्डता को बनाये रखने के लिए आम सहमति बनाने के लिए उनका यही तरीका था। मेरी पीठ में अथवा छाती मे छुरा घोंपना कोई महत्व नही रखता यद्यपि उनका यह कृत्य गलत, अनैतिक और अतार्किक था। जिस बात का महत्व था वह यह थी कि उन्होंने काश्मीर की स्थिति को बिगाडा। स्पष्ट शब्दो मे बुझती हुई चिन्गारी पर उन्होने तेल डाला।

अगले दिन जार्ज फर्नांडीज राजभवन मे मुझसे लिए आये। उन्होंने बातचीत मे मेरे प्रति बहुत सहानुभूति दिखाई और मेरे कार्यों को उत्साहजनक, स्पष्ट और सही बताया। काश्मीर सम्बन्धी मामलो के मन्त्री बनने से पहले उन्होंने समाचार-पत्रो से कहा था कि मैं बहुत विकट काम को हाथ मे किये हुए हूं। मेरे काम को 10 मार्च, 1990 को इण्डियन एक्सप्रेस मे उन्होंने प्रशंसापूर्ण बताया था और कहा था कि राज्यपाल को काफी कठिन कार्य दिया गया है। मैं समझता हूं कि ऐसा कठिन काम देश में अन्य किसी अन्य व्यक्ति के पास नहीं है, जो जगमोहन को सौंपा गया है। कुछ अन्य समाचार पत्रो मे भी उन्होंने कहा था कि राज्यपाल जगमोहन स्थिति के अनुरूप बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। उन्होने राजीव गांधी

के रवैये को उत्तरदायित्वहीन बताया था। उन्होंने कांग्रेस (इ) पर यह दोषारोपण किया था कि वे मेरे सम्बन्ध में गलत सूचनाएं और अफवाहें फैला रहे हैं। उन्होंने यह प्रकट किया था—

"···कि दिल्ली में अनेक दलों की सभा में कांग्रेस (इ) के प्रतिनिधिमण्डल के एक सदस्य ने एक मनगढ़न्त कहानी कही थी जिसमें यह बताया गया था कि जगमोहन मुसलमानों के प्रति घृणापूर्ण रवैया रखते हैं। इस मनगढ़न्त कहानी के सम्बन्ध में फर्नांडीज ने बताया था कि हिन्दू के वेश में चार मुसलमान युवक जगमोहन से मिले और उन्हें घाटी के सशवत जंगजुओं द्वारा हिन्दुओं को सताये जाने की शिकायत की। इसमें आगे बताया गया था कि जगमोहन ने क्रुद्ध होकर यह कहा था कि वह मुसलमानों को सबक सिखायेंगे और उनके विरुद्ध उन्होंने कुछ अपमानजनक बातें भी कही थीं। वापस लौटकर इन युवकों ने राज्यपाल के व्यक्तिगत टेलीफोन पर कहा कि वस्तुतः वे मुसलमान थे और वे उनके (जगमोहन)

10 मार्च, 1990 को शाम के समय मुफ्ती मुहम्मद सईद ने मुझे टेलीफोन किया। उन्होंने बताया कि प्रधानमंत्री के निवास पर एक बैठक हो रही है और काश्मीर सम्बन्धी मामलों के लिए तीन सलाहकारों सहित, जिनमे राजनीतिक सलाहकार भी होगा, एक मंत्री बनाने पर विचार किया जा रहा है। मैं पूरी तरह से नही समझ सका कि इस सबका क्या मतलब था। मुझ पर यह भी प्रकट नही किया गया कि वह इस सम्बन्ध मे मेरे विचार जानना चाहते हैं या मेरा सुझाव चाहते हैं। परन्तु मैं इस सम्बन्ध मे कोई स्पष्टीकरण नही चाहता था। सर्वदलीय प्रतिनिधि मण्डल ने मुझे विचलित कर दिया था और मैं त्यागपत्र देने की बात सोच रहा था। मैंने उन्हें केवल यही उत्तर दिया कि वे जो ठीक समझें करें। जो भी हो उच्चस्तरीय अनिश्चय और परस्पर विरोधी बातों की यह एक उपज थी। इससे गृहमंत्री और राज्यपाल की स्थिति को हानि पहुंचानी थी और उनके आपसी तालमेल के लिए समस्याएं पैदा होती थी।

अगले दिन 11 मार्च को काश्मीर सम्बन्धी मन्त्री मनोनीत करने की घोषणा की गई। इस सम्बन्ध मे कोई विवरण नही दिया गया कि उसकी स्थिति क्या होगी और वह क्या कार्य करेगा। इस बात की घोषणा की गई कि सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक परामर्शदात्री समिति उनकी सहायता करेगी। बाद मे इस समिति की घोषणा कर दी गई जिसमे जनता दल के सुरेन्द्र मोहन, कांग्रेस (इ) के गुलाम रसूल-कार और भाजपा के केदारनाथ साहनी, कम्युनिस्ट मार्क्सवादी पार्टी के सैफुद्दीन चौधरी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के एम० फारूखी और नेशनल कांफ्रेंस के पी० एल० हाण्डू थे।

इस कमेटी से सहयोग मिलने की कोई उम्मीद नही थी। नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस (इ) के इरादे ही गलत थे। जब भी कभी अवसर आया उन्होने सरकार को संकट में डालने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए 13 मार्च को लोकसभा में काश्मीर की स्थिति पर बोलने के लिए गृह मन्त्री मुफ्ती मुहम्मद सईद खड़े हुए तो नेशनल कांफ्रेंस के सैफुद्दीन सोज ने उस पर आपत्ति की। उन्होंने कहा कि अब काश्मीर सम्बन्धी मामलों के लिए जार्ज फर्नांडीज को मन्त्री बना दिया गया है तो मुफ्ती को इस विषय पर बोलने का अधिकार नही जबकि सोज यह अच्छी तरह जानते थे कि कोई भी मन्त्री सरकार की तरफ से बोल सकता है। परन्तु उनका ध्येय विशेष रूप से काश्मीर के लोगों में उनकी स्थिति को कम करके दिखाना था।

कांग्रेस (इ) और नेशनल कांफ्रेंस के सदस्यों ने कामो को और भी बिगाड़ा। गुलाम रसूल कार और पी० एल० हाण्डू घाटी और जम्मू क्षेत्र के लिए अभिशाप सिद्ध हुए। जम्मू के लोग जार्ज फर्नांडीज को मन्त्री बनाने और परामर्शदात्री समिति की नियुक्ति पर क्रुद्ध हुए। इसके विरोध में जुलूस निकाले गये और यह मांग की गई कि काश्मीर के मामलों मे राज्यपाल को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाए। इस समिति मे कार और हाण्डू के होने से उनका क्रोध और भी बढ़ा। 17 मार्च को पहली बार जब यह परामर्शदात्री समिति जम्मू आई तो यह बात प्रकट हुई। लोगो ने इसके विरुद्ध प्रदर्शन किये। इस पर समिति के अन्य सदस्यो ने सोचा

कि काश्मीरी शरणार्थियों के कैंप में इन दोनों को ले जाना ठीक नहीं रहेगा। अपने घर छोड़कर आये हुए घाटी के लोगों ने धरना दिया और कहा कि हम इस कमेटी को स्वीकार नहीं करते। इसका ध्येय केवल राज्यपाल जगमोहन के लिए कठिनाइयां पैदा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जगमोहन ने काश्मीर घाटी में शांति और सामान्य स्थिति को बनाने की चुनौती को स्वीकार कर लिया है। व्यापारियों, उद्योगपतियों, शिक्षाविदों, वकीलों और समाजसेवी संगठनों ने परामर्शदात्री समिति से यह कहा कि वर्तमान स्थिति में राजनीतिक प्रक्रिया चालू करना घाटी में प्रशासकीय सत्ता स्थापित करने के मांग में रुकावट सिद्ध होगी।

इस प्रकार मेरे लिए सामना करने के लिए एक और मोर्चा खोल दिया गया था। विश्वनाथ प्रताप सिंह में कोई पहल करने की जुर्रत नहीं रही थी। राजीव गांधी और फारूख अब्दुल्ला ने उन्हें बिल्कुल निष्क्रिय बना दिया था। वे वामपंथी लोगों को भी अपना खेल खेलने से रोक नहीं पाये क्योंकि मैंने जो निश्चित क्रियात्मक कदम उठाये थे, जिनके द्वारा मैं राज्य में सरकारी ढांचे को मजबूत करना चाहता था, वह भारतीय जनता पार्टी के विचारों के अनुकूल मार्ग था। उस समय मेरे सामने प्रश्न यह नहीं था कि भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस अथवा वामपंथी पार्टियां सही हैं या गलत, परन्तु ध्येय यह था कि ऐसे कार्य ही किए जाएं जिससे लोगों की कठिनाइयां बढ़े बगैर वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकें। वी० पी० सिंह जार्ज फर्नांडीज की मानसिक इच्छा को भी सही ढंग से जान नहीं पाए जिसके कारण वह देश में एक प्रमुख स्थान प्राप्त करना चाहते थे।

उस समय के कुछ राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने कहा था कि वी० पी० सिंह असम्बद्ध बातों से लाभ नहीं उठाना चाहते। परन्तु वे स्थिति के अनुरूप कूटनीतिक स्तर पर नहीं आये। काश्मीर की स्थिति के लिए उत्साह, दूरदृष्टिपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता थी। जिसमे उनके अपने आस-पास इकट्ठे हुए लोगों की चिन्ता न करके राष्ट्रीय दृष्टिकोण को लाभ होता। वी० पी० सिंह दिन-प्रति-दिन के लाभ के विचार के अतिरिक्त सही ध्येय की दिशा में न पहुंच सके। सत्ता में बने रहना ही उनकी कमजोरी थी। वे काश्मीर के मामले में ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर भी असफल रहे।

काश्मीर सम्बन्धी मामलों के मन्त्री बनने पर जार्ज फर्नांडीज का रवैया ही बिल्कुल बदल गया था। उनके कार्यों के कारण पहले की गम्भीर स्थिति को और भी हानि हुई। उनके काम करने का ढंग न तो क्रियात्मक था और उसमें आपसी विषमताएं भी थीं। एक नाटकीय स्वरूप देने की इच्छा के कारण उन्होंने प्रशासनिक आवश्यकताओं के प्रति कोई आदर प्रकट नहीं किया और इस बात का भी कोई महत्व नहीं समझा कि कौन-सा काम किस समय किया जाए। उन्होंने काश्मीरी पर्यटन के मूल तत्वों की भी अवहेलना की। उन्होंने इस बात पर भी विचार नहीं किया कि अपनी पूर्व सफलताओं के कारण जब पाकिस्तानी समर्थक तत्व अपनी बन्दूक और बमों में आस्था रखते हैं तब तक कोई भी राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करना उपयोगी नहीं होगा। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि इस प्रक्रिया का जो समर्थन करेंगे उनकी हत्या कर दी जाएगी।

पाकिस्तान की गुप्तचर एजेंसी और स्थानीय रूढ़िवादी अराजक देश-द्रोही

लोग कोई सामान्य खेल नहीं खेल रहे थे। इन्होंने जो प्रक्रिया अपना रखी थी और उसमें उन्हें कामयाबी भी मिली थी। 19 जनवरी, 1990 के पूर्व सत्ता के ढांचे में उनके पहुंच जाने के कारण उनमें यह विश्वास की भावना जागृत हो गई थी कि वे जब जो चाहें कर सकते हैं। समय से पूर्व राजनीतिक प्रक्रिया चालू करने से हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। इसमें पाकिस्तान समर्थक हिजबुल मुजाहिदीन आतंकवादी संगठन को उन लोगों को समाप्त करने का अवसर मिला जिनसे यह आशा थी कि आगे चलकर इनसे सहायता प्राप्त होगी और ये लोग सत्ता के ढाचे मे भागीदार हो सकेंगे। जार्ज फर्नांडीज के काम से और भी अधिक हानि हुई। वे बिना बताए ही कुछ लोगो से टेलीफोन पर बात करके श्रीनगर आने लगे और डॉ० ए० ए० गुरु, एडवोकेट मियां कयूम और जमात-ए-इस्लामी के अब्दुल गनी बट आदि कम महत्त्वपूर्ण और मामूली व्यक्तियों से बात करके दिल्ली लौट जाते थे और उसके बाद समाचार पत्रों मे अपने ध्येय की सफलता के बयान देते। उनके काम करने के इस ढग से राष्ट्रीय स्तर पर एक गलतफहमी पैदा हुई और पाकिस्तान समर्थक आतंकवादी संगठनों मे यह जानने की उत्सुकता पैदा हुई कि फर्नांडीज ने किससे मिलकर क्या बात की? उनके इस असमय किये जाने वाले कार्य के कारण भूतपूर्व विधान सभा सदस्य मीर मुस्तफा और मीर वाइज मौलवी फारुख की हत्याएं हुईं। यदि उन्हें किसी से बात करनी भी थी तो वे पाकिस्तान समर्थक आतंकवादियों मे सन्देह जागृत किए बिना बातचीत कर सकते थे।

जार्ज फर्नांडीज ने यह भी अनुभव नहीं किया कि वे जो कुछ कर रहे हैं उन कामो मे भी परस्पर विरोध है। एक ओर वे डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मित्र के रूप मे काम कर रहे थे, दूसरी ओर वे ऐसे तत्त्वों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे जो फारुख के नाम से ही सशंकित हो उठते थे। इन लोगों ने केन्द्रीय सरकार के फारुख अब्दुल्ला के प्रति रवैये को सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखा। उन्होंने सोचा कि उसे जैसे-तैसे फिर सत्ता मे लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। बार-बार राज्य विधान सभा को पुनर्जीवित करने की बात से उनके सन्देहों की पुष्टि हुई।

जब भी कभी राजनीतिक प्रक्रिया के सम्बन्ध मे क्रियात्मक सुझाव देने का प्रयत्न किया गया तो मेरे बारे में यह बताया गया कि मैं राजनीतिक प्रक्रिया के विरुद्ध हू। अगले ही दिन समाचार पत्रों मे इस प्रकार के हैडिंग छपने कि कश्मीर की स्थिति और समस्या का जवाब गोली नहीं। जिसमे यह प्रकट किया जाता कि मैं सख्ती करने का समर्थक हूं। सत्य के सम्बन्ध मे कोई आदर भावना प्रकट नहीं की गई। वास्तविकता यह थी कि राज्य विधान सभा को भंग करके एक स्वस्थ राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया था। इसके द्वारा तोड़-फोड करने वाले तथा अन्य दलो को यह अवसर दिया गया था कि वे हिंसा छोड कर राजनीतिक सत्ता मे आ सकें। यह बात आतंक के माहौल को समाप्त करने के लिए आवश्यक थी।

राजनीतिक प्रक्रिया कोई ऐसी जादू की छड़ी नहीं थी जो आतंकवाद और तोड़-फोड की क्रूर अराजक वास्तविकताओं को फौरन समाप्त कर देती। इसके लिए एक दृढ और शान्त नीति की आवश्यकता थी जिसके सम्बन्ध मे पहले के

अध्याय में बताया गया है और जिनके कारण दोनों ओर से गोलियां चलने में काफी कमी आई थी।

प्रशासनिक उलझनें

काश्मीर के मामलों में जार्ज फर्नांडीज के प्रत्यक्ष दखल से प्रशासनिक उलझनें पैदा हुई और प्रशासन के सामने रुकावटें आईं। प्रधानमन्त्री ने स्थिति स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। 14-3-90 को राज्य सभा की बहस में दखल देते हुए उन्होंने कहा कि किसी मन्त्री को कोई कार्य सौंप देने से दूसरे मन्त्री की सत्ता अथवा अधिकारों में कोई कमी नहीं आती। जार्ज फर्नांडीज को सभी मन्त्रालयों से जम्मू काश्मीर के सम्बन्ध में तालमेल रखने के लिए नियुक्त किया गया है। उनके कारण किसी मन्त्री को हटाया नहीं गया। परन्तु उनके इस स्पष्टीकरण से क्रियात्मक स्तर पर कोई लाभ नहीं हुआ। उन्होंने जार्ज फर्नांडीज द्वारा काम को रहस्यपूर्ण ढंग से करने में भी कोई रुकावट नहीं डाली। इससे तालमेल और निर्णय लेने के मार्ग में अनेक कठिनाई पैदा हुई।

केन्द्रीय गुप्तचर संस्थाएं गृह मन्त्री के अधीन थीं और राज्य की गुप्तचर संस्थाएं मेरे अधीन। उनकी रिपोर्टों और प्रमाणों के आधार पर आतंकवादियों की गुप्त रूप से सहायता करने वालों के विरुद्ध हमने कार्यवाही शुरू की तो जार्ज फर्नांडीज ने उनसे मिलना प्रारम्भ कर दिया जिससे अधिकारियों को अपना काम पूरा करने में कठिनाइयां हुईं। अनेक बार बड़ी विचित्र बातें भी देखने में आईं जैसे कि एक अधिकारी को विभिन्न स्थानों से अलग-अलग आदेश दिये जा रहे थे।

कुछ मामलों में मेरे, जार्ज फर्नांडीज और मुफ्ती मुहम्मद सईद के सोचने में भी अन्तर था। उदाहरण के लिए शेरे-ए-काश्मीर मैडिकल इन्स्टीट्यूट के एक वरिष्ठ डाक्टर के विरुद्ध मैं कदम उठाना चाहता था। मुफ्ती मेरे विचार से सहमत थे परन्तु जार्ज फर्नांडीज ने उसके विरुद्ध प्रमाणों और गुप्तचर एजेंसियों के सुझावों की परवाह न करके मुझे ऐसा नहीं करने दिया। इन बातों के लिए राजनीतिक प्रक्रिया ही उनकी दृष्टि में उचित प्रतीत होती थी। मेरी स्थिति बहुत ही उलझन पूर्ण हो गई थी। परन्तु मैं इसको विशेष मुद्दा नहीं बनाना चाहता था। इसके लिए बाद में मुझे दुःख हुआ। यदि डाक्टर के विरुद्ध निश्चित कार्यवाई कर दी जाती तो शेरे-ए-काश्मीर इन्स्टीट्यूट में कुछ निर्दोष नर्सों के अपहरण और हत्याओं की घटनाएं रोकी जा सकती थीं।

जार्ज फर्नांडीज की मुझे सबसे अधिक निराश करने वाली बात यह लगी कि उन्होंने मुझे भ्रष्टाचार के मामलों में कार्यवाही करने से रोक दिया। इसी कार्यवाही से प्रशासन के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ने के साथ-साथ जनता के मन में यह बात बैठती कि मैं अन्याय और भ्रष्ट-आचरण के विरुद्ध हूं और उसे समाप्त कर देना चाहता हूं। इसमें किसी एक पार्टी, दल या किसी खास व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने की बात नहीं थी। इसका ध्येय एक व्यापक सुधार और ईमानदारी का वातावरण बनाना था। फर्नांडीज के इस रवैये से मुझे हैरानी हुई क्योंकि वे आरम्भ से ही जनता से सम्बद्ध कार्यों में मूल्यों के महत्व पर जोर देते रहे थे।

स्थानीय प्रशासन सम्बन्धी मामलों, जिनका कानून और व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता था, दखल देने के अतिरिक्त वे मुझसे या गृहमन्त्री से बात किये बिना नीचे के स्तर के मामलों में भी दखल देते थे। इससे सम्बन्धित उदाहरण यह है कि 30 मार्च को एक प्रमुख आतंकवादी और श्रीनगर क्षेत्र का कमाण्डर अशफाक मजीद वानी हाथ में बम फट जाने के कारण मर गया जबकि वह सीमा सुरक्षा बल पर यह बम फेंकने की तैयारी कर रहा था। ऐसे मामलों में आतंकवादी संगठनों की यूनिटों को यह आम हिदायत होती है कि इस प्रकार के 'शहीद' होने वाले अवसरों पर लोगों के उन्माद को उकसाया जाये और ज्यादा लोग इकट्ठे किये जाएं और सभाएं हों। हमारी अब तक की नीति यह थी कि—दफनाने का काम तामझाम के बिना हो और—भड़काऊ भाषणों और प्रदर्शनों की इजाजत न दी जाय—अब तक इस तरह के काम हमारे विचारों के अनुरूप चलते थे।

अब तक का हमारा अनुभव था कि जार्ज फर्नांडीज के श्रीनगर आने और अपने ढंग से काम करने के कारण जिस प्रशासन को हम ठीक करने का यत्न कर रहे थे, उस पर बोझ पड़ने के अलावा उसमें नई समस्याएं भी पैदा हो जाती थीं, जबकि इनसे बचा जा सकता था। उदाहरण के लिए—19 मार्च, 1990 को वे बिज बिहारी गए। अराजक तत्त्व वहां इकट्ठे हो गये और जबरदस्त भारत विरोधी प्रदर्शन किया। हड़ताल रखी गई और मकानों पर काले झण्डे फहराये गये। बिना बात समस्या खड़ी हो गई। जार्ज के बे वक्त के दौरे से तोड़-फोड़ करने वाले नेताओं की समर्थक जनता इकट्ठी हो गई। इस तरह बुझती हुई चिन्गारी फिर भड़क उठी। एक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'एक्सेलसियर' ने अफसोस जाहिर करते हुए लिखा था—'ऐसा लगता है कि जार्ज फर्नांडीज राज्य सरकार के कामों को बिगाड़ने का इरादा किये हुए हैं।'

प्रधानमन्त्री ने संसद में जो कुछ कहा था जार्ज फर्नांडीज ने उसके विपरीत प्रशासन का एक अलग ढांचा खड़ा कर लिया। काश्मीर मामलों के लिए जम्मू काश्मीर कैडर के आई. ए. एस. को पूर्णकालिक सचिव नियुक्त किया गया। सैयद रिजवी और बी. आर. सिंह दो संयुक्त सचिव नियुक्त किये। बी. आर. सिंह को डा० फारुख अब्दुल्ला के निकट माना जाता था। मुख्यमन्त्री के नाम से उसके कार्यों के कारण ही फारुख मन्त्रिमण्डल के एक सुयोग्य मन्त्री आर० एम० चिब ने त्यागपत्र दिया था। जार्ज फर्नांडीज ने काश्मीर केडर के आई० ए० एस० अफसर अशोक जेतली के माध्यम से राज्य के बड़े पदों पर स्थित अधिकारियों का अपना अलग गुट बना लिया था। जेतली में उनकी रुचि पहले से ही थी। जब वे जनता सरकार में मन्त्री थे तो उन्होंने जेतली को अपना विशेष सचिव नियुक्त किया था।

दूसरी बार राज्यपाल पद संभालने के आरंभिक दिनों में जार्ज फर्नांडीज अक्सर प्रतिदिन मुझसे अशोक जेतली को मुख्य सचिव के रूप में नियुक्त कर लेने की बात कहते रहे थे। मुझे इस तरह की बातों से परेशानी होती थी। और मैं राज्य से बाहर के किसी व्यक्ति को रखना चाहता था। मैं किसी स्थानीय अधिकारी के विरुद्ध नहीं था, पर समझता था कि राज्य के हालात के मुताबिक बाहर का आदमी ही प्रभावी ढंग से और निडर होकर काम कर सकेगा। मुफ्ती-मोहम्मद सईद आर० के० टक्कर को मुख्य सचिव बनाना चाहते थे। वह जेतली

से वरिष्ठ भी था और जी० एम० शाह के शासनकाल में कुछ समय तक मुख्य सचिव रहा था। उस समय का मन्त्रिमण्डलीय सचिव टक्कर की नियुक्ति से परेशान था। और उसे काफी कनिष्ठ मानता था। जब 7 मार्च, 1986 को राज्यपाल शासन लागू हुआ तो मैंने टक्कर के इस पद पर बने रहने में कोई आपत्ति नहीं की क्योंकि वह काफी अच्छा काम कर रहा था। साथ ही मैं मन्त्रिमण्डलीय सचिव की बात का विरोध नहीं करना चाहता था। मेरा विचार है कि टक्कर को इस बात पर कुछ कष्ट हुआ। जब मुफ्ती साहब को पता चला कि जेतली की ओर से दबाव डलवाया जा रहा है तो उन्होंने टक्कर को मेरे पास भेजा। मेरी रुचि काम चालू रखने में थी, इसलिए मैंने टक्कर को नियुक्त कर लिया। जेतली एक चतुर अधिकारी होने के बावजूद अपनी गतिविधियों के कारण विवादास्पद बन गया। और इससे खास तरह की समस्याएं भी पैदा हुईं जिनका यहां विवरण देना आवश्यक नहीं।

मुफ्ती मुहम्मद सईद के गृह मंत्रालय के मुखिया होने के कारण भी कुछ समस्याएं पैदा हुईं क्योंकि कुछ स्थानीय अधिकारी, जो उन्हें जानते थे, अपने तबादले आदि के सम्बन्ध में उनसे आसानी से मिलकर अपनी कठिनाइयां उनके सामने रखते थे। परन्तु जार्ज फर्नांडीज की अपेक्षा मुफ्ती मुहम्मद सईद अधिक क्रियात्मक और काश्मीर की मूल समस्याओं को अच्छी तरह समझते थे। वह यह भी समझते थे कि सबसे पहला काम आतंकवाद और हिंसा के माहौल को समाप्त करना है। वह इस बात से अप्रसन्न थे कि जार्ज फर्नांडीज राज्य प्रशासन को किस प्रकार कमजोर करने में लगे हुए थे।

आमतौर पर केन्द्र सरकार की ओर से यह कहा गया कि राज्यपाल और काश्मीर सम्बन्धी मामलों के मन्त्री का कार्य एक दूसरे का पूरक है। एक का सम्बन्ध प्रशासनिक कार्यों और दूसरे का राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने से है। सैद्धान्तिक रूप से इस बात को गलत नहीं कहा जा सकता। परन्तु वास्तविकता यह थी कि क्रियात्मक रूप से ऐसा नहीं हो रहा था। राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने का कार्य इस ढंग से प्रारम्भ किया गया कि प्रशासनिक तन्त्र ने काश्मीर की बिगड़ी हुई स्थिति में जो कुछ सुधार किया था, उसे इस प्रक्रिया ने नकारा कर दिया।

संवैधानिक और कानूनी तौर पर सत्ता और पूर्ण दायित्व का अधिकार राज्यपाल को ही होता है। जम्मू काश्मीर के संविधान की धारा 92 के अनुसार राज्यपाल शासन लागू होने पर राज्य सरकार के सारे अधिकार और सत्ता उसको प्राप्त हो जाती हैं। अन्य राज्यों में जहां राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है, सभी कार्यों के अधिकार राष्ट्रपति के अधिकार में आ जाते हैं। वह अपने अधीन इस नियन्त्रण और देखरेख का काम राज्यपाल को सौंप देता है। परन्तु जम्मू काश्मीर में सत्ता और कार्य संचालन का भार धारा 92 के अधीन संविधान के अनुसार राज्यपाल को प्राप्त हो जाता है। गृहमन्त्री अथवा अन्य किसी को भी यह अधिकार प्राप्त नहीं होता। कानून और संवैधानिक स्थिति के अतिरिक्त प्रशासन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में होनी चाहिए। जम्मू काश्मीर में स्थिति के अनुरूप इसी बात की आवश्यकता भी थी। यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो दूसरा राज्यपाल नियुक्त कर सकती है। परन्तु

टाइप करवाया गया और न डाक से प्रधानमन्त्री को भेजा गया।

परिणामतः मैंने अब तक जो स्थिति पर नियन्त्रण प्राप्त किया था और अनेक क्षेत्रों में सुधार और विकास के जो कार्य प्रारम्भ किए थे जिनमें काश्मीरी लोगों की भावनाएं केन्द्र से मिलकर शान्ति प्राप्त करने और राष्ट्रीय मुख्य धारा में शामिल होने की बात थी, मैं उनसे छिटक कर अलग नहीं होना चाहता था।

टिप्पणी

श्रीमती प्रिमिला लुईस ने अपनी 'सोशल एक्शन एण्ड लेवरिंग पूअर : एन० एक्सपीरिएंस' के पृष्ठ 139 पर लिखा है—

"यहां से लेकर 1984 में जम्मू काश्मीर के लिए चलने तक जगमोहन ऐसे व्यक्ति सिद्ध हुए हैं जिनसे श्रमिक लोग आसानी से मिल सकते थे और वे उनकी समस्याओं को समझ कर उनको सुलझाने तथा उपायों को शीघ्रता से लागू करने वाले व्यक्ति सिद्ध हुए। कुछ अधिकारियो में से वही एक ऐसे थे जो स्वयं श्रमिकों से अफसरों की बजाय सीधे उनसे हिन्दी में बात करते थे। इससे वे महरौली के सभी श्रमिकों के चहेते बन गए। जब वे दिल्ली से चले तो बहुत से शिष्टमण्डल—जिनमें किसान, रोड़ी मजदूर और गांव के आदमी थे, राजभवन में उन्हें विदा देने और अपने प्रति किये गये कार्यो के कारण आभार प्रकट करने के लिए पहुंचे थे।"

तेरहवां अध्याय

काश्मीरी पंडित—डरते हुए बेसहारा भोले लोग

सत्य को छिपाया जा सकता था
कुछ लोगों ने अपनी पीड़ा को चुन लिया
जो होने की जरूरत नहीं थी
वैसा हो गया।

—ऑडेन

मायावी दर्पणों का कक्ष

जब कांग्रेस (इ) पार्टी ने मुझे 30 मई, 1990 को राज्यसभा में काश्मीर के विषय पर बोलने की इजाजत नहीं दी, उसके बाद मैंने एक प्रेस कांफ्रेंस आयोजित की जिसमें एक प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा "भारत को बाहरी दुश्मनों की जरूरत नहीं है, हम ही अपने सबसे खतरनाक दुश्मन हैं।" इस सत्य की पुष्टि 'इनीशिएटिव ऑन काश्मीर' नाम से पुकारी जाने वाली समिति की अत्यधिक पक्षपात पूर्ण और तथ्यों का रंग बदलने वाली 'रिपोर्ट' से होती है।

यह रिपोर्ट वास्तव में काश्मीर के आतंकवाद को तर्कसंगत और न्यायोचित बनाती है और उसे अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देती है। धोखा देने, तथ्यों को बिगाड़ने और गलत सूचनाएं देने में यह एक उच्चस्तर का हेर-फेर करने का अभ्यास है। मानव अधिकारों के नाम पर इसने सभी मानव अधिकारों की हत्या कर दी है। भारत के सबसे हानिकारक शत्रु भी इस रिपोर्ट से अधिक हानिप्रद प्रचारात्मक सामग्री नहीं रच सकते थे। कोई आश्चर्य नहीं कि पाकिस्तानी टेलीविजन और रेडियो द्वारा इसको बार-बार उद्धृत किया गया तथा उनके और भारतीय निन्दकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका विस्तृत रूप से उपयोग किया गया। उस रिपोर्ट की सांघातिकता की समानता केवल इसके सतहीपन से ही की जा सकती है, जो सतह के नीचे झलकने वाले सत्यों को अनदेखा करने के लिए बाजिद है। मानवीय अधिकारों के नाम पर इसने सारे मौलिक मानवीय अधिकारों का हनन कर दिया है— न्याय पाने का अधिकार, अपराधी करार

दिए जाने से पहले सुनवाई का अधिकार; कुछ एक लोगों के झूठे और प्रेरित आरोपों तथा व्यक्तिगत वैमनस्य एवं द्वेष से वर्षों की कड़ी मेहनत और ईमानदारी से बनी प्रतिष्ठा को कलंकित न कर पाने का अधिकार।

स्वयं को मानव अधिकार समिति कहने वाली कोई भी संस्था क्या काश्मीरी पंडित जैसे उपेक्षित लोगों को और कष्ट दे सकती थी? बड़ी-बड़ी बातों और प्रगतिशील आवरण के अतिरिक्त यह रिपोर्ट वास्तव में एक 'अमानवीय' रिपोर्ट थी। उसे इस बात से कोई मतलब नहीं था कि 'क' को 'ख' की वजह से फांसी पर चढ़ाया गया।

'पीपुल्स यूनियन ऑफ सिविल लिबर्टीज़' समूह में कुछ लोग अच्छे थे लेकिन उनकी भलमनसाहत का क्या फायदा था जब इन्दर मोहन जैसे 'चालाक' तत्त्वों द्वारा सरलता से उनकी आंखों पर पट्टी बांधी जा रही थी और वे अपने अन्य कामों या दूसरी कुछ वजहों से इस पर ध्यान नहीं दे पा रहे थे?

यह रिपोर्ट दबावपूर्ण पक्षपात का नतीजा थी। इसमें उन ठोस तथ्यों और दस्तावेज़ों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया जिनका मैंने पिछले अध्यायों में उल्लेख किया है। कमेटी ने सम्बद्ध पार्टियों के सुने-सुनाए प्रमाणों को वास्तविक स्वीकार कर लिया और पूर्व निर्धारित परिणामों के अनुसार लोगों से साक्षात्कार कर उनके कथनों को चीर-फाड़ करके उद्धृत कर लिया। दु:खद विडम्बना यह थी कि मानव अधिकारों के नाम पर मानव अधिकारों को ही अधिकतम क्षति पहुंचाई गई। रिपोर्ट यह समझने में नाकाम रही कि आतंकवादियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देते हुए और उनके समर्थकों को अत्याचार का शिकार बतला के वह और अधिक अपहरण, हत्याओं एवं बिल्कुल मासूम लोगों के मानव अधिकारों के अतिक्रमण को प्रेरित कर रही थी।

इस रिपोर्ट से आतंकवादियों को अपनी आत्मा की साफगोई पेश करने में मदद मिली और उन्हें लगा कि 'उनके पाप करने से ज्यादा उन पर पाप किया गया है।' इस मानसिक अवस्था में उन्होंने सोचा कि उनके काम अनौचित्य पूर्ण नहीं थे। और उन्होंने अपने घृणित कृत्य जारी रखे—और अधिक अपहरण, और अधिक हत्याएं होती रहीं। आतंकवादियों द्वारा गुप्त रूप से प्रकाशित 'सदा-ए-काश्मीर' जिसकी भूमिका के बारे में, पहले ही 'विघटन की प्रकृति और स्वरूप' अध्याय में बता चुका हूं, ने काश्मीरी युवकों को भड़काने और उन्हें आतंकवाद की ओर आकर्षित करने के लिए, इस रिपोर्ट में से कई अंश उद्धृत किये। 'मानव अधिकार समिति' ने मानवता की यह सेवा की थी। क्या यह काश्मीर की समस्या को सुलझाने की ओर पहला कदम था या प्रशासन के विरुद्ध भावनाएं भड़का कर इसे और उलझाने का एक कदम?

रिपोर्ट के परिचय में लिखा था:

"कमेटी की ओर से, मार्च 12-16, 1990 तक चार सदस्यों का एक दल, काश्मीर पर काम करने के लिए जम्मू काश्मीर के दौरे पर रहा। दल ने पीड़ितों, चश्मदीद गवाहों और अनेक सरकारी उच्चाधिकारियों सहित बहुत से लोगों से बात की जिन्होंने अन्धाधुन्ध हत्याओं, मनचाही गिरफ्तारी, गैर कानूनी तलाशी, शान्त प्रदर्शनकारियों पर बिलावजह हमले, महीनों तक केवल बीच में चन्द घण्टो के विराम के साथ लगाए गए कर्फ्यू से सामान्य जीवन के पूर्णत: अस्तव्यस्त हो

जाने के बारे में बताया। खोजबीन के दौरान, दल ने पाया कि ये अपमानजनक और निन्दापूर्ण कृत्य कानून लागू करने वाले अधिकारियों—सी. आर. पी. एफ. (केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल), बी. एस. एफ. (सीमा सुरक्षा बल) और कुछ घटनाओं में भारतीय सेना द्वारा भी किये गये हैं। मानव अधिकारों के खुले आम अतिक्रमण की ये वारदातें मनचाहे विपथन की इक्का-दुक्का घटनाएं नहीं थी बल्कि शासकीय नीति के क्रियात्मक रूप का विस्तार था यह बात दल के समक्ष सिद्ध हुई जब उच्च प्रशासकीय अधिकारियों ने इन कृत्यों की इस आधार पर पुष्टि की कि 'आतंकवाद' को रोकने के लिए ये आवश्यक थे।

ये परिणाम इतने गलत और अस्पष्ट हैं कि किसी भी समझदार व्यक्ति के सामने कमेटी की भीतरी पक्षपाती प्रकृति स्वयं सिद्ध हो जाती है। और भी, ये परिणाम इतने विश्वास के साथ निकाले गये हैं कि जान पड़ता है, महीनों के अध्ययन के बाद इन नतीजों पर पहुंचा गया। लेकिन इस 'शोध' में कितना समय लगाया गया? केवल चार दिन का और वह भी तब जब कि आतंकवादियों की बन्दूकें घाटी पर लटक रही थीं तथा कोई भी सामान्य या तथाकथित निष्पक्ष बुद्धिजीवी, जो आतंकवादी और उनके समर्थक चाहते थे, इसके अलावा कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं कर सकता था। आतंकवाद के प्रभाव में, जैसाकि सभी जानते हैं, सत्य सबसे ज्यादा हताहत होता है।

जिन लोगों से यह चार सदस्यों का दल मिला उनके कथनों को यथार्थ के किस स्तर से जांचा गया? नीचे इसका एक सशक्त उदाहरण है—

मुख्य सचिव से बातचीत के सन्दर्भ में रिपोर्ट ने दर्ज किया—

"उनके अनुसार डॉ० फारूख अब्दुल्ला के पिछले तीन सालों के शासन में राज्य प्रशासन बहुत भ्रष्ट हो गया था। बहरहाल, उन्होंने यह भी संकेत दिया कि राज्य में केवल अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी भ्रष्ट नहीं हुए थे। दूसरे शब्दों में, आई०ए०एस० अधिकारियों को छोड़कर, जिनमें से अधिकतर काश्मीर से बाहर के थे, टक्कर के अनुसार, सभी काश्मीरी कर्मचारी एवं राजनीतिज्ञ भ्रष्ट थे।

यह स्पष्ट था कि आर० के० टक्कर को काश्मीरी लोगों पर कतई विश्वास नहीं था। लेकिन यह पक्षपाती रवैया और भी स्पष्ट हो गया जब हमने 7 मार्च को हुए छानपोरा काण्ड पर बात की। उन्होंने कहा, "छानपोरा एक गड़बड़ी वाला इलाका है। वहां के लोग आतंकवादियों के साथ हैं। वे गलत जानकारी या अफवाह फैलाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं।"

अन्तिम मुद्दा जो हमने उठाया, वह था गैर-मुस्लिम लोगों का घाटी से प्रवसन। हमने उन्हें बताया कि सभी सम्प्रदायों के लोग हमें बता चुके थे कि घाटी छोड़ कर जाने के लिए हिन्दू परिवारों को सरकारी वाहन दिये गये। उन्होंने इस बात से इन्कार किया। जब प्रमाण पेश किया गया तो उन्होंने दावा किया कि सरकारी अधिकारियों ने ऐसा व्यक्तिगत किया होगा लेकिन राज्य सरकार की नीति में यह शामिल नहीं है।"

कार्यालय के सामान्य क्रम में जब गृह मन्त्रालय ने मुख्य सचिव से इस रिपोर्ट पर टिप्पणी करने को कहा तो उन्होंने लिखित रूप में बताया.

"जो भी मैंने कहा, रिपोर्ट ने उसके साथ गम्भीर अन्याय किया है। बहुत से

गलत कथन मेरे नाम से उद्धृत किये गये हैं जब कि दूसरे कथनों को बिना किसी सन्दर्भ के लिख दिया गया है। प्रत्येक प्रमुख मुद्दे पर मेरी विस्तृत टिप्पणी इस प्रकार है :

(क) मैंने यह जरूर कहा था कि डा० अब्दुल्ला के पिछले तीन सालों के शासन में भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद जिस बड़े पैमाने पर फैला था, वह राज्य की वर्तमान समस्याओं के कारणों में से एक है। मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि यह विश्वास करूं या यह बताऊं कि अखिल भारतीय सेवारत सभी लोग ईमानदार हैं और अन्य जन सेवा विभागों के कर्मचारी भ्रष्ट हैं।

(ख) कर्फ्यू के दौरान दवाइयों की कमी हो जाने पर सुरक्षा बलों द्वारा ज्यादती किए जाने के सन्दर्भ में मैंने उन्हें सलाह दी थी कि स्वार्थ और लाभ के लोभ में लोग जो गलत अफवाहें फैला रहे हैं, उन पर वे ध्यान न दें।

(ग) कमेटी ने यह कहकर हानिकारक कृत्य किया है कि मैं काश्मीरी लोगों पर विश्वास नहीं करता। वास्तव में, मैं कमेटी के सदस्यों को यह समझाना चाहता था कि काश्मीर के वर्तमान संकट में ज्यादातर समाचार-विश्लेषण भय और उत्तेजना के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की तरफ ध्यान देने में असमर्थ रहे हैं, जिनके प्रभाव में लोग अभी तक काम कर रहे हैं। वास्तविकता यह है कि मैंने मीडिया और देश के अन्य लोगों को इस बात पर विश्वास करने के लिए दोषी ठहराया कि काश्मीर के सभी लोग विद्रोह के पथ पर हैं।

(घ) गैर मुस्लिम लोगों के घाटी छोड़कर जाने के सन्दर्भ में मैंने दृढ़तापूर्वक उनकी इस बात को चुनौती दी थी कि राज्य सरकार ने इसमें सहायता या प्रेरणा दी है। जब उन्होंने यह बताया कि उन्होंने स्वयं इस उद्देश्य के लिए सरकारी वाहनों का प्रयोग होते देखा है, तो मैंने उन्हें कहा कि इस स्थिति में सरकारी कर्मचारियों के व्यक्तिगत दुराचार की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि सरकार के ध्यान में ऐसी घटनाओं की विशेष सूचना लाई गई तो अनुशासनिक कार्यवाही की जाएगी—मैंने उन्हें आश्वासन दिया। कमेटी के सदस्यों ने ऐसे वाहनों का ब्यौरा भेजने का वायदा किया लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया।"

यह न्याय का मूलभूत सिद्धान्त है कि यदि किसी व्यक्ति या इस जैसे संवेदनशील मुद्दे पर कोई वक्तव्य दिया जाता है तो वह मत या वक्तव्य लिखित में होना चाहिए; विकल्प के तौर पर उस बातचीत का सारांश किसी भी रिपोर्ट में दर्ज किये जाने से पहले, सम्बन्धित व्यक्ति के पास पुष्टि के लिए भेज देना चाहिए। कुछ विशेष नतीजों को निकालने के लिए लोगों की बातों को तोड़-मरोड़ कर प्रयोग करना अनुचित और अनैतिक है। मुख्य सचिव का यह शिकायत करना कि रिपोर्ट ने उनके कथनों के साथ गम्भीर अन्याय किया है—बिल्कुल न्यायसंगत था। न ही उनका यह कहना गलत था कि कमेटी ने अपनी रिपोर्ट से हानि ही पहुंचाई है। यह दल पूर्वनिर्धारित नतीजों को ही सामने रखना चाहता था—यह इस बात से पूर्णतः सिद्ध होता है कि वे उन सरकारी वाहनों का विवरण नहीं दे पाए जिनका तथाकथित रूप से प्रवासियों द्वारा प्रयोग किया गया था।

अन्य सम्बन्धित उच्चाधिकारियों ने भी अपनी टिप्पणी दी। अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह मन्त्रालय), महमूद रहमान ने अपनी टिप्पणी में कहा :

"यह आरोप लगाना भी गलत है कि गवर्नर शासन के पहले दिन सुरक्षा बलों द्वारा आतंकवादियों को खत्म करने के स्पष्ट उद्देश्य से छापा मारी और तलाशियां ली गईं। सुरक्षा की जरूरतों और प्रक्रिया रिपोर्ट के अनुसार ये छापे पूर्व-नियोजित थे और नये गवर्नर ने इस सन्दर्भ में कोई आदेश जारी नहीं किया था।

कमेटी का यह वर्णन भी गलत है कि गवर्नर शासन लागू होने के दो दिन के भीतर सुरक्षा बलों को तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी के सभी अधिकार दे दिये गये थे। यह सर्व विदित है कि टी० एस० एफ०, सी० आर० पी० एफ० एवं सशस्त्र बल एक्ट को बहुत पहले ही राज्य में लागू कर दिया गया था।

कमेटी ने यह भी गलत तथ्य दिया है कि निहत्थे प्रदर्शनकारियों और शान्त भीड़ पर अर्द्ध-सैन्य बलों द्वारा गोली चलाई गई। बल प्रयोग की सम्भावनाओं को कम करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया गया था और केवल सुरक्षा में ही गोलियां चलाई गईं।"

पुलिस के एडिशनल डायरेक्टर जनरल, अमर कपूर ने भी अपनी टिप्पणी में कहा कि इस रिपोर्ट में दिये गये तथ्य और आंकड़े गलत थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दिसम्बर, 1989 से 15 मई 1990 तक, डाकुओं द्वारा 134 निर्दोष लोगों को मारा गया। इस दौरान 71 हिन्दुओं की हत्या ने अल्पसंख्यक सम्प्रदाय में भय पैदा कर दिया जिससे काश्मीरी पण्डितों द्वारा घाटी छोड़कर जाने की गति तेज हो गई। कपूर ने स्पष्ट किया, "इस बात में कोई सच्चाई नहीं है कि पंडितों को घाटी छोड़ने में राज्य सरकार ने कोई मदद की।"

गवर्नर के कानून और व्यवस्था सलाहकार जमील कुरेशी ने कहा—

"मुझे नहीं मालूम कि कानून और व्यवस्था सम्बन्धी सलाहकार से मिले बिना पी० यू० सी० एल० ने ऐसी हास्यास्पद रिपोर्ट कैसे दे दी। अगर उन्होंने सम्बन्धित सलाहकार से बात करने पर जरा भी ध्यान दिया होता तो बहुत सी गलतफहमियां दूर हो सकती थीं।"

छानपोरा काण्ड के सन्दर्भ में उन्होंने कहा—

"इस तथ्य के अलावा कि वहां चार भारतीय वायुसेना अधिकारियों की वीभत्स हत्या हुई छानपोरा डाकुओं का गुप्त अड्डा रहा है जहां उन्हें न केवल समर्थन प्राप्त है बल्कि जहां उन्हें सुरक्षित अड्डों का एक जाल बिछाने के लिए पूर्ण रूप से प्रेरित किया जा रहा है। यह विघटनकारियों की गतिविधियों का गर्भ क्षेत्र रहा है। छानपोरा में हमेशा सुरक्षा बलों पर खुले आम हमला किया जाता रहा है जिससे दोनों पक्षों के अनेक लोग घायल हुए हैं और मारे गये हैं। फिर भी सुरक्षा बलों को बार-बार कम-से-कम बल प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया गया ताकि आम जनता उत्पीड़ित और परेशान महसूस न करे। अब तक सेवा की सर्वोपरि परम्परा के अनेक सुरक्षा बल अधिकारी अपने प्राण और अंग खो चुके हैं।"

ऊपरलिखित बातों से यह साबित हो जाना चाहिए कि दल के सदस्यों द्वारा लगाये गये आरोप उन कथनों पर आधारित थे जो गलत रूप से केवल उस एक अधिकारी पर आरोपित कर दिये गये जिससे वे मिले थे। आरोप लगाने वाले लोग उन लोगों में से किसी से भी नहीं मिले जिनके विरुद्ध आरोप लगाये गये थे। न ही दल के सदस्यों ने यह ढूंढने की कोशिश की कि क्या वे लोग, जिनके विरुद्ध

आरोप लगाये गये थे, इन आरोपों के खण्डन में कुछ कहना चाहते थे या नहीं।

इस प्रकार न्याय का अनुमोदन करने का दावा करने वालों ने ही न्याय के सभी मूलभूत सिद्धान्तों को नकार दिया। मानवीय अधिकारों के दावेदारों द्वारा ही ईमानदारी और औचित्य के सारे नियम तोड़ दिये गये। घटनाओं की पृष्ठ-भूमि पर ध्यान नहीं दिया गया। आतंकवादियों के कृत्यों को अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन दिया गया। यह पूर्वधारणा बना ली गई कि भीड़ हमेशा शान्त रही थी और प्रशासन तथा सुरक्षा बलों का व्यवहार क्रूर और निर्दयी रहा।

1 मार्च 1990 को तेंगपुरा में हुई स्कूल बस घटना से, जिसमें गोलीबारी भी हुई, कमेटी के दावों का भण्डा फूट गया। कमेटी की रिपोर्ट में लिखा है—

"तेंगपुरा में बस यात्रियों की हत्या के विरुद्ध बड़े पैमाने पर हुए विरोध के कारण सरकार के दिशानिर्देशानुसार सेना ने इस वारदात की जांच की। इंक्वायरी रिपोर्ट ने हत्याओं की इस आधार पर सफाई पेश की कि सेना अधिकारियों के स्कूल जाने वाले बच्चों को ले जाते सेना के एक वाहन पर लोगों ने पत्थर मारे थे। जिन स्थानीय लोगों से हमने साक्षात्कार किया, उन्होंने जांच रिपोर्ट को बिल्कुल झूठ बताया क्योंकि उस समय घाटी के सभी स्कूल शीत कालीन अवकाश के लिए बन्द थे। प्रसंगवश, जम्मू काश्मीर सरकार ने 20 फरवरी को स्कूल, कालेज तथा अन्य शैक्षिक संस्थानों को 15 मार्च तक बन्द रहने का आदेश जारी किया था।

उस दिन तेंगपुरा में हुई हत्याओं की सेना अधिकारियों द्वारा सफाई देने का प्रयास, वह भी झूठी कहानियां गढ़कर, देश के उन रक्षाबलों पर एक और कलंक है, जिन्हें हमारे लोगों की रक्षा के काम में समर्पित होने के लिए अधिक अनुशासित होना चाहिए।'

उन सैन्य अधिकारियों जिन्होंने कमेटी के अनुसार, हत्याओं की सफाई देने के लिए 'झूठी कहानी' गढ़ी थी, उन पर आरोप लगाने के स्वर व तरीके पर ज़रा ध्यान दें। लेकिन तथ्य क्या हैं? वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। दर-असल दल ने ही यह झूठी कहानी गढ़ी कि सभी स्कूल बन्द थे। सैन्य स्कूल खुला था। उस समय छात्रों की परीक्षाएं चल रही थीं। कमेटी के दल ने स्कूल के प्राध्यापक या किसी भी छात्र या उनके माता-पिता या किसी भी सम्बन्धित सेना अधिकारी से सम्पर्क करने पर कोई ध्यान नहीं दिया। क्यों? यह भूल जान-बूझकर की गई। अगर इस दल ने किसी भी सम्बन्धित व्यक्ति से सम्पर्क किया होता तो उसे सत्य का पता चल जाता। लेकिन तब वह अपने पूर्व निर्धारित नतीजों को कैसे व्यक्त कर सकता था?

1 मई, 1990 को इण्डियन एक्सप्रेस के अंक में छपा नई दिल्ली के एस. एन. द्रवू द्वारा 25 अप्रेल को लिखा गया पत्र मैं नीचे दे रहा हूं—

श्रीमान्—श्रीमती सुहासिनी मुले के पत्र (इंडियन एक्सप्रेस अप्रेल 19) के सम्बन्ध में मैं पाठकों और श्रीमती मुले के लाभ के लिए कुछ बातें सही करना चाहता हूं। जम्मू काश्मीर पर आरम्भिक कदम उठाने के लिए बनी कमेटी की कार्यकारी सचिव होने के नाते, स्वाभाविक है कि राज्य के गवर्नर श्री जगमोहन द्वारा कमेटी की रिपोर्ट को 'बिल्कुल गलत' करार दिये जाने पर उनका मन खट्टा हुआ होगा। अपनी शर्मिंदगी और रोष को ढकने के लिए उन्होंने श्री जगमोहन

के तर्कों की 'अनियमितता' उद्घाटित करने के लिए 'केवल एक उदाहरण' प्रस्तुत करने की चतुरता दिखलाने का प्रयास किया है। वे लिखती हैं, "वास्तव में, स्कूल के बच्चों को ले जाती हुई सेना की एक बस पर किये गये हमले के परिणाम स्वरूप सेना गार्डों द्वारा की गई गोलाबारी (1 मार्च को तेंगपुरा में) का जो दावा श्री जगमोहन ने खूब प्रचारित किया है वह झूठ निकला, क्योंकि हमारी खोजबीन से पता चला कि उस दिन किसी भी स्कूल बस के चलने का सवाल ही नहीं था चूंकि सरकारी आदेशों के अनुसार घाटी के सभी स्कूल 15 मार्च तक बन्द थे।

लेकिन इस 'दावे' में कुछ भी गलत या असंगत नहीं है। यह बस श्रीनगर के कैंटोनमेंट क्षेत्र में स्थित सैन्य पब्लिक स्कूल के बच्चों को ले जा रही थी। दूसरे स्कूलों के विपरीत यह स्कूल शीतकालीन अवकाश के बाद 19 फरवरी को खुल गया था। इसलिए शीतकालीन अवकाश को एक मार्च (जो शीतकालीन छुट्टी के बाद स्कूल खुलने की सामान्य तिथि है) से अधिक बढ़ाने का सरकारी निर्देश इस स्कूल पर लागू नहीं हुआ था। इस स्कूल की वार्षिक परीक्षाएं फरवरी के अंत में शुरू हुई और एक मार्च का महत्वपूर्ण दिन, परीक्षाओं का दूसरा ही दिन था। यह सेना बस जो बच्चों को बारमुना, हैदरपुरा, पीरबाग और दूसरे क्षेत्रों से बादामी बाग कैंटोनमेंट क्षेत्र में स्थित स्कूल तक ले जा रही थी, तेंगपुरा में विघटनकारियों और उनके समर्थकों की उग्रवस्त भीड़ के हमले का शिकार बनी। ठीक इस दुर्घटना के बाद ही सैन्य पब्लिक स्कूल भी घाटी के अन्य शैक्षिक संस्थानों की तरह अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया। श्रीमती मुले इन तथ्यों की पुष्टि इस स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता, सेना अधिकारियों या किसी भी हिन्दू अथवा मुस्लिम नागरिक से कर सकती हैं।

यह एक दुखद बात है कि जिस कमेटी ने अपनी खोजबीन में उन लोगों की मदद ली जिन्होंने जान-बूझकर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश किया, वह कमेटी अपने नतीजों और प्राप्त जानकारी को वस्तुपरक तथा निष्पक्ष बताती है। लेकिन हमें उन कट्टरपंथियों के षड्यंत्रों का शिकार नहीं होना चाहिए जिनका एकमात्र उद्देश्य काश्मीर को धर्म निरपेक्ष भारत से अलग करना होगा।"

यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमती मुले और कमेटी ने वास्तव में स्विफ्ट की उस उक्ति का अनुकरण किया "जब आप एक गलती कर रहे हों तो धृष्टता और ढिठाई करें और ऐसे व्यवहार करें जैसे आप ही वह व्यक्ति हैं जिसे क्षति पहुंची।"

इसी अखबार में इसी तिथि को छपे जम्मू के ठाकुर दास द्वारा दिनांक 20 अप्रैल को लिखा गया पत्र भी समान रूप से सत्योद्घाटन करता था। उसमें लिखा था—

"श्रीमान, मैं काश्मीर पर आरम्भिक कदम उठाने के लिए बनी कमेटी की कार्यकारी सचिव श्रीमती सुहासिनी मुले के पत्र (इंडियन एक्सप्रेस, 19 अप्रैल) के संदर्भ में लिख रहा हूं। यह ठीक है कि घाटी के सभी सरकारी स्कूल 15 मार्च तक बन्द थे (एक-दूसरे आदेश के अनुसार अब वे एक मई तक बन्द रहेंगे), लेकिन दुर्घटना से सम्बन्धित श्रीनगर सैन्य पब्लिक स्कूल शीतकालीन अवकाश के बाद 20 फरवरी को खुला था। विभिन्न कक्षाओं की परीक्षाएं एक मार्च को शुरू हुई थीं और इसी दिन सैनिक स्कूल के बच्चों को ले जाती हुई

आर्मी बस, जिसमें ज्यादातर सुरक्षा अधिकारियों के बच्चे थे, पर तेंगपुरा के निकट कुछ भारत विरोधी प्रदर्शनकारियों द्वारा हमला किया गया। ये वे ठोस तथ्य हैं जिनकी पुष्टि आतंकित छात्रों या उनके माता-पिता से करवाई जा सकती है।

अगर कमेटी के सदस्य घाटी में गये थे, तो सेना को बदनाम करने से पहले और उन नतीजों पर पहुंचने से पहले जो राष्ट्र के हित को क्षति पहुंचाते थे, यह उनका नैतिक कर्त्तव्य था कि तथ्यों की पुनः पुष्टि करें। यदि उन्हें कोई संदेह हो, तो इस स्कूल को चलाने वाले सुरक्षा अधिकारियों या स्कूल के प्राध्यापक श्री चतुर्वेदी से इन तथ्यों की जांच करने के लिए उनका स्वागत है।

ये बुद्धिजीवी तथा नागरिक अधिकारों के तथाकथित हिमायती लोग, जगमोहन तथा भारतीय सेना को नीचा दिखाने की धुन में विदेशी मीडिया को भारत-विरोधी प्रचार का काफी सामान दे चुके हैं। मुस्लिम देशों में भारत विरोधी भावनाएं उकसाने के लिए पाकिस्तान ने इन रिपोर्टों का भरपूर प्रयोग किया।

लोग, कम-से-कम जम्मू काश्मीर के लोग, ये जानना चाहेंगे कि किस उच्च सरकारी अधिकारी या सुरक्षा बलों के अधिकारी से वे मिले और अपना मूल्यांकन उनकी बातों पर आधारित किया। मर्यादा की यह मांग है कि ऐसे अधिकारियों का नाम बताया जाए।"

कमेटी ने उन स्थानीय लोगों के नाम अपने तक सीमित रखे थे जिनसे तथाकथित रूप से साक्षात्कार किया गया। ये अनाम लोग कौन थे? उनकी क्या पृष्ठभूमि थी? शुरू के अनुच्छेदों में मैंने यह बताया है कि कमेटी ने सुनी-सुनाई बातों पर निर्भर किया। सिर्फ यह ही नहीं; कमेटी ने अज्ञात लोगों की सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास भी किया।

स्कूल बस कहानी गढ़ने के लिए सेना और राज्य प्रशासन के विरुद्ध इस दुष्ट उग्रता से लगाये गये आरोपों ने राष्ट्रीय सम्मान और देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को काफी क्षति पहुंचाई। ऐसा कोई विदेशी या देशी संवाददाता नहीं था, जो मुझसे न मिला और उसने इस रिपोर्ट की आलोचना न की हो। जबकि पी० यू० सी० एल० के सम्पर्कों और साधनों के कारण कमेटी की रिपोर्ट पूरे विश्व के अखबारों में छपी, एस० एन० द्रबू और ठाकुर दास जैसे लोगों के पत्रों को किसी अखबार के एक छोटे से कोने में जगह मिली जहां उन पर कोई ध्यान भी नहीं दिया गया।

रिपोर्ट में कुछ और ऐसी बातें थीं जिन पर टिप्पणी की जरूरत है। स्थान की कमी की वजह से, मैं उनमें से कुछ बातें दे रहा हूं।

अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ नं० 23 में कमेटी ने लिखा है —

"जिन लोगों से भेंट की उन मुसलमान लोगों से जब हमने पूछा कि अपने हिन्दू पड़ोसियों को सुरक्षा का पूरा विश्वास दिलाने पर भी वे घाटी को क्यों छोड़ रहे हैं तो उन्होंने जो सफाई दी उस पर ध्यान देना जरूरी है। हमें यह बताया गया कि प्रशासन और विशेषकर जगमोहन ने हिन्दुओं को घाटी छोड़ने और उसके लिए सरकारी वाहनों का प्रबन्ध करके उन्हें प्रोत्साहित किया।"

किसने ट्रकों का प्रबन्ध किया? सरकार का कौन-सा विभाग सम्बन्धित था?

किस तिथि या किन दिनों ये ट्रक चले ? ये कौन अज्ञात मुसलमान थे जिनसे साक्षात्कार किया गया ? और उन्होंने यह किस आधार पर कहा कि जगमोहन हिन्दुओं के प्रवास को प्रोत्साहित कर रहा था ? कमेटी ने इन सवालों की ओर ध्यान नहीं दिया। न ही उन्होंने मुख्य सचिव से दुबारा सम्पर्क किया जब उसने संक्षिप्त ब्योरा देने के लिए कहा। कमेटी ऐसा नहीं कर सकी क्योंकि आरोप कतई मनगढ़न्त थे। इन आरोपों के विरुद्ध जितने लिखित प्रमाण थे, कमेटी ने उन्हें जान-बूझकर का दबा दिया। उदाहरण के तौर पर 1 मार्च को जारी किये गये राज्य सरकार के प्रेस नोट की ओर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। इसमें लिखा था—

"जम्मू काश्मीर के गवर्नर, जगमोहन ने काश्मीरी पंडित सम्प्रदाय से यह अपील की है कि वे घाटी को थोड़े समय के लिए भी छोड़कर न जाएं। उन्होंने कहा कि कानून और व्यवस्था की कार्यप्रणाली एक बार फिर से बनाई जा रही है। बारामूला और अनन्त नाग के नव रचित उपक्षेत्रों के लिए विशेष कमिश्नरों और विशेष डी० आइ० जी० की नियुक्ति के साथ ही राज्य का प्रभुत्व पुनः स्थापित किया जा रहा है। अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देने और उनमें विश्वास बहाल करने का विशेष कार्यभार उच्चाधिकारियों को सौंपा गया है।

इस सम्प्रदाय के जो सदस्य कुछ समय के लिए घाटी से जम्मू चले गए हैं, जगमोहन ने उनसे लौट आने की अपील की है। जो लोग जम्मू से लौटेंगे उनके लिए जगमोहन ने श्रीनगर, अनन्तनाग, बारामूला और कुपवाड़ा की चार जगहों पर कैम्प खोलने का प्रस्ताव भी रखा है। इन जगहों पर विश्राम गृह तथा अन्य सुविधाजनक इमारतें भी इस काम के लिए बनाई जाएंगी।

जगमोहन ने कहा कि इन कैम्पों में आवास निःशुल्क होगा और भोजन तथा अन्य सुविधाओं का प्रबन्ध भी किया जायेगा। हरेक कैम्प में आवश्यक चिकित्सा सहायता भी दी जायेगी। यदा-कदा अपने घर जाने के लिए हर कैम्प के लिए कुछ वाहनों का प्रबन्ध किया जायेगा ताकि इस सम्प्रदाय के लोग सुरक्षा में अपने घरों को देखने जा सकें। इन कैम्पों का संचालन करने तथा उनकी समस्याएं सुलझाने के लिए अलग से एक रिलीफ कमिश्नर नियुक्त किया जाएगा।

जगमोहन ने ऑल स्टेट काश्मीरी पंडित एसोसिएशन के अध्यक्ष तथा सचिव से, जिन्होंने आज उनसे भेंट की, यह गुजारिश की कि वे उन लोगों को जो घाटी छोड़कर कुछ समय के लिए जम्मू में बस गये हैं, वापिस आने के लिए प्रोत्साहित करें।"

इस प्रेस नोट को अनदेखा करना जो कि स्पष्टतः जानबूझ कर किया गया, इस बात को सिद्ध करता है कि कमेटी ने वही कुछ सुना और देखा जो वह सुनना और देखना चाहती थी। कमेटी द्वारा मेरा गलती ढूंढने का जो अनिवार्य पूर्वाग्रह था, वह इतना प्रबल है कि उस पर ध्यान न जाना मुश्किल हो जाता है।

वास्तविक कारण : आतंकवाद का रोमांचकारी रूप

कमेटी और उनके जैसे अन्य लोगों ने असली कारण आतंकवाद के रोमांचकारी रूप पर ध्यान ही नहीं दिया। आइए मैं आपको वह पहलू

दिखाता हूं।

वी० के० गंजू

वी० के० गंजू को उनके एक 'मित्र पड़ोसी' ने (जो कि दूर-संचार विभाग का अधिकारी और श्रीनगर का पुराना निवासी था) बताया कि नजदीक वाली मस्जिद में उसने उन लोगों की सूची देखी है जिन्हें 'खत्म' कर दिया जायेगा और उसमें गंजू का नाम भी शामिल है। गंजू और उसकी पत्नी डर गए। उन्हें वाकई नहीं पता था कि किससे मदद मांगें। उन्हें डर था कि स्थानीय पुलिस के पास जायेंगे तो उनका अन्त और भी जल्दी निश्चित है। सारी रात उन्होंने एक-दूसरे को सूनी आंखों से देखते हुए काटी। कभी-कभी आंसू अनचाहे ही आंखों से ढुलक जाते। अपनी विह्वल कल्पना में उन्हें दरवाजे पर खटखटाहट सुनाई देती। फिर भी, कुछ क्षणों के लिए वे उम्मीद के विरुद्ध उम्मीद बांधने लगते। उन्हें क्यों मारा जाना चाहिए ? आखिर उन्होंने ऐसा क्या किया है ?

उनकी पीड़ा की रात, जो कभी खत्म होती ही नहीं दीख रही थी, अंतत: एक बेहद ठंडे भोर में जा मिली। श्रीमती गंजू अपने पूजा कक्ष में गईं लेकिन बत्ती जलाने की हिम्मत नहीं हुई। तब अर्द्ध अंधकार में वे रसोई में चाय बनाने गईं। जब वे चाय पी रहे थे तो टेलीफोन की घंटी बजी। उसे उठाने की हिम्मत उनमें नहीं थी। वह बार-बार बजता रहा। बार-बार उनके दिल की धड़कनें तेज होती जातीं। यहां तक कि लगता था जैसे चाय भी डर के मारे जम गई हो। वे उसकी गर्मी को महसूस ही नहीं कर सकते थे।

सुबह लगभग नौ बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया, "गंजू साहिब कहां हैं ? हमें उनसे जरूरी काम है।" बाहर से आवाज़ आई। श्रीमती गंजू ने उत्तर दिया, "वे घर पर नहीं हैं। दफ्तर गए हैं।" बाहर से लोगों ने विनम्र शब्दों में कहा, "ऐसा नहीं हो सकता। वे इतनी जल्दी दफ्तर कैसे जा सकते हैं। मेहरबानी करके दरवाजा खोल दें, हमें बेहद जरूरी काम है।" उन्होंने फिर भी इंकार कर दिया। यहां तक कि उन्होंने बाहरी आवाजों का जवाब देना भी बन्द कर दिया। तब खटखटाने की आवाज़ बन्द हो गई। ज़ाहिर है वे लोग जा चुके थे।

श्रीमती गंजू ने ऊपर की खिड़की को थोड़ा-सा खोला और बाहर झांका। बाहर कोई नज़र नहीं आया। लेकिन इससे उन्हें कोई राहत नहीं मिली। उन्होंने अपने पति को सलाह दी कि वे पुलिस और अपने अफसरान को फोन कर दें। उन्होंने ऐसा ही किया। अभी उन्होंने फोन किया ही था कि उन्हें अटके हुए लकड़ी के तख्ते और एक पुरानी खिड़की जिससे गंजू का घर पड़ोस में खुलता था, उस पर किसी के ज़ोर-ज़ोर से मारने की आवाज़ सुनाई दी। कोई घर में घुसने की कोशिश कर रहा था। वे भय से मानो जड़ हो गए। लेकिन, फिर भी किसी तरह श्रीमती गंजू ने अपने पति को छत पर जाकर एक पुराने और खाली ड्रम में छिपने के लिए राजी कर लिया। इस ड्रम के चारों ओर बहुत सारे बोरे रखे थे।

मिनटों में ही दो घुसपैठिए घर में घुस आये—उनमें से एक के पास कालिश्नकोव थी और दूसरे के पास पिस्तौल। उन्होंने गंजू की तलाश में घर का कोना-कोना छान मारा। उन्हें एक छोटा-सा कमरा मिला जिस पर बाहर से

ताला लगाया गया था। उन्होंने इसकी चाबी मांगी। श्रीमती गंजू ने सफाई दी कि चाबी उनके देवर के पास थी जो शहर से बाहर गये हुए थे। उन्हें गुस्सा आ गया। उन्होंने छोटे से दरवाजे को तोड़ डाला लेकिन गंजू का कोई चिन्ह वहा नही मिला। खून की प्यासी आखों से घूरते हुए वे यह कहकर चले गए, "एक चूहा कब तक बच सकता है?" श्रीमती गंजू को यह समझ नही आया कि उनके पति को चूहा क्यों कहा जा रहा है।

गली के एक कोने पर इन दोनों आगन्तुको को पड़ोस के एक घर से एक संकेत मिला। वे वापिस दौडे और बिजली की रफ्तार से गंजू के घर की सीढ़ियां चढ़ने लगे। श्रीमती गजू स्थिर खडी रही, जैसे उन्हे लकवा मार गया हो। वे जानती थीं कि घुसपैठिये कहां जा रहे थे। जल्द ही उन्हें गोलियों की बौछार की आवाज सुनाई दी और वे फर्श पर गिर पडीं। छत पर उनके पति बेजान पड़े थे और टाट के थैले उनका खून सोख रहे थे। ड्रम सीढियों की तरफ लुढ़क गया था। किसी भी चीज़ का घुसपैठियों पर कोई असर नही पड़ा। चुपचाप आसानी से वे चले गए। इस वक्त उन्होने श्रीमती गजू की ओर देखा भी नही, जो अब एक अर्ध-मृतक स्त्री की तरह पड़ी थी। उनकी दर्द भरी सिसकियों पर भी उनका ध्यान नहीं गया।

उस कमेटी के सदस्यो और उन जैसे लोगों ने काश्मीरी आतकवाद के निर्दयी पिंजरे में कैद गंजू से सैकडो भयभीत कबूतरो जैसे व्यक्तियो को देखने की कोशिश भी नही की। न ही उनकी विधवाओं तथा आश्रितो की दर्द भरी सिसकियो को सुनने का उनके पास समय था, न ही रुचि। उनके पास दौरा करने के लिए पूर्व निर्धारित गलियां थीं, बात करने के लिए लोगों के पूर्व निर्धारित वर्ग, पूर्व निर्धारित नतीजे, निन्दा करने के लिए और वापस बुला लेने की मांग करने के पूर्व निर्धारित लक्ष्य।

प्रोफेसर के० एल० गंजू

सोपोर कृषि कॉलेज में गंजू एक सम्माननीय प्राध्यापक थे। उनकी वैज्ञानिक समझ ने उन्हे पहले ही बता दिया कि सोपोर साप का बिल बन चुका है और किसी भी वक्त उनको या उनके परिवार के किसी सदस्य को विषैले साप डस सकते हैं। लेकिन उनकी जो भीतरी काश्मीरी भावुकता थी उससे उन्होने विपरीत नतीजे निकाले। "उसे कोई क्यो नुकसान पहुचायेगा; अपने जीवन में उसने एक मक्खी तक को मारा नही है; उसने अपने स्थानीय समाज की भली-भांति सेवा की है और उसके अनेक मुस्लिम दोस्त तथा प्रशंसक हैं।" वे मन-ही-मन यह तर्क देते।

2 मई 1990 को रात्रि लगभग नौ बजे, जब के० एल० गजू, उनकी पत्नी और उनके रिश्ते के भाई 'पिन्त्रा' खाना खा रहे थे, चार सशस्त्र व्यक्ति, जिनमें से एक के पास कालिश्नकोव तथा अन्य लोगों के पास पिस्तौलें थी, दरवाजे पर आए और उन्हे अपने साथ बाहर निकलने का आदेश दिया। यहा तक कि जब भेडों को बूचडखाने में ले जाया जाता है तो वे चीखती हैं, कराहती हैं और बचने की पूरी कोशिश करती हैं। पर इन तीन असहाय, पीले पड़े, भयभीत लोगों को,

जिनकी नसों में आतंक से खून जम-सा गया था, अपने मृत्यु कक्ष में चुपचाप जाना था। मुहल्ले के लगभग सभी पड़ोसियों ने देखा कि उन्हें ले जाया जा रहा है। उनमें से कुछ ने इन सशस्त्र घुसपैठियों को पहचान भी लिया, जो स्थानीय आतंकवादी दल 'लश्कर अयूब' से सम्बन्ध रखते थे। लेकिन पड़ोसियों में से एक भी, दया की भीख मांगने के लिए एक इंच तक आगे नहीं बढ़ा। वे केवल देखते रहे। यहां तक कि जब कैद किये गए ये लोग और उनके संभावित हत्यारे स्थान से दूर चले गए तो किसी ने नजदीक की सी० आर० पी० चौकी को खबर करने की परेशानी भी मोल नहीं ली। स्थानीय पुलिस को सूचित करना तो बेशक एक औपचारिकता ही होती; क्योंकि शायद उन्हें पहले ही इस बात का पता था। लेकिन यह भी नहीं किया गया। वध करने के लिए निर्धारित जगह, झेलम नदी के निकट एक मस्जिद के पास के० एल० गंजू और उनके दो साथियों को ले जाया गया। बिल्कुल पास से उनके शरीर में छः गोलियां उतार दी गयीं। जब पहली गोली चलाई गई तो उससे बचने के लिए अनचाहे ही उनका हाथ उठ गया जिससे गोली चलाने वाले का निशाना चूक गया। गोली पिस्ता के तलवों में लगी जिससे वह ज़रा-सा घायल हो गया। वह नदी में कूद पड़ा और जिस किसी प्रकार सुरक्षापूर्वक तैर कर बच निकला। घाटी में कुछ दिन डरकर छिपते-छिपाते, वह अंततः जम्मू की ओर बच निकला।

कुछ रहस्यमय वजहों से गंजू का शव रात में मस्जिद में ही रखा गया और उसके बाद नदी में फेंक दिया गया। बाद में गिरफ्तार किये गए एक हत्यारे के अनुसार श्रीमती गंजू को भी निर्दयतापूर्वक मारा गया, उनके शव को एक पत्थर के साथ बांधकर झेलम में फेंक दिया गया। लेकिन उनका शव कभी प्राप्त नहीं हो पाया।

यह तो उनमें पड़ोसियों के बारे में है जिनके निरर्थक शब्दों और प्रभावहीन आश्वासनों को कमेटी के दल ने महत्त्वपूर्ण समझा।

श्रीनगर और सोपोर से आइए मैं आपको ग्रामीण काश्मीर में ले चलूं तब आपको पता चलेगा कि आतंकवाद का दैत्य कितना निर्दयी हो सकता है।

'प्रेमी'

प्रेमी की दुःखद कहानी एक कवि की कहानी है—उस कवि की, जो प्रेम, भाई-चारे, सत्य और न्याय का दूत था, एक कवि, जिसने काश्मीरी में भगवद् गीता का अनुवाद किया था, एक कवि जिसने अपने घर में कुरान को आदरपूर्वक रोज़ अध्ययन करने के लिए रखा था और वह कवि जिसने लम्बा समय सरकारी अध्यापक की तरह काम करते हुए बिताया था और अनेक दिमागों को शिक्षा के अमूल्य उपहार से प्रकाशित किया था। इस भली आत्मा को, अपने 27 वर्षीय जवान बेटे के साथ धोखाधड़ी से और सबसे निर्दयी तरीके से मार दिया गया।

सेवा निवृत्त होने के बाद सर्वानन्द कौल 'प्रेमी' सपरिवार अनन्तनाग जिले के शाली गांव में रहने लगे थे। उनका अधिकतर समय स्थानीय अखबारों और पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने और अध्ययन में बीतता था।

उनके परिवार के कुछ सदस्य प्रायः इस दूरवर्ती गांव में रहने की वजह से

सुरक्षा की कमी के प्रति अपना भय व्यक्त करते और प्रवास का सुझाव देते। लेकिन प्रेमी हमेशा उनकी बात को यह कहकर काट देते कि अपनी मिट्टी, जिसमें उनकी जड़ें इतनी गहरी थीं, उससे अलग होने की बात तो वे सोच भी नहीं सकते। और फिर, उस मुहल्ले में उनका ध्यान रखने के लिए उनके अनेक पुराने छात्र और दोस्त भी तो थे।

लेकिन 30 अप्रेल, 1990 की रात को उन्हें इस वास्तविकता का एहसास हुआ कि उनके काव्यात्मक विश्वास और संवेदनाओं की दुनिया का अस्तित्व खत्म हो चुका है और कट्टरपंथी तथा धर्मान्ध भयानक आक्रमण के सामने पुरानी ईमानदारी और दोस्ती असहाय पड़ चुकी हैं। उस रात किसी भी तरह अपने शिकार को फांसने के लिए तैयार भूखे भेड़ियों के समान तीन सशस्त्र आदमी प्रेमी के घर आए। उन्होंने घर के अन्य सदस्यों को एक कमरे में बन्द कर दिया और 67 वर्षीय प्रेमी को अपने 'कैम्प' मे कुछ पूछताछ करने के लिए चलने को कहा।

कुछ मुसलमान पड़ोसी आए और उन्होंने प्रेमी की तरफदारी भी की। लेकिन उनके विनम्र विरोध का कोई असर नहीं हुआ। ये मृत्यु दूत, धोखा . की कला में भी निपुण थे। उन्होंने अपने धर्म की कसम खाकर कहा कि प्रेमी ... कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जायेगा। उनके पुत्र वीरेन्दर कौल ने जिद्द की कि जो भी सवाल पूछे जाने थे, वे घर के एक अलग कमरे में भी पूछे जा सकते थे। लेकिन घुसपैठिए तैयार नहीं हुए? वे कैसे तैयार हो सकते थे? उन्हें तो प्रेमी को अपने यातना शिविर में ले जाना था। उन्होंने वीरेन्दर कौल को भी साथ ले लिया।

किसी ने भी, यहां तक कि पुराने रिश्तेदारों और मुस्लिम दोस्तों ने भी पुलिस में इसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं करवाई। भय के वातावरण ने सभी पुराने स्नेह सम्बन्धों को भावहीन कर दिया था।

दो दिन की दर्दनाक बेचैनी के बाद वह भयानक खबर आई। दो मृतक शरीरों को फासी पर लटके हुए पाया गया था जिनके अंग तोड़ दिये गए थे, बाल उखाड़ दिये गए थे और उनकी खाल के कुछ हिस्सों को खोलकर जला दिया गया था।

विस्मित कर देने वाले प्रस्ताव

उस कमेटी के बारे मे आप क्या कह सकते हैं जो इस विचार को सामने लाती है कि भयभीत कर देने वाले वातावरण की वजह से नहीं, नृशंस बना दिए गये प्राकृतिक दृश्य, हत्यारों की निर्दयी कालश्निकोव, बम विस्फोट और आगजनी, धमकाने वाली टेलीफोन कॉल, मस्जिदों में लगाये गए सैकड़ों लाउडस्पीकरों से जिहाद के उन्मत्त आह्वान की वजह से नहीं, कुरान को एक हाथ और बन्दूक को दूसरे हाथ में रखने के तिराना-ए-काश्मीर, गंजू, टिक्कू और प्रेमी जैसी अनेक मानवीय त्रासदियों या 'एक को मारकर हजारों को डरा देने वाले' दुष्ट षड्यन्त्रों की वजह से भी नहीं बल्कि ट्रकों की नियुक्ति ने काश्मीरियों को ठण्डे और स्फूर्तिदायक श्रीनगर को छोड़कर गर्म और असत्कारशील जम्मू के कैम्पों में बसने के लिए विवश किया। आप हाई कोर्ट के उन भूतपूर्व न्यायाधीशों के न्यायिक

गुणों के बारे में क्या कह सकते हैं जिन्होंने ऐसे प्रस्तावों पर अपने नाम की मुहर जाने दी। अगर बरसों पुरानी लापरवाही तथा हठधर्मिता इसकी वजह नहीं है, तो देश की कानूनी व्यवस्था के बारे में क्या कहा जा सकता है जहां न्याय प्रणाली के ऐसे तेजस्वी व्यक्ति किसी-न-किसी समय बिन्दु पर राज्य की उच्चतम अदालतों की शोभा बढ़ाते रहे हैं!

इसे गलत जानकारी कहें या धोखा, बनावटीपन या उथलापन, लापरवाही कहें या असावधानी, व्यक्तिपरक कहें या पक्षपात, वास्तविकता यह है कि देश और विश्व के एक बड़े भाग को काश्मीरी पंडितों के 'प्रोत्साहित प्रवास' के बारे में गलत जानकारी दी गई। कमेटी की रिपोर्ट का ऐसा हानिकारक प्रभाव हुआ, जो संक्षेप में गम्भीर मानवीय त्रासदी के शिकार लोगों पर किए गये एक क्रूर मज़ाक से कम नहीं था।

प्रसंगवश, उन ट्रकों के नम्बर कहां थे जिन्हें कमेटी ने मुख्य सचिव को देने का वायदा किया था? उन नम्बरों को इसने अपनी रिपोर्ट में ही क्यों नहीं छापा? वे जमीन के टुकड़े, उनके नम्बर और मुहल्ले कहां हैं जो जगमोहन प्रशासन द्वारा तथाकथित रूप से काश्मीरियों को बतौर प्रेरणा दिये थे? उस राष्ट्र के भविष्य का क्या निर्णय लिया जायेगा जो अपने लोगों को विभाजित होने दे रहा है, जो 'महत्त्वपूर्ण' लोगों की छत्रछाया में इन्दरमोहन और कुमारी सोहाली जैसे लोगों द्वारा गढ़ी गई तुच्छ और बनावटी बातों से अपनी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को मलिन होने दे रहा है?

'काश्मीरी पंडित बचाओ आन्दोलन समिति' ने अपनी अपील में ठीक ही कहा है, "क्या यह निर्दयता नहीं कि हमारे द्वारा अराजकता और हिंसा के स्थान को छोड़े जाने के पीछे कोई उद्देश्य, कोई प्रोत्साहन देखा जा रहा है और यह आरोप लगाया जा रहा है कि प्रवासियों ने श्रीनगर के उच्चाधिकारियों के कहने पर ऐसा किया। क्या इन स्वार्थी और पक्षपाती लोगों को यह बताना पड़ेगा कि अपनी जमीन को, जिसे वह एक मां के रूप में प्यार करता है, उसे छोड़कर जाने का एक छोटा-सा विचार भी काश्मीरी पंडितों के लिए कितना पीड़ाजनक होता है।"

1 मई 1990 को जारी अपनी रिपोर्ट में काश्मीरी माईग्रेन्ट फोरम ने भी कमेटी की रिपोर्ट पर ऐसे ही विचार प्रकट किये—

"आतंक और विघटन, हत्याओं और अपहरणों, बम विस्फोट और लूटमार की घटनाओं के कारण जिन लोगों को अपने पैतृक घर छोड़कर भागना पड़ा और उष्ण कटिबंधी गर्मी में किसी शरणार्थी कैम्प में करुणास्पद जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा, उन लोगों के लिए इससे ज्यादा क्रूरता और अपमान क्या हो सकता था? क्या ये स्वयं को मानवीय अधिकारों के हिमायती समझने वाले लोग समझदार और पढ़े-लिखे काश्मीरी पंडितों को इतना बेवकूफ समझते हैं कि वे अपने घर, अपनी सम्पत्ति, अपनी नौकरी सिर्फ अफवाहों की वजह से छोड़ देंगे? या उन्हें यह लगता है कि ये काश्मीरी पंडित जम्मू, दिल्ली या अन्य स्थानों पर सामूहिक पिकनिक मनाने गये हैं?

वी० एम० तारकुण्डे और उनके साथी श्रीनगर में पहले ही से यह निश्चय करके आये थे कि खाड़कुओं के पथ का पूर्णतः समर्थन करना है, जगमोहन

प्रशासन की गलतियां निकालना है और हर ज्यादती के लिए सुरक्षा बलों को दोषी ठहराना है।"

सितम्बर, 1989 के बाद से काश्मीरी पंडितों में एक घोर भय घर कर गया था। उस समय, इस सम्प्रदाय ने वही महसूस करना शुरू कर दिया था जो उन्होंने 'अठारहवीं शताब्दी' के उत्तरार्द्ध के दौरान महसूस किया था जब अफगान उनके पीछे पड़े थे;

> "ऐ दिल, शहर में भय है,
> त्रास है,
> यात्रा के लिए तैयार हो जा
> अव्यवस्था का शहर में बोलबाला है।"

मुझसे पहले गवर्नर जनरल के० वी० कृष्णा राव (सेवा निवृत्त) को जम्मू की काश्मीरी पंडित सभा और दूसरी संस्थाओं ने 16 जनवरी, 1990 को दिये गए अपने ज्ञापन में कहा—

"*राज्य सरकार की प्रभावहीनता, लूटपाट और मासूम लोगों की हत्याएं* रोकने में असफल रही हैं। घाटी में आजकल सरकार की बजाय, आतंकवादियों का शासन है। सत्तारूढ़ राजनैतिक बलों को अलगाववादियों के क्रोध से बचकर सिर्फ स्वयं को जस का तस बनाये रखने से मतलब है। अनन्तनाग, सोपोर, बारामुल्ला, पुलवामा, इश्बर, विचारनाग, शोपियां और घाटी के दूसरे क्षेत्रों में हुई घटनाएं इस बात का संकेत देती है कि अल्पसंख्यकों पर हमला करना कट्टरपंथियों का पूर्व नियोजित षड्यन्त्र है। शोपियां में 15 दिसम्बर, 1989 को अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के आदमियों, औरतों और बच्चों पर निर्दयता पूर्वक हमला किया गया और महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया। महंत केशवनाथ, टिक्कालाल टपलू, एन० के० गंजू, प्रेमनाथ भट, अजय कपूर और अन्य लोगों की हत्या इस उद्देश्य से की गई कि अल्पसंख्यकों में भय और आतंक पैदा हो ताकि वे घाटी छोड़ने पर विवश हो जाएं। इस निर्गमन की गति अब और बढ़ गई है।

वर्तमान प्रशासन पर यह दुःखद टिप्पणी है कि अब तक पुलिस द्वारा अल्पसंख्यकों पर हमला करने वालों में से एक को भी न तो पहचाना गया न ही गिरफ्तार किया गया। पूरी तरह से भूमिगत पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित तत्वों का आधुनिक हथियारों से लैस होकर सुरक्षा बलों से खुले आम जूझ पड़ना, इस बात को बिलकुल साफ-साफ जाहिर करता है कि राज्य सरकार कार्यकुशल नहीं है और इसके ही कुछ उच्चाधिकारी इस पूरे षड्यन्त्र में शामिल हैं। 13-1-1990को राज्यमंत्री अली मुहम्मद सागर द्वारा प्रेस में दिया गया यह वक्तव्य कि समय फिर से 1953 में लौट गया है, इस बात का सूचक है कि नेशनल कान्फ्रेंस के राजनीतिक नेताओं का दिमाग इसके पीछे काम कर रहा है।"

वास्तव में, काश्मीरी पण्डित एक अर्से से असुरक्षित महसूस कर रहे थे। फरवरी 1986 में जब मैंने झगड़ों के बाद अनन्तनाग जिले के गावों और कस्बों का दौरा किया था, तब उनके भयभीत चेहरे मुझे आज भी अच्छी तरह याद हैं। इस संदर्भ में मैं 5 मार्च को अपने द्वारा गृहमंत्री एस० बी० चह्वाण को लिखे गये पत्र को यहां देने से बेहतर कुछ नहीं कर सकता। इस पत्र की एक प्रति प्रधान-

मंत्री राजीव गांधी को भी भेजी गई थी—

"चार जिलों—अनन्तनाग, श्रीनगर, बारामूला और डोडा के लगभग सभी दंगाग्रस्त इलाकों का मैं दौरा कर चुका हूं। वानपोह, लुकभवन, फतेहपुर, गौतमनाग, सलैर, अकूरा, सोपोर और डोडा की लगभग सभी धार्मिक या व्यक्तिगत इमारतें जिन्हें क्षति पहुंची है, उन्हें देखा है।

व्यक्तिगत सम्पत्ति—काश्मीरी पण्डितों के घरों, दुकानों और मन्दिरों को भारी क्षति पहुंची है। लेकिन इससे कहीं ज्यादा क्षति काश्मीरी पंडितों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को हुई है। वे अब भयभीत कबूतरों की तरह वहां रह रहे हैं। वान्पोह या वोनीगुंड, अकूरा और सलैर के कुछ गांवों में उनके आतंकित चेहरों ने मुझे युद्ध के दौरान गैस चैम्बरों में भेजे जाने वाले जर्मन यहूदियों के चेहरों की तस्वीर की याद दिला दी। मुझे देखकर उन्होंने रोना, दुःख प्रकट करना शुरू कर दिया और तत्काल काश्मीर घाटी को खाली करने की मांग की। उन्हें धन या अन्य किसी तरह की सहायता नहीं चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि चूंकि उनकी सम्पत्ति, सम्मान और जीवन सुरक्षित नहीं रहा, सब उनके लिए निरर्थक है। मैंने अपनी तरफ से उनकी आहत भावनाओं को सहलाने का भरसक प्रयास किया लेकिन अगर उनके घाव भरने हैं तो उन्हें भरने में अभी बहुत समय लगेगा।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राज्य सरकार और जिला तथा उपक्षेत्रीय प्रशासन द्वारा मुझे और केन्द्रीय सरकार को गलत रिपोर्ट भेजी गई। उन जगहों पर जो कुछ मैंने देखा वह उससे काफी अलग था जो रिपोर्ट में लिखा गया था। उदाहरण के लिए वोनीगुंड गांव में हुए नुकसान का, जहां 29 फरवरी, 1986 को भयानक हमला हुआ था, कोई संकेत उस रिपोर्ट में नहीं है जो राज्य सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार को 4 मार्च 1986 को भेजी गई। यहां 7 घरों को बिलकुल जला दिया गया था, 8 को आंशिक रूप से नुकसान हुआ था और उन्हें लूट लिया गया था, 3 मन्दिरों और एक दुकान को जला/गिरा दिया गया था। जिला मुख्यालय से यह गांव 3/4 किलोमीटर भी दूर नहीं है। केवल यही तथ्य वर्तमान व्यवस्था की बहुमुखी कमजोरियों को दिखलाता है, जिसका गहन विश्लेषण मैं समय-समय पर अपनी मासिक रिपोर्ट में करता रहा हूं।"

काश्मीरी पंडित और उनका इतिहास

फरवरी 1986 में, जब से मैंने काश्मीरी पंडितों की दुर्दशा बहुत करीब से देखी है, मैं उनकी नियति पर विचार कर रहा हूं। यह वह सम्प्रदाय है, जिसका इतिहास एक ओर तो अपनी उपलब्धियों के लिए स्पर्द्धा पैदा करता है तो अपनी दुर्दशा के लिए दुःख भी। अगस्त 1947 के बाद एक तरह से इसके सदस्यों ने भारत पर शासन करने में एक अहम् भूमिका अदा की है। दूसरी तरफ, घाटी में असुरक्षा की एक गहन भावना हमेशा उनका पीछा करती रही। एक तरह से यह सुगठित सम्प्रदाय रहा है, लेकिन दूसरी तरफ बुरी तरह से विभाजित और नेतृत्वहीन। उसका अतीत विजय और त्रासदियों का एक लम्बा इतिहास रहा है—संतुलित और मूक विजय तथा भयानक और उग्र त्रासदियां। काश्मीर के मौसम की तरह ही इसके दीप्त सुनहरी और कड़क दिन भी, बाढ़, भुखमरी और

काले, निराशाजनक बादलों से घिरे रहे। काश्मीरी पंडित समुदाय की प्राचीनता और उनके आर्य मूल की वास्तविकता सिद्ध हो चुकी है। जैसा कि दूसरे अध्याय में हर्ष के काल को छोड़कर इतिहास का विश्लेषण किया गया है, जब काश्मीरी पुरोहितों को सताया गया। उस समय के हिन्दू राजाओं के शासन के दौरान वे एक शक्तिशाली कुलीन वर्ग माने जाते थे। उनकी भौतिक जरूरतें अधिकतर शाही परिवारों और संस्थानों द्वारा पूरी की जाती थीं। समाज पर उनका इतना प्रभाव था कि सामूहिक उपवास रखकर वे राजा को अपनी तर्कपूर्ण या अतार्किक मांगों को मानने के लिए बाध्य कर देते थे।

मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के बाद सुलतान सिकन्दर (1389-1413) के शासन काल में यह समुदाय अपने सर्वाधिक दुःखद समय से गुजरा, जिसका कारण *सुलतान सिकन्दर का मुख्यमन्त्री सुहाभट्ट था*, जो धर्म परिवर्तन से पहले स्वयं ब्राह्मण था। उत्पीड़न और बाध्य धर्म परिवर्तन की कोई सीमा ही नहीं थी। जैसा कि फरिश्ता ने लिखा है, अनेक ब्राह्मणों ने अपना धर्म और देश त्यागने से पहले जहर खा लिया, कुछ स्वदेश छोड़कर चले गये, कुछ बच निकले और कुछ ने निर्वासन से बचने के लिए मुस्लिम बनना स्वीकार कर लिया।" जोनराजा की राजतरंगिनी इस दुःखद वास्तविकता को इन शब्दों में व्यक्त करती है, "ब्राह्मण परदेश भाग निकले, पुत्र ने पिता को छोड़ दिया और पिता ने पुत्र को। जिन कठिन रास्तों से वे गुजरे, जितना कम भोजन खाया, जितनी पीड़ाजनक बीमारियां और कष्ट उन्होंने जीवन में भोगे—उनसे नर्क का डर भी उनके दिमाग से जाता रहा। केवल ग्यारह पंडित परिवार शेष रहे।"

हो सकता है कि संख्या केवल प्रतीकात्मक रूप से सही हो, लेकिन सच्चाई यह सामने आती है कि सुलतान सिकन्दर के शासन के अन्त में धर्म परिवर्तन, अत्याचार और उसके परिणामस्वरूप बाहर भाग जाने की वजह से काश्मीरी ब्राह्मण बहुत कम संख्या में शेष रहे। जैसा कि दूसरे अध्याय में बताया गया है कि सुलतान जैन-उल-अबिदीन ने इस धार्मिक उत्पीड़न की नीति को उल्टा कर दिया और प्रवासियों को लौट आने की तथा जिनका धर्म परिवर्तन हुआ था उन्हें पुनः *अपना धर्म अपनाने की अनुमति दे दी। बहरहाल*, 15वीं शताब्दी के अन्त में शम्सुद्दीन इराकी के प्रभाव में काश्मीरी ब्राह्मणों को एक बार फिर सताया गया।

इस प्रकार 15वीं शताब्दी काश्मीरी पंडित समुदाय के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण समय रहा। इस शताब्दी से पहले यह समुदाय सुगठित था, जो 199 गोत्रों में बंटा था, जिनमें हर एक गोत्र के सदस्य अपना उद्‌गम उस ऋषि से मानते थे, जिसका नाम उनका गोत्र धारण करता था। इन गोत्रों में अब उन काश्मीरी पंडितों, जो घाटी में रहे थे और सारा अत्याचार सहा था और जो चले गये थे फिर लौटकर आये—इन दो वर्गों का अन्तर भी जुड़ गया। पहला वर्ग 'मालमासी' और दूसरा वर्ग 'भानमासी' कहलाया। प्रचलित भाषा में जो लोग घाटी में ठहर गये थे, उन्हें 'मुच्ची हड्डी' और जिनका पुनः धर्म परिवर्तन किया गया था उन्हें 'मूठी हड्डी' कहा जाने लगा।

मुगल शासन जब काश्मीर में शुरू हुआ तब तक काश्मीरी पंडितों ने एक बार फिर अपना सन्तुलन और स्थिति बेहतर बना ली थी। मुगल तहजीब और प्रशासन के तरीकों से उन्होंने तादात्म्य बना लिया। दरबारी भाषा—फारसी पर

उनका अधिकार महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। प्रशासन व्यवस्था के मध्य स्तर पर पंडित रीढ़ की हड्डी बन गये। जब बादशाह अकबर ने मातृण्ड मन्दिर जाकर सोने-जवाहरात से लदी एक गाय भेंट की, तो उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। ग्यारह से उनकी संख्या बढ़ गई। अकबर के जमाने में अबुल फजल के अनुसार उनकी संख्या दो हजार थी।

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ काश्मीरी पंडितों को एक बार फिर दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। कुछ मुगल मंत्री धर्मान्ध थे और फिर बलात् धर्म परिवर्तन हुए। इस सम्बन्ध में काश्मीरी पंडितों के गुरु तेग बहादुर के पास जाने की कहानी जो दूसरे अध्याय में बताई जा चुकी है, काफी कुछ प्रकट करती है। अफगानी शासन दूसरे काश्मीरियों की तरह काश्मीरी पंडितों के लिए भी अत्याचार और दुःख लाया।

समय के साथ-साथ काश्मीरी पंडित उत्तरी भारत के दूसरे भागों में जाकर बस गये। यह आंशिक रूप से उत्पीड़न का और उन अवसरों का परिणाम था जो दिल्ली के मुगल दरबार, लाहौर के सिख दरबार, अवध के नवाब का राज्य और केन्द्रीय भारत तथा राजपूताना के देशी राज्य प्रदान करते थे। 1831 के अकाल के परिणामस्वरूप उपजी निस्सहायता ने घाटी की जनसंख्या को 8,00,000 से 2,00,000 कर दिया। 1879 के अकाल में 3/5 जनसंख्या का मिट जाना, प्रवास के मुख्य कारणों में से था। तीर्थ यात्रा पर जाना—इसका दूसरा कारण था। हालांकि अवसर मिलने पर तीर्थ यात्री तत्काल मंदिर से दरबार में बस जाते थे। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध राजा नरेन्द्रनाथ के प्रपिता पंडित किशनदास "गंगा किनारे के मंदिर से जमुना के किले तक गये और मुगल दरबार में अपनी यात्रा खत्म की।"

काश्मीरी प्रवास के बारे में धन्वन्थी रामाराऊ ने अपने संस्मरण, 'एक विरासत' में लिखा है :

"वे (पंडित) एक अलग देश में पहुंचे और वहां के जीवन के लगभग अलग तौर-तरीके अपने जीवन में उतार लिये। उनके परिधानों में बदलाव आया—ढीले लबादे और सिर का ढकना—औरतों के लिए साड़ी और पुरुषों के लिए पायजामे और लम्बे कोट में या फिर मुस्लिम मुगल दरबार के निर्देशानुसार कुरते चूड़ीदार पायजामे में बदल गया। उन्हें एक नयी भाषा और नये तौर-तरीके सीखने पड़े और उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों के सपाट और सूखे दृश्यों का आदी होना पड़ा। बहरहाल, उन्होंने अपना नाम नहीं बदला और उन रीति-रिवाजों का पालन करते रहे जो विशेषकर उन्हीं के समुदाय से सम्बन्ध रखते थे।

जिन्होंने घाटी छोड़ दी, उन काश्मीरी पंडितों और उत्तरी भारत के ब्राह्मणों में काफी फर्क था। उत्तर भारतीय ब्राह्मण बहुत रूढ़िवादी, शाकाहारी और कुछ अपवादों को छोड़कर, धर्म के सच्चे ज्ञान और पठन-पाठन में कमजोर थे, लेकिन काश्मीरी पंडित मांसाहारी, शिक्षित, फारसी जानने वाले, परम्परा का पालन करने वाले और समयानुसार स्वयं को ढालने वाले थे। वे अपने विचारों और विश्वासों में भी उदार थे। जब पुरुष शासक के सभी सामाजिक नियमों का पालन करते थे। फारसी और उर्दू शायरी करते और दरबारी मुशायरों में भाग लेते थे—उनकी महिलाएं अपने धर्म के रीति-रिवाजों का पालन करती थीं और

घर पर भजन गाती थी। प्रवासियों में स्वकेन्द्रित होने की प्रवृत्ति भी आ गई थी। वे मित्रों व सम्बन्धियों से थोड़ा बहुत ही सम्पर्क रखते थे। उन्होने एक ऐसी संकर सस्कृति बना ली जिसकी अदृश्य जड़ें घाटी में थी तो कुछ ताजी जड़ें नये स्थानोंपर।"

मिथ्या कथनों का दूसरा जाल

'कमेटी फॉर इनीशिएटिव ऑन काश्मीर' के दूसरे प्रतिवेदन 'बन्दी काश्मीर' मे पाये जाने वाले मिथ्या कथनो के दूसरे जाल के सम्बन्ध में अब मैं संक्षेप में बताऊंगा। स्थान की कमी के कारण मैं केवल कुछ ही ऐमी घटनाओ का वर्णन करूंगा जिनमे वास्तविक सत्य स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है।

प्रतिवेदन के पृष्ठ 38 पर किसी 65 वर्षीय गुलाम हसन मोहजू ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस द्वारा यातना पाने की अपनी कथा का वर्णन किया है। अपने वर्णन के अन्तिम भाग मे वह कहता है—

"डॉक्टर आया और कुछ दवायें दी गई। जब मुझसे हथियारो के बारे में पूछा गया, मैंने जवाब दिया कि मैंने अपनी जान बचाने के लिए झूठ बोला था। दोबारा मार-पीट शुरू कर दी गई। एक तीन सितारो वाला अधिकारी आया। मैंने उससे कहा—जब मैं झूठ बोलता हू, तुम मारना बन्द कर देते हो और सच बोलने पर पीटते हो। तब उन्होंने मुझे एक यूनीफार्म पहनने को मजबूर किया। मुझे एक जीप मे डाल दिया गया और 5 बजे सुबह बारामूला वापस लाया गया। उन्होंने जगह-जगह मेरे मकान का फर्श खोदा और तलाशी ली और मुझे वापस ले गये। मेरी पिटाई फिर से शुरू हो गई। फिर उन्होंने मुझे हथकडी पहना दी और यह सोचकर कि मैं मर चुका हू मुझे कूडे के एक ढेर पर फेंक दिया। दो दिन बाद भी मुझे जिन्दा पाने पर वे मुझे सोपोर पुलिस स्टेशन ले गये और वहा छोड़ दिया।"

इस कहानी का झूठापन स्पष्ट झलकता है। जरा कल्पना करिए कि सी० आर० पी० उपलब्ध डॉक्टर से पुष्टि करवाने के बजाय एक आदमी को स्वयं मरा समझ लेती है। जरा सोचिये कि एक आदमी जिसको सी० आर० पी० ने उसके घर के सामने पकड़ा हो, वह इतनी मूर्ख हो सकती है कि उसे मरा समझ कर बारामूला मे कूडे के एक ढेर पर छोड जाये। यह भी विचारिये कि एक ऐसे शहर मे जहां छोटी-से छोटी घटना भी अनदेखी नही रहती, एक बुरी तरह पिटा और हथकड़ी बंधा 65वर्षीय वृद्ध कूडे के ढेर पर दो रात और दिन तक पडा रहता है और उसे कोई नही देख पाता। इससे आगे यह भी विचारिये कि सी० आर० पी० दल उसी स्थान पर दोबारा आकर 'मरे' हुए आदमी को उठाता है और उसे सोपोर ले जाता है, लेकिन किसी की भी नजर मे यह घटना नहीं आती।

"वह चश्मदीद गवाह की तरह झूठ बोलता है।" क्या यह रूसी कहावत पूरी तरह मोहजू के उपर्युक्त कथन पर ठीक नही बैठती? और कोई एक ऐसी समिति की प्रामाणिकता तथा धारणा के बारे मे क्या कह सकता है जो एक भी स्पष्ट प्रश्न पूछे बिना ऐसे विवरण को स्वीकार कर अपने प्रतिवेदन में दर्ज कर

लेती है ? समिति यह दर्ज करके ही नहीं रह जाती, वह उच्च न्यायालय की मुद्रा धारण करके टिप्पणी करती है—"चिन्ताजनक विषय यह था कि सुरक्षा बल ऐसी लापरवाही से हिंसा कर सकते थे।"

प्रतिवेदन के पृष्ठ 33 पर महिला वकीलों का निम्नलिखित आरोप सच्चाई के रूप में स्वीकारते हुए लिखा गया है—

"सीमा सुरक्षा बल (बी० एस० एफ०) की महिलाएं हमसे 'जय माता की' जयकार लगाने के लिए कहती हैं और लड़कियों को धमकाती हैं कि वे उन्हें दिल्ली ले जाकर वेश्याएं बना देंगी या मन्दिर में ले आकर तिलक लगा देंगी। क्या यही धर्मनिरपेक्षता है ?"

किसी भी जानकार आदमी के लिए यह झूठ बहुत स्पष्ट है। सीमा सुरक्षा बल में कोई भी महिला बल नहीं। आरोप लगाने वालों और उन्हें स्वीकार करने वालों की बदनीयती बिलकुल स्पष्ट है। यह अनर्थकारी षड्यन्त्र अपने कथन को खुद झूठा साबित करता है। एक विशेष प्रकार का प्रभाव डालने के लिए 'जय माता की' जैसी अभिव्यक्तियों को गढ़ा गया है। यह आरोप साधारण लोगों द्वारा नहीं वरन् वकीलों द्वारा लगाये गये हैं जो कानून में कुशल होते हैं और भिन्न रूप से जनकार्यों में सक्रिय रहते हैं। यह कमेटी मुख्य बातों तक से अनजान है फिर भी इसमें साधिकार इस विषय पर बोलने की निर्लज्जता है।

कमेटी अपने प्रतिवेदन के पृष्ठ 62 पर कंठबाग, बारामूला के अब्दुल अहमद सफी के आरोप का वर्णन करती है। वह कहता है—"24-25 अप्रेल की रात को 49 अन्य लोगों के साथ सेना ने मुझे अकारण पकड़ लिया और हमें सब के सामने मल-मूत्र रखने के लिए मजबूर किया गया।" प्रतिवेदन के दूसरे भागों में बारमूला में की गई तलाशियों का भी जिक्र है।

जब बारामूला के वकीलों के हस्ताक्षरों से युक्त ऊपर लिखी शिकायत तथा ऐसी ही अन्य शिकायतें मेरे पास आईं, मैंने उन्हें तत्काल बारामूला के स्पेशल कमिश्नर सी० फोनसोग और कोर कमाण्डर लेफ्टीनेन्ट जनरल एम० ए० ज़की को भिजवा दीं। इसकी जांच करने के बाद फोंनसोग ने निम्नलिखित रिपोर्ट भेजी—

"सुरक्षा बलों के अनुरोध पर जिला प्रशासन ने चार मजिस्ट्रेट और चार पुलिस दल सुबह 6 बजे तक उन्हें दे दिये थे। इसके साथ ही सुबह 6 से 8 के बीच तलाशियां शुरू हो गयी थीं और दिन के उजाले में ही शाम 6 बजे तक की जाती रहीं। तलाशियां किये जाने वाले क्षेत्र के अनेक स्त्री, पुरुष मुझसे दूसरे दिन मिलने आये। किसी ने भी महिलाओं का अपमान करने, बहुमूल्य वस्तुओं के चुराये जाने, दबाव डालने या पवित्र स्थानों या ग्रन्थों को अपवित्र करने, संपत्ति को नुकसान पहुंचाने, दबाव डाल कर कोई बात मनवाने, गन्दा पानी पीने या मुंह को मल से मैला करने आदि की कोई शिकायत नहीं की। जिन लोगों के घरों की तलाशियां ली गई थीं, उन्होंने बताया कि उनके घरों से एक सुई तक नहीं उठाई गई। इसका अपवाद एक घटना तक नहीं थी। जिन अधिकारियों की देख-रेख में तलाशियां ली जा रही थीं उन्हें लोगों ने आम तौर पर समझदार और दयालु ही बताया था।"

जनरल ज़की की रिपोर्ट के तथ्यों की लद्दाख से आये वरिष्ठ आई० ए०

एस० ऑफीसर फॉनमोग ने भी अपने विवरण से पुष्टि की।

उपर्युक्त प्रतिवेदनों और मेरे द्वारा की गयी अन्य जांचों से यह स्पष्ट हो गया कि 25 अप्रैल, 1990 को ली गई तलाशियों में निवासियों द्वारा वास्तव में कोई आरोप नहीं लगाया गया था। ये आरोप बाद में बारामूला के उन वकीलों द्वारा जो जमाते इस्लामी के सक्रिय सदस्य थे, तीन दिन बाद गढ़ कर ज्ञापन-पत्र में शामिल किये गये और अधिकारियों तथा प्रेस को भेज दिये गये। कमेटी ने इन झूठे आरोपों को सच्चा मान लिया। वैसे भी क्या कोई ऐसा व्यक्ति जो हमारे नागरिक और सैनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण व स्वभाव से परिचित है, यह विश्वास करेगा कि वे कथित आरोपों के कार्यों को करने की अनुमति दे सकते हैं?

तथ्यों को दबाने और उपेक्षा करने की विधि

इस अध्याय में वर्णित दोनों प्रतिवेदनों की एक विशेषता वास्तविक तथ्यों को दबाने और अनदेखा कर देने की है। मैं इस बारे में कुछ उदाहरण देता हूं।

प्रतिवेदन के पृष्ठ 26 पर 'बंदी काश्मीर' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है—

"राज्यपाल जगमोहन ने इस 'धारा' में से 'राज्य में' शब्दों को निकाल कर संशोधित कर दिया। इस संशोधन के फलस्वरूप इस कानून के अन्तर्गत जो भी व्यक्ति जम्मू-काश्मीर में बंदी बनाया जाता है उसे देश के किसी भी भाग में स्थानान्तरित किया जा सकता है।"

महत्वपूर्ण बात यह है कि कमेटी इस संशोधन की तर्कसंगति को अनदेखा कर देती है। वह एक महत्वपूर्ण तथ्य को दबा जाती है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधन के तर्कसंगत होने को स्वीकार कर लिया था और सही माना था।

केन्द्रीय कानून तथा अन्य सभी राज्यों के कानून बंदी बनाये गये व्यक्ति को उसके राज्य से दूसरे राज्य में भेजने की अनुमति देते हैं। जो कुछ दूसरे राज्यों में वैध और न्यायसंगत है उसे जम्मू और काश्मीर राज्य में भी न्यायसंगत तथा वैध होना चाहिए, विशेष रूप से जब वह विघटन और आतंकवाद के चंगुल में है।

कमेटी आरोप लगाती है कि काश्मीरी पंडितों के अतिरिक्त राज्य में जो लोग मारे गये हैं उनके आश्रितों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया। यहां पुनः कमेटी ने वास्तविक तथ्यों को दबा दिया। आतंकवादी हिंसा के शिकार सभी निर्दोष लोगों को मुआवजा दिया गया। मुशिर-उल-हक और अब्दुल घानी की विधवाओं को एक लाख रुपये राज्य सरकार से तथा एक लाख रुपये विश्वविद्यालय से दिया गया। अब्दुल घनी के पुत्र को विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद भी प्रदान किया गया। उन मुस्लिम परिवारों को भी मुआवजा दिया गया जिनके दो रिश्तेदार यू० एन० (संयुक्त राष्ट्र) की जीप पर आक्रमण के दौरान सुरक्षा बलों की गोली-बारी में मारे गये थे। लेकिन वे उसे लेने से डरते थे क्योंकि आतंकवादियों ने यह धमकी दे रखी थी कि जो कोई सरकार से मुआवजा लेगा उसके खिलाफ कार्यवाही की जायेगी। केवल उन मामलों में मुआवजा नहीं

दिया जा सकता था जिनमें कोई व्यक्ति कानूनी सत्ता को हिंसक साधनों से चुनौती देते हुए आतंकवादी गतिविधि में मारा गया था।

आमने-सामने होने वाली गोली-बारी में मारे गये निर्दोष लोगों को मुआवजा देने से कभी इन्कार नहीं किया गया। वास्तव में मैंने अनेक अवसरों पर अपने निर्णय को बार-बार दोहराया और यहां तक कि राज्य प्रशासन द्वारा भी निम्नलिखित प्रेस विज्ञप्ति जारी की गई—

"राज्यपाल जगमोहन ने एक उच्च स्तरीय समिति ऐसे लोगों को अनुग्रह राशि की सहायता देने के लिए बनाई है जो गोलीबारी के बीच में आ जाने से घायल हो गये या मारे गये हों अथवा आतंकवादी या हिंसक कार्यवाही में भाग नहीं लेने पर भी उन्हें चोट पहुंची हो। समिति की अध्यक्षता मुख्य सचिव (विधि और व्यवस्था) हमीदुल्लाह खां करेंगे और उसके दो अन्य सदस्य अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह विभाग) मेहमूद-उर-रहमान तथा डिवीजनल कमिश्नर, काश्मीर ज़लील अहमद खां होंगे। समिति प्रत्येक मामले में एक लाख रुपये राशि तक की सिफारिश कर सकती है और उसे राज्यपाल को दो महीने के अन्दर अपनी सिफारिशें देनी होंगी और पिछले एक वर्ष के सभी मामलों को निपटाना होगा। उन मामलों में भी जहां सहायता राशि की पहले से सिफारिश की जा चुकी है, समिति उसे बढ़ाने पर पुनः विचार कर सकती है।"

राज्यपाल शासन की निन्दा करने और उसे राक्षसी रूप देने के आवेश में इस सिमिति (कमेटी फॉर इनीशिएटिव ऑन काश्मीर) ने उन सभी मानवीय तत्त्वों को दबा दिया जिन पर वास्तव में मेरी नीति आधारित थी। इस समिति ने मेरी सद्भावनापूर्ण नीतियों सम्बन्धी बयानों, पत्रों और युवकों को आपसी सहयोग तथा एकता का महत्व बताने वाले रेडियो और टेलीविजन पर दिये बयानों तथा सद्कार्यों को पूरी तरह अनदेखा कर दिया।

कथित ज्यादतियों की शिकायतों को दर्ज करवाने के बारे में इस समिति ने अपने द्वेष से प्रेरित होकर परस्पर विरोधी टिप्पणियां कीं। पुलिस को सुरक्षा बलों के खिलाफ सभी मामले दर्ज करने के निर्देश दिये गये थे, चाहे वे प्रेरित, सिखाये गये अथवा झूठे लगते हों। 19 जनवरी से 26 मई 1990 तक चौबीस शिकायतें दर्ज की गई थीं। फरवरी में बी० एस० एफ० द्वारा की गई गोली-बारी की घटना के सम्बन्ध में मैंने श्रीनगर जिला मजिस्ट्रेट गुलाब अब्बास को जांच करने तक के आदेश दे दिये थे। लेकिन समिति ने इस विषय में विचित्र रवैया अपनाया। दर्ज किये गये मामलों को अपराध की स्वीकृति समझा गया और अगर कोई मामला दर्ज नहीं हुआ तो प्रशासन पर इतना निर्दयी होने का आरोप लगाया गया कि उसने शिकायतें तक दर्ज नहीं की। प्रतीत होता है कि समिति की उक्ति यह थी कि—"चित भी मेरी; पट भी मेरी।"

'पुलिस मुठभेड़ों' में किसी व्यक्ति के न मरने पर भी इस समिति ने ध्यान नहीं दिया जबकि ऐसे आरोप पंजाब में बहुत सामान्य हैं।

इसी प्रकार समिति ने हमारे अर्धसैन्य बल की वीरता के प्रति भी अन्याय किया। उसने इस सच्चाई को नहीं सराहा कि बिहार और पश्चिमी बंगाल जैसे गर्म क्षेत्रों से आये हमारे जवानों को घंटों चारों ओर घिरे बर्फ में बहुत ठंडी हवाओं का सामना करते हुए खड़ा रहना पड़ता था। इसके साथ ही उन्हें

पाकिस्तान-प्रशिक्षित गुरिल्लाओं के अचानक तेजी तेजी से किये गये हमलों का मुकाबला करना पड़ता था और ये गोरिल्ला इतने निर्दयी और अन्तर्चेतनाहीन थे कि उन्हें आम जनता की आड़ लेने या उनमें छिप जाने में भी शर्म नहीं आती थी।

समिति ने आतंकवादियों द्वारा जान-बूझकर निर्दोष लोगों को मृत्यु के सकट में डालने की निन्दा नहीं की। इसके बजाय वह उस अर्धसैनिक बल को दोषी मानती है जिसे निष्क्रिय मृत्यु अथवा सुरक्षात्मक गोली-बारी करते हुए अपराधियो का पीछा करके उन्हें पकड़ने के दो विकल्पों में से एक को चुनना था। हमारे सुरक्षा बलो के नैतिक साहस को गिराने के लिए इससे अधिक घातक कुछ नहीं हो सकता कि उनको पूरी तरह से पक्षपातपूर्ण और आतंकवादियों के एजेन्टों द्वारा गढ़े गये विवरणों की कसौटी पर जाचा जाये। समिति एक सहायक इंजीनियर की पूर्णरूप से पक्षपातपूर्ण और बढ़-चढ़कर बताई गई घटना को तो सुनती है पर उसके पास बी० एस० एफ० के उस युवा डाक्टर के सम्बन्धियों का करुण क्रन्दन सुनने का समय नहीं जिसे उस समय गोलियों से भून दिया गया था जब वह दोनों पक्षों के घायलों की सेवा करने जा रहा था।

इन्दरमोहन और उसके नापाक हाथ

इन्दरमोहन ने विकृतियों का जाल रचने में जो भूमिका अदा की उसका विशेष रूप से वर्णन करने की आवश्यकता है। इससे यह जानकारी ही नहीं मिलेगी कि पी० यू० सी० एल० जैसे सगठनों के कार्य किस प्रकार चलते हैं वरन् यह भी प्रकट हो जायेगा कि विशेष रूप से 'राज्यपाल जगमोहन' से ही क्यों बिना किसी प्रमाण के सुरक्षा बलों की ज्यादतियों और गलतियों को जोड़ा गया तथा दोष लगाया गया था।

समस्या आंशिक रूप से इन्दरमोहन और जार्ज मैथ्यू द्वारा सयुक्त रूप से 'इण्डियन एक्सप्रेस' में लिखे एक पत्र से प्रारम्भ हुई। पत्र में अन्य बातों के साथ-साथ यह लिखा था—

"नागरिकों और संगठनों के अनेक समूह काश्मीरियों की भावनाएं तथा स्थिति जाचने के लिए वहां गये थे। हममें से कुछ को व्यक्तिगत रूप से उनके कष्टों को सुनने के अवसर मिले। वास्तव में बहुसख्य जनता द्वारा जगमोहन को मुस्लिम विरोधी द्वेष से युक्त दमन का प्रतीक समझा जाता है। यह जान कर हमें आश्चर्य नहीं हुआ। हमारे विचार से काश्मीर में यह विश्वास पैदा करने के लिए कि उसका भाग्य भारत के भाग्य से जुड़ा है, राज्यपाल को वापिस बुलाना पहली शर्त है।"

इससे किसी भी समझदार आदमी को स्पष्ट हो जायेगा कि इन्दरमोहन और उन जैसे लोगों के प्रयत्नों का उद्देश्य मुझे वापस बुलाना था। उनकी विधि पी० यू० सी० एल० के साधनों और मंच का उपयोग करते हुए मेरे विरुद्ध ऊंचे स्तर पर प्रचार करना और तब उस झूठे आधार पर मुझे वापिस बुलाना था।

मई 16, 1990 को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित इन्दर मोहन के दूसरे पत्र में उनके गन्दे इरादों को देखा जा सकता है। यह पत्र उस विवरण के उत्तर में था जो हिन्दुस्तान टाइम्स में 30 अप्रैल को 'पी० यू० सी० एल० रिपोर्ट की

कड़ी आलोचना' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। रिपोर्ट में राज्यपाल द्वारा उत्साह-जनक परिणामों को उपलब्ध करने की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाते हुए और यह दावा करते हुए कि पी० यू० सी० एल० रिपोर्ट 'दल के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप सीधे पाई गई जानकारी' पर आधारित थी, इन्दरमोहन ने उस पत्र में लिखा था—

"जगमोहन अपने गृहमंत्री को कृतज्ञ करने के इतने इच्छुक क्यों थे कि उन्होंने पांच उग्रवादियों को उनकी बेटी को मुक्त करवाने के बदले में छोड़ दिया ?"

इन्दरमोहन को पूरी तरह इस बात की सीधी जानकारी थी कि रूबिया सईद के अपहरण (8 दिसम्बर, 1989) और उसकी मुक्ति (13 दिसम्बर) के समय मैं काश्मीर का राज्यपाल नहीं था तथा मुझे दोबारा वहां 19 जनवरी, 1990 को भेजने का कारण प्रशासन का पूरी तरह ठप्प हो जाना व उसका स्थान वस्तुतः विघटनकारियों द्वारा ले लेना था। लेकिन इन्दरमोहन की गलत सूचना देने की कला और इस विश्वास ने कि भारत की अधिसंख्य जनता को 1990 की मध्य मई में इस विषय के बारे में याद नहीं होगा, यह आरोप लगाने के लिए प्रेरित किया। उनकी योजना स्पष्ट रूप से स्वीकार करने योग्य कथनों जैसे 'सीधी जानकारी' का उपयोग करने के बाद झूठे आरोप लगाने की थी। उन्हें आशा थी कि काफी लोग इसे सही मान लेंगे।

जैसा कि ट्राटस्की ने एक बार कहा था कि मूल रूप से आधुनिक त्रासदी मनुष्य के जागरूक 'मस्तिष्क' और 'संकुचित होते वातावरण' के बीच होते विस्तृत संघर्ष में निहित है। एक आदमी कुछ रचनात्मक करने के लिए जितना अधिक प्रेरित होगा, उसके साथियों द्वारा उतना ही खराब व्यवहार किये जाने की सम्भावना है। दुर्भाग्यवश भारत की स्वतन्त्रता के बाद यही अनुभव उन लोगों को हुआ है जो मौखिक शब्दों और खाली शब्दाडम्बरों को नहीं दोहराते रहते वरन् अपने कार्यों से सार्वजनिक विषयों में जनता के बन्धनों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

दिल्ली विकास प्राधिकरण के अपने लम्बे कार्यकाल में मैंने जब अस्त-व्यस्त स्थितियों में एक व्यवस्था लाने और महानगर का नियोजित विकास करने का प्रयत्न किया था, मुझे इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। मुझे अनेक निहित स्वार्थों से संघर्ष करना पड़ा था। मेरे अनुभवों के एक अंश का वर्णन मेरी पुस्तकों —'रिबिल्डिग शाहजहानाबाद; द वाल्ड सिटी; आइलैण्ड ऑफ ट्रुथ; और 'द चेलेंज ऑव आवर सिटीज' में है।

जामा-मस्जिद-लालकिला क्षेत्र में, जिसका विकास करने में मुझे विशेष रुचि थी, मेरा इन्दरमोहन से, जो उस क्षेत्र में कोई सामाजिक कार्य कर रहे थे विरोध हो गया था। मार्च 1977 में आपात काल खत्म हो जाने के बाद इन्दरमोहन ने सच्चाई जानते हुए भी बुरे इरादे से मेरे बारे में जान-बूझकर अनेक झूठी कहानियां फैला दीं। इनमें से कुछ कहानियां आपात काल के बाद प्रकाशित पुस्तकों में छपीं। ये पुस्तकें पत्रकार-लेखकों द्वारा जल्दी में जो भी सामग्री मिली उसके आधार पर 'तुरत-फुरत इतिहास' की तरह लिखी गई थीं क्योंकि हरेक दूसरे से जल्दी अपनी पुस्तक प्रकाशित करना चाहता था। इन्दरमोहन जैसे लोगों को अपनी मनगढ़न्त कहानियां ऐसे पत्रकारों को देने के पर्याप्त अवसर मिले।

फलस्वरूप इनमें अनेक बड़ी गलतियां विशेष रूप से नगर के स्वच्छता कार्यक्रम के सम्बन्ध में प्रकाशित हो गईं।

जहां तक आपातकाल, उसके 1975 में लगाने और मार्च 1977 तक उसके जारी रहने का सम्बन्ध है, मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं क्योंकि मैं उस समय दिल्ली विकास प्राधिकरण का वाइस चेयरमेन था। लेकिन आपातकाल के बाद का प्रारम्भिक समय उत्पीड़न के पागलपन से ग्रस्त था। लेकिन मुझे अनुचित रूप से दोषारोपणों से बांधा गया क्योंकि मैंने अपने सत्य को ('आइलैण्ड ऑव ट्रूथ') त्यागने से इंकार कर दिया और उन आरोपों को श्रीमती इन्दिरा गांधी या संजय गांधी पर नहीं मढा। मेरे द्वारा आपातकाल में क्रियान्वित की जाने वाली परियोजनाएं दिल्ली 'मास्टर प्लान' का अंग थी या उसके अन्तर्गत निर्धारित की गयी थीं। आपातकाल से बहुत पहले इन्हें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल, संसद तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा स्वीकृत कर दिया गया था। नि:सन्देह दिल्ली से सम्बन्धित नियोजित विकास कार्य इस अवधि में बहुत तेजी से किया गया। लेकिन ऐसा होने का विशेष कारण उन निहित स्वार्थों द्वारा रुकावटें डालने से बाज आ जाना था जो पहले इस काम मे कोई-न-कोई रोड़ा अटकाते रहते थे।

सन् 1978 में प्रकाशित मैंने अपनी पुस्तक 'आइलैण्ड ऑव ट्रूथ' में उन सब त्रुटियों को बताया है जो आपातकाल के बाद की पुस्तकों मे दी गयी थी। मैंने उस विद्वेषपूर्ण वातावरण का भी उल्लेख किया है जिसमें मेरे जैसे व्यक्तियों के योगदान की सराहना करने के बजाय निन्दा की गयी। मेरे द्वारा दिये गये सत्य इतने अकाट्य थे कि मैंने अपनी पुस्तक को शपथ-पत्र के रूप मे एम० एल० जैन के स्पेशल कोर्ट में फाइल कर दिया। इसी अदालत मे शाह कमीशन के निष्कर्षों के आधार पर श्रीमती इन्दिरा गांधी के ऊपर मुकदमा चल रहा था। तत्कालीन सरकार अथवा और किसी ने भी मेरी पुस्तक मे दिये गये तथ्यों की चुनौती देने के लिए विरोध शपथ-पत्र (काउन्टर एफीडेविट) देने का साहस नही किया।

अपनी पुस्तक 'आइलैण्ड ऑव ट्रूथ' (Island of Truth) के छठे और सातवें अध्याय में, मैंने तुर्कमानगेट की वास्तविक स्थिति और संक्षेप में इन्दरमोहन की भूमिका के बारे में लिखा है। 'सण्डे' पत्रिका ने छठे अध्याय के अंशों को 30 जुलाई और 6 अगस्त, 1978 के दो अंकों मे प्रकाशित किया था। इससे इन्दरमोहन कट कर रह गये। सच्चाई ने उनको परेशान कर दिया। मेरे इरादों की सराहना करने के बजाय उन्होंने क्रोधपूर्ण और आक्रामक रवैया अपनाया। उन्होंने अपने उत्तर मे जो उसी पत्रिका के 20 अगस्त, 1978 के अंक में प्रकाशित हुआ मुझे वस्तुत: गालियां दी और 'झूठ बोलने' का आरोप लगाया।

अपनी स्थिति को पुष्ट करने के लिए मैंने उनके विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में 23 जुलाई, 1979 को मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। इसमें वह निवेदन करने के साथ कि इन्दरमोहन के आरोप झूठे और मानहानि करने वाले हैं, मैंने पन्द्रह ऐसे ठोस उदाहरण दिये जो यह स्पष्ट करते थे कि मेरे साथ कितनी ज्यादती की गई थी।

यदि इन्दरमोहन के तथाकथित तथ्यों मे कोई सच्चाई होती तो उन्होंने सही और स्पष्ट रीति से उनका विरोध किया होता। इसके बजाय उन्होंने अदालती कार्यवाही मे देरी लगाने के सभी तरीकों को अपनाया। 23 जुलाई, 1979 का

मुकदमा 20 अगस्त, 1978 के प्रकाशन के विरुद्ध था और स्पष्ट रूप से अवधि की सीमा के अन्दर था। लेकिन इन्दरमोहन 'मेन स्ट्रीम' की तारीख का जिक्र ले आए। न्यायाधीश ने उनके विषयान्तर करने के तरीकों को नामंजूर कर दिया और मुकदमे की कार्यवाही को आगे बढ़ाने का निर्णय किया। लेकिन घटनाओं के क्रम ने कुछ ऐसी दिशा ले ली कि उन्हें मैं समझ नहीं सका। वह मुकदमा न्यायाधीश राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता से युक्त न्यायालय में होना निश्चित हुआ और उन्होंने स्थगन आदेश (स्टे आर्डर) दे दिया।

यह मुकदमा दायर होने के बारह वर्ष बाद भी अदालत में प्राथमिक स्तर पर विचाराधीन पड़ा हुआ है। मैंने यह दिखलाने के लिए कि हमारी न्यायिक व्यवस्था कितनी कमजोर है और न्यायिक लेखा परीक्षण (Judicial audit) शुरू करने की कितनी आवश्यकता है, इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त मैं विशेष रूप से इन्दरमोहन के रवैये के बारे में भी मूल प्रश्न उठाना चाहता था। वह अपने या मेरे दावों की उच्च न्यायालय द्वारा जांच करवाने से क्यों भयभीत हैं ? यदि वह यह आशा कर रहे हैं कि मैं उनकी देरी लगाने की चाल से थक जाऊंगा तो वह भ्रम में हैं। मैंने यह मुकदमा केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं लिया है, मैं यह भी दिखाना चाहता हूं, भले ही वह एक सीमित रूप में हो कि इस देश की जनता के विचारों को किस प्रकार गुमराह किया जाता है और किस प्रकार उस आदमी को परेशान किया और धमकाया जाता है जो सही और ठोस कार्य करने की कोशिश करता है।

क्या इन्दरमोहन जैसी पृष्ठभूमि वाले या मेरे विरुद्ध शत्रुता रखने वाले व्यक्ति को पी० यू० सी० एल० (Peoples Union for Civil Liberties) के आर्थिक स्रोतों और साधनों का मेरे विरुद्ध झूठा प्रचार करने के लिए प्रयोग करने की अनुमति होनी चाहिये ? क्या इस प्रकार उसे पाशविक आतंकवाद के चंगुल से काश्मीर को मुक्त करवाने के राष्ट्रीय प्रयत्न को प्रभावहीन करने की इजाजत दी जानी चाहिये ? आन्ध्र प्रदेश पी० यू० सी० एल० के वाइस प्रेसीडेण्ट एम० वी० राममूर्ति जैसे बुद्धिमान व्यक्तियों ने 'कमेटी फॉर इनीशिएटिव ऑन काश्मीर' के कार्यों पर दुःख प्रकट किया है। मई 1990 के इण्डियन एक्सप्रेस में प्रकाशित राममूर्ति ने अपने 5 मई के पत्र में लिखा है—

"आपके पत्र में प्रकाशित पी० यू० सी० एल० दल की रिपोर्ट को पढ़कर मुझे हार्दिक दुःख हुआ। उसमें पी० यू० सी० एल० द्वारा स्वीकृत नीतियों को त्याग दिया गया है।

हिंसक उग्रवादियों ने अपने व्यवहार से नागरिक स्वतन्त्रता को भंग किया है। इस महत्त्वपूर्ण बात का रिपोर्ट में प्रमुखता से वर्णन नहीं किया गया। पी० यू० सी० एल० का उग्र आतंकवादियों को इस आधार पर अप्रत्यक्ष समर्थन देने से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये कि काश्मीर के लोगों की मांग पाकिस्तान में मिलने की नहीं वरन् स्वतन्त्रता पाने की है। जब सार्वजनिक मत जानने का कोई साधन नहीं है, पी० यू० सी० एल० का काम लोगों के विचारों को जांचना नहीं है।

समझौते के लिए सुझाव देने का कार्य पी० यू० सी० एल० की कार्य सीमा से बाहर है। प्रश्न यह उठता है कि दल ने किसको ध्यान में रखा। हिंसक

आतंकवादियों को जिन्हें अवश्य ही सन्तुष्ट किया जाना चाहिये अथवा काश्मीरी जनता की सहमति से बने नेताओं को जो उग्रवादियों की हिंसा के विरुद्ध अपनी उंगली तक नहीं उठाते ?

पी० यू० सी० एल० दल ने इस तथ्य से कोई सबक न सीखकर, कि कुछ हिन्दुओं ने दिल्ली के शिविरों में शरण ली है, गलती की है। इस दल को यह सुझाव नहीं देना चाहिये था कि शिविरों की लगाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

संक्षेप में यह रिपोर्ट अत्यन्त आत्मगत है और इसकी वास्तविक तथ्यों से पुष्टि नहीं होती।"

मायावी दर्पणों के कक्ष का विस्तार

यह है 'कमेटी फॉर इनीशिएटिव ऑन काश्मीर' के मायावी दर्पणों के कक्ष का विस्तार जो उसने कपट, दबाव, झूठ, द्वेष, व्यक्तिगत प्रतिशोध और दम्भ के आधार पर बनाया है। न्याय के बहाने कोई भी इतना अन्याय नहीं कर सकता था। कोई भी मानव अधिकार के नाम पर इतनी चालाकी से मानव के मूल अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। कोई भी विघटनकारियों और उनके दलालों की धुन पर इससे अधिक खुशी से नहीं नाच सकता था। कोई भी इससे अधिक उत्साह के साथ पापियों और हत्यारों को अपनी छाती से नहीं लगा सकता था। कोई भी आतंकवादियों के उन रक्त पिपासु जबड़ों को अनदेखा नहीं कर सकता था जो गंजू, प्रेमी और टिक्कू जैसे बहुत से निर्दोष लोगों को अपना शिकार बना चुके थे। कोई भी राज्यपाल शासन से पहले एक वर्ष में 500 बम विस्फोटों को मिलाकर होने वाली दो हजार हिंसक घटनाओं जैसी कठोर वास्तविकताओं और आकड़ों को जानबूझ कर अनदेखा नहीं कर सकता था और तथ्यों को दबाने में इससे अधिक नीचे नहीं गिर सकता था।

इस समिति (कमेटी) द्वारा उन सभी अपराधों की उपेक्षा कर दी गयी जो आजादी के नाम पर किये गये थे, पाकिस्तान में शामिल होने के लिए नहीं। वे सभी कार्यवाहियां असाम्प्रदायिक समझ ली गयी जिनके अन्तर्गत काश्मीरी पंडितों सहित कुछ मुसलमान 'जासूसों' या 'विश्वासघातियों' की हत्याएं की गई थीं— जबकि उन पर ये आरोप लगाने वाले उनके हत्यारे ही थे। समिति ने ऐसा कोई भी प्रचार और उत्तेजनात्मक साहित्य नहीं देखा जो खून बहाने और छुरेबाजी करने की शब्दावली और एक हाथ में कुरान और दूसरे में तलवार लेकर युद्ध करने की ललकार से भरा था। समिति को न तो क्रूर आतंकवादियों द्वारा कुशलता से षड्यन्त्र रचकर (जिसमें जेल का प्राय: हर अधिकारी शामिल था) श्रीनगर जेल से भाग निकलने के बहु-प्रचारित काण्ड की जानकारी हुई और न अनेक अन्य षड्यन्त्रों, मिली भगत या साठ-गाठ के मामलों की।

समिति जानबूझ कर पाकिस्तान में रहकर विघटनकारी गतिविधियों को चलाने वाले नेताओं के जाने-माने उन लिखित निर्देशों की उपेक्षा कर गयी जिनमें कहा गया था—"अपने घरों और मोहल्लों के अन्दर और बाहर अपने प्रचार को जारी रखो। सुरक्षा बलों के खिलाफ अपना प्रचार अभियान पूरे जोर-शोर

पर रखो। उनके खिलाफ झूठे और जोरदार आरोप लगाये जाने चाहिये।"

इस समिति (कमेटी फॉर इनीशिएटिव ऑन काश्मीर) के प्रचार का तरीका द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अपनाये गये जर्मनी के प्रचार मन्त्री गोएविल्स की तरह ही था। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वह कुछ समय के लिए सफल हो गया और उसने मुझे राज्य से वाहर करने की अपनी भूमिका भली प्रकार निभा दी। लेकिन इतिहास ऐसे तिकड़मबाजों की गोद में अधिक देर तक नहीं ठहरता। सत्य जल्दी ही झूठ का पर्दाफाश कर देता है और दोषी या तो शून्य में विलीन हो जाता है अथवा अपने ही झूठ के ढेर तले दफन हो जाता है।

चौदहवां अध्याय

परिस्थितियों पर पूर्ण नियन्त्रण

जो हौसला करता है, विजयी होता है।
हममें भी हौसला है, हम जीतेंगे॥

अनेक गलतफहमियों, गलत बातों और जानकारी के बिना लगाये गये आरोपों के बावजूद मैंने उत्साह के साथ अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। मुझे कोई ऐसा किनारा दिखाई नहीं देता था जहां मैं रुककर कुछ सांस ले सकूं। अनेक कठिनाइयां मैं पार कर चुका था। परन्तु अनेक राजनैतिक दलों में मन में जो एक आन्दोलन पैदा हो गया था उसके कारण कठिनाइयां बढ़ रही थीं। उस व्यवस्था के खोखलेपन के कारण जो तूफाननुमा कठिनाइयां मेरे सामने आती थीं, वह मेरे काम में रुकावट थीं। मैंने दृढ़ धारणा के साथ मारतो के शब्दों में आगे बढ़ने का निश्चय किया—"एक सही आदमी जीवन के ऐसे मार्ग को नहीं चुनता जिसमें लाभ हो परन्तु वह एक ऐसे मार्ग को चुनता है जहां उसे अपना कर्तव्य पूर्ण करना होता है।"

दृढ़ सन्देश

पहले मुझे यह बताने दीजिए कि भारी कठिनाइयों के बावजूद मैंने हालात पर कैसे काबू पाया। हमारा पहला प्रमुख ध्येय यही था कि शरारती तत्वों के हाथ से उन अवसरों को छीन कर, जिनके कारण वे मनमानी करते थे, राज्य की सत्ता स्थापित कर सकें। हमें जनता को एक ऐसा दृढ़ सन्देश देना था जिसके लिए किसी भी कुर्बानी की चिन्ता न की जाए और उन्हें यह बताना था कि कश्मीर को आतंकवादियों, गड़बड़ करने वालों और कठमुल्ला लोगों की दया पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह बात हमें लोगों को स्पष्ट तौर पर समझानी थी।

हमने यह निश्चय किया कि यदि कोई सरकारी कर्मचारी हथियार चलाने की ट्रेनिंग लेकर सीमा पार करके वापस आता है और तोड़फोड़ की कार्रवाइयों में लगता है तो उसे फौरन पद-मुक्त कर दिया जाये। यदि किसी खास अवसर पर कार्यक्रमों को देखने से रोकने के लिए बिजली बन्द कर दी जाती है, तो चीफ

इंजीनियर उसके लिए उत्तरदायी होगा। यदि समाचार-पत्र आतंकवादी संगठनों द्वारा लोगों को धमकाने का काम करते हैं तो उन्हें समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की आड़ नहीं लेने दी जायेगी। हमने यह बातें स्पष्ट तौर पर सबको बता दीं। इन बातों से सम्बन्धित किसी को भी नजरन्दाज नहीं किया जा सकता था। यह स्पष्ट कर दिया जाना था कि कोई भी व्यक्ति इन बातों की आड़ लेकर अधिकारियों को मूर्ख न बना सकेगा।

एक नवीनता

प्रशासन कितनी भी शक्ति से लागू किया जाये केवल उससे काम नहीं चलता। इसके लिए प्रशासन में एक नवीनता और मौलिक सूझबूझ की आवश्यकता होती है।

प्रशासन आम तौर पर जिन परिस्थितियों से जूझता है, यहां घाटी में स्थितियां पूर्णतया भिन्न थीं। यहां तोड़फोड़ थी, आतंकवाद था, साम्प्रदायिक कठमुल्लापन था, बाहरी दबाव थे, जिनमें टोपक और पाकिस्तान सोलीडेरिटी दिवस, कुछ गुटों के आपसी मतभेद और साथ में ऐसी कुन्द जहनियत थी, जो वास्तविकता को समझने में असमर्थ थी। इसके अतिरिक्त पिछली भूलें, दूसरों की भी थीं, जिनसे मुझे निबटना था। मेरे हिस्से में एक सड़ी-गली व्यवस्था पड़ी थी। परन्तु मुझे उसे उठाकर फेंक नहीं देना था, उससे अलग नहीं होना था।

मुझे इस कूड़े-कचरे के ढेर के साथ नया मसाला मिलाकर एक नया' निर्माण करना था। मुझे लोगों के दिलों में नया विश्वास पैदा करना था। उनमें प्रेरणा और उत्साह पैदा करना था। टूटे हुए सूत्र को जोड़कर एक नया ताना-बाना बुनना था। मुझे उन पुराने सूत्रों को ढूंढ़ना था जिनमें अभी कुछ जान बची थी और उन्हें नये सूत्रों में जोड़ने का प्रयत्न करना था।

दो परामर्शदाताओं के अतिरिक्त मैंने स्थानीय और सिविल सर्विसेज, सेना, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस, सूचना प्रसार सेवा आदि से कुछ सही ढंग के व्यक्तियों को लेकर एक और जानदार ग्रुप की स्थापना की। सेना के कोर कमाण्डर लेफ्टिनेंट जनरल एम० ए० ज़की थे। नये ढांचे के वह एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ थे। उन्होंने बहुत ही धैर्यपूर्वक और उत्साह से काम किया। उन्हें जो भी काम दिया गया, उन्होंने बड़ी तेजी और ठीक ढंग से किया।

लगन से काम करने वाले अन्य व्यक्तियों की तरह लेफ्टिनेंट जनरल ज़की को भी गलत प्रचार का माध्यम बनाया गया। उन पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाया गया। उदाहरण के रूप में उन पर यह आरोप लगाया गया कि वे सेना की राशन सामग्री में से कर्फ्यू के समय मुसलमानों को खाद्य सामग्री के पैकेट देते रहे हैं। कुछ लोगों ने इस बात पर विश्वास भी कर लिया। इस सम्बन्ध में रक्षा सचिव और मन्त्रिमण्डलीय सचिव मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे बात की। तब मैंने उन्हें बताया कि ज़की साहब ने राशन के पैकेट मेरी आज्ञा से उन लोगों में बांटे हैं और सेना को उसके मूल्य की अदायगी कर दी गयी है। ध्येय यह था कि कर्फ्यू के समय जरूरतमन्द लोगों को सेना के स्टोर से दूध तथा अन्य आवश्यक चीजें दे दी जायें और उनकी आपूर्ति उस पैसे से कर दी जाये जिसकी व्यवस्था

मैंने स्वयं की थी। चूंकि उस समय नागरिक प्रशासन पूर्णत: ठप्प था और सामान्य तरीकों से इन चीजों की आपूर्ति नहीं की जा सकती थी। वस्तुत: इससे पहले आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति तोड़फोड़ करने वाले तत्त्वों ने राहत समितियों की आड़ में अपने हाथ में ले रखी थी।

प्रशासन सम्बन्धी अधिकारियों के कार्य में जो कठिनाइयां थी उन्हें मैंने जल्दी ही दूर कर दिया। मैंने व्यक्तिगत रूप से उनकी कठिनाइयां जानकर सारे प्रशासनिक ढांचे को सही किया। प्राथमिकताओं तथा कर्मचारियों की मानसिक प्रवृत्ति को सही किया। बेकार के कामों को कम करके कागजी कार्रवाई को पृष्ठभूमि में डाला और जनता में काम करने वाले तत्त्वों को सुदृढ़ किया। मैंने विभिन्न दलों को विभिन्न कार्य सौंपे और उन सबमें सामंजस्य रखने का प्रयत्न स्वयं किया। मैंने विभिन्न कठिनाइयों को सुलझाने के लिए अपने अधिकारों का प्रयोग किया और फौरन ही उनके सम्बन्ध में हुक्म जारी किये। इससे अधिकारियों में हौसला बढ़ा और सब लोगों का हमारे कार्यों की ओर ध्यान गया तथा उन्हें विभिन्न फिरकों से जोड़ने की प्रवृत्ति भी समाप्त हुई।

सेना, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सूचना सेवा, पुलिस अधिकारी तथा अन्य स्थानीय नागरिक अधिकारियों ने मुझे पूर्ण सहयोग दिया। उनकी ओर से उत्साहजनक प्रेरणा मिली। यदि मैं किसी को आधी रात के समय घर भी टेलीफोन करता था तो मुझे सही उत्तर प्राप्त होता था। इस स्थिति के सम्बन्ध में ट्रिब्यून ने लिखा था, "एक सुप्रसिद्ध सुरक्षा विशेषज्ञ ने यह जानकर आश्चर्य प्रकट किया कि जगमोहन जैसे एक प्रशासनिक नौकरशाह अफसर ने सेना का विश्वास सौ फीसदी कैसे प्राप्त कर लिया ?"

प्रशासन को और भी चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिए कुछ नवीन निर्णय लिये गये और उन्हें फौरन लागू कर दिया गया।

विशेष अधिकारी

तीन विशेष अधिकारी नियुक्त किये गये। एक बारामूला तथा कुपवाड़ा जिले के लिए। दूसरा अनन्तनाग और पुलवामा के लिए। तीसरा राजौरी, पुंछ और दौडा के लिए। इस कार्य से श्रीनगर के बाहर के क्षेत्रों में प्रशासनिक सत्ता स्थापित करने में मदद मिली। इनसे इस बात में भी सहायता मिली कि प्रशासन का आपस में तालमेल बना रहे और तोड़फोड़ करने वाले तत्त्वों की हिदायतों पर काम न किया जा सके। इससे सीविल सप्लाई के ताने-बाने को पुनर्स्थापित करने में सहायता मिली।

पांच किलोमीटर की पट्टी

मैंने यहां पहुंचने पर सबसे पहले इस बात को प्राथमिकता दी थी कि पाक अधिकृत काश्मीर से भारतीय क्षेत्र में सीमा लांघकर आने वाली घटनाओं को रोक दिया जाये। घाटी में पाक प्रशिक्षित युवकों की मौजूदगी और शस्त्रों के बड़े जखीरे के कारण सीमा का उल्लंघन व्यापक पैमाने पर हो रहा था। मैंने इसका कारण यह अनुभव किया कि सीमा पर नियुक्त नागरिक और राजनैतिक अधि-

कारियों की ओर से बी० एस० एफ० को विशेष सहायता नहीं मिल रही थी। एक बड़े सैनिक अधिकारी ने मेरे आने पर मुझसे कहा था, "जबानी तौर पर हमें सब कुछ मिलता है; परन्तु क्रियात्मक रूप से कुछ भी नहीं।" अनेक बार गृह मंत्रालय से इस बात की प्रार्थना की गई थी कि सीमा सुरक्षा बल को यह अधिकार हो कि वह तलाशी ले सके और गिरफ्तारियां कर सके, परन्तु उन्हें ऐसे अधिकार नहीं दिये गये। इसका परिणाम यह था कि उन्हें पता था कि घुसपैठिए गांव में छिपे हुए हैं परन्तु वह उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकते थे। जब वे स्थानीय पुलिस को इस बात की सूचना देते तब तक संदेहास्पद व्यक्ति भाग खड़े होते और कई मामलों में तो पुलिस की मिलीभगत भी स्पष्ट थी। बहुत से आदमी अपने खेतों में जाने का बहाना करके रात के समय सीमा के पास घूमते रहते थे।

कोई विशेष रुकावट न होने के कारण सीमा का उल्लंघन बड़े पैमाने पर हो रहा था। राजनीतिक अधिकारी इस बात के विरुद्ध थे कि सीमा की एक-दो किलोमीटर की पट्टी पर रात के समय कर्फ्यू लगाया जाये। जब भी कभी ऐसी बात का सुझाव दिया जाता तो धारा 249 और 370 का हवाला देकर शोर मचाया जाता। यह बात कभी स्पष्ट करने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया कि सीमा लांघकर आने वालों को रोकने के लिए एक सुरक्षा पट्टी बनाना राज्य के विशेष दर्जे के साथ कैसे मेल नहीं खाता।

मैंने सेना और सुरक्षा बल की इन कठिनाइयों को दूर कर दिया। मैंने केन्द्रीय सरकार की ओर से इस बात की स्वीकृति की सूचना दे दी कि सीमा सुरक्षा बल को तलाशियां लेने और गिरफ्तार करने के पुलिस सम्बन्धी अधिकार दे दिये गये हैं। इन अधिकारों को गलत ढंग से इस्तेमाल किये जाने का कोई खतरा इसलिए नहीं था कि इन अर्द्ध सैनिक बलों को पुलिस महानिदेशक और राज्यपाल के निर्देश के अनुसार ही कार्य करना था। मैंने जिला अधिकारियों को भी यह आदेश दे दिये कि सीमा की पांच किलोमीटर पट्टी में सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक कर्फ्यू लगा दिया जाये।

इन कार्यों का चामत्कारिक प्रभाव हुआ। सीमा पर घुसपैठियों को पकड़ा जाने लगा और हथियारों की बरामदगी आरम्भ हो गई। उदाहरण के तौर पर दो मई 1990 के एक ही दिन भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद सीमा पर रोक लिया गया। इनमें आठ ए के 47 राइफलें, एक बढ़िया मशीनगन एक राकेट लांचर, चार राकेट, पचास बम, ग्यारह पिस्तौलें और एक विस्फोटक पदार्थ के 50 पैकेट पकड़े गये, इसके साथ ही चार ठेकेदार पकड़े गये, जिनको राजनीतिक नेताओं से संरक्षण प्राप्त था। ये लोग उस ताने-बाने के अंग थे जो पाक अधिकृत काश्मीर से शस्त्र लाकर सीमा के पास छिपा देते थे और अवसर पाकर उन्हें दूसरे सामान के नीचे छिपाकर भारतीय सीमा में लाते थे। इस कार्य ने यह सिद्ध कर दिया कि 'जहां चाह है, वहां राह' भी है। इससे पहले कभी इस बात की इच्छा ही नहीं की गई थी और न कोई मार्ग ढूंढ़ा गया था। तीन माह के थोड़े से समय में ही 62 घुसपैठियों को मार गिराया गया और 268 को गिरफ्तार कर लिया गया। 155 ए० के० 47 राइफलें, 149 पिस्तौलें, 724 हथगोले 2300 राउण्ड गोला-बारूद और 244 किलोग्राम विस्फोटक पदार्थ पकड़े गये। कोई भी अनुमान कर सकता है कि यदि शस्त्रों का यह सारा जखीरा घाटी में पहुंच जाता तो उससे

जितने भयंकर विध्वंस की संभावना हो सकती थी।

राज्य सुरक्षा बोर्ड

सेना और प्रशासनिक अधिकारियों के आपसी सहयोग तथा आतंकवादियों के विरुद्ध कठोर कदम उठाने के लिए राज्य सुरक्षा बोर्ड को मैंने पुनर्जीवित किया। इस बोर्ड की स्थापना मैंने उस समय की थी जब 1986 में यहां का राज्यपाल होकर आया था। इस समय इस बोर्ड को पुनर्जीवित करना बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ था। मैंने सोचा कि इन स्थितियों में इसे पुनर्जीवित करने से एक यह लाभ होगा कि सीमा के पास तथा अन्य अशान्त क्षेत्रों में जो लोग काम करते हैं उनकी तरफ जनता का ध्यान जायेगा। इस बोर्ड में अध्यक्ष के रूप में मेरे अतिरिक्त उत्तरी सेना कमान के कमाण्डर ले० जनरल गोबिन्द सिंह, कोर कमांडर ले० जनरल जकी, कोर कमाण्डर नगरोटा, ले० जनरल हरवन्त सिंह, सीमा सुरक्षा बल के महानिदेशक, राज्यपाल के दो परामर्शदाता, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के महानिदेशक, जम्मू कश्मीर के पुलिस महानिदेशक तथा अन्य उच्च अधिकारी थे। इस बोर्ड ने जो कुछ किया वह बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। उच्च स्तर पर सूचनाओं का आदान-प्रदान होता था और संदिग्ध व्यक्तियों की सूची बना ली गई और सबके आपसी सहयोग से की गई कार्यवाही के परिणाम तुरन्त प्राप्त होने लगे।

विशिष्ट कार्यकारी दल

अब तक आतंकवादियों को अपनी मर्जी से अचानक वार करने का लाभ मिलता था। वे अपनी मर्जी से जहां कोई वारदात करनी होती थी, समय और स्थिति का चुनाव करते थे। पहल उनके हाथ में थी। कोई वारदात करके वे गलियों में अपने समर्थकों के पास छिप जाते थे। वे एक प्रकार से माओत्सेतुंग के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त —'समुद्र में मछली की तरह तैरते रहिए,' पर काम कर रहे थे—अथवा 'भीड़ में गुम हो जाइये।'

मैं यह सोचता रहा था कि आतंकवादियों की इस लाभपूर्ण स्थिति को कैसे समाप्त किया जाये। चूहे को पकड़ने के लिए बिल्ली छोड़ना आवश्यक है। इसके लिए बहुत बड़े पुलिस अथवा अर्ध सैन्य बल की आवश्यकता नहीं। मैंने इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों का एक छोटा सा दल बनाना उचित समझा जो तेजी से काम कर सके। कुछ सोच-विचार के बाद मैंने निम्न आदेश जारी किया जो अपने-आप में स्पष्ट था। 'मैं ऐसे विशेष दलों की स्थापना करना चाहता हूं जो आतंकवादियों को ऐसे मौकों और ऐसे स्थानों पर, जैसे सड़कों और गलियों आदि के मुहानों पर इकट्ठे होते हुए उन्हें दबोच लें। इसके साथ ही मेरा ध्येय यह था कि तीव्रता से और आश्चर्यजनक रूप से कार्य करने की पहल हमारे पक्ष में हो और आतंकवादियों को इस बात का अवसर ही नहीं मिले कि वे आसानी से अपने शिकार को चुन सकें।

विशेष रूप से प्रशिक्षित अधिकारियों की पन्द्रह टीमें बनाई गईं। प्रत्येक टीम में 3 से लेकर 5 सशस्त्र अधिकारी थे और वे सामान्य कपड़ों में तथा पैदल

अथवा ऐसी सवारी पर रहेंगे जिसे दूर से सरलता पूर्वक न पहचाना जा सके। यह दल सन्देहास्पद व्यक्तियों की खोज में रहेंगे और एकाएक उन्हें रोककर आश्चर्य में डाल देंगे।

इस कदम का बहुत अच्छा लाभ हुआ। अनेक व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इससे एक और लाभ यह हुआ कि आतंकवादी सन्देहास्पद स्थिति में विचलित हो गये। उन्हें इस बात का भरोसा नहीं था कि वे कहां, किस मौके पर इस विशेष दल द्वारा दबोच लिए जायेंगे। शहर में उनके द्वारा किये जाने वाले अपहरणों आदि के सम्बन्ध में उनका विश्वास डगमगा गया। आतंकवादी इतने परेशान हो उठे कि उन्होंने सामान्य जनता पर हलके वाहन प्रयोग न करने के आदेश जारी किये। लाभ होने के बजाय इन आदेशों से आतंकवादी दलों में ही झगड़े शुरू हो गये। जे० के० एल० एफ० इस आदेश के विरुद्ध था। उसका विश्वास था कि इससे जनता को परेशानी होगी। इसके विरुद्ध छात्र लिबरेशन फ्रन्ट इस प्रतिबन्ध को जारी रखने के पक्ष में था! इससे मेरा ध्येय सिद्ध हुआ। तोड़फोड़ करने वालों और आतंकवादियों पर दबाव बढ़ा। उनमें आपसी मतभेद पैदा हो गये।

तोड़फोड़ करने वाले संगठनों पर प्रतिबन्ध

गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों से पूछताछ करने पर तोड़फोड़ करने वाले दलों के काम करने के क्रूर तरीकों का पता चला। उनकी गतिविधियों पर प्रभावपूर्ण ढंग से रोक लगाने के लिए कुछ अधिक खतरनाक संगठनों को गैर कानूनी घोषित करने का मैंने निश्चय किया। 16 अप्रैल 1990 को राज्य क्रिमिनल ला-अमेण्डमेंट एक्ट के मुताबिक मैंने 8 संगठनों को गैर कानूनी घोषित कर दिया। उनमें जमायते इस्लामी, जे० के० हिजबुल मुजाहिदीन, जे० के० लिबरेशन फ्रण्ट, स्टूडेन्ट लिबरेशन फ्रण्ट, महाजे आजादी, इस्लामी स्टूडेन्ट, पीपुल्स लीग और इस्लामिक जमाएते तुलबा थे।

मैंने जनता में यह बात पूरी तरह से स्पष्ट कर दी कि इन संगठनों पर प्रतिबन्ध इसलिए लगाया गया है कि ये लोग विघटनकारी और आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त रहे हैं जिनके प्रमाण हमारे पास विद्यमान् हैं। मैंने यह बात भी स्पष्ट कर दी थी कि यह संगठन ऐसा वातावरण पैदा करने का प्रयत्न कर रहे थे जिससे घाटी को शेष भारत से अलग किया जा सके।

इन आदेशों का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि जमायते इस्लामी के बैंक खाते और कार्यालयों को सील कर दिया गया। इससे उनके कार्यकर्त्ता बिखर गये। उनके लिए यह भी कठिन हो गया कि वे अपनी प्रचार सामग्री आसानी से छपवा अथवा वितरित कर सकें। शुक्रवार को होने वाली नमाज़ के समय जमाते इस्लामी के नेताओं के भाषण भी बन्द हो गये। उनमें से बहुत से भाग गये और बहुत से पकड़े गये।

काश्मीर में जो वर्तमान स्थिति पैदा हुई उसके लिए जमायते इस्लामी और उसकी सहायक फलाहेआम आदि एजेन्सियां उत्तरदायी रही हैं। ये लोग अनेक स्कूलों और मदरसों द्वारा रूढ़िवादी कठमुल्लापन और विरोध की भावना पैदा कर रहे थे। बच्चों में एक संकुचित दृष्टिकोण पैदा किया जा रहा था। काश्मीर

के सम्बन्ध में जब कभी पाकिस्तानी समाचारपत्रों और पाकिस्तानी संसद में काश्मीर की चर्चा चलती तो पाकिस्तानी जमात-ए-इस्लामी का अध्यक्ष इस बात की शेखी बघारता है कि जमात-ए-इस्लामी के प्रभाव से काश्मीरियों में जागृति आई है और उन्होंने इस्लाम के अर्थ को समझा है और हिन्दुस्तान के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया है।

इसीलिए मैंने काश्मीर में तोड़फोड़ और कट्टरपन के इस स्रोत पर प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय किया। फलाह्-ए-आम ट्रस्ट की गतिविधियों को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। इस निर्णय के कारण ट्रस्ट द्वारा चलाये जा रहे 157 स्कूल बन्द हो गये। इन स्कूलों में पढ़ने वाले 15,000 बच्चों को सरकारी स्कूलों में दाखिल करवा दिया गया। एक कठिन काम बड़ी तेजी से सफलतापूर्वक हो गया।

दूषित भाग की कांट-छांट

पहले बताया जा चुका है कि ज्यादातर सरकारी कर्मचारी राष्ट्र विरोधी कामों में लिप्त थे परन्तु उनके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की गई थी। इससे यह संक्रमण और अधिक फैलता रहा। जब मैंने प्रशासन को ठीक करने का यत्न आरम्भ किया तो भयंकर रूप से दूषित इस अंश का इलाज भी आवश्यक था। यह रोग यहां तक फैल चुका था कि केन्द्रीय गृहमन्त्री की पुत्री के अपहरण में भी अनेक सरकारी कर्मचारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

जो सरकारी कर्मचारी सीमा के उल्लंघन और हिजबुल-मुजाहिदीन जैसी आतंकवादी संस्थाओं में भी कर्मचारी के रूप में कार्य कर रहे थे, अपने विशेषाधिकार द्वारा उन्हें जम्मू-काश्मीर के विधान की धारा 126 के तहत फौरन ही नौकरियों से अलग कर दिया। इस धारा के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार है कि जिन सरकारी कर्मचारियों को राज्य की सुरक्षा के लिए खतरनाक समझता हो उन्हें जांच-पड़ताल के बिना नौकरी से अलग कर दे। यदि इस प्रावधान का देश-द्रोह और आतंकवाद के विरुद्ध भी प्रयोग न किया जाये तो इसका कोई अर्थ नहीं रह जाता।

इस कार्यवाही में 121 सरकारी कर्मचारी पदमुक्त किये गये। पुलिस महानिदेशक ने अपने अधिकार से 101 पुलिस अधिकारियों को नौकरी से बर्खास्त किया। ये लोग राष्ट्रद्रोह के कामों में लिप्त थे और उन पर आज्ञा-भंग करने के आरोप थे। इनसे सम्बन्धित सब प्रमाण यह पुष्ट करते थे कि ये लोग तोड़-फोड़ और भ्रष्टाचार के मामलों में लिप्त थे और इन्हें राजनीतिक संरक्षण प्राप्त थे। जो कुछ सरकारी नौकर आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त थे उनके पास से बड़ी-बड़ी रकमें भी प्राप्त हुईं। यह धन भ्रष्ट तरीकों से इकट्ठा किया गया था। स्पष्ट था कि ऐसे लोगों को राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त थी। उदाहरण के रूप में एक कनिष्ठ अभियन्ता के घर में दो लाख रुपया नकद मिला और 50 हजार फिक्स डिपाजिट रसीदों के रूप में। यह व्यक्ति हिजबुल-मुजाहिदीन का सक्रिय सदस्य था। इस व्यक्ति के पास कार भी थी और बड़ी शानो-शौकत से रहता था।

राज्य के बाहर नजरबन्दी

जन सुरक्षा अधिनियम में संशोधन करके इन अपराधियों को राज्य से बाहर रखने का प्रबन्ध किया गया परन्तु स्थानीय हाईकोर्ट द्वारा रोक लगा दिये जाने पर उच्चतम न्यायालय को यह मामला दिया गया और उसने स्थानीय हाईकोर्ट के फैसले को बदल दिया। परिणाम स्वरूप सौ के लगभग आतंकवादियों, तोड़फोड़ करने वाले गैर-कानूनी संगठनों के लोगों को राज्य से बाहर की जेलों में भेज दिया गया ताकि उनके सम्पर्क से राज्य में और गड़बड़ी पैदा न हो।

सक्रिय तालमेल

मैं यह स्पष्ट समझता था कि भयंकर अपराधों को रोकने और आतंकवादियों द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों का पता लगाने के लिए आपसी सक्रिय तालमेल, उन पर दबाव और पहल की जरूरत है। इसलिए यह सुनिश्चित किया कि इस दिशा में कार्य करने वाली किसी भी एजेंन्सी को जो भी सूचना मिले उससे फौरन लाभ उठाया जाये और सब सम्बद्ध विभाग मिलकर उस पर कार्यवाही करें। इस तरह मेरा काम प्रमुख जांच अधिकारी का-सा हो गया। वैसे, यह जरूरी भी था। विशिष्ट हालात के लिए इस विशिष्ट ढंग की जरूरत भी थी। सेना की इस कार्य में हिस्सेदारी, जिसका मुझे अपने स्तर पर बहुत ही समझदारी से प्रयोग करना था, के बावजूद सूचनाओं, जांच-पड़ताल, तालमेल तथा उन पर तेजी से अमल उस समय बहुत जरूरी था।

आपसी तालमेल और अधिकारियों के हौसले बुलन्द होने से भयंकर अपराधों के लिए शीघ्र ही योजना पर अमल आरम्भ हो गया। यह जानना लाभप्रद होगा कि इन मामलों में क्या किया गया और मुख्य अपराधियों को कैसे पकड़ा गया और उसका परिणाम क्या हुआ।

तलाशियां और प्रमुख आतंकवादियों की गिरफ्तारियां

7 अप्रेल को जोरशोर से घर-घर का तलाशी अभियान चालू हुआ। आशा के अनुरूप लाभ हुआ। आठ अप्रैल को एच० एल० खेड़ा, मुशीरुल हक और अब्दुलघनी के अपहरणकर्ताओं की खोज के लिए एक व्यापारी हफीजुल्ला भट्ट के घर पर सीमा सुरक्षा बल की एक टुकड़ी ने छापा मारा। वहां चार संदिग्ध व्यक्ति मिले। बिना किसी खून-खराबे के तीन को फौरन ही गिरफ्तार कर लिया गया। इनमें जे० के० एल० एफ० का 'सैन्य परामर्शदाता' इकबाल गंदरू, भयंकर आतंकवादी जावेद जरगर, जिसे रुबैया की रिहाई के बदले छोड़ा गया था और इनको शरण देने वाला हफीजुल्ला भट्ट था। चौथे ने खिड़की में से साथ के मकान पर कूद कर भागने का यत्न किया। उसकी नाक से खून निकलने लगा। उसे गिरफ्तार करके एस० एम० एस० अस्पताल में दाखिल कर दिया गया। उसे पुलिस और डॉक्टरों के हवाले कर दिया गया।

बदकिस्मती से सीमा सुरक्षा बल की टुकड़ी को यह मालूम नहीं था कि उन्होंने जिसे गिरफ्तार किया है वह राज्य का प्रमुख आतंकवादी, जे० के० लिबरेशन फ्रण्ट का 'कमाडर-इन-चीफ' यासीन मलिक है। सुरक्षा बलों पर इस बात का दोषारोपण किया जाता रहा है कि वे लोग ज्यादती करते हैं। इसी डर के मारे सुरक्षा बल वहां से जल्दी से जल्दी चले जाना चाहते थे—क्योंकि उन्हें डर था कि यदि अभियुक्त अधिक खून निकलने से मर गया तो स्थानीय समाचार-पत्रों मे यही कहा जायेगा कि सुरक्षा बलों की ज्यादती से मरा, कोई भी इस सच्चाई पर भरोसा नहीं करेगा कि वह स्वयं खिड़की से कूद कर जख्मी हुआ है।

अस्पताल के डॉक्टरों ने, जिनकी देखरेख में अभियुक्त को छोड़ा गया था, धोखा दिया। पुलिस गार्ड ने धोखा दिया। जिस इलाके की घटना थी, वहां के पुलिस थाने ने धोखा दिया और जिस इलाके में अस्पताल मे था, वहां की पुलिस ने भी धोखा दिया। उन्हें पता लग गया कि अभियुक्त यासीन मलिक है। इसलिए वे उसी समय से उसके भाग जाने की तैयारी करने लग गये। जान-बूझ कर यह अफवाह फैलाई गई कि जख्मी व्यक्ति की हालत बहुत खराब है और उसके बचने की उम्मीद नहीं है। एक एम्बुलेंस एक महिला रोगी को शेरे-काश्मीर मेडिकल इंस्टीट्यूट ले जा रही थी। उसे रास्ते मे रोक कर यासीन मलिक को उसमें डाल कर इंस्टीट्यूट भेज दिया गया। एस० एम० एस० के डॉक्टरों ने इंस्टीट्यूट के डॉक्टरों को बता दिया गया कि कौन आ रहा है और दोनों ओर से उसे भगाने में मदद देने का षड्यन्त्र आरम्भ हो गया।

इंस्टीट्यूट पहुंचते ही उसे स्ट्रेचर पर लाद कर लिफ्ट मे ले जाया गया और वह कुछ डॉक्टरों और समर्थकों के साथ गायब हो गया। साथ ही यह अफवाह फैला दी गई कि उसके साथियों ने उसे रास्ते में ही घेर लिया और शायद उसकी मौत हो गई। ऐसा इसलिए किया गया कि कोई उसका पीछा न करे और पीछा करने वाली पार्टियां ढीली पड़ जाएं।

वह हमारे चंगुल से निकल भागा। इससे एक बार फिर स्पष्ट हो गया कि हमारा काम कितना कठिन था, किस प्रकार षड्यन्त्र होते थे और कैसे देखरेख करने वाले लोग ही धोखा देते थे और सुरक्षा बलों के विरुद्ध गलत दोषारोपण किये जाते थे जिससे उनका मनोबल टूटता था।

यासीन मलिक के भाग जाने से मुझे निराशा हुई। उसकी तथा उसके तीन प्रमुख सिपहसालारों की गिरफ्तारी से जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट का लगभग सफाया हो गया होता। इससे उसके समर्थकों के हौसले पस्त होते। संभवतः घर-घर की तलाशी के कारण मेरी आलोचना करने वालों में भी समर्थन मिलता और हो सकता था कि किसी मध्यस्थ अफसर के द्वारा यासीन मलिक से बात करके उसे यह समझा पाता कि सैनिक उपायों की बजाय वह चुनाव के उचित रास्ते को अपनाये। शायद इससे रूढ़िवादी लोगों, पाकिस्तान समर्थक हिजबुलमुजाहिदीन और स्टूडेन्ट लिबरेशन फ्रण्ट आदि अधिक क्रूर लोगों को अलग-थलग कर पाता। परन्तु कुछ समय के लिए यह संभव न हो सका।

मैंने यासीन मलिक के भाग जाने की बात उदासीन भाव से स्वीकार कर ली

परन्तु अस्पताल और पुलिस थाने से धोखेबाज लोगों का सफाया जोर-शोर से आरम्भ कर दिया। डॉक्टरों और पुलिस की षड्यन्त्रकारी मण्डली पर यह स्पष्ट कर दिया गया कि वे कितनी चतुराई से अपने कुकृत्य छिपाएं, परन्तु उनका पता लगाया जा सकता है और वे सजा पाये बिना बच नहीं सकते।

यासीन मलिक के भाग जाने के बावजूद तीन प्रमुख आतंकवादियों इकबाल गंदरू, जावेद ज़रगर और हफीजुल्ला बट्ट की गिरफ्तारी भी बहुत बड़ी सफलता थी। इन गिरफ्तारियों से उनकी अनेक योजनाएं नाकाम कर दी गईं। इन गिरफ्तारियों से पहले ही नये प्रबन्ध के कारण काफी सफलता प्राप्त हुई थी। हिज़बुल मुजाहिदीन के एक प्रमुख सदस्य फजलुलहक कुरैशी को गिरफ्तार किया गया और उससे महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली थी। श्रीनगर के एक उपनगर सौरा से बहुत से बम बरामद किये गये और कुरैशी के अधिकांश सम्पर्क सूत्रों को नष्ट कर दिया गया था। खानयार में हुई गोलाबारी में एक प्रमुख आतंकवादी रंगरेज मारा गया था। आशफाक मुजीदवानी ने सीमा सुरक्षा बल की पार्टी पर फैंकने के लिए बम उठाया था कि वह उसके हाथ में ही फट गया और वह मर गया। इस प्रकार कुल मिलाकर देखें तो काफी महत्त्वपूर्ण सफलताएं मिली थीं।

शौकत बख्शी

घर-घर की तलाशी के दौरान बड़े महत्त्वपूर्ण सुराग मिले। 8 अप्रैल को शौकत बख्शी नामक एक और प्रमुख आतंकवादी पकड़ा गया। उससे पूछताछ के दौरान बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली। उसके आधार पर उन लोगों को भी गिरफ्तार किया जा सका जो केन्द्रीय गृहमंत्री की बेटी रुबैया के अपहरण में भी शामिल थे।

शौकत बख्शी द्वारा दी गई जानकारी की पुष्टि एक और गिरफ्तार व्यक्ति शीराजी से हुई और उसके आधार पर पाकिस्तान समर्थक और प्रमुख तोड़-फोड़ करने वाले अब्दुल्ला शीराजी के घर पर छापा मारा गया। शीराजी के पास पिस्तौल मिली और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। वह बहुत ही चतुर था, उससे बहुत-सी जानकारी मिली। उससे पता चला कि जिस मारुति वैन में रुबैया का अपहरण किया गया था, वह अली मुहम्मद मीर की थी। उसकी निशानदेही पर कार का पता चल गया और उसके मालिक को गिरफ्तार कर लिया गया।

एक दिन सर्वसाधारण से मिलने के समय अब्दुल्ला शीराजी की औरत मेरे पास आई। उसने कहा—"मेरा बेटा निर्दोष है। खाविंद के बारे में मुझे कुछ पता नहीं।" उसे हमारी कोई फिक्र नहीं। मुझे मालूम नहीं कि वह मर गया है या पाकिस्तान में मजे लूट रहा है। उसके अपने दोस्त हैं और उनमें से बहुत से पाकिस्तान चले गये हैं। उसने अपना नाम पाकिस्तान से प्रसारित होने वाले आवाम के पसंदीदा प्रोग्राम में भी नहीं दिया। पहले तो वह पैसा भेज देता था, अब कुछ नहीं भेजता। परन्तु मेरे बेटे की रिहाई हो जाये तो मेरी चिन्ताएं दूर हो जायेंगी। वो अभी बहुत छोटा है। उसका कोई दोष नहीं। उसे बाप के जुल्मों की सजा नहीं मिलनी चाहिए।" शीराजी की औरत की बातों से मुझ पर असर

हुआ। उसने अपने प्रति बेरुखी, परिवार की उपेक्षा और बेटे के निर्दोष होने और अपने पति के बहुत से दोस्तों के 'शहीद' होने की बातें की। मैं हैरान था कि ये लोग अब्दुल्ला शीराजी जैसे कितने घरों को उजाड़ चुके हैं और स्वार्थी लोग इन्हें कितना मूर्ख बना रहे हैं। मैंने पूर्णतया सहानुभूति के आधार पर इस मामले से सम्बन्धित पुलिस अफसर से कहा कि हो सके तो पूरे एहतियात के बाद इस लड़के को रिहा कर दिया जाये।

डॉ० रुबैया के अपहरणकर्ताओं से पूछताछ के बाद यह बात स्पष्ट हो गई कि जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट के नेताओं का ऐसे भयंकर काम करने का हौसला इसलिए बढ़ा था चूंकि उन्होंने समझ लिया था कि राज्य प्रशासन नकारा है और उन लोगों ने सरकारी तंत्र में आदमी घुसेड़ दिये थे। उनका मकसद ऐसे सनसनीखेज काम करने का था कि उन्हें देश और विदेश में प्रचार मिले। इस ध्येय की पूर्ति के लिए इससे बढ़िया और क्या बात हो सकती थी कि केन्द्रीय गृह-मंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की बेटी का ही अपहरण किया जाये।

डॉ० रुबैया 8 दिसम्बर को दोपहर बाद लालदेह अस्पताल से बाहर निकली। ज्योंही उसने घर जाने के लिए मिनी बस पकड़ी, गुलाम हसन, मुश्ताक लोन, इकबाल गंदरू, मेहराजुद्दीन मुस्तफा और सलीम उर्फ 'नानाजी' भी उस बस में घुस गये। बस में अन्तिम स्टाप नौगाम से पहले बस का अपहरण कर लिया गया। ड्राइवर को मजबूर करके वे बस को नातीपुरा की एक गुमनाम जगह ले गये। यहां से डॉ० रुबैया को बस से उतार कर नीली मारुति कार में बिठाया गया। यासीन मलिक, अशफाक मजीदवानी और गुलामहसन भी उस कार में थे। सिडको का तकनीकी अफसर अली मोहम्मद मीर कार चला रहा था। वे कार को सोपोर में एक और सरकारी जूनियर इंजीनियर जावेद इकबाल के घर ले गये। डॉ० रुबैया को वहां एक दिन रखा गया। 9 दिसम्बर को उसे सोपोर के ही एक उद्योगपति मुहम्मद याकूब के घर ले गये। इस घर का इन्तजाम यहीं के जमन मीर और अब्दुल्ला नामक उद्योगपतियों ने किया था। रुबैया को यहां 14 दिसम्बर, 1989 तक रखा गया। वहां की चौकीदारी इकबाल हसन और गन्दरू करते रहे।

एक ओर इन पांच दिनों रुबैया सिसकियां भरती और यह सोचती रही कि क्यों उसे कैदी की तरह यहां रखा गया और इस नाटक का क्रूर अंत क्या होगा, जिसको नाटकीय ढंग से पूरे संसार में प्रचारित किया जा रहा है, दूसरी ओर उसे यातनाएं देने वाले यासीन मलिक और अशफाक मजीदवानी श्रीनगर में रह रहे बिचौलियों के माध्यम से सरकारी नुमाइन्दों से सौदेबाजी कर रहे थे। यासीन मलिक कांग्रेस (इ) के मंत्री गुलाम रसूल कार के बेटे एजाज से दोस्ती के कारण एक व्यापारी के घर से कभी टेलीफोन पर बातें करता था। सरकार में कोई दम नहीं था और वह संशय में थी। उसे अंत में रुबैया की रिहाई के बदले पांच प्रमुख आतंकवादियों को छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा।

रुबैया के इस मामले से कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होते हैं। उससे पता चलता है कि कितनी सरलता से दूरगामी परिणामों वाले षड्यन्त्र रचे जा सकते थे, इन लोगों को सरकार का जरा भय नहीं था और किस तरह सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त व्यापारी और उद्योग धन्धों में लगे हुए आदमी भी आतंक-

वादी गतिविधियों में लगे हुए थे और सहयोग दे रहे थे। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि भारत सरकार राज्य के विकास के लिए जो साधन मुहैया करवा रही थी उसे कुछ सरकारी अधिकारी और मध्यम दर्जे के उद्योगपति भ्रष्टाचारपूर्ण तरीकों से अपने लिए धन बटोर लेते थे और तोड़-फोड़ करने वालों को उनके कामों के लिए वित्तीय सहायता भी कर देते थे। इसके बदले वे इनकी सुरक्षा और भेद न लगने देने का ध्यान रखते थे। उदाहरण के लिए अली मुहम्मद मीर, जिसकी कार में रुबैया को सोपोर ले जाया गया था। गैरकानूनी तौर पर उन दो उद्योग-पतियों मदद कर रहा था जिनके मकानों में रुबैया को कैद किया गया था और स्वयं मीर अपनी औकात से अधिक पैसा खर्च करता था।

लासा कौल का मामला

लासा कौल की हत्या के मामले का पता लगा लेना इस नये प्रबन्ध की एक और सफलता थी। जैसाकि पहले बताया गया है, लासा कौल की हत्या की योजना थी। उसका दोष यह था कि दूरदर्शन पर राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रसारित करता रहता था जिसे आतंकवादी इस्लाम विरोधी मानते थे। वह दूरदर्शन समाचारों के बारे में भी आतंकवादियों की हिदायतें नहीं मानता था, इसलिए भी नाराज थे। नीचे के कुछ कर्मचारियों को आतंकवादियों ने डराया-धमकाया था इसलिए वे उनसे सहानुभूति रखने लगे थे और कुछ उनका साथ भी देने लगे थे। इसलिए श्रीनगर दूरदर्शन के समाचार प्रमुख रूप से तोड़-फोड़ करने वालों के पक्ष में रहते थे। कुछ समाचार तो पूर्णत: आतंकवादियों की विज्ञप्तियों से से ही लिये जाते थे। वरन् उनके कार्यक्रमों का प्रचार भी किया जाता था। उदाहरण के लिए कई बार 'शहीदों' के लिए नमाज-ए-जनाजा के स्थान और समय की घोषणा भी की जाती थी। इनसे सम्बन्धित दृश्य भी दूरदर्शन पर दिखाये जाते थे। कौल इस संतुलन को ठीक करना चाहता था। देशद्रोही संगठनों को यह बात पसन्द न थी। उनका मानना था—"यदि कोई हमारे कहे के अनुसार काम नहीं करता और हमारा सहायक नहीं तो हम उसे अपना दुश्मन समझते हैं और उसे खत्म कर दिया जायेगा।"

शौकत बख्शी की गिरफ्तारी से पता चला कि हत्या की कैसे योजना बनी और कैसे उसे पूरा किया गया। फरवरी 11 और 12 की शाम को कौल दफ्तर में ही रहा। 13 फरवरी की शाम को उसे अपने विकलांग पिता, जो अकेले ही रहते थे और जिनका परिवार पहले ही दिल्ली चला गया था, को मिलने जाना था। शौकत बख्शी और हनीफ बेमीना में कौल के पिता के घर के पास आ छिपे। कौल ज्योंही अपनी कार से उतरा शौकत ने पिस्तौल से उस पर गोली चला दी। कौल की वहीं मौत हो गई। पिस्तौल मजीद बानी को दिया था। शौकत बख्शी की गिरफ्तारी और उससे पूछताछ से पता चला कि कौल की हत्या अमानुल्ला खां की हिदायतों के अनुसार हुई थी। ये हिदायतें अशफाक मजीद वानी द्वारा उसे मिली थीं। अमानुल्ला उन दिनों अमेरिका में था और वहीं से काश्मीर सम्बन्धी दुष्प्रचार कर रहा था। वह हर रोज भारत विरोधी बयानबाजी करता रहता था।

शौकत बख्शी की दोष स्वीकारोक्ति के आधार पर हमने हाईकोर्ट से अमानुल्ला के अमेरिका से निष्कासन के आदेश प्राप्त कर लिए। हमारा ध्येय यथाशीघ्र वारण्ट प्राप्त कर लेना था। हमारा विश्वास था कि यदि हम उसे वहां से निष्कासित न करवा कर गिरफ्तार न करवा सके तो भी वारण्ट अपने आप में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। इससे अमेरिका मे उसके भारत विरोधी दुष्प्रचार पर रोक लगेगी और उसे वहां से कही अन्यत्र जाना पड़ेगा। यही हुआ, ज्यों ही हमे अमानुल्ला के निष्कासन वारण्ट प्राप्त हुए, वह अमेरिका से खिसक गया।

यहा जम्मू के चीफ जुडीशियल मजिस्ट्रेट अवतार कृष्ण कौल के व्यवहार के सम्बन्ध में भी बता दिया जाये। शौकत बख्शी क्रिमिनल प्रोसिजर की धारा 164 के अधीन अपना बयान दर्ज करवाना चाहता था। मजिस्ट्रेट ने माना था कि वह पुलिस तथा अन्य अधिकारियो की मौजूदगी में इसका बयान कलमबद्ध करेगा पर जब समय आया और पुलिस अभियुक्त को लेकर अदालत पहुंची तो वहां के लोगों की भारी भीड थी पर मजिस्ट्रेट साहब गायब थे। वह आकस्मिक अवकाश की अर्जी देकर खिसक गये थे।

मुझे मजिस्ट्रेट के गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार का बड़ा दुख था। डर यह था कि कही शौकत बख्शी अपना बयान न बदल दे, चूंकि उसी के बयान के आधार पर अमानुल्ला खा का वारण्ट निकलना था। अगले दिन दूसरे मजिस्ट्रेट ने बयान कलमबद्ध किया और सौभाग्य की बात थी कि शौकत ने बयान बदला नहीं। पर उसने केस को कमजोर करने के लिए चालाकी से कुछ बातें छोड़ दी।

इस काण्ड से एक बार फिर यह प्रकट हो गया कि प्रशासन कमजोर होता जा रहा था, जबकि उसके सामने चुनौतियां बढ़ती जा रही थी और प्रमुख अधिकारी अपना दायित्व नही समझ रहे थे और उससे पल्ला छुडा रहे थे।

मुशीरुलहक का मामला

प्रो० मुशीरुलहक और उनके सहायक अब्दुलगनी जरगर के अपहरण और हत्या के अभियुक्त की गिरफ्तारी एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। 11 मई को समाचार पत्रों मे छोटी सी सूचना दी गई थी। 15 मई को वह कार बरामद कर ली गई जिसमें उक्त कुलपति और उनके सहायक का अपहरण किया गया था। गिरफ्तारियों से पता चला कि इनका अपहरण 6 अप्रैल, 1990 को काश्मीर विश्वविद्यालय के मुख्य दरवाजे पर किया गया था। उन्हें दो रात नातीपुरा में शबीर के घर रखा गया। उनके बाद उन्हे काश्मीर सशस्त्र पुलिस बल के अवकाश प्राप्त सिपाही गुलाम कादिर मीर के घर रखा गया। वहा वे एक रात रहे। उसके बाद श्रीनगर के गुलाम मुहम्मद दर के घर रखा गया। उसके बाद उन्हें जामा मस्जिद नौहट्टा का सलीम अहमद जरगर उर्फ फैज खेतों मे ले गया। साढ़े चार बजे के करीब हिलाल अहमद बेग पादशाही बाग वाले खेत मे लाया और उसने बन्धकों को गोली से उडा देने का हुक्म दिया। उनसे कहा गया कि हाथ ऊपर उठाकर आगे चलें। उन्होंने समझा कि उन्हें रिहा किया जा रहा है। वे आगे चले कि उनकी पीठ मे गोली मार दी गई। उन्हें वही मरता छोड दिया गया।

इस मामले में मुश्ताक अहमद शेख उर्फ जोन उर्फ काचरू को भी गिरफ्तार किया गया। बाद में जावेद अहमद शल्ला को भी गिरफ्तार किया गया। मुश्ताक अहमद उन तीन लोगों में था जो कुलपति की कार के ड्राइवर को काबू करके कार लाल बाजार ले गये थे और वहां से उन्हें मारुति में डालकर गुलाम कादिर मीर और गुलाम कादिर दर के घर ले गये जहां उन्हें रखा गया।

हत्या क्यों की गई ?

प्रश्न यह है कि प्रो० मुशीरुलहक की हत्या क्यों की गई ? इसका कारण यह था कि वे काश्मीरी न थे और उदार विचारों के थे ? या विश्वविद्यालय के आपसी षड्यन्त्रों, कुछ नियुक्तियों या उनके कार्यकाल को बढ़ाने के कारण ऐसा किया गया ? या स्थानीय आतंकवादियों ने अमानुल्ला खां और पाकिस्तान की खुफिया संस्था इण्टर सर्विसेज इण्टेलिजेंस के कहने पर कत्ल किया गया ? परन्तु प्रो० के साथ मध्यम दर्जे के अफसर को क्यों मार दिया गया ?

जांच-पड़ताल और पूछताछ में इन सवालों के उत्तर नहीं मिले। इस सम्बन्ध में काश्मीर विश्वविद्यालय के प्रो० वानी ने 9-10 अप्रैल की रात को मुझे एक बात कही। संक्षेप में उसका ब्यौरा इस तरह है।

9 अप्रैल की रात 11 बजे मेरे परामर्शदाता जमाल कुरैशी ने मुझे बताया कि प्रो० वानी ने टेलीफोन पर उससे यह दरख्वास्त की थी कि कोई बड़ा पुलिस अधिकारी, पुलिस महानिनेशक या डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल वाइस चान्सलर के घर भेजा जाये, जहां उनके परिवार के सदस्यों के सामने वह बात करना चाहता है। पुलिस अधिकारी वहां गये और प्रो० वानी ने बताया कि लगभग सायंकाल साढ़े सात बजे अपहरणकर्ताओं ने फोन किया था और कहा था कि मैं उनके परिवार और पुलिस की मौजूदगी में यह बता दूं कि सरकार कुछ ठीक काम नहीं कर रही। बाद में उसी फोन से प्रो० हक ने कहा था कि मैं ठीक-ठाक हूं। मैंने कुरैशी से कहा कि वे सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को लेकर राजभवन आ जायें।

रात को एक बजे हम लोग मिले और विचार किया। मैंने प्रो० वानी से कहा कि वे उनकी रिहाई की सही शर्तों का पता लगायें। परन्तु प्रो० वानी इस बारे में कोई भरोसा नहीं दिलवा सके। उनके लिए अपहरण करने वालों या उनके प्रतिनिधियों से सम्पर्क साधना कठिन था। उनका कहना था कि उन्हें उम्मीद नहीं कि उन्हें फिर कोई फोन करेगा। हम परेशान थे कि क्या करें। यदि वे अपहरण करने वालों से सम्पर्क नहीं कर सकते तो बातचीत हो ही नहीं सकती। अढ़ाई बजे हमारी मीटिंग समाप्त हुई। हमने उन्हें कहा कि यदि फिर कोई फोन आये तो हमें फौरन सूचना दें। अत्यन्त हैरानी की बात है कि आधी रात को जो बात राजभवन में हुई थी, वह अगली सुबह उर्दू दैनिक 'अलसफा' में छप गई। प्रो० वानी का कोई साथी सम्पादक को जानता था और वह इस मामले को काश्मीरियों को बताना चाहता था। कह नहीं सकते कि कुछ करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी ?

प्रो० वानी से मिलने के बाद हमने अपनी रणनीति पर विचार किया। तब

तक चार दिनों में हजारों घरों की तलाशी ली जा चुकी थी। इससे पहले आतंक-वादियों को घेरने के लिए ऐसी तलाशियां नहीं हुई थीं। कई आतंकवादी श्रीनगर में घिर गये थे। लगातार कर्फ्यू के कारण उनके लिए वहीं भागना कठिन हो गया था। आधा दर्जन के करीब शौकत बख्शी जैसे कट्टर आतंकवादी पकड़े गये पर अपहरणकर्ता हमारे हाथ न लगे। बाद में पता चला कि तलाशी लेने वाला एक दल उस स्थान से कुछ गज की दूरी तक पहुंच गया था।

सारी रात सुबह चार बजे तक हम विचार करते रहे। मुश्किल से दो-तीन घंटे ही बीते होंगे कि दिल्ली और कुलपति के घर से बार-बार टेलीफोन आने लगे। कारण था 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में न्यूयार्क से प्रेस ट्रस्ट की खबर अखबार में प्रमुख हैडिंग के साथ छपी थी – जिसमें अमानुल्ला खां ने संयुक्त राष्ट्र संघ में एक संवाददाता सम्मेलन में यह घोषणा की थी कि कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० हक, एच० एम० टी० के प्रमुख प्रबन्धक एच० एल० खेड़ा तथा दो अन्य प्रबंधकों को गोली मार कर हत्या कर दी गई है।

यह खबर एक रहस्य ही थी। 9 अप्रैल को ही अमानुल्ला खां ने कैसे यह घोषणा कर दी कि बंधकों की हत्या कर दी गई है, जबकि वास्तव में अभी वे जीवित थे? या उसका यह ढंग था कि जिसमें उसके पिट्ठू बंधकों को मार दें? प्रो० वानी ने यह बात प्रो० हक के परिवार वालों के सामने क्यों कही कि सरकार को जो करना चाहिए वह नहीं कर पा रही है। वह या उनके जरिये कोई दूसरा व्यक्ति सरकार को दोषी ठहरा कर जनता के उस क्रोध को कम करना चाहता था जो बंधकों की हत्या के बाद पैदा होगा? या हत्याओं को उचित ठहराने का प्रयत्न किया जा रहा था?

जल्दी ही यह बात साफ हो गई कि बंधकों की हत्या का निश्चय पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी के ब्रिगेडियर इम्तियाज ने किया था। इसके साथ ही बारामूला गवर्नमेंट कालेज का एक अस्थाई अध्यापक अशरफ शराफ, जो बाद में शायद पाकिस्तान चला गया, इस मामले से सम्बद्ध था। उसे प्रो० मुशीरुलहक से कुछ शिकायत थी, उसने इस सम्बन्ध में बहुत निकृष्ट भूमिका अदा की। उसके बाद जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट द्वारा 20 अप्रैल, 1990 को रावलपिण्डी हैड-क्वार्टर से प्रकाशित विज्ञप्ति द्वारा सच्चाई का पता चला। इसमें कहा गया था—

"हमें कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० मुशीरुलहक और उनके सहायक अब्दुलगनी के अपहरण और उनकी हत्या के सम्बन्ध में 'स्वतन्त्रता सेनानियों' और उनके प्रशंसकों द्वारा अनेक पत्र और टेलीफोन पर संदेश मिले जिनमें उन्होंने इन हत्याओं के प्रति गहरा दुख व्यक्त किया है। हमारा ध्यान इस बात की ओर भी दिलाया गया कि अब्दुलगनी कश्मीरी था और उसके पिता की मृत्यु पुत्र के मारे जाने के सदमे से हुई। हमारे मित्रों और शुभचिन्तकों ने यह भी कहा है कि इस घटना द्वारा भारतीय अधिकारी जे० के० एल० एफ० को आतंकवादी संगठन करार देंगे और अमानुल्ला खां के खिलाफ उसे बदनाम करने वाला प्रचार आरम्भ कर देंगे।

हम इस बात का समर्थन करते हैं कि बंधकों को कोई हानि नहीं पहुंचानी चाहिए थी। हमें प्रो० अशरफ शराफ और शफी द्वारा यह विश्वास दिलाया गया था कि उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचेगी। बंधकों की हत्या में जे० के० एल० एफ०

को बहुत आश्चर्य हुआ है क्योंकि यह हमसे हुए समझौते का उल्लंघन है। हमें पता चला कि इम्तियाज ने अमानुल्ला खां का नाम लेकर अशरफ शराफ और शफी द्वारा बंधकों की हत्या का आदेश दिया। इसके साथ ही इम्तियाज ने एक पाकिस्तानी राजनयिक द्वारा अमानुल्ला खां को यह सन्देश भिजवाया कि उनकी जानकारी के बिना काश्मीरी 'स्वतन्त्रता सेनानियों' ने बंधकों की हत्या कर दी।"

इस मामले से सम्बद्ध तथ्यों द्वारा एक बार फिर यह प्रकट हो गया कि एक समस्या दूसरी समस्या से सम्बद्ध थी। और हम इस बात के विरुद्ध थे कि हमारे विरोधियों द्वारा प्रो० मुशीरूलहक जैसे सच्चे मुसलमान को इस्लाम की सेवा का बहाना करके कत्ल कर दिया जाय। ऐसी स्थिति में हमें इनके प्रति नरमी बरतने का औचित्य प्रतीत नहीं हो रहा था। हम अपहरणों और सीधे-सच्चे इन्सान हक, घनी और खेड़ा जैसो व्यक्तियों के अपहरण और उनकी हत्या के विरुद्ध थे और हम इनके विरोध में दबाव बनाये रखना चाहते थे। घाटी में आतंकवाद की कमर तोड़ देने का हमारे लिए बहुत अच्छा अवसर था। सभी प्रमुख आतंकवादियों की नाकेबंदी कर ली गई थी। यदि दबाव बना रहता तो और अधिक आतंकवादी हमारे जाल में फंस जाते। परन्तु मेरे विरुद्ध गलत जानकारी के आधार पर चलाया गया शैफुद्दीन सोज जैसे व्यक्तियों द्वारा आन्दोलन मुझे परेशान कर रहा था। इन लोगों ने कर्फ्यू लगाये जाने और घर-घर की तलाशी के सम्बन्ध में तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश किया जबकि कर्फ्यू के समय जरूरतमंद लोगों को खाने के पैकेट और बीमारों को हस्पताल ले जाने तथा कर्फ्यू पास आदि देने की सुविधायें मुहैया थीं। परन्तु तथ्यों की चिन्ता किसे थी? यहां तो केवल गलत प्रचार, डर और होशोहवास खोकर शोर मचाने का ही महत्त्व था। मुफ़्ती जैसे आदमी भी घबरा उठे। उसने संसद में यह बयान दिया कि राज्यपाल को कर्फ्यू में ढील देने के आदेश दिये गये हैं। जैसाकि हमें डर था, कर्फ्यू में ढील का मतलब आतंकवादियों का इधर-उधर बिखर जाना अथवा श्रीनगर से कहीं बाहर चले जाना था।

ये हत्यायें अत्यन्त दुखदायक, घृणित और निर्लज्जतापूर्ण तरीके से की गई थी। उनका कोई मकसद नहीं था परन्तु इन चार दिनों में इन तीनों बंधकों के परिवारों, मित्रों और शुभ-चिन्तकों को इतना कष्ट उठाना पड़ा था, वह अवर्णनीय है। परन्तु भाग्य और पुरानी भूलों के कारण हम असहाय थे। हम इन परिवारों को कुछ सहायता और सान्त्वना ही दे सकते थे। इस सम्बन्ध में उक्त तीनों व्यक्तियों की विधवा पत्नियों को मैंने पत्र लिखे। अब्दुल ग़नी ज़रगर की पत्नी को लिखे मेरे पत्र से हमारे दृष्टिकोण का अनुमान लगाया जा सकता है—

राजभवन,
श्रीनगर,

श्रीमती हाफिजा बेगम,

जैसा कि मैंने अपने सांत्वना संदेश में प्रकट किया था कि आपके प्रिय पति की अमानवीय हत्या से सारे देश को शोक हुआ है, सारे राष्ट्र ने इसकी निन्दा की है। हम सब आपके दुख में सम्मिलित हैं।

हमें यह बात समझ में नहीं आती कि आतंकवादी इस प्रकार के निर्दयी कृत्यों

से क्या हासिल करते हैं। हो सकता है कुछ व्यक्तियो ने आपके सामने कुछ गलत तस्वीर पेश की हो, परन्तु मैं आपको आश्वासन देना चाहता हू कि हत्यारो को बख्शा नही जायेगा। अपहरण के दिनों राज्य प्रशासन ने उनकी तलाश के लिए कोई कसर नही उठा रखी थी। चार दिनों मे हजारो घरो की तलाशी ली गई परन्तु भाग्य ने हमारा साथ न दिया।

मैं यह बात बड़ी अच्छी तरह समझता हूं कि कितनी भी सहायता की जाए, आपके और आपके परिवार के सदस्यो के दु.ख को कम नही किया जा सकता। आपको जो हानि हुई है उसकी पूर्ति नही की जा सकती परन्तु दो लाख रुपये (एक लाख राज्य प्रशासन की ओर से और एक लाख विश्वविद्यालय की ओर से) और आपके पुत्र मोहम्मद अफजल जरगर की काश्मीर विश्वविद्यालय के बायोकैमिस्ट्री विभाग मे प्राध्यापक के रूप मे नियुक्ति से आपके परिवार को अपने पैरो पर खड़ा होने का अवसर मिलेगा। मैं एक बार फिर आपसे संवेदना प्रकट करता हू और दिवंगत व्यक्ति के प्रति शांति की कामना करता हूं।

आपका
(जगमोहन)

खेड़ा की हत्या का मामला

एच० एम० टी० के जनरल मैनेजर एच० एल० खेडा के अपहरण और हत्या के रहस्य की गुत्थी भी सुलझा ली गई थी। गिरफ्तार व्यक्तियो से पूछताछ के दौरान यह पता चला कि यह हत्या इसलिए की गई थी कि केन्द्रीय संस्थाओ मे कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियो मे डर पैदा किया जाए। इस सम्बन्ध मे षड्यन्त्रकारी काश्मीरी छात्र लिबरेशन फ्रंट ने 6 अप्रैल, 1990 को कमरबाडी चौक से प्रातःकाल 9.30 बजे खेड़ा का उनकी कार समेत अपहरण किया। चार आतंकवादी जिनके पास कलाश्निकोव राइफलें और पिस्तौलें थी, ड्राइवर को एक ओर धकेल कर उनकी कार मे घुस गए। एक व्यक्ति कार चालक की जगह बैठा और दो पिछली सीट पर खेड़ा को बीच मे करके बैठे। वहा से वे बटमालू की तरफ गये, वहा उन्होने ड्राइवर और खेड़ा के सुरक्षा अधिकारी को बाहर निकाल दिया। वहा से वे अलूची बाग स्थित गुलाम मुहम्मद बट्ट के घर गये जहा खेड़ा को बंधक बनाकर रखा गया।

7 अप्रैल, 1990 को खेड़ा को श्रीनगर के माधोपुरा मुहल्ला के एक दुकान-दार गुलाम मुहम्मद के घर ले जाया गया। 8 अप्रैल, 90 को फिर पुरानी जगह अलूची बाग लाया गया। वहा से एक मारुति वैन मे डालकर मजीद बाग ले जाया गया। इस तीसरी जगह से खेड़ा को फिर उसी मारुति वैन मे बटमालू ले जाकर उनकी हत्या कर दी गई। उनकी लाश फायर स्टेशन की इमारत के पास मिली।

खेड़ा के सम्बन्ध मे हमें किसी प्रकार का संदेश भी नही मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अपहरण के साथ ही उनकी हत्या की योजना बना ली गई थी। इस सम्बन्ध में भी हमने खोज के बेहद प्रयास किये। हमने सैकड़ों घरो की तलाशी ली। हम भूतपूर्व मंत्री के घर की तलाशी लेने मे भी नही हिचकिचाए क्योकि

हमें ऐसी विश्वसनीय सूचना मिली थी कि खेड़ा तथा अन्य बंधकों की तलाशी से बचने के लिए उन्हें इनके घर में रात में रखा जा सकता है। जरूरी नहीं कि बंधकों को मिलीभगत के कारण छिपाया गया हो, ऐसा डर की वजह से भी किया जा सकता था।

शल्ला का मामला

पुलिस अधीक्षक सी० एल० शल्ला की हत्या के मामले की भी जांच की गई। इस अपराध से हमें यह पता चला कि राज्य के अंदरूनी तोड़-फोड़ के मामलों और जंगजू कठमुल्लाओं के मामले से व्यक्तिगत दुश्मनी को कैसे जोड़ा जा सकता है। जनवरी, 1990 में एक तोड़-फोड़ करने वाले रफीक नामक व्यक्ति को सीमा सुरक्षा बल ने गिरफ्तार किया। गिरफ्तारी के बाद उसे स्थानीय पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया। इस अवधि में सी० एल० शल्ला ने उससे पूछताछ की। इसके बाद उसे छोड़ दिया गया।

1 मई, 1990 को हंदवाड़ा से बारामूला के लिए शल्ला ने बस पकड़ी। हबीबुल्ला नामक सिपाही उसे बस तक छोड़ने आया। उस समय हंदवाड़ा का एक निवासी गुलाम मुहम्मद बस के दरवाजे पर खड़ा था। उसने पास की दुकान से अब्दुल्ला नाम के एक आदमी को बुलाया। उसने फिरन पहन रखा था, उसके नीचे ए० के० 47 राइफल छिपा रखी थी। गुलाम मुहम्मद ने उसे छूकर इस बात का विश्वास किया कि उसके पास हथियार है। बस के कंडक्टर ने यह सब कुछ देखा।

बस को चले हुए 10 मिनट ही हुए होंगे कि बस रुकी और तीन आदमी उस पर सवार हुए। वे युसुफ, रफीक और रियाज थे। वे तीनों हींबा गांव के रहने वाले थे। कुछ मिनट बाद बस फिर रुकी। रफीक ने पिस्तौल निकाल कर शल्ला को हाथ ऊपर उठाने को कहा, उसे बस से बाहर घसीट लिया गया। तीनों आदमी बस से उतर आये। शल्ला को अमानवीय ढंग से यंत्रणा दी गई और उसके बाद गोली मार दी गई।

कुछ अन्य मामले

मैंने केवल पांच मामलों पर ही इसलिए प्रकाश डाला है कि इनका कुछ महत्त्व है और इनसे हत्याओं के सम्बन्ध में सामान्य ढंग से षड्यन्त्र के तरीके का पता चलता है। इनमे से एक का सम्बन्ध बड़े राजनीतिक नेता मुफ्ती मुहम्मद सईद से। दूसरा मामला भारत सरकार के सूचना विभाग के प्रमुख अधिकारी लासा कौल से है। तीसरा विश्वविद्यालय के कुलपति मुशीरूलहक और चौथा सरकारी संस्थान के एच० एल० खेड़ा तथा पांचवां पुलिस अधीक्षक श्री शल्ला से सम्बन्धित था। कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मामले भी थे जिनमें भारतीय वायुसेना के चार अफसरों की हत्या का मामला भी सुलझा दिया गया। इनसे जनता के दिमाग में भारी विश्वास पैदा हुआ था। सबको यह विश्वास हो गया था कि इस तरह के अपराध करके कोई भी बच नहीं सकता। इन सब मामलों को सुलझाने में सीमा सुरक्षा बल के आई० पी० एस० अधिकारी तथा अतिरिक्त निदेशक अशोक

पटेल ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था। उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

केन्द्रीय जांच ब्यूरो

इन मामलों की सही जांच और अदालतों मे अपराधी व्यक्तियो के विरुद्ध मामले दर्ज करने के लिए मैंने ये मामले केन्द्रीय जांच ब्यूरो को सौंपे। इस बात का भी आतंकवादियों पर भारी असर पड़ा। अब तक राज्य सरकार केन्द्रीय जांच ब्यूरो को इस प्रकार के काम नही सौंपती थी। और धारा 370 का अड़ंगा लगा कर इस काम मे रुकावट डालती थी जबकि इसकी अपनी खुफिया एजेंसी बेकार सिद्ध हो चुकी थी और उससे किसी को कोई भय नहीं रह गया था।

एक विशेष अदालत

आतंकवादी और तोड़-फोड़ की गतिविधियों की धारा के अन्तर्गत मैंने एक विशेष अदालत की स्थापना की जिसका मुख्यालय जम्मू रखा गया। मैंने ऐसा खास विचार से किया। एक कारण यह था कि यदि इसे श्रीनगर में रखा जाता तो इसका प्रभावकारी ढंग से काम करना संभव न था। लोगो की भावनाओं को उभार कर सुनवाई के समय अदालतो मे भीड इकट्ठी कर दी जाती। अत: आतंकवादी गतिविधियों से संबद्ध सभी अभियुक्तों को जम्मू सम्भाग के ही अथवा राज्य से बाहर की जेलो में रखा गया। परन्तु इसके साथ ही मैंने यह सुविधा भी दी कि यदि कोई वकील श्रीनगर से इनकी पैरवी के लिए आए तो उसे सरकारी सर्किट हाउस या रैस्ट हाउस मे रहने की सुविधा दी जाये।

सचिवालय का स्थानांतरण

मेरे सामने एक और चुनौती अप्रैल के मध्य मे यह थी कि राज्य सचिवालय का स्थानांतरण किस प्रकार किया जाये। इसे प्राय. यहां की भाषा मे दरबार को ले जाना कहते हैं। साधारण स्थिति मे मई के प्रथम सप्ताह मे सचिवालय को जम्मू से श्रीनगर स्थानांतरित कर दिया जाना चाहिए था। परन्तु घाटी की परिस्थिति के अनुसार यह काम काफी कठिन और असंभव प्रतीत हो रहा था। कर्मचारियों को अपहरण का डर दिखाया गया था। अनेक आतंकवादी संगठनों ने इस बात की घोषणा कर दी थी कि वे सचिवालय को श्रीनगर में काम न करने देंगे। वे नहीं चाहते थे कि केन्द्र सरकार से सम्बद्ध सत्ता घाटी में पैर रखे।

सचिवालय के हिन्दू और गूजर सम्प्रदाय के कर्मचारियों ने सचिवालय के स्थानांतरण का विरोध किया। ये घाटी में अपने आपको असुरक्षित समझते थे। कुछ स्थानीय नेता उनका समर्थन कर रहे थे। दूसरी ओर कश्मीरी मुस्लिम कर्मचारी यथाशीघ्र सचिवालय को श्रीनगर ले जाने के पक्ष मे थे। उनका कहना था कि वे जम्मू में असुरक्षित हैं। वे इस बात की धमकी भी दे रहे थे कि यदि सचिवालय को श्रीनगर नहीं ले जाया गया तो भी वे श्रीनगर चले जायेंगे। यह मामला इस बात से और भी उलझनपूर्ण हो गया कि कुछ प्रमुख अफसरों ने

इस बात का सुझाव दिया कि जम्मू में ही ग्रीष्मकालीन सचिवालय की स्थापना कर दी जाये। इसके पीछे यह था कि अधिकांश हिन्दू अधिकारियों को जम्मू में ही रखा जा सकता था। इस बात को मानने के लिए मुझ पर दबाव भी डाला गया और समाचारपत्रों में नियोजित खबरें भी प्रकाशित की गईं।

परन्तु मैं इस बात के लिए कटिबद्ध था कि एक सामान्य प्रक्रिया में कोई अन्तर न आने पाये। इससे मनोवैज्ञानिक और भावात्मक प्रतिक्रिया होती है। इससे यह समझा जाता है कि जम्मू का सचिवालय हिन्दू कर्मचारियों और श्रीनगर का सचिवालय मुस्लिम कर्मचारियों के लिए बना है। राज्य की सत्ता को दृढ़तापूर्वक लागू करने के लिए सचिवालय के स्थानांतरण के सम्बन्ध में पहल अपने हाथ में लेकर मैंने एक योजना बनाई। 15 अप्रैल को मैंने इसकी घोषणा की। मैंने सामान्य जनता से अपील की कि मैं जो सही कदम उठा रहा हूं वे उसमें मुझे सहयोग दें। मैंने उनसे कहा कि अल्पकालीन सुविधा के लिए राष्ट्र की दीर्घकालीन भावना को हानि न पहुंचाएं। मैंने उन्हें समझाया कि स्थिति में काफी सुधार हुआ है और लासा कौल तथा प्रो० मुशीरुलहक आदि की हत्याओं के मामले सुलझा लिये गये हैं। अपराधियों को जल्दी ही अपने कामों के परिणाम भुगतने पड़ेंगे। मैंने इस बात पर जोर दिया कि श्रीनगर में स्थानांतरण करने से स्थिति में और सुधार होगा। इससे तोड़-फोड़ करने वालों के हौसले टूटेंगे। मैंने लोगों से यह कहा दिया कि स्थिति हमारे काबू में है और मैं इन आतंकवादियों को जड़ से उखाड़ने में समर्थ हूं। मैंने सचिवालय कर्मचारियों से भी अपील की कि वे व्यक्तिगत सुविधा के विचार से ऊपर उठें। मैंने उन्हें पूर्ण संरक्षण का आश्वासन दिया। मैंने उन्हें यह भी कहा कि जो अधिकारी अपने परिवारों को जम्मू में ही रखना चाहते हैं, उनके यहां रहने का प्रबन्ध कर दिया जायेगा।

मेरी अपील का असर हुआ। अन्ततः हिन्दू, गूजर, मुस्लिम कर्मचारी स्थानांतरण के लिए सहमत हो गये। ग्रीष्मकालीन सचिवालय की योजना भी त्याग दी गई। लोगों ने मुझसे कहा कि 'वे जगमोहन के कहने पर ही स्थानांतरण के लिए तैयार हैं। सरकार के कहने पर नहीं।' इससे मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने अनुभव किया कि इससे पहले जम्मू के लोगो की राष्ट्रभक्ति और बलिदान की प्रशंसा नहीं की गई। इससे मेरे दिल में उनके प्रति श्रद्धा भावना पैदा हुई। वे असुविधा उठाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने अपने परिवारों से अलग रहने और अपने आपको संकट में डालने का निश्चय कर लिया। मैं समझता हूं कि राष्ट्र जम्मू के लोगों के प्रति कृतज्ञ नहीं रहा।

मैंने अपने बयान में सही मार्ग से भटके हुए युवकों से एक बार फिर अपील की कि वे बन्दूक का क्रूर रास्ता छोड़कर सही मार्ग अपनायें, घाटी को बदनाम न करें। मैंने उन्हें वचन दिया कि जो इस मार्ग का त्याग कर देंगे उनकी पूरी देखभाल की जायेगी और उनसे सही बर्ताव किया जायेगा। मैंने एक बार फिर अपील की—

"हमें एक बार फिर मिलकर प्रशासन को चुस्त बनाकर आर्थिक स्थिति को बल प्रदान करना है और टूटे-फूटे सामाजिक ताने-बाने को फिर से बुनना है। हम चाहते हैं कि सैलानियों के इस मौसम में हमारी शहर की गलियों में फिर भीड़ रहे और दरबार को श्रीनगर ले जाने से वहां सामान्य हालात पैदा हों। मैं

आपको स्वच्छ, चुस्त और सहानुभूतिपरक प्रशासन देने का वचन देता हूं।"

इस काम के लिए हमीदुल्ला खां को इन्चार्ज बनाया गया। हमीद ने इस सम्बन्ध में बहुत प्रयत्न किया। उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व और आवाज के कारण मैं उसे मजाक में 'फील्ड मार्शल' कहा करता था। इस अवसर पर वास्तव में उसने फील्ड मार्शल के अनुरूप ही कार्य किया। सचिवालय के स्थानान्तरण से एक सप्ताह पहले अनेक स्थानों का मैंने दौरा किया। जिस दिन स्थानांतरण का यह कार्य होना था उस दिन मैं बहुत चिन्तित रहा, परन्तु सब काम योजना के अनुरूप हो गया।

7 मई को श्रीनगर में दफ्तर खुले। मैं सचिवालय गया और अफसरों से मैंने बातचीत की। अगले दिन मैंने सचिवों और विभाग के प्रमुखों के नाम एक चिट्ठी जारी की।

7 मई, 1990

प्रिय महोदय,

जम्मू से श्रीनगर स्थानांतरण के साथ हम राज्य की स्थिति को सामान्य बनाने के एक महत्त्वपूर्ण दौर में प्रवेश कर रहे हैं। हमें चाहिए कि हम शांत रहकर उत्साहपूर्वक चुनौतियों का मुकाबला करें। सिविल सेवा के अधिकारियों को विशेष दायित्व निभाना है। मैं सबसे यह आशा करता हूं कि आप अपना अमूल्य सहयोग देंगे। किसी राष्ट्र की आन्तरिक शक्ति का कठिनाइयों के समय ही परीक्षण होता है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि आप उस शक्ति का परिचय देकर आतंकवादियों को समाप्त करने और हिंसक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए आगे आयेंगे। मैंने इस सम्बन्ध में योजना बनाई है जिसका मसौदा मैं आप लोगों के सामने रखूंगा।

जबकि हमें आतंकवाद को समाप्त करने के लिए शल्य चिकित्सक के समान हिचकिचाए बिना कार्य करना है, तब भी हमें नहीं भूलना चाहिए कि हमारी असली लड़ाई गरीबी, पिछड़ेपन और आर्थिक तथा प्रशासनिक अन्याय से है। हमें जनता के कष्टों को यथाशीघ्र दूर करने का प्रयास करना है। इस बात का ध्यान रखें कि हमारा किसी से विरोध नहीं है। सारा राज्य हमारा परिवार है। कुछ हमारे भाई जो हमसे छिटक गये हैं, उन्हें हमें फिर से परिवार में लाना है। देखभाल और दया भावना हमारा ध्येय होना चाहिए।

सही दिशा में सोचने वालों का हम सबको सहयोग लेना है ताकि प्रशासन को स्वच्छ, चुस्त, दुरुस्त और परिणामोन्मुखी बनाया जा सके। हमारी शक्ति और योग्यता के परीक्षण का समय है। हमारे बाद आने वाली पीढ़ियां यह न कहें कि हम अयोग्य सिद्ध हुए। मैं आपसे से प्रार्थना करता हूं कि मेरे इन विचारों को अपने अधीन कार्य करने वालों तक पहुंचा दें।

आपका
—जगमोहन

इस अपील से मेरा ध्येय यह था कि अधिकारी लोग राज्य की अनेक समस्याओं के प्रति मिशनरी भावना से कार्य करें। मैं यह जानता था कि पिछले अनेक सालों से भारतीय नौकरशाही का बहुत-सा हिस्सा रोजमर्रा के काम निपटाने के अतिरिक्त निष्क्रिय और उत्साहहीन हो चुका था। प्रोत्साहन दिये बिना उन्हें

सही काम के लिए प्रेरित करना असंभव था ।

योजनाओं का सम्मिलित प्रभाव

हमारी योजनाओं के अनुरूप, जिनका ऊपर जिक्र किया गया है, हमने तोड़-फोड़ करने वालों पर निरन्तर दवाव वनाये रखा और मई, 1990 के प्रथम सप्ताह में हम उन पर हावी हो गये । वे सव मोर्चों से पीछे हटने लगे । उनके हौसले टूट गये । मध्य जनवरी तक इन लोगों ने यह प्रभाव वना रखा था कि हमें 'आजादी' मिल चुकी है । केवल कुछ औपचारिकताएं ही पूरा करना वाकी वची हैं । जिस प्रकार तेज हवा चलने पर कुहरा साफ हो जाता है और सूर्य चमकने लगता है, उसी प्रकार हमारे प्रयत्नों से यह भावना समाप्त हो गई । स्थिति आशापूर्ण थी ।

अव कहीं भी जे० के० एल० एफ० के झण्डे नहीं फहराते थे । उनकी विजय के चिह्न अव कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे । उनके पोस्टर और दीवारों पर लिखे तोड़फोड़ के नारे भी समाप्त हो चुके थे । जनता स्वयं दीवारों से इन नारों को साफ कर रही थी । यदाकदा किसी गली के कोने से उनके द्वारा चलाई गई गोली की आवाज उनकी निराशा का प्रतीक थी ।

ये वातें हमारे लिए आशाजनक थीं । 15 मई को 'हिन्दू' ने स्थिति के सम्वन्ध में लिखा, "सव लोग इस वात से सहमत हैं कि घाटी में वातावरण वदला है और प्रशासन प्रभावपूर्ण ढंग से काम करने लगा है । कुछ महीने पहले की स्थिति के वजाय अव सरकार नजर आ रही है । इससे जगमोहन की सफलता का पता चलता है ।"

'इण्डियन एक्सप्रैस' ने भी लिखा, "घाटी की मस्जिदों से अव आजादी के नारे नहीं लगाये जाते और जम्मू काश्मीर लिवरेशन फ्रण्ट और हिजवुलमुजाहिदीन आदि अलगाववादी संगठनों के झण्डे अव कहीं दिखाई नहीं देते । दीवारों पर से इनके नाम साफ कर दिये गये हैं । वहुत लम्वे अरसे के वाद शहर में जीवन सामान्य दिखाई दे रहा है । छोटे-छोटे वच्चे सुवह नर्सरी स्कूलों में जाते हुए एक खुशनुमा नजारा पेश करते हैं और यह भी देखने में आया है कि सेना के जवान और अर्धसैन्य वल स्थानीय दुकानदारों के साथ हंसी-मजाक में हिस्सा ले रहे हैं ।

स्थिति में सुधार का एक और चिह्न यह है कि काश्मीर सम्वन्धी सर्वदलीय परामर्श देने वाले पैनल ने पूरे शहर अनंतनाग और वारामूला तक का दौरा किया है : उपप्रधानमंत्री देवीलाल तथा पहले प्रधानमंत्री राजीव गांधी की तरह यह प्रतिनिधि मण्डल न तो उतना सशक्त था, जवकि वह होटल तक ही सीमित रहा और घाटी में दौरा न कर सका । यह वात केवल दो महीने पहले की थी ।

राज्यपाल जगमोहन का विश्वास के साथ कहना है कि हम सामान्य स्थिति लाने में कामयाव हो गये हैं । वे सचिवालय के स्थानांतरण के वाद वहुत संतुष्ट दिखाई देते हैं । इस कार्य से केन्द्रीय कर्मचारियों को प्रोत्साहन मिला है और घाटी के कुल 44 दफ्तरों में से जो 25 दफ्तर वन्द हो गये थे, उन्हें फिर से खोल दिया गया है ।"

ट्रिब्यून ने 17 मई को लिखा, "पिछले छः-सात सप्ताहों में राज्य प्रशासन में जो कठोर कदम उठाये गये उससे स्थिति में वहुत परिवर्तन आया । सेना के प्रमुख

अधिकारियों ने सर्वदलीय प्रतिनिधि मण्डल को कहा था कि उन्हें जगमोहन से पूरी सहानुभूति है और वे चाहते हैं कि केन्द्र राज्यपाल के कार्य में किसी प्रकार का दखल न दे। वे राज्यपाल के तथा उनके सहयोगियों के उत्साह और कर्तव्य-निष्ठा की सराहना करते हैं। प्रतिनिधि मण्डल का यह विचार बना है कि राज्यपाल ने प्रशासन पर पूरी तरह नियन्त्रण कर लिया है। अधिकारी लोग उनकी बातें सुनते और उनके आदेशों का पालन करके अपनी रिपोर्ट नियमित रूप से राज्य मुख्यालय को भेजते हैं। प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों का यह विचार बना है कि स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन आया है।

कुछ लोग स्थिति से सहमत नहीं हुए। यह बात स्मरण रखने की है कि जब जगमोहन ने गवर्नर के रूप में पद संभाला था तो जिले के पुलिस प्रमुख भी गिरफ्तारी के वारण्ट जारी करने और अपेक्षित व्यक्तियों को हिरासत में रखने से घबराते थे। दो महीने पहले स्थिति यह थी कि सरकारी कर्मचारी भी भारत विरोधी प्रदर्शनों में हिस्सा लेते थे।

यह बात भी स्मरणीय है कि उप-प्रधानमंत्री देवीलाल के नेतृत्व में 8 मार्च को जो प्रतिनिधि-मण्डल श्रीनगर आया था और जिसमें राजीव गांधी भी शामिल थे, तो उस समय भीड़ ने उनके होटल पर प्रदर्शन किया था। यहां तक कि होटल के कर्मचारियों ने भी भीड़ में मिलकर भारत विरोधी नारे लगाये थे। परन्तु इस स्थिति में बदलाव आया है। पाकिस्तान अधिकृत काश्मीर में जाने वाले युवकों के लिए पहले विदाई समारोह आयोजित किये जाते थे। वे बातें अब भूतकाल की हो चुकी हैं। प्रतिनिधि मण्डल को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि श्रीनगर के सरकारी दफ्तरों में स्थिति सामान्य थी। 1200 के करीब कर्मचारी होस्टल में ठहराये गये थे। क्योंकि उनकी सुरक्षा का प्रश्न था। परन्तु तथ्य यह है कि घाटी में रहने वाले 2200 सौ कर्मचारी दफ्तर में हाजिर थे।"

15 मई को स्टेट्समैन ने लिखा, "एक महीना पहले बहुत से आदमी, औरतें और बच्चे आजादी के नारे लगाते हुए सड़कों पर दिखाई देते थे। भारत विरोधी नारों का कोई अन्त नहीं था जो मस्जिदों से लाउड-स्पीकरों द्वारा लगाये जाते थे। अब ये बातें समाप्त हो चुकी हैं।

प्रसन्नता की एक बात यह है कि आठ महीनों के अन्तराल के बाद घाटी में पर्यटक आने लगे हैं।"

इण्डियन एक्सप्रेस ने 17 मई को फिर लिखा, "प्रशासन ने अपनी खोई हुई सत्ता को फिर से प्राप्त कर लिया है और लोगों के साथ अपने सम्बन्ध कायम कर लिये हैं। अब लोग अपनी शिकायतें लेकर कर्मचारियों के पास आने लगे हैं। कहीं भी पाकिस्तानी झण्डे, पाकिस्तानी समर्थक और काश्मीर की आजादी के नारे सुनाई नहीं देते।"

इसी तरह की बातें पैट्रियाट, हिन्दुस्तान टाइम्स तथा अन्य राष्ट्रीय और प्रादेशिक समाचार-पत्रों ने भी प्रकट कीं। सर्वदलीय प्रतिनिधि मण्डल ने समाचार पत्रों में प्रकट विचारों से सहमति प्रकट करते हुए प्रशासन में गुणात्मक परिवर्तन के लिए मुझे बधाई दी। सतर्कता विभाग ने भी इन बातों से अपनी सहमति प्रकट की।

दिशाहीनता की स्थिति

स्पष्ट कार्य दिशा, सफलता का दृढ़ निश्चय, प्रशासनिक ढांचे में नवीनता और तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्वों पर निरन्तर दवाब बनाये रहना हमारे काम के लिए आवश्यक था। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में यह कैसे संभव होगा जबकि रचनात्मक की बजाय विध्वंसात्मक और सकारात्मक की बजाय नकारात्मक प्रवृत्तियां पनप रही हों।

यदि दो व्यक्ति आमने-सामने दो कुर्सियों पर बैठे हों, यदि एक अपनी ऊंचाई बढ़ाना चाहता हो तो उसे दो तरह से उपाय करना होगा—पहला यह है कि वह अपनी कुर्सी की ऊंचाई बढ़ाये और दूसरा यह है कि जो व्यक्ति दूसरी कुर्सी पर बैठा है उस कुर्सी की टांगें काटे। आज की हमारी राष्ट्रीय स्थिति दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन करती है। कोई भी ईमानदारी से अपने काम को पूर्ण करने के लिए प्रयत्न नहीं करता। प्रत्येक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है। उसका प्रयत्न यह होता है कि तुलना में वह अपने आपको अच्छा सिद्ध करे। जब भी कोई अच्छा कार्य किया जाता है तो उसे नीचा दिखाने का फौरन प्रयास प्रारम्भ हो जाता है। मेरे विरोधी भी बड़े जोश से मेरे विरोध में जुट गये। आगामी अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला गया है।

पन्द्रहवां अध्याय

ग़लत बातों और अफ़वाहों का अम्बार

वो बात जिसका फ़साने में जिक्र तक न था,
वो बात उनको बहुत नागवार गुज़री है।

—फ़ैज अहमद फ़ैज

हमारा गणतंत्र, जो बहुत महान आदर्शपूर्ण 'सत्यमेव जयते' जैसे उच्च सिद्धांत पर आधारित था, वह आज नैतिक दृष्टि से बहुत ही नीचे गिर गया है। इसकी गोद में जहां सत्य पलता था, वहां आज फरेब पलता है। इस संदर्भ में काश्मीरी पंडितों का जिक्र पहले आ चुका है। काश्मीर की पहाड़ियों मे जहां पहले कभी सौन्दर्य पलता था, सुगन्ध फैलती थी, उसकी उन नंगी पहाड़ियो व पेड़ों में विकृतियां फलती हैं, दुर्गन्ध फैलती है। वहा उन वादियों मे मक्कारियो व जाल-साजियों का प्रवाह है, जिसने राष्ट्र की राजनीतिक आत्मा को दूषित कर दिया है।

अप्रैल, 1990 के अन्त में श्रीनगर के दौरे के दरम्यान एक उच्च अधिकारी ने अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए कहा था, "अपने अल्पकालीन शासनावधि मे, जबकि यहां की शासन प्रणाली बहुत ही विकृत और समाप्त प्राय. थी, आपने जो उपलब्धियां प्राप्त की वो किसी ने कभी नही प्राप्त की थी। फिर भी मई के अन्त तक आपको सेवा विमुक्त कर दिया गया, ऐसा क्यों?"

मई माह के मध्य में प्रायः सभी प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों ने 'काश्मीर की स्थिति में संतोषजनक सुधार' बतलाया था। फिर भी पखवाड़े के बाद ही मुझे अपना पद क्यों त्यागना पड़ा?

दिनांक 22 मई, 1990 के अपने पत्र मे लेफ्टिनेंट जनरल (अवकाश प्राप्त) एन० सी० रॉले ने लिखा था—"आप यह पत्र पाकर विस्मित होंगे। गत कुछ सप्ताहो में ही आपने जो शानदार परिणाम प्राप्त किये उनके लिए बधाई देता हूं। गुरिल्ला ऑपरेशंस का मुझे पर्याप्त अनुभव है। दो सप्ताह पहले मुझको यों लगता था कि काश्मीर हमारे हाथ से निकल गया, लेकिन स्थान-स्थान पर सैनिको की नियुक्ति और छानबीन करके आपने स्थिति मे काफी तबदीली ला दी। कम-से-कम काश्मीर को हाथ से जाने से बचा लिया। खुदा आपका हौसला

अफजाई करे और आप लगातार अपने कदम बढ़ाते जाएं, बाहरी दबावों में न आएं, यही दुआएं मैं करता हूं। देश के हित में आप काश्मीर न छोड़ें। काफी दबावों के बावजूद भी आप अपने कार्यो में करिश्मे ला रहे हैं, उसके लिए आपको पुनः बधाई।"

इस पत्र के लिखे जाने के चार दिन बाद ही मुझे काश्मीर छोड़ना पड़ा।

एम० के० धर हिन्दुस्तान टाइम्स के न्यूज ब्यूरो प्रमुख ने अपने निजी पत्र दिनांक 28 अप्रैल, 1990 में लिखा था, "भीतरी और बाहरी कटु आलोचनाओं के बावजूद भी आप जो घाटी में शांति स्थापित रखे हुए हैं, उसके लिए मैं आपकी तारीफ करता हूं। आम जनता की शुभ-कामनाएं आपके साथ हैं। हर हालत में आपको इन अलगाववादियों का दमन करके घाटी की विक्षुब्ध व विक्षिप्त जनता की सेवा में जुटे रहना है।"

फिर आम जनता की शुभ-कामनाओं से लाभ उठाने का मौका मुझे क्यों नहीं दिया गया?

स्वतन्त्रता सेनानी एवं भारतीय सोशल डेमोक्रेसी संस्था के सभापति एच० एन० मोटा ने अपने पत्र दिनांक 18 अप्रैल, 1990 में लिखा था—

"दलगत राजनीति में मेरी रुचि नहीं, फिर भी काश्मीर की विकट परिस्थिति में राज्यपाल के रूप में आपकी नियुक्ति को कुछेक पार्टियों ने बहुत ही संकीर्ण दृष्टि से देखा है, इससे मुझे तकलीफ हुई। मैं सच्चे हृदय से कहूंगा कि देश के हित में आप महान योगदान दे रहे हैं और ऐसे में हर भारतवासी को खासकर काश्मीर के हर सच्चे सपूत का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह आपको अपना हार्दिक सहयोग प्रदान करे ताकि आप आतंकवादियों के चंगुल से इस घाटी को मुक्त कर सकें और यहां शांति स्थापित कर सकें।"

फिर देशभक्ति की इन भावनाओं का मूल्यांकन अथवा इन पर ध्यान क्यों नहीं किया गया?

एक निष्पक्ष व स्वतन्त्र प्रेक्षक ने अपने लेख 'काश्मीर—अपनी भूलों से सीखें' में लिखा था—

"पाकिस्तान के शासकों का अनुमान था कि नवम्बर, 1983 के लोकसभा चुनाव के बाद भी राजीव गांधी व फारूख अब्दुल्ला की जोड़ी सत्ता में बरकरार व कायम रहेगी और वह काश्मीर वादी को हड़पने के अपने मकसद में कामयाब हो जाएगा। पर केन्द्र में संयुक्त मोर्चे के शासन, फारूख अब्दुल्ला का इस्तीफा और राज्यपाल के रूप में जगमोहन की नियुक्ति ने उनके हौसले पस्त कर दिये। बहरहाल, फिर भी उन्होंने अपनी विनाशकारी, ध्वंसकारी व आतंकवादी गतिविधियों को दुगना कर दिया, महज इस उम्मीद के साथ कि संयुक्त मोर्चे की सरकार के कदम जमने से पहले ही वे अपने मकसद में कामयाब हो जाएंगे। लेकिन उनकी उम्मीदों पर पानी फिर गया। जगमोहन के शासन में उनकी एक न चली।

तीन माह की अल्पावधि में ही जगमोहन ने विकृत परिस्थितियों पर काबू पा लिया। जम्मू से सचिवालय श्रीनगर आ गया। उसने अपने पांव वहां जमा दिये। तमाम स्कूल, कॉलेज फिर से खुल गये। सारांश यह कि बदतर हालात सुधर गये और मुल्क ने चैन की सांस ली। फिर एकाएक एक अवर्णनीय घटना घटी।

जगमोहन को अपने पद से हटा दिया गया। एल० के० आडवाणी ने इसे 'भयंकर भूल' का नाम दिया था। बहुत कम ही लोग होंगे जो कहेंगे कि जगमोहन ने महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया। उन्होंने दिल्ली, पणजी और श्रीनगर में अपनी सुख-सुविधा को त्यागकर संकट के समय राष्ट्र की सेवा की है।" जगमोहन की सेवाएं आज नहीं रहीं।"

यह अवर्णनीय घटना कैसे घटी ?

उत्तर में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसका कारण झूठ व अफवाहों की बाढ़ व उनका अंबार होना था। अपने शासन काल में मुझे प्रारम्भ से ही आतंकवाद और तोड़-फोड़ करने वालों के विरुद्ध संघर्ष ही नहीं करना पड़ा वरन् झूठ और अफवाहों के खिलाफ भी लड़ना पड़ा। पहली लड़ाई में तो मैं विजयी हो भी सकता था परन्तु दूसरी के विरुद्ध नहीं क्योंकि इनका आक्रमण और कपटपूर्ण घुसपैठ बहुत अधिक और तीव्र थी।

मुस्लिम विरोधी कौन ?

झूठ व अफवाहों की बाढ़ के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने से पहले मैं यह बतलाना चाहता हूं कि मुस्लिम विरोधी कौन है ? दुःख इस बात का है कि मुसलमानों के शुभ चिन्तकों को उनका विरोधी बताया जाता है। और जो अपने स्वार्थ के कारण उनके मजहबी स्वरूप को कायम रखना चाहते हैं उनको उनका हितैषी करार दिया जाता है।

पहले दिल्ली मास्टर प्लान के कार्यान्वयन आयुक्त के रूप में और बाद में दिल्ली विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप में मैंने दिल्ली के कुछ प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों के आस-पास झुग्गी झोपड़ियों को हटाने की एक योजना तैयार की थी। उसका एक ध्येय यह था कि राजधानी की प्राचीन वास्तुकला से सम्बन्धित धरोहरों को सुरक्षित रखा जा सके। और दूसरा ध्येय यह था कि सार्वजनिक भूमि पर अधिकार करने वालों को वहां से हटाकर कुछ नए विकसित क्षेत्रों में बसाया जा सके।

ईदगाह के चारों ओर बहुत से हिन्दू और सिख सरकारी जमीन पर कब्जा करके बैठे हुए थे। जामा मस्जिद के आस-पास मुसलमानों ने कब्जे किए हुए थे। इन लोगों को समझाया कि वे नारायणा अथवा रियाड़ी लाइन जा बसें। वहां उन्हें कम कीमत और आसान किस्तों में प्लाट दिए जायेंगे। ईदगाह के हिन्दू और सिख तो नारायणा चले गए और उन्होंने वहां अपने नये काम धन्धे शुरू कर दिए परन्तु मुसलमानों ने इसे स्वीकार नहीं किया बल्कि यों कहना चाहिए कि उनके हितैषी लोगों ने ही उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।

ऐसी हालत में आप बताइये कि मुस्लिम विरोधी कौन है ? जिसने उन्हें अच्छी जगह बसने और तरक्की करने का अवसर दिया अथवा उनके हितैषी वे हैं जिन्होंने उन्हें एक अलग गन्दी बस्ती बनाए रखने पर मजबूर किया।

अफवाहों का उद्गम स्थान

झूठ व अफवाहों की बाढ़ एक स्थान से नहीं अनेक स्थानों से फैलती रही। सर्वप्रथम राजीव गांधी और उसकी टोली इसका कारण थी। बाद में जार्ज फर्नांडीज उसके सहयोगी बन गए। तीसरा कारण यह था कि लोग काश्मीर के सम्बन्ध में वास्तविकता को नहीं जानते थे। शहाबुद्दीन और इमाम अब्दुल्ला बुखारी जैसे लोगों ने आपसी मतभेदों के कारण उनको और अधिक तूल दिया। परन्तु राजीव गांधी और फारूख अब्दुल्ला द्वारा लगाए गए लांछन अधिक कारगर सिद्ध हुए।

राजीव गांधी के नाम खुला पत्र

राजीव गांधी द्वारा राजस्थान की चुनाव सभाओं में मुझ पर लगाए गए आरोपों के कारण मैंने सच्चाई उजागर करने का निश्चय किया, जिससे उन्हें सही बात का पता चले। इसके लिए मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। पत्र का संक्षिप्त रूप तो अनेक समाचार पत्रों में छपा परन्तु उसके बाद अनेक पाठकों ने सम्पूर्ण पत्र प्रकाशित करने की मांग की। मेरे लिए उन पत्रों का उत्तर देना कठिन था इसलिए उस पत्र का उल्लेख मैं यहां कर रहा हूं। इसमें धारा 370 और काश्मीरी पण्डितों से सम्बन्धित बातों को नज़र अन्दाज नहीं किया जा सकता था।

नई दिल्ली
21 अप्रैल, 1990

प्रिय श्री राजीव गांधी,

आपके कारण ही मुझे आपके नाम एक खुला पत्र लिखने के लिए मजबूर होना पड़ा। मैंने अब तक अपने आप को दलगत राजनीति से अलग रखा है और अपनी प्रतिभा को थोड़ा बहुत सृजनात्मक कार्यों में लगाए रखने का प्रयत्न किया है। कुछेक ऐसे कार्य भी किए हैं जिनमें माता वैष्णों देवी परिसर के तथा उसके प्रबन्ध संचालन में सुधार आदि काम हैं। यह एक प्रकार से सांस्कृतिक पुनर्जागरण जैसा कार्य रहा।

आप और डॉ० फारूख अब्दुल्ला जैसे आपके मित्र राष्ट्र के सम्मुख काश्मीर के सम्बन्ध में झूठी तस्वीर पेश करने के लिए आमादा हैं। आपकी पार्टी के सदस्य श्री शिव शंकर और साल्वे आदि ने मेरे विरुद्ध संसद में पक्षपातपूर्ण वातावरण तैयार किया है। शिव शंकर ने तुर्कमान गेट में सम्बन्धित 14 वर्ष पुरानी घटना को उछाला है। और साल्वे ने एक ऐसी भेंटवार्ता का जिक्र किया है जिसका कहीं होने का प्रमाण नहीं। मुझ पर साम्प्रदायिकता फैलाने के आरोप भी लगाए गये हैं। मणि शंकर अय्यर ने अनेक पत्रिकाओं में मेरे विरुद्ध जहर उगला है। मैंने इन पत्र-पत्रिकाओं को पत्र लिखकर घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर पेश करने के विरुद्ध कभी कुछ नहीं लिखा। मैं अपनी पुस्तक तक ही सन्तोष करना चाहता था। परन्तु एक दिन मुझे कुछ मित्रों ने समाचार पत्रों की वे कटिंग दिखाईं जिनमें आप ने राजस्थान की चुनाव सभाओं में मेरे विरुद्ध बहुत ही गलत बातें कही थीं। इसलिए मैंने सोचा कि यदि आपको इस प्रकार के भ्रामक प्रचार से न रोका जाए तो आप अपने चुनाव दौरों में मुझे सारे राष्ट्र में बदनाम करके

रख देंगे।

चेतावनियों का संकेत—*आपको यह बात याद करवाने की आवश्यकता नहीं* कि 1988 के प्रारम्भ में ही काश्मीर में उठते हुए बवण्डर के सम्बन्ध में मैंने आपको चेतावनी दी थी परन्तु आपने और *आपके सत्ता-सहयोगियों ने कभी* उस पर ध्यान नहीं दिया। आप में से किसी के पास भी उधर ध्यान देने का न तो समय था और न रुझान।

आपको याद करवाने के लिए मैं कुछ उदाहरण दे रहा हूं। अगस्त 1988 में वहां जो प्रवृत्तियां चल रही थी उनके विवेचन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा और मैंने आपको बताया कि रूढ़िवादी और साम्प्रदायिक लोग बड़े जोर-शोर से अलगाववादी भावनाओं को भड़काने में लगे हुए हैं। तोड़-फोड़ की कार्यवाइयां दिनों-दिन बढ़ रही हैं। सीमा पार करके आने वालों की घटनाओं में भी बढ़ोतरी है। घातक हथियार सीमा पार से इधर आ रहे हैं। अप्रैल, 1989 में मैंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि फौरन ही कोई कार्यवाई की जाये। मैंने उस समय कहा था कि स्थिति बहुत बिगड़ रही है और वहां तक पहुंच चुकी है जहां से लौटना कठिन होगा। पिछले पांच दिनों से हिंसा आगजनी, गोलीबारी, हड़ताल आदि की अनेक घटनाएं हो चुकी हैं। सब कुछ टूट-फूट चुका है। आयरलैण्ड के संकट के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री डिजराइली ने कहा था—"आज एक आलू है, कल वह भाला अफसर बन जायेगा, अर्थात् आज जिस बात का कोई अस्तित्व *नहीं है कल वह ऐसी घटना बन जायेगी जिस पर काबू पाना कठिन हो जायेगा।"* काश्मीर की आधुनिक स्थिति ऐसी ही है। अर्थात् प्रतिदिन नई समस्याएं पैदा की जाती हैं। कल मकबूल बट्ट का और दूसरे दिन सैटनिक वर्सिज और अगले दिन 'दमन दिवस' आदि भारत विरोधी अनेक घटनाएं यहां होती रहती हैं। मुख्यमन्त्री अलग-अलग पड़ चुके हैं। राजनीतिक और प्रशासनिक तौर पर उनकी सत्ता खत्म हो चुकी है। केवल संवैधानिक रूप से ही अलग किया जाना *बाकी है। इस समय स्थिति ऐसी है कि उसमें दखल देना बहुत आवश्यक है। यदि* आज कुछ नहीं किया गया तो कल बहुत देर हो जायेगी। दोबारा एक मई को मैंने फिर आपको सचेत किया था—इस समय तोड़-फोड़ करने वालों ने स्थिति पर काबू पा लिया है और उनके समर्थक बढ़ रहे हैं। *उन लोगों ने केन्द्र के* खिलाफ द्वेषपूर्ण भावनाएं फैलाना प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु आपने ऐसी स्थिति में भी कुछ नहीं किया। यह निष्क्रियता रहस्यपूर्ण थी। इसी प्रकार मेरी दूसरी बार नियुक्ति के सम्बन्ध में आपकी प्रतिक्रिया भी। मुझे समझ में नहीं आता कि मैं एकदम से कैसे साम्प्रदायिक और मुस्लिम विरोधी और न जाने क्या-क्या बन गया?

जुलाई, 1989 में जब मैंने त्यागपत्र दिया तो आपने मुझे लोकसभा के लिए दक्षिण दिल्ली से चुनाव लड़ने की बात कही थी। मुझे चुनाव के प्रति घृणा सी हो गई है। हमारे देश की बिगड़ती राजनीतिक स्थिति के कारण मैंने चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया। दूसरी बार जम्मू-काश्मीर का राज्यपाल बनने के समय मेरे प्रति आपके कुछ खास विचार थे तो आपको चाहिए था कि आप उन्हें स्पष्ट कर देते ताकि पद संभालने से पूर्व मैं उन पर सोच-विचार करता। तब आपके द्वारा मुझ पर गलत दोषारोपण करने की कोई आवश्यकता

नहीं पड़ती ।

हो सकता है आपके लिए सच्चाई और ईमानदारी आदि का कोई महत्त्व न हो। हमारे राष्ट्रीय प्रतीक पर जो 'सत्यमेव जयते' लिखा है शायद आपके लिए वे केवल शब्द मात्र हों और उनका राष्ट्र को प्रेरणा देने में कोई महत्त्व न रह गया हो। सम्भवतः आपके लिए सत्ता हथियार रखना ही अन्तिम ध्येय हो चाहे उसे किसी भी साधन से प्राप्त किया जाए ।

मेरे यहां आने से पहले और बाद की स्थिति के सम्बन्ध में आप और आपके साथियों ने वास्तविकता को तोड़ा मरोड़ा है। सच्चाई यह है कि 19 जनवरी, 1990 को राज्यपाल शासन लागू करने से पहले राज्य प्रशासन मानसिक रूप से अपने आप को विद्रोहियों के सुपुर्द कर चुका था। और दिसम्बर, 1989 को डॉ० रुबैया के अपहरण से पहले राज्य में आतंकवाद पूरी तरह हावी हो चुका था। 1600 हिंसक घटनाएं हो चुकी थीं, 351 बम फटने की घटनाएं हुई थीं। यह सब 11 महीनों के दौरान हुआ था। एक जनवरी से लेकर 19 जनवरी, 1990 तक 319 हिंसक घटनाएं, 21 सशस्त्र हमले, 114 बम फटने की घटनाएं 112 स्थानों पर आगजनी और भीड़ द्वारा 72 हिंसक घटनाएं हो चुकी थीं।

आपने इस बात की कभी चिन्ता नहीं की कि प्रशासन पर तोड़-फोड़ करने वालों का पूरी तरह कब्जा हो गया है। उदाहरण के रूप में, खुफिया विभाग की सूचना पर जब शबीर अहमद शाह को सितम्बर, 1989 में गिरफ्तार किया गया तो श्रीनगर के डिप्टी कमिश्नर ने उसकी नजरबन्दी के वारन्ट पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। अनन्तनाग के डिप्टी कमिश्नर ने भी ऐसा ही रवैया अपनाया। राज्य का महाधिवक्ता राज्य का केस रखने के लिए अदालत में हाजिर ही नहीं हुआ। उसने अपनी जिम्मेदारी अधीनस्थ अफसर पर डाल दी। पर सरकारी वकील आदि भी कोई हाज़िर नहीं हुआ।

22 नवम्बर, 1989 के दिन लोकसभा चुनाव के समय यहां क्या हुआ, सम्भवतः आपको याद होगा। मतदान केन्द्रों के पास कुछ टी० वी० सैट रख दिए गए थे। जिन पर लिखा था—"जिसमें वोट डालने की हिम्मत हो इस टी० वी० सैट को ले जा सकता है।" कुछ अन्य मतदान केन्द्रों के पास कफन रखे गए थे और उन पर लिखा गया था—"जो कोई वोट डालेगा उसे कफन मिलेगा।" फारूख अब्दुल्ला के प्रशासन के किसी अधिकारी ने इस पर कोई कार्यवाई नहीं की।

मैं आपको याद करवा दूं कि सोपोर, गुलाम रसूलकार का गृह नगर है और वह उस समय राज्य के मन्त्री थे। विधान सभा के अध्यक्ष हबीबुल्ला भी यहीं के रहने वाले हैं। अब्दुल अहद वकील जो नेशनल कान्फ्रेंस के संसद सदस्य और मन्त्री रह चुके हैं, वे भी यहां के रहने वाले हैं। इसके बावजूद सोपोर में कुल पांच वोट डाले गए थे। पट्टन वह स्थान है जहां पर एक वोट भी नहीं डाला गया जबकि कांग्रेस का एक मन्त्री इफ्तिखार हुसैन अन्सारी वहां का रहने वाला है। आपके साथियों और राज्य प्रशासन की मिलीभगत के ये उदाहरण हैं। इसके बावजूद आप यह समझते हैं कि तोड़-फोड़ और आतंकवाद को ऐसी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था से समाप्त किया जा सकता है?

ऐसे समय में जबकि पुलिस का मनोबल गिर चुका था, खुफिया एजेंसियां

समाप्त हो चुकी थीं। घुसपैठियों की तादाद भी दिनोंदिन बढ़ रही थी और समाचार-पत्र 'टोपक' जैसी तोड़-फोड़ की कहानियां छाप रहे थे; आपके कठपुतली डॉ० फारुख अब्दुल्ला या तो विदेशों की सैर कर रहे थे या ऐसे कट्टर आतंकवादियों को रिहा कर रहे थे जिन्होंने पाकिस्तान से भयंकर शस्त्रों की ट्रेनिंग ली थी और पाकअधिकृत काश्मीर से जिनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इन लोगों को सीमा पार करने के गुप्त रास्तों का ज्ञान था और जिनके सम्बन्ध में तीन सदस्यीय परामर्शदात्री समिति ने इन्हें नजरबन्द रखने की हिदायत दी थी, जबकि समिति के अध्यक्ष मुख्य न्यायाधीश थे। इन्होंने रिहा होते ही फिर अपने मोर्चे संभाल लिए और पाकिस्तान से शस्त्र लाने, हत्याएं और अपहरण करने के काम प्रारम्भ कर दिये। इनमें से एक आदमी मुहम्मद दाऊद खां जो गन्दरबल का रहने वाला था, अलबकर नामक आतंकवादी संगठन का डिप्टी कमांडर-इन-चीफ बन गया। उसने 2500 काश्मीरी युवकों को संगठित किया। इन लोगों ने भयंकर कृत्य किये। मैं यह बात उन लोगों पर ही छोड़ता हूं जिन्हें आप जगमोहन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कहते हैं, वे ही इनका उत्तर देंगे।

सचाई यह है कि इस बात के भरपूर प्रमाण हैं कि 19 जनवरी, 1990 से पहले घाटी में आतंकवादियों का ही राज्य था। वे अपनी इच्छा से जहां तहां घूमते थे, उन पर कोई रोक-टोक न थी।

मुस्लिम विरोधी कहा जाना—आपने अपने पाप छिपाने के लिए और राज्यपाल के रूप में 26 अप्रेल, 1984 से 12 जुलाई, 1989 तक रहने पर काश्मीरी जनता, जिसमे मुस्लिम युवक भी सम्मिलित थे, मेरे कार्यों से सन्तुष्ट होकर मेरे समर्थक बन गये थे, इन सम्पूर्ण तथ्यों और मेरे सम्बन्ध में आपकी अपनी पूर्व घोषणाओं के बावजूद आपने मुझे मुस्लिम विरोधी करार देना प्रारम्भ कर दिया।

तुर्कमान गेट—राज्यसभा में आपकी पार्टी के सदस्य शिवशंकर ने 14 मार्च, 1990 को मेरा मुस्लिम विरोधी स्वरूप प्रकट करना शुरू किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अप्रेल, 1977 में तुर्कमान गेट की सफाई का मामला उछाला। आपने तथा आपके किसी भी साथी ने यह बात जानने का प्रयत्न नहीं किया कि इससे आपके दिवंगत भाई और माता की छवि ही कलंकित हुई है। आपात स्थिति के बाद दोनों के विरुद्ध अनेक अफवाहें फैलाई गई थीं। सचाई जानने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। मुझे भी इसमें घसीट लिया गया था चूंकि मैंने सचाई बताने से इनकार कर दिया था जबकि ऐसे समय में नौकरशाह और आपकी पार्टी के आदमी उन दोनों पर दोष मढ़ रहे थे।

यदि आप मेरी किताब—'द आइलैण्ड ऑफ ट्रूथ' के अध्याय 'अनटोल्ड स्टोरी ऑफ तुर्कमान गेट' पढ़ते तो पता चलता कि तुर्कमान गेट का क्षेत्र 1938 में ही रिहाइश के अयोग्य घोषित कर दिया गया था। मकान ढह जाने से 8 मौतें हो चुकी थीं। और यहां रहने वालों को हमेशा मौत का डर बना रहता था। 120 घरों की सफाई के बाद एक हजार लोगों को नये मकान दिये गये। 200 फ्लैट रणजीत नगर और शाहदरा में थे। आपको अप्रेल, 1976 की घटना से याद आ जायेगा कि इन लोगों का क्रोध परिवार नियोजन के कार्यक्रम के विरुद्ध था। आपको मैं स्मरण करवा दूं कि जब श्रीमती इन्दिरा गांधी पर एम० के०

जैन की अदालत में मुकदमा चल रहा था तो मैंने यह किताब शपथ पत्र के रूप में पेश की थी। यह एक ऐसा पक्का सबूत था जिसकी सचाई को कोई चुनौती न दे सका। आपको याद होगा कि सात लाख लोगों को बसाने में किसी के शरीर पर जरा भी खरोंच नहीं आई थी जबकि तुर्कमान गेट में रहने वाले लोग इस पूरी संख्या का 0.07 प्रतिशत थे। अब उस जगह को साफ करके 80 फ्लैट बना दिये गये हैं और इन गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोग इनमें रह रहे हैं। क्या यह दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि जिसने इन लोगों को आधुनिक सुविधा युक्त आवास मुहैया करवाए उसे मुस्लिम विरोधी कहा गया जबकि जिन लोगों ने उन्हें मौत के इन कटघरों में रहने के लिए उकसाया वे इनके रक्षक माने गये।

नवम्बर, 1982 में एशियाड के सफलता पूर्वक सम्पन्न होने का गर्व आपने अनुभव किया परन्तु आपको यह याद होना चाहिए कि एशियाड से सम्बन्धित कोई भी योजना तब तक कामयाब नहीं हो सकती थी जब तक कि झुग्गी झोंपड़ियों की सफाई का लम्बा चौड़ा काम और उन्हें बसाने की योजना सफलतापूर्वक 1976 में लागू न की गई होती। नेहरू स्टेडियम, इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम, विभिन्न फ्लाईओवरों, पुलों, सड़कों की चौड़ा करने तथा गाड़ियों को खड़ा करने और प्रारम्भिक सुविधायें मुहैया करने के लिए और कोई स्थान ही उपलब्ध नहीं था।

मैं आपको स्मरण करवा दूं कि मैंने अपनी पुस्तक 'रिबिल्डिंग शाहजानाबाद : द वाल्ड सिटी आफ दिल्ली' में तीन महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे। उनमें से एक था कि जामा मस्जिद और लाल किले के बीच के हिस्से को हरी घास के मैदान में तब्दील किया जाये। दूसरा सुझाव यह था कि जामा मस्जिद परिसर और संसद भवन को जोड़ने वाली एक सड़क बनाई जाये। और तीसरा सुझाव यह था कि माता सुन्दरी रोड और मिन्टो रोड के स्थान पर दूसरे शाहजहानाबाद की स्थापना की जाये जिसमें प्राचीन और आधुनिक संस्कृति का मेल हो। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या यह सुझाव देने वाला व्यक्ति मुस्लिम विरोधी हो सकता है ?

संसदीय मंच– मुझे इस बात का आश्चर्य है कि किस प्रकार काश्मीरी मुसलमानों में मेरी स्थिति को हानि पहुंचाने और गिराने के लिए संसदीय मंच का उपयोग किया गया। यह बात एन०के०पी० साल्वे के 25 मई, 1990 के बयान से स्पष्ट है। साल्वे ने बम्बई के साप्ताहिक पत्र 'करंट' में मेरी उस भेंटवार्ता का उल्लेख किया है जो मैंने कभी दी ही नहीं। इसमें उसने कहा था कि मैं आतंकवादियों, तोड़-फोड़ करने वालों और अन्य अपराधियों को नष्ट करने की आड़ में एक पूरे विशेष सम्प्रदाय को खत्म करने में खुशी अनुभव रहा हूं। अब मेरा यह प्रयत्न है कि मैं एक खास सम्प्रदाय के लोगों को जंगजू करार दे दूं।

साल्वे को मैं जानता हूं, यदि उन पर ही यह बात छोड़ी जाती तो वे ऐसा कभी नहीं करते क्योंकि उन जैसे महत्त्वपूर्ण न्यायवेत्ता के लिए यह आवश्यक होता कि इस प्रकार का बयान देने से पहले वे 'करंट' समाचार पत्र से यह पता कर लेते कि यह भेंटवार्ता हुई भी थी या नहीं। यह सारा काम बहुत जल्दी में किया गया है। यह मामला 25 मई को उठाया गया था। जबकि साप्ताहिक पत्र पर तारीख 26 मई—2 जून, 1990 दी गई है। आपने स्वयं राष्ट्रपति को

25 मई को इस भेंटवार्ता के आधार पर एक पत्र लिखा था, जिसमें आपने वी० पी० सिंह पर यह दोषारोपण किया था कि उन्होंने एक साम्प्रदायिक व्यक्ति को राज्यपाल बनाया है। आपने अपने इस पत्र को 25 मई को जोरदार प्रचार का माध्यम बनाया।

आपके दल के सदस्यों ने मुझे राज्यसभा में बोलने का अवसर नहीं दिया। इसलिए मेरे पास कोई कारण नहीं बचा था और मैंने दिल्ली उच्च न्यायालय में साप्ताहिक 'करंट' के विरुद्ध 20 लाख का मानहानि का मुकदमा डाल दिया। हो सकता है इस मामले में बहुत समय लगे परन्तु मुझे कितना भी हर्जाना खर्चा भुगतना पड़े, गलत बातें करने वालों को मैं बेनकाब करके छोड़ूंगा।

धारा 370—7 मई, 1990 को सर्वदलीय समिति के सदस्य जब श्रीनगर आये तो आपने उनसे कहा कि मैं धारा 370 को समाप्त करवाना चाहता हूं। जब मैं वहां भयकर स्थिति मे आतंकवादियों का मुकाबला कर रहा था और उनके घृणित कार्यों का पर्दाफाश कर रहा था, उस समय आपने मेरे विरुद्ध ऐसी बातें करके तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर उस कार्य में हानि पहुचाने का कार्य किया। आपका यह काम उत्तरदायित्वपूर्ण था अथवा अनुत्तरदायित्वपूर्ण, इसका निर्णय मैं राष्ट्र पर छोड़ता हूं।

अगस्त-सितम्बर, 1986 मे मैंने जो बात कही थी वह इस प्रकार थी— धारा 370 के कारण इस स्वर्गभूमि काश्मीर मे दूसरों का माल हड़पने वाले पनप रहे हैं। वे गरीबों को निचोड़ रहे हैं, मृगतृष्णा के छलावे मे उन्हें ठग रहे हैं। इससे केवल नये *सुलतानो के अहम को सन्तोष मिलता है। इसके कारण यहा* न्याय नामक कोई चीज नहीं रही है और विरोधाभास पनप रहा है। इससे यहा धोखा फरेब आदि राजनीति के प्रमुख अंग बन गये हैं। यहा तोड़-फोड़ करने वालों की बढ़ोतरी हो रही है। इससे दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को यहा जीवित रखा जा रहा है। संयुक्त भारत के विचार का गला घोंट दिया गया है जिसमें काश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक एक ही समाज और संस्कृति की बात कही गई है। घाटी इस समय भयंकर भूचाल का केन्द्र बिन्दु बन गयी है। इसके झटके सारे देश मे अनुभव किये जायेंगे। इसके परिणाम बड़े भयकर होंगे।

मैंने यह प्रमाण दिया था कि धारा 370 का गलत प्रयोग हो रहा है। जबकि यह बात वाद-विवाद में पूर्णत. बदल दी गई। पिछले अनेक वर्षों से सत्ता मे जो राजनीतिक लोग हैं, वे और नौकरशाह, व्यापारी और न्यायपालिका वाले तथा स्वार्थी तत्त्व इस धारा का दूसरो के शोषण के लिए प्रयोग कर रहे हैं। राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त धनी लोगो के लिए पैसा इकट्ठा करने का यह साधन बन गयी है। सम्पत्ति कर, नागरिक भूमि परिसीमन एक्ट, उपहार कर आदि राज्य में लागू नहीं होते। इसके लिए 370 धारा का सहारा लिया गया है। *सामान्य जनता को यह मालूम नहीं कि धारा 370 के कारण उन्हे न्याय तथा* आर्थिक प्रगति में उनकी हिस्सेदारी से पृथक रखा जा रहा है। मेरे कहने का मतलब यह था कि धारा 370 के अधीन काश्मीर की गरीब जनता का शोषण किया जा रहा है। सही स्थिति का उन्हे ज्ञान नही। इस सम्बन्ध में मैंने बहुत से सुधारो का सुझाव दिया था परन्तु उनकी उपेक्षा कर दी गई। उसके बाद जो घटनाएं घटी हैं उन्होंने मेरे विचारो की पुष्टि की है कि धारा 370 और उसके

बाद बनाये गये अनेक कानून जैसे काश्मीर का पृथक संविधान आदि समाप्त होने चाहिएं। ऐसा केवल इसलिए नहीं कि संविधान के अनुनार यह बात ठीक है परन्तु हमारे प्राचीन इतिहास और समकालीन जीवन के लिए भी ऐसा आवश्यक है। इस धारा से केवल भ्रष्ट सत्ता गुट को बढ़ने में मदद मिलती है। युवक इससे गलत धारणा बनाते हैं और इससे प्रादेशिक तनाव तथा झगड़े पैदा होते हैं। इससे जो स्वायत्तता प्राप्त होने की सम्भावना है वह क्रियात्मक रूप से प्राप्त नहीं की जा सकती। काश्मीर की पहचान और उसकी संस्कृति की सुरक्षा इस धारा के बिना भी की जा सकती है। सामाजिक रूप से यह हानिकारक है। यदि कोई महिला काश्मीर के बाहर के बाशिन्दे से शादी करती है, चाहे वह काश्मीर में पिछले 40-45 साल से रह रहा हो, उस शादी करने वाली महिला को प्रारम्भिक मानवीय प्रजातान्त्रिक अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है। और यह बात भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारत की व्यापक स्थिति में यह सही ढंग से अनुकूल नहीं पड़ती। भारत को आज जिस चीज की जरूरत है इसमें इसकी भावना और अपेक्षाओं को जीवित रखना है न कि इसको छोटे-छोटे राज्यों में बांट देना है। आवश्यक इस बात की है कि सत्य न्याय, आपसी सद्भावना आदि को मिलाकर एक जीवित समाज की स्थापना की जाय। जिसमें लोगों को वास्तविक स्वतन्त्रता, प्रजातान्त्रिक स्वरूप और सही उन्नति का अवसर मिले।

मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब हमारे राष्ट्र के अन्य प्रदेश अधिक स्वायत्तता की मांग करते हैं तो उनका ध्येय पृथक् पहचान से नहीं होता। वे इसलिए ऐसा चाहते हैं कि सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हो ताकि विकास कार्य तेजी से हो सकें और लोगों के सेवा कार्य में सुधार हो। काश्मीर में धारा 370 का आरंभ 1953 में किसी अन्य प्रेरणा से हुआ था। इसके पीछे मुख्य धारा से अलग रहने, अलग जागीर स्थापित करने, अलग झण्डा रखने, मुख्यमन्त्री की बजाय प्रधानमन्त्री और राज्यपाल की बजाय सदरे रियासत कहे जाने की कुटिल प्रवृत्ति के कारण हुआ था। इसका ध्येय अधिक सत्ता और संरक्षण प्राप्त करना था—यह इसलिए नहीं कि इससे लोगों की भलाई की जाएगी या अनेकता में सांस्कृतिक एकता स्थापित की जायेगी। वरन् 'नवधनाढ्यों' और 'नये शेखों' के स्वार्थों की पूर्ति थी।

काश्मीरी पंडित—आप और आप जैसे लोगों के कारण देश की सत्य और न्यायनिष्ठा की योग्यता समाप्त हो चुकी है और जो कोई न्याय का पक्ष लेता है, उसे साम्प्रदायिक करार दिया जाता है। काश्मीरी पण्डितों का मामला इसका स्पष्ट उदाहरण है।

भूतकाल में काश्मीरी पण्डितों के साथ जो कुछ हुआ, आज उनके साथ जो कुछ हो रहा है, उन पर जो बीत रही है, उसकी तुलना में भूतकाल की निर्दयी घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। दुर्भाग्य यह है कि देश के बहुत बुद्धिमान चतुर और स्वाभिमानी लोगों के सम्प्रदाय को समाप्तप्राय: कर दिया गया है। ऐसा मध्ययुगीन सिकन्दर से सुलतानों, या उत्पीड़क अफगानों ने नहीं किया—वरन् यह आप, वी० पी० सिंह और अन्य तथाकथित धर्म-निरपेक्ष राजनीतिज्ञों के शासन में हो रहा है, जिनका ध्येय केवल सत्ता में बने रहना है। उन्हें इन काश्मीरी पण्डितों की दयनीय स्थिति से कोई वास्ता नहीं। इसके बावजूद उनके

कैष्ट बढ़ाने और उनके जख्मों पर नमक छिड़कने के लिए 'कमेटी फार इनीशिएटिव ऑन काश्मीर' जैसी संस्थाएं हैं। इस समिति का एक ध्येय यह भी है कि जो कोई उनके दुख में सहारा बने, उसे साम्प्रदायिक करार दें। अपने ही हाड़-मांस के हिस्से इन एक लाख शरणार्थियों को विभिन्न नगरों में दर-दर भटकने के लिए बड़ी निर्दयता पूर्वक छोड़ दिया गया है। ऐसा लगता है कि वे पेंदी में छेद वाली बिना लंगर-पतवार वाली नाव को पकड़कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचने का प्रयत्न कर रहे हों।

जिस गंभीर संकट से काश्मीरी शरणार्थी ही नहीं, सारा काश्मीर गुजर रहा है उसका कारण हमारे संवैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक और चरित्र सम्बन्धी मानदण्डों में विषमता आ जाना है। यदि मैं इन लोगों को सांत्वना देने शरणार्थी शिविरों में गया या उन्हें नकद सहायता की बजाय उन्हें छुट्टी अथवा अवकाश वेतन देने, आतंकवादियों द्वारा बनाई गई विधवाओं को मूल्य की अदायगी पर मकान देने पर मुझे साम्प्रदायिक और मुस्लिम विरोधी करार दिया गया। इसके विपरीत जिसने भी मेरे प्रशासन और भारतीय सेना के विरुद्ध कुछ भी कहा उसे समाचार-पत्रों में खूब उछाला गया। इन बातों को संसद, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से खूब प्रचारित किया गया। इन लोगों को आपकी पार्टी ने धर्मनिरपेक्ष, प्रगतिशील और मानव अधिकारों का संरक्षक बताया।

जगमोहन फैक्टर के स्पष्ट प्रमाण—मैं ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहता, जिसे आत्म-प्रशंसा समझा जाये। परन्तु मुझे साम्प्रदायिक कहने की आपकी ओर से उड़ाई जाने वाली अफवाहों को भी मैं नहीं चलने दूंगा। मैं उन तथ्यों की ओर ध्यान दिलवाना चाहूंगा कि आपके और आपके गुर्गों द्वारा दूसरी बार मेरी नियुक्ति से पहले, मुझे बदनाम करने से पहले काश्मीर के लोग मेरे सम्बन्ध में क्या सोचते थे।

विख्यात राजनैतिक समीक्षक प्राण चोपड़ा ने 'काश्मीर एलायंस' शीर्षक से 30 जुलाई, 1987 के 'इण्डियन एक्सप्रेस' में लिखा था—

"हाल ही का एक उदाहरण है जिससे फारूख अब्दुल्ला सीख सकते हैं—वही सीमित साधन थे, वही प्रशासन था, लेकिन महज मेहनत, जोश व लगन से राज्यपाल जगमोहन ने बहुत सफलता प्राप्त की है। जिस किसी से भी मैं मिला, उसने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। काश्मीर जैसे राजनीतिक रंग चढ़े राज्य में राज्यपाल शासन के प्रति इतना स्नेह व श्रद्धा और कहीं नहीं देखी। हालांकि लोग राज्यपाल को गलत समझ रहे हैं, क्योंकि जी० एम० शाह को मुख्यमंत्री बनाने में उनका ही हाथ था। लेकिन शाह में वह जोश व लगन नहीं थी जो जगमोहन में है।"

नामी पत्रकार कुमकुम चड्ढा ने मेरी विदाई पर अपने उद्गार व्यक्त किये थे—

"राज्यपाल जगमोहन की विदाई की बेला में आंसू, जज़बात, शायरी, भावना विशेषण व मुस्कराहटों का समागम था। शायद और किसी राज्यपाल को ऐसी विदाई नसीब नहीं हुई हो। लोगों की नजरों में वह एक मसीहा था, शिल्पकार था, धर्मयोद्धा था, सुधारक, क्रांतिकारी, दिग्दर्शक था। राज्यपाल शासन की हिमायत अब भी जारी है। तीव्र आलोचनाओं के बावजूद भी इनकी उपलब्धियां

हैं। एक प्राध्यापक रीतू जितेन्द्र ने जगमोहन से कहा था, "पालिटिकल साइंस का छात्र रहने के नाते मैं राज्यपाल शासन का विरोधी हूं, लेकिन मैं आपकी हुकूमत का हिमायती रहा हूं, सर।" राज्य के एक मन्त्री पी० एल० हान्डू ने कहा था, "जगमोहन ने 26 अप्रैल, 1984 को कार्यभार संभाला, 7 जुलाई, 1989 को त्यागा, इस बीच उन्होंने जम्मू-काश्मीर का नया वर्तमान इतिहास लिख डाला।" रस्किन का हवाला दिया गया था कि "किसी वस्तु का मूल्यांकन उसके खोने पर ही होता है।"

27 फरवरी, 1987 को अपनी संपादकीय टिप्पणी में प्रेम भाटिया ने लिखा था—

"जम्मू-काश्मीर में ही जो लोग कभी राज्यपाल शासन का विरोध करते थे वे शाह मिनिस्टरी के पतन के बाद जगमोहन की प्रशंसा करने लगे, चूंकि उन्होंने जनता की समस्याओं को निपटाने में अपना उत्तरदायित्व निभाया है, दक्षता दिखाई है और मुस्तैदी बरती है।"

उर्दू के 'श्रीनगर टाइम्स' ने अपने अंक 8 जुलाई 1988 के संपादकीय में लिखा था—

इस वादी के गिरते हुए हालात को संवारने और माहौल को सुधारने की दिशा में राज्यपाल जगमोहन ने 6 महीने के दौरान जो कुछ भी किया, उसे काश्मीर के लोग कभी नहीं भूलेंगे।"

फिर उसी अखबार ने 19 फरवरी, 1987 के अंक में अपने संपादकीय कालम में 'मुझे गवर्नर के शासन की याद आती है' शीर्षक मे छापा था—

"गवर्नर की हकूमत में प्रशासन चुस्त और मुस्तैद हो गया। विकास व निर्माण के काम तेजी से निपटाये गये। जो भी काम हुए वो सही व साफ ढंग से हुए। प्रमुख सड़कें (जैसे मौलाना आजाद रोड, डलगेट रोड, वलवर्ड व दूसरे रोड) जिनकी हर साल मरम्मत की जाती थी वो इस कदर ठोस व मजबूत बनाई गई कि लगातार वर्फ के गिरने पर भी, बुलडोजरों के चलने पर शानदार बनी रहीं, जरा-सी भी कहीं से नहीं टूटीं, उखड़ीं। दफ्तर अनुशासित ढंग से चलने लगे। सभी लोग समय पर आने लगे। लोग गरीब हों या अमीर, शहरी हों या देहाती, राज्यपाल सभी की शिकायतें स्वयं सुनने लगे और उन्हें दूर करने की कोशिश करते। हर दरख्वास्त पर आर्डर लिखते और अब यह आलम है कि अवाम की दिक्कतें व शिकायतें सुनने को कोई तैयार नहीं है। सेक्रेटरिएट में दरख्वास्तें दिनों महीनों तक पड़ी रहती हैं।"

अपने अंक 6 अप्रैल, 1988 में 'हिन्दू' ने लिखा था—

"बड़ी संख्या में युवकों ने जाहिर किया था कि वे वास्तव में बहुत खुश होंगे अगर राज्यपाल जगमोहन को फिर से शासन का भार दिया जाए।"

12 जुलाई, 1989 को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में श्रीनगर की रिपोर्टिंग इस प्रकार थी—

"काश्मीर से जगमोहन के निष्कासन की खबर ने लोगों को हैरानी में डाल डाल दिया, उन्हें यकीन ही नहीं हुआ। यक़ीन हुआ तो वे दहल गये, गुस्से से भर गये। ऐसा मंज़र इस वादी में पहले कभी नहीं देखा गया।"

फारूख के वाक् छल से तंग आकर लोग जगमोहन की तरफ आकर्षित हुए

थे। जगमोहन में उन्हें उम्मीद की नयी किरणें दिखाई दी थी। उनके कारनामे और करिश्मे देख वे आश्चर्यचकित थे। उन्हें लगा जैसे उनके ख्वाबों को किसी ने असली जामा दिया।

अभी भी लोग जब किसी ऊबड़-खाबड़ सड़क से गुजरते हैं तो नफरत से बोल उठते हैं 'फारुख अब्दुल्ला रोड', लेकिन जब वे किसी अच्छी सड़क से गुजरते हैं तो तारीफ में बोल उठते हैं 'जगमोहन रोड'।

कुशल प्रशासक जगमोहन ने सभी निलंबित मुकदमों को निपटाया, विकास के कार्यों को पूरा किया। पर्यटक अभी भी उस वक्त को याद करते हैं जो उन्होंने सिटी फारेस्ट में गुजारा। यह सिटी फारेस्ट शंकराचार्य-जावरवान की पहाड़ियों के ढलान से निकलकर डल झील के तट पर आ मिलता है और जगमोहन के शासनकाल में बना है। इसको नेशनल पार्क भी कहा जाता है। लेकिन फारुख सरकार के गठन होने पर इसके हजारों पेड़ों को काट दिया गया और इसको गोल्फ कोर्स बना दिया गया।

जगमोहन ने उम्मीदवारों के चुनाव के लिए 'जिला योग्यता पद्धति' का चलन किया था और योग्यता को तरजीह दी थी। उन्होंने सरकारी हस्पतालों के डॉक्टरों की प्राइवेट प्रेक्टिस पर पाबंदी लगा दी थी जबकि फारुख ने छूट दे रखी थी। उन्होंने डल झील के गिर्द होटलों के निर्माण पर अकुश लगा दिया था जबकि अब्दुल्ला ने फिर इजाजत दे दी थी।"

जावेद नाम के एक युवक ने जो पाक अधिकृत काश्मीर से प्रशिक्षित होकर 85 ट्रेनीज के साथ लौटा था, सीमा सैनिकों द्वारा गिरफ्तार होने पर प्रेस इन्टरव्यू में बयान देते हुए कहा था, "यहां की सड़कें वैसी गई-गुजरी हैं, जैसी हमारे यहां की सड़कें जगमोहन के आने से पहले थी।" एक उग्रवादी होते हुए भी उस काश्मीरी नौजवान ने मेरे द्वारा किये गये विकास के कार्यों को सराहते हुए मेरे प्रति अपनी गुप्त श्रद्धा व्यक्त की थी।

इन सारे मतव्यों व टिप्पणियों के उल्लेख से मेरा ध्येय निजी कारनामों व निजी उपलब्धियों को उजागर करने से हरगिज नहीं है, बल्कि उन तत्वों के कपटी और विश्वासघाती अभिनय का पर्दाफाश करने से है, जिसने जमीन-आसमान एक करके मुझको मुस्लिम विरोधी व काश्मीर विरोधी करार दिया है। इस देश और इस राज्य के हित में मैं काश उस सारे स्नेह व श्रद्धा को टैप कर सकता जो काश्मीर के लोगों के दिलों में मेरे लिए थी।

आपके सबसे जोरदार अवलंब फारुख अब्दुल्ला भी मुझको मुस्लिम विरोधी करार देकर मेरी छवि को विकृत करने के मुहिम में एक कदम भी पीछे नहीं रहे हैं। 3 अगस्त, 1990 को 'टाइम्स आफ इण्डिया' के साथ इन्टरव्यू में उन्होंने कहा था, "मुस्लिम बहुसंख्यक राज्य में एक मुस्लिम विरोधी राज्यपाल को नियुक्त किया गया है।" किस कदर झूठा और नामुनासिब था उनका यह प्रचार, इसका अंदाजा 7 नवम्बर, 1986 को शपथ ग्रहण के समय दी गई उसकी तकरीर से लग जाता है।

"गवर्नर साहब, हमें आपकी निहायत जरूरत है, इतने छोटे से अर्से में ही आपने कमाल के कारनामे और करिश्मे कर दिखाये जबकि राज्य की नौकरशाही में मतभेद थे। आज अगर तीन मत पेटियां हों, एक नेशनल कान्फ्रेंस के लिए,

दूसरी कांग्रेस के लिए और तीसरी आपके लिए तो आपकी मतपेटी मतों से लबालब भर जायेगी और बाकी दोनों खाली ही रह जायेंगी।"

हमारे देश का सबसे बड़ा मन्दभाग्य यही है कि हमारे लीडर फारूख अब्दुल्ला जैसे हैं जिनको सच्चाई और हकीकत से कोई वास्ता नहीं।

राजीव, क्या आपके जेहन में कभी यह बात आई कि फारूख अब्दुल्ला ने आपकी मां पर भी उनके मुस्लिम विरोधी होने का इलजाम लगाया था जबकि मुस्लिम विरोधी जगमोहन की नियुक्ति राज्यपाल के रूप में अप्रैल, 1984 को पहली बार हुई।

साफ जाहिर है, 15 फरवरी, 1990 में डॉ० फारूख ने आपसे विचार विमर्श करके उर्दू अखबार को एक लिखित बयान दिया था जिसमें अन्य बातों के बीच में मेरा हवाला देते हुए कहा था—"हलाकू और चंगेज के लिबास में गवर्नर इस वादी-ए-काश्मीर को एक अजीम कब्रिस्तान बनाने पर कमबस्ता है। 20 जनवरी से तारी मुतवातर कर्फ्यू की वजह से यह कहना मुश्किल हो रहा है कि कितने सौ लोग आर्मी और पैरा मिलिट्री फोर्सेज की गोलियों के शिकार हो गए हैं और कितने मकानात बरबाद हो चुके हैं। ऐसे वक्त में जब काश्मीरी बाशिन्दे अपनी आंखों से देख रहे हैं कि उनका प्यारा वतन एक अजीम कब्रिस्तान में तबदील हो रहा है, मैं अपने मुल्क और तमाम आलम से दरख्वास्त करूंगा कि वो इन्सानियत के रख वाले होने के नाते उन शर्मनाक-ओ-शर्मखेज कारस्तानियों की तहकीकात करें।"

यह स्पष्ट है कि आपसे विचार विमर्श करने के बाद फारूख अब्दुल्ला ने एक उर्दू अखबार को 15 फरवरी, 1990 को एक बयान दिया था जिसमें मुझे 'हलाकू' और चंगेज़ खां' कहा गया था। उन्होंने यह भी कहा था कि मैं काश्मीर को कब्रिस्तान में बदल रहा हूं। उन्होंने कहा था कि 20 जनवरी से कर्फ्यू के कारण सैकड़ों लोगों को सेना तथा अर्द्ध सैन्य बलों ने गोलियों से भून डाला है। काश्मीर को कब्रिस्तान में बदला जा रहा है। "मैं राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मानवता के समर्थकों से अपील करता हूं कि वे दखल दें और सेना तथा अर्द्ध-सैनिक बलों द्वारा किये गये कत्ले आम की जांच करें।"

यह रहा आपका देशभक्त जो काश्मीर को 'अजीज वतन' कहकर पुकार रहा है और एक अलग राष्ट्र की कामना कर रहा है। यह रहा आपका 'राष्ट्रीय नेता' जो तमाम आलम से आर्मी और पैरा मिलिट्री फोर्सेज द्वारा काश्मीरियों के आम संहार पर तहकीकात की गुजारिश कर रहा है। यह रहा आपका जिम्मेदार दोस्त जो कह रहा है कि इस वादी में लगातार 25 दिनों तक कर्फ्यू जारी रहा जिसकी वजह से वह यह ठीक-ठीक पता लगाने में असमर्थ रहा कि—"कितने सौ निर्दोष व निहत्थे काश्मीरियों का संहार हुआ और कितने सौ काश्मीरियों के घर ध्वंस हुए, जबकि उसे अच्छी तरह से मालूम था कि बहुत से ऐसे दिन थे जब दिन में कर्फ्यू था ही नहीं, आंशिक रूप से था। और अधिकारियों की लिस्ट में 16 फरवरी तक हुई सिर्फ 40 दुर्घटनाए दर्ज थीं और वो जनता से और अधिक घटित दुर्घटनाओं की जानकारी मांग रहे थे। यह रहा आपका मुख्यमन्त्री जिसने पूरी तफसील देने की परवाह ही नहीं की कि—कितने निर्दोष व निहत्थे लोग बड़ी बेरहमी से वायुसेना और-सीमा सुरक्षा बल के जवानों टेलीविजन और टेली-

नही मिले थे।

हमारे मुल्क को क्या यह हक नहीं है कि आपसे पूछें कि डॉ० फारूख अब्दुल्ला के इन तमाम रवैयों को आप क्यों कर बर्दाश्त करते रहे ? फिर 7 फरवरी, 1991 में उनका एक बयान "मैंने अपने पार्टीमैन को ताकीद किया था कि तुम झुक जाओ, सरहद पार करो हथियार चलाने की तालीम लो। यानि *कि कुछ भी करो मगर जगमोहन के चुगल मे मत आओ"*—द टाईम्स ऑफ इण्डिया मे छपा था, उस सिलसिले में आपने क्या किया ?

आपके मुख्यमन्त्री ने यहा यह नही बताया था कि किस प्रकार 'भोले-भाले और निहत्थे आदमी' किस बेरहमी से वायु-सेना, सीमा सुरक्षा बल, सूचना *विभाग, दूर-दर्शन के अधिकारियों और आम आदमियो को मार रहे थे।* उन्होंने लम्बे-चौडे भडकाऊ बयान तो दिये पर इनके सम्बन्ध मे एक शब्द भी नही कहा।

क्या राष्ट्र को यह जानने का अधिकार नहीं कि आपने फारूख अब्दुल्ला के इन दुर्भाग्यपूर्ण बयानों का खण्डन क्यों नहीं किया ? और 7 फरवरी, 1991 को *उन्होंने जो बयान 'टाइम्स' ऑफ इण्डिया' मे दिया उसके सम्बन्ध मे आपको क्या* कहना है जिसमे उन्होने अपनी पार्टी के लोगो से कहा था कि वे सीमा पार जाकर हथियार चलाने का प्रशिक्षण लें और चाहे जो कुछ भी करें पर जगमोहन के चगुल मे न फसें।

आपने व्यक्तिगत तौर पर मेरी पीठ मे छुरा घोपा, उसका मुझको मलाल नही, मलाल मुझको इसका है कि आप और आपके पिछलग्गुओ ने काश्मीर के जख्मो को भरा नही, बल्कि हरा किया और सन्ताप को मिटाया नही, बल्कि बढ़ाया और बेशुमार मौतें कराईं, बेहद बरबादिया लाई। असदिग्धता की राजनीति को गर्त तक पहुचा दिया।

जड़ें—आपने एक बार कहा था—"मैं इतिहास पढ़ता नही, गढ़ता हू।" इससे साफ जाहिर होता है कि आप कतई नही जानते हो कि जो बिना अध्ययन किए इतिहास का सृजन करता है उसका वो इतिहास बुरा होता है क्योकि वो उन अन्तर्धाराओ व मूलभूत शक्तियों को समझने में अक्षम होता है जो वास्तव मे घटना-क्रम को ढालती-सवारती हैं और राष्ट्र के अन्तिम प्रारब्ध को निर्धारित करती हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव मे आपने और आप जैसे नेताओं में ऐसी बातें कभी नही पनपी जिन्होंने काश्मीर मे अलगाव और विनाश की भावनाओ के विरोध मे विचार किया हो। आपने उस धरती मे हठधर्मी के बीजो को बोया और उन्हे फलने-फूलने मे मदद की। यह उत्तरदायित्व आप सब पर था कि वे ऐसे विचारों की पौध ही न लगाएं और न उन्हे सींचें, परन्तु आप ऐसा नही कर सके क्योंकि आपके इतिहास की इस प्रारम्भिक सीख का ज्ञान न था कि यथार्थ को नकारना जटिलता को आमत्रण देना है और निर्दयी के आगे झुकना कसाई को बुलावा देना है।

मैं अपने इन विचारो की पुष्टि मे अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूं।

देश पर शासन करने वाली उन शक्तियों की क्या आवश्यकता थी जब वे राष्ट्र के हित में कुछ कर ही नहीं पा रही थीं और वे साम्प्रदायिक नीति के मानसिक गुलाम थे ? उनका यकीन कार्यों पर नहीं वल्कि भाषणों पर था । वे नेतृत्व की बजाय शोषण करने में लगे हुए थे । अलगाववादी तत्त्वों के दमन की बजाय उनको प्रोत्साहित कर रहे थे । मानवीय, आध्यात्मिक मूल्यों वाले उस सशक्त समाज के निर्माण की बजाय सुधार विरोधी सिद्धान्तों का पोषण और उनकी पुष्टि कर रहे थे । इसके साथ ही वे संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों के औचित्य का ढिंढोरा पीट रहे थे । इस प्रकार की बातों का और परिणाम भी क्या हो सकता था ? इस प्रकार की नकली शक्तियां और हमें कहां ले जा सकती थीं ? इस बात को समझने के लिए किसी दिव्य दृष्टि की आवश्यकता नहीं ।

मैं यह बात राष्ट्र का हित चाहने वाले उन व्यक्तियों पर छोड़ रहा हूं कि वे किसी आपसी द्वेष के बिना इन बातों पर विचार करें । यह बात विचारणीय है कि जब फारूख अब्दुल्ला मुझे हलाकू और चंगेज का वंशज बता कर काश्मीर विरोधी, मुस्लिम विरोधी और धारा 370 के विरोधी के रूप में पेश कर रहे थे तो आप लोग किस विचार से श्रीनगर की सैर कर रहे थे ? इन्हीं दिनों बेनजीर भुट्टो भी मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देने की कसम खा रही थीं । उनका कहना था —"हम जग-जगमोहन को भाग-भाग मोहन कर देंगे ।"

आप लोगों ने काश्मीर में भारत माता का अपमान किया है । अब आप को दूसरी माता के प्रति अपराध नहीं करना चाहिए । हमारे ऊपर कोई एक अदृश्य शक्ति भी है । उसके प्रति आपको सजग रहना चाहिए । वह आपकी लापरवाही को क्षमा कर सकती है परन्तु एक निर्दोष व्यक्ति को दोषी ठहराने के अपराध को क्षमा नहीं करेगी । चूंकि इन बातों के लिए दोषी आप हो जबकि वह इन खतरों के प्रति आप हमेशा सतर्क करता रहा है ।

देश की शासन प्रणाली ने आज ऐसा स्वरूप अपना लिया है जो किसी भी गम्भीर समस्या का निदान करने में असमर्थ है । ऐसी स्थिति में वस्तुतः चुनावों का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है । और तब तक इसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा जब तक कि भारतीय जनतन्त्र अपने संवैधानिक ढांचे में सांस्कृतिक, न्यायपूर्ण, स्वार्थ रहित भावनाओं को नहीं अपनाता । जब तक वह एक विशाल वृक्ष के रूप में कन्या कुमारी से लेकर काश्मीर तक सारे भारतवासियों को आश्रय और सुरक्षा प्रदान करने वाले महान वृक्ष के रूप में स्वरूप ग्रहण नहीं कर लेता । वस्तुतः हमारी अन्दर की ज्योति समाप्त हो चुकी है और ऐसा प्रतीत होता है कि एक अन्धा आदमी अपने हाथ में लालटेन लिए हुए हमारा मार्गदर्शन कर रहा है जिससे हम एक संकट से दूसरे संकट में फंसते जा रहे हैं । एक कवि का कहना है—

ऐसा हुआ है,
ऐसा होता रहेगा,
और यह बार-बार होगा ।

शुभकामनाओं सहित,

आपका
जगमोहन

नेशनल कान्फ्रेंस ने भी मेरे विरुद्ध गलत फहमियों और आरोप का आन्दोलन उसी प्रकार आरम्भ किया जैसा कांग्रेसियों ने कर रखा था। इसका ध्येय यह था कि प्रचार इस स्थिति तक किया जाए कि जिसमें सत्य की आवाज पूरी तरह लुप्त हो जाये। सैफुद्दीन सोज ने इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने समाचार-पत्रों और संसद के माध्यम से बातों में बहुत नमक मिर्च लगा और बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया। एक उदाहरण यहां दे रहा हूं—

मार्च, 1990 के अन्तिम सप्ताह में सोज ने यह कहना आरम्भ किया कि '19 जनवरी से मेरे पदग्रहण करने के बाद राज्य में 450 व्यक्ति मारे गए।' समाचारपत्रों में मैंने देखा कि लोकसभा में भी उन्होंने यही आंकड़े पेश किए। इस सम्बन्ध में मैंने सूचना सचिव श्री एन० आर० गुप्ता से यह पत्र जारी करने को कहा जो मैं यहां दे रहा हूं जिससे स्थिति स्वत: स्पष्ट हो जायेगी—

"मेरा ध्यान आपके उस वक्तव्य की ओर दिलाया गया है जिसमें यह कहा है कि राज्य में राज्यपाल शासन लागू होने के बाद में 450 व्यक्ति मारे गये। यदि आप इन मारे गये व्यक्तियों का ब्यौरा दे सकें तो मैं आपका बहुत आभारी हूंगा। आप इन व्यक्तियों के नाम और पते भी दें क्योंकि यहां के पुलिस विभाग तथा सबद्ध अधिकारियों की रिपोर्टों और रिकार्डों में आपके द्वारा दिये गये आकड़ों में बहुत अन्तर है।"

सोज ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बल्कि उसने अपनी बातों से यह प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया कि ये 450 व्यक्ति सुरक्षा बलों की कार्रवाई के कारण ही मारे गये हैं।

सच्चाई यह है कि इस अवधि में कोई 137 व्यक्ति मरे थे, जिनमें 43 व्यक्ति निर्दोष थे और ये आतंकवादियों के हाथों मारे गये थे। 61 वे व्यक्ति थे जो सुरक्षा बलों द्वारा अपना कार्य करते हुए रुकावट आने और आतंकवादियों के गोली चलाये जाने के विरोध में की गयी गोलीबारी में मारे गये थे। 31 व्यक्ति वे थे जिन्होंने सेना के वाहनों अथवा बच्चों को स्कूल ले जाती हुई बस पर आक्रमण किया था। इस बस में सेना के बच्चे स्कूल जा रहे थे। इन मरने वालों में दो व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र के अधिकारियों की गाड़ी पर गोलियां चलाई थीं। आकड़ों का अन्तर दर्शाने के लिए मैं यहां वो आकड़े प्रस्तुत करता हूं जो दूसरी बार राज्य में मेरी नियुक्ति से पूर्व विख्यात स्तम्भ लेखिका तवलीन सिंह ने दिये थे।

"पिछले साल काश्मीर में लगभग 150 आदमी मरे, इनमें 30 पुलिस तथा अन्य अधिकारी थे शेष नागरिक थे, जो सुरक्षा बलों द्वारा और आतंकवादियों की गोलीबारी में मारे गये थे। इन मरने वालों में एक भी आतंकवादी नहीं था। इस पर भी काश्मीर सरकार का यह कहना हास्यास्पद है कि इसका मुख्य ध्येय निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा करना है।"

संसद में नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्यों का प्रतिदिन का यह नियम बन गया था कि वे राज्यपाल की आलोचना करते हुए अर्द्धसैन्य बलों को वापस बुलाये जाने की मांग करते रहते थे। परन्तु वे यह बात भूल जाते थे कि अर्द्धसैन्य बलों को

उनकी पार्टी और फारूख अब्दुल्ला ने ही बुलाया था। तवलीन सिंह के लेख में से कुछ और अंश मैं यहां दे रहा हूं, जो उन्होंने मेरी नियुक्ति से पूर्व लिखे थे—

"श्रीनगर युद्ध क्षेत्र जैसा दिखाई देता है। हवाई अड्डे पर यात्रियों की बजाय सेना के जवान अधिक दिखाई दे रहे थे। सुनसान गलियों में उनकी मौजूदगी और भी अशुभ मालूम दे रही थी। स्थिति अत्यन्त खराब है। राजनीतिज्ञ लोग आराम से जम्मू में बैठे हुए हैं जिससे आपको इस बात का पूरा एहसास हो जायेगा कि काश्मीर में कोई सरकार नहीं है।

केन्द्रीय रिजर्व बल, भारत और अब्दुल्ला के विरुद्ध शिकायतों की आवाज उठाई जा रही है कि ये लोग हमसे पशुओं की तरह व्यवहार कर रहे हैं और इम्तियाज की बहन रुबैया ने पूछा है कि फारूख अब्दुल्ला कहां हैं, उनकी बेटियां कहां हैं सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें लंदन भेज दिया गया है और यहां हम पर पुलिस द्वारा हमले हो रहे हैं। वह स्वयं जम्मू में हैं। उनका बेटा शिमले या अन्य किसी जगह पर रहा है। फारूख अब्दुल्ला को काश्मीर में क्या कुछ हो रहा है, इसकी कोई चिन्ता नहीं। शिकायतों के बदले लोगों को गालियां दी जाती हैं जबकि बूढ़ी औरतें चुपचाप सिसकियां भरती हैं। हर आदमी मुजाहिदीन की इस बात के लिए तारीफ कर रहा है कि एक हफ्ते के कर्फ्यू के दौरान उन्होंने घर-घर में खाने-पीने की चीजें और अन्य सामग्री का वितरण किया।"

राज्यपाल के शासन के बाद तवलीन सिंह ने अपने लेख की दूसरी किस्त में लिखा था—

"दिल्ली के पास कोई विकल्प नहीं रह गया था, इसलिए उसे सख्ती करने पर मजबूर होना पड़ा। जनता दल के सदस्य व्यक्तिगत रूप से पहले ही विद्रोह को समाप्त करने के लिए विचार कर रहे थे, भले ही इसके लिए घाटी में मार्शल-ला ही क्यों न लगाना पड़े। राज्यपाल की प्रशासनिक योग्यताओं के बावजूद इस विद्रोह को समाप्त करना कठिन-सा प्रतीत हो रहा था। उनका काम इस बात से और भी कठिन होता जा रहा था कि फारूख अब्दुल्ला जंगजू लोगों की सहायता से फिर से इस बात का यत्न कर रहे हैं कि उनका राजनैतिक आधार पुष्ट हो। इसीलिए वह उनके विरुद्ध किसी कठोर कार्रवाई का समर्थन नहीं करते जो कि गवर्नर के शासन के बाद प्रारम्भ हुआ है। वह इस बात को भूल चुके हैं कि यह हिंसा का दौर मई, 1987 में उन पर हुए आक्रमण के बाद से ही प्रारम्भ हुआ है, जिसमें वह बाल-बाल बच गये थे। उसके कुछ महीनों बाद ही जंगजू लोगों के आक्रमण पुलिस पर होने लगे थे और उसके बाद ही 'कलाश्निकोव' बंदूकें प्रकट हुईं। अब्दुल्ला के त्यागपत्र देने के समय तक राज्य में वास्तविक शासन जंगजू लोगों का ही था।"

समाचार पत्रों के सम्बन्ध में भी किये गये उनके दोषारोपण खोखले और दम्भपूर्ण थे। 9 फरवरी को नेशनल कांफ्रेंस के एक संसद सदस्य ने मुझ पर यह आरोप लगाया कि मैंने राज्य के समाचार-पत्रों पर गैर-कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिया है। मैंने अनेक बार खुले तौर पर इस बात की मांग की कि वे कोई ऐसी आज्ञा अथवा विज्ञप्ति दिखाएं कि जिसके द्वारा मैंने समाचार-पत्रों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया है। उन्होंने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की कि वे मेरी बातों का उत्तर दें वरन् इसके बजाय वे थोड़े-थोड़े समय के बाद मेरे विरुद्ध दोषारोपण

करते रहते थे। उनका ध्येय मुझे हानि पहुंचाना था। वे इस बात को भूल गये कि कुल तीन महीने पहले फारूख अब्दुल्ला ने सभी समाचारों पर सेंसर लगा दिया था और ये संसद सदस्य इस बात को भी भूल चुके थे कि इस सेंसरशिप के विरुद्ध सारे राष्ट्र में आंदोलन हुआ था और उसे वापस लेना पड़ा था। पूरी तरह से सावधान करने और एडिटर्स गिल्ड के दो सदस्यों की कमेटी को बताने के बाद मैंने कुछ समाचार-पत्रों के विरुद्ध मार्च में कुछ कदम उठाये थे। यह कदम केवल उन्हीं समाचार-पत्रों के विरुद्ध उठाये गये थे जो लोगों को डराने-धमकाने के काम में लगे हुए थे।

जार्ज फर्नांडीज की कार्यशैली

तुलना के रूप में कहा जाय तो कहना होगा कि जार्ज फर्नांडीज की कार्यशैली बहुत सूक्ष्म, भेदपूर्ण, अप्रत्यक्ष और जटिल थी। इस समय की काश्मीर की स्थिति के लिए ध्येयपूर्ण और क्रियात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, परन्तु जार्ज फर्नांडीज ट्रेड यूनियन नेता के रूप में अपनी सुनिश्चित धारणाओं से बाहर नहीं निकल सके थे। वे इस आकर्षण को भी नहीं छोड़ सके और उनका ध्येय अपने लिए एक व्यापक राजनैतिक आधार बनाना था, विशेष रूप से मुसलमानों के बीच। वे उन दिनों काश्मीरी मामले से सम्बन्धित मंत्री की स्थिति का लाभ उठाना चाहते थे। स्वभावतः वह अधिकार पसन्द और दखल देने वाले के स्वरूप में ही प्रसिद्ध थे। प्रशासनिक मामलों में उनकी यह दखल अन्दाजी क्रियात्मक की बजाय हानि पहुंचाने वाली थी। वे फारूख अब्दुल्ला और अशोक जेटली जैसे लोगों के सम्बन्ध में अपने पहले विचारों से मुक्त नहीं हो सके थे। उन्होंने इस बात को नहीं भांपा कि काश्मीर में आन्तरिक तोड़-फोड़ की स्थिति क्या है और नये तत्त्व तथा व्यक्तित्व उभरकर सामने आये हैं। वे अपने आपको बहुत उदार और प्रगतिशील दिखाने के मोह से भी अलग नहीं हो पाये। उन्होंने अपने विरोधियों के लिए समाचारों को तोड़-मरोड़कर पेश किया और इससे भारी हानि हुई।

अध्याय 12 में मैं इस बात पर प्रकाश डाल चुका हूं कि जार्ज फर्नांडीज के काम करने के ढंग से बहुत अधिक संदेह और विषमताएं बढ़ीं। इसलिए मैंने यह निश्चय किया कि राज्य के प्रशासन सम्बन्धी मामलों में उनके दखल से मैं अपने कार्य को हानि न होने दूंगा। मैं यह नहीं चाहता था कि कोई एक आदमी राज्य प्रशासन को ठीक करने का प्रयत्न करे और कोई दूसरा उसको हानि पहुंचाए। मैं यह सोचता था कि यदि प्रधानमंत्री को यह विश्वास है कि जार्ज फर्नांडीज प्रशासन के खालीपन को दूर करने में पूर्ण समर्थ हैं तो उनसे क्यों न कहा जाए कि वे राज्यपाल का पद संभालें। मुझे इस बात का आश्चर्य था कि हमारे राजनैतिक नेता सीधी-सच्ची बात करने में असमर्थ क्यों हैं। प्रधानमंत्री ने ऐसी स्थितियां क्यों पैदा की कि जिससे उनकी व्यवस्था के एक कर्मचारी ने दूसरे अधिकारी की जड़ें काटने का प्रयत्न किया।

दो मई को मुझे पता लगा कि जार्ज फर्नांडीज काश्मीर सम्बन्धी परामर्शदात्री समिति के सदस्यों के साथ उस समय श्रीनगर आना चाहते थे जब राज्य सचिवालय

जम्मू से श्रीनगर लाया जाना था । उनका इस निर्णय से कोई सम्बन्ध न था । इस सम्बन्ध में जो प्रबन्ध किये गये थे, उनका उन्हें भी कुछ ज्ञान न था। इतने पर भी 5 मई को वे बहुत सदस्यों के साथ वहां मौजूद रहना चाहते थे । मैं इस बात की उपेक्षा भी कर सकता था । परन्तु वास्तविकता यह थी कि उनकी और परामर्शदाती समिति की मौजूदगी से प्रशासनिक व्यवस्था में बाधा पड़ती जबकि यह कार्य बहुत ही कठिन था । 7 मार्च को अलगाववादियों ने एक और प्रयत्न किया और एक ऐसी वारदात की कि जिससे उन्हें काफी भरपूर प्रचार मिले ।

जार्ज फर्नांडीज ने अपने तरीके के अनुसार अपने आने की मुझे सूचना नहीं दी । परन्तु ज्यों ही मुझे संकेत मिले मैंने एक टेलेक्स संदेश दिया—

"मुझे पता चला है कि काश्मीरी मामलों से सम्बन्धित समिति के सदस्य 5 मई को श्रीनगर आना चाहते हैं । मैं इस बात की जोरदार सिफारिश करता हूं कि अभी इस दौरे को स्थगित रखा जाए । इस समिति की मौजूदगी से प्रशासनिक कार्य में बाधा पड़ेगी । प्रशासन को सचिवालय के स्थानांतरण और शिक्षक संस्थाओं को खोलने के लिए पूरी तरह तैयार किया गया है । इस कार्य के समाप्त होने के बाद समिति राज्य में आ सकती है ।"

इस टेलेक्स संदेश की एक प्रति प्रधानमंत्री के मुख्य सचिव को भी भेजी गई ताकि वह इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को सूचित कर दें । प्रधानमंत्री और गृहमंत्री मेरे विचारों से सहमत थे । जार्ज फर्नांडीज का यह दौरा उस समय न हो सका ।

परन्तु 9 मई को जार्ज फर्नांडीज ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के मंच का अपने ढंग से गलत जानकारी देने का प्रयोग किया । यद्यपि यह मीटिंग बन्द कमरे में की गई थी । परन्तु कुछ पर्यवेक्षकों ने जार्ज फर्नांडीज द्वारा विशेष ध्येय से छात्रों से कही गई बात प्रकट कर दिया । 10 मई को 'टेलीग्राफ' ने इस प्रकार एक समाचार दिया—

"आप जम्मू काश्मीर के राज्यपाल जगमोहन को कब वापस बुला रहे हैं ।" यद्यपि फर्नांडीज हमेशा अपनी बात घुमा-फिराकर कहने के आदी थे, उन्होंने यह कहा—"ऐसी बातों का मैं जनता में प्रचार नहीं करता ।" वैसे यह स्पष्ट था कि उनकी इस मांग से सहानुभूति थी । फर्नांडीज ने यह स्पष्ट किया कि मेरा विश्वास राजनीतिक प्रक्रिया में है, जबकि जगमोहन और मुफ्ती और सख्ती के पक्ष में हैं ।" फर्नांडीज के अन्यायपूर्ण दोषारोपण के विरुद्ध मैंने प्रधानमंत्री को निम्न पत्र लिखा—

16 मई, 1990

प्रिय प्रधानमंत्री जी,

मैं 10 मई, 1990 के 'डेली टेलीग्राफ' की एक कटिंग आपको भेज रहा हूं । वह अपने आप में स्पष्ट है । क्या इस प्रकार मेरे सम्बन्ध में समाचार पत्रों और जनता में गलत बातें कहने से काश्मीर की स्थिति को हल करने में मुझे सहायता मिलेगी । मैं तो सरकारी नीति के अनुरूप ही राज्य से आतंकवाद को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं । जार्ज फर्नांडीज की बात का अभी तक खण्डन भी नहीं किया गया ।

आपका,
—जगमोहन

इससे पहले अप्रैल मध्य मे जार्ज फर्नांडीज सैयद शहाबुद्दीन को लेकर श्रीनगर आये। उसके फौरन बाद शहाबुद्दीन ने मेरे विरुद्ध एक बयान जारी किया। रत्ती भर प्रमाण के बिना उन्होंने मुझ पर यह आरोप लगाया कि जगमोहन को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य को समाप्त करके हिन्दू राष्ट्र बनाने के साधन के रूप मे इस्तेमाल किया जा रहा है। मेरे प्रशासन को बदनाम करने के लिए जबकि जनता में मेरे कार्यों की प्रशंसा हो रही थी, उन्होंने किसी तथ्य की पुष्टि के बिना यह आरोप लगाया कि 'राज्य मे आवश्यक वस्तुओ की भारी कमी है।' जबकि स्थिति यह थी कि मैने दो महीने के लिए खाद्य सामग्री की आपूर्ति कर रखी थी। 57461 मीट्रिक टन चावल, 16826 मीट्रिक टन गेहूं और 3183 मीट्रिक टन चीनी हमारे भण्डारो मे थी। स्थिति इतनी अच्छी थी कि मैंने रमजान के महीने के लिए प्रतिव्यक्ति 575 ग्राम अतिरिक्त चीनी देने का ऐलान किया था।

मुस्लिम लीग के नेता क्यो पीछे रहने वाले थे जबकि उनकी पीठ पर के नेता ऐसे बयान दे रहे थे। जम्मू से श्रीनगर राज्य सचिवालय के स्थानांतरण के सम्बन्ध में 8 मई को लोग मेरी इस सफलता की तारीफ कर रहे थे, जबकि कोई दुर्घटना नही हुई थी, सुलेमान सेट और बनातवाला ने एक बयान जारी किया, जिसमे कहा गया कि जगमोहन जार्ज फर्नांडीज के इस प्रयत्न मे बाधक है कि राजनीतिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो से इस अशांत राज्य मे बातचीत का सिलसिला प्रारम्भ किया जाये। इसलिए आवश्यक है कि सही वातावरण बनाने के लिए जगमोहन को वापस बुलाया जाये। जगमोहन को भारतीय जनता पार्टी के दबाव के कारण वहा भेजा गया था। मुझे इस बात का आश्चर्य है कि न तो उन्होंने और न इन गैर जानकार लोगो ने यह जानने का प्रयत्न किया कि अप्रैल, 1984 मे भी मुझे इस राज्य में भेजा गया था और क्या मैं वहा पाच साल तक भारतीय जनता पार्टी के दबाव के कारण हो रहा था ? और यह भी आश्चर्य की बात है मैंने जार्ज फर्नांडीज को कोई बातचीत करने मे कहा और कैसे बाधा डाली थी ? मुझे नही मालूम।

मई के प्रारम्भ होने पर मुझे इस बात का संदेह हुआ कि जार्ज फर्नांडीज का यह मेरे विरुद्ध अप्रत्यक्ष प्रचार भावनात्मक और राजनीतिक कारणो से तो नहीं? राज्य की स्थिति मे काफी सुधार हुआ था। आन्तरिक रूप से वह उसे पचा नही पा रहे थे। इसका एक कारण यह भी था कि यह सुधार उन कार्यों से हुआ था जिनसे उनका कोई सम्बन्ध न था। इसके साथ ही उनके लिए इस बात को पचा पाना भी कठिन था कि कुछ हलके इस सुधार के लिए भाजपा को श्रेय दे रहे थे। मेरे ये सदेह सही थे या गलत थे परन्तु यह स्पष्ट था कि जार्ज फर्नांडीज की गति-विधिया और उनके ऊल-जलूल बयान स्थिति को बिगाड़ने में ही मदद दे रहे थे।

हमने यह बात अनुभव की कि जब कभी शासन ने हालात पर काबू पाया, जार्ज फर्नांडीज श्रीनगर आये और उन्होने कुछ तोड-फोड करनेवाले और उनके साथियो से बातचीत की जिससे उन्हे प्रोत्साहन मिला और उन्होंने अपनी गति-विधियां फिर जोर-शोर से आरम्भ कर दी। उदाहरण के लिए, 14-15 मई को फर्नांडीज के दौरे पर यही कुछ हुआ। राज्य की सुरक्षा, नियम, कायदे और कानून स्थिति पर हमने नियन्त्रण कर लिया था। सभी प्रमुख मामले सुलझा लिये गये थे। आतंकवादियो के छिपने की जगहो पर छापो और तलाशियो से

उनका मनोबल गिरा था और वे तितर-बितर होने लगे थे। सचिवालय को स्थानांतरण करने का काम सफलतापूर्वक हो चुका था। मंगल से शुक्रवार तक कार्यालयों में पूरी उपस्थिति रहती थी और यातायात सही ढंग से चल रहा था। यह बात सरकार के विभिन्न विभागों के उपस्थिति रजिस्टरों से प्रकट होती है। अनन्तनाग में कोई प्रदर्शन नहीं हुआ था और सुरक्षा बलों पर कहीं गोली नहीं चलाई गई थी। ऐसे समय में फर्नांडीज और उनके सहयोगी राज्य में आये, 40 गाड़ियों का एक काफिला अनन्तनाग गया। इस दौरे की किसी को आशा नहीं थी तो भी जनता के दिमाग में एक भय की-सी भावना थी। अतः कोई भी आदमी मंत्री से मुलाकात करने नहीं आया, केवल कुछ तोड़-फोड़ करने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियों ने 'आजादी' के नारों से उनका स्वागत किया। इसका यह प्रभाव हुआ कि इस क्षेत्र का नेतृत्व फिर अलगाववादियों के हाथ में चला गया। अगले दिन फिर वही वारदात बारामूला में हुई। शाम के समय फर्नांडीज ने दूरदर्शन पर घुमा-फिराकर इस बात का सुझाव दिया कि जनता सुरक्षा बलों द्वारा की गई ज्यादतियों का ब्यौरा दे।

आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई में राज्य प्रशासन को इस प्रकार की बातों से भावनात्मक हानि पहुंची। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीनगर में तीन दिन हड़ताल रही और आतंकवादी गतिविधियां, विशेष रूप से अनन्तनाग में, बढ़ीं और कई स्थानों पर गोलियों का आदान-प्रदान हुआ।

इसका प्रभाव यह हुआ कि राज्य प्रशासन तो लोगों का दमन कर रहा है और जार्ज फर्नांडीज एक दयालु रवैया रखते हैं। यह भी देखने की बात है कि मंत्री ने हिन्दुस्तान मशीन टूल्स फैक्ट्री में बड़ी विचित्र बात कही, "रोटी और मक्खन देना उतना पाप नहीं जितना उन्हें छीनना। काश्मीर में हम ये दोनों बातें कर रहे हैं।" इस प्रकार की बातों का क्या मतलब था और उससे क्या प्रकट होता था?

जार्ज फर्नांडीज ने काश्मीरियों को खुश करने के लिए श्रीनगर आकाशवाणी और दूरदर्शन पर एक असामयिक बात कही, "प्रधानमंत्री विश्वनाथ इस बात से सहमत हैं कि यहां के समाचारों में प्रधानमंत्री के स्थान पर 'वजीरे-आजम' और राष्ट्रपति को 'सदर' कहा जाए" जबकि परम्परा चली आ रही थी और प्रधान मंत्री तथा राष्ट्रपति शब्दों का प्रयोग हो रहा था। उन्होंने यह भी कहा कि प्रधानमंत्री इस बात से सहमत हैं कि इन समाचारों के अन्त में 'खुदा हाफिज' कहा जा सकता है।

इण्डियन एक्सप्रेस ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा था कि समाचारों के अन्त में 'खुदा हाफिज़' कहा जाना सही नहीं। यह ठीक है कि बहुत से हिन्दुस्तानी और और मुसलमान अपनी इच्छा से इस शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु काश्मीर के सामयिक प्रसंग में यह स्वीकृति रूढ़िवादियों के विचारों को मानना है और इसके परिणाम गंभीर होंगे।"

नई तकनीक

अफवाहों द्वारा सब तरह से हानि पहुंचाने के बावजूद गलत समाचार

फैलाने वाले निराश होते जा रहे थे। उन्हें यह स्पष्ट होता जा रहा था कि स्पष्ट प्रमाण दिखाई देने के कारण मेरे व्यक्तित्व को धूमिल करना कठिन है। सारा देश कुछ दिनों में प्राप्त उपलब्धियों के कारण उनकी प्रशंसा कर रहा था। गृह मंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद ने भारत सरकार के विचार का प्रतिनिधित्व करते हुए संसद मे 25 अप्रैल को मेरे द्वारा किये गए कार्य की प्रशंसा की थी। मुफ्ती ने कहा था—"जगमोहन को ऐसी शून्य की स्थिति मे कार्य करना पड़ा जहा पर राज्य सरकार के प्रति न तो कोई सम्मान था और न कोई कायदे कानून। उन्होंने आतंकवादियो को ललकार कर सरकारी कर्मचारियो मे उत्साह की भावना पैदा की है जो पूर्णतया समाप्त हो चुकी थी। जगमोहन ने जो देश के लिए किया है इसके लिए उनकी आलोचना करना उचित नही।"

परन्तु जार्ज फर्नांडीज और उनके साथी इस तकनीक मे माहिर थे कि किसी प्रकार मेरी सफलता का वे अपने लाभ के लिए प्रयोग करें। उन्होंने वी० पी० सिंह के दिमाग में यह बात बिठानी शुरू की और उनकी कमजोरी से फायदा उठाना प्रारम्भ किया। वी० पी० सिंह की कमजोरी यह थी कि वह मुस्लिम वोटों को अपने हक मे करना चाहते थे। वे इस बात को समझते थे कि वी० पी० सिंह की राजनीतिक रणनीति यह है कि मुसलमानो और हठधर्मियो पर कैसे प्रभाव बनाकर भाजपा के प्रभाव को कम किया जाए। इसलिए उन्होने उनके दिमाग मे यह बात बिठानी शुरू की कि काश्मीर मे जो कुछ सुधार और उन्नति हुई है उसका श्रेय भाजपा को मिल रहा है, जनता दल को नही।

मौलवी फारुक की हत्या

अफवाहें फैलाने वाले तत्त्वों को मौलवी फारूक की अप्रत्याशित हत्या से एक अवसर मिल गया। यह हत्या दुर्भाग्य और मूर्खतापूर्ण थी। इस त्रासदी में इन तत्त्वों ने भी अनजाने ही कम भूमिका नही निभायी। यह उन्होंने तथाकथित राजनैतिक प्रक्रिया को असमय प्रारम्भ करके और हिजबुल मुजाहिदीन तथा हिजबुल्ला जैसे पाकिस्तानी समर्थक आतंकवादी दलो पर यह प्रभाव डालते हुए किया कि मौलवी जार्ज फर्नांडीज या उनके नुमाइन्दो से इस विषय में वार्ता कर रहे थे। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से मेरा नाम जोड़ना बिल्कुल गलत था। यह बात अफवाहो से सम्बन्धित आन्दोलन का ही हिस्सा थी। जब मैंने पदत्याग किया तो मैंने यह माग की कि काश्मीर सम्बन्धी सभी घटनाओ की जाच उच्चतम न्यायालय के जजो के एक पैनल द्वारा की जाए। इसकी ओर न तो सरकार ने ध्यान दिया और न अफवाहे फैलाने वालो ने। ऐसा होने पर सचाई का पता चलता और अफवाहों का ढोल उनके हाथ से निकल जाता।

21 मई को राष्ट्रपति बुश के विशेष दूत राबर्ट गेटस काश्मीर के सम्बन्ध मे प्रधानमंत्री से विचार के लिए नई दिल्ली आने वाले थे। इसी सम्बन्ध मे पाकिस्तान के प्रधानमंत्री से विचार के लिए उन्होंने एक दिन पहले इस्लामाबाद जाना था। हमने यह ताड़ लिया कि तोड़-फोड़ करने वाले तत्त्व 21 मई को प्रदर्शनों और हड़ताल द्वारा प्रचार पाने के लिए कुछ गड़बड़ी अवश्य करेंगे। शाम के समय मैं अपने उच्च अधिकारियो से जो परामर्श किया करता था उसके

दौरान उन्हें मैंने हिदायत दी कि भयंकर उत्तेजना के बावजूद वे अपने को काबू में रखें और जहां तक संभव हो सके गोली आदि चलाने से बचें।

21 मई को जनता की शिकायतें सुनने का दिन था। 'नागरिक कर्फ्यू' के बावजूद सैकड़ों आदमी अपनी शिकायतें लेकर मेरे पास पहुंचे। सब कुछ ठीक चल रहा था और शहर में शांति थी। दोपहर बाद शेर-ए-काश्मीर इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर ने मुझे संदेश भेजा कि मौलवी फारूख को गोली मार दी गई है और वे भयंकर रूप से घायल हुए हैं। अस्पताल में उनका ऑपरेशन हो रहा है और काफी भीड़ इकट्ठी हो गई है। वे अस्पताल के दरवाजे और ऑपरेशन रूम के दरवाजों तक पहुंच चुके हैं। मैंने पुलिस महानिदेशक से बातचीत करनी चाही तो मुझे बताया गया कि वे मैडीकल इन्स्टीट्यूट पहुंचने वाले हैं। अतिरिक्त डायरेक्टर जनरल सभरवाल वहां पहुंच चुके हैं और वे मुझसे टेलीफोन पर बातचीत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ मिनटों बाद मुझे एक और समाचार मिला कि मौलवी मर चुके हैं और भीड़ ने उनका शव छीन लिया है और वे जुलूस बनाकर शहर की ओर चल पड़े हैं। बहुत कोशिश के बाद डी० आई० जी० अजहर आलम से सम्पर्क स्थापित किया जा सका। उन्होंने मुझे बताया कि हावल में गोली चली है और एक आदमी मर गया है। मैंने टेलीफोन रखा ही था कि सी० आई० डी० के आई० जी० जी० सूरी ने मुझे टेलीफोन किया और बताया कि हताहतों की संख्या ज्यादा है। उन्होंने स्थिति का और जायजा लेने को कहा। मैं इससे उद्विग्न हो उठा परन्तु जो कुछ होना था वह हो चुका था। इस घटना के सम्बन्ध में पुलिस महानिदेशक जे० एन० सक्सेना ने जो रिपोर्ट मुझे भेजी वह इस प्रकार है—

21 मई को 10 बजे के आस-पास अवामी एक्शन कमेटी के अध्यक्ष मौलवी फारूख से मिलने के लिए नागीन में दो आदमी आए। जब ये दोनों आदमी मौलवी से बातचीत कर रहे थे तो 18-25 वर्ष की आयु के तीन नौजवान वहां आये और मौलवी के चौकीदार गुलाम कादर सोफी से यह कहा कि मौलवी ने उन्हें मिलने का समय दे रखा है। 15-20 मिनट इन्तजार के बाद जब उन्हें अन्दर भेजा गया तो पहले के दोनों मिलने वाले बाहर आ गए। उस समय मौलवी के सेक्रेटरी सैयद रहमान रामस और दूसरा चौकीदार मुहम्मद मकबूल दूसरे कमरे में थे। ये नौजवान 15-20 मिनट मौलवी के पास रहे और उसके बाद पिस्तौल से उन पर गोली चला दी। मौलवी के सिर, कंधों और पेट में गोलियां लगीं। उन्हें शेर-ए-काश्मीर मैडिकल इन्स्टीट्यूट ले जाया गया। वहां मौलवी का ऑपरेशन हुआ परन्तु 12 बजकर 20 और 25 मिनट के मध्य उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

मौलवी के चौकीदार गुलाम कादिर सोफी के अनुसार ये सारे युवक काश्मीरी थे। उनका शरीर गठा हुआ और मध्यम दर्जे का था और रंग गोरा था। सोफी ने एक कातिल को पकड़ भी लिया था परन्तु वह उससे छूटकर भाग गया। उसने यूनिवर्सिटी के दरवाजे तक उसका पीछा भी किया परन्तु उसके बाद उसका कुछ पता नहीं चला।

मौलवी के घायल होने की खबर सुनकर उनके समर्थक बाहर निकल आये और अप्रिय घटनाएं प्रारम्भ हो गईं। स्थिति को काबू करने के लिए प्रभावित क्षेत्र में 12.30 बजे कर्फ्यू लगा दिया गया और स्थिति पर काबू पा लिया गया।

क्रुद्ध भीड़ ने राजौरी कदल की केन्द्रीय सुरक्षा बल की एक चौकी पर हमला किया और एक बजे के करीब उसे नष्ट कर दिया। केन्द्रीय सुरक्षा बल का कमांडेंट और उसके आठ सहयोगी घायल हुए। उनके द्वारा गोली चलाये जाने पर एक आदमी मरा और एक घायल हुआ। 20-25 हजार आदमियों का एक जुलूस राजौरी कदल की ओर बढ़ रहा था कि केन्द्रीय पुलिस बल के जवानों ने उसे इस्लामिया कॉलेज के पास रोक दिया। उन्होंने पुलिस बल पर पथराव किया और भीड़ में से कुछ जंगजुओं ने एके 47 राइफलों से केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की हावल चौकी पर हमला किया। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस ने भी गोली चलाई और भीड़ में दम घुटने से कुछ लोग जख्मी हुए। जख्मियों की कुल संख्या 24 थी। उन्हें शेरे-कश्मीर इंस्टीट्यूट के अस्पताल भेजा गया और व्यवस्था स्थापित कर दी गई। इसी दौरान पाकिस्तान समर्थक तत्वों ने यह अफवाह उड़ा दी कि हत्या किसी कश्मीरी ने नहीं की और न ही आतंकवादियों ने। इसके पीछे ध्येय यह था कि शांति भंग कर दी जाए और साम्प्रदायिक हिंसा भड़के। इस प्रचार को दबाने के लिए कदम उठाये गए और सुरक्षा सेनाओं की सतर्कता से स्थिति को नियन्त्रण में रखा।" चौकीदार के बयान का अनुवाद इस प्रकार है —

"मेरा नाम गुलाम कादिर सोफी है। मेरे पिता का नाम सलाम सोफी और मैं साजगीरपुरा का रहने वाला हूं। मैं मौलवी साहब के घर का नौकर था। मैं उस समय गुलाब के पौधों में पानी दे रहा था क्योंकि माली नहीं आया था, जब मुहम्मद मकबूल बाहर जा रहा था, तीन आदमियों ने दरवाजा खोला। मकबूल ने उनके आने का मकसद और उनका नाम पूछा —उन्होंने बताया कि मौलवी साहब ने उन्हें मिलने का समय दिया है। इस तरह वे अन्दर आ गए। उसने मुझे इनके साथ अन्दर जाने को कहा, चूंकि मैं दूसरा काम कर रहा था, मैंने उनसे कहा कि वे खुद उनके पास चले जाएं। आखिरकार मैं अन्दर गया। सुरक्षा अधिकारी द्वारा उनकी जानकारी आदि लेने के बाद सेक्रेटरी ने मुझे एक स्लिप दी, उसे लेकर मैं अन्दर गया। मुझे कुछ देर रुकने के लिए कहा गया। जब मैं बाहर आया तो मुझे गोली चलने की आवाज सुनाई दी। मैंने रिवाल्वर वाले आदमी को पकड़ लिया। उसका रंग काला था, उसने मुझ पर गोली चलाने का यत्न किया। उसके दो साथियों ने मुझे एक ओर धकेल दिया और भाग निकले। यूनिवर्सिटी के गेट तक उनके पीछे भागते हुए मैं चिल्ला रहा था ओ खुदा मौलवी साहब की मौत हो गई।"

राज्य सरकार ने मौलवी की सुरक्षा के लिए अनेक बार प्रयत्न किए परन्तु मौलवी ने इसे स्वीकार नहीं किया। यह बात भी रिकार्ड पर है। इस रिपोर्ट से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि राज्यपाल का इस घटना से किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं था। पुलिस अधिकारियों, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय सुरक्षा बल के उच्च सुरक्षा अधिकारियों द्वारा प्रारम्भिक जांच के आदेश दिए गए। परन्तु आवश्यक काम यह था—कि और अधिक खून खराबा होने से रोका जाए तथा स्थिति को विस्फोटक न होने दिया जाए। यह सब कुछ सफलतापूर्वक हो गया और मौलवी को दफनाने का काम भी किसी दुर्घटना के बिना सम्पन्न हो गया। इस घटना के सम्बन्ध में दो तीन बातें विचारणीय हैं।

प्रथम—मैंने सभी प्रमुख अधिकारियों से पूर्ण संयम बरतने के लिए कहा

था क्योंकि मुझे भय था कि राष्ट्रपति बुश के प्रतिनिधि के नई दिल्ली पहुंचने पर पाकिस्तान समर्थक तत्त्व तोड़-फोड़ करेंगे। द्वितीय—यह बात विचारणीय है कि सारी वारदात अचानक हुई और मुझे अवसर ही नहीं मिला कि स्थिति के सम्बन्ध में नियन्त्रण लेने की बात सोचता। तीसरी यह बात विचारणीय है कि मौलवी की लाश को ले जाने वाले जुलूस की केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल से मुठभेड़ नहीं हुई, मुठभेड़ दूसरी प्रदर्शनकारी भीड़ से हुई। उन्होंने अपमानजनक ढंग से मृत नेता की लाश को छीन लिया था। यह जानबूझ कर हिंसा भड़काने का प्रयत्न था। आतंकवादी अपने आप को मौलवी का समर्थक बताते हुए भीड़ में घुस गए और उन्होंने गड़बड़ी प्रारम्भ की। उच्च पुलिस अधिकारी अस्पताल पहुंच चुके थे। इसी दौरान भीड़ ने मौलवी की लाश पर कब्जा कर लिया। अतिरिक्त महानिदेशक सभरवाल दुर्भाग्य से वहां से खिसक लिए। यदि पुलिस अधिकारी भीड़ के साथ चलते तो सम्भवत: यह घटना न होती। और यदि केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को आतंकवादियों की गोली के उत्तर में गोली चलानी भी पड़ती तो हताहतों की संख्या कम होती। उसका यह आचरण बहुत ही अनुत्तरदायित्वपूर्ण था। ऐसे समय में एक प्रमुख अधिकारी का कर्त्तव्य था कि वह लोगों का मार्ग-दर्शन करता। पांचवी बात यह है कि मौलवी ने स्वयं सुरक्षा प्रबन्ध के लिए इनकार कर दिया था। वस्तुत: कुछ दिन पहले मौलवी ने स्वयं कहा था कि 'यह आन्दोलन जनता का है, मैं जनता का आदमी हूं इसलिए मुझे कोई सुरक्षा की आवश्यकता नहीं।' एक महीना पहले अनन्तनाग के काजी निसार के कथित अपहरण की सूचना मुझे मिली थी तब मैंने पुलिस के महानिदेशक को यह आदेश दिया था कि यदि वह न चाहें तो भी उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाए। उन्होंने मुझे इस सम्बन्ध में अपनी कठिनाइयों की बात कही थी कि जब कोई स्वयं अपनी सुरक्षा नहीं चाहता तो उसकी कैसे सुरक्षा की जा सकती है। यदि वह व्यक्ति पुलिस पर ही सुरक्षा अधिकारी के रूप में भेदिया होने का आरोप लगाए तो उसकी सुरक्षा कैसे की जा सकती है। छठी बात यह विचारणीय है कि हत्यारे मौलवी को जानते रहे होंगे। ऐसा न होता तो सेक्रेटरी चिट देकर उन्हें अन्दर न भेजता अथवा मौलवी ही उन्हें न बुलाते। सातवीं बात यह है कि बातचीत के 10-15 मिनट बाद गोली चलाई गई।

मौलवी की हत्या के विरुद्ध शोर मचाने वालों को ये सब बातें पता थीं। किसी बात पर मुझे धोखा नहीं दिया जा सकता। परन्तु वे सच्चाई कहीं जानना चाहते थे। उनका प्रमुख ध्येय तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर मेरे विरुद्ध आरोप लगाना था। और वे चाहते थे कि अनेक बैशाखियों पर आधारित सरकार परेशानी में पड़े। मेरी इस बात के लिए आलोचना की गई कि मौलवी की लाश को सही ढंग से दफनाने में भी मैंने विघ्न डाला। यह आरोप भी जानबूझ कर लगाया गया था, क्योंकि उस दिन मौलवी की लाश दफनाई ही नहीं गई थी। ऊपर की सातों बातों से सही स्थिति का पता लग जाता है। अब्दुल्ला बुखारी ने भी गलत बातें कहकर अपना दबाव बढ़ाया।

एक और गलत स्थिति को सही करना आवश्यक है। 'इण्डिया टुडे' की एक भेंटवार्ता में यह कहा गया था कि मुफ्ती मोहम्मद सईद ने मुझे यह परामर्श दिया है कि मौलवी फारूख को सुरक्षात्मक नजरबन्दी में ले लिया जाये, यह बात सही

नहीं है। मुफ्ती यदा-कदा काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध में मुझसे टेलीफोन पर विचार किया करते थे। एक बार ऐसी ही बातचीत में उन्होंने सुझाव दिया था कि मौलवी फारूख भड़काऊ भाषण दे रहे हैं, इसलिए उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है। मैंने इस सम्बन्ध में अपने अधिकारियों से बातचीत की थी। उन्होंने इसे उचित नहीं बताया था और कहा था कि उनकी गिरफ्तारी से एक और मोर्चा खुल जायेगा और प्रशासन को उनके आक्रमक समर्थकों द्वारा किए गए संघर्ष का सामना करना होगा। मेरा विचार था कि मौलवी के विरुद्ध विदेशी मुद्रा नियमों के उल्लंघन के लिए कार्यवाई की जाए। इस बात के लिए राज्य सरकार पिछले तीन साल से दबाव डाल रही थी। मैंने इससे सम्बन्धित फाइल मंगवाई। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार के आदेश पर अमल नहीं किया था। मैंने केन्द्र सरकार के अनुरूप उस पर मुकदमा चलाने का आदेश दिया।

मैं सुरक्षात्मक नजरबन्दी के अर्थ को पूरी तरह नहीं समझता। क्या ऐसे किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है जिसे दूसरे लोगों से खतरा हो? और यदि मुफ्ती को यह पता था कि मौलवी फारूख की जान को खतरा है तो वो मौलवी को राज्य सरकार की ओर से दी गई सुरक्षा को स्वीकार करने पर जोर देते।

24 मई की दोपहर बाद गृह सचिव नरेश चन्द्र ने मुझे टेलीफोन किया कि काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध में संसद में होने वाली बहस के लिए गृह मन्त्री आप से विचार करना चाहते हैं। अतः आप विशेष विमान से शाम को नई दिल्ली आ जायें। मैंने गृह सचिव से कहा कि मैं निश्चित कार्यक्रम के अनुरूप बहुत व्यस्त हूं, और यदि हुवल में गोली चलाये जाने वाली घटना के सम्बन्ध में न्यायिक जांच सम्बन्धी विषय पर विचार करना है तो मेरी सहमति स्वीकार कर ली जाये। परन्तु गृह सचिव ने कहा कि मुझे नहीं पता कि गृह मन्त्री आप से क्या बात करना चाहते हैं। इस पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई असामान्य बात है। शाम को मैं नई दिल्ली पहुंचा। हवाई अड्डे पर जम्मू-काश्मीर सरकार का स्थानीय आयुक्त मिला। उसे मेरी गृहमन्त्री से मुलाकात के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि गृहमन्त्री से मेरी मुलाकात में जानबूझ कर देरी की जा रही है। रात 10 बजे के करीब मैं गृहमन्त्री से टेलीफोन पर बात कर सका। अगली सुबह आठ बजे मिलने का निश्चय हुआ।

प्रधानमन्त्री के प्रमुख सचिव बी० जी० देशमुख ने आधी रात के करीब मुझे टेलीफोन किया। टेलीफोन मेरी पत्नी उमा ने सुना और उन्होंने कहा कि मैं सो रहा हूं और यदि बहुत ही आवश्यक काम हो तो उन्हें उठाऊं। देशमुख ने कहा कि उन्हें कल सुबह जल्दी भेज दें।

सुबह 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' की प्रमुख खबर मैंने पढ़ी। उसका हैडिंग था, 'जगमोहन को पद त्याग के लिए कहा गया है।' यह एक बहुत ही निर्दयतापूर्ण बात थी। समाचार में जो बात कही गई थी वह और भी कष्ट देने वाली थी। उसमें कहा गया था—'जगमोहन ने स्वयं कहा है कि वह परिवर्तित स्थितियों में राज्यपाल नहीं रहना चाहते।' जबकि मैंने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया था।

इस विशेष समाचार से मुझ पर यह प्रकट हो गया कि यह समाचार जानबूझ

कर प्रकट किया गया। इसका ध्येय यह था कि इस सम्बन्ध में और विचार की गुंजाइश न रहे। मैंने देशमुख को टेलीफोन किया। मैंने उनसे कहा कि मैं गृहमन्त्री के घर जाते हुए स्वयं उनसे मिलूंगा। वहां जब हमारी मुलाकात हुई तो देशमुख ने बड़े कूटनीतिक ढंग से बात चलाई। "राष्ट्रपति ने आपको राज्य सभा के लिए मनोनीत किया है, इस सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं?" मैं उसका मतलब गया। मैंने देशमुख से कहा कि मैंने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' देख लिया है। अतः इस सम्बन्ध में और विचार की आवश्यकता नहीं।

मेरा कहना है कि सरकार ऐसे मामलों में सीधे सच्चे ढंग से पेश क्यों नहीं आती? मुझे हैरानी है कि राजीव गांधी की सरकार ने भी ऐसा ही खेल खेलना चाहा था। वे चाहते थे कि मैं काश्मीर से राज्यपाल का पद छोड़कर दक्षिण दिल्ली से कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ूं। इसी प्रकार के खेल द्वारा वी० पी० सिंह की सरकार भी मुझे राज्य सभा का सदस्य बनाकर कुछ स्वार्थी तत्त्वों को खुश करना चाहती थी। इन दोनों मामलों से राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रति दृष्टिकोण प्रकट होता है। वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में ईमानदारीपूर्ण विचारधारा प्रायः समाप्त हो चुकी है।

जब मैं गृहमन्त्री के घर की तरफ जा रहा था, मुझ में यह भाव भरे हुए थे कि मुझसे धोखा किया गया है। एक दिन पहले सरकार यह कह रही थी कि अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में मैंने जो कार्य किया है राष्ट्र उसे नहीं भुला सकता। वही सरकार इस समय मुझसे बड़े गलत ढंग से पेश आ रही थी।

गृहमन्त्री ने बड़े दयनीय भाव से मुझसे कहा कि उनके बस की बात नहीं है। उनकी बातों का मेरे दिमाग पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने उन्हीं के स्टनोग्राफर द्वारा एक पंक्ति का त्यागपत्र लिखकर राष्ट्रपति को भेज दिया और उसकी एक प्रति गृह मन्त्री को दे दी। इस समय मेरी मानसिक स्थिति बिल्कुल वैसी ही थी जब कोई अपना सिर पत्थर पर मारकर यह कहता है कि ओ काफिर, इससे अधिक बुरा और क्या होगा।

सोलहवां अध्याय

यन्त्रणा-काल बढ़ाना

"जगमोहन को हटाने से हमारे हौसले बढ़े हैं।
वी० पी० सिंह के इस फैसले के लिए हम उनके शुक्रगुजार हैं।
अगले पन्द्रह दिनों में हम कुमुक ला सके हैं और अपनी ताकत बढ़ा सके हैं।"

अनन्तनाग के एक कुख्यात उग्रवादी मंजूर ने इंडिया वीक (24 अगस्त, 1990) पत्रिका को दिये गये इन्टरव्यू में यह बात कही। उसने जिन शब्दों का प्रयोग किया वे इस प्रकार हैं "अब राज्यपाल को बदला गया है—क्या जगमोहन को हटाने से आपका हौसला बढ़ा है ?' मंजूर ने हसते हुए कहा—हा, अगले 15 दिनों में हम कुमुक ला सके हैं तथा अपनी ताकत बढ़ा सके हैं। इसके लिए हम वी० पी० सिंह के इस फैसले के लिए शुक्रगुजार हैं।"

साइलास गतिरोध

काश्मीर के बारे में, भारत ने बार-बार एक अजीबोगरीब और आत्मघाती प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया है, जब-जब भारत को सफलता मिलने की आशा होती है तब-तब स्थिति में इस प्रकार का बदलाव किया जाता है कि मामला उलझा रहे। ये पहले कुछ शब्द थे जो मैंने अपनी डायरी में उस समय लिखे जब त्याग-पत्र देने के बाद तीन घंटे के अन्दर मैंने श्रीनगर की वापसी यात्रा के लिए विमान यात्रा शुरू की।

जिस विशेष वायुयान मे मैं यात्रा कर रहा था वह पुराने मॉडल का एव्रो था। तीन कर्मचारियों के अलावा सिर्फ मेरी पत्नी उमा विमान मे थी। पहले उन्होंने लगातार, राज्यपाल पद स्वीकार करने मे मेरा विरोध किया था। वे समझती थीं कि मैं अपने ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी ले रहा हूं। परन्तु आज उन्होंने यह नही कहा—'देखो मैंने पहले ही कहा था।' वे अपनी छोटी-सी निया मे मगन थी। वे भारतीय नारी की कुछ उत्कृष्ट परम्पराओं की प्रतीक थीं—अपने प्रियजनों से उनका पूरा तादात्म्य था और उनमें कष्ट झेलने की असीम

क्षमता थी। मैंने उन्हें सदैव सलाह दी थी कि वे अपने आज्ञाकारी बच्चों अर्थात् दीपिका और उनके पति राजीव तथा मनमोहन और उनकी पत्नी नूतन के साथ दिल्ली में ही रहें। परन्तु उन्होंने चार कष्टप्रद महीनों तक अलग रहना पसन्द किया। वे राजभवन की पहली मंजिल की कोरी दीवारों को देखती रहतीं और मैं नीचे अपने कार्यालय में अपना लगभग सारा समय गुजारता था। सम्भवतः इसी प्रकार के मूल्यों के कारण संकट के दिनों में भी हमारे समाज का अस्तित्व बना रहता है।

विमान के खालीपन ने ही मेरे मस्तिष्क को बोझिल बना दिया। अन्तः संघर्ष समान रूप से कष्टप्रद था। हालांकि मैंने राज्यसभा का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया था, फिर भी मैं यह नहीं कह सकता था कि ऐसा कर मैंने सही काम किया है अथवा नहीं। क्या मुझे अपना विरोध अधिक व्यक्त रूप से जाहिर नहीं करना चाहिए था? क्या मुझे यह स्पष्ट नहीं कर देना चाहिए था कि अपनी पीठ में पीछे से छुरा भोंके जाने के बाद मैं छोटे पदों को स्वीकार करना पसन्द नहीं करूंगा?

अधिक दुःख मुझे इस बात से हुआ कि सत्य की हार और प्रचार की जीत हुई है। मेरे मानस पटल पर जॉन स्टुअर्ट मिल का यह कथन कौंध उठा कि दमन पर सत्य की सदैव विजय होती है। लेकिन मुझे लगा कि यह एक ऐसा सुखद मिथक है जिसे लोग दुहराते रहते हैं परन्तु अनुभव उसे नकारता है। परन्तु मेरा यह स्वभाव नहीं है कि मैं निराशा या मानवद्वेष की भावनाओं से उद्वेलित हो उठूं। मैंने अपनी मनोदशा बदल कर अपना ध्यान बाहर के असीम क्षितिज को निहारने में केन्द्रित किया जिसमें भूरे, कपसीले बादल और चकाचौंध करने वाला सूरज का प्रकाश था। उसके साथ ही साथ बदलती हुई छायायें थीं। उससे भी मुझे एक सन्देश मिला।

मुझे लगा कि विमान बहुत धीमी गति से उड़ रहा है। प्रतीत होता था कि यात्रा समाप्त ही नहीं होगी। विमान के एक कर्मचारी ने मेरे पास आकर कहा—"श्रीमन् हम श्रीनगर नहीं जा सकते, बनिहाल के ऊपर का मौसम खराब हो गया है। बहुत कम दूरी तक दिखाई देता है। यह विमान बहुत अधिक ऊंचाई पर भी नहीं उड़ सकता। हमें जम्मू जाना पड़ेगा।"

लगभग आधे घंटे के बाद हम जम्मू हवाई अड्डे पर उतरे। विमान से डिवीज़नल कमिश्नर और सम्बन्धित अन्य अफसरों को वायरलेस से सूचना भेज दी गई थी। वे हवाई अड्डे पर मौजूद थे। उनका मौन दर्शाता था कि उन्हें घटना की जानकारी है। किसी ने उस विषय को नहीं छेड़ा। शब्दों से जो कुछ व्यक्त किया जा सकता था उससे अधिक उनके मौन ने कह दिया।

अफसरों ने मुझे शहर के अन्दर से जाने वाले सामान्य सीधे रास्ते से राज्य-भवन ले जाने के बजाय एक ऐसे लम्बे रास्ते से ले जाने के बारे में मेरी मंजूरी मांगी, जो शहर का चक्कर काट कर राजभवन जाता था। मुझे बताया गया कि दुकानें और अन्य संस्थान बन्द कर दिये गये हैं तथा लोग वी० पी० सिंह और जार्ज फर्नांडीज के विरुद्ध सड़कों पर नारे लगा रहे हैं तथा कह रहे हैं कि वे राज्यपाल को राज्य से बाहर नहीं जाने देंगे।

मैं बहुत थका हुआ था। मेरी पत्नी को हरारत थी। धीमी यात्रा और

दमघोटू वातावरण का भी असर पड़ा था। मानसिक तनाव से इस्पात की नसें भी झुक जाती हैं। मुझे लगा कि पचास मिनिट की अतिरिक्त यात्रा भी दुखदायी होगी। परन्तु मैं अड़चन पैदा करने वाली घटनाओं से बचना चाहता था। उस समय लोगों की भीड़ को पता नहीं था कि मैं जम्मू पहुँच चुका हूं। यदि वे मुझे शहर के अन्दर से जाते हुए देखते तो वे शायद मुझे रोकते। वे इतने उत्तेजित हो सकते थे कि केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध अपना रोष प्रकट करने के लिए कोई हिंसात्मक कार्यवाही कर बैठते। अतएव मैंने लम्बे रास्ते से जाना पसन्द किया। परन्तु इसका भी एक लाभ हुआ। हमारी गाड़ियां महामाया नगर वन के किनारे किनारे जा रही थीं। इस वन से मुझे अपार सुख और शान्ति मिली। हजारों वृक्ष और झाड़ियां, संध्या की शीतल, तेज और सुखद बयार में झुक-झुक कर हमारा अभिवादन कर रही थीं। तवी नदी के पास इस प्रकार की समीर विशेष रूप से बहती है।

बाद में शाम को मुफ्ती मोहम्मद सईद ने मुझसे फोन पर बात की। उन्होंने कहा कि मेरे त्यागपत्र के विरुद्ध सारे जम्मू क्षेत्र में घोर प्रतिक्रिया हुई है। उन्होंने सुझाव दिया कि लोगों को शान्त करने के लिए मैं अपने निजी प्रभाव का उपयोग करूं और उन लोगों से कहूं कि मैं एक सार्वजनिक महत्त्व के पद को ग्रहण कर रहा हूं। यद्यपि विश्वासघात के कारण मैं खिन्न था फिर भी मैंने मुफ्ती से कहा कि वे कोई चिन्ता न करें। शान्ति बनाये रखने के लिए मैं अपने सभी साधनों का उपयोग करूंगा साथ ही साथ मैंने उन्हें अगले दिन पद त्यागने के अपने दृढ़ संकल्प की भी सूचना दी।

अगले दिन सुबह मैं वैष्णो देवी के मन्दिर गया। वह भावनापूर्ण यात्रा थी और पहली यात्रा के निराशाजनक अनुभव से बिल्कुल भिन्न थी। तीर्थ यात्रियों के हँसमुख चेहरे और उनकी आंखों में एकाएक आई चमक द्वारा व्यक्त उनकी सौम्य कृतज्ञता से मुझे प्रेरणा मिली, मुझे गरिमा का अनुभव हुआ। मैंने सोचा कि किया गया कोई भी ठोस रचनात्मक कार्य, दुनिया के तमाम कपट और धोखाधड़ी में नष्ट नहीं किया जा सकता।[1]

मैं वैष्णो देवी के मन्दिर से ठीक समय वापिस आकर नई दिल्ली को जाने वाली उड़ान में सफर कर सका। इस मौके पर मैंने खुद को औपचारिक समारोहों से अलग रखा। ऐसे समारोह आसपास के उदास वातावरण में शोभा नहीं देते। शहर भर में हड़ताल आयोजित की गई थी।

जम्मू क्षेत्र की प्रतिक्रिया की झलक स्थानीय दैनिक समाचार-पत्र, काश्मीर टाइम्स की 26, 27 और 28 मई की तीन प्रेस रिपोर्टों से मिल सकती है।

26 मई

केन्द्रीय सरकार के निर्णय को व्यापक रूप से निन्दा की गई।

यहां के समाचार-पत्र कार्यालय में राजनैतिक, सामाजिक, व्यापारिक धार्मिक और अन्य संगठनों द्वारा दिये गये वक्तव्यों की बाढ़ आ गई है। उन सब

1. अध्याय 17, भविष्य इतिहास का।

वक्तव्यों में सरकारी निर्णय की कड़ी आलोचना की गई थी।

उन्होंने इस निर्णय को 'ऐसी सरकार द्वारा लिया गया दुस्साहसपूर्ण निर्णय बताया, जो जम्मू-काश्मीर, खासकर घाटी की आधारभूत वास्तविकताओं से, बेखबर है, जहां आतंकवाद के कारण जीवन ठप्प पड़ गया है।'

एक वक्तव्य में कहा गया था—

जगमोहन फिर से सामान्य स्थिति बहाल करने के लिये बड़ी कोशिश कर रहे थे और जैसे ही वे अपने उद्देश्य को प्राप्त करने वाले थे, राष्ट्र की अखंडता और एकता की विरोधी ताकतों के दवाव में आकर जगमोहन जैसे जुझारू (परिश्रमी) सिपाही को मोर्चे से हटा लिया गया।

इन वक्तव्यों में आतंकवाद को रोकने तथा घाटी के विभिन्न निर्दोष लोगों की हत्या के लिये जिम्मेदार अपराधियों की पकड़-धकड़ करने में जगमोहन की भूमिका पर प्रकाश डाला गया था। यह टिप्पणी की गई कि इस मौके पर, ऐसा करना एक असंगत निर्णय था।

27 मई

राज्यपाल जगमोहन को हटाने के विरोध में विभिन्न संगठनों द्वारा किये गये बन्द के आह्वान का जब जम्मू क्षेत्र के प्रमुख शहरों में बहुमत से स्वागत किया गया तो पुलिस को नगर के एक इलाके में गोली चलानी पड़ी तथा आंसू गैस छोड़नी पड़ी।

जम्मू क्षेत्र के छः जिलों के लगभग सभी प्रमुख शहरों में दुकानें; व्यावसायिक प्रतिष्ठान और उद्योग बन्द रहे। अधिकांश जगहों पर यात्रियों को लाने ले जाने वाली सवारी गाड़ियां नहीं चलीं। इससे विशेष रूप से दफ्तरों को जाने वाले लोग प्रभावित हुए, जिसकी वजह से कार्यालयों और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं में कम लोग पहुंचे। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय बन्द रहे।

जम्मू और दूसरे शहरों के सभी न्यायालयों में काम-काज ठप्प रहा। वकील कचहरियों में नहीं आये और यह कहकर कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने जगमोहन को हटा कर बड़ी गलती की है, वे बन्द में शामिल हो गये।

28 मई

केन्द्र द्वारा जगमोहन को हटाये जाने के विरोध में विभिन्न संगठनों के आह्वान पर आज दूसरे दिन जम्मू क्षेत्र के बड़े नगरों के पूरा बन्द रखा गया।"

दूसरे दैनिक समाचार-पत्र एक्सेलसियर के 29 मई, 1990 के अंक में यह टिप्पणी छापी गई—

"जगमोहन के पदत्याग का समाचार राज्य भर में दावाग्नि की तरह फैल गया। जैसे ही लोगों ने यह खबर सुनी, सभी व्यावसायिक संस्थान बन्द कर दिये गये। जगमोहन की वापिसी के लिए लोगों ने अनिश्चित काल तक हड़ताल करने का आह्वान किया है।"

नेशनल कान्फ्रेंस के एक वरिष्ठ नेता ने भी केन्द्रीय सरकार की आलोचना की। समाचार-पत्र की एक रपट के मुताबिक—

"नेशनल कांफ्रेंस सरकार के एक पूर्व मन्त्री और उसकी केन्द्रीय कार्यकारी परिषद् के सदस्य बाबू परमानन्द ने श्री जगमोहन को राज्य के राज्यपाल पद से हटाये जाने की आलोचना करते हुए कहा कि इस कदम का उल्टा असर होगा।

बाबू परमानन्द ने आज यहां दिये गये अपने वक्तव्य में जगमोहन को वापिस बुलाने के निर्णय को 'दुर्भाग्यपूर्ण' कहा। उन्होंने कहा कि गलत सूचना, तथ्यों को गलत ढंग से पेश करने और आधारभूत वास्तविकताओं को न समझ सकने के कारण उनको हटाया गया है।

उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि राज्यपाल को हटाने से खतरनाक प्रवृत्तियां उभरेंगी, जिसका तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि राज्य के 137 सरकारी कर्मचारियों ने एक संयुक्त बयान दिया है जिसमें काश्मीरी मुसलमानों के साथ नृशंस व्यवहार करने का आरोप लगाया गया है।

नेशनल कांफ्रेंस के वरिष्ठ नेता ने कहा कि पाक समर्थक मनोवृत्ति वाले लोगों द्वारा दिये गये ऐसे भारत विरोधी वक्तव्य से उग्रवादी तथा पृथक्तावादी कार्यवाहियां और बढ़ जायेंगी।"

हवाई जहाज में बैठा-बैठा जब मैं इस घटना क्रम के बारे में सोच रहा था तब मुझे इस बात का बड़ा दुःख हुआ है कि उस श्रीनगर को गये बिना मुझे अपना पद त्याग करना पड़ा जिसके निवासियों ने एक-दो साल पहले स्नेह से मुझे जगवावार और साराववम[1] कहा था। परन्तु अगर मैं श्रीनगर पहुंच भी जाता तो बदली हुई परिस्थितियों में वहां जाने से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता? आतंकवादी मेरी वापिसी से खुश थे। आम आदमी भारी प्रचार, आतंक और अभित्रास में दुबका हुआ था। सच बातों के बारे में उन्हें समझाने के लिए मेरे पास कोई जरिया नहीं था। आकाशवाणी या दूरदर्शन पर प्रसारण करना भी बेकार था। अतएव मैंने भविष्य पर भरोसा करने का फैसला किया। मैंने काश्मीरियों के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी—उसमें जो शब्द और वाक्यांश छूट गये थे उन्हें जोड़कर वह चिट्ठी मैं नीचे दे रहा हूं।

काश्मीरियों के नाम एक खुली चिट्ठी

26 मई, 1990

प्यारे काश्मीरी भाइयो और बहिनो,

मैं नहीं जानता कि राज्य को छोड़ते समय मैं आपको यह चिट्ठी क्यों लिख रहा हूं। जिस उद्देश्य से यह चिट्ठी लिख रहा हूं उसे आप आज नहीं समझ पायेंगे परन्तु एक दिन—उसे आप अवश्य ही समझ लेंगे।

आपको याद होगा कि जब मैं दूसरी बार राज्यपाल बनकर यहां आया था। तो पहले दिन ही मैंने आपको इस बात को याद रखने की सलाह[2] दी थी कि जिस जगह काफिला अपना रास्ता भूल जाता है वहीं से नये रास्तों का पता चलता है। अभाग्यवश, आपके सुखद भविष्य के लिये नये रास्ते तय करने और

1. इसका अर्थ है "जो स्वच्छता लाता है।"
2. देखिये अध्याय 1

उन्हें आपके लिये सुरक्षित करने के पहिले ही वे रास्ते, जान-बूझकर फैलाये गये झूठे प्रचार की बाढ़ में डूब गये हैं। तथ्यों की तोड़-मरोड़ करने और मेरी कोशिशों को नाकामयाब करने को कुछ लोग लगे हुए थे।

शपथ ग्रहण समारोह के मौके पर ही मैंने ऐलान किया था कि मैं एक तरफ एक सर्जन की तरह काम करूंगा जो घावों की सिलाई कर खून को बहने से रोकता है और दूसरी तरफ मैं अस्पताल में काम करने वाले नर्सिंग अर्दली की तरह भी काम करूंगा जो रोगी की सावधानी और करुणाभाव से सेवा सुश्रुआ करता है और कोशिश करता है कि वह शीघ्र चंगा हो जाये। परन्तु उन लोगों ने एक सर्जन को कसाई के रूप में दर्शाया तथा नर्सिंग अर्दली को ऐसे निर्मम मेहतर के रूप में पेश किया जो बूचड़खाने के फर्श पर बिखरे खून को साफ करता है।

मैंने आपसे एक अपील की थी कि आप सब याद रखें कि सभी धर्मों का एक ही आधारभूत सिद्धान्त है—और वह है दुःखी इन्सान को राहत पहुंचाना तथा यह मानना कि गरीबों की सेवा करना ही अल्लाह की सेवा करना है। ईदुल-फितर के दिन मैंने खास तौर पर कहा था आइये हम इस पावन दिन की भावना[1] का समादर करें और सेवा भावना से काम करें। उन्होंने यह प्रचार किया कि मैं साम्प्रदायिक हूं।

मैंने बार-बार आपको आगाह किया कि हमें वास्तविक भारत की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये – ऐसे भारत की जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण होता है और वे आपस में मिलकर एक हो जाती। इस पर भी उन्होंने मुझे हिन्दू उग्र राष्ट्रवादी कहा।

डॉ० मोहम्मद यूसुफ खान के नवयुवक पुत्र की मौत पर मैंने उन्हें लिखा "और अधिक शबीर नहीं मरने चाहिये। आइये! हम एक ऐसा माहौल पैदा करें ताकि सड़कों पर पुलिस दिखाई न पड़े। सड़कें पर्यटकों से भरी रहें।" वे चीख मारकर चिल्लाये कि मेरा दृष्टिकोण हलाकू और हिटलर जैसा है।

मैंने विधान सभा को भंग किया ताकि मतदान के जरिये सत्ता में आने का सबको नया मौका मिले। यह मानने के बजाय राजनैतिक प्रक्रिया चालू करने का यह एक न्याय संगत और स्वस्थ तरीका है। वे इस बात का प्रतिचित्रण करते करते रहे कि मैं केवल कानून और व्यवस्था बनाये रखने का हामी हूं।

मैंने ईमानदारी से आतंकवाद के स्वरूप और उसके ढांचे[4] का विश्लेषण करना शुरू किया ताकि उसकी जंजीरों को तोड़ा जा सके तथा उसका जो बुरा असर होता है उससे बचा जा सके। वे लोग रोग को छिपाने पर तुले थे ताकि मैं उन रोगों का जड़ से सफाया न कर पाऊं तथा शरीर में जो अनेक रोग फैल गये हैं उनका इलाज न कर पाऊं।

उन्हें मालूम था कि 20 जनवरी को जो तलाशियां ली गई थीं या मौलवी फारूख के तथाकथित जनाज़े पर जो गोलियां चलाई गई थीं उनसे मेरा कोई

---

1. देखिये अध्याय 1
4. अध्याय 10 भी देखिये—आतंकवाद का स्वरूप और उसका ढांचा।

वास्ता नहीं था। फिर भी वे झूठ फैलाने के सुविचारित अभियान को चलाते रहे।

आप देर-सबेर इन लोगों की चाल को समझ लेंगे और फिर पछताएंगे कि आप उनके चंगुल मे क्यों फंसे।

आप अपने खुद के इतिहास पर नजर डालें, नये और पुराने इतिहास, दोनो पर। कुछ साल पहले आपकी राजनैतिक नियति के पहरेदार कौन थे? क्या वे आपके ही लोग नही थे? क्या वे ऐसे झूठे मार्गदर्शक और अयोग्य नेता साबित नही हुए जिनमें राजनैतिक अध.पतन का रोग तेजी से घर कर गया था। लगातार सत्ता हथियाने, आत्मगौरव बढाने और लोकतन्त्र की आड मे अपना निजी शासन स्थापित करने के लिए उन्होने आपके दिलो-दिमाग पर अपना असर डाला तथा आपको वास्तविक स्थिति के अनुरूप नही बनने दिया। जब तक राज्य की बागडोर उनके हाथो में रही तब तक वे भारत मे काश्मीर के पूर्ण विलय को और भारत को धर्मनिरपेक्षता का आश्रय-स्थल मानते रहे, परन्तु जैसे ही उनके हाथों से सत्ता की बागडोर खिसकी उन्होने अपनी जेबो से हरे रुमाल निकाले, पाकिस्तान का समर्थन करने लगे तथा भारत को, काश्मीर की पहचान मिटाने वाली साम्राज्य-वादी ताकत कहने लगे। उन्होने अपने पैर दो किश्तियो मे रखे और आपको अधर में लटकाये रखा। इससे आपको बार-बार नुकसान हुआ—ऐसा तो होना ही था। परन्तु इससे उनको क्या फरक पड़ना था। वे सत्ता बटोरने का खेल खेलते रहे।

उन्होंने आपकी कितनी सेवा की और खुद की कितनी? इसका जवाब आपको मालूम नही है। आप में से बहुत लोगो ने रैड बुक[1] और 'ब्लैक बुक' पढ़ी होगी। क्या आप में से एक असन्तुष्ट नौजवान ने यह नही लिखा था—"दूसरो की बात क्या करें, हमारे ही लोग हमारे साथ भेड़-बकरी जैसा सलूक करते हैं और क्रूरता से हमारे ऊन को नोचते हैं।"

बेरोजगारी और गरीबी के लिए उन्होने केन्द्रीय सरकार को जिम्मेदार ठहराया।[2] राज्य के ससाधनो का दुरुपयोग करने और अपना स्वार्थ साधने के लिए सत्ता मे बने रहने के लिए उन्होने अनुच्छेद 370 का उपयोग किया। केन्द्रीय सरकार की निधि में से औसत हिस्से से भी अधिक राशि उन्हे मिली, परन्तु वे उसे खा पचा गये। आपने गौर किया होगा कि 1986 में मिली उतनी ही राशि से सड़कें बनाई गईं, नगरो को सुन्दर बनाया गया, पर्यावरण मे सुधार किया गया तथा तीव्र और प्रभावशाली ढग से ग्राम विकास कार्यक्रमो को लागू किया गया जिसकी वजह से इस मामले में राज्य की स्थिति 25वें नबर की बजाये 10वें नबर पर पहुंच गई। मेरी प्रार्थना यह है कि आप शांत होकर यह सोचें कि आपका वास्तव मे भला चाहने वाला कौन है और कौन नही है।

आपको अपनी पिछली तवारीख से भी बहुत कुछ सीखना है। मुझे मालूम है कि आज आप मे से कुछ लोगों का रुझान पाकिस्तान की ओर है और वे उसमे शामिल होने की उनको इच्छा होती है। याद कीजिए, अठारहवी शताब्दी के मध्य

1. देखिए अध्याय 5, रूट्स हिडन वेन्स (अनुभाग: सार्वजनिक भ्रष्टाचार)
2. देखिए अध्याय 6

में आप में से कुछ लोगों का ऐसा रुझान अफ़ग़ानिस्तान की तरफ था और आपने अहमदशाह अब्दाली को बुलाया भी था। उससे आपकी जो फजीहत हुई वैसी पहले कभी नहीं हुई। एक बार पाकिस्तान की गिरफ्त में आने के बाद आपको थोड़े समय में ही पता चल जायेगा की आप पर उसकी पकड़ का शिकंजा किस प्रकार कसता है। पचास साल के अन्दर आपकी पहचान मिटेगी नहीं तो धूमिल अवश्य पड़ जायेगी। इस्लामी भाईचारे के नाम पर उनके साथ आपस में विवाह होंगे, घाटी में वहां के लोग बड़े पैमाने पर बस जायेंगे, फौजों और जमींदारों में पंजाबियों का ही बोलबाला है। वे ही वास्तव में पाकिस्तान पर शासन करते हैं। वे इस बारे में कोई संवेदनशीलता अथवा दया नहीं दिखायेंगे। आपका अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा। परन्तु फिर आप कुछ नहीं कर पायेंगे। आपकी जुबान ही काट दी जायेगी।

याद रखिए कि सबसे बड़ा अत्याचार वह है जो धर्म और सैनिक बल की संकीर्ण समझ के मिश्रण से होता है। अल्लाह के नाम पर लोगों पर हर चीज थोप दी जाती है। मध्ययुगीन बैरागियों ने यही किया था। पाकिस्तान में शासकों का छोटा-सा गुट यही सब कर रहा है।

फिर काश्मीर का स्वतन्त्र अस्तित्त्व कैसे हो सकता है? भूगोल, इतिहास, रक्षा और संसाधनों के कठोर तथ्य उसके विपरीत हैं। भविष्य के विकास व्यय की बात अलग रही, सरकार अपने लगभग पचास फीसदी वर्तमान कर्मचारियों को तनख्वाह भी नहीं दे पायेगी। क्या पाकिस्तान हस्तक्षेप किये बगैर रहेगा? क्या आपके सपने दुःस्वप्न नहीं बन जायेंगे?

आप बार-बार अपनी पहचान बनाये रखने की बात, उसका सही अर्थ समझे बिना उठाते रहते हैं। क्या आप महसूस करते हैं कि आपकी पहचान इस समय खत्म होती जा रही है? कलाश्निकोव की घातक संस्कृति उसे नेस्तनाबूद कर रही है। यदि इसे बचाने के लिए तत्काल उपाय नहीं किये जाते तो उसका नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

सीमापार के लोगों के उकसाये जाने पर आप में से कुछ लोग, अमरता का भुलावा देकर या उज्ज्वल भविष्य की तस्वीर खींच कर नवयुवकों को एक जाल में फंसा रहे हैं। ऐसी कोई अमरता नहीं है। न ही ऐसा कोई भविष्य है। अपराध के विकृत दर्शन से भला अच्छाई कैसे पैदा हो सकती है? एक व्यक्ति को पुलिस का मुखबिर होने का आरोप लगाकर, या उसके रहन-सहन के तरीके को इस्लाम विरोधी करार देकर उसकी बलि चढ़ा दी जाती है। ऐसे मामलों का फैसला कौन करता है? दूसरों पर इलजाम लगाने वाला ही ऐसी बातें तय करता है। मुझे एक बेचारी लड़की के मामले की जानकारी है। उसकी हत्या यह आरोप लगाकर की गई थी कि उसके रहने-सहने का ढंग इस्लाम विरोधीहै ।आरोप लगाने वाले ने ही इस बारे में फैसला किया। उस बच्ची के पिता कोखुले आम विवश होकर कहना पड़ा कि उसके खिलाफ लगाया गया आरोप सही है। वह बेचारा और करता ही क्या। यदि वह ऐसा न कहता तो उसका वही अंजाम होता जो उसकी बिटिया का हुआ था। आप ऐसे कितने अपराध होने देंगे?

इस समय फैले हुए गुस्से और ताव का उफान जब खत्म हो जायेगा आपको पता चलेगा कि आपके साथ कपट किया गया है, धोखा किया गया है। अगर

आप शांति तथा गंभीरता से विचार करें तो आपके साथ चलाई जा रही चाल की तमाम बातें समझ में आ जायेंगी। आप महसूस करेंगे कि आप ऐसे दुश्मन की कल्पना कर रहे हैं जिसका अस्तित्व ही नहीं है और आपको ऐसे मृगजाल की ओर दौड़ाया जा रहा है जहां 'काफिर' आपके खिलाफ तथाकथित षड्यन्त्र रच रहे हैं।

ऐसा समय आयेगा जब आप ऐसी बातों से ऊब जायेंगे लेकिन तब तक खुद पर ढाये गये जुल्मों का असर आप पर पड़ चुका होगा। थकावट बनी रहेगी। यह आपको कमजोर भी बना सकती है।

मजहब के संकीर्ण आधार पर पैदा किये गये बनावटी भाईचारे से नहीं, बल्कि प्रबुद्ध शासन व्यवस्था और अनुप्रेरित आध्यात्मिकता से ही आपको अपनी दशा सुधारने का अवसर मिलेगा और तब आपकी वास्तविक आजादी और आपकी सही प्रगति के नये युग की शुरुआत होगी। हमारा पुराना इतिहास बताता है कि इस समय तात्कालिक आवश्यकता इस बात की है कि भारत में सुधार किये जायें उसकी शासन व्यवस्था का कायाकल्प किया जाये और उसके अन्दर ही ऐसे कश्मीर को फलने-फूलने दिया जाये जिसमें सुधार किये गये हों और जिसका कायाकल्प किया गया हो। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो दोनों की हालत गई गुजरी हो जायेगी।

कालान्तर में हमारे बीच पूर्वाग्रह पैदा हुए, अप्रीति फैली। उसे दूर करने के लिए मैंने एक ऐसी न्यायसंगत स्थिति पैदा करने की कोशिश की जिसमें आपको नया नेतृत्व विकसित करने का उचित अवसर मिले या आप पुराने नेताओं को सबक सिखा कर उन्हें एक और मौका दें तथा विकास के नये ढांचे और आध्यात्मिक धर्मनिरपेक्षता अर्थात सही धर्मनिरपेक्षता पर आधारित एक मानवीय और संतुलित व्यवस्था के लिए काम करें जिसके नैतिक मूल्य धर्म की आधार-भूत बातों पर टिके हों—उन आधारभूत बातों पर जिनके बारे में नंद रिशी और लालदेद ने कहा था—"अल्लाह एक है, उसे सैकड़ों नामों से पुकारा जाता है। घास का एक ऐसा पत्ता नहीं है जो उसकी उपासना न करता हो।"

परन्तु ऐसी बातों के लिए यह समय उपयुक्त नहीं। आत्माविहीन भारतीय राज्य व्यवस्था ने अपने जहरीले बाणों से मुझ पर बार-बार हमला किया। मैं आहत हृदय से राज्य को छोड़ रहा हूं। ऐसा विध्वंस और विघटन की शक्तियों का एक छोटा-मोटा अपराध माना जा सकता है। परन्तु उन्हें इस अपराध के लिए माफ नहीं किया जा सकता कि उन्होंने लोगों की सामूहिक यन्त्रणा को बढ़ा दिया है—मुझे पूरा भरोसा था कि मैं कुछ महीनों में ही इस यन्त्रणा को समाप्त कर सकूंगा।

इस पत्र में मैं वे सब बातें नहीं लिख सकता जो हो चुकी हैं, हो रही हैं और भविष्य में हो सकती हैं। एक दिन इसके बारे में अवश्य लिखूंगा। आप उसे पढ़-कर उसकी सचाई पर गौर कर सकते हैं।

मेरी कामना है कि यहां जल्दी शांति स्थापित हो और आपको वर्तमान मुसीबतों से निजात मिले।

भवदीय
जगमोहन

नई दिल्ली में त्यागपत्र देने के बाद मैंने गृहमंत्री और प्रधानमंत्री से अलग-अलग मुलाकात की। मेरी भावनाओं को जो आघात पहुंचा उन पर मरहम लगाने की दोनों ने कोशिश की, मेरी सेवाओं की सराहना की और कहा कि मैं राज्य सभा में उपयोगी काम कर सकूंगा।

राज्य व्यवस्था की जो स्थिति थी उसे मैं ठीक नहीं समझता था। इस पर भी समाचार-पत्रों में प्रधानमंत्री वी० पी० सिंह का यह वक्तव्य पढ़कर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ कि—"जगमोहन ने खुद ही पदत्याग किया है।" मैंने ऐसा कुछ नहीं किया था। ऐसा वक्तव्य देने में उनके सामने क्या कोई राजनैतिक बाध्यता थी ? या वे अपने मंत्रिमण्डल के साथियों तथा विभिन्न लोगों, विशेष रूप से जम्मू क्षेत्र के लोगों के विरोध को कम करना चाहते थे ? बाद में केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री ने कहा—"जगमोहन ने प्रशंसनीय काम किया है। हम मंत्रिमंडल में जो कुछ करते हैं वह सब का सब सही नहीं होता।"[1] वी० पी० सिंह ने भी स्थिति में संतुलन स्थापित करने के लिए जार्ज फर्नांडीज़ के अधीन स्थापित काश्मीर सम्बन्धी विशेष कक्ष को तथा सर्वदलीय परामर्शदात्री समिति को 26 मई को भंग कर दिया।

राज्यसभा की मेम्बरी के बारे में मैं हिचक रहा था। अन्त में मैंने उसे स्वीकार करने का निर्णय लिया। ऐसा फैसला करने का कारण यह तो था ही कि मुझे सुरक्षा मिल सकेगी, इसके अलावा मुझे लगा कि सदस्य बनने से मैं राज्यसभा के मंच से सत्य की लड़ाई लड़ सकूंगा। परन्तु इस काम में भी मुझे निराशा होने वाली थी। मैंने पूरी तरह से यह महसूस नहीं किया था कि सभी भारतीय संस्थाओं की आत्मा और उनमें अन्तर्निहित प्रेरणाओं का स्रोत ही सूख गया है। सब सूखे की स्थिति का अनुभव कर रहे थे। राज्य सभा इसका अपवाद नहीं है।

राज्यसभा में बाधा

'काश्मीर की स्थिति पर जान-बूझकर दी गई गलत सूचना' के बारे में 'विशेष' उल्लेख करने के लिए मुझे 30 मई की सुबह राज्यसभा के सभापति की इजाजत मिली।

मैंने अपने वक्तव्य की शुरूआत इस तरह की—

[2]"मैं निवेदन करना चाहता हूं कि काश्मीर के बारे में बहुत-सी गलत खबरें जान-बूझकर फैलाई जा रही हैं। मुझे आशा है कि इस देश का शासन, समाचार-पत्रों में छपवाई गई बातों और गलत जानकारी देने की तकनीक से नहीं चलेगा। यदि आप काश्मीर के बारे में सचाई जानना चाहते हैं तो मैं सुझाव दूंगा कि काश्मीर की स्थिति के सभी पहलुओं की जांच करने के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का एक पैनल बनाया जाये।"[3]

मैं आगे क्या कहना चाहता हूं इसे भांप कर ही शायद आर० के० धवन और

---

1. दि सण्डे जून 24-30, (पृष्ठ 24)
2. राज्य सभा की कार्यवाही 30 मई, 1990 (पृष्ठ 546)
3. राज्य सभा की कार्यवाही 30 मई, 1990 (पृष्ठ 572)

कांग्रेस (इ) के कुछ दूसरे सदस्यों ने मेरे भाषण में बार-बार विघ्न डाला। काफी कोशिश करने के बाद मैंने अपना वक्तव्य जारी रखा—

"मेरा निवेदन है कि काश्मीर के बारे में जो गलत जानकारी फैलाई जा रही है इसको ध्यान में रखते हुए, काश्मीर के सभी पहलुओं अर्थात् उसकी पृष्ठभूमि, परिस्थितियों और तथ्यों की जांच करने के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का एक पैनल नियुक्त किया जाये। मेरे राज्यपाल बनने के बाद जो भी सही या गलत काम हुए हों उनकी जांच कराने का काम भी उस आयोग को सौंपा जाना चाहिए। इससे अधिक न्यायसंगत बात, दूसरी नहीं हो सकती। मौलवी की हत्या अथवा उसके बाद और पहले हुई घटनाओं की जांच करने का काम भी आयोग को सौंपा जाना चाहिए ताकि सही बात सामने उभर कर आ सके।"[1]

मेरे वक्तव्य में फिर से बाधा डाली गई। बार-बार दृढ़ता से बाधाएं डालने की कार्यवाही, पीठासीन अधिकारी के ऐसा कहने के बाद भी नहीं रुकी—"आप उन्हें अपना एक वाक्य भी पूरा नहीं करने दे रहे हैं।" यह जानकर कि वरिष्ठ लोगों के सदन ने भी बाधाएं डालने की नई संस्कृति अपना ली है और तर्क देने की बजाय चिल्लाना अधिक कारगर होता है, मैंने इन शब्दों के साथ वक्तव्य देने का प्रयास समाप्त किया।

"मैं अब नहीं बोलूंगा (बाधा) आप नहीं चाहते कि कोई भी सदस्य बोले। मैं अब वक्तव्य नहीं देता। (बाधा)

मैं इसका घोर विरोध करता हूं। वे मुझे नहीं सुन रहे हैं। इसलिए मैं बैठ जाता हूं (बाधा)।"

उसी दिन (30 मई) नेशनल कांफ्रेंस के सांसद, एस० ए० सलारिया ने सुरक्षा बलों की ज्यादतियों के बारे में राज्य सरकार के 137 अधिकारियों द्वारा 'वर्ल्ड फोरम' से की गई शिकायत के बारे में 'विशेष' उल्लेख किया। उन्होंने ऐसी कई किस्म की आधारहीन बातें कहीं। किसी ने उनके वक्तव्य में बाधा नहीं डाली। उनसे किसी ने यह नहीं पूछा कि उन अधिकारियों ने केन्द्रीय सरकार, अथवा संसद या किसी अन्य राष्ट्रीय संस्था से शिकायत करने के बजाय एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच से शिकायत क्यों की। किसी ने सलारिया की मंशा और उन अधिकारियों की मंशा पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जो अमानुल्ला की लकीर पर चल रहे थे जिन्होंने ऐसी ही अपील 'वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस' से की थी।

उक्त घटना से न केवल यह पता चला कि हमारी संसदीय संस्थाओं की सेहत बिगड़ गई है, उससे न केवल राजनैतिक पक्षपात और दुहरे मापदण्डों का प्रदर्शन हुआ बल्कि उससे यह भी सिद्ध हुआ कि कटु सत्य का सामना करने और दुखद वास्तविकताओं की चुनौतियों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति का घोर अभाव है।

शाम को मैंने अपने उन विचारों को जाहिर करने के लिए एक प्रेस कांफ्रेंस की जिन्हें मैं राज्य सभा में व्यक्त करना चाहता था।

---

1. राज्य सभा की कार्यवाही 30 मई, 1990 (पृष्ठ 574)।

गलत सूचना देना जारी रहा

पद छोड़ने के बाद भी, गलत सूचनाएं फैलाने वालों ने मुझे नहीं बख्शा। मैं केवल एक उदाहरण दूंगा। 3 को अगस्त डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' को दिये गये इण्टरव्यू में एक ऐसी बात कही जो बिल्कुल गलत थी। मैंने सही स्थिति दर्शाते हुए सम्पादक को एक चिट्ठी लिखी। मेरा वह पत्र उस दैनिक समाचार-पत्र में छपा क्योंकि अपने दावे के समर्थन में मैंने अकाट्य तथ्य दिये थे इस वजह से डॉ० फारूख अब्दुल्ला उस पत्र का कोई उत्तर नहीं दे सके। उनकी जगह, श्रीमती जया जेतली ने उत्तर दिया। 'टाइम्स आफ इण्डिया' को उन्होंने एक पत्र लिखा जिसमें मेरी सार्वजनिक छवि बिगाड़ने के लिए उन्होंने बिल्कुल गलत जानकारी दी। उनके पत्र का जो उत्तर मैंने 8 सितम्बर को दिया उसके कुछ अंशों को नीचे उद्धृत कर रहा हूं जिससे श्रीमती जेतली के आरोपों के स्वरूप का पता चलेगा तथा यह भी मालूम हो जायेगा कि उन्होंने तोड़-मरोड़ कर कितनी जानकारी दी।

"श्रीमती जेतली के पत्र में, तोड़-मरोड़ कर कही गई बातों और अपवचनों के सिवाय कुछ नहीं है। जनता के दिमाग में भ्रम पैदा कर सत्य को छिपाने का वह एक सोद्देश्य प्रयास है। वे राज्य सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी की पत्नी हैं। उन्होंने बढ़ाये गये मेरे वेतन के बारे में, जान-बूझकर साभिप्राय गलत तथ्य दिये हैं। 1987 में संसद ने एक कानून पास कर राज्यपालों की तनख्वाह 1 अप्रैल 1986 से, प्रति मास 5500 से बढ़ा कर 11,000 रुपये कर दी थी। देश के दूसरे राज्यपालों की तरह मुझे भी इस बढ़ाये गये वेतन का लाभ मिला। इसके लिए किसी पर कोई दबाव डालने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके अलावा राज्यपाल के वेतन के बारे में राज्य की विधान सभा में कोई बिल पास करने के लिए भारत के राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक होती है। उनका क्या यह तात्पर्य है कि मैंने राष्ट्रपति पर दबाव डाला? जम्मू और काश्मीर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और मुख्य न्यायाधीश के वेतन भी इसी प्रकार बढ़ाये गये थे।

गलत जानकारी देने की भी कोई हद होनी चाहिए। जब मैं दूसरी बार राज्यपाल बनकर गया मैंने कोई वेतन नहीं लिया। मेरे दिमाग में यह बात बिल्कुल साफ थी कि मैं दूसरे कार्यकाल के लिए काश्मीर नहीं जा रहा हूं बल्कि एक गम्भीर राष्ट्रीय संकट को हल करने में सहायता देने के लिए जा रहा हूं। इस प्रकार मैं एक बड़ी राशि राज्य सरकार के खजाने में छोड़ आया और इस सबका इनाम मुझे इस प्रकार दिया जा रहा है। मुझ पर गलत आरोप लगाये जा रहे हैं और वे भी ऐसे निर्णय के बारे में हैं जो 1987 से सभी राज्यपालों के बारे में लिया गया था। फारूख सरकार द्वारा[1] 70 कट्टर उग्रवादी रिहा किये जाने के प्रश्न को उलझाने के लिए उन्होंने यह गलतबयानी की है कि मैंने इरफान चिश्ती और 25 अन्य लोगों को रिहा किया था। इस मामले में पूरी तरह आश्वस्त होने के वास्ते मैंने आज जम्मू-काश्मीर के पुलिस महानिदेशक और सी० आई० डी० पुलिस के अतिरिक्त महानिदेशक से फोन पर स्थिति की जान-

---

1. अध्याय 10

कारी सी। दोनों ने इस बात की पुष्टि की कि मैंने ऐसे लोगों की रिहाई का कोई आदेश नहीं दिया था।

सिर्फ दोष खोजने के लिए उन्होंने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 को जम्मू-कश्मीर में लागू करने का प्रश्न खड़ा किया था। केन्द्रीय सरकार के अनुरोध पर उस अनुच्छेद को लागू करने के बारे में 1986 में मैंने अपनी सहमति दी थी। वैसा करना कोई गलत काम नहीं था। प्रसंगवश मार्च 1987 में राज्य में डॉ० फारूख अब्दुल्ला की सरकार बनी। तब उनको या राजीव गांधी को मेरे 1986 के फैसले को पलटने की हिम्मत क्यों नहीं हुई? सीधी बात तो यह है कि मेरी आलोचना एक झूठा प्रचार मात्र था।

श्रीमती जेतली का यह कहना भी गलत है कि मैं अब राजनेता बन गया हूं। सांसद बनने के बाद भी मैं किसी राजनैतिक दल से नहीं जुड़ा हूं। मैं तो केवल सत्य का प्रचार कर रहा हूं।

गलत जानकारी का अभियान चलाने वालों के काम करने का ढंग इस प्रकार का था। जब अकाट्य तथ्यों से मैं उनके आधारहीन आरोपों का खंडन करता और अपने आरोपों को दुहराते रहना उनके लिए मुश्किल हो जाता तो वे नये आरोप गढ़ लेते तथा जनता को गुमराह करने तथा मेरी छवि बिगाड़ने के लिए ऐसे मसले उठाते जिनका उन आरोपों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। मिसाल के तौर पर ऊपर दिये गये मामले में श्रीमती जया जेतली ने वेतन, इरफान और दूसरे लोगों की रिहाई तथा अनुच्छेद 249 के बारे में नये आरोप गढ़े।

राजीव गांधी को लिखी गई मेरी खुली चिट्ठी के बारे में ऊपर बताई गई कार्यप्रणाली दुहराई गई। तीन हफ्तों तक उसका कोई जवाब नहीं आया। उसके बाद जनता को गुमराह करने के लिए डॉ० फारूख अब्दुल्ला से कहा गया कि वे उस चिट्ठी का जवाब दें। उन्होंने अंधाधुंध आरोप लगाये। उनके पास रत्ती भर भी ठोस साक्ष्य नहीं थे। 9 मई, 1991 को दिये गये मेरे उत्तर में से लिया गया निम्न उद्धरण इसका एक उदाहरण है—

"डॉ० फारूख अब्दुल्ला का यह कहना कि मैं राजभवन में नहीं सोता था बल्कि कैंटूनमेंट में सोता था, कोरी मनगढ़त बात है। सही बात का पता आर्मी कमांडर, कोर कमांडर, सेना के किसी अफसर, सिक्योरिटी और राजभवन के कर्मचारियों से चलाया जा सकता है। क्या डॉ० फारूख अब्दुल्ला और गलत जानकारी फैलाने की कला में उनको राह दिखाने वाले लोग उन मकानों का नम्बर, उन जगहों का नाम, तारीखें और दूसरी कोई ठोस जानकारी दे सकते हैं जिससे कैंटूनमेंट में सोने के बारे में उनके आरोप की पुष्टि हो सके।"

अजीब पहलू

इस स्थिति का एक अजीब पहलू यह था कि केन्द्रीय सरकार के कुछ तत्वों का मेरे बारे में गलत धारणा बनाये रखने में निहित स्वार्थ पैदा हो गया था क्योंकि मुझ पर गलत आरोप लगाने में वे खुद भागीदार थे। पदाधिकारी बनने पर उन्हें पता चला कि सरकारी रिकार्डों में जो कागज-पत्र थे उनसे सिद्ध होता था कि उनके आरोप बेबुनियाद थे। मिसाल के तौर पर मैंने गृह राज्यमंत्री

सुबोध कांत सहाय और प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर को कई पत्र लिखकर उनसे उस प्रशासनिक जांच के परिणामों को प्रकट करने के लिए कहा था जो दो इंस्पेक्टर जनरलों ने मौलवी फारूक के तथाकथित जनाजे पर गोलियां चलाने के बारे में की थी। चूंकि जांच के परिणाम उन आरोपों से मेल नहीं खाते थे जिन्हें चन्द्रशेखर खुद शुरू में पहले लगाते रहे थे इसलिए मेरी चिट्ठियों का कोई उत्तर नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में मैं 25 सितम्बर, 1990 के अपने पत्र को नीचे दे रहा हूं जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

"प्रिय श्री सुबोध कांत,

आपको याद होगा कि संसद के पिछले सत्र में काश्मीर पर हुई चर्चा के दौरान, जनता दल के एक सांसद ने मौलवी फारूक के तथाकथित जनाजे पर गोलियां चलाये जाने वाला सवाल उचित ढंग से उठाया था। उन्होंने कहा था कि इस घटना के बारे में दो तरह की बातें कही जा रही हैं और सरकार को, विशेष रूप से ऐसे समय सही बात इसलिए बतानी चाहिए, क्योंकि उसके बारे में प्रशासनिक जांच पहले ही पूरी की जा चुकी है।

वाद-विवाद का उत्तर देते हुए आप ऊपर उठाये गये सवाल का जवाब नहीं दे सके। मैं आपका आभार मानूंगा अगर आप इस बारे में सही स्थिति की जानकारी मुझे दें और जनता को भी दे दें। ऐसा करने से काश्मीर के बारे में गलत जानकारी देने का जो अभियान चल रहा है उसे रोकने में सहायता मिलेगी।

भवदीय

जगमोहन"

मैंने प्रधानमंत्री और गृह राज्यमंत्री से प्रार्थना की कि वे 'काश्मीर वार' और 'काश्मीर इम्प्रिजंड' जैसी मानव अधिकार संस्थाओं की रपटों में सुरक्षा बलों और मेरे प्रशासन पर लगाये गये आरोपों में से प्रत्येक आरोप पर सरकारी बयान जारी करें। मैंने इस मुद्दे को राज्यसभा और गृह मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति में भी उठाया। मैं इस समिति का सदस्य हूं। समिति की एक बैठक में 'जान-बूझकर फैलाई जा रही खबरों' के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए मैंने उस घटना का उदाहरण दिया जिसमें स्कूल बस में बैठे बच्चों की रक्षा करने के लिए आर्मी गार्डों ने गोलियां चलाई थीं। प्रधानमंत्री ने वायदा किया कि वे उस विषय पर एक नोट तैयार करवायेंगे। परन्तु एक बार फिर उनका वायदा पूरा नहीं किया गया। शायद उनका इरादा उसे पूरा करने का था ही नहीं। जब प्रधानमंत्री, ने इस पद का ग्रहण नहीं किया था उस समय वे खुद इन झूठी और विशेष मंशा से दी गई रिपोर्टों[1] के आधार पर आरोप लगाते थे। इस सम्बन्ध में मैं 3। जनवरी 1991 के अपने एक पत्र को नीचे दे रहा हूं जो स्वयं स्पष्ट है—

"प्रिय प्रधानमंत्री,

आप कृपया याद करें कि सलाहकार समिति की पिछली बैठक में मैंने सुझाव दिया था कि 'इण्डिया-काश्मीर वार', 'काश्मीर इम्प्रिजंड' 'पी० यू० सी० एल०', 'सिटीजन्स् फार डेमोक्रेसी' और 'काश्मीर ब्लीडिंग' जैसी मानव अधिकार आदि

---

1. अध्याय 13, डर से दुबके कबूतर और बेसहारा समुदाय—काश्मीरी पंडित

संस्थाओं की रपटों में सी० आर० पी०, बी० एस० एफ० और सेना सहित सरकारी एजेंसियों द्वारा काश्मीर में की गई तथाकथित ज्यादतियों और नृशंसताओं की जिन विभिन्न घटनाओं का जिक्र किया गया है उनके बारे में सरकार सही जानकारी दे। सलाहकार समिति के समक्ष तथ्य रखने के लिए आप राजी हो गये थे। मुझे आशा है कि समिति की 5 फरवरी को होने वाली अगली बैठक में तथ्य पेश कर दिये जाएंगे।

भवदीय
जगमोहन"

लापरवाह रिपोर्टिंग

काश्मीर के बारे में गलत जानकारी का एक कारण यह है कि समाचारपत्रों में लापरवाह और नासमझ संवाददाताओं द्वारा रिपोर्टें दी जाती हैं। उन पत्रकारों की बात छोड़ दीजिए जिनका एकतरफा झुकाव होता है (जो निष्पक्ष नहीं होते) कुछ ऐसे संवाददाता भी हैं जिन्हें बुनियादी बातों की भी जानकारी नहीं होती, फिर भी वे साधिकार उनके बारे में लिखते हैं। उदाहरण के तौर पर एक साप्ताहिक पत्रिका में सुश्री शिराज सिधवा ने काश्मीर पर एक लेख लिखा। उससे पता चलता है कि उन्हें मामूली आम बातों की जानकारी भी नहीं है। वे यह नहीं जानतीं कि जिस दिन मैं काश्मीर पहुंचा उस दिन राज्य की विधान सभा भंग नहीं की गई थी। यह बात तो उसके बहुत बाद हुई थी। न ही उनको यह पता है कि राज्य में राज्यपाल शासन की मांग मेरे पूर्वाधिकारी ने की थी। काश्मीर में मेरे पहुंचने के पहले ही उस पर राष्ट्रपति अपनी सहमति दे चुके थे। फिर भी समाचार पत्रों ने काश्मीर के बारे में उनके लेखों को छापने में बड़ी उदारता बरती और इस तरह जनता के मन में इस बारे में गलत धारणाएं फैलाई।

संवाददाताओं में एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति यह पनपी है कि उन मामलों के बारे में भी, जिनको गलत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज या लिखित रिकार्ड मौजूद होते हैं, वे सुनी-सुनाई बातों और अपना उल्लू सीधा करने के उद्देश्य से दी गई भेंटवार्ताओं पर विश्वास कर लेते हैं। पत्रकारिता को *'इतिहास का प्रथम मसौदा'* माना जाता है। जिस तरह की रिपोर्टिंग कुछ समाचार-पत्रों में हो रही है उसको देखते हुए क्या उसे इतिहास के शिशु को मारने का पहला प्रयास नहीं कहा जाना चाहिए? राजनैतिक घटनाओं का विश्लेषण करने वालों द्वारा लिखी गई अधिकांश समीक्षाएं गलत तथ्यों, लापरवाह रिपोर्टिंग, निहित स्वार्थ वाले लोगों के इंटरव्यू और मनगढ़न्त कहानियों पर आधारित होकर लिखी गई थीं।

क्षति

गलत सूचनाओं और तोड़-मरोड़कर दी गई जानकारी के तेज औजारों से मेरी शक्ति को खत्म कर देने के बाद वी० पी० सिंह और चन्द्रशेखर सरकारों को मनोबल की हानि करने के सिवाय कुछ नया हासिल नहीं हुआ। इसके विपरीत

धकेलने के बाद उन बमों का विस्फोट कर दिया गया जिससे उनके शरीर के चिथड़े-चिथड़े हो गये।

24 जून को भारतीय जीवन बीमा निगम के तीन युवा प्रोबेशन अफसरों का अपहरण कर एक छोटे से विश्राम गृह में रखा गया। उसके बाद उस भवन में आग लगा दी गई जिसकी वजह से अत्यंत यंत्रणा पूर्वक दो अफसर जलकर राख हो गये और उससे आटो डे फा की दर्दनाक तस्वीर ताजा हो गई। हालांकि तीसरा अफसर अत्यधिक जख्मी हो गया था फिर भी वह भाग निकला।

27 जून को सात इस्रायली और एक डच महिला पर्यटक का, एक हाउस बोट से, एक उग्रवादी गिरोह, पसादरंन इन्कलावी इस्लाम ने अपहरण कर लिया। इस गिरोह का इखवानुल मुसलमीन से सम्बन्ध है। महिला पर्यटक को तो छोड़ दिया गया परन्तु इस्रायलियों को गोली मारने के इरादे से रस्सियों से बांध दिया। अदम्य साहस और ठंडे दिमाग से काम करने की क्षमता का परिचय देते हुए उन्होंने हाथों में बांधी गई रस्सियों को खोला और उन लोगों पर निहत्थे हमला किया जो उनकी हत्या करना चाहते थे। उन्होंने दो कलाश्निकोव छीन लीं और दो आतंकवादियों को मार डाला। बाकी आतंकवादी भाग गये थे। एक इस्रायली ऐरेज काहाना मारा गया और दूसरे ने पास के मकान में शरण ले ली जिसमें रहने वाले लोगों ने उसे जम्मू और काश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट के सदस्यों के सुपुर्द कर दिया। बाद में उसे रिहा कर दिया गया।

27 जून को इंडियन आयल कारपोरेशन के कार्यकारी निदेशक के. दोरई स्वामी को अपहृत कर लिया गया। वे श्रीनगर की निरीक्षण यात्रा पर वहां गये थे। इस घटना के पचास से भी अधिक दिनों के बाद वे इखवानुल मुसलमीन की कैद से छूट सके।

इसके पहले दिसम्बर, 1991 को 88वर्षीय वृद्ध मौलाना मसूदी की नृशंस हत्या कर दी गई। 8 मार्च को सैफुद्दीन सोज सांसद की पुत्री श्रीमती नाहिदा इम्तियाज का अपहरण किया गया। उन्हें तभी छोड़ा गया जब अपहरणकर्ताओं ने पांच आतंकवादी छुड़वा लिए, जिनमें एक खतरनाक आतंकवादी मुश्ताक अहमद खां भी था। 9 अप्रेल को पूर्व विधायक मोहम्मद शावन भट की हत्या की गई। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और जी० एम० शाह के मन्त्रिमण्डलों के मन्त्री पीर हिसान-उद्दीन वांदे की उनके घर पर ही 4 जून को गोली मार कर हत्या की गई। 17 जून को पुलिस के एक स्टेशन हाउस अफसर और उसके चार अंगरक्षकों का अपहरण किया गया।

ऐसी खौफनाक घटनाओं से क्या पता चलता है? क्या यह बात साफ नहीं होती कि विभिन्न आतंकवादी संगठनों पर भारी दबाव डालने से पहले जो लाभ हुआ था उसकी बलि राजनैतिक अवसरवादिता तथा गलत प्रचार के अनैतिक अभियान पर चढ़ा दी गई। करोड़ों रुपये बर्बाद हुए हैं अनेक अच्छे लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। चालू वर्ष (991) के पहले पांच महीनों में सुरक्षा बलों पर 361 हमले किये गये और 70 जवान मारे गये। जनवरी में आतंकवादियों ने 21 नागरिक मारे, फरवरी में 29 और मार्च में 46 मारे गये। आतंकवादी गिरोहों की संख्या बढ़कर लगभग 200 तक पहुंच चुकी है।

मारे गये लोगों की संख्या उन्हें जलाने, उनका अपहरण करने और उनकी

हत्या करने की अपेक्षा अधिक संगत बात यह है कि घाटी में नकारात्मक माहौल पैदा हो गया है और यह आम धारणा घर कर गई है कि सरकार पर दबाव डाल कर किसी भी बात के लिए उसे राजी किया जा सकता है, जैसा कि सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल द्वारा किया गया था और जघन्य अपराध करने वाले आतंकवादियों को रिहा करवाया गया था। अनेक इलाकों में उग्रवादियों में सरकारी विभागों पर हुकुम चलाने की क्षमता आ गई है। ऐसी खबरें मिली हैं कि कुछ आतंकवादी संगठन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकारी धन बटोर रहे हैं और अधीनस्थ अधिकारियों को ओर से आदेश दे रहे हैं। सरकारी नौकरियों में नियुक्ति और पदोन्नति, व्यावसायिक कालेजों में दाखिले और ऋण देने जैसे मामलों में उनकी आज्ञा चलती है। वे इम्तहानों में सामूहिक नकल करवाने और शिक्षकों और परीक्षा लेने वाली संस्थाओं से अच्छे परिणाम दिलाने की व्यवस्था करते हैं।

23 मार्च 1991 को पाकिस्तान दिवस मनाया गया था और अनेक जगहों पर पाकिस्तानी झंडे फहराये गये थे।[1] सीमा सुरक्षा बल के महानिदेशक श्री एच० पी० भटनागर जैसे व्यक्ति ने कहा[2] "काश्मीर में उग्रवादी अधिक उद्दंड होते जा रहे हैं। वे सुरक्षा बलों से ग्रामीण इलाकों में भी गोली बारी युद्ध करते हैं, जहां पहले ऐसी घटनायें नहीं होती थीं।"

जून, 1990 के बाद काश्मीरी मुसलमान भी जम्मू और नई दिल्ली में रहने के लिए घाटी से भागने लगे हैं। अब तक लगभग 20,000 मुसलमान परिवार घाटी से पलायन कर चुके हैं। 'दि हिन्दू' समाचार-पत्र ने 9 जुलाई, 1991 संस्करण में अपने सम्पादकीय में ठीक ही लिखा था "पिछले कई महीनों में काश्मीर के सम्बन्ध में कोई सकारात्मक या अन्तिम नीति के न होने की वजह से राज्य में निश्चित रूप से अराजकता बढ़ गई है।"

इससे भी अधिक गम्भीर घटनायें हुई हैं। सुरक्षा बलों द्वारा ज्यादतियां किये जाने के बारे में उन पर आरोप लगाये गये हैं। उन पर यह दोष मढ़ा जा रहा है कि उन्होंने 1 अक्तूबर, 1990 को हंडवारा में 361 भवन जलाये और 17 लोगों को जान से मारा। 6-7 अक्तूबर को श्रीनगर के बीच के क्षेत्र में 150 घर जलाये और 17 लोगों की जानें ली। 12 अक्तूबर को सोपोर में सारे इकबाल मार्केट को जला कर खाक किया और महीने के अन्तिम सप्ताह में अनन्तनाग जिले में लगभग 500 मकानों में आग लगाई। ऐसी घटनाओं के बारे में लगाये गये आरोप गलत हो सकते हैं या हो सकता है कि उनका बखान बढ़ा चढ़ा कर किया गया हो जैसा कि मेरे कार्यकाल के दौरान हुआ था। परन्तु एक निर्णायक अन्तर दिखाई देता है। पहले प्रचार करने वाले वैयक्तिक रूप में मुझे गालियां देते थे परन्तु बाद के चरण में वे मुख्य रूप से सुरक्षा बलों के बारे में भला बुरा कहने लगे हैं। मेरी आलोचना इसलिए की जाती थी कि मैंने सामान्य आपराधिक कानून के तहत सीमा सुरक्षा बलों और सेन्ट्रल रिजर्व पुलिस को अधिकार दिये थे जो देश के बाकी राज्यों में ऐसे बलों को प्राप्त हैं जबकि इस

---

1. टाइम्स ऑफ इंडिया, 24 मार्च 1991
2. इंडियन एक्सप्रेस, 30 जून 1991

समय, 6 जुलाई 1990 को लागू किये गये आर्म्ड फोर्सेज (जम्मू एण्ड काश्मीर) स्पेशल पावर आर्डिनेन्स, 1990 के तहत उन्हें असाधारण अधिकार दिये गये हैं।

ये सब तथ्य क्या दर्शाते हैं? अधिक लोग मारे जा रहे हैं। खर्च बेतहाशा बढ़ गया है। अपहरण की वारदातें बढ़ गई हैं और अपहरण कर्ता अपनी शर्तें मनवा लेते हैं। जनता में यह भावना घर कर गई है कि किसी भी बात की सहमति पाने के लिये सरकार को दबाया जा सकता है, वह अपने कर्मचारियों की अवज्ञा को भी कबूल कर सकती है। उग्रवादियों को मनोवैज्ञानिक लाभ हुआ है और उनका हुकुम विशेष रूप से निचले और मध्यम स्तर के अधिकारियों पर चलता है। केन्द्र सरकार की निधि और आर्थिक सहायता के रूप में आम जनता को दी गई वित्तीय सहायता का बड़ा भाग रिस कर उनके हाथों में चला जाता है।

काश्मीर की वर्तमान परिस्थितियों में सरकार और राजनैतिक दलों का प्राथमिक उत्तरदायित्व यह है कि वे व्यावहारिक और निश्छल बनें। अभाग्यवश चालबाज़ी और ढोंगी दावों के कारण वे अपने इस दायित्व को भूल गये हैं। शासन व्यवस्था स्थापित करने और गलत जानकारी से पैदा हुए कुहरे को हटाने के पहले, उदार बनने के कारण काश्मीर और उसकी आम जनता की यातनाएं लम्बी खींचने के लिए ध्वंसकों को सीधी सहायता मिली है। जो समस्या व्यावहारिक और सही रास्ता अपना कर हल की जा सकती थी उसे अनावश्यक रूप से लम्बा खींचने दिया गया है—उसमें सड़ांधपूर्ण गतिरोध आ गया है—ऐसा गतिरोध जिसका मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक लाभ अस्थिरता पैदा करनेवाली ताकतों को मिलेगा। अस्थायी काम में वे भले ही थक गये हों या उन्हें राहत क्यों न मिली हो। समस्या को लम्बे समय तक खींचने से पाकिस्तान को इस मसले का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने के लिए अधिक मौका मिलेगा।

जैसा कि अध्याय 4 में बताया गया है सरदार पटेल ने एक बार कहा था—"यदि हमें अपनी बाजुओं पर भरोसा नहीं है तो राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखने का हमें कोई हक नहीं है।" मुझे यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि जब तक हम सड़े गले घावों सहित जिंदा रहना कबूल नहीं करेंगे और इतिहास को नियंत्रित करने वाले चक्र पर पूरा नियंत्रण करना नहीं सीखेंगे तब तक एकजुट राष्ट्र के रूप में हमारा अस्तित्व नहीं रहेगा।

सत्रहवां अध्याय

भविष्य : इतिहास का गतिशील चक्र

पैरों में भारी चक्की के पाट बंधे हैं
गर्दन पर लकड़ी के लट्ठे का जुआ फंसा है
एक उसे तैरकर पार नहीं होने देगा
और दूसरा उसे डूबने भी नहीं देगा।

—वासवन्ना

पिछले अध्याय में मैंने काश्मीर की वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक अशान्ति पर प्रकाश डाला है और उस स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि किन ऐतिहासिक और समकालीन घटनाओं से यह अशान्ति पैदा हुई। समग्र परिप्रेक्ष्य में मैंने इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

भविष्य

काश्मीर का भविष्य क्या है और इस विकट स्थिति को कैसे सुलझाया जा सकता है? इस सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न पूछा जाना स्वाभाविक है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इन प्रश्नों का उत्तर बहुत ही सरल पाने की आशा की जाती है। क्या इसके लिए कठोर कदम अथवा नरम कार्यवाई करने से लाभ हो सकता है? अथवा प्रशासनिक कदम उठाए जाने या राजनैतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करना इस समस्या को हल करने में सहायक होगा? क्या संघीय ढांचा बनाए रखने अथवा अधिक स्वायत्तता देना स्थिति को सुलझाने के लिए सहायक होगा?

मैंने अब तक स्थिति का जो विवरण दिया है, स्थिति उससे भी और अधिक जटिल और अधिक गम्भीर है जितना कि हम समझते हैं। जब तक कि इन तथ्यों को पूरी तरह से समझ नहीं लिया जाता और उसके अनुसार कदम नहीं उठाए जाते तब इस स्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं सुलझाया जा सकता।

गलत आधार

ऐसा दिखाई देता है कि आज का भारत प्रत्येक क्षेत्र में मूलरूप से भटक

गया है। इसका कारण क्या है? मैंने अपने सेवाकाल में समकालीन भारतीय समाज को देखने और उसके आभ्यंतरिक मानस को समझने का प्रयत्न किया है। मैं छोटे-से-छोटे व्यक्ति से लेकर उच्च स्तर तक के लोगों के सम्पर्क में आया हूं। झोंपड़ी में रहने वाले से लेकर प्रधानमंत्री, सामान्य छोटी रेहड़ी लगाने वाले से लेकर सफल व्यापारी और निष्ठापूर्वक कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियों से लेकर शक्ति के मदांधं नौकरशाहों के सम्पर्क में भी आया हूं। मैंने राज्य की उन संस्थाओं के कार्य करने के भद्दे ढंग को भी देखा है जो अपने आपको मानवीय दृष्टिकोण से परिपूर्ण और समझदार समझती हैं। धर्म और मानवीय अधिकारों के नाम पर भयंकर अपराध होते हुए भी मैंने देखे हैं। मैंने यह भी देखा है कि ईमानदार लोगों पर अफवाहों और झूठ का कीचड़ उछाला गया है।

इसके साथ-साथ मैंने यह भी अनुभव किया है कि हमारे राष्ट्रीय ढांचे में कुछ आधारभूत कमियां हैं जिनके कारण समाज का लड़खड़ाना जरूरी-सा है। हमारी संस्थाओं, नियमों, कायदों, संविधान, प्रशासनिक संगठनों तथा हमारी सभी न्यायिक तथा विधायिका संस्थाओं में आध्यात्मिक और सामाजिक आधार की कमी होगी तो इनका निष्क्रिय और अपने कर्त्तव्य से उदासीन होना निश्चित है।

अपने अशांत वर्षों में जबकि मैं कार्यक्षेत्र में लगे रहते हुए आदेशों के लेखन आदि में व्यस्त रहा और अपने आपको संकटों से बचाता हुआ काम करता रहा तो भी मेरे मस्तिष्क के एक कोने में यह विश्वास काम कर रहा था कि जब तक हमारे सामाजिक विचारों को फिर से नया स्वरूप नहीं दिया जाता अथवा हमारी धार्मिक क्रियाओं में सुधार नहीं होता, जब तक आध्यात्मिक और सामाजिक व्यवस्था में आपसी तालमेल को नहीं समझा जाता और जब तक आमूल-चूल पुनर्जागरण या सुधार नहीं होता जिससे हमारी राजनीतिक दिशाओं को नया आधार मिले, नये समाजवाद की स्थापना हो, नयी तकनीकी और नये विचारों का वातावरण न हो तब तक हमारे देश का भविष्य अंधकारपूर्ण रहेगा और हमारा समाज अधिक शोषक, अधिक भ्रष्टाचारपूर्ण रहने के कारण समाप्ति के कगार तक पहुंच जायेगा।

जब मैं काश्मीर के सम्बन्ध में अपने अनुभव के आधार पर और देश की स्थिति के सम्बन्ध में अपने को अलग रखकर विचार करता हूं तो मुझे अपने ये विचार सही प्रतीत होते हैं कि जिस किसी भी क्षेत्र के सम्बन्ध में मैं विचार करता हूं मुझे अन्धकार के बढ़ते हुए साये प्रतीत होते हैं। मैं समकालीन भारत की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उसके सामने काश्मीर सहित सभी चुनौतियों को सही करने की योग्यता अथवा अयोग्यता पर भी प्रकाश डाल रहा हूं।

समकालीन वास्तविकता : आर्थिक स्थिति

1950 में विश्व की कुल उत्पादकता में भारत का 2% भाग था। 1980 में इसमें एक प्रतिशत की कमी हुई। 1950 में विकासशील देशों की कुल उत्पादकता में भारत का 12 प्रतिशत भाग था, 1980 में 5.4 प्रतिशत की कमी आई। औद्योगिक उत्पादन में जिसके सम्बन्ध में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें की जाती हैं, भिन्न स्थिति नहीं है। 1950 में भारत का औद्योगिक उत्पादन विश्व के कुल

उत्पादन का 2 प्रतिशत था। 1980 में 0.7 प्रतिशत रह गया। 1950 में तीसरे विश्व की औद्योगिक उत्पादन क्षमता में भारत का भाग 14 प्रतिशत था। 1980 में यह घटकर 4.6 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार विश्व के विदेश व्यापार मे 1950 से 1980 में यह 2 प्रतिशत से घटकर 0.5 प्रतिशत रह गया। इन आकड़ों से किसी को यह संदेह नही रहना चाहिए कि विश्व भर की स्थिति के मुकाबले ही नहीं वरन् विकासशील देशों की तुलना में भी हमारी आर्थिक प्रगति कमजोर और धीमी थी। एक ही ऐसा क्षेत्र है जिसमे हम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं — वह है विदेशों से ऋण लेने का क्षेत्र। इस समय हमारा विदेशी ऋण 710 करोड़ अरब डालर के पास पहुंच गया है। इस क्षेत्र में हमने अर्जेन्टीना को भी पीछे छोड़ दिया है और विदेशी ऋण की अधिकता के मामले में विश्व में हमारे देश का तीसरा नम्बर है। 1990-91 के अन्त तक बाहरी आभ्यंतरिक ऋण केन्द्र सरकार पर 3,49,699 करोड़ रुपये था। आभ्यंतरिक ऋण की पूर्ति नये कर्ज लेकर की जा रही है और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से और अधिक ऋण लेने का प्रयत्न भी हो रहा है। प्रत्येक कार्य के लिए ऋण लेने के कारण भारत कर्ज के जाल में फंस गया है। स्थिति ऐसी निराशापूर्ण हो गई कि संकट से निकलने के लिए 50 टन सोना गिरवी रखना पड़ा।

अधिकांश आर्थिक क्षेत्रों में हमारी उत्पादकता कम होती जा रही है। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक और तकनीकी कार्यविधि को लागू करने के सम्बन्ध में होने वाली देर बड़ी भयंकर है। इसमें तीन महीने से लेकर तीन साल तक का समय लग जाता है तब तक 300 से लेकर 600 प्रतिशत तक किसी भी कार्य का अनुमानित खर्चा बढ़ जाता है। राज्य द्वारा चलाये जा रहे 240 में से 200 उद्योग घाटे में चल रहे हैं।

1689-90 के मूल्य स्तर पर अनुमान किया जाता है कि काला धन तीन लाख करोड़ तक था और इसमे प्रतिवर्ष पचास हजार करोड़ की वृद्धि हो रही है। 1960-61 की बजाय 1990-91 मे इसमें 462 गुणा वृद्धि हुई। आज भी हमारे देश की 40 प्रतिशत जनता गरीबी की रेखा मे नीचे रह रही है। 1986 में प्रो० राजकृष्ण द्वारा किये गये अध्ययन से पता चलता है कि संवत् 2000 तक 3900 लाख भारतीय गरीबी रेखा के नीचे पहुंच जाएंगे। इस बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत को स्वतन्त्रता मिलने के समय देश की कुल जितनी आबादी थी, सन् 2000 तक उससे अधिक लोग गरीबी की रेखा से नीचे पहुंच जायेंगे।

सामाजिक समस्याएं

हमारी पुरानी सामाजिक समस्याओं का कोई हल नजर नही आ रहा जबकि और नयी समस्याएं उनमें जुड़ती जा रही हैं। विश्व भर में हमारे देश की साक्षरता का स्तर सबसे नीचा है। हमारे देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी अशिक्षित है। 6 से 11 साल के पाच सौ लाख बच्चे या तो स्कूल नहीं जाते अथवा एक-आध साल पढने के बाद स्कूल से अलग हो जाते हैं। बर्मा में 71 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है, इण्डोनेशिया में 75 प्रतिशत, लाओस में 84 प्रतिशत,

मलेशिया में 84 प्रतिशत, फिलीपीन्स में 86 प्रतिशत, थाईलैंड में 91 प्रतिशत, वियतनाम में 84 प्रतिशत और चीन में 80 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। शिक्षा के स्तर पर विश्व में भारत का स्थान 59वां है। इस शताब्दी के समाप्त होने तक विश्व में सबसे अधिक अशिक्षित भारत में ही होंगे।

बच्चों की स्थिति भी बड़ी दयनीय है। इस समय चार सौ पचास लाख बाल श्रमिक भारत में होटलों में अथवा कारखानों में काम करने में लगे हुए हैं। सात सौ बीस लाख बच्चे गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे हैं। डेढ़ करोड़ के लगभग बच्चे भिखारी हैं।

महिलाओं की अधिकांश संख्या अभी भी सामाजिक कुरीतियों के कारण प्रभावित है। 30 साल पहले दहेज पर प्रतिबन्ध लगाया था, परन्तु अभी भी यह बन्द नहीं हो सका। 1990 में दहेज के कारण 878 हत्याएं हुईं और 1479 ने आत्महत्या की। इसी वर्ष में महिला सम्बन्धी अपराधों की संख्या 43,700 थी, जिनमें 9517 बलात्कार, 11689 अपहरण और 20186 उन्हें तंग करने के केस थे। लड़कियों को अभी भी तरजीह नहीं दी जा रही। इनमें से अधिकांश को तो जन्म से पूर्व ही समाप्त कर दिया जाता है जो कि स्पष्टतः विज्ञान की नयी तकनीक का अनादर है। अध्ययन के आधार पर पता चला है कि आठ हजार गर्भपात, 7999 भ्रूण हत्याएं हुईं। शारीरिक रूप से महिलाओं को सताने के काम में कोई कमी नहीं आई।

परिवार नियोजन पर अत्यधिक खर्च किये जाने के बावजूद हमारे देश की जनसंख्या 84 करोड़ तक पहुंच चुकी है। यदि इसी प्रकार वृद्धि होती रही तो अगली तीन दशाब्दियों में भारत विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश होगा। इसकी जनसंख्या में प्रतिवर्ष 1.7 करोड़ की वृद्धि हो जाती है।

पर्यावरण

पर्यावरण प्रदूषण बढ़ने के कारण वातावरण बिगड़ता जा रहा है। 1750 हैक्टेयर जमीन बेकार हो चुकी है। प्रति वर्ष 1.30 लाख हैक्टेयर भूमि से वन नष्ट होते जा रहे हैं। प्रति वर्ष 12,000 मीट्रिक टन भूमि का क्षरण हो रहा है।

हमें अपनी नदियों, झीलों पर नाज रहा है। हमारे बच्चे हजारों ऐसी नदियों और झीलों के गीत गाते रहे हैं। परन्तु इन नदियों और झीलों का 70 प्रतिशत पानी दूषित हो चुका है। उत्तर में डल लेक से लेकर दक्षिण में पेरियार नदी तक, पूर्व में दामोदर और हुगली से लेकर पश्चिम में थाणे तक स्थिति एक समान निराशाजनक है।

हिंसा

दुर्भाग्य यह है कि अशोक, बुद्ध, महावीर तथा गांधी के देश में हिंसा सारे संसार से अधिक पनप रही है। आतंकवाद अपने पंजे तेजी से फैला रहा है। प्रतिदिन देश के विभिन्न हिस्सों में हत्याएं हो रही हैं। अभी कुछ दिन पूर्व लुधियाना के निकट पंजाब में 76 रेल यात्रियों की हत्या कर दी गई। जनवरी, 1989

से लेकर जुलाई 91 तक पंजाब में 7600 व्यक्तियों की हत्या की गई। इसी दौरान 62 प्रमुख साम्प्रदायिक दंगे हुए जिनमें 2025 व्यक्ति मारे गये।

दोनों ओर के दोष

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारी व्यवस्था में पश्चिम से जो गलत बातें आयीं उनसे भारतीय गलत बातों को बढ़ावा मिला। भारतीय सभ्यता नष्ट होने के कारण सामाजिक और आर्थिक विषमताएं उसका अंग बन गई हैं और उनमें पश्चिम की क्रूर तकनीक का समावेश होता जा रहा है। हमारा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग पश्चिम के शोषक विचारों के कारण उसी के अनुरूप मूल्यों पर आधारित पद्धति को अपनाता जा रहा है। इसीलिए अब तक देश में सामाजिक और आर्थिक प्रगति का लाभ देश की केवल 10 प्रतिशत जनता ही उठा पा रही है। यही कारण है कि हमारे नगरों और गांवों का सामाजिक और आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर भिन्न है। उच्च स्तर पर हमारे नगर यूरोपीय पद्धति पर जहां व्यर्थ के खर्चों से दुखी हैं, वहां हमारे गांव सामन्ती युग के प्रभाव से ग्रसित हैं। इस प्रकार गांवों शहरों के निम्न स्तर के लोग गरीबी और अभाव से पीड़ित हैं। हमारे देश में हरित क्रांति हुई परन्तु 37 प्रतिशत जनता में खाद्यान्नों को खरीदने की शक्ति नहीं। दूरसंचार माध्यमों में भी क्रांति हुई। जबकि 10 मिनट में हम न्यूयार्क से बात कर सकते हैं, परन्तु हम अपने पड़ोसी गांव वालों से बात करने की सुविधा अभी तक प्राप्त नहीं कर पाये।

संस्थाएं

प्रत्येक संस्था की एक आत्मा और शरीर होता है परन्तु इन संस्थाओं का महत्त्व उनके काम करने की भावना से होता है।

कार्यपालिका

हमारे देश के उच्च अधिकारियों की स्थिति का जायजा भी लीजिए। उनका ध्येय यह होना चाहिए कि वे निम्न स्तर के लोगों के लिए सहायता उनके विकास और कल्याण के लिए प्रशासन सम्बन्धी कार्य करें। परन्तु वास्तव में होता क्या है? वे अपने चारों ओर एक कागजी ढांचा खड़ा कर लेते हैं। संसद और समाचार पत्रों में बार-बार उनकी भर्त्सना होने के बावजूद उनकी कार्यशैली में कोई सुधार नहीं हो पाया।

संसद

पचास के दशक में शानदार नेहरू युग के समय संसद को भारत की आत्मा कहा जाता था। यद्यपि इस बात की मूल भावना समाप्त नहीं हुई है, परन्तु आज यह अपने-अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को सिद्ध करने का स्थान बन गया है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। तथ्यों और तर्क से

पूर्ण विचार-विमर्श बीते युग की बातें हो गई हैं। आज टोका-टाकी और नाटकीय घटनाएं एक सामान्य बात हो गई हैं। लगभग एक वर्ष पूर्व की बात है कि भारत के उप-राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा सदन की गरिमा को नष्ट होते हुए देखकर रो पड़े थे।

सदन के मूल कार्यों नियम और कानून बनाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए आठवीं लोकसभा (1984-89) और राज्यसभा ने बिलों को कानून का स्वरूप देने में 0.65 और 0.7 औसत संसदीय दिवस लगाये।

न्यायपालिका

सत्ता के ढांचे का एक और अंग न्यायपालिका है। उच्चतम न्यायालय के पूर्व प्रधान न्यायाधीश श्री पी० एन० भगवती ने ठीक ही कहा था कि हमारे देश की न्याय पद्धति समाप्त हो चुकी है। 1990 वर्ष के अन्त तक दो लाख मुकदमे उच्चतम न्यायालय में पड़े थे। 8 लाख उच्च न्नायलय में, दो करोड़ अधीनस्थ अदालतों में और 40 लाख केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में लंबित पड़े थे। अदालतों से स्थगन आदेश (स्टे आर्डर) लिए जाने के कारण 40 हजार करोड़ रुपया वसूल नहीं किया जा सका। इसका कारण यह है कि हमारी न्याय पद्धति छोटे-छोटे तकनीकी मामलों में फंसने और उनके कारण पैदा होने वाली सामान्य मुकदमेबाजी में नष्ट होती जा रही है। न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्णा अय्यर ने कहा था कि भले ही आप देश के न्यायाधीशों की संख्या दुगुनी कर दें परन्तु शेष मुकदमों की संख्या में कमी न हो सकेगी।

समाचारपत्र

समाचारपत्रों की स्थिति भी अन्य संस्थाओं की अपेक्षा विशेष भिन्न नहीं है। व्यक्ति को राहत देने और उसके व्यक्तित्व का विकास करने, उसे शिक्षित करने, उसे सत्य बातों की सूचना देने, उसके विचारों को व्यापक बनाने, उच्च ध्येय के प्रति प्रेरित करने, आध्यात्मिक रूप से सामाजिक और बौद्धिक रूप से उसका स्तर उठाने तथा ऐसे समाज के निर्माण में जिसमें कोई भय, दबाव और पीड़ा न हो आदि बातों के प्रसार का समाचारपत्रों का प्रारम्भिक ध्येय ही समाप्त हो चुका है। आज समाचारपत्रों में क्या हो रहा है? क्या समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता का उपयोग शांत व्यवस्थित और निर्भय सजाज की स्थापना की बजाय, झगड़े और तनाव बढ़ाने के लिए नहीं किया जा रहा ?

आज संस्थाओं का वास्तविक ध्येय समाप्त हो चुका है। उनमें से आत्मा और भावनाओं का लोप हो चुका है और उन संस्थाओं का सूखा ढांचा ही शेष बचा है।

सन्देश

मेरी दृष्टि में पिछले 44 वर्षों का सन्देश बिलकुल स्पष्ट है। जब तक भार-

तीय समाज में मौलिक सुधार नही होते, भारतीय भावनाओं की पुनर्स्थापना नहीं होती, जब तक हमारा कोई ध्येय न हो, जिसके प्रति हम गर्व से देख सकें, जिससे हमें प्रेरणा प्राप्त हो तब तक हमारा उन्नति करना असम्भव है और जब तक हमारे देश में उत्तरदायित्वपूर्ण तथा ध्येय के प्रति निष्ठावान नेताओं का अभाव रहेगा, तब तक हम जात-पात और सामाजिक न्याय तथा खोखली धर्म-निरपेक्षता के अतिरिक्त और कुछ भी नही सोच सकेंगे। हमे तब तक वाछित ध्येय तथा फल की प्राप्ति न हो सकेगी जब तक सरकारी और निजी क्षेत्रो को और उत्तरदायित्व-पूर्ण नही बनाया जा सकेगा। तब तक हिसा और आतंकवाद भी समाप्त न हो सकेगा। तब तक अनेक चुनाव होने पर भी शाति और स्थायित्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। संसद के विचार-विनिमय से विशेष मार्गदर्शन न हो सकेगा। कुछ लोगों को इस स्थिति से कष्ट प्रतीत हो सकता है परन्तु हम इससे कोई महत्त्वपूर्ण उप-लब्धि प्राप्त न कर पायेंगे। देश को इस समय जरूरत है विचारो, प्रेरणाओ, संस्थाओ और मूल भावनाओं मे मौलिक सुधार की। इस समय शरीर और आत्मा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। सारी कठिनाइया हमारे भूलभूत रुग्ण ढाचे से पैदा हुई हैं।

क्रांति और पुनर्जागरण

कभी-कभी मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि हमारे देश की समस्याएं इतनी कठिन और गम्भीर रूप धारण कर चुकी हैं जिन्हे क्राति के द्वारा ही हल किया जा सकता है। परन्तु भारत के विगत इतिहास और विरासत से यही प्रतीत होता है कि हमारे विचार क्राति की बजाय पुनर्जागरण के ही अनुकूल रहे हैं। क्राति और पुनर्जागरण मे मौलिक अन्तर होता है। क्राति एक भयकर तूफान की तरह आती है जिसमें पुरानी मान्यताएं और भावनाए नष्ट हो जाती हैं, पुराना ढांचा धरा-[illegible] नव निर्माण की बजाय [illegible] पडता है और [illegible] सिद्ध हो सकता है और उससे अनेक समस्याए पैदा हो जाती हैं। *क्राति म गुणी, न्यायप्रिय* और सभ्य व्यक्ति नेतृत्व नही संभाल पाते वरन् उसके शिकार हो जाते है। इसके विपरीत पुनर्जागरण एक ऐसी मन्द बयार है जो दम घोटने वाली अन्धकारपूर्ण रात्रि के बाद धूल और धुन्ध को समाप्त करती हुई प्रभात की प्रक्रिया प्रारम्भ करती है। परन्तु यह प्रभात ऐसा नही होता जिसका विगत इतिहास से कोई सम्बन्ध न हो।

यह हमारे देश के सौभाग्य की बात है कि इस तरह के पुनर्जागरण बेकार नहीं गये और उन्होंने हमें जीवन के मूल ध्येय और वास्तविकता को समझने का दृष्टिकोण दिया है। रोम्या रोलां ने कहा था—"भारत मेरे लिए विदेश नही है। वह उन सब देशो से महान है जिस एक प्राचीन देश मे मे मैं आया हूं। इसका प्रभाव मुझमें अत्यन्त गहरा है।" मैक्समूलर ने और भी महत्त्वपूर्ण बात कही थी—"यदि मुझसे यह पूछा जाये कि किस आकाश के तले मानव का विकास हुआ और किसने जीवन की बड़ी-से-बडी समस्या पर विचार किया और उनका समा-

धान खोजा, तो मैं भारत की ओर इशारा करूंगा और यदि मुझसे यह पूछा जायेगा कि यूरोप में हमें साहित्य ने जीवन की किस व्यवस्था की ओर प्रेरित किया और हमारे आभ्यंतर जीवन को पूर्ण बनाया, तो मैं फिर भारत की ओर इशारा करूंगा।" स्वामी विवेकानन्द ने अपने सात्विक दृष्टिकोण से कहा था—"भारत ने संसार को आध्यात्मिक प्रकाश दिया है। सुबह की मृदु मंद ओस की बूंदें जब गिरती हैं तो उनकी आवाज किसी को सुनाई नहीं देती, परन्तु उनका फल महान होता है। यही हमारी शांत, धैर्यवान तथा आध्यात्मिक देन संसार को है।"

हमें इस विरासत और इस महान उपहार से लाभ उठाना चाहिए। इनसे प्रेरणा लेकर हमें अपनी विशिष्ट सेवा बुद्धि का विकास करना चाहिए। यही विचार, हमारी राजनीति, प्रशासन, आर्थिक स्थिति और सामाजिक जीवन के प्रेरणा स्रोत होने चाहिएं। हमें उच्च विचारों को फिर से ग्रहण करना है। स्वस्थ विचारों और जागृत भावना को पैदा करके पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त करना है।

परिष्कृत हिन्दुत्व

पुनर्जागरण के लिए आवश्यक है हिन्दुत्व में सुधार किया जाये, उसमें नयी जागृति और उसमें एक नयी शक्ति पैदा हो। हमें एक ऐसे हिन्दुत्व की आवश्यकता है जिसका शरीर स्वस्थ हो और जिसकी नसों और नाड़ियों में शुद्ध रक्त का प्रवाह हो। इस हिन्दुत्व से न्यायप्रिय, रचनात्मक, चिन्तनशील एक नये हिन्दू का जन्म होगा। ऐसा हिन्दू जिसकी आत्मा पवित्र होगी, जिसका विश्वास मानव की एकता होगा, जिसे केवल अपनी शुद्धि का ही नहीं, वरन् अपने चारों ओर निवास करने वाले व्यक्तियों की आत्मा की शुद्धि का ख्याल होगा। ऐसा हिन्दू, जो राज्य की सभी संस्थाओं के लिए प्रेरणा देने वाला सशक्त, ईमानदार, सेवाभावी और शुभ-परिणामों का इच्छुक होगा।

इस परिष्कृत हिन्दुत्व के सम्बन्ध में संक्षेप में मैं अपने विचार रख रहा हूं।

बहुत से विद्वान् हिन्दुत्व को अनेक मतों और कर्मकाण्ड सम्बन्धी क्रियाओं का समूह, विश्वासों और धारणाओं का विशाल सागर मानते हैं, जिसमें अनेक धाराएं आकर मिलती हैं। धर्म के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् देवराज का कहना है कि ईसाई और इस्लाम मत के बड़े ढंग से निर्मित सिद्धांतों के मुकाबले में हिन्दुत्व विश्वासों और धारणाओं का उलझा हुआ समूह प्रतीत होता है। ऐसा दीखता है कि उसके सिद्धांतों का विश्लेषण उसके प्रति सहानुभूति रखने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों की समझ में भी नहीं आता। श्रीनिवासन के अनुसार, हिन्दुत्व विपरीत विश्वासों, असम्बद्ध आदर्शों और मृतप्राय: कर्मकाण्डों, चरमराते सामाजिक ढांचे और सहिष्णुणता आदि विश्लेषण विहीन व्यवहार सम्बन्धी नियमों का निस्तेज समूह मात्र है।

हिन्दुत्व के सम्बन्ध में ऐसा छिछला चित्रण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को न समझने, सत्य को असत्य से अलग न कर पाने, गम्भीर विचारधारा को उथली और उच्च आदर्श को निम्न स्थिति से पृथक् न कर पाने के कारण हुआ है। वर्षों से चले आ रहे किसी भी प्राचीन धर्म में बुराइयां आ ही जाती हैं। अनेक दुर्घटनाएं

होती हैं जिनमें बहुत से अंग पृथक् हो जाते हैं। उस समय उन्हें ठीक करने के लिए अधकचरे लोग आ खड़े होते हैं। वे उन दोषों को ठीक नहीं कर पाते, अतः सामाजिक ढांचे में विकृत अवस्था घर कर लेती है।

हिन्दुत्व भी इन बातों से बच नहीं पाया। इतिहास के उतार-चढ़ाव में इसकी भी बहुत-सी अच्छी बातें नष्ट हो गईं और उच्च विचार गलत बातों के ढेर के नीचे दब गये। इन्हीं कारणों से इसका भयंकर पतन हुआ। इसी मध्य इसके मूल आदर्श और विचार सुप्त होते गए और दीर्घकाल से यह आशा की जाती रही है कि यह फिर से फलेगा-फूलेगा और विकसित होगा। यह समय है कि इसे फिर से जागृत होना चाहिए।

मैं हिन्दू विचारों और रीति-रिवाजों को तीन भागों में बांटता हूं। प्रथम, इसके मूल एकता के विचार, एक दूसरे स्तर में वे विश्वास और रीति-रिवाज आते हैं, जो इसकी मूल भावना के विपरीत तो नहीं, परन्तु जिन्हें सर्वसाधारण जनता ने इसके बौद्धिक पक्ष को न समझ पाने के कारण अपना लिया। इनमें मन्दिर, मूर्तियां, देवी-देवता और उनके प्रतीक सम्मिलित हैं। तीसरे भाग में अनावश्यक कर्मकाण्ड, अंधविश्वास और सतीप्रथा आदि रीति-रिवाज आते हैं जिन्हें ढोंगी गुरुओं ने बढ़ावा दिया।

हिन्दुत्व के सुधार के लिए तीसरे स्तर को पूरी तरह समाप्त करना होगा। दूसरे स्तर में सुधार के अतिरिक्त उसमें नयी जान फूंकनी होगी और प्रथम स्तर को फिर से सजाना-संवारना होगा।

इस प्रकार के प्राचीन धर्म में सुधार की आवश्यकता स्पष्ट है। हिन्दू धर्म स्वयं इस परिवर्तन और गतिशीलता को स्वीकार करता है और उसे जीवन की वास्तविकता मानता है। गतिशीलता की वास्तविकता के महत्त्व को हिन्दुत्व के मूल सिद्धांतों में स्वीकार किया गया है। ब्रह्माण्ड निरन्तर गतिशील है। इसके निर्माण और स्वयं से शक्ति प्राप्त करने की क्रिया चलती रहती है। जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में हम सोचते रहते हैं वे ही नहीं स्वयं इस प्रक्रिया को देखने और इसके सम्बन्ध में सोचने वाला भी स्वयं परिवर्तनशील है। दोनों के मध्य यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। एक गतिशील साम्यावस्था से दूसरी गतिशील अवस्था का जन्म होता है। हिन्दू व्यवस्था पद्धति में पुनर्निर्माण उसका अंग है। हिन्दू विचार यह प्रेरणा देते हैं कि हमें अपने जीवन में सत्य के साक्षात् के लिए आवागमन के चक्कर में पड़ना पड़ता है और प्रत्येक चक्र की पूर्ति अथवा उसका अन्त नये चक्र अथवा जीवन का आरम्भ होता है।

अब समय आ गया है कि हम हिन्दुत्व की खोई हुई गतिशीलता को एकरूपता देकर गतिमान करें। उसे नयी शक्ति दें, नयी विचारधारा दें, नया ज्ञान और नया दृष्टिकोण देकर जीवन, राजनीति और अर्थव्यवस्था को नयी दिशा दें।

तर्क पर आधारित आस्था

हिन्दुत्व के सुधार के लिए आत्मा की उन्नति के अभ्युत्थान के लिए तर्क पर आधारित आस्था पर जोर दिया जाना चाहिए। मानव के लिए आस्था आवश्यक है। इससे जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त होता है। कुछ लोगों की आस्था

प्रभु में हो सकती है। कुछ लोग विज्ञान में, और कुछ लोग प्रभु और विज्ञान दोनों में आस्थावान हो सकते हैं। परन्तु किसी भी रूप में आस्थावान होना आवश्यक है। अत्यधिक संशयात्मा व्यक्ति किसी और के प्रति आस्थावान नहीं होता परन्तु उसकी अपने आप में तो आस्था होती ही है। नवजात शिशु की आस्था अपनी मां के दूध में होती है। जिस प्रकार वयस्क व्यक्ति व्यवस्थित ब्रह्माण्ड में आस्था रखता है, उसी प्रकार बालक की आस्था अपनी मां के दूध में होती है।

प्रश्न आस्था अथवा अनास्थावान होने का नहीं, प्रश्न यह कि आस्था कैसी हो। प्रश्न यह है कि यह तर्क पर आधारित हो अथवा तर्कविहीन। तर्कविहीन आस्था गलत विचारों का समूह है। तर्कपूर्ण आस्था मनुष्य को दिया हुआ भगवान का महान पुरस्कार है। इसका प्रयोग न करके अपने चारों ओर की वास्तविकता को न समझना उस प्रभु की विद्यमानता को स्वीकार न करना है। जुलाई, 88 में मध्यप्रदेश के गांव मुरैना में एक पिता ने गुप्त खजाने को प्राप्त करने के लिए अपने चार साल के बच्चे की बलि दे दी। ऐसा उसने एक तांत्रिक गुरु के आदेश पर किया। ऐसा कृत्य प्रभु की विद्यमानता को अस्वीकार करना है। यदि उस पागल व्यक्ति ने उस आस्था से बच्चे की बलि दी जिसमें तर्क का कोई समावेश नहीं था और यह बात हिन्दुत्व की मौलिक आस्थाओं के विपरीत है।

इसके विपरीत एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लीजिए जिसे तर्क पर आधारित आस्था में विश्वास है जो मन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व भगवान से प्रार्थना करता है—

मानव होने के कारण मेरे तीन अपराधों को क्षमा कर देना।

आप सर्वव्यापक हैं परन्तु मैं आपकी यहां पर पूजा कर रहा हूं।

आप निराकार हैं परन्तु मैं यहां पर आप के एक आकार की पूजा करता हूं।

आपके गुणों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं। तो भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूं और प्रणाम करता हूं। हे प्रभु, मानव होने के नाते मेरे इन तीन अपराधों को क्षमा करना।

यह एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आस्था तर्क पर आधारित है। वह इस बात के प्रति जागरूक है कि मनुष्य के विचार भ्रामक और इधर-उधर भटकने वाले होते हैं उसे इस बात का ज्ञान है कि प्रभु सब स्थानों पर विद्यमान है और उसका कोई स्वरूप नहीं। उसे किसी प्रकार के गुणगान की आवश्यता भी नहीं। परन्तु वह उसे अपने निकट देखता है। एक आकार में देखता है, एक स्थान पर विद्यमान देखता है और उसकी प्रार्थना करता है। ऐसा वह इसलिए करता है कि उसके बिखरे हुए मानसिक विचार एक स्थान पर एकत्रित हैं। इसे मूर्तिपूजा नहीं कहा जा सकता। इसे केवल उस माध्यम के ज़रिए उससे सम्बन्ध स्थापित करना कहा जा सकता है।

अधिकांश हिन्दू गाथाओं, कर्मकाण्डों और लोककथाओं, किंवदन्तियों का गूढ़ अर्थ भी होता है तथा उनका सर्वसाधारण पर व्यापक प्रभाव होता है। परन्तु उनकी वास्तविकता को स्पष्ट किया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो अशिक्षित लोग दिखावटी कर्मकाण्डों और गलत गाथाओं पर विश्वास करने लगते हैं। इसलिए कभी भी ऐसी गाथा अथवा रीति-रिवाज को नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए जो तार्किक कसौटी पर खरा सिद्ध न हुआ हो और जिनसे

धर्म के प्रति आस्था जागृत न हो। इनको उसी प्रकार अलग कर दिया जाना चाहिए जिस प्रकार हीरों में से नकली पत्थर को पृथक् कर दिया जाता है।

तर्कविहीन आस्था द्वारा समाज में व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। तर्क पर आधारित आस्था मनुष्य को आध्यात्मिकता के उच्च स्तर तक ले जाती है। तर्क से आध्यात्मिक अनुभव को एक गहराई, संतोष और अर्थ प्राप्त होता है। उससे आन्तरिक दृष्टि का विकास होता है। चीजों को समझने की योग्यता का विकास होता है और आध्यात्मिक पूर्णता की आशा की जा सकती है। उपनिषदों का कहना है कि अत्यधिक बुद्धिमान व्यक्ति भी सन्देह, विग्रह और अन्तर्द्वन्द्व के शिकार हो जाते हैं। तर्क पर आधारित मनुष्य का विकास आध्यात्मिक रूप में होता है। मानव जीवन की परिपूर्णता इसी में है। वास्तव में तर्कपूर्ण दृष्टिकोण रखना आध्यात्मिकता के लिए आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति तार्किक हुए बिना आध्यात्मिक नहीं हो सकता।

परिष्कृत हिन्दुत्व और समाज व्यवस्था

परिष्कृत हिन्दुत्व में उन मूल्यों पर जोर दिया जाना चाहिए जिसमें वास्तविक लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हो। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है —

"राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए संसार के श्रमजीवियों को एकत्र हो जाना चाहिए और स्वत्वहरण या शोषण करने वालों को समाप्त कर देना चाहिए।"

क्या न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए इससे अधिक अच्छा और कोई आह्वान हो सकता है?

गीता में भी न्याय पर आधारित समाज की आवश्यकता पर जोर दिया गया है और स्वार्थों की पूर्ति को नकारा गया है। स्वार्थों की पूर्ति करने वालों को डाकू और पापी कहा गया है। गलत ढंग से सम्पत्ति इकट्ठा करने वालों को राक्षस कहा गया है।

वेदान्त का यह विश्वास कि एक ही प्रभु इस सारे संसार में और सभी प्राणियों में व्याप्त है। वस्तुत: यह एकता, भ्रातृत्व भाव स्वतन्त्रता, न्याय के प्रति आध्यात्मिक आह्वान है। यदि वही प्रभु मुझ में विद्यमान है और दूसरे में भी, तो सबको समान समझा जाना चाहिए। एक में विद्यमान प्रभु दूसरे को कैसे भूखों रहने पर मजबूर कर सकता है? क्या वह एक के प्रति अन्याय और दूसरे के प्रति न्याय का कारण हो सकता है? यदि मैं निर्धन और रुग्ण व्यक्ति की सेवा करता हूं तो यह उसमें विद्यमान प्रभु की सेवा है। यही बात विवेकानन्द ने कही थी— "मेरा बार-बार जन्म हो और मैं बार-बार हजारों कष्टों में से गुजरूं जिससे मैं एक प्रभु की पूजा करता रहूं जिसमें मैं विश्वास करता हूं क्योंकि वह प्रभु अच्छे भले-बुरे सभी प्रकार के जीवों में विद्यमान है।"

क्या इससे अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की कामना की जा सकती है? और हिन्दुत्व की मानव की मौलिक एकता और क्या है। क्या यह आध्यात्मिक धर्म-निरपेक्षता से पृथक् कोई चीज हो सकती है?

परिष्कृत हिन्दुत्व और राष्ट्रीय लक्ष्य

परिष्कृत हिन्दुत्व ही राष्ट्रीय लक्ष्यों को एकरूपता देने और सामाजिक जीवन के उस अन्तर विभेद को दूर करने के लिए पुल का काम कर सकता है। यही हमारे अनेक कार्यक्रमों और योजनाओं की सफलतापूर्वक पूर्ति का साधन भी हो सकता है।

उदाहरण के लिए पर्यावरण के संरक्षण और उसकी उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि प्रकृति से एकरूपता के लिए हिन्दू मूल्यों के प्रति जागृति पैदा की जाये। महाभारत, रामायण, वेद, उपनिषद, गीता, पुराण और स्मृतियां आदि इन सब धार्मिक ग्रंथों में पर्यावरण के संरक्षण और प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने का सन्देश दिया गया है। दुर्गा की पूजा करते हुए शताब्दियों से हिन्दू लोग यह प्रार्थना करते आये हैं कि जब तक पृथ्वी पर पर्वत, वन और वृक्ष आदि विद्यमान रहेंगे मनुष्य भी जीवित रहेगा। पृथ्वी अथवा प्रकृति को आक्रामक तत्त्व नहीं माना गया जिसे जीत कर उस पर राज्य किया जाये। वरन् इसके विपरीत उसे माता का दर्जा दिया गया है। 'पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं।' वास्तव में मनुष्य को प्रकृति से नाजायज लाभ उठाने से रोका गया है। उसे कहा गया है कि वह प्रकृति के साथ एकरूप होकर जीवन व्यतीत करे क्योंकि प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में—जिसमें पेड़-पौधे और जीव भी सम्मिलित हैं, प्रभु का निवास है। महाभारत में प्रकृति के मूल तत्त्वों में पर्वतों को उसकी अस्थियां, पृथ्वी को उसका मांस और समुद्र को उसका रक्त, आकाश को उसका उदर, वायु को उसकी सांस और अग्नि को उसकी ऊर्जा कहा गया है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में जोर इस बात पर दिया गया है कि मनुष्य अपने आपको पृथ्वी के वातावरण से अलग नहीं कर सकता जैसे माता अपने बच्चे को अलग नहीं कर सकती।

पेड़-पौधों की सुरक्षा हमारे लिए एक धार्मिक कृत्य बताया गया है। उदाहरण के लिए वराह पुराण में कहा गया है कि जो व्यक्ति, एक पीपल, एक नीम और एक बड़ और फूलों वाले दस पौधे या बेलें, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के पौधे लगाता है, वह नरक में नहीं जाता। चरकसंहिता में कहा गया है कि वनों का विनाश राज्य का विनाश है। इसी प्रकार पशुओं की सुरक्षा को भी धार्मिक कर्त्तव्य कहा गया है। हमारे शास्त्र में पशुओं की हत्या स्पष्ट रूप से पाप कही गई है। उसमें कहा गया है—जो दुष्ट व्यक्ति पक्षियों को मारने के बाद पवित्र नदियों में स्नान, तीर्थयात्रा, पूजा और यज्ञ आदि करता है, उसके लिए यह सब बेकार हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पक्षियों की हत्या, वातावरण और जल को दूषित करने के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है। हमारी पौराणिक गाथाओं में पशु-पक्षियों का देवी-देवताओं से सम्बन्ध बताया गया है। जिस प्रकार हाथी का इन्द्र देवता से, चूहे का गणेश से और सिंह का दुर्गा से।

यदि पृथ्वी को माता के समान समझने तथा वृक्षों, पेड़-पौधों और जीवों की सुरक्षा की हिन्दुत्व की भावना को अपना लिया जाये तो एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास होता और इससे सफलता मिलने की आशा हो सकती है।

सत्य के सम्बन्ध में हिन्दुत्व की मान्यता क्या है इसे समझने का प्रयत्न करें, सत्य को केवल वाणी द्वारा उच्चारण के बजाय इसका अर्थ बहुत गहरा है। इसका

संकेत विचारों, कार्यों और मानवीय सम्बन्धों के प्रति न्याययुक्त दृष्टिकोण अपनाना है। यदि राष्ट्रीय दृष्टिकोण में इसे सही ढंग से अपनाया जाये तो हमारी राजनीति और जन-जीवन में पवित्रता आयेगी। मूल्यों पर आधारित राजनीति घोषणाओं से प्राप्त नहीं हो सकती इसके लिए जागृत आत्मा की ओर प्रेरणा होना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्य अनेक क्षेत्रों में भी हिन्दुत्व की भावनाओं को अपनाया जा सकता है। यहां मेरा कहने का मतलब यही है कि परिष्कृत हिन्दुत्व से ही एक नई सेवा भावना और ध्येय के प्रति चेतना पैदा होगी।

पुनर्जागरण की देन

हिन्दू विचारों के महान सत्यों को एकरूपता देने, जिसमें जीवन की एकता, तर्क पर आधारित आस्था, न्याय के प्रति जागृति, दया भावना, राष्ट्रीय ध्येयों के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण आते हैं—से भारत में पुनर्जागरण की स्थिति पैदा हो सकती है और इसे राष्ट्र को सही दिशा-निर्देश प्राप्त हो सकता है।

क्रियात्मक निष्पत्ति—वैष्णोदेवी का मन्दिर

एक सुधार और पुनर्जागृति के युग के लिए स्वार्थरहित धर्मोपदेशक और बुद्धिवादी तथा समाज के नेता एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि क्रियात्मक रूप से कोई कार्य करके जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला जाये। यह ध्येय बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए। इसके लिए मैं एक ऐसा उदाहरण देता हूं जिससे मेरा निकट का सम्बन्ध रहा है। यह माता वैष्णो देवी मन्दिर के सम्बन्ध में है जिसका विशिष्ट विवरण मैंने अपनी पुस्तक 'द स्टोरी आफ टू माताज्' में दिया है। यहां मैं संक्षेप में अपनी बात स्पष्ट करने के लिए बता रहा हूं।

माता वैष्णो देवी का मन्दिर भारत में बहुत पवित्र माना जाता है। इसका सम्बन्ध शक्ति मत से है और उसका पूर्व आर्यकाल से सम्बन्ध है। यह मन्दिर जो एक गुफा के रूप में है, जम्मू से 45 कि० मी० दूर त्रिकूट की पहाड़ियों में स्थित है। इसके निकट कटरा नगर है। यहां से तीर्थयात्रियों को 6000 फुट की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इस पवित्र गुफा में तीन पिण्डियां अथवा मूर्तियां हैं जो महासरस्वती अर्थात् बुद्धि की देवी, धन की देवी महालक्ष्मी और महाकाली पुनर्निर्माण की प्रतीक हैं।

तीर्थों का पर्वतों में विद्यमान होना भारतीय परम्परा के अनुकूल है। प्राचीन काल में तीर्थ यात्रियों को इन स्थानों से बहुत आकर्षक वातावरण प्राप्त होता था। प्राणदायक वायु, हरे-भरे वृक्ष और शुद्ध जल की नदियां दिखाई देती थी। इसका यात्रियों के मन पर जो असर होता था इससे उसे शांति और एक नई भावना प्राप्त होती थी। मैं पहली बार 1985 के मध्य में यहां गया था। यात्रा के बाद मैंने अपनी डायरी में लिखा—"इस यात्रा से आत्मा की उन्नति के बजाय एक निराशा उत्पन्न होती है। इससे स्वच्छ वायु की बजाय दुर्गन्ध, घने जंगलों की बजाय सूखी नंगी पहाड़ियों और बाणगंगा के शुद्ध जल की बजाय एक गंदा नाला देखने को मिलता है। मैंने तीर्थयात्रियों को विश्वास के साथ इन कठिनाइयों को

पार करके वैष्णो देवी के मन्दिर तक पहुंचते देखा। चारों तरफ नैतिक भ्रष्टाचार देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। कटरा से गुफा तक जाने में सत्य की प्राप्ति की बजाय समाज को अनेक बुराइयों में फंसे हुए पाया।

इससे मैंने यह निश्चय किया कि यदि मुझे अवसर मिला तो मैं इस मन्दिर के प्रबन्ध तथा आस-पास के क्षेत्र के विकास के लिए कार्य करूंगा। मेरे सामने अनेक ध्येय थे। मैं अस्वस्थ और गन्दे वातावरण को समाप्त करना चाहता था। इसके साथ ही मेरी इच्छा थी कि प्रबन्ध व्यवस्था को सुधार कर धर्म के उस वातावरण को पैदा किया जाये जिसमें तीर्थयात्री आत्मा को पवित्र करने के प्राचीन परम्परा को अनुभव करें। मैं इसे परिष्कृत हिन्दुत्व और परिष्कृत सामाजिक व्यवस्था—जिसे मैं एक ही सिक्के के दो पहलू मानता था—स्थापित करना चाहता था।

जब मैंने इस सुधार की अपने आप में यह योजना बनाई तो इस बात का सन्देह भी उत्पन्न हुआ कि स्वार्थी तत्त्व अपने गलत कामों को छिपाने के लिए मेरा विरोध भी कर सकते हैं और मुझे धार्मिक मामलों में दखल देने वाला डिक्टेटर भी कह सकते हैं। मैं यह भी समझता था कि इससे कानूनी और संवैधानिक कठिनाइयां भी आ सकती हैं परन्तु मुझे इस बात का विश्वास था कि यदि मैं जल्दी से अपने सुधारों के लाभ को दिखा सका तो विरोध समाप्त हो जायेगा और स्वार्थी तत्त्व स्वयं लुप्त हो जायेंगे। और यही कुछ हुआ।

1986 में राज्य के संविधान की धारा 92 के अनुसार राज्यपाल शासन लागू किया गया तो मुझे अवसर मिला। अपनी विरोधी शक्ति के अनुरूप मैंने माता वैष्णो देवी के मन्दिर के लिए एक स्वतन्त्र बोर्ड की स्थापना की, राज्यपाल को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। मन्दिर और आस-पास के क्षेत्र के सारे अधिकार बोर्ड को दिये गये। मन्दिर में आने वाला दान बोर्ड के खाते में जमा किया जाने लगा और उसे मानवीय कार्यों और विकास योजनाओं के लिए खर्च किये जाने का निश्चय किया गया। मन्दिर के फंड से बहुत जल्दी ही विकास कार्य किये गये। थोड़े समय में साढ़े चौदह कि० मी० लम्बे मार्ग को ठीक करके और चौड़ा बनाया गया। एक हजार बिजली की बत्तियां लगाई गईं। दस लाख टाइलें और पांच हजार मीटर चारदीवारी बनाई गई और 2000 मीटर लम्बे खतरनाक स्थानों पर लोहे के तारों की बाड़ लगाई गई। यात्रियों के ठहरने और चाय-पान आदि के लिए 26 विश्राम गृह बनाये गये। जिसमें सफाई शौच आदि की आधुनिक सुविधाएं प्रदान की गईं। अनेक विश्रामगृह, दुकानें आदि बनायी गयी। जगह-जगह फूल और झाड़ियों आदि के पौधे लगाये गये। सारे क्षेत्र में व्यापक रूप से वृक्षारोपण किया गया। आस-पास के क्षेत्र के गांवों और छोटे नगरों में औषधालय, स्कूल और कार्यशालाओं की स्थापना की गई। प्राचीन, ऐतिहासिक महत्त्व की चीजों को स्मारक के रूप में सुरक्षित किया गया जिसमें बाबा जित्तो और जनरल जोरावर सिंह आदि के स्मारक सम्मिलित हैं।

इस समय वैष्णो देवी का वातावरण और स्थिति आम आदमी पर प्रभाव डालती है जो आध्यात्मिक शक्ति की दृष्टि से वहां जाते हैं। अब वहां पहले जैसी कोई अप्रिय बात दिखाई नहीं देती। न वहां भिखारी हैं और न कोढ़ी तथा लोगों को परेशानी में डालने वाले और उनका शोषण करने वाले मन्दिर के स्वयंभू

न्यायाधीश भी नहीं है। चारों ओर स्वस्थ वातावरण है। इसके साथ-साथ यहाँ से होने वाली 4 से 5 करोड़ की आय यहाँ के वातावरण और जन-जीवन के विकास के लिए खर्च की जा रही है। तीर्थ यात्रियों की संख्या पांच लाख से बढ़ कर 23 लाख प्रति वर्ष हो गई है। इससे अकेले जम्मू में सैकड़ों रेस्तरां, होटल, यातायात और ट्रेवल एजेंसियां लोगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्थापित की गई हैं। इस स्पष्ट विकास से यात्रियों और सामान्य जनता को एक विशेष प्रसन्नता प्राप्त हुई है। वे विकास के समर्थक बने हैं। जनता के समर्थन के कारण मन्दिर से सम्बन्धित धर्मार्थ ट्रस्ट ने हमारे कार्यों के विरुद्ध जो याचिका दायर की थी, वह वापस ले ली गई। अन्य विरोध भी समाप्त हो गये।

इससे यह प्रकट होता है कि जनता सुधार की इच्छुक है। किसी को इसका आरम्भ करना होता है और सही दिशा देने की आवश्यकता होती है। माता का आध्यात्मिक चमत्कार केवल गुफा में ही नहीं लाखों आने वाले मर्दों, औरतों और बच्चों की सेवा के कार्य में भी दिखाई देता है। जीव ही शिव है। निर्धन की सेवा ही प्रभु की प्राप्ति है। हिन्दुत्व की महान मान्यताओं की उपलब्धि यहां स्पष्ट दिखाई देती है।

अन्य उपयोगी योजनाएं

सुधार का वातावरण पैदा करने के लिए अन्य योजनाएं हाथ में ली जा सकती हैं। इसके लिए निष्ठावान कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो समाज में मौलिक परिवर्तन के लिए क्रियात्मक ढंग से कार्य करें। उदाहरण के रूप में उत्तर प्रदेश सरकार को वाराणसी और उसके आस-पास के क्षेत्र में सुधार कार्य उसी प्रकार हाथ में लेने चाहिए जिस प्रकार माता वैष्णो देवी में विकास कार्य किया गया। वाराणसी को भारत की आध्यात्मिक राजधानी के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। यहां के सुन्दर घाट, गंगा का शुद्ध जल, साफ सुन्दर मन्दिर और ठीक से सुव्यवस्थित नगर, मानवीय भावना को उजागर करने और गतिशील नागरिक जीवन में सहायक हो सकते हैं। एक लम्बे दीर्घकालीन सफर के लिए एक कदम तो उठाना ही पड़ता है। इसी प्रकार सुधार के कार्य अन्य क्षेत्रों और जीवन के अन्य पहलुओं में भी किये जा सकते हैं।

कार्य को प्रारम्भ करने के लिए मैंने वाराणसी को इसलिए सुझाया है चूंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसका निर्माण सृष्टि के आरम्भ में हुआ था। कुछ भी हो यह संसार के प्राचीनतम नगरों में से है। 19वीं शताब्दी के मध्य में एम० ए० शेरिंग ने इसके सम्बन्ध में कहा था—जब बेबीलोन निनवेह पर सत्ता प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहा था, टायर अपने उपनिवेश बसा रहा था, एथेन्स अपनी शक्ति का प्रसार कर रहा था, रोम का अभी पता ही चला था अथवा यूनान पर्शिया तक ही सीमित था अथवा साइरस ने पर्शियन सत्ता को अतिरिक्त चमक प्रदान की थी, नेबूकदंजर ने जेरूसलम पर अधिकार किया था, जादुआ को पराधीन कर लिया गया था, वाराणसी उस समय महानता को प्राप्त कर चुका था। यही ऐसा नगर है जो अपने व्यापार, उद्योग, संगीत नृत्य, कविता और साहित्य के साथ-साथ अपनी अत्यधिक गंदी बस्तियों के कारण समकालीन भारतीय जीवन का प्रतीक बन चुका है।

अन्य धर्म और समाज व्यवस्थाएं

पुनर्जागरण का उचित प्रभाव प्राप्त करने के लिए अन्य धर्मों और समाज व्यवस्थाओं में भी एक नयी जागृति की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए इस्लाम में भी सुधार और पुन:जागृति की भावना पैदा करना आवश्यक है जिससे वह भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन सके। मैंने स्वयं काश्मीर में तलाकशुदा मुस्लिम औरतों की दयनीय स्थिति को देखा है। मेरे पास ऐसी अनेक मुस्लिम विधवाएं अनेक कष्टपूर्ण शिकायतें लेकर आती थीं, जिन्हें धनी परन्तु सरकारी कर्मचारियों ने छोड़ दिया था और जिन्हें अपने समाज की ओर से किसी प्रकार की कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई थी। शाहबानो केस में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध जो विवाद खड़ा किया गया, यदि उसका थोड़ा-सा अंश भी ऐसी मुस्लिम महिलाओं को सहायता के लिए दिया जाता तो अनेक दुर्भावनाएं और गलतफहमियां दूर होतीं।

सुधार का क्षेत्र बहुत व्यापक और उलझनपूर्ण है। यह इस पुस्तक का विषय भी नहीं। यहां मेरा यह दिखाने का ध्येय यह है कि 85 प्रतिशत जनता के थोड़े से भाग में यदि सामाजिक व्यवस्था और सुधार प्रारम्भ किये जाएं तो राष्ट्र के सामने जो भयंकर समस्याएं हैं उनका स्थायी हल निकल सकता है। इन समस्याओं में काश्मीर की भी समस्या भी है। इनकी उत्पत्ति भारतीय रुग्ण मानसिकता और भग्न धारणाओं से हुई है।

संस्थाओं का सुधार

ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें ढांचागत सुधारों की आवश्यकता है। मतदाता व्यवस्था, संसद, न्यायपालिका, प्रशासन सम्बन्धी तन्त्र, निजी और सरकारी उद्योग, संचार माध्यमों तथा राज्य के अनेक संगठनों और सामाजिक ढांचे में सुधार की आवश्यकता है। कोई भी संस्था उस समय तक ईमानदारी और प्रभावपूर्ण ढंग से काम नहीं कर सकती जब तक उसके चारों तरफ का वातावरण अन्याय, आपसी धड़ेबन्दी और बिना उद्देश्य के शक्ति और सत्ता में बने रहने का हो। यदि हमारी रक्तवाहिनियों में विष का संचार होगा तो उससे सारा शरीर प्रभावित होकर विकृत हो जायेगा।

समाधान

अनेक सामयिक समस्याओं का समाचार-पत्रों में समाधान सुझाया गया है। कुछ लोगों ने जो समाधान सुझाए हैं वे अक्रियात्मक होने के साथ-साथ देश में और मतभेद पैदा करने के कारण भी हो सकते हैं। इन लोगों ने मूल वास्तविक सामयिक समस्याओं की उपेक्षा की है, जिनका मैंने चार, पांच, छः और दसवें अध्याय में वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में 1947 की घटनाएं हमारे लिए मार्ग निर्देशक सिद्ध हो सकती हैं। हमारे नेताओं ने देश का विभाजन इसलिए स्वीकार किया था कि इससे साम्प्रदायिक समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। साम्प्रदायिक समस्याएं वैसी ही बनी हुई हैं, परन्तु इसके साथ नये क्षेत्रों में तनाव और संघर्ष

और अधिक बढ गया है। दोनों पक्षों के लोगों मे संदेह की भावना बढ़ी है, इसके कारण शस्त्रो की दौड़ के बढने के फलस्वरूप दोनो ओर के क्षेत्रो मे गरीबी और पिछड़ापन बढ़ा है। यदि हम शात चित्त से समस्याओ का मुकाबला और समाधान करते तो एक नये राष्ट्र, नयी सभ्यता और अनेकता मे एकता पैदा हो सकती थी।

काश्मीरी पण्डितों की समस्या के समाधान के लिए प्रो० बलराज मधोक ने दक्षिण काश्मीर मे एक पृथक् जिले के निर्माण का सुझाव दिया, जिसमें बानिहाल की जवाहर सुरंग से वेरीनाग, कोकरनाग, मटन, मार्तण्ड और पहलगांव तथा अमरनाथ की पवित्र गुफा तक क्षेत्र शामिल करने की बात कही है। इस सुझाव से यह प्रकट होता है कि घाटी से आतंकवाद को समाप्त नही किया जा सकता और हमे इसके साथ ही निर्वाह करना होगा। इससे यह भी प्रकट होता है कि इस बुराई को एक स्थान पर रोक दिया जाये और इससे काश्मीरी पण्डितो को स्थान अथवा अन्य स्थान पर बिखरने न दिया जाये। परन्तु इस सुझाव मे भूमि आदि लेने, मकानो के निर्माण आदि तथा प्रारम्भिक सुविधाएं देने आदि की अनेक कठिनाइयां भी हैं। यदि 84 करोड़ का राष्ट्र लोगो के अपने मूल स्थानों पर रहते हुए शांतिपूर्वक रहने की व्यवस्था नही कर सकता तो उसे राष्ट्र कहलाने का कोई अधिकार नही।

जम्मू-काश्मीर को तीन स्वतन्त्र भागों—लद्दाख, जम्मू और घाटी में बांट देने से समस्याओं के सुलझने की बजाय अनेक समस्याएं पैदा हो जाएंगी। जब तक देश मे भेद-भाव की राजनीति और साम्प्रदायिक भावनाओ से लाभ उठाने की प्रवृति मौजूद रहेगी, इस प्रकार की योजनाओ से कोई लाभ नहीं होगा। काश्मीर की समस्याओ का समाधान उसकी कमजोरियां दूर करके और वहा से असामाजिक तत्त्वो को समाप्त करके ही किया जा सकता है जिनका वर्णन मैं *अपने पूर्व अध्यायो मे कर चुका हूं। यह कार्य केवल नवीन परिष्कृत आदर्शों से* प्रेरित भारत द्वारा ही हो सकता है। ऐसे भारत मे नहीं जो बहुत छोटे-छोटे राजनीतिक स्वार्थों मे लिप्त हो और जिन बातों की काश्मीर और वहां के नेताओं में पराकाष्ठा हो चुकी है और जो ज्वलंत समस्याओ की बजाय गलत भ्रमों में ही, फसे हुए हैं।

हमारे सामने जो अभी वास्तविक समस्या है, उसका समाधान मैंने अध्याय 9 और 14 में दिया है। यदि मुझे वहां रहने का और अवसर मिलता तो जो मैंने योजना बनाई थी, मैं उसे पूरी तरह लागू करता। मैं कलाश्निकोव बन्दूको का खतरा समाप्त कर देता, छोटे युद्ध स्तर पर स्थिति से निपटता और यदि आवश्यकता पड़ती तो पश्चिम जर्मनी की तरह अत्यन्त प्रशिक्षित व्यक्तियों का एक गुरिल्ला दल भी बनाता जिससे उन्हें शस्त्रो की सप्लाई समाप्त की जा सके। राज्य के बे-मौके उठाये गये कदमो कारण सेब, गलीचे और अन्य सामान की खरीद के लिए राज्य के साधनों का आतंकवादियो के हाथ मे जाने पर रोक लगाता और जनता को देश-द्रोहियों के विरुद्ध बगावत के लिए खड़ा कर देता जिन्होंने *राज्य की आर्थिक स्थिति* को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। इसके साथ ही मैं उनके लिए वह मार्ग भी खुला रखता कि स्वतन्त्र चुनावों द्वारा राज्य सत्ता मे आ सकें। मेरे पूर्व शासन काल मे किये

गये प्रशासनिक कार्यों से काश्मीर के लागों को यह विश्वास था कि सही ढंग से चुनाव कराये जा सकते हैं। मैं विशेष अदालतों द्वारा कत्ल और अपहरण के मामलों में गिरफ्तार किये हुए लोगों पर मुकदमे चलाकर सरकार की स्थिति मजबूत करता जिससे वे भविष्य में देश-द्रोहियों और उनके समर्थकों से शक्ति से पेश आ सके। विशेष अदालतों के निर्माण के फैसले के स्वरूप सैफुद्दीन सोज जैसे व्यक्तियों के राजनैतिक दवाव के कारण श्रीनगर में एक ऐसी अदालत की स्थापना की गई थी, परन्तु वहां के विषाक्त वातावरण के कारण कोई भी मुकदमा ठीक से नहीं निपटाया जा सका।

मैं यह भी स्पष्ट कर चुका हूं कि यदि पाकिस्तान समर्थक तत्त्व वदनाम करने के उपाय अपनाते तो उचित समय पर 370 धारा को समाप्त करके ऐसी स्थिति समाप्त कर देता जिसमें किसी को वदनाम करने की और अशिक्षित जनता को संकीर्ण धार्मिक तत्त्वों द्वारा गुमराह होने से बचाया जा सकता है। मैं अध्याय 6 में यह प्रकट कर चुका हूं कि धारा 370 को समाप्त करने से उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रियात्मक रूप से किस प्रकार लाभ पहुंचता। मैं उनके प्रति पूर्ण निष्ठावान था और उनसे भी आशा करता कि वे देश के प्रति निष्ठावान रहें।

एक अतिरिक्त योजना के अनुसार व्यवस्था स्थापित करने के बाद अन्य क्षेत्रों में विकास कार्यों का आरम्भ किया जा सकता है जैसाकि मैंने अध्याय 9 और 14 में जिक्र किया है। इसके साथ ही यहां के सूफी और संतों से सम्बन्धित स्थानों के विकास कार्य आरम्भ किये जा सकते हैं चूंकि अभी भी काश्मीरी और भारतीय धार्मिक तथा सांस्कृतिक भावनाओं में एक प्रच्छन्न एकता विद्यमान है।

इतिहास का गतिशील चक्र

काश्मीर और पूरे देश का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि इतिहास के निर्माण की पहल किसके हाथ में होगी। जब मैं यहां किसी के हाथ में होने की बात कह रहा हूं तो इससे मेरा तात्पर्य किसी व्यक्ति की ओर नहीं है परन्तु एक ऐसे आध्यात्मिक, सामाजिक, वातावरण से युक्त तत्त्वों से है जो देश की जीवन पद्धति का निर्धारण करेंगे और वे नेता किस गुणवत्ता के होंगे और उनके ध्येय क्या होंगे। काश्मीर की स्थिति का प्रमुख कारण भारतीय राजनीति, सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवस्था के नकारात्मक रवैये के कारण है। यह किसी एक व्यक्ति के कारण नहीं। यह हमारी व्यवस्था के दूषित होने के कारण हुआ है और इसी कारण ऐसी संकटकालीन स्थिति में भी सन्देह और बेशुमार परस्पर विरोधी बातें तोड़-मरोड़ कर पेश की गईं।

मैंने कुछ व्यक्तियों की भी आलोचना की है। मैं ऐसा नहीं करना चाहता। परन्तु मेरे सामने इतिहास की सचाई प्रकट करने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं था, परन्तु यह आलोचना व्यक्तिगत नहीं है। यह आलोचना उन नकारात्मक शक्तियों की है जिन्होंने इन समस्याओं को सुलझने नहीं दिया। मैं समझता हूं कि भारतीय बुद्धिजीवी और विचारक लोग सामान्य लोगों और उनके छोटे कार्यों के प्रति गोष्ठियों में विचार और लेख लिखकर अपना समय नष्ट करते हैं। इनमें से कोई भी देश की वास्तविक समस्याओं की ओर ध्यान नहीं देता। देश की

समस्याओं को हल करने के लिए कोई भी क्रियात्मक कदम नहीं उठाया जा रहा। कोई आदर्श, कोई नवीन भावना, जीवन का कोई नया दर्शन राष्ट्र के सामने नहीं रखा जा रहा। इस समय भारत के सामने प्रेरणापूर्ण महान आदर्श की कमी है। देश इस समय उद्वेलित समुद्र में लंगरविहीन पोत की तरह हिचकोले खा रहा है। इसके अधिकांश यात्री निराशापूर्ण हैं और उन्होंने अपने आप को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया है। शेष जो कुछ लोग बचे हैं उनमें इतनी शक्ति नहीं कि वे राष्ट्र के इस पोत की कमान संभाल कर इसे संकटों से उबार लें।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या देश किसी ऐसे अयोग्य पुरुष अथवा महिला को इस योग्य बनायेगा कि वह उन सुधारवादी तत्त्वों को पुनः जीवित करके राष्ट्र में जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा दे सके।

समय हमारे अनुकूल नहीं है। हमें जल्दी ही कोई निर्णय करना होगा। क्या हम चाहते हैं कि आगे आने वाली पीढ़ियां हमें तीसरे विश्व के एक तृतीय श्रेणी के राष्ट्र के रूप में स्मरण करें अथवा वे हमें एक नये स्वरूप, महान भारतीय पुनर्जागरण वाले देश के रूप में याद करें जिसमें त्याग, तपस्या, सादा जीवन और उच्च विचारों को महत्त्व दिया गया हो।

जिस प्रकार के सुधार आन्दोलन की बात यहां मैंने सुझाई है, यदि ऐसा नहीं हुआ, हम अपनी सामाजिक व्यवस्था के दुर्गुणों को दूर नहीं कर पाये, यदि हम वास्तविकता से मुंह मोड़ लेते हैं और उनका सामना न करके उनसे समझौता कर लेते हैं तो इतिहास का चक्र हमें कठिनाइयों के हिचकोले देता रहेगा और हमारा भविष्य अंधकारपूर्ण हो जायेगा।

जहां तक मेरा प्रश्न है, मेरा निश्चय है कि मैं सत्य के लिए संघर्ष जारी रखूंगा और शक्ति भर प्रयत्न करता रहूंगा कि सुधार आन्दोलन आरम्भ हो। अपने दिल की 'घनीभूत अशान्ति' की बात रखने में मेरा यही ध्येय है कि हमारे समाज में मूल सुधारों के प्रति जागृति पैदा हो। हमने अपने समाज में स्वयं जो गतिरोध पैदा कर लिए हैं, हम उन्हें पहचान लें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। मैं कह नहीं सकता कि मैं अपने यत्न में कहां तक सफल रहा हूं परन्तु मुझे इस बात का संतोष है कि मैंने जो किया या अनुभव किया, उसे मैं लिपिबद्ध कर सका। व्यक्तिगत रूप से विषादपूर्ण गर्व के साथ मुझे संतोष है कि मैंने सत्य को उजागर करने का साहस किया।

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1

शिमला समझौता

भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय सम्बन्धो पर प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाधी और पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री ज़ेड० ए० भुट्टो ने शिमला में 3 जुलाई, 1972 को शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किये।

भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार दोनो देशों के सम्बन्धों में टकराव और सघर्ष को खत्म करने तथा मैत्रीपूर्ण एवं सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध बनाने व उपमहाद्वीप मे स्थाई शाति कायम करने का संकल्प लेती हैं ताकि भविष्य में दोनो देश अपने ससाधनो और शक्ति का उपयोग अपनी जनता के कल्याण कार्यो को तेज करने के लिए कर सकें।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत सरकार तथा पाकिस्तान सरकार के बीच यह सहमति हुई है—

1. कि दोनो देशो के सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव के सिद्धान्तो व उद्देश्यो के अनुरूप चलेंगे।
2. कि दोनो देश अपने तमाम मतभेदो को आपसी बातचीत या आपसी सहमति के किसी अन्य तरीके से खत्म करने का सकल्प लेते है। दोनो देशो के बीच किसी भी समस्या का अतिम समाधान होने तक हर पक्ष यथास्थिति बनाये रखेगा और दोनो देश शातिपूर्ण व सद्भावपूर्ण सम्बन्धों को बिगाडने वाला कोई काम न तो खुद करेंगे और न ही ऐसी किसी गतिविधि को सहायता या प्रोत्साहन प्रदान करेंगे।
3. कि दोनो देश समानता और आपसी लाभ के आधार पर शातिपूर्ण सह-अस्तित्व बनाये रखेंगे, पारस्परिक क्षेत्रीय अखण्डता और प्रभुसत्ता के प्रति सम्मान रखेंगे और एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नही करेंगे। दोनो देश आपसी मतभेदो को सुलह-सफाई से खत्म करके स्थाई शाति के वास्ते अच्छे पडोसी की तरह अपने सम्बन्धो को बनाये रखने के प्रति प्रतिबद्ध रहेंगे।
4. कि पिछले 25 वर्ष से दोनो देशो के आपसी सम्बन्धो को बिगाड़े रखने वाले तमाम बुनियादी मसलों को शातिपूर्ण ढंग से हल किया जायेगा।
5. कि दोनो देश एक दूसरे की राष्ट्रीय एकता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनैतिक

स्वतन्त्रता और संप्रभु समानता का सदैव सम्मान करेंगे।

6. कि दोनों देश संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव के अनुरूप एक दूसरे की क्षेत्रीय अखण्डता या राजनैतिक स्वतन्त्रता के खिलाफ ताकत का इस्तेमाल करने या उसकी धमकी देने से बचेंगे।

दोनों सरकारें एक दूसरे के खिलाफ शत्रुतापूर्ण प्रचार को रोकने के लिए अपनी तमाम शक्तियों का इस्तेमाल करेंगी। दोनों देश आपसी दोस्ताना सम्बन्धों को बढ़ाने में सहायक सूचनाओं के प्रसार को प्रोत्साहन देंगे।

दोनों देशों के सम्बन्धों को बहाल करने और उन्हें सामान्य बनाने की दिशा में उत्तरोत्तर प्रयास जारी रखने के लिए निम्न बिन्दुओं पर सहमति हुई—

1. संचार, डाक-तार व जल-थल परिवहन सेवाओं को बहाल करने की दिशा में कदम उठाये जायेंगे। सीमाएं खोलने व आपसी अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानों को बहाल करने का प्रयास भी किया जायेगा।
2. एक-दूसरे के नागरिकों को अधिकाधिक यात्रा सुविधाएं प्रदान करने के लिए समुचित कदम उठाये जायेंगे।
3. व्यापार और आर्थिक व आपसी सहमति के अन्य क्षेत्रों में सहयोग को यथासंभव बहाल किया जायेगा।
4. विज्ञान एवं संस्कृति के क्षेत्र में आदान-प्रदान बढ़ाया जायेगा।

इस सम्बन्ध में दोनों देशों के प्रतिनिधिमंडल समय-समय पर मिलते रहेंगे ताकि आवश्यक ब्यौरे जुटाये जाते रहें।

स्थाई शांति कायम करने की प्रक्रिया शुरू करने के लिए दोनों देशों के बीच तीन बातों पर सहमति हुई—

1. भारतीय और पाकिस्तानी सेनाएं अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर वापस बुला ली जायेंगी।
2. जम्मू-काश्मीर में 17 दिसम्बर, 1971 की युद्धबन्दी के बाद की नियन्त्रण-रेखा का दोनों पक्ष बिना किसी पूर्वाग्रह के सम्मान करेंगे। दोनों में से कोई पक्ष इस स्थिति को नहीं बदलेगा, भले ही दोनों के बीच आपसी मतभेद और दोनों की कानूनी व्याख्याओं में अन्तर बरकरार रहे। दोनों देश इस नियन्त्रण-रेखा का उल्लंघन करने के लिए ताकत का इस्तेमाल नहीं करेंगे और न ही उसकी धमकी देंगे।
3. सेनाओं की वापसी और युद्धबंदियों की अदला-बदली की प्रक्रिया समझौते के अमल में आते ही शुरू हो जायेगी तथा 30 दिन के भीतर-भीतर पूर्ण हो जायेगी।

दोनों देशों की सरकारें अपनी-अपनी संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुरूप इस समझौते की पुष्टि करेंगी और यह समझौता पुष्टि के बाद सम्बन्धित दस्तावेजों के आदान-प्रदान के साथ ही अस्तित्व में आ जायेगा।

दोनों सरकारें इस बात पर सहमत हैं कि उनके अध्यक्ष आपसी सुविधा के अनुसार उपयुक्त समय पर फिर मिलेंगे और इस बीच दोनों पक्षों के प्रतिनिधि स्थाई शांति कायम करने और आपसी सम्बन्धों को सामान्य बनाने के उपायों और जरूरी व्यवस्थाओं पर विचार करने के लिए मिलते रहेंगे। दोनों पक्षों के प्रतिनिधि युद्धबंदियों व एक दूसरे की जेलों में कैद नागरिकों की अदला-बदली,

जम्मू-काश्मीर समस्या के समाधान तथा कूटनयिक सम्बन्धों की बहाली से जुड़े सवालों पर भी विचार-विमर्श करेंगे।

न तो 1949 के कराची समझौते और न ही 1972 के शिमला समझौते में 74 किलोमीटर लम्बे सियाचिन ग्लेशियर का कोई उल्लेख है; मगर जून, 1984 से यह 15-20 हजार फुट ऊंचा क्षेत्र दोनों देशों के बीच झड़पों का मैदान बन गया है। यह ग्लेशियर गैर-ध्रुवीय प्रदेशों में दुनिया का सबसे बड़ा हिम-प्रदेश माना जाता है। इस क्षेत्र का कभी सीमांकन नहीं किया गया और न ही कभी यहां सेना तैनात रखी गई थी। बाद में भारत उस समय चौकस हुआ जब उसे यह पता चला कि पाकिस्तान विदेशी पर्वतारोहियों को वहां जाने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। पाकिस्तान का कहना है कि नियन्त्रण रेखा इस ग्लेशियर के पूर्वी भाग को छूते हुए होनी चाहिए जबकि भारत का मानना है कि पाकिस्तान का अचिह्नित क्षेत्र पर कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह क्षेत्र भारत के जम्मू-काश्मीर राज्य का हिस्सा है। इस मसले पर कई बार वार्ताएं हुई मगर सब नाकाम रहीं। तब से इस चार हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को लेकर दोनों पक्षों में कई झड़पें हो चुकी हैं।

परिशिष्ट—2

काश्मीर समझौता (फरवरी, 1975)

निम्नांकित बिन्दुओं पर सहमति के बाद प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का एक समझौता हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप फरवरी, 1975 में उन्होंने राज्य के मुख्यमंत्री का पद संभाला।

1. जम्मू और काश्मीर भारतीय संघ का अविभाज्य अंग है और संघ के साथ उसके सम्बन्धों का निर्धारण भविष्य में भारतीय संविधान की धारा 370 के अन्तर्गत ही होगा।
2. यद्यपि कानून बनाने की अवशिष्ट शक्तियां राज्य के पास रहेंगी तथापि संघीय संसद का ऐसे तमाम विषयों पर कानून बनाने का अधिकार बरकरार रहेगा जिनका सम्बन्ध भारत की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता को भंग करने, चुनौती देने या नकारने के किसी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव और भारतीय क्षेत्र के किसी भाग को उससे अलग करने या भारत के किसी क्षेत्र को संघ से अलग करने या भारतीय राष्ट्रीय ध्वज, भारतीय राष्ट्रीय गान व भारतीय संविधान का अपमान करने की किसी भी गतिविधि को रोकने से हो।
3. यदि जम्मू काश्मीर राज्य में भारतीय संविधान के किसी प्रावधान को अनुकूलित और संशोधित अवस्था में लागू किया गया हो तो ऐसे अनुकूलनों और संशोधनों को धारा 370 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश के जरिये बदला या निरस्त किया जा सकता है तथा इस बारे में हर निजी प्रस्ताव को उसके गुणावगुणों के आधार पर देखा जायेगा; लेकिन जम्मू-काश्मीर राज्य

में पहले से ही लागू संविधान के उन प्रावधानों को, जो संशोधित या अनुकूलित अवस्था में लागू किये गये थे, बदला नहीं जायेगा ।

4. कल्याण कार्यों, सांस्कृतिक मामलों, सामाजिक सुरक्षा, वैयक्तिक कानून तथा व्यावहारिक कानून आदि के मामलों में अपने खुद के कानून बनाने की जम्मू-काश्मीर की स्वतन्त्रता को, राज्य की विशेष परिस्थितियों के अनुरूप, सुनिश्चित करने की गरज से इस बात पर सहमति व्यक्त की जाती है कि राज्य सरकार 1953 के बाद संसद द्वारा राज्य के लिए बनाये गये या राज्य में लागू किये गये समवर्ती सूची के विषयों से जुड़े किसी भी कानून की समीक्षा कर सकती है, उसमें संशोधन कर सकती है या चाहे तो उसे रद्द कर सकती है। लिहाजा संविधान की 254वीं धारा के अन्तर्गत समुचित कदम उठाये जायें । ऐसे मामलों में राज्य सरकार राष्ट्रपति की सहमति लेने के बारे में सहानुभूति-पूर्वक विचार करेगी । यही दृष्टिकोण उक्त धारा की उपधारा-2 के अन्तर्गत संसद द्वारा भविष्य में बनाये जाने वाले कानूनों के बारे में भी अपनाया जायेगा। राज्य में ऐसा कोई भी कानून लागू करने से पहले राज्य सरकार से विचार-विमर्श किया जायेगा और राज्य सरकार के विचारों पर अधिकतम ध्यान दिया जायेगा ।

5. जैसा कि संविधान की धारा 368 के अन्तर्गत पारस्परिक प्रावधान है, राज्य में लागू इस धारा को राष्ट्रपति के आदेश के जरिये संशोधित करके ऐसी व्यवस्था की जाये कि निम्नलिखित विषयों को प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः प्रभावित करने की मंशा से जम्मू-काश्मीर के संविधान में संशोधन हेतु राज्य विधायिका द्वारा बनाया जाने वाला कोई भी कानून तब तक लागू न हो जब तक कि उस कानून के विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं ले ली जाती। वे विषय हैं—

   (अ) राज्यपाल की नियुक्ति, उसकी शक्तियां, उसके कार्य, कर्त्तव्य, विशेषाधिकार व उन्मुक्तियां तथा

   (ब) चुनावों से जुड़े मामलों पर भारत के चुनाव आयोग का पर्यवेक्षण, दिशा निर्देशन, नियंत्रण व बिना किसी भेदभाव के मतदाता सूचियों में प्रविष्टियां, बालिग मताधिकार का सुनिश्चितीकरण और विधान परिषद का गठन, जिसका जम्मू-काश्मीर के संविधान की धाराओं—138, 139, 140 व 50 में प्रावधान है ।

6. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के पदनाम के सवाल पर कोई समझौता सम्भव नहीं था लिहाजा इस मामले को छोड़ दिया जाता है ।

मिर्ज़ा मोहम्मद अफ़ज़ल बेग
नयी दिल्ली, 13 नवम्बर, 1974

भारत के संविधान की धारा—370

जम्मू-काश्मीर के सम्बन्ध में अस्थायी प्रावधान

1. इस संविधान की व्यवस्थाओं के बावजूद
   (क) धारा 238 के प्रावधान जम्मू-काश्मीर में लागू नहीं होंगे।
   (ख) इस राज्य के लिए संसद की कानून बनाने की शक्तियां निम्नांकित मामलों तक सीमित रहेंगी;
   (i) संघीय सूची और समवर्ती सूची के वे विषय जिनका भारतीय संघ में जम्मू-काश्मीर के विलय सम्बन्धी समझौते में उल्लेख है और जिन्हें राष्ट्रपति ने राज्य सरकार के साथ विचार विमर्श के बाद बाकायदा घोषित कर रखा है। अन्य विषयों पर कानून राज्य सरकार बनायेगी।
   (ii) इन सूचियों के ऐसे अन्य विषय जिन्हें राष्ट्रपति राज्य सरकार की सहमति से घोषित करें।
1. व्याख्या—इस धारा के सन्दर्भ में राज्य सरकार का अर्थ राष्ट्रपति द्वारा तात्कालिक तौर पर मान्यता प्राप्त व्यक्ति से है जैसे जम्मू-काश्मीर के महाराजा अपनी 5 मार्च, 1948 की घोषणा के अन्तर्गत अपनी मन्त्रि-परिषद की सलाह से राजकाज चलाते रहे।
   (ग) इस धारा तथा धारा—1 के प्रावधान इस राज्य पर लागू होंगे,
   (घ) इस संविधान के ऐसे अन्य प्रावधान भी राज्य पर प्रभावी होंगे जिन्हें राष्ट्रपति अपवाद स्वरूप संशोधित रूप में लागू करने का आदेश दें।

इसके लिए शर्त यह है कि भारत में जम्मू-काश्मीर के विलय सम्बन्धी समझौते के उपखंड (ख) के पैराग्राफ (i) में वर्णित विषयों के लिए राष्ट्रपति कोई भी आदेश राज्य सरकार के साथ विचार-विमर्श के बगैर जारी नहीं करेंगे।

एक और शर्त यह है कि समझौते में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त किसी भी विषय पर कानून बनाने के लिए राष्ट्रपति को राज्य सरकार की सहमति अनिवार्यतः प्राप्त करनी होगी।

2. यदि इस धारा के खंड (1) के उपखंड (ख) के पैराग्राफ (ii) या उपखंड (घ) की दूसरी शर्त के अनुरूप कानून बनाने के लिए राज्य सरकार की सहमति राज्य का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा के गठन से पूर्व ली गई हो तो उसे राज्य विधान सभा के समक्ष रखना होगा, फिर वह चाहे जो फैसला करे।
3. इस धारा के समस्त पूर्ववर्ती प्रावधानों के बावजूद राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना के जरिये यह घोषणा कर सकते हैं कि यह धारा अधिसूचना जारी किये जाने की तिथि के तत्काल प्रभाव से निरस्त कर दी गई है या इस धारा के वे आपवादिक और संशोधित प्रावधान प्रभावी रहेंगे जिनका उल्लेख

अधिघोषणा में किया गया है।

इसके लिए शर्त यह है कि राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना जारी किये जाने से पूर्व खंड (2) में वर्णित राज्य की संविधान सभा की सिफारिश अनिवार्य होगी।*

---

* राष्ट्रपति ने धारा 370 के जरिये प्रदत्त अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए जम्मू काश्मीर की संविधान सभा की सिफारिशों के आधार पर घोषणा की कि 17 नवम्बर, 1952 से धारा 370 राज्य में एक संशोधन के साथ प्रभावी होगी। उक्त संशोधन यह है कि खंड (1) में उल्लिखित राज्य सरकार का आशय ऐसे व्यक्ति से है जिसे राष्ट्रपति ने राज्य विधान सभा की सिफारिश पर अस्थायी रूप से मान्यता दी है जैसे जम्मू-काश्मीर के सदर-ए-रियासत मन्त्रिपरिषद की सलाह पर शासन चलाते रहे।